ताओ उपनिषद, भाग पांच

प्रवचन-क्रम

86. आत्म-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है...2
87. धारणारहित सत्य और शर्तरहित श्रद्धा...18
88. जीवन और मृत्यु के पार..33
89. ताओ या धर्म पारनैतिक है..50
90. पुनः अपने मूल स्रोत से जुड़ो...69
91. धर्म का मुख्य पथ सरल है...85
92. संगठन, संप्रदाय, समृद्धि, समझ और सुरक्षा...............................106
93. धर्म है समग्र के स्वास्थ्य की खोज...125
94. शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है...146
95. सत्य कह कर भी नहीं कहा जा सकता...169
96. आदर्श रोग है; सामान्य व स्वयं होना स्वास्थ्य.......................189
97. शासन जितना कम हो उतना ही शुभ..211
98. नियमों का नियम प्रेम व स्वतंत्रता है.....................................229
99. मेरी बातें छत पर चढ़ कर कहा..252
100. कृष्ण में राम-रावण आलिंगन में हैं..268
101. स्त्रैण गुण से बड़ी कोई शक्ति नहीं...287
102. ताओ की भेंट श्रेयस्कर है..303
103. स्वादहीन का स्वाद लो...321
104. जो प्रारंभ है वही अंत है...339
105. वे वही सीखते हैं जो अनसीखा है..358
106. धर्म की राह ही उसकी मंजिल है..382

ताओ उपनिषद, भाग पांच
छियासीवां प्रवचन

आत्म-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है

Chapter 48

Conquering The World By Inaction

The student of knowledge aims at learning day by day;
The student of Tao aims at losing day by day.
By continual losing
One reaches doing nothing (laissez-faire).
By doing nothing everything is done.
He who conquers the world often does so by doing nothing. When one is compelled to do something,
The world is already beyond his conquering.

अध्याय 48

निष्क्रियता के द्वारा विश्व-विजय

ज्ञान का विद्यार्थी दिन ब दिन सीखने का आयोजन करता है;
ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।
निरंतर खोने से व्यक्ति निष्क्रियता (अहस्तक्षेप) को उपलब्ध होता है; नहीं करने से सब कुछ किया जाता है।
जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है।
और यदि कुछ करने को बाध्य किया जाए,
तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।

एक ज्ञान है जो सीखने से मिलता है, और एक ऐसा भी ज्ञान है जो भूलने से मिलता है। एक ज्ञान है जो दौड़ने से मिलता है, और एक ऐसा भी ज्ञान है जो रुक जाने से मिलता है। एक ज्ञान है जिसे पाने के लिए महत यात्रा करनी पड़ती है, और एक ज्ञान है जिसे पाने के लिए केवल अपने भीतर झांक कर देखना काफी है।
जो ज्ञान श्रम से मिलता है वह ज्ञान बाहर का होगा। आखिरी अर्थों में उसका कोई भी मूल्य नहीं; आखिरी मंजिल पर दो कौड़ी भी उसका अर्थ नहीं। अंतिम अर्थों में तो जो अपने ही भीतर पाया है वही मूल्यवान होगा। क्योंकि जो ज्ञान हम बाहर से पाते हैं उससे हम स्वयं को न जान सकेंगे। और जिस ज्ञान से स्वयं का जानना न हो वह ज्ञान नहीं है, केवल अज्ञान को छिपाने का उपाय है। पांडित्य से प्रज्ञा उभरती नहीं है, सिर्फ छिप जाती है, ढंक जाती है। एक तो ज्ञान है खुले आकाश जैसा, जहां एक भी बादल नहीं है। और एक ज्ञान है, आकाश बादलों से भरा हो, जहां सब आच्छादित है।
मनुष्य की आत्मा आकाश जैसी है। न कहीं गई; न कहीं जाने को कोई जगह है। न कहीं से आई; न कहीं से आ सकती है। आकाश की तरह है; सदा है, सदा से थी, सदा होगी। कोई समय का, कोई स्थान का सवाल नहीं। तुमने कभी पूछा, आकाश कहां से आया? कहां जा रहा है? आकाश अपनी जगह है। आत्मा भी अपनी जगह है। आत्मा यानी भीतर का आकाश।
पर आकाश में भी बदलियां घिरती हैं, वर्षा के दिन आते हैं, आकाश आच्छादित हो जाता है। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; उसकी नीलिमा बिल्कुल खो जाती है। उसकी शून्यता का कोई दर्शन नहीं होता। सब तरफ घने बादल घिर जाते हैं। ऐसे ही चेतना के आकाश पर भी स्मृति के बादल घिरते हैं, विचार के, ज्ञान के-- जो बाहर अर्जित किया हो। और जब बादल घिर जाते हैं तो भीतर की नीलिमा का भी

कोई पता नहीं चलता; भीतर की शून्यता बिल्कुल खो जाती है। भीतर का विराट क्षुद्र बदलियों से ढंक जाता है।
एक तो ज्ञान है बदलियों की भांति जिसे तुम दूसरों से प्राप्त करोगे, जिसे तुम किसी से सीखोगे। शास्त्र से, समाज से, संस्कार से तुम उसे संगृहीत करोगे। जितना संग्रह बढ़ता जाएगा, जितना पांडित्य घना होगा, उतना ही भीतर का आकाश ढंक जाएगा। उतने ही तुम भटक जाओगे। जितना जानोगे उतना भटकोगे।
इसलिए तो ईसाइयों की कहानी है कि जिस दिन अदम ने ज्ञान का फल चखा उसी दिन वह स्वर्ग से, बहिश्त से बाहर कर दिया गया। वह इसी ज्ञान की बात है जो बाहर से मिलता है। वह फल बाहर से चख लिया था। वह बाहर के बगीचे का फल था। उसे चखते ही अदम को क्या हुआ?
ईसाई कहते हैं कि अदम पापी हो गया। अगर लाओत्से से तुम पूछते, या मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा, अदम पंडित हो गया। और कहानी का ठीक अर्थ यही है। क्योंकि ज्ञान के फल के खाने को पाप से क्या संबंध है? ज्ञान के फल को खाकर कोई पंडित होगा; पापी कैसे हो जाएगा? अदम पंडित हो गया।
जैसे ही पंडित हुआ, बहिश्त से बाहर फेंक दिया गया। जानने वालों की, प्रकृति की निर्मलता में कोई भी जरूरत नहीं है। जानने वाले का अहंकार उस मुक्त आकाश में नहीं ठहर सकता। बहिश्त का अर्थ है, जहां आनंद का झरना सदा बह रहा है; जहां आनंद कभी चुकता नहीं, खंडित नहीं होता। जैसे ही पांडित्य हुआ, बादल घिर गए; आकाश से संबंध टूट गया। एक ही पाप है, और वह पांडित्य है। ईसाई भी ठीक ही कहते हैं कि उसने पाप किया। क्योंकि एक ही पाप है, वह अपने को भूल जाना है। इसे थोड़ा समझ लो। तब लाओत्से के वचन बहुत साफ हो जाएंगे, स्फटिक की तरह स्पष्ट और पारदर्शी हो जाएंगे।
एक ही पाप है, और वह पाप है अपने को भूल जाना। और अपने को भूलने का एक ही ढंग हैः और दूसरी चीजों को याद करने में लग जाना। फिर जगह ही नहीं बचती अपने को याद करने की। हजार चीजें याद हो जाती हैं; एक चीज भूल जाती है। और हजारों की भीड़ में कहां तुम्हारा पता चलता है! बाजार की भीड़ है; आंकड़ों का फैलाव है। चारों तरफ बादल ही बादल हो जाते हैं। जानते तुम बहुत हो, लेकिन भीतर तुम अंधेरे बने रहते हो।
जिस जानने से स्वयं न जाना जा सके उसे लाओत्से ज्ञान नहीं कहता। वह ज्ञान का भ्रम है, आभास है। जिस जानने से स्वयं को जाना जा सके उसे ही लाओत्से ज्ञान कहता है। वही ताओ है, वही ऋत है, वही धर्म है।
और इस जगत में या तो तुम स्वयं को जान सकते हो, और या फिर शेष सबको जान सकते हो। क्योंकि दोनों के आयाम अलग-अलग हैं। जो स्वयं को जानता है उसे भीतर की तरफ मुड़ना पड़ता है। जो और कुछ जानना चाहता है स्वयं को छोड़ कर, उसे भीतर की तरफ पीठ कर लेनी पड़ती है। स्वभावतः, अगर तुम्हें मुझे देखना है तो मैं स्वयं को कैसे देख सकूंगा? तुम्हें देखना है तो मेरी आंखों में तुम भर जाओगे, तुम्हारा बादल मेरी आंखों में तैरेगा। और अगर मुझे स्वयं को देखना है तो मुझे तुम्हारी तरफ से आंख बंद कर लेनी पड़ेगी।
संन्यासी का अर्थ है, जिसने और को देखने से आंख बंद कर ली। संन्यासी का अर्थ है, जिसने और कुछ सीखने से आंख बंद कर ली। संन्यासी का अर्थ है कि जिसने संकल्प किया कि जब तक अपने को नहीं जान लेता तब तक और कुछ जानने का मूल्य भी क्या है? सब भी जान लूंगा, और मेरे भीतर अंधेरा होगा, तो उस प्रकाश का क्या सार है? चारों तरफ जलते हुए दीए होंगे, दीवाली होगी चारों तरफ, और मेरे भीतर अंधेरा होगा, तो उस दीवाली से मुझे क्या लाभ होगा?
जीसस ने पूछा है कि तुमने सारा संसार भी जीत लिया और अपने को गंवा बैठे
तो इस जीत का क्या अर्थ है।
लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा होता है वैसे ही हम उसे सिखाने में लग जाते हैं। उसके कोमल से मन पर, उसके अबोध मन पर, उसके खुले-नीले आकाश पर हम स्मृति की पर्तें रखने लगते हैं। संसार में उनकी उपादेयता है, उपयोगिता है। गणित है, भाषा है, भूगोल है, इतिहास है, यह सब उसे सीखना है। क्योंकि इनको सीख कर ही वह समाज का हिस्सा हो सकेगा। और उसे समाज का हिस्सा होने के लिए हमें तैयार करना है। इसलिए विद्यालय हैं, विश्वविद्यालय हैं, चारों तरफ शिक्षण की बड़ी दूकानें हैं, जहां सिखाया जा रहा है।

और सीखते-सीखते आदमी इतना सीख गया है, और इतना संग्रह ज्ञान का हो गया
है कि एक आदमी सीखना भी चाहे अपने जीवन में तो सीख नहीं पा सकता; हमेशा अधूरा लगता है। क्योंकि सदियों से आदमी ज्ञान का संग्रह कर रहा है। सत्तर-अस्सी साल की जिंदगी में तुम उस पूरे संग्रह को कैसे आत्मसात कर पाओगे? इसलिए हमेशा कमी लगती है। और आगे, और आगे यात्रा करने के लिए जगह खुली रहती है। आदमी दौड़ता चला जाता है, दौड़ता चला जाता है। और धीरे-धीरे जितना बाहर के ज्ञान में जाता है उतना ही अपने से दूर निकल जाता है।
फिर लौटने का एक ही उपाय है कि वह उस ज्ञान को छोड़ दे। और यह सर्वाधिक कठिन बात है। धन को छोड़ना आसान है, क्योंकि धन बाहर ही है। तिजोड़ी छोड़ कर भाग गए तो तिजोड़ी तुम्हारा पीछा न करेगी। पति, पत्नी, बच्चे छोड़े जा सकते हैं। वे भी बाहर हैं। थोड़े-बहुत दिन तुम्हारी याद करेंगे, फिर भूल जाएंगे। कौन किसकी याद सदा करता है? नये संबंध बना लेंगे, नये प्रेम का संसार बन जाएगा। घाव थोड़े दिन हरा रहेगा, फिर भर जाएगा। समय सभी घावों को भर देता है। तुम भाग गए तो तुम्हारे लिए कोई सदा थोड़े ही रोता बैठा रहेगा।
पति-पत्नी को भी छोड़ा जा सकता है, लेकिन ज्ञान को कहां छोड़ जाओगे? जहां जाओगे, ज्ञान तुम्हारे साथ है, क्योंकि ज्ञान की तिजोड़ी भीतर है। वह तुम्हारे मस्तिष्क में है; वह स्मृति है।
इसलिए ज्ञान को छोड़ना सबसे बड़ा त्याग है, महा कठिन। ध्यान उसी का तो प्रयोग है। ध्यान कोई ज्ञान नहीं है; ध्यान ज्ञान को छोड़ने की प्रक्रिया है। कैसे तुम्हारी स्मृति रिक्त और खाली हो जाए, शून्य हो जाए, कैसे तुम भीतर फिर से उस आकाश को पा लो जिसे लेकर तुम पैदा हुए थे, जो कि तुम्हारा स्वभाव है; उसी को लाओत्से ताओ कहता है। ताओ यानी स्वभाव, जिसे तुम लेकर ही पैदा हुए थे। और जिसे तुम दबा सकते हो, खो नहीं सकते; जिसे तुम भूल सकते हो, मिटा नहीं सकते; क्योंकि तुम ही हो, तुमसे भिन्न नहीं है वह। जिसे तुम्हें खोजना ही होगा। और जितना तुम इसे दबाओगे, उतनी ही तुम पीड़ा से भर जाओगे। क्योंकि जो अपने से ही दूर निकल गया, जो अपने से ही अजनबी हो गया, उसकी पीड़ा का तुम हिसाब नहीं लगा सकते। वही सबसे बड़ा संताप है इस जगत मेंः अपने से अजनबी हो जाना।
तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारी पत्नी तुमसे थोड़ी दूर हो जाती है--किसी आवेग में, किसी क्रोध में, किसी रोष में--ऐसा लगने लगता है कि पत्नी भी अजनबी है। तब तुम कैसा खाली अनुभव करते हो! एक दिन तुम्हारे बच्चे बड़े हो जाएंगे, पढ़ेंगे-लिखेंगे; तुम्हारे घोंसले को छोड़ कर उड़ जाएंगे। उनकी अपनी यात्रा है। उस दिन तुम्हें कैसी पीड़ा होगी--बच्चे भी अजनबी हो गए!
लेकिन यह तो अजनबीपन कुछ भी नहीं है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा
कि पत्नी तो पराई थी, अगर दूर भी हो गई तो भी क्या; बच्चे हमसे पैदा हुए थे, लेकिन फिर भी हमारे तो नहीं थे, आए तो प्रकृति के किसी दूर स्रोत से थे, चले गए; लेकिन जब तुम्हें ख्याल आएगा कि तुम खुद से ही अजनबी हो, तुम्हारी अपने से ही अपनी पहचान नहीं है, अपना चेहरा ही तुमने अब तक नहीं देखा, तुम अपने से ही दूर पड़ गए हो, तब जो घाव लगता है, वही घाव व्यक्ति को धार्मिक बनाता है। जिस दिन तुम जानते हो कि मैं अपने से ही दूर हो गया हूं, अपने से ही भटक गया हूं, अपना ही पता-ठिकाना नहीं मिलता है कि मैं कौन हूं, क्या हूं, कहां से हूं, कहां जा रहा हूं, जिस दिन तुम इस असहाय और संताप के क्षण में भर जाते हो, जिस दिन तुम्हारा जीवन सिर्फ एक घाव मालूम पड़ता है, उसी दिन तुम्हारे जीवन में धर्म की शुरुआत होती है। उस दिन तुम क्या करोगे? उस दिन कैसे तुम अपने को पाओगे?
तो मैं तुम्हें एक बुद्ध की छोटी सी कहानी कहूं। बुद्ध एक सुबह-सुबह, जैसे तुम आज मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे ऐसे बुद्ध के भिक्षु उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बुद्ध आए, वे बैठ गए अपने वृक्ष के नीचे। लोग थोड़े चकित थे, क्योंकि हाथ में वे एक रेशम का रूमाल लिए थे। ऐसा कभी न हुआ था। वे उस रूमाल को देखते रहे और फिर उन्होंने रूमाल में पांच गांठें लगाईं। भिक्षु अवाक होकर देखते रहे कि वे क्या कर रहे हैं। गांठें लग जाने पर उन्होंने कहा कि मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूं। वह सवाल यह है कि जब इस रूमाल में गांठ न लगी

थी तब और अब जब कि गांठें लग गईं कोई फर्क है या नहीं? यह रूमाल वही है कि दूसरा?
एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि आप हमें व्यर्थ की उलझन में डाल रहे हैं। समझ गए हम आपकी चाल। अगर कहेंगे कि वही, तो आप कहेंगे कि पांच गांठें नई हैं ये। अगर हम कहें कि नया, तो आप कहेंगे, इसमें नया क्या है, वही का वही रूमाल है। गांठ लगने से क्या होता है? रूमाल के स्वभाव में तो कोई फर्क नहीं हुआ। रूमाल तो वही है, धागा-धागा वही है, ताना-बाना वही है, रंग-ढंग वही है, कीमत वही है। गांठ लगने से क्या होता है? और हम अगर कहें कि बदल गया तो आप ऐसा कहेंगे। और हम अगर कहें कि रूमाल वही है तो आप कहेंगे, वही कैसे हो सकता है? इसमें पांच गांठें नई लग गई हैं! और पहले रूमाल में तुम कुछ चीज-बसद बांध लेते, अब तो न बांध सकोगे। पहले तो इस रूमाल से सिर को ढांक लेते, अब तो न ढांक सकोगे। इस रूमाल का गुणधर्म बदल गया, इसका उपयोग बदल गया। तो उस भिक्षु ने कहा कि आप हमें व्यर्थ की तर्क की उलझन में मत डालें। आपका प्रयोजन क्या है?
बुद्ध ने कहा कि यही मनुष्य का स्वभाव है। ज्ञान की कितनी ही गांठें लग जाएं, एक अर्थ में तो तुम वही रहते हो जो तुम सदा से थे, लेकिन एक अर्थ में तुम बिल्कुल बदल जाते हो, क्योंकि ज्ञान की हर गांठ तुम्हारे सारे उपयोग को नष्ट कर देती है। चेतना का एक ही उपयोग है, और वह उपयोग आनंद है। जैसे-जैसे गांठें लग जाती हैं, बंधन पड़ जाता है, पैर में जंजीरें अटक जाती हैं, आनंद खो जाता है; तुम कारागृह में पड़ जाते हो।
कारागृह में पड़े कैदी में और कारागृह के बाहर मुक्त व्यक्ति में क्या फर्क है? व्यक्ति तो वही का वही है। तुम बाहर हो, कल कोई हथकड़ियां डाल कर तुम्हें जेल में डाल दे। क्या फर्क है? तुममें कोई भी तो फर्क नहीं हुआ। सिर्फ गांठ लग गई रूमाल में। अब तुम्हारी उपयोगिता बदल गई। खुला आकाश खो गया। अब तुम मुक्त नहीं हो; पंख जब चाहो तब न खोल सकोगे। गांठें पड़ गईं।
तो बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें यह बताना चाह रहा हूं कि तुम एक अर्थ में
तो वही हो, जो तुम सदा से थे। क्योंकि ज्ञान की गांठें क्या मिटा पाएंगी? और ज्ञान की गांठ पानी पर खींची लकीर जैसी है। लेकिन फिर भी सब बदल गया। तुम दूसरे हो गए हो; बिना दूसरे हुए दूसरे हो गए हो। यही पहेली है।
इसी को तो कबीर बार-बार कहते हैं, एक अचंभा मैंने देखा। वह इसी अचंभे की बार-बार बात करते हैं कि जो कभी नहीं बदल सकता वह बदल गया है। एक अचंभा मैंने देखा। जिस पर कोई गांठ नहीं लग सकती थी, गांठ लग गई। आकाश--विराट आकाश--को क्षुद्र बदलियों ने घेर लिया। इतना बड़ा हिमालय पर्वत, और आंख में एक किरकिरी पड़ गई, और खो गया।
तो बुद्ध ने कहा, इसलिए। और दूसरी एक बात और कही। कहा कि मैं इन गांठों
को खोलना चाहता हूं। और रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचे।
एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि यह आप क्या कर रहे हैं! अगर इस तरह खींचेंगे
तो गांठ और बारीक होती जा रही है। और गांठ जितनी बारीक हो जाएगी, उतना खोलना मुश्किल है। आप खींचिए मत। खोलने के लिए खींचना रास्ता नहीं है। इससे तो खोलना मुश्किल ही हो जाएगा। गांठ छोटी होती जा रही है।
जितना तुम्हारा ज्ञान सूक्ष्म होता जाता है उतनी गांठ छोटी होती जाती है, फिर उतना ही खोलना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए तो मैं कहता हूं, कभी-कभी पापी भी पहुंच जाते हैं परमात्मा तक, पंडित नहीं पहुंचता। पापी की गांठ बड़ी मोटी है--किसी की चोरी कर ली, किसी को धोखा दे दिया, किसी की जेब काट ली--पापी की गांठ बड़ी मोटी है। जेब में ही कुछ नहीं था, काटने में क्या हो जाएगा? जेब में दो रुपए पड़े थे; काटना भी दो रुपए से ज्यादा का तो नहीं हो सकता। दुकानदार की कीमत कितनी थी, जिससे कि लुटेरे की कीमत ज्यादा हो जाएगी। दुकानदार के पास कुछ नहीं था; लुटेरा उस कुछ नहीं को लूट कर घर ले आया। गांठ बड़ी मोटी है। जिनको तुम कारागृह में बंद किए हो उनकी गांठें बड़ी मोटी हैं; जरा से इशारे से खुल जाएंगी। कभी कारागृह में जाकर देखो, अपराधी तुम्हें बड़े सरल और सीधे मालूम पड़ेंगे। उनसे सीधे जिनके खिलाफ उन्होंने अपराध किया है। उनकी गांठें बड़ी मोटी हैं, सस्ती हैं।

लेकिन पंडित की गांठ बड़ी सूक्ष्म है। मैंने अब तक कोई पंडित नहीं देखा
जो सरल हो, जो निर्दोष हो। न उसने हत्या की है, न किसी की चोरी की है; तुम उसे कानून में नहीं पकड़ सकते। कानून की दृष्टि में उसने कभी किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया है। वह अपनी किताब में उलझा रहा। फुरसत भी नहीं है उसे कानून को तोड़ने की। लेकिन उसने प्रकृति के गहनतम कानून को तोड़ डाला है। उसने परमात्मा के नियम के विपरीत जाने की कोशिश की है; उसने ज्ञान का फल चखा है। वह बड़ा सूक्ष्म है। वह ऊपर से बाहर से उसने किसी के खिलाफ कुछ नहीं किया है; समाज के विपरीत उसने कुछ भी नहीं किया है। जो भी किया है, अपने ही विपरीत किया है, और अपने परमात्मा के विपरीत किया है। वह बिल्कुल सूक्ष्म है। वह सूक्ष्मता क्या है?
उसने सीख-सीख कर ज्ञानी बनने की कोशिश की है। जब कि ज्ञानी तुम पैदा हुए थे। सीखने को कुछ प्रकृति ने छोड़ा नहीं है। परमात्मा ने तुम्हें पाने को कुछ छोड़ा नहीं, सभी दिया हुआ है। तुम पूरे के पूरे पैदा किए गए हो। तुम परिपूर्ण हो। ऐसा होगा भी, क्योंकि परिपूर्ण परमात्मा से अपूर्ण का जन्म कैसे हो सकता है? और अगर अपूर्ण का जन्म होता है तो परमात्मा परिपूर्ण नहीं हो सकता।
कहावत है गांव में कि बाप को जानना हो तो बेटे को जान लो। बेटे को जानने
से बाप का पता चल जाता है। दूसरी कहावत है कि फल को चखने से वृक्ष का पता चल जाता है।
तुम फल हो। तुम्हारा स्वाद ही परमात्मा का स्वाद होगा। क्योंकि उसमें
ही तुम लगे हो। वह तुम्हारी जड़ है। तुम बेटे हो; वह तुम्हारा पिता है। अगर तुम अपूर्ण हो तो वह पूर्ण नहीं हो सकता। और अगर वह पूर्ण है तो तुम्हारी अपूर्णता कहीं भ्रांति है; कहीं तुमने कुछ गलत समझ लिया, सोच लिया। तुम पूर्ण ही पैदा हुए हो। पूर्ण से पूर्ण ही पैदा होता है। शुद्ध से शुद्ध का ही जन्म होता है। अन्यथा नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है अन्यथा होने का। पंडित यही सूक्ष्म पाप कर रहा है। वह उस ज्ञान को खोज कर अपने में भर रहा है जिसको कि लेकर ही आया था।
तुम ऐसे हो कि तुम्हारे भीतर तो हीरे-जवाहरात भरे हैं और तुम बाहर सड़क
के किनारे कंकड़-पत्थर बीन कर ढेर लगा रहे हो। तुम्हारी गरीबी तुम्हारी मान्यता में है। परमात्मा को पाना हो तो सिर्फ इस मान्यता को तोड़ देने की जरूरत है। परमात्मा को पाने का अर्थ हैः इस उदघोष से भर जाना कि मैं परमात्मा सदा से हूं। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। वेद और उपनिषद कंठस्थ करने की जरूरत नहीं है। उनको कंठस्थ करके तुम कचरा ही कंठस्थ कर लोगे। शब्द में सार नहीं है। जो भी तुम सीख लोगे वही तुम पाओगे कचरा है। सीखने की बात नहीं है।
कबीर कहते हैं, लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
लिख-लिख कर, पढ़-पढ़ कर क्या तुम पाओगे? शब्दों की जमात हो जाएगी भीतर, भीड़ लग जाएगी, पंक्तिबद्ध शब्द खड़े हो जाएंगे। तर्क होंगे, सिद्धांत होंगे। ज्ञान बात और है। न तो तर्क ज्ञान है, न सिद्धांत ज्ञान है। ज्ञान तो तुम्हारा अंतर-बोध है। किताब से कैसे अंतर-बोध जन्माओगे? पी जाओ घोल कर, तो भी किताब तुम्हारे शरीर के भीतर ही जाएगी, आत्मा में नहीं पहुंच जाएगी। तुम्हारी स्मृति तुम्हारे शरीर का हिस्सा है।
इसलिए तो कोई आदमी गिर पड़ता है ट्रेन से, सिर में चोट लग गई, स्मृति खो गई। कहीं ट्रेन से गिरने में आत्मा को चोट लगती है? किसी ने सिर पर एक लट्ठ मार दिया, चोट खा गए, स्मृति खो गई, सिर चकरा गया। स्मृति तुम्हारे शरीर का हिस्सा है।
इसलिए पश्चिम में वैज्ञानिकों ने रास्ते निकाल लिए हैं। रूस में और चीन में उनका उपयोग हो रहा है कि कोई आदमी अगर कम्युनिस्ट-विरोधी हो तो वे उसको समझाते-बुझाते नहीं हैं। वे कहते हैं, यह बहुत लंबी प्रक्रिया है, पिटी-पिटाई, पुरानी, बैलगाड़ी के दिनों की। इस जेट के युग में जहां हम चांद पर पहुंच रहे हैं, कहां बैलगाड़ी की चाल चलो--कि समझाओ इस आदमी को कि तुम ठीक नहीं हो, गलत हो। सालों इससे विवाद करो, झंझट खड़ी करो। और फिर भी पक्का भरोसा नहीं, किसी दिन बदल जाए। तो वे कहते हैं, इस झंझट में हम नहीं पड़ते। वे

तो मस्तिष्क को साफ कर देते हैं, ब्रेन-वाश कर देते हैं। खोपड़ी में बिजली लगा कर तेजी से दौड़ा देते हैं, बिजली के तेजी से दौड़ने से सब अस्तव्यस्त हो जाता है। इलेक्ट्रिक शॉक हम पागल आदमी को देते हैं; वे उनको देते हैं जो उनके विपरीत हैं।
पागल आदमी को इलेक्ट्रिक शॉक देने से फायदा क्यों होता है?
इसीलिए फायदा हो जाता है कि उसकी स्मृति के तंतु झनझना जाते हैं, उसकी याद खो जाती है कि मैं पागल हूं, और पुराना हिसाब धुंधला हो जाता है। बीच में एक अंतराल आ जाता है। वह फिर से अ, ब, स से शुरू करने लगता है। इसलिए जिसको भी इलेक्ट्रिक शॉक देते हैं, उसका कुल इतना प्रयोजन है कि उसका मस्तिष्क ऐसी दशा में आ गया है कि अब उसको उसके मस्तिष्क से तोड़ लेना जरूरी है। शॉक में उसकी आत्मा अलग हो जाती है, मस्तिष्क अलग हो जाता है। थोड़ी देर को ही, फिर वापस जुड़ जाता है, लेकिन उतने में अंतराल पड़ गया। बीच में बाधा आ गई। बीच में एक दीवार खड़ी हो गई। अब वह याद न कर सकेगा।
लेकिन चीन और रूस में, जो विपरीत हैं साम्यवाद के, उनको वे बिजली के शॉक
दे देते हैं।
स्मृति खो जाती है। बड़े से बड़ा पंडित, बिजली के शॉक दे दिए जाएं, छोटे बच्चे जैसा हो जाता है। फिर उसको अ, ब, स से सीखना पड़ेगा। निरीह हो जाता है; उसे कुछ याद नहीं रहता। वह अपनी शक्ल भी आईने में नहीं पहचान सकता, क्योंकि पहचान के लिए स्मृति जरूरी है। कैसे पहचानोगे कि यह मेरा ही चेहरा है? याद चाहिए कि हां, ऐसा ही चेहरा मेरा पहले भी था; उन दोनों की तुलना से ही पहचानोगे। उसको फिर से याद करना पड़ता है।
मैं यह कह रहा हूं कि स्मृति तो शरीर का हिस्सा है, आत्मा का नहीं। इसलिए शास्त्र तो शरीर तक ही जा सकते हैं, शब्द भी शरीर तक जा सकते हैं। तुम्हारे कान सुन रहे हैं; तुम्हारे कान में मेरी वाणी पड़ रही है; तुम्हारे कान से तुम्हारी स्मृति में जा रही है। तुम्हारी स्मृति में तुम चाहो तो संगृहीत हो सकती है; तुम न चाहो तो वह दूसरे कान से बाहर निकल जा सकती है।
लेकिन तुम्हारी आत्मा का कैसे स्पर्श होगा इन शब्दों से? शब्द तो पौदगलिक है, मैटीरियल है, पदार्थ है। पदार्थ का पदार्थ से संपर्क हो सकता है। तुम्हारी आत्मा तो पुदगल नहीं है।
हम एक पत्थर फेंकते हैं आकाश में। आकाश से टकरा कर वापस नहीं गिरता पत्थर; क्योंकि आकाश और पत्थर का मिलन नहीं हो सकता। आकाश शून्य है; पत्थर पदार्थ है। एक वृक्ष में फेंको, तो टकरा कर वापस लौट आता है। अगर आकाश में फेंकते हो, वापस लौटता है, तो इसलिए नहीं कि आकाश ने वापस फेंक दिया; तुमने जितनी शक्ति दी थी फेंकते समय वह चुक गई, तब गिर जाएगा। लेकिन आकाश से टकराता नहीं।
अगर आकाश से टकराहट होती तो तुम चल ही नहीं सकते थे; चलना-फिरना मुश्किल हो जाता। क्योंकि आकाश की दीवार तो चारों तरफ है। हाथ हिलाना मुश्किल हो जाता। शब्द जाता है, तुम्हारे शरीर से टकराता है, कंपित करता है तुम्हारी कान की इंद्रिय को, स्मृति को कंपित करता है। चाहो तो स्मृति में संगृहीत हो सकता है, न चाहो तो दूसरे कान से वापस निकल जाता है। लेकिन तुम्हारी आत्मा को थोड़े ही कंपित करता है!
और इसको अगर तुमने इकट्ठा कर लिया तो तुम बड़े पंडित हो जाओगे। अदम ने चखा होगा एक फल; तुमने पूरा वृक्ष पचा लिया है। लेकिन तुम इससे ज्ञानी न हो पाओगे। ज्ञानी होने का रास्ता तो शब्द को भूलना और शून्य में उतरना है। निशब्द की यात्रा है ज्ञान की यात्रा।
यहां तुम मेरे पास अगर कुछ सीखने आए हो तो तुम गलत आदमी के पास आ गए। तुम देर मत करो, भाग जाओ। क्योंकि मैं यहां तुम्हें कुछ सिखाने को नहीं हूं। मैं कोई शिक्षक नहीं हूं। शिक्षक और गुरु का यही फासला है। शिक्षक सिखाता है, गुरु भुलाता है। शिक्षक तुम्हारी खोपड़ी पर लिखता है, गुरु साफ करता है। शिक्षक तुम्हारी स्मृति को भरता है, गुरु तुम्हारी स्मृति को शून्य करता है, रिक्त करता है।
अगर मेरे पास तुम सीखने आए हो तो गलत आ गए। अगर मेरे पास भूलने आए हो, अगर सीख-सीख कर थक गए हो इसलिए आए हो, अगर सीख-सीख कर कुछ भी नहीं पाया इसलिए

आए हो, तो तुम ठीक आदमी के पास आ गए। तो फिर तुम्हारा मन कितना भी भागने को कहे, भागना मत।
मन कहेगा कि भाग जाओ, क्योंकि यह आदमी मिटाए डालता है। कितनी मुसीबत से सीखा था! कितनी कठिनाई से संस्कृत पढ़ी! कितनी रातें जागे! कितना मुश्किल से कंठस्थ किया वेदों को! और यह आदमी मिटाए डालता है, भाग जाओ। लेकिन तब तुम मन की इस उत्तेजना से बचना और रुके रहना। क्योंकि जिन्होंने भी कुछ पाया है-- पाने योग्य कुछ पाया है--उन्होंने भूल कर पाया है।
ये शब्द भी मैं उपयोग कर रहा हूं, और तुम्हें बड़ी अड़चन भी होती होगी कि मैं शब्द के खिलाफ हूं फिर शब्द क्यों बोले चला जाता हूं! और मैं कहता हूं सिखाया नहीं जा सकता, और रोज तुमसे इस तरह बात करता हूं जैसे तुम्हें कुछ सिखा रहा हूं! इन शब्दों का उपयोग मैं वैसे ही कर रहा हूं जैसे कि तुम्हारे पैर में कांटा लग जाए तो तुम क्या करते हो? तुम दूसरा कांटा खोजते हो, दूसरे कांटे से तुम पहले कांटे को निकाल लेते हो। मैं शब्द तुम्हारे भीतर पहुंचा रहा हूं, इनसे तुम्हारी आत्मा न बदलेगी; ये शब्द कांटों की तरह हैं, जो तुम्हारे भीतर चुभे कांटों के शब्दों को खींच ला सकते हैं। बस इतना ही हो सकता है।
और ध्यान रखना, जब तुम पहले कांटे को निकाल लेते हो दूसरे कांटे से तो दूसरे कांटे को सम्हाल कर नहीं रखते, उसकी कोई पूजा नहीं करते हो--कि तेरी बड़ी कृपा, कि तेरा बड़ा अनुग्रह, कि तेरे बिना पहला कांटा न निकलता। तुम ऐसा नहीं करते हो कि घाव में दूसरे कांटे को रख लेते हो कि तुझे कैसे अलग करें, अब तो तू प्राणों का प्राण है। नहीं, तुम दोनों को एक साथ ही फेंक देते हो। कांटे तो दोनों एक जैसे हैं। जो गड़ा था वह और जिसने निकाला वह, उन दोनों में कोई भी फर्क नहीं है।
जिन शब्दों को मैं निकाल रहा हूं और जिन शब्दों से निकाल रहा हूं, उन दोनों में कोई फर्क नहीं है। तुम मेरे शब्दों को पूजना मत। तुम मेरे शब्दों को सम्हाल कर मत रख लेना। क्योंकि यह तो बड़ी भूल हो गई। एक कांटे से निकले, दूसरे से उलझ गए। एक वेद से बचे तो दूसरे वेद में पड़ गए। जब तुम्हारे भीतर के शब्द निकल जाएं तो तुम इन्हें भी फेंक देना; दोनों को साथ ही विदा कर देना।
तुम्हें खाली करना प्रयोजन है। तुम्हें शून्य बनाना लक्ष्य है। अब तुम
इन शब्दों को सुनो।
लाओत्से से बड़ा ज्ञानी नहीं हुआ है। इसलिए लाओत्से की बात को बहुत समझ-समझ कर, जितने गहरे तक इस कांटे को तुम ले जा सको, ले जाना। क्योंकि यह तुम्हारे भीतर चुभे गहरे से गहरे कांटे को निकालने में समर्थ है। लाओत्से बड़ा कुशल है। इसकी कुशलता बड़ी अनूठी है। अनूठी ऐसी है कि इसकी कुशलता कोई क्रिया की कुशलता नहीं है; इसकी कुशलता अक्रिया की है। वह हम आगे समझने की कोशिश करेंगे।
"ज्ञान का विद्यार्थी दिन ब दिन सीखने का आयोजन करता है; ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का। दि स्टूडेंट ऑफ नालेज एम्स एट लर्निंग डे बाइ डे; एंड दि स्टूडेंट ऑफ ताओ एम्स एट लूजिंग डे बाइ डे।"
कह रहा है लाओत्से, दो तरह के विद्यार्थी हैं। एक है विद्यार्थी, वह ज्ञान का विद्यार्थी है, वह दिन ब दिन सीखने की कोशिश करता है। रोज-रोज ज्ञान को बढ़ाता है। उसके लिए ज्ञान एक संग्रह है। वह अपने ज्ञान में जोड़ता जाता है; उसकी संपत्ति बढ़ती जाती है। वह रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा जानने लगता है। जब वह मरेगा तब उसके पास बड़े ज्ञान का भंडार होगा।
लेकिन वह खाली मरेगा। वह खाली मरेगा, क्योंकि उसे खाली होना न आया। उसने सारी जिंदगी भरने की कोशिश की, और खाली मरेगा। क्योंकि जो भी उसने इकट्ठा किया, वह शरीर में रह गया; वह आत्मा तक तो पहुंचता नहीं। वह खोपड़ी में रह गया; खोपड़ी तो यहीं पड़ी रह जाएगी। तुम्हारा मस्तिष्क यहीं पड़ा रह जाएगा।
अभी तुम पढ़ते हो कि खून का बैंक है अस्पतालों में जहां तुम अपना खून दान कर देते हो। आंख का बैंक है जहां तुम अपनी आंख दान कर देते हो। अब हृदय के भी बैंक हैं जहां तुम अपना हृदय दान कर देते हो। अब आगे का कदम वे सोच रहे

हैंः मस्तिष्क के बैंक। जहां मरते वक्त तुम अपना मस्तिष्क भी दान कर दोगे। क्योंकि वह भी साथ तो जाता नहीं। चिता पर जल जाता है; व्यर्थ खराब हो जाता है। सत्तर साल मेहनत की, और फिर आग में जल गया। जैसे अभी तुम खबरें पढ़ते हो कि हृदय के ट्रांसप्लांटेशन हो गए हैं, कि हृदय को, एक आदमी के हृदय को दूसरे आदमी के हृदय में लगा दिया गया है, अब वे जल्दी इस बात की कोशिश में हैं कि एक आदमी का मस्तिष्क भी दूसरे आदमी में लगा दिया जाए। क्योंकि क्यों खराब करना? सत्तर-अस्सी साल की मेहनत पानी में चली जाती है। कितनी मुसीबत! रात-रात जागे, परीक्षाएं पास कीं, बड़ी मुश्किल से ज्ञान इकट्ठा किया; फिर सब--चले खाली हाथ। तुम्हारी खोपड़ी यहीं रह जाती है। तुम तो वैसे ही जाते हो जैसे आए थे। कुछ पाया नहीं, कुछ कमाया नहीं; शायद कुछ गंवाया भला हो। चले! खोपड़ी में तुम्हारी स्मृति रह जाती है। जो भी तुमने जाना, वह तुम्हारे मस्तिष्क के कंप्यूटर में पड़ा रह जाता है। उसका कोई दूसरा उपयोग कभी न कभी करने लगेगा।
और तब एक बड़ी अदभुत घटना घटेगी। आइंस्टीन मर जाए तो उसकी खोपड़ी को हम
एक छोटे बच्चे पर ट्रांसप्लांट कर देंगे; उसके मस्तिष्क को निकाल लेंगे और एक छोटे बच्चे के मस्तिष्क में डाल देंगे। यह बच्चा बिना पढ़े-लिखे आइंस्टीन जैसा पढ़ा-लिखा होगा। इसको स्कूल भेजने की जरूरत न होगी। इसने जो गणित कभी नहीं सीखा, वह बोलेगा और करेगा। जो भाषा इसने कभी नहीं जानी, वह यह बोलेगा और निष्णात होगा। इसको किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने की कोई जरूरत न होगी। यह जन्म से ही नोबल प्राइज विनर होगा।
यही हम कर रहे हैं छोटे पैमाने पर। जो अतीत में जाना गया है वही तो हम स्कूलों, विद्यालयों में बच्चों को सिखा रहे हैं। मस्तिष्क को ही ट्रांसप्लांट कर रहे हैं पुराने ढंग से। एक-एक इंच-इंच कर रहे हैं। पूरा का पूरा इकट्ठा नहीं कर पाते, बीस-पच्चीस साल मेहनत करके बच्चे को हम वैज्ञानिक बना पाते हैं। यह पुराना ढंग है। नए ढंग में यह ज्यादा देर टिकेगा नहीं।
लेकिन क्या तुम्हारे ऊपर अगर सारी दुनिया का मस्तिष्क भी लगा दिया जाए
तो तुम ज्ञानी हो जाओगे? मस्तिष्क बाहर से लगाया जा रहा है। जो बाहर से लगाया जा रहा है वह बाहर का है। जो बाहर का है वह कभी तुम्हारे भीतर नहीं पहुंचता। तुम्हारा भीतर का आकाश अछूता रह जाता है।
तो लाओत्से कहता है, एक तो विद्यार्थी है ज्ञान का, शब्दों का, सूचनाओं का; वह दिन ब दिन संग्रह करता है, आयोजन करता है सीखने का। ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।
और एक विद्यार्थी है परम ज्ञान का। एक विद्यार्थी है आत्मा का, परमात्मा का, सत्य का। वह रोज-रोज छोड़ने की कोशिश करता है। वह अपने भीतर खोजता रहता है, और कुछ मिल जाए, उसको भी छोड़ दूं। वह अपने भीतर से खाली करने में लगा रहता है। वह मस्तिष्क को उलीचता है। क्योंकि जितनी तुम्हारे भीतर बदलियां कम हो जाएं, उतना ही नीला आकाश दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे विचार का जाल कम होता है, विचार के पीछे छिपा हुआ अंतराल दिखाई पड़ने लगता है। वहां परम शून्य विराजमान है।
तुम बदलियों में खोए हो, और बदलियों की कीमत पर आकाश को गंवा बैठे हो।
और आकाश से कम में काम न चलेगा; क्योंकि उससे कम में तुम सदा ही बंधे-बंधे अनुभव करोगे। आकाश ही तुम्हारा सहज घर है। उतनी ही स्वतंत्रता चाहिए; उसी को हम मोक्ष कहते हैं। जिसने भीतर के आकाश को पा लिया और जिसकी बदलियां सब समाप्त हो गईं, वह मुक्त, उसने मोक्ष को उपलब्ध कर लिया। अब कोई बंधन न रहे। अब उसके पंखों को रोकने वाला कोई कहीं नहीं है। अब दूर अनंत तक भी वह उड़े तो भी सीमा न आएगी। अब वह असीम का मालिक हुआ।
जानकारी से तुम सीमित के मालिक हो जाओगे। ज्ञान से तुम सीमित को जान लोगे। लाओत्से यह कह रहा है, अज्ञान से! लाओत्से अज्ञान शब्द का उपयोग नहीं कर रहा है, लेकिन मैं करना चाहूंगा। अगर ज्ञान से सीमित मिलता है तो अज्ञान से असीम मिलता है। लेकिन तुम कहोगे, तो क्या अज्ञानी उसे पा लेते हैं? हां, अज्ञानी उसे पा लेते हैं। लेकिन जिन्हें तुम अज्ञानी समझते हो वे अज्ञानी नहीं हैं। वे छोटे ज्ञानी होंगे, वे भी ज्ञानी हैं।

तुम किसको अज्ञानी कहते हो? जो आदमी मैट्रिक पास है वह गैर मैट्रिक पास
को अज्ञानी समझता है। फासला उनमें ज्ञान और अज्ञान का नहीं है। ज्ञान का ही है; एक थोड़ा कम, एक थोड़ा ज्यादा। पढ़ा-लिखा गैर पढ़े-लिखे को अज्ञानी समझता है। शहर में रहने वाला गांव में रहने वाले को अज्ञानी समझता है। इसलिए गांव के आदमी को हम गंवार कहते हैं; गंवार यानी गांव का रहने वाला। गंवार शब्द ही का मतलब होता है गांव का रहने वाला। जो आदमी युनिवर्सिटी की आखिरी डिग्री लेकर लौटता है वह अपने बाप को भी, अगर वह गैर पढ़ा-लिखा हो, तो अज्ञानी समझता है।
जिन्हें तुम अज्ञानी कहते हो वे अज्ञानी नहीं हैं; तुमसे कम ज्ञानी हैं। मगर सब ज्ञान की यात्रा पर ही खड़े हैं। अज्ञानी तो कभी-कभी हुए हैं, कोई बुद्ध, कोई लाओत्से, कोई कबीर। अज्ञानी का यह अर्थ है कि उन्होंने, जिसे तुम ज्ञान कहते हो, वह सब छोड़ दिया। जिसे तुमने ज्ञान की तरह जाना था, जिनको तुमने ज्ञान की उपाधियां समझा था, अज्ञानी वह है जिसने उन्हें वस्तुतः उपाधि ही समझा, बीमारी समझा, और छोड़ दिया। परम अज्ञान में लीन हो गए।
इसलिए तो सुकरात कहता है कि जब तुम यह जान लोगे कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, उसी दिन ज्ञान के द्वार खुलेंगे। अज्ञानी होना बड़ा कठिन है। क्योंकि अज्ञानी होने का अर्थ है निरहंकारी होना। अहंकार तो दावा करता है ज्ञान का। अज्ञानी अपने को स्वीकार कर लेने का अर्थ है कि मैं हूं ही नहीं; मेरी कोई क्षमता नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं; मेरा कोई बल नहीं, कोई शक्ति नहीं। गहन अंधकार और गहन अंधकार की स्वीकृति।
जैसे ही किसी ने अपने भीतर के गहन अंधकार की स्वीकृति की, इसी स्वीकृति
से प्रकाश का जन्म होता है। अंधकार तो है ही नहीं। तुमने उसे देखा नहीं, माना नहीं, भीतर झांका नहीं, इसलिए अंधकार मालूम हो रहा है। और तुम क्षुद्र ज्ञान को ज्ञान समझते रहे, इसलिए वास्तविक ज्ञान तुम्हें अज्ञान जैसा मालूम हो रहा है। जब क्षुद्र को तुम छोड़ोगे, तब तुम पाओगे कि यह अज्ञान ही, क्षुद्र को छोड़ने से जो खाली जगह बनती है, यह रिक्त स्थान ही उस परिपूर्ण का आवास है। यह अज्ञान ही परम ज्ञान है।
"ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।"
वह खोता है ज्ञान को, छोड़ता है जानने को, धीरे-धीरे न जानने में थिर होता है। जैसे ही तुम न जानने में थिर हो जाओगे, कैसे विचार उठेंगे वहां? विचार तो उठते हैं तुम्हारे ज्ञान के कारण। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि शांति नहीं, विचार ही विचार चलते हैं। और उनसे अगर मैं कहूं अज्ञानी हो जाओ, तो वे हंसते हैं। वे कहते हैं, आप भी कैसी बात सिखाते हैं? ज्ञान तो बड़ा जरूरी है।
ज्ञान जरूरी है; फिर विचार से परेशान क्यों हो रहे हो? अगर ज्ञान जरूरी
है तो विचार तो चलेंगे ही। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा, विचार और ज्यादा चलेंगे। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा, फिर रात सो भी न सकोगे; विचार ही विचार चलेंगे। जागोगे तो, सोओगे तो, ज्ञान बढ़ता जाएगा; तुम पागल होते जाओगे। इसलिए पश्चिम में वे बड़ा दार्शनिक उसी को कहते हैं जो एकाध दफे पागलखाने हो आए। दार्शनिक में कुछ न कुछ कमी रह गई, अगर वह पागलखाने न पहुंचा। उसने ठीक आखिरी तक यात्रा न की, पहले ही रुक गया थोड़ा। थोड़ा और जाता तो पागलखाने पहुंच ही जाता।
ऐसा हुआ। एक बार एक आदमी एक विश्वविद्यालय की तलाश में गया था। अजनबी
था उस शहर में। और उसने जाकर एक द्वार पर दस्तक दी और पूछा कि क्या यह जो भवन है विश्वविद्यालय का है? उस द्वारपाल ने कहा, विश्वविद्यालय का तो नहीं है, लेकिन कोई फर्क नहीं है; आओ, चाहो तो भीतर आ जाओ। विश्वविद्यालय का भवन तो सामने वाला भवन है। यह तो पागलखाना है। लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने कहा, फर्क नहीं है? क्या तुम कहते हो! मजाक करते हो? उसने कहा, नहीं, एक फर्क है। यहां से कभी-कभी कोई लोग सुधर कर भी निकल जाते हैं, वहां से कभी नहीं निकलते।
विश्वविद्यालय से लोग करीब-करीब विक्षिप्तता अर्जित करके लौटते हैं, पागलपन लेकर लौटते हैं। क्योंकि विचार का अतिशय हो जाना तनावपूर्ण है। और जब विचार इतना खिंच जाता है तो टूटने की घड़ी करीब आ जाती है। जितना तुम

सोचोगे उतना ही उद्विग्न होते जाओगे। उतना ही तनाव, उतना ही खिंचाव भीतर, उतना ही विश्राम मुश्किल हो जाएगा। विचार तो विराम जानता ही नहीं, चलता ही जाता है। तुम रहो कि जाओ, तुम बचो कि न बचो, विचार का अपना ही तंतु-जाल है। लोग मुझसे कहते हैं, शांत होना है, निर्विचार होना है। और बिना जाने कहते हैं कि वे क्या कह रहे हैं। क्योंकि अगर निर्विचार होना हो तो ज्ञान की दौड़ छोड़ देनी होगी। अगर निर्विचार होना हो तो ज्ञान का संग्रह छोड़ देना होगा। अगर निर्विचार होना हो तो भीतर जो पुराना संग्रह है, उसे भी उलीच कर खाली कर देना होगा।
"ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है। निरंतर खोने से व्यक्ति निष्क्रियता को उपलब्ध होता है, अहस्तक्षेप को उपलब्ध होता है। बाइ कंटिन्यूअल लूजिंग वन रीचेज डूइंग नथिंग--लैसे-फेअर।"
फ्रांसिसी भाषा का यह शब्द लैसे-फेअर बड़ा बहुमूल्य है। इसका अर्थ होता हैः लेट इट बी; जो है, जैसा है, ठीक है। लैसे-फेअर का अर्थ हैः जो है, जैसा है, ठीक है; तुम हस्तक्षेप न करो। तुम सुधारने की कोशिश न करो। कुछ बिगड़ा ही हुआ नहीं है; कृपा करके तुम सुधारना भर मत। क्योंकि तुम्हारा जहां हाथ लगा, वहीं चीजें बिगड़ जाती हैं। प्रकृति अपनी परिपूर्णता में चल रही है। यहां कुछ कमी नहीं है। तुम कृपा करके थोड़ी साज-संवार मत कर देना। तुम कुछ सुधार मत देना।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर लौट रहा था। सांझ का धुंधलका था।
और मोटर साइकिल पर दो बैठे हुए आदमी एक वृक्ष से टकरा गए थे। अकेला नसरुद्दीन ही वहां था, वह उनके पास गया। एक तो मर ही चुका था। लेकिन दूसरे को नसरुद्दीन ने सहायता की। नसरुद्दीन को लगा कि चोट खाने से उसका सिर उलटा हो गया है; पीठ की तरफ मुंह हो गया है। तो उसने बड़ी मेहनत से घुमा-फिरा कर-- वह आदमी चीखा भी, चिल्लाया भी--उसका बिल्कुल ठीक सिर कर दिया, जिस तरफ होना चाहिए था। तभी पुलिस भी आ गई। और पुलिस ने पूछा कि क्या ये दोनों आदमी मर चुके?
नसरुद्दीन ने कहा, एक तो पहले ही मरा हुआ था; दूसरे को मैंने सुधारने की बड़ी कोशिश की। पहले तो इसमें से चीख-पुकार निकलती थी, फिर पीछे वह भी बंद हो गई।
गौर से देखा तो पाया कि ठंडी सांझ थी और वह जो आदमी मोटर साइकिल के पीछे बैठा था, उसने उलटा कोट पहन रखा था, ताकि आगे से सीने पर हवा न लगे। और उलटा कोट देख कर नसरुद्दीन ने समझा कि इसका सिर उलटा हो गया है, तो उसने घुमा कर उसका सिर सीधा कर दिया। उसी में वे मारे गए। वे जिंदा थे, न सुधारे जाते तो बच जाते।
करीब-करीब ऐसा हमने किया है प्रकृति के साथ। और जहां प्रकृति के साथ हमने बहुत छेड़खानी की है वहां सब चीजें अस्तव्यस्त हो गई हैं।
पश्चिम में बड़ा आंदोलन है इकोलाजी का। पश्चिम के विचारशील लोग कह रहे हैं वैज्ञानिकों को कि अब तुम कृपा करो, अब और सुधार न करो। वैसे ही तुमने सब नष्ट कर दिया है। क्योंकि सब चीजें गुंथी हैं।
हमने जंगल काट डाले, अब वर्षा नहीं होती। अब वर्षा नहीं होती है तो अकाल पड़ता है। हम जंगल काटे चले जाते हैं--बिना यह फिक्र किए कि बादल वृक्षों से आकर्षित होते हैं। उनका वृक्षों से लगाव है। वे तुम्हारी वजह से नहीं बरसते। तुम्हारी खोपड़ी में उनकी तरफ कोई खिंचाव नहीं है। वे वृक्षों से आकर्षित होते हैं। तुमने वृक्ष काट डाले। वृक्षों की जड़ें जमीन को सम्हाले हुए हैं। वृक्ष कट जाते हैं, जड़ें हट जाती हैं; जमीन बिखरने लगती है, रेगिस्तान हो जाते हैं। वृक्ष और पृथ्वी के बीच कोई गहरा नाता है। जहां से वृक्ष हटे वहां रेगिस्तान हो जाएगा। वर्षा न होगी और जमीन को पकड़ने वाली जड़ें न रह जाएंगी, जमीन बिखरने लगेगी, सायल इरोजन हो जाएगा।
तुम एक चीज को सुधारते हो, तत्क्षण हजार चीजें प्रभावित हो जाती हैं। देर अबेर तुम्हें पता लगेगा कि यह तो मुश्किल हो गई। लाभ कुछ होते दिखाई नहीं पड़ता। आदमी सब तरफ से मिटता हुआ मालूम पड़ता है। और विज्ञान कोशिश किए जा रहा है सुधारने की। उसके सब सुधार में मौत हुई जा रही है। आदमी इतनी अड़चन में कभी न था। यह ज्ञानियों के हाथ में पड़ गया है। और उन्होंने आदमी को बड़ी

मुसीबत में डाल दिया है। और पृथ्वी ज्यादा देर जिंदा नहीं रह सकती, अगर लाओत्से की न सुनी गई। ज्यादा से ज्यादा इस सदी के पूरे होते तक आदमी जमीन पर रह सकता है--बस ज्यादा से ज्यादा पच्चीस साल और--अगर वैज्ञानिक नहीं सुनता है लाओत्से जैसे ज्ञानियों की कि रुक जाओ, ठहर जाओ, मत सुधारो, रहने दो, जैसा है परम है, वही ठीक है। तुम्हारी जानकारी अधूरी है, तुम पूरे को नहीं जानते। तुम एक चीज को बदलते हो, पच्चीस चीजें प्रभावित होती हैं जिनका तुम्हें ख्याल भी नहीं है।
हिरोशिमा पर एटम बम गिराया, तब उनको अंदाज नहीं था कि कितना विध्वंस होगा। किसी को अंदाज नहीं था, इतना भयंकर विध्वंस हुआ। तब किसी को यह अंदाज नहीं था, वैज्ञानिकों को, कि यह विध्वंस सदियों तक चलेगा। क्योंकि जो रेडियोधर्मी किरणें पैदा हुईं एटम बम के गिराने से, उनको सागर की मछलियां पी गईं। क्योंकि सागर के पानी पर जाकर वे रेडियोधर्मी किरणें बैठ गईं। धीरे-धीरे वे डूब गईं सागर में, मछलियां उनको पी गईं। मछलियों को जिन्होंने खाया उनके भीतर रेडियोधर्मी तत्व पहुंच गए। उनके बच्चे पैदा हुए, उनके बच्चे अपंग हैं। उनके बच्चों की हड्डियों में रेडियोधर्मी तत्व पहुंच गए। अब वे बच्चे बच्चे पैदा करेंगे।
अब यह हजारों साल तक--वह जो एटम गिरा था उन्नीस सौ पैंतालीस में--हजारों साल तक, अगर आदमियत बचती है, तो उसका दुष्परिणाम भोगेगी। इसको अब रोकने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि फलों में भी चला गया वह। गायों के थनों में चला गया। गायों ने घास खाई--घास पर बैठ गया रेडियोधर्मी तत्व--गायों ने घास खाई, घास से दूध आया, दूध तुमने पीया।
तो यह मत सोचना कि मछली अपन खाते ही नहीं! कि हम शाकाहारी हैं! घास गाय खाएगी, दूध तुम पीओगे। सांस तो लोगे? हवा में रेडियोधर्मी तत्व हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि न्यूयार्क, लंदन और टोकियो की हवा में इतने विषाक्त द्रव्य हैं कि यह हैरानी की बात है कि आदमी जिंदा कैसे है! होना नहीं चाहिए। इम्यून हो गया है, इसलिए जिंदा है। लेकिन जहर तो प्रतिपल पहुंच रहा है। जहर भीतर उतर रहा है।
तुमने ख्याल किया होगा, डी डी टी छिड़को तो मच्छर पहली दफा मरते हैं, दूसरी दफा उतने नहीं मरते, तीसरी दफा बिल्कुल नहीं मरते। चौथी-पांचवीं दफा वे फिक्र ही नहीं करते, तुम छिड़कते रहो डी डी टी। वे इम्यून हो गए, वे जहर इतना पी गए, जो मरने वाले थे, कमजोर, वे मर गए; और जो ताकतवर थे, वे बच गए, और अब जहर पीने में समर्थ हो गए। अब उनके खून में जहर है। अब तुम्हारा डी डी टी कुछ भी नहीं करता।
अभी सिर्फ दस साल पहले सारी दुनिया में डी डी टी का चमत्कार था। सारी दुनिया की सरकारें, भारत की अभी भी डी डी टी छिड़के जा रही है। लेकिन अमरीका और इंग्लैंड में भारी विरोध है इस समय। और अमरीका और इंग्लैंड में सख्ती से डी डी टी को रोका जा रहा है। क्योंकि डी डी टी बड़ा खतरनाक है। मच्छर में जहर जाता है, मच्छर तुम्हें काटता है, जहर तुममें चला गया। मच्छर फल पर बैठ जाता है, जहर फल में चला गया। और डी डी टी तुमने डाल दिया हवा में, वह पानी में गिरेगा, वर्षा में गिरेगा जमीन पर, वह इकट्ठा होता जा रहा है। और चारों तरफ तुम अपने हाथ से जहर इकट्ठा करते हो। तुम मच्छर मारने चले थे, मनुष्यता को मारने का इंतजाम हो जाता है।
जिंदगी जुड़ी है। जिंदगी ऐसे है जैसे तुमने कभी मकड़ी का जाल छूकर देखा
हो; मकड़ी के जाल को तुम एक तरफ छुओ, पूरा जाल कंपता है। ऐसा जीवन एक जाल है। और हिंदू तो बड़े पुराने समय से कह रहे हैं इसे कि यह मकड़ी का जाल है। उन्होंने तो परमात्मा को मकड़ी का प्रतीक दिया है। उन्होंने तो कहा है, जैसे मकड़ी अपने भीतर से अपने थूक को ही धागा बना कर निकालती है और जाल बुनती है, ऐसे ही परमात्मा अपने भीतर से सारी सृष्टि को बुनता है। फिर प्रलय में, जैसे मकड़ी को अगर यात्रा करनी हो, जाना हो छोड़ कर घर, तो तुम्हारे जैसा घर छोड़ कर या बेच कर जाने की जरूरत नहीं है। वह वापस अपने घर को लील जाती है, वह फिर उन धागों को पी जाती है। पीकर दूसरी जगह चली जाती है और वहां जाकर फिर धागे निकाल लेती है। वह उसका थूक है। ऐसे ही परमात्मा प्रलय के क्षण में

फिर अपने सारे विस्तार को लील लेता है, विश्राम में चला जाता है। जब फिर नींद खुलती है, ब्रह्ममुहूर्त आता है, तब फिर अपने जाल को फैला लेता है।
संसार यही तो है। जो विराट संसार है यह मकड़ी के जाल जैसा है। अंग्रेज कवि टेनीसन ने कहा है, तुम हिलाओ एक फूल को और आकाश के तारे हिल जाते हैं।
दूरी कितनी ही हो, लेकिन चूंकि जाल एक का है, और एक का ही जाल है, इसलिए जुड़ा है।
ज्ञान से हम सुधारने की कोशिश करते हैं, और हम बिगाड़ते चले जाते हैं। लाओत्से कहता है, जैसे-जैसे कोई निरंतर खोता है, व्यक्ति निष्क्रियता, अहस्तक्षेप को उपलब्ध होता है।
तब व्यक्ति धीरे-धीरे निष्क्रिय होता जाता है, वह कुछ भी नहीं करता। वह मेरे जैसा हो जाता है; कुछ भी नहीं करता, चुपचाप बैठा रहता है। खाली हो जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कुछ करते क्यों नहीं? समाज में इतनी तकलीफ है, क्रांति की जरूरत है; समाज-सुधार चाहिए; विधवाओं की हालत देखिए, गरीबों की हालत देखिए, कोढ़ी हैं, उनकी हालत देखिए; कुछ करिए।
उन्हें पता ही नहीं कि करने वाले केवल उपद्रव करते हैं। और जब तक क्रांतिकारी हैं तब तक दुनिया में मुसीबत रहेगी। और जब तक समाज-सुधारक हैं तब तक समाज के सुधरने का कोई उपाय नहीं। यही तो उपद्रवी तत्व हैं। ये चीजों को ठीक बैठने नहीं देते, ये सुधारने में लगे हैं। सब सुधरा ही हुआ है।
इस फ्रेंच शब्द लैसे-फेअर का यही अर्थ हैः जैसा है, बिल्कुल ठीक है। तुम हस्तक्षेप मत करो। तुम अस्तित्व को और बेहतर न कर सकोगे। तुम हो कौन? तुम्हारी क्षमता क्या? तुम क्या सोचते हो कि तुम मूल स्रोत से ज्यादा ज्ञानी हो? क्या तुम सोचते हो, परमात्मा ने जो बनाया है, तुम उस पर सुधार आरोपित कर सकोगे? तुम इससे बेहतर दुनिया बना सकोगे? क्रांतिकारी की यही आकांक्षा है कि इससे बेहतर दुनिया हम बना कर रहेंगे। इससे बेहतर दुनिया बनाने में तुम इसे भी गंवा दोगे।
"व्यक्ति निष्क्रियता को उपलब्ध होता है, और तब नहीं करने से सब कुछ किया जाता है।"
तब वह कुछ करता नहीं है। लाओत्से जैसे लोग कुछ करते नहीं हैं। लेकिन उनके न करने में इतनी क्षमता है; क्योंकि उनके न करने में वे परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं।
परमात्मा को तुमने कहीं कुछ करते देखा--कहीं वृक्षारोपण करते? कहीं सड़क बनाते? कहीं दवा घोंटते मरीजों के लिए?
तुमने उसे कहीं नहीं देखा होगा। वह कहीं कुछ करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता; इसीलिए तो तुम उसे देख नहीं पाते। क्योंकि तुम्हारा विचार केवल कृत्य को देख सकता है। निर्विचार निष्क्रिय परमात्मा को देख सकता है। सक्रिय बुद्धि केवल सक्रियता को देख सकती है। सक्रिय बुद्धि केवल पदार्थ को देख सकती है। निष्क्रिय बुद्धि केवल आकाश, शून्य को देख पाती है। उस जैसे हो जाओ, तभी तुम उसे देख सकोगे।
जैसे-जैसे कोई व्यक्ति निष्क्रिय होता है, वैसे-वैसे अदृश्य जैसा हो जाता है। क्योंकि उसकी छाप कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती; उसका स्वर कहीं नहीं सुनाई पड़ता। वह शून्यमात्र हो जाता है। उस शून्यता में ही परम घटना घटती है। कबीर ने कहा है, अनकिए सब होए। वही लाओत्से कह रहा है।
लाओत्से कह रहा है, "नहीं करने से सब कुछ किया जाता है। बाइ डूइंग नथिंग एवरीथिंग इ.ज डन।"
यह कैसे होता होगा? न करने से सब कुछ कैसे होगा?
सब कुछ हो ही रहा है। जैसे नदी बह रही है। लेकिन तुम अपने अज्ञान में धक्का दे रहे हो, और तुम सोचते होः धक्का न देंगे तो नदी बहेगी कैसे? तुम नाहक खुद ही थके जा रहे हो। नदी को धक्का देने की जरूरत नहीं है; वह अपने से बह रही है; बहना उसका स्वभाव है। अस्तित्व को सुधारने की जरूरत नहीं है; सुधरा हुआ होना उसका स्वभाव है। वह अपनी परम उत्कृष्ट अवस्था में है ही। कुछ रंचमात्र करना नहीं है। लेकिन तुम नाहक शोरगुल मचाते हो, उछलकूद मचाते हो। उसमें तुम खुद ही थक जाते हो, परेशान होते हो।

"नहीं करने से सब कुछ किया जाता है। जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है।"
दो तरह के विजेता इस संसार में होते हैं। एक विजेता जिनका नाम इतिहासों में लिखा है--सिकंदर, नेपोलियन, स्टैलिन, माओ। ये विजेता कुछ करते हुए दिखाई पड़ते हैं। ये विजेता नहीं हैं। और इनसे कुछ सार न तो किसी दूसरे को होता है, न इनकी खुद की कोई उपलब्धि है।
एक और विजेता है--लाओत्से, कृष्ण, महावीर, बुद्ध। महावीर को तो हमने जिन इसीलिए कहा। जिन का अर्थ है, जिसने जीता। जिन के कारण उनके अनुयायी जैन कहलाते हैं। जिन का अर्थ है विजेता, जिसने जीत लिया। लेकिन महावीर ने किया कुछ नहीं। वे खड़े रहे जंगलों में नग्न, आंख बंद किए वृक्षों के नीचे। कभी किसी ने उन्हें कुछ करते नहीं देखा, कि किसी कोढ़ी का पैर दबा रहे हों, कि किसी की मलहम-पट्टी कर रहे हों, कि किसी समाज-सुधार के कार्य में लगे हों, कि कोई अस्पताल में नर्स का काम कर रहे हों। किसी ने कभी कुछ करते नहीं देखा। लेकिन महावीर को हमने जिन कहा। उन्होंने जीत लिया।
जीतने की कला एक ही है कि तुम कुछ मत करो, तुम शांत हो जाओ। और तत्क्षण तुम परमात्मा के उपकरण हो जाते हो। वह तुम्हारे भीतर से करना शुरू कर देता है। लेकिन उसके करने के ढंग बड़े अदृश्य हैं। उसके करने के ढंग परम अदृश्य हैं। आवाज भी नहीं होती, और सब हो जाता है। पदचिह्न भी सुनाई नहीं पड़ते, और सारी यात्रा पूरी हो जाती है। पदचिह्न बनते भी नहीं, और मंजिल आ जाती है। "जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है। और यदि कुछ करने
को बाध्य किया जाए, तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।"
और अगर वह स्वयं को बाध्य करे, या किसी की बाध्यता में आ जाए और कुछ करने में लग जाए, उसी क्षण संसार उसके हाथ के बाहर निकल जाता है। क्योंकि जैसे ही तुम कुछ करते हो, कर्ता आया, वैसे ही परमात्मा से तुम्हारा संबंध टूट जाता है।
परमात्मा से तुम्हारा संबंध टूटा है तुम्हारे ज्ञानी होने और कर्ता होने से। और परमात्मा से तुम्हारा संबंध जुड़ जाएगा, तुम अकर्ता हो जाओ और अज्ञानी हो जाओ। तुम कह दो कि मुझे कुछ पता नहीं। और यही असलियत है, पता तुम्हें कुछ भी नहीं है। क्या पता है? कुछ भी पता नहीं है।
आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा है कि जिंदगी ऐसे ही गई, मैं कुछ बिना जाने
मर रहा हूं; कुछ जाना नहीं है। और आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि दुबारा अगर जन्म मिले तो मैं वैज्ञानिक न होना चाहूंगा।
एडीसन कहा करता था... । एडीसन ने एक हजार आविष्कार किए हैं, उससे बड़ा आविष्कारक नहीं हुआ। तुम्हें पता ही नहीं, तुम्हारे घर की बहुत सी चीजें उसी के आविष्कार हैं--ग्रामोफोन, रेडियो, बिजली, सब उसी के हैं। तुम्हारा घर उसके आविष्कारों से भरा है। लेकिन एडीसन से जब किसी ने पूछा कि तुम इतना जानते हो! तो उसने कहा कि हमारे जानने का क्या मूल्य है? मैं सारे उपकरण बना लिया हूं विद्युत के, लेकिन विद्युत क्या है, यह मुझे अभी पता नहीं। बिजली क्या है?
ऐसी घटना है एडीसन के जीवन में कि एक गांव में गया था, पहाड़ी गांव पर विश्राम करने गया था। छोटा गांव ग्रामीणों का; छोटा सा स्कूल। स्कूल का वार्षिक दिन था, और बच्चों ने कई चीजें तैयार की थीं। पूरा गांव स्कूल देखने जा रहा था। तो एडीसन भी चला गया; फुरसत में बैठा था, कोई काम भी न था। कोई वहां उसे पहचानता भी नहीं था। तो बच्चों ने छोटे-छोटे खेल-खिलौने बिजली के बनाए थे। वह एडीसन तो बिजली का सबसे बड़ा ज्ञाता था। बच्चों ने मोटर बनाई थी, इंजन बनाया था, और बिजली से चला रहे थे। और ग्रामीण बड़े चकित होकर सब देख रहे थे। एडीसन भी चकित होकर सब देख रहा था।
फिर उसने उस बच्चे से पूछा, जो बिजली की गाड़ी चला रहा था, कि बिजली क्या है? व्हाट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी? उस बच्चे ने कहा कि यह तो मुझे पता नहीं; मैं अपने विज्ञान के शिक्षक को बुला लाता हूं। तो वह अपने विज्ञान के शिक्षक को बुला लाया। वह ग्रेजुएट था विज्ञान का। पर उसने कहा कि यह तो मुझे भी पता नहीं है कि बिजली क्या है। बिजली का कैसे उपयोग करें, वह हमें पता है। आप रुकें, हम अपने प्रिंसिपल को बुला लाते हैं। उसके पास डाक्टरेट है साइंस

की। वह प्रिंसिपल भी आ गया। उस प्रिंसिपल ने भी समझाने की कोशिश की इस ग्रामीण को; क्योंकि वह ग्रामीण जैसा ही वेश पहने हुए था। लेकिन वह ग्रामीण कोई ग्रामीण तो था नहीं, वह एडीसन था। वह पूछता ही गया कि आप सब कह रहे हैं, लेकिन जो मैंने पूछा, वह नहीं कह रहे हैं। मैं पूछ रहा हूं, बिजली क्या है? सीधा सा उत्तर क्यों नहीं देते? आप जो भी कह रहे हैं, उससे उत्तर मिलता है कि बिजली का कैसे उपयोग किया जा सकता है। लेकिन बिजली क्या है? उपयोग तो पीछे कर लेंगे। आखिर वह भी हैरान हो गया और उसने कहा कि तुम बकवास बंद करो, बेहतर होगा तुम एडीसन के पास चले जाओ। तुम उससे ही मानोगे।
उसने कहा, तब गए काम से। वह तो मैं खुद ही हूं। तो फिर कहीं उत्तर नहीं है। अगर एडीसन के पास ही आखिरी उत्तर है तो फिर कहीं उत्तर नहीं है। तो फिर जाना बेकार है; क्योंकि वह तो मैं खुद ही रहा।
यह जो अस्तित्व है, बड़ी से बड़ी जानकारी के बाद भी तो बिना जाना रह जाता है। क्या जानते हैं हम? एक फूल का भी तो हमें पता नहीं।
अज्ञान और अक्रिया, अगर दो सध गईं--तुम गए, तुम मिट गए। फिर परमात्मा है तुम्हारी जगह; तुम खाली हो गए। जैसे ही तुम खाली होते हो वह तुम्हें भर देता है।
"और यदि कुछ करने को बाध्य किया जाए, तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।"
और तुम अगर अपने को बाध्य करोगे कुछ करने को, उसी क्षण तुम्हारा संबंध टूट जाता है। अकर्ता, अज्ञानी, शून्य भाव से--तुम सब कुछ हो। कर्ता हुए, अकड़ आई, कुछ करने का ख्याल जगा, क्रिया में उतरे, कर्म के जाल में उतर गए--संसारी हो गए।
इसलिए तो हम कहते हैं इस देश में कि जो कर्म के जाल से मुक्त हो जाए... । कर्म के जाल से कौन मुक्त होगा जब तक तुम्हें कर्ता का भाव है! और ज्ञान भी तो तुम्हारा कर्म है। वह भी तो तुमने कर-करके इकट्ठा किया है। कर्म का जाल उसी दिन टूटेगा जिस दिन न कर्ता रह जाए, न ज्ञान रह जाए। तुम छोटे बच्चे की भांति हो जाओ, जिसे कुछ भी पता नहीं है, जो कुछ भी कर नहीं सकता है। उसी के भीतर से परमात्मा उंडलने लगता है।
और लाओत्से कहता है, सारा संसार जीत लिया है अक्सर उन्होंने, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया।
कुछ अनूठे रास्ते हैं। अनुभव से मैं कहता हूं कि वे रास्ते हैं। इधर मैं बिना कुछ किए चुपचाप बैठा रहता हूं, दूर-दूर अनजान देशों से लोग चुपचाप चले आते हैं। वे कैसे आते हैं, रहस्य की बात है। कौन उन्हें भेज देता है, रहस्य की बात है। कोई अनजान, कोई अदृश्य शक्ति चौबीस घंटे काम कर रही है। जहां भी गड्ढा हो जाता है, उसी तरफ यात्रा अनेक चेतनाओं की शुरू हो जाती है। कुछ कहने की भी जरूरत नहीं होती। किन्हीं अनजान रास्तों से उन्हें खबर मिल जाती है। कोई उन्हें पहुंचा देता है। ऐसा सदा ही हुआ है। तुम अपने करने वाले को भर मिटा दो, और तुमसे विराट का जन्म होगा। तुम कर्ता बने रहो, तुम क्षुद्र में ही सीमित मर जाओगे। तुम्हारा कर्ता होना और ज्ञानी होना तुम्हारी कब्र है। कर्ता और ज्ञानी गया कि तुम मंदिर हो गए। परमात्मा तुमसे बहुत कुछ करेगा। तुम जरा हट जाओ, तुम जरा मार्ग दो। परमात्मा तुम्हें बहुत ज्ञान से भरेगा, तुम जरा अपने ज्ञान का भरोसा छोड़ो। तुम जरा अपने ज्ञान की गठरी को उतार कर भर रखो और फिर देखो।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
सतासीवां प्रवचन

धारणारहित सत्य और शर्तरहित श्रद्धा

Chapter 49

The People's Hearts

The Sage has no decided opinions and feelings,
But regards the people's opinions and feelings as his own. The good ones I declare good,
The bad ones I also declare good;
That is the goodness of Virtue.
The honest ones I believe,
The liars I also believe;
That is the faith of Virtue.
The Sage dwells in the world peacefully, harmoniously.
The people of the world are brought into a community of heart,
And the Sage regards them all as his own children.

अध्याय 49

लोगों के हृदय

संत के कोई अपने निर्णीत मत व भाव नहीं होते;
वे लोगों के मत व भाव को ही अपना मानते हैं।
सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी मैं शुभ करार देता हूं; सदगुण की यही शोभा है।
ईमानदार का मैं भरोसा करता हूं, और झूठे का भी मैं भरोसा करता हूं;
सदगुण की यही श्रद्धा है।
संत संसार में शांतिपूर्वक, लयबद्धता के साथ जीते हैं।
संसार के लोगों के बीच हृदयों का सम्मिलन होता है।
और संत उन सब को अपनी ही संतान की तरह मानते हैं।

ज्ञान कोई ताल-तलैयों की भांति बंद घटना नहीं है। ज्ञान तो तरलता है-- सरिता की भांति बहती हुई। इसलिए ज्ञान की कोई बंधी हुई धारणाएं नहीं हो सकतीं। ज्ञान की कोई धारणा ही नहीं होती, न कोई विचार होता है। अगर विचार होगा तो पक्षपात हो जाएगा। ज्ञान तो निष्पक्ष है।

एक दीया हम जलाते हैं। तो जो भी कमरे में हो, जैसा भी कमरे में हो, प्रकाश उसे प्रकट करता है। प्रकाश का कोई अपना पक्ष नहीं है। प्रकाश यह नहीं कहता कि सुंदर को प्रकट करूंगा, असुंदर को ढांक दूंगा; कि शुभ को ज्योतिर्मय करूंगा, अशुभ को अंधकार में डाल दूंगा। प्रकाश निष्पक्ष है; जो भी सामने होता है, उसे प्रकट कर देता है। जहां भी पड़ता है, प्रकट करना प्रकाश का स्वभाव है। प्रकाश की अगर अपनी कोई धारणा हो तो फिर प्रकाश निष्पक्ष न होगा।
ज्ञान प्रकाश की भांति है। ज्ञान तो एक दर्पण है; जो भी सामने आता है, झलक जाता है। ज्ञान कोई फोटोग्राफ नहीं है। ज्ञान के पास अपना कोई चित्र नहीं है। ज्ञान तो एक खालीपन है। उस खालीपन के सामने जो जैसा होता है, वैसा ही प्रकट हो जाता है। इस बात को पहले समझ लें। क्योंकि साधारणतः हम जिन लोगों को ज्ञानी कहते हैं, वे वे ही लोग हैं, जो पक्षपात से भरे हुए लोग हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है। कोई गीता को मानता है, कोई कुरान को। उनकी

अपनी धारणाएं हैं। सत्य के पास जब वे जाते हैं तो अपनी धारणा को लेकर जाते हैं; वे सत्य को अपनी धारणा के अनुकूल देखना चाहते हैं।
सत्य किसी के पीछे छाया बन कर थोड़े ही चलता है। और सत्य किसी की धारणाओं में ढल जाए तो सत्य ही नहीं। सत्य के पास तो वे ही पहुंच सकते हैं, जिनकी कोई धारणा नहीं है, जिनके मन में कोई प्रतिमा नहीं है; जो सत्य का कोई रूप-रंग पहले से सोच कर नहीं चले हैं; जिनके परमात्मा की कोई आकृति नहीं है, और जिनके परमात्मा का कोई रूप नहीं है। और जैसा भी होगा रूप और जैसी भी होगी आकृति उस परमात्मा की, वे अपने हृदय के दर्पण में वैसी ही झलका देंगे। वे जरा भी ना-नुच न करेंगे। वे यह न कहेंगे कि तुम अपनी धारणा के अनुकूल नहीं मालूम पड़ते हो।
अपनी धारणा का अर्थ है अहंकार।
तुम ज्ञान को भी चाहोगे कि वह तुम्हारे पीछे चले। और तुम सत्य को भी चाहोगे कि तुम्हारा अनुयायी हो जाए। और तुम परमात्मा को भी चाहोगे कि वह तुम्हारी धारणाओं से मेल खाए। तभी तुम स्वीकार करोगे।
तुम्हारी स्वीकृति के लिए अस्तित्व नहीं रुका है। तुम्हारी स्वीकृति
की कोई चाह भी नहीं है। तुम्हारी स्वीकृति के बिना अस्तित्व पूरा है। तुम हो कौन? तुम किस भ्रांति में हो कि तुम्हारी धारणा के अनुकूल सत्य हो? तुमने कभी विचार किया अपने मन पर कि तुम किस बात को सत्य कहते हो?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपने जो बात कही, वह बहुत जंची, बिल्कुल सच है। मैं उनसे पूछता हूं, तुमने जानी कैसे कि सच है? तुमने किस मापदंड से मापी? तुम्हें सत्य का पता है? तो ही तुम जांच सकते हो। हां, वे कहते हैं, सत्य का पता है। आपने वही कहा जो हमारे मन में भी छिपा है। आपने वही कहा जो हम पहले से ही मानते रहे हैं।
सत्य की परिभाषा लोगों की यह हैः अगर उनकी मान्यता के अनुकूल हो। तुम
तो सत्य हो; तुम्हीं कसौटी हो जैसे। अब रही बात इतनी कि तुम्हारे अनुकूल जो पड़ जाए, वह भी सत्य हो जाएगा।
कुछ लोग हैं, वे कहते हैं, आपने जो बात कही, वह जंचती नहीं, मन को भाती नहीं; सत्य नहीं मालूम होती। तर्क से भला ठीक हो; आप समझाते हैं, तब ठीक भी लग जाती है; लेकिन ठीक है नहीं, अंतःकरण साथ नहीं देता।
क्या है तुम्हारा अंतःकरण? तुम्हारी धारणाएं? तुम्हें बचपन से जो सिखाया गया? तुम्हारे खून में जो डाला गया? मां के स्तन से दूध के साथ-साथ तुमने मां का धर्म भी पीया है। पिता का हाथ पकड़ने के साथ-साथ पिता की धारणाएं भी तुम्हारे जीवन में उतर गई हैं। तुम्हारा सीखा हुआ तुम्हारा अंतःकरण है! तुम उससे जांच करते हो--अगर मेल खा जाए सच, अगर मेल न खाए तो झूठ। तो कसौटी तुम हो। और जिसने यह समझ लिया कि मैं कसौटी हूं सत्य की, वह सदा भटकता रहेगा। ज्ञान की कोई कसौटी नहीं; ज्ञान तो निर्मल है। ज्ञान का अपना कोई भाव नहीं; ज्ञान तो निर्भाव है। ज्ञान तो बस कोरे दर्पण की भांति है; जो है, उसे प्रकट कर देगा। जो है, बिना व्याख्या के, अपने को बीच में डाले बिना, अपने को जोड़े बिना, प्रकट कर देगा। ज्ञान निष्पक्ष है।
कबीर ने कहा, पखापखी के पेखने सब जगत भुलाना। पक्ष और विपक्ष के उपद्रव में सारा जगत भटका हुआ है। ज्ञान का न तो कोई पक्ष है और न कोई विपक्ष। ज्ञान का कोई मत नहीं, कोई दल नहीं। ज्ञान तो शुद्ध दर्शन है। ज्ञान कोई विचार ही नहीं; वह तो निर्विचार प्रतिबिंब की क्षमता है--दि कैपेसिटी टु रिफ्लेक्ट। दर्पण को तुम ले आते हो घर में। दर्पण अगर पहले ही किसी चित्र से भरा हो तो तुम्हारे काम न आएगा। और दर्पण तुम्हें बताता है।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक जंगल से गुजरता था, किसी राही का गिरा हुआ दर्पण मिल गया। कभी दर्पण उसने पहले देखा नहीं था। दर्पण देखा, शक्ल कुछ पहचानी सी लगी; बाप से मिलती-जुलती थी। अपनी शक्ल तो देखी नहीं थी। दर्पण कभी देखा न था। बाप की शक्ल देखी थी। दर्पण देखा, बाप से मिलती-जुलती थी। नसरुद्दीन ने कहा, अरे बड़े मियां, हमने कभी सोचा भी न था कि तुमने फोटो उतरवाई है। अच्छा हुआ, कोई और न उठा ले गया। कहां से आ गई यह फोटो तुम्हारी? पिता तो चल बसे थे। पिता की फोटो समझ कर सम्हाल कर घर ले आया। कई बार रास्ते में देखी, हमेशा फोटो वही थी। पिता की फोटो थी; स्मृति के लिए सम्हाल कर

मकान के ऊपर, जहां अपनी गुप्त चीजें रखता था, वहीं छिपा कर उसने रख दी। रोज जाकर सुबह नमस्कार कर आता था।
पत्नी को शक होना शुरू हुआ--किसलिए रोज ऊपर जाता है? बताता भी नहीं। एक दिन जब मुल्ला बाहर था तो वह ऊपर गई, देखा। अपनी ही शक्ल पाई दर्पण में। बड़ी नाराज हो गई। तो कहा कि इस बुढ़िया के पीछे दीवाने हुए हो! वह समझी कि प्रेयसी की तस्वीर रखे हुए है। अपनी ही फोटो दिखी। कभी दर्पण तो देखा न था। तो सोचा कि अच्छा, तो इस चुड़ैल के पीछे दीवाने हुए जा रहे हो!
दर्पण में तो तुम्हीं दिखाई पड़ोगे। दर्पण के पास अपनी कोई धारणा नहीं है। और अगर तुम्हें आखिरी दर्शन करना हो जीवन का तो तुम्हें ऐसा ही दर्पण हो जाना पड़ेगा जिसकी कोई धारणा नहीं। तभी तुम्हारे आर-पार जो बहेगा वह सत्य है। तुम्हारी धारणाओं में ढल कर जो बहेगा वह असत्य हो गया, तुम्हारे कारण असत्य हो गया। वह नकली हो गया; वह असली न रहा। ढांचा तुमने दे दिया। और तुम्हारे ढांचे के कारण उसकी जो असीमता थी, अनंतता थी, निराकार रूप था, वह सब खो गया। अब वह एक क्षुद्र चीज हो गई।
सत्य जब धारणाओं में बंधा होता है और शास्त्रों में कैद होता है, तब वह जंजीरों में पड़ा होता है। उसमें प्राण नहीं होते और पंख नहीं होते, जिनसे वह आकाश में उड़ जाए। सत्य जब निर्धारणा में उतरता है, तब वह मुक्त होता है। तब उस पर कोई जंजीरें नहीं होतीं और कोई दीवाल नहीं होती, वह किसी कारागृह में बंद नहीं होता, तब खुले आकाश की भांति होता है। ज्ञान खुला आकाश है, कोई कारागृह का आंगन नहीं।
तुम्हारे मन में जितनी धारणाएं हैं, सब कारागृहों के आंगन हैं। नाम अलग होंगे; कोई हिंदू का कारागृह है, कोई मुसलमान का, कोई ईसाई का, कोई जैन का। लेकिन सभी मान्यताएं कारागृह हैं। और सभी मान्यताओं के बाहर जो आ जाए, वही ज्ञानी है।
ज्ञानी के पास अपना कोई विचार नहीं होता। वह तो दीए की भांति जीता है;
जो आ जाता है, वही दिखाई पड़ने लगता है। और ज्ञानी के पास अपना कोई भाव भी नहीं होता कि वह किसी को बुरा कहे और किसी को भला कहे। उसके मन में न किसी की निंदा होती है और न किसी की प्रशंसा होती है। वह न तो चोर को चोर कहता है, न साधु को साधु कहता है। उसके लिए तो द्वंद्व का सारा जगत मिट गया; उसके लिए द्वैत न रहा, दुई न रही। उसके लिए तो अब एक ही है। और वह एक परम शुभ है। उस एक का होना ही एकमात्र शुभ है, एकमात्र मंगल है।
इसलिए तुम ज्ञानी को धोखा न दे सकोगे। नहीं कि तुम ज्ञानी को धोखा नहीं
दे सकते, तुम दे सकते हो। लेकिन ज्ञानी को तुम न दे सकोगे, क्योंकि ज्ञानी धोखे को मानता ही नहीं। वह तुम पर भी भरोसा करता है। तुम उसे कितना ही धोखा दिए जाओ, वह बार-बार तुम पर भरोसा किए चला जाएगा। उसके भरोसे का कोई अंत नहीं है। तुम उसके भरोसे को न चुका सकोगे; तुम ही चुक जाओगे, तुम ही हारोगे। ज्ञानी से जीतने का कोई उपाय नहीं; देर-अबेर तुम्हें हारना ही पड़ेगा।
बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक झेन फकीर नदी में खड़ा है और एक बिच्छू डूब रहा है। तो उसे उठाता है हाथ में और किनारे पर रख देता है। जब तक वह उठाता है और किनारे पर रखता है तब तक वह दस-पांच बार डंक मार देता है। बिच्छू का स्वभाव है; कोई कसूर नहीं है। इसमें कुछ न होने जैसा भी नहीं है, अनहोना भी नहीं है। बिच्छू का स्वभाव है। वह उसे किनारे पर रख देता है। बिच्छू फिर पानी में उतर कर तैरने लगता है। वह उसे फिर बचाने के लिए किनारे पर रखता है।
जैसा कि तुमने देखा होगा, पशुता में एक तरह की गहरी जिद्द। पशुता जिद्दीपन है। सभी पशु हठयोगी हैं। तुम किसी चींटे को हटाओ, फिर वहीं भागेगा जहां से हटाया गया है। इसमें चुनौती हो जाती है। तुम एक मक्खी को उड़ाओ, वह वापस वहीं बैठ जाएगी जहां से तुमने उड़ाई थी। जब तक तुम उसको छोड़ ही न दोगे उसके हाल पर, तब तक वह चुनौती से संघर्ष लेगी। उसके अहंकार को भी चोट लगती है। तुम हो कौन हटाने वाले? तुमने समझा है कि यह नाक तुम्हारी है जिस पर मक्खी बैठ रही है। मक्खी के लिए यह केवल उड़ने के बाद विश्राम करने का स्थल है। तुम हो कौन बीच में बाधा डालने वाले? तुम नाक भी काट लो तो भी मक्खी वहीं उतरेगी।

बिच्छू को जैसे-जैसे वह उठा कर बाहर रखता, बिच्छू वापस पानी में दौड़ता।
एक आदमी किनारे खड़ा था, उसने कहा कि तुम पागल हो गए हो--उसका सारा हाथ नीला पड़ गया है--मरने दो इस बिच्छू को, तुम्हें क्या पड़ी है? और वह बिच्छू तुम्हें काट रहा है।
उस झेन फकीर ने कहा, जब बिच्छू अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं कैसे अपना स्वभाव छोडूं? जब बिच्छू नहीं मानता, काटे चला जाता है, और वापस लौट कर आ जाता है पानी में, तो मैं कैसे मानूं? जैसे बिच्छू का काटना स्वभाव है वैसे साधु का बचाना स्वभाव है। मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, सिर्फ मैं अपने स्वभाव के अनुसार वर्तन कर रहा हूं। बिच्छू अपने स्वभाव के अनुसार वर्तन कर रहा है। देखना यह है कि बिच्छू जीतता है कि साधु!
ज्ञानी को तुम हरा न सकोगे। हरा तो तुम सकते थे जब उसकी कोई सीमा होती, कोई पक्ष होता। वह तो निष्पक्ष है। उसका कोई भाव भी नहीं है। तुम उसकी जेब काट सकते हो, लेकिन तुम उसके भरोसे को न डिगा सकोगे। तुम उसे धोखा दे सकते हो। और ऐसा नहीं है कि धोखा उसे दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि वह तो निर्मल दर्पण की तरह है, तुम जो भी करते हो वह सभी दिखाई पड़ता है। लेकिन धोखे के पार तुम भी उसे दिखाई पड़ते हो। और तुम्हारी महिमा अनंत है। धोखा ना-कुछ है। धोखे का जो कृत्य है, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है महिमावान, उसका ही मूल्य है। उसका भरोसा तुम पर है, तुम्हारे कृत्यों पर नहीं। तुम क्या करते हो, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता तुम्हारे होने में। तुम कैसे हो, कैसा तुम्हारा वर्तन है, आचरण है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता तुम्हारी आंतरिक प्रतिमा में। और ज्ञानी उस प्रतिमा को देख रहा है, जहां परमात्मा का वास है। तो तुम्हारे आचरण से कोई भेद नहीं पड़ता। उसका अपना कोई भाव नहीं है कि तुम क्या करो। वह तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता है। इसे थोड़ा समझो। अगर तुम्हारे पास कोई भी भाव है, धारणा है, तो तुम अपने प्रियजनों को भी कोई स्वतंत्रता नहीं दे सकते। क्योंकि तुम चाहोगे कि वे तुम्हारे भाव के अनुकूल हों। और तुम उनके हित में ही चाहोगे कि वे तुम्हारे भाव के अनुकूल हों। यह ज्ञानी का लक्षण न हुआ। यह अज्ञानी का लक्षण है। अज्ञानी प्रेम के माध्यम से भी कारागृह खड़ा करता है। वह अपने बच्चों
को भी चाहता है वे ऐसे हो जाएं। कोई उसको गलत भी न कह सकेगा। क्योंकि वह बच्चों को अच्छा ही बनाना चाहता है। लेकिन अच्छे बनाने की चेष्टा भी बच्चों के भीतर छिपे परमात्मा का अस्वीकार है। क्योंकि अच्छे बनाने की चेष्टा में भी तुम मालिक हुए जा रहे हो। तुमने बच्चों की उनकी अपनी मालकियत छीन ली।
खलील जिब्रान ने कहा है, तुम बच्चों को प्रेम देना, लेकिन आचरण नहीं; तुम प्रेम देना, लेकिन अपना ज्ञान नहीं। तुम प्रेम देना और तुम्हारे प्रेम के माध्यम से स्वतंत्रता देना; ताकि वे वही हो सकें जो होने को पैदा हुए हैं। तुम उनकी नियति में बाधा मत डालना।
लेकिन बड़ा मुश्किल है कि बाप बेटे की नियति में बाधा न डाले; कि मां बेटे की नियति में बाधा न डाले; कि शिक्षक शिष्य की नियति में बाधा न डाले। वे बाधा डालेंगे, और तुम्हारे हित में ही बाधा डालेंगे।
संत खुला आकाश है। वह तुम्हें बिल्कुल बाधा न डालेगा। वह तुम्हारे लिए मार्ग भी दिखाएगा, तो भी चलने का आग्रह न करेगा। वह खुद ही मार्ग है--खुला हुआ। तुम्हें चलना हो तो चलना; तुम्हें न चलना हो न चलना; तुम्हें लौटना हो लौट जाना। वहां कोई आग्रह न होगा। सत्य का आग्रह भी न होगा। संत निराग्रही होगा।
तीन तरह के लोग हैंः असत्य-आग्रही, सत्याग्रही और अनाग्रही। संत उसमें तीसरी कोटि का हैः अनाग्रही। उसका सत्याग्रह भी नहीं है कि वह अनशन करके बैठ जाए कि अगर तुम मेरे अनुसार न चले तो मैं मर जाऊंगा।
तुम्हारा सत्य दूसरे का सत्य नहीं हो सकता। तुम्हारे लिए जो सत्य है,
वह दूसरे का भी सत्य बन जाए, यह कोशिश ही आग्रह है। पहले तो यही पक्का नहीं है कि तुम्हारा जो सत्य है, वह तुम्हारा भी सत्य है! और यह भी पक्का हो जाए कि तुम्हारा सत्य तुम्हारा सत्य है, तो भी कैसे निर्णय लिया जा सकता है कि यह दूसरे का सत्य भी होगा! क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी नियति है,

अपनी स्वतंत्रता है, अपना यात्रा-पथ है। जन्मों-जन्मों से प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनूठी चाल, अपनी अनूठी यात्रा पर निकला हुआ है।
इन बातों को ख्याल में ले लें; फिर लाओत्से के ये अदभुत वचन समझने की कोशिश करें।
"संत के कोई अपने निर्णीत मत व भाव नहीं होते; वे लोगों के मत व भाव को
ही अपना मानते हैं।"
निर्णीत मत आमतौर से बड़ी बहुमूल्य बात समझी जाती है। हम सोचते हैं कि जिस आदमी के निर्णीत मत हैं, वह बड़ा सुदृढ़ आदमी है। और जिस आदमी का कोई निर्णीत मत नहीं है, वह आदमी संदिग्ध, संशय में पड़ा है।
तो हम तो बड़ा मूल्य देते हैं निर्णय करने वाले लोगों को। संशय में पड़े लोगों को हम अनादर देते हैं। हम कहते हैं, क्या संशय में पड़े हो, निर्णय लो! निर्णीत होकर जीओ। जीवन को कहां ले जा रहे हो? दिशा क्या है? सब पक्का करके चलो।
लेकिन संत न तो संशयी होता है और न उसका कोई निर्णीत मत होता है। संत तो बहता है क्षण-क्षण। और क्षण का जो यथार्थ है, उस यथार्थ और संत की चेतना के बीच जो भी घट जाए, घटने देता है। क्षण के यथार्थ के साथ जीता है। आने वाले क्षण का पता नहीं। निर्णय अभी कैसे किया जा सकता है?
एक हसीद फकीर के जीवन में उल्लेख है कि एक सुबह वह अपने झोपड़े के बाहर खड़ा हुआ और पहला आदमी जो रास्ते पर आया, उसने उसे भीतर बुलाया। और उस आदमी से कहा कि मेरे प्यारे, एक छोटा सा सवाल है, उसका जवाब दे दो, और फिर जाओ। सवाल यह है कि अगर रास्ते पर दस कदम चलने के बाद तुम्हें हजारों स्वर्ण अशर्फियों से भरी हुई एक थैली मिल जाए तो क्या तुम उसके मालिक का पता लगा कर उसे वापस लौटा दोगे? उस आदमी ने कहा, निश्चित ही, तत्क्षण! जैसे ही थैली मुझे मिलेगी मैं आदमी का पता लगा कर उसे वापस लौटा दूंगा। वह फकीर हंसा। उसके शिष्य जो पास बैठे थे, उनसे उसने कहा कि यह आदमी मूर्ख है।
वह आदमी बड़ा बेचैन हुआ; क्योंकि उसने तो सीधी भली बात कही थी। और यह किस प्रकार का फकीर है! अब तक उस आदमी ने भी इस फकीर को फकीर की तरह समझा था और ज्ञानी साधु मानता था। और यह आदमी तो बड़ा गलत निकला। मैं कह रहा हूं कि थैली वापस लौटा दूंगा। यही तो सभी धर्मों का सार है कि दूसरे की चीज मत छीनना। और यह आदमी कह रहा है कि यह आदमी मूर्ख है।
और उस फकीर ने उससे कहा कि तू जा, बात खतम हो गई। तब वह बाहर आकर खड़ा रहा, फिर जब दूसरा आदमी निकला, उसको भीतर ले गया और कहा, एक सवाल है। अगर हजारों स्वर्ण अशर्फियों से भरी हुई थैली दस कदम चलने के बाद तुम्हें राह पर पड़ी मिल जाए तो क्या तुम उसे मालिक को खोज कर लौटा दोगे? उसने कहा, तुमने क्या मुझे मूर्ख समझा? इतना बड़ा मूर्ख समझा? लाखों रुपयों की स्वर्ण अशर्फियां मुझे मिलेंगी और मैं लौटा दूंगा! तुमने मुझे समझा क्या है? एकदम भाग जाऊंगा यह बस्ती भी छोड़ कर कि कहीं वह मालिक पता न लगा ले। फकीर ने अपने शिष्यों से कहा, यह आदमी शैतान है।
अब तो शिष्य भी थोड़ी झंझट में पड़े। क्योंकि पहले आदमी को कहा, मूर्ख! अगर पहला आदमी मूर्ख है तो यह आदमी ज्ञानी है। गणित तो साफ है। और अगर यह आदमी शैतान है तो पहला आदमी संत है। गणित तो साफ है। पहले को कहना मूर्ख और दूसरे को कहना शैतान, संगति नहीं मिलती। लेकिन शिष्य चुप रहे; क्योंकि फकीर तब तक बाहर चला गया था।
वह तीसरे आदमी को पकड़ लाया। और उससे भी यही सवाल किया कि लाखों रुपए के मूल्य की अशर्फियां मिल जाएं दस कदम की दूरी पर, तुम उसके मालिक को वापस लौटा दोगे? उस आदमी ने कहा, कहना मुश्किल है। मन का भरोसा क्या? क्षण का भी पक्का नहीं है। अगर परमात्मा की कृपा रही तो लौटा दूंगा। लेकिन मन बड़ा शैतान है, और बड़ा उत्तेजनाएं देगा मन कि मत लौटाओ! मेरा सौभाग्य और परमात्मा की कृपा रही तो लौटा दूंगा; मेरा दुर्भाग्य और उसकी कृपा न रही तो लेकर भाग जाऊंगा। पर अभी कुछ भी कह नहीं सकता; क्षण आए, तभी पता चले। उस फकीर ने अपने शिष्यों से कहा कि यह आदमी सच्चा संत है।
क्या मतलब है?

संत का पहला लक्षण यह है कि वह क्षण के साथ जीएगा। कल के लिए निर्णय नहीं लिया जा सकता। कल की कौन कहे? कल क्या होगा, कौन जानता है? कल हम होंगे भी या नहीं, यह भी कौन जानता है? और कल की परिस्थिति में क्या मौजू पड़ेगा, इसका निर्णय आज कौन लेगा और कैसे लिया जा सकता है? कल अज्ञात है; अज्ञात के लिए तुम कैसे निर्णय लोगे?
आने दो कल। जीवन कोई नाटक नहीं है कि तुमने आज रिहर्सल कर लिया और कल नाटक में सम्मिलित हो गए। जीवन में कोई भी रिहर्सल नहीं है। इसीलिए तो नाटक में सफल हो जाना आसान, जीवन में सफल होना बहुत मुश्किल है। तैयारी करने का उपाय ही नहीं है। जीवन जब आता है, तभी अनजाना। जब भी जीवन द्वार पर दस्तक देता है, तभी नई तस्वीर। पुराने से पहचान की थी, तब तक वह बदल जाता है। जीवन प्रतिपल नया है। पुराना कभी दुहरता नहीं। हर सूरज नया है। और हेराक्लाइटस ठीक कहता है कि एक ही नदी में तुम दुबारा न उतर सकोगे। इसलिए पहले की तैयारियां काम न आएंगी। जीवन में कोई अभिनय की पूर्व-तैयारी नहीं हो सकती; तुम जीवन के लिए तैयार कभी हो ही नहीं सकते। यही संतत्व का सार है।
तब एक ही उपाय है कि तुम तैयारी छोड़ ही दो। क्योंकि तुम्हारी तैयारी बोझ की तरह सिद्ध होगी। और जीवन सदा नया है, तैयारी सदा पुरानी है। तुम कभी मिल ही न पाओगे। जीवन और तुम्हारा मिलन न हो पाएगा। ऐसे ही तो तुम वंचित हुए हो; ऐसे ही तो तुमने गंवाया है; तैयार हो-होकर तो तुमने खोया है।
बिना तैयारी के, अनप्रिपेयर्ड, यही श्रद्धा है संत की कि वह बिना तैयार हुए क्षण को स्वीकार करेगा। और जो भी उसकी चेतना में उस क्षण प्रतिफलित होगा उसके अनुसार आचरण करेगा। लेकिन आचरण सद्यःस्नात होगा, नया होगा, ताजा होगा। आचरण बासा नहीं होगा।
कल के निर्णय से जो पैदा हुआ है, वह बासा है। तुम बासा भोजन भी नहीं करते, लेकिन बासा जीवन जीते हो। तुम कल की रोटी आज नहीं खाते, लेकिन कल का निर्णय आज जीते हो। तुम्हारा सारा जीवन इसीलिए तो बासा-बासा हो गया है। उससे दुर्गंध उठती है; उससे सुगंध नहीं उठती नए फूलों की। उससे सड़ांध उठती है कूड़े-कर्कट की; लेकिन जीवन की नई प्रभात और नई किरणें वहां दिखाई नहीं पड़तीं। तुम्हारे जीवन पर धूल जम गई है। क्योंकि न मालूम कब के लिए निर्णय तुम अब पूरे कर रहे हो। वह समय जा चुका, वह नदी बह चुकी, जब तुमने निर्णय लिए थे। वे घाट न रहे, वे लोग न रहे, तुम भी वही नहीं हो। और उन निर्णयों को तुम पूरा कर रहे हो! तुम कब तक बासे-बासे जीओगे?
संत ताजा जीता है। ताजा होने का एक ही अर्थ हैः बिना तैयारी के जीना। लेकिन तुम तैयारी क्यों करते हो? तैयारी तुम इसलिए करते हो कि तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है। तैयारी तभी करता है कोई आदमी, जब भरोसा न हो। तुम इंटरव्यू देने जा रहे हो एक दफ्तर में नौकरी का। तुम बिल्कुल तैयार होकर जाते हो कि क्या तुम पूछोगे, क्या मैं जवाब दूंगा। अगर तुमने यह पूछा तो मैं यह जवाब दूंगा। तुम बिल्कुल तैयार होकर जा रहे हो। क्योंकि तुम्हें अपने पर कोई भरोसा नहीं है। तुम तो मौजूद रहोगे, तैयारी क्या कर रहे हो? जब जो भी पूछा जाएगा, तुम्हारी मौजूदगी से निकले, वही उत्तर। लेकिन नहीं, तुम तैयार होकर जा रहे हो। तुम्हारी तैयारी तुम्हें मुश्किल में डाल दे सकती है। लेकिन शायद इंटरव्यू में तुम सफल भी हो जाओ तैयारी से; क्योंकि तुम भी बासे हो और लेने वाले भी बासे हैं। लेकिन जीवन की जो चुनौती है वह ताजे परमात्मा की तरफ से है; वहां बासे उत्तर कभी स्वीकार नहीं किए जाते। तुम कर लो गीता कंठस्थ, तुम कर लो कुरान याद, वेद तुम्हारी जिह्वा पर आ जाएं; लेकिन परमात्मा तुमसे वे प्रश्न नहीं पूछेगा जिनके उत्तर वेद में हैं। वह कभी दुहराता ही नहीं पुराने प्रश्न।
जीवन रोज नया होता जाता है। उस नई परिस्थिति में तुम्हारे पुराने प्रश्न बाधा बनते हैं। तुम परिस्थिति को भी नहीं देख पाते; क्योंकि तुम अपनी धारणा से अंधे होते हो। धारणा के कारण बड़ी भ्रांतियां पैदा होती हैं। एक मनोवैज्ञानिक ने एक छोटा सा प्रयोग किया--धारणाओं से कैसे भ्रांतियां पैदा होती हैं। काशी के विश्वनाथ मंदिर में वह गया और शंकर की प्रतिमा के पास, शिवलिंग के पास, उसने अपना हैट उतार कर रख दिया। दरवाजे पर जाकर उसने एक आदमी, जो अजनबी आदमी अंदर आ रहा था, उसने कहा, रुको, यह शंकर की

प्रतिमा के पास क्या रखा हुआ है तुम बता सकते हो? अब कोई भी नहीं कल्पना कर सकता कि शंकर की प्रतिमा के पास और हैट होगा! उस आदमी ने गौर से देखा और उसने कहा, किसी ने घंटा उतार कर रख दिया है।
शंकर की प्रतिमा के पास घंटा की तो संगति है, हैट की बिल्कुल नहीं। शंकर जी हैट लगाए नहीं कभी। तो तुम सोच भी नहीं सकते, तुम्हारी धारणा प्रवेश नहीं कर पाती।
रात अंधेरे में तुम निकलते हो और तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ने शुरू
हो जाते हैं। ये तुम्हारी धारणाओं के हैं। लकड़ी का खूंट खड़ा है और तुम्हें भूत दिखाई पड़ता है। और तुम उसमें सब हाथ-पैर वगैरह जोड़ लेते हो। धीरे-धीरे आंख की प्रतिमा भी निकल आती है, चेहरा भी दिखाई पड़ने लगता है। तुम अपनी धारणा से खड़ा कर रहे हो।
तुम मरघट से निकल सकते हो रोज, अगर तुम्हें पता न हो कि यह मरघट है। बस
एक दफे पता चल गया कि फिर भूत-प्रेत मिलेंगे। पहले नहीं मिले; पहले तुम वहीं से निकलते थे। क्योंकि धारणा न थी। अब धारणा रूप खड़ा करती है। तुम जो देखते हो, ध्यान रखना, जरूरी नहीं है कि वही हो--जो तुम देख रहे हो, वह हो भी वहां। तुम वही देख लेते हो जो तुम्हारी धारणा में बैठा है। तुम वही सुन लेते हो जो तुम्हारी धारणा में बैठा है।
और जब तुम बहुत तैयार होकर जीवन के पास जाते हो तो तुम्हारे भीतर संध
भी नहीं होती जिससे जीवन प्रवेश कर जाए। तुम्हारी तैयारी सख्त पत्थर की दीवार की तरह खड़ी होती है। जीवन कुछ पूछता है, तुम कुछ और कहते हो। जीवन कुछ मांगता है, तुम कुछ और देते हो। तुम मिल नहीं पाते। इसीलिए तो तुम बेचैन हो। क्या है संताप मनुष्य का? यही कि वह जीवित है और जीवित नहीं; यही कि वह जीवित होते हुए भी मरा-मरा जी रहा है। उसका जीवन एक यथार्थ नहीं है, बल्कि एक स्वप्न है। इस स्वप्न को ही हमने माया कहा है।
संसार तो सत्य है; लेकिन जिस संसार को तुम देख रहे हो, वह सत्य नहीं है। तुम्हारा देखा हुआ संसार तुम्हारी धारणा से बनाया हुआ संसार है, तुम्हारी कल्पना से भरा हुआ संसार है। तुम अपने जीवन में खोजने की कोशिश करना; कई बार तुम अपने ही कारण, अपनी ही धारणा के कारण कुछ का कुछ समझ लेते हो।
एक हसीद फकीर हुआ, झुसिया। वह एक गांव से गुजर रहा था। उसके दो शिष्य साथ थे। अचानक एक औरत दौड़ कर आई और लकड़ी से उसने झुसिया पर प्रहार किया। झुसिया गिर पड़ा। और वह लकड़ी और उठा कर मारने ही वाली थी कि शिष्यों ने कहा, यह क्या करती हो? तो वह स्त्री भी चौंकी। उसने गौर से देखा, सिर से लहू बह रहा है। उस स्त्री का पति बीस साल पहले भाग गया था। यह झुसिया उसके पति जैसा लगता था। देख कर उसने होश खो दिया, क्रोध आ गया। झुसिया उठ कर खड़ा हुआ, लहू पोंछा। वह स्त्री माफी मांगने लगी, पैर पर सिर रखने लगी। उसने कहा कि रुक, तूने मुझ पर चोट ही नहीं की, तूने अपने पति पर चोट की। कभी मिल जाए तो माफी मांग लेना। मुझसे माफी मत मांग! मैं माफी देने वाला कौन? तूने मुझे चोट ही नहीं की, तूने अपने पति को चोट की। कभी मिल जाए, माफी मांग लेना। मुझसे तेरा कुछ लेना-देना ही नहीं है।
जिंदगी में कितनी बार तुम किसी और पर चोट करते हो, जो चोट किसी और पर करना चाही थी। पत्नी पर नाराज थे, बेटे पर क्रोध निकाल लेते हो। दफ्तर में गुस्सा हुए थे, पत्नी पर टूट पड़ते हो। और तुम्हें कभी ख्याल भी नहीं होता, तुम क्या कर रहे हो? क्योंकि बासे ढंग से जीना तुम्हारी आदत हो गई है। तुम सदा भरे-भरे हो। और वह भरा हुआ पन तुम्हारा न तुम्हें पहचानने देता, न देखने देता कि जीवन की मांग क्या है। और जीवन प्रतिपल नया मांगता है। क्योंकि नए मांग से ही वह तुम्हें नया करता है। जीवन तुम्हें युवा रखता है। तैयारी तुम्हें बूढ़ा कर देती है।
तैयारी से बचना, अगर संतत्व की तरफ जाना हो। संतत्व का कोई रिहर्सल नहीं है। और एक बात दुबारा नहीं दुहरती। इसलिए तैयारी का कोई उपाय नहीं है। हर घड़ी बस एक बार घटती है और खो जाती है।
तुम सभी बुद्धिमान हो! जब घड़ी निकल जाती है तब तुम सोचते हो कि क्या करना था। तुम्हारी बुद्धि जरा देर से आती है। किसी आदमी ने कुछ कहा, तुमने कुछ उत्तर दिया; घड़ी भर बाद तुम्हें याद आता है कि अगर यह उत्तर दिया होता

तो ठीक होता। बुद्धिमान का लक्षण ही यही है कि उसे उत्तर उस क्षण में आए जब उत्तर की जरूरत है। अन्यथा तो बुद्धू भी बड़े ऊंचे उत्तर खोज लेते हैं। प्रतिभा का एक ही लक्षण है कि वह पछताती नहीं। अगर तुम पछताते हो तो प्रतिभा नहीं है। और पछतावा क्यों पैदा होता है। और प्रतिभा क्यों नहीं जन्मती?
प्रतिभा तो हर व्यक्ति लेकर पैदा होता है, लेकिन तैयारी की धूल जम जाती है। तुम तैयारी के भीतर से देखते रहते हो। वहीं तुम चूकते हो।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में सम्राट का आगमन हुआ। वह गांव
का सबसे बड़ा बूढ़ा था। तो गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हीं हमारे प्रतिनिधि हो। और गांव के लोग डरे भी थे, गैर पढ़े-लिखे थे। मुल्ला अकेला लिख-पढ़ सकता था। तो तुम्हीं सम्हालो!
सम्राट के पहले वजीर आए। क्योंकि गांव गंवारों का था और पता नहीं वे कैसा स्वागत करें, तो उन्होंने सब तैयारी करवा दी। मुल्ला को कहा कि देखो, कुछ अनर्गल मत बोल देना, क्योंकि यह सम्राट का मामला है। छोटी सी बात में गर्दन चली जाए। और तुम जरा कुछ बक्कार हो, कुछ भी बोलते रहते हो। यहां जरा ख्याल रख कर बोलना। एक-एक शब्द की कीमत चुकानी पड़ेगी। तो बेहतर यह है कि तुम तैयारी कर लो। और हम सम्राट को कह रखेंगे कि वह तुमसे वही पूछे प्रश्न जो तुमने तैयार किए हैं। तो पहले वह तुमसे पूछेगा, तुम्हारी उम्र कितनी? तो तुम बता देना कि सत्तर साल। फिर वह पूछेगा कि तुम इस गांव में कितने समय से रहते? तो तुम तीस साल से रहते तो कह देना तीस साल। ऐसे पांच-सात प्रश्न तैयार करवा दिए और कहा कि ठीक याद रखना! जरा भी भूल-चूक न हो।
मुल्ला ने कंठस्थ कर लिए, मुल्ला बिल्कुल तैयार था।
सम्राट आया। सम्राट ने पूछा कि इस गांव में कब से रहते हो? मुल्ला मुश्किल में पड़ा; क्योंकि पहले सम्राट को पूछना चाहिए था, तुम्हारी उम्र कितनी है? और वह पूछ रहा है, इस गांव में कितने दिन से रहते हो? तो मुल्ला ने कहा, सम्राट गलती करे तो करे, अपन क्यों गलती करें! उसने कहा, सत्तर साल। सम्राट जरा चौंका। तो उसने कहा, और तुम्हारी उम्र कितनी है? मुल्ला ने कहा, तीस साल। सम्राट ने कहा, तुम होश में हो या पागल! मुल्ला ने कहा, हद्द हो गई। उलटे सवाल तुम पूछ रहे हो; सीधे जवाब हम दे रहे हैं। और होश में हम हैं कि तुम? और पागल तुम कि हम? हम बिल्कुल ठीक वही जवाब दे रहे हैं, जो तैयार किए गए हैं।
एक बार एक आदमी ने विंसटन चर्चिल को बड़ी मुश्किल में डाल दिया। वह मुल्ला नसरुद्दीन जैसा ही आदमी रहा होगा। राजनीतिज्ञ अक्सर यह तरकीब करते हैं कि भीड़ में अपने-अपने आदमी छिपा रखते हैं, जो वक्त पर ताली बजाते हैं, इशारे पर खड़े होकर प्रश्न पूछते हैं--वही प्रश्न जो राजनीतिज्ञ जवाब दे सकता है। और भीड़ पर प्रभाव पड़ता है इसका कि देखो, सब जवाब साफ-साफ दे दिए। तो विंसटन चर्चिल लड़ रहा था एक चुनाव। एक आदमी खड़ा हुआ, उसने बड़ा कठिन सवाल पूछा कि विंसटन चर्चिल ने भी पसीना पोंछा। मगर जवाब ऐसा दिया कि वाह-वाह हो गई। तब एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ। उसने और भी कठिन सवाल पूछा कि विंसटन के पैर कंप जाएं। भीड़ सांस रोक कर सुनने लगी। विंसटन ने उसे भी ऐसा जवाब दिया कि मुंह की खाकर रह गया। तब तीसरा आदमी खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने कोट के खीसे में हाथ डाला, फिर पैंट के खीसे में हाथ डाला, फिर इधर देखा, उधर देखा, और कहा कि महानुभाव, आपने जो प्रश्न पूछने को कहा था, वह चिट कहीं खो गई।
कहते हैं, विंसटन चर्चिल ऐसी मात कभी नहीं खाया। अब उसको कुछ न सूझा कि
अब क्या कहे। वे अपने ही आदमी थे, तैयार थे।
नाटक तो तैयारी से चल सकता है, जिंदगी नहीं चल सकती। नेता तैयारी से चल सकते हैं, संत नहीं चल सकता। क्योंकि नेता उधार हैं। तुम्हारे नेता हैं, तुम जैसे ही हैं; तुमसे भी गए-बीते हैं, तभी तुम्हारे नेता हैं। चोरों का नेता होना हो तो बड़ा चोर होना जरूरी है। बेईमानों का नेता होना हो तो बड़ा बेईमान होना जरूरी है। और तुम बड़े हैरान हो, तुम हमेशा कहते हो कि नेता बेईमान क्यों हैं? तुम्हारे नेता नहीं हो सकते, अगर बेईमान न हों। अगर चोर न हों तो तुम्हारे नेता नहीं हो सकते। और फिर तुम शिकायत करते हो कि चोर

क्यों हैं? झूठे क्यों हैं? झूठे न हों तो तुम्हारा नेता होना कौन चाहेगा? राजनीति नाटक है झूठ का, धर्म नहीं।
लाओत्से कहता है, "संत के अपने कोई निर्णीत मत और भाव नहीं होते।"
वह खाली जीता है एक शून्य की भांति। न कोई भाव है, न कोई निर्णय है। क्षण जहां खड़ा कर देता है, जैसा खड़ा कर देता है, जो उत्तर निकाल लेता है, वही उत्तर है, वही उसका प्रति-उत्तर है। वही उसका प्रतिसंवेदन है। पूर्व कोई तैयारी नहीं है। इसलिए संत कभी पछताता नहीं है। क्योंकि कोई उत्तर उसने तय ही न किया था, जिसके आधार पर वह सोच सके कि यह गलत हुआ कि सही हुआ। वह कभी नहीं पछताता। क्योंकि जब क्षण निकल गया तब उस क्षण के संबंध में सोचता ही नहीं। क्योंकि तब दूसरा क्षण आ गया; फुरसत किसे है?
तुम्हें पीछे के संबंध में सोचने की फुरसत है, तुम्हें आगे के संबंध में सोचने की फुरसत है, संत को नहीं। संत के लिए वर्तमान इतना प्रगाढ़ है, संत के लिए वर्तमान इतना गहरा है कि समय कहां है कि पीछे लौट कर देखे? समय कहां है कि आगे लौट कर देखे?
यहूदी फकीर बालसेम से किसी ने पूछा कि मैं वर्षों से साधना कर रहा हूं
और मैंने अपनी जवानी में सुना था कि अगर तुम सम्मान का तिरस्कार करो और अगर तुम लौट-लौट कर फिक्र न करो कि सम्मान मिल रहा है कि नहीं, तो तुम्हें जरूर सम्मान मिलेगा, और अतिशय से मिलेगा। आदर मत चाहो और आदर मिलेगा। पूजा मत चाहो और पूजा मिलेगी। लेकिन अब मुझे चालीस साल हो गए तपश्चर्या करते-करते, अभी तक वह घटना घटी नहीं। अब तो मुझे उस कहावत पर भरोसा उठने लगा है। बालसेम ने क्या कहा? बालसेम ने कहा, कहावत तो वैसी की वैसी सही है। तुम उसे पूरा नहीं कर पाए; तुम पीछे लौट-लौट कर देख रहे हो कि सम्मान आ रहा कि नहीं? तुम सम्मान पाने के लिए ही सम्मान का तिरस्कार कर रहे हो। यह तिरस्कार झूठा है। और यह तैयारी--यह तैयारी ही--बाधा बन रही है। तुम फिक्र छोड़ो। आता है या नहीं आता, क्या लेना-देना है? तब आता है। लेकिन अगर तुम इसीलिए छोड़ रहे हो कि आए, तो तुम छोड़ ही नहीं रहे हो। और तुम लौट-लौट कर पीछे देखते रहोगे कि अभी तक, अभी तक नहीं आया, अभी तक सम्मान नहीं मिला, अभी तक दुनिया में पूजा शुरू नहीं हुई और मैंने पूजा की फिक्र छोड़ रखी है तीस वर्षों से, चालीस वर्षों से। यह देखना ही बताता है कि फिक्र छोड़ी नहीं। तुम पीछे लौट कर देखते हो; क्योंकि पछतावा है हाथ में। तुम आगे देखते हो; क्योंकि जो भूल पीछे हो गई, आगे न हो। इसलिए आगे का इंतजाम करते हो। और इंतजाम के कारण ही भूल पीछे हो गई। अतीत तुमने गंवाया, क्योंकि तुम तैयार थे। भविष्य भी तुम गंवाने की तैयारी कर रहे हो, क्योंकि तुम फिर तैयार हो रहे हो।
संत के लिए न तो कोई अतीत है, न कोई भविष्य है। संत के लिए यही क्षण बस, यही क्षण पर्याप्त। यही क्षण एकमात्र क्षण है। यही क्षण पूरा समय है। इस क्षण के न आगे कुछ है, न पीछे कुछ है। और यह इतना प्रगाढ़ है कि समय किसको है? और यह इतना आनंदपूर्ण है कि कौन लौट कर पीछे देखे? और यह इतना गहन है कि कौन आगे जाए? और यह इतना रसपूर्ण है कि जैसे भंवरा बंद हो जाता है कमल में, ऐसा संत क्षण में बंद हो जाता है, क्षण में डूब जाता है। क्षण के पार कुछ भी नहीं बचता। क्षण ही शाश्वतता है।
संत के न कोई अपने निर्णय हैं, न कोई भाव। वह तो दर्पण की भांति है। वह
तो वही प्रकट कर देता है जो लोगों के भाव हैं और जो लोगों के निर्णय हैं। जब तुम संत के पास जाते हो तो वह तुम्हें प्रकट कर देता है। तुम यह मत सोचना कि वह अपनी धारणाएं तुमसे कह रहा है; तुम यह मत सोचना कि वह अपने भाव तुम्हें दे रहा है। जब भी तुम संत के पास जाओ, याद रखना कि संत दर्पण है, वह तुम्हारे चेहरे को ही तुम्हें दिखा देता है। हां, अगर पंडित के पास तुम जाओगे तो वह तुम्हें अपनी धारणाएं देगा, अपने विचार देगा, ज्ञान देगा। संत के पास तुम जाओगे तो वह तुम्हें तुम्हारे सामने प्रकट कर देगा। वह माध्यम हो जाएगा तुम्हें आमने-सामने करने का, अपने ही आमने-सामने होने का मौका देगा।
मेरे पास लोग आते हैं। कोई आदमी आकर कहता है कि मैं संसार नहीं छोड़ सकता। उसे मैं देखता हूं तो मैं उससे कहता हूं, छोड़ने की कोई जरूरत ही नहीं।

शायद यह आदमी लोगों से जाकर कहेगा कि मैं संसार छोड़ने के खिलाफ हूं। मैं केवल उसकी ही तस्वीर बता रहा था और मैं कोशिश कर रहा था कि उसकी ही तस्वीर वह पहचान ले। क्योंकि उसी पहचान से वह पार जाएगा, आगे बढ़ेगा, विकास होगा। अपने पार जाना ही तो परमात्मा से मिलना है। तो उससे मैं यह कह रहा था, तू व्यर्थ परेशान मत हो; ठीक है, संसार छोड़ने की क्या जरूरत है! संसार में ही रह, ध्यान वहीं साधा जा सकता है।
फिर कोई मेरे पास आता है, वह कहता है, मैं संसार छोड़ चुका, मैं संन्यासी हूं, और आप क्या लोगों को समझाते हैं कि संसार में रहने से ही ज्ञान मिलेगा? उससे मैं कहता हूं, कोई जरूरत नहीं संसार में होने की। परम सौभाग्य है तेरा कि संसार छूट गया। अब तू लौट-लौट कर मत देख; अब जो छूट ही चुका छूट ही चुका। अब परम आनंदित हो और इस क्षण का उपयोग कर।
वह लोगों से जाकर कहेगा कि मैं साथ देता हूं, सलाह देता हूं, छोड़ दो सब! मैंने कुछ भी नहीं किया; मैंने कोई सलाह नहीं दी किसी को। मैंने केवल उसको ही दर्पण बताया।
और तुम जहां हो वहीं से तो पार होना है। तुम जहां हो वहीं से तो यात्रा करनी है। संसारी संन्यासी नहीं हो सकता आज। जो हो ही नहीं सकता, उसकी बात क्या करनी? संन्यासी जो हो ही चुका है, अब गृहस्थ होने का और उपद्रव उसके सिर पर क्यों डालना? मेरी कोई धारणा नहीं है। तुम जहां हो, वहीं से तुम्हें कैसे पार जाने का मार्ग मिल जाए। वह भी तुम्हारे साथ जबरदस्ती करूं कि तुम्हें उस मार्ग पर जाना ही चाहिए तो हिंसा हो जाएगी। वह भी तुम्हारी मर्जी है। मार्ग खोल देना, मार्ग साफ कर देना। फिर तुम्हारी मौज है! तुम चलो तो ठीक, न चलो तो ठीक!
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आप अपने संन्यासियों को अनुशासन क्यों नहीं देते कि इतने बजे उठो, इतने बजे सोओ, यह खाओ, यह करो, यह मत करो! मैं कौन हूं किसी को अनुशासन देने वाला? उनके जीवन में ध्यान की ज्योति
आ जाए, वही उनका अनुशासन बनेगी। उस ध्यान की ज्योति से ही वे चलेंगे; जो उन्हें ठीक होगा, वह करेंगे। और जो एक के लिए ठीक है, वह दूसरे के लिए ठीक नहीं है। और जो एक के लिए मार्ग है, वही दूसरे के लिए कुमार्ग हो जाता है। जो एक के लिए औषधि है, वही दूसरे के लिए जहर हो जाता है। जो एक के लिए पथ्य है, वही दूसरे के लिए मौत हो सकती है। इसलिए मैं कौन हूं अनुशासन देने वाला? और जो भी अनुशासन ऊपर से दिए जाते हैं, वे कारागृह बन जाते हैं। अनुशासन आना चाहिए तुम्हारे भीतर से, तुम्हारे बोध से, तुम्हारी समझ से, तुम्हारी प्रज्ञा से। तो मैं तुम्हें प्रज्ञा की तरफ इशारा दे सकता हूं, लेकिन अनुशासन नहीं।
संत एक दर्पण है। और जब तुम संत के पास जाओ तो बहुत सम्हल कर जाना। क्योंकि वह तुम्हीं को बताएगा, और तुम समझोगे कि यह उसकी धारणा है। वह तुम्हीं को प्रकट कर देगा। वह तुम्हीं को तुम्हारे सामने रख देगा कि यह रहे तुम! सुलझा लो, उलझा लो; जो तुम्हें करना हो। लेकिन वह तुम्हें खोल कर रख देगा। अगर तुम समझदार हो--थोड़े भी समझदार हो--तो तुम उस सुलझाव से बड़े कीमती सूत्र पा लोगे; तुम्हारा पूरा पथ खुल जाएगा। अगर तुम बिल्कुल ही बुद्धिहीन हो तो तुम संत के पास जाकर और भी उपद्रव होकर लौटोगे। क्योंकि जो उसने बताया था दर्पण की तरह, उसे तुम आदेश समझोगे।
जैन शास्त्रों में एक बड़ी अदभुत बात है। वे कहते हैं, तीर्थंकर उपदेश देते हैं, आदेश नहीं। उपदेश और आदेश का यही फर्क है। उपदेश का मतलब यह हैः कह दिया, मानना हो मानो; न मानना हो न मानो; बता दिया, चलना हो चलो; न चलना हो न चलो। आदेश का मतलब हैः चलना पड़ेगा। पूछा ही क्यों था अगर नहीं चलना था? आदेश का अर्थ हैः लो कसम, व्रत लो! उपदेश का अर्थ हैः जो मेरे भीतर झलका तुम्हें देख कर, वह कह दिया; इसको तुम जीवन का बंधन मत बना लेना। इस पर चल सको, चलना; न चल सको, फिक्र मत करना, चिंता मत बना लेना। यह तुम्हारे ऊपर बोझ न हो जाए। सब आदेश बोझ हो जाते हैं; क्योंकि आदेश पत्थर की तरह हैं। उपदेश फूलों की तरह हैं, वे बोझ नहीं होते।
नानक एक गांव में आकर ठहरे। तो गांव बड़े फकीरों का गांव था, बड़े संत थे वहां; सूफियों की बस्ती थी। तो सूफियों का जो प्रधान था उसने एक कटोरे में

दूध भर कर भेजा। कटोरा पूरा भरा था। नानक बैठे थे गांव के बाहर एक कुएं के पाट पर। मरदाना और बाला गीत गा रहे थे। नानक सुबह के ध्यान में थे। कटोरा भर कर दूध आया तो बाला और मरदाना ने समझा कि फकीर ने स्वागत के लिए दूध भेजा है--सुबह के नाश्ते के लिए।
लेकिन नानक ने पास की झाड़ी से एक फूल तोड़ा, दूध के कटोरे में रख दिया। दूध तो एक बूंद भी नहीं समा सकता था उस कटोरे में, वह पूरा भरा था; लेकिन फूल ऊपर तिर गया। छोटा सा फूल झाड़ी का, जंगली झाड़ी का फूल, ऊपर तिर गया। कहा, कटोरा वापस ले जाओ। मरदाना और बाला ने कहा, यह आपने क्या किया? यह तो नाश्ते के लिए दूध आया था। और हम कुछ समझे नहीं। उन्होंने कहा, रुको, सांझ तक समझोगे।
क्योंकि सांझ को वह फकीर नानक के चरणों में आ गया। उसने चरण छुए और कहा
कि स्वागत है आपका! तब मरदाना और बाला, नानक के शिष्य कहने लगे, हमें अब अर्थ खोल कर कहें! तो नानक ने कहा, इस फकीर ने भेजा था दूध का कटोरा पूरा भर कर कि अब यहां और फकीरों की जरूरत नहीं है, बस्ती पूरी भरी है। यहां वैसे ही काफी गुरु हैं; और गुरु की कोई जरूरत नहीं है। शिष्यों की तलाश है, गुरु तो ज्यादा हैं। और अब आप और आ गए, इससे और उपद्रव होगा, कुछ सार नहीं होने वाला। आप कहीं और जाएं। तो मैंने फूल रख कर उस पर भेज दिया कि मैं तो एक फूल की भांति हूं, कोई जगह न भरूंगा, तुम्हारी कटोरी पर तिर जाऊंगा।
आदेश पत्थर की भांति है; उपदेश फूल की भांति है। उपदेश जब तुम्हें कोई संत देता है तो वह तुम्हें भरता नहीं, तुम्हारे ऊपर फूल की तरह तिर जाता है। उसकी सुगंध का अनुसरण तुम कर सको तो तुम्हारा जीवन भी वैसा फूल जैसा हो जाएगा। न कर सको तो संत तुम्हारे ऊपर बोझ नहीं है। आदेश बोझ है।
आदेश! मिलिटरी में देना तो ठीक है आदेश; क्योंकि वहां अंधों की कतार खड़ी करनी है, वहां बुद्धिहीनों की जमात बनानी है। इसलिए जनरल आदेश दे, वह तो समझ में आता है; संत आदेश दे, वह बिल्कुल समझ में नहीं आता। संत कोई सैनिक खड़े नहीं कर रहा है। सैनिक और संत बिल्कुल विपरीत हैं। सैनिक को आदेश देना पड़ता है। और अगर तुम्हें भी संतत्व की तरफ ले जाना हो, उपदेश काफी है।
वे लोगों के मत व भाव को सिर्फ झलका देते हैं।
कहता है लाओत्से, "सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी शुभ करार देता हूं; सदगुण की यही शोभा है।"
शैतान कौन है? शैतान वह है जो अशुभ को तो शुभ कहता है, बुरे को ठीक कहता है, रात को दिन कहता है, शुभ को अशुभ कहता है, दिन को रात बताता है, फूल को कांटा समझाता है। वह शैतान है।
साधारणजन कौन है? साधारणजन जो शैतान और संत के बीच में है। वह शुभ को शुभ कहता है, अशुभ को अशुभ कहता है, दिन को दिन, रात को रात।
संत कौन है? संत शुभ को तो शुभ कहता ही है, अशुभ को भी शुभ कहता है। दिन
को तो दिन कहता ही है, रात को भी दिन कहता है। फूल को तो फूल कहता ही है, कांटे को भी फूल कहता है। क्यों? क्योंकि संतत्व की घटना जैसे ही घटी, अशुभ दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। कहना नहीं पड़ता, दिखता ही नहीं। जिसने फूल को देख लिया, उसे कांटा दिखेगा? इस गणित को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और जिसने कांटे को देख लिया और कांटे में चुभ गया, उसे फूल दिखाई पड़ेगा?
कभी तुमने देखा है कि गुलाब की झाड़ी में गए और कांटा चुभ गया और खून निकलने लगा, दर्द होने लगा; फिर फूल दिखाई पड़ेगा? फिर फूल दिखाई ही नहीं पड़ता। फिर तुम क्रोध से भरे आते हो। और अगर तुम्हारी जिंदगी भर ऐसे ही कांटों को चुनने में बीत गई हो तो तुम कहने लगोगे कि फूल सब झूठे हैं, दूर के सपने हैं, दूर के ढोल सुहावने हैं; पास जाओ, कांटे मिलते हैं; फूल सब दूर के दिखाई पड़ते हैं, हैं नहीं; मृग-मरीचिका है। और जिसने कांटे ही कांटे को जाना, धीरे-धीरे फूल झूठा हो जाता है, धूमिल हो जाता है। भरोसा ही नहीं आता कि कांटों भरी दुनिया में फूल हो कैसे सकता है?
यही तुम्हारे साथ हुआ है। तुमने दुर्जन गिने हैं, बुरे को जाना है, अशुभ को पहचाना है, चोर, बेईमान, लुटेरे, सबको तुम जानते हो, उनसे तुम्हारा गहरा परिचय है; इसलिए तुम्हें भरोसा ही नहीं आता कि संत हो भी सकता है। संत को भी तुम देखते हो तो वैसे ही देखते हो कि होगा कोई चोर, बस देर-अबेर की बात

है, पता चल जाएगा। दूसरे चोर पकड़ गए, यह अभी तक पकड़ा नहीं गया, बस इतना ही फर्क है। और ज्यादा फर्क हो नहीं सकता। संत के पास भी जाते हो तो तुम अपनी जेब पकड़े रखते हो कि पता नहीं काट ले। सावधान रहते हो। क्योंकि कितना धोखा खा चुके हो, अब भरोसा कैसे हो? तुमने इतनी अश्रद्धा जानी है जीवन में कि श्रद्धा का फूल अब विश्वास योग्य नहीं रहा। इतना धोखा, इतनी प्रवंचना, कि भरोसा कैसे करें!
इससे ठीक उलटी घटना संत को घटती है। उसने ऐसा फूल जाना है जीवन में, ऐसी सुगंध, कि कैसे भरोसा करे कि कहीं कांटा भी हो सकता है! और अगर होगा तो फूल की रक्षा के लिए ही होगा। हैं भी कांटे गुलाब में फूल की रक्षा के लिए ही। वे फूल को बचाते हैं, वे फूल के प्रहरी हैं, पहरा दे रहे हैं। वे फूल के दुश्मन नहीं हैं। वे किसी को चुभने के लिए नहीं हैं वहां, कोई अगर फूल को तोड़े तो रक्षा के लिए हैं। फूल के मित्र हैं, संगी-साथी हैं। फूल का परिवार हैं। आखिर कांटा भी उसी रस से बनता है, जिससे फूल बनता है। दोनों के भीतर एक ही रसधार बहती है। वे अलग-अलग हो भी नहीं सकते। जिसने ठीक से फूल को जाना, उसको कांटे में से भी कांटापन चला जाता है। और जिसने एक भी संत जान लिया, यह सारा संसार संतत्व से भर जाता है। क्योंकि वह श्रद्धा इतनी अपरंपार है, उसकी महिमा इतनी अनंत है, कि फिर कौन भरोसा करेगा कि कोई चोर हो सकता है! जहां ऐसे संतत्व का फूल खिलता है पृथ्वी पर, आकाश में, वहां कैसे कोई चोर हो सकता है?
तब तुम्हारा गणित तुमसे कहेगा कि है तो यह भी संत, अभी तक पहचाना नहीं गया। है तो यह भी संत, भला इसके कृत्य विपरीत जाते हों। भला यह इस तरह के ढंग कर रहा हो कि संत नहीं है, है तो संत। भीतर छिपा हुआ संतत्व तुम्हें दिखाई ही पड़ता रहेगा। तब तुम्हें दो तरह के संत होंगेः एक अंगारे की तरह प्रकट, दूसरे राख में दबे हुए। अंगारा चाहे प्रकट हो, चाहे राख में, स्वभाव तो एक ही है। तो कुछ संत जो अंगारे की तरह जाज्वल्यमान हैं, और कुछ संत जिन पर राख जम गई है कृत्यों की। कर्म का ही भेद है, स्वभाव का कोई भेद नहीं है।
कहते हैं लाओत्से, "सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी शुभ करार देता हूं; सदगुण की यही शोभा है।"
और जब तक तुम दोनों को शुभ न कह सको, तब तक जानना, सदगुण अवतरित नहीं हुआ। तब तक तुमने सदगुण नहीं जाना।
एक फकीर को अस्पताल में भर्ती किया गया। डाक्टर बड़ा हैरान था। वह उसकी बांह पर मलहम-पट्टी कर रहा था और मन में सोच रहा था। आखिर वह न सोच पाया तो उसने पूछा कि मैं जरा चकित हूं! क्योंकि यह जो घाव है, घोड़े का काटा हुआ नहीं हो सकता; क्योंकि छोटा है घाव। यह कुत्ते का काटा भी नहीं हो सकता, क्योंकि यह बड़ा है। यह किस तरह के जानवर का घाव है, मैं समझ ही नहीं पा रहा। उस फकीर ने हंस कर कहा, यह किसी तरह के जानवर का घाव नहीं है; एक सज्जन पुरुष ने काटा है।
लेकिन उसने कहा, एक सज्जन पुरुष ने। जिसने काटा है, वह भी सज्जन पुरुष है। कृत्य का बहुत मूल्य नहीं है। भीतर जो छिपा है! राख का क्या मूल्य है? भीतर जो अंगारा छिपा है।
"ईमानदार का मैं भरोसा करता हूं, और झूठे का भी भरोसा करता हूं; सदगुण
की यही श्रद्धा है।"
और तब तक तुम अपने को श्रद्धालु मत कहना, जब तक तुम उन्हीं पर श्रद्धा
कर सको जो शुभ हैं। क्योंकि उस श्रद्धा में क्या जान? उस श्रद्धा का मूल्य क्या? अगर मैं अच्छा हूं और इसलिए तुम श्रद्धा करते हो तो तुम्हारी श्रद्धा की क्या कीमत? अगर तुम संत पर श्रद्धा कर लेते हो तो इसमें संत का गुण होगा, तुम्हारी श्रद्धा का क्या गुण है?
लेकिन जिस दिन तुम असंत पर श्रद्धा कर सकोगे, उस दिन तुम्हारी श्रद्धा
का गुण प्रकट हुआ, उस दिन अब संतत्व-असंतत्व गौण हो गए, अब तुम्हारे हृदय का भाव प्रधान है। और वही श्रद्धा तुम्हारी नाव बनेगी। वही श्रद्धा जो कोई अपवाद नहीं जानती, जो संत पर तो करती ही है, असंत पर भी करती है, जो बेशर्त है। जो यह नहीं कहती कि तुम ऐसा करोगे तो मैं श्रद्धा करूंगा, जो कहती है तुम कुछ भी करो, श्रद्धा मेरा स्वभाव है। तुम चोरी करो तो श्रद्धा, तुम दान

दो तो श्रद्धा, तुम कुछ भी करो, तुम्हारे करने से मेरी श्रद्धा डगमगाएगी नहीं। तुम्हारा करना और मेरी श्रद्धा का होना अलग-अलग बातें हैं। मेरी श्रद्धा मेरे भीतर का स्वास्थ्य है। उससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं। जिस दिन तुम चोर पर भी श्रद्धा कर सकोगे--उस चोर पर जो बहुत बार तुम्हें धोखा दे चुका, बहुत बार काट चुका जो बिच्छू, फिर भी तुम श्रद्धा करते रहोगे-- वैसी श्रद्धा ही नाव बनती है। बेशर्त श्रद्धा नाव बनती है।
संतों पर तो श्रद्धा नपुंसक भी कर लेते हैं। जिनके भीतर कोई श्रद्धा नहीं है वे भी कर लेते हैं, क्योंकि करनी पड़ती है, मजबूरी है। लेकिन जिस दिन तुम बुरे पर भी श्रद्धा करते हो, उस दिन तुम्हारे भीतर श्रद्धा का पहली दफा फूल खिलता है। और अब इस फूल को कोई तूफान न मिटा सकेगा। क्योंकि अब तूफान भी संगी-साथी है। तुम उस पर भी श्रद्धा करते हो। अब तुम्हारे विपरीत कोई भी न रहा। अब यह जगत शत्रुओं से खाली हो गया। क्योंकि शत्रु पर भी अब तुम्हारी श्रद्धा है। अब तुमने श्रद्धा का एक आकाश अपने चारों तरफ निर्मित कर लिया, जिसकी कोई सीमा नहीं।
ऐसी श्रद्धा ही ले जाएगी परमात्मा तक। इससे कम में काम न कभी चला है, और
न चल सकता है।
"संत संसार में शांतिपूर्वक, लयबद्धता के साथ जीते हैं। संसार के लोगों के बीच--ऐसे संतों के माध्यम से--हृदयों का सम्मिलन होता है। दि पीपुल ऑफ दि वर्ल्ड आर ब्रॉट इनटु ए कम्युनिटी ऑफ हार्ट।"
सारी दुनिया एक हृदय का सम्मिलन बन जाती है--ऐसे संत के माध्यम से, जो अपनी भीतरी शांति और लयबद्धता में जीता है।
जब तुम्हारे भीतर श्रद्धा रही, अश्रद्धा न रही, तो लयबद्धता आ गई। जब तुम्हारे भीतर प्रेम ही रहा, घृणा न रही, क्योंकि घृणा करने योग्य कोई न रहा; जब तुम्हारे भीतर भरोसा ही रहा, संदेह न रहा; क्योंकि अब संदेह करने योग्य कोई नहीं, तुमने बुरे पर भी भरोसा कर लिया, अब संदेह की तुमने जड़ें काट दीं, तो तुम्हारे भीतर एक परम लयबद्धता और शांति का जन्म होता है। इस महासंगीत का नाम ही संतत्व है। और जब भी किसी एक व्यक्ति के भीतर ऐसी घटना घटती है, वह व्यक्ति इस जगत का हृदय हो जाता है। उस व्यक्ति के आर-पार हजारों हृदय डोलते हैं, गुजरते हैं उस हृदय से, और उन हजारों हृदयों की एक कम्युनिटी, एक परिवार निर्मित हो जाता है।
बुद्ध के पास ऐसा परिवार बना, लाओत्से के पास ऐसा परिवार बना, जीसस के पास ऐसा परिवार बना। वही परिवार जब भ्रष्ट होता है तो संप्रदाय बनता है। परिवार तो तुम्हारी श्रद्धा से बनता है; संप्रदाय तुम्हारे जन्म से। संप्रदाय तुम खून से लेकर आते हो; परिवार तुम्हें अपना खून देकर बनाना पड़ता है। परिवार के लिए तुम्हें बलिदान होना पड़ता है।
जब तुम किसी संत पर ऐसा भरोसा ले आओगे, ऐसा भरोसा जो असंत को भी अपने बाहर नहीं छोड़ता है, निरपवाद, तभी तुम संत के हृदय से गुजरोगे। अन्यथा तुम बाहर-बाहर भटक सकते हो, उसके शरीर को छू सकते हो, लेकिन उसकी अंतरात्मा से वंचित रह जाओगे।
और जब तुम उसके अंतरात्मा से गुजरते हो तो संत सदगुरु हो जाता है। उसके आस-पास प्रेम का एक परिवार बनता है। वही परिवार इस जगत में श्रेष्ठतम घटना है। उससे ऊंची कोई घटना इस पृथ्वी पर नहीं घटती।
और जो उस घटना से गुजर गया, वह दुबारा इस पृथ्वी पर वापस नहीं लौटता है।
जो एक बार संत के हृदय में बस गया, उसके लिए बस अब एक हृदय और बसने को रहा, वह परमात्मा का है। संत के द्वार से वह परमात्मा में विलीन हो जाता है।
आज इतना ही।

अट्ठासीवां प्रवचन

जीवन और मृत्यु के पार

Chapter 50

The Preserving Of Life

Out of life death enters.
The companions (organs) of life are thirteen;
The companions (organs) of death are also thirteen.
What send man to death in this life are also (these) thirteen.
How is it so?
Because of the intense activity of multiplying life.
It has been said that he who is a good preserver of his life
Meets no tigers, or wild buffaloes on land,
Is not vulnerable to weapons in the field of battle.
The horns of the wild buffalo are powerless against him;
The paws of the tiger are useless against him;
The weapons of the soldier cannot avail against him.
How is it so?
Because he is beyond death.

अध्याय 50

जीवन का संरक्षण

जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है।
जीवन के साथी (अंग) तेरह हैं ;
मृत्यु के भी साथी (अंग) तेरह हैं ;
और जो मनुष्य को इस जीवन में मृत्यु के घर भेजते हैं , वे भी तेरह ही हैं।
यह कैसे होता है ?
जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।
कहते हैं , जो जीवन का सही संरक्षण करता है ,
उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता ;
न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं ;
जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं ;
बाघों के पंजे उसके समक्ष व्यर्थ हैं ;
और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं।
यह कैसे होता है ?
क्योंकि वह मृत्यु के परे है।

जिसे तुम जीवन की भांति जानते हो वह अपने भीतर मृत्यु को छिपाए है। जीवन ऊपर की ही पर्त है ; भीतर मृत्यु मुंह बाए खड़ी है। और अगर तुमने जीवन को सिर्फ जीवन जाना , भीतर छिपी मृत्यु को न पहचाना , तो तुम जीवन को जानने से वंचित ही रह जाओगे।

मृत्यु जीवन के विपरीत नहीं है। मृत्यु जीवन की संगी -साथिन है। वे दो नहीं हैं ; वे एक ही घटना के दो छोर हैं। जीवन जिसका प्रारंभ है , मृत्यु उसी की परिसमाप्ति है। गंगोत्री और गंगासागर अलग -अलग नहीं। मूलस्रोत ही अंत भी है। जन्म के साथ ही तुमने मरना शुरू कर दिया। इसे अगर न पहचाना , तो जो सत्य है , जो जीवन का यथार्थ है , उससे तुम्हारा कोई भी संबंध न हो पाएगा। अगर

तुमने जीवन को जीवन जाना, और मृत्यु को जीवन से पृथक और विपरीत जाना, तो तुम चूक गए। फिर तुम्हें बार-बार भटकना होगा। और तुम उसे भी न पहचान पाओगे जो दोनों के पार है। क्योंकि जब तुम जीवन और मृत्यु को ही न पहचान पाए तो उन दोनों के पार जो है, उसे तुम कैसे पहचान पाओगे? और वही तुम हो।
कबीर ने कहा हैः मरते-मरते जग मुआ, औरस मरा न कोय।
सारा जग मरते-मरते मर रहा है, लेकिन ठीक रूप से मरना कोई भी नहीं जानता।
एक सयानी आपनी, फिर बहुरि न मरना होय।
लेकिन कबीर एक सयानी मौत मरा, और फिर दुबारा उसे लौट कर न मरना पड़ा। जो
भी ठीक से मरने का राज जान गया, वह जीने का राज भी जान गया। क्योंकि वे दो बातें नहीं हैं। और जानते ही दोनों के पार हो गया। और पार हो जाना ही मुक्ति है। पार हो जाना ही परम सत्य है।
न तो तुम जीवन हो और न तुम मृत्यु हो। तुमने अपने को जीवन माना है, इसलिए तुम्हें अपने को मृत्यु भी माननी पड़ेगी। तुमने जीवन के साथ अपना संबंध जोड़ा है तो मृत्यु के साथ संबंध कोई दूसरा क्यों जोड़ेगा? तुम्हें ही जोड़ना पड़ेगा। जब तक तुम जीवन को पकड़ कर आसक्त रहोगे, तब तक मृत्यु भी तुम्हारे भीतर छिपी रहेगी। जिस दिन तुम जीवन को भी फेंक दोगे कूड़े-कर्कट की भांति, उसी दिन मृत्यु भी तुमसे अलग हो जाएगी। तभी तुम्हारी प्रतिमा निखरेगी। तभी तुम अपने पूरे निखार में, अपनी पूरी महिमा में प्रकट होओगे। उसके पहले तुम परिधि पर ही रहोगे।
मृत्यु भी परिधि है और जीवन भी। तुम दोनों से भीतर, और दोनों के पार, और दोनों का अतिक्रमण कर जाते हो। यह जो अतिक्रमण कर जाने वाला सूत्र है, इसे चाहो आत्मा कहो, चाहे परमात्मा कहो, चाहे निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, जो तुम्हारी मर्जी हो। अलग-अलग ज्ञानियों ने अलग-अलग नाम दिए हैं; लेकिन बात एक ही कही है।
सबै सयाने एक मत।
और अगर सयानों में तुम्हें भेद दिखाई पड़े तो अपनी भूल समझना। वह भेद तुम्हारी नासमझी के कारण दिखाई पड़ता होगा। सयानों के कहने के ढंग अलग-अलग होंगे। होने ही चाहिए। सयानों के व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। वे जो भी बोलेंगे, वह अलग-अलग होगा। उनके गीतों के शब्द कितने ही अलग हों, लेकिन उनका गीत एक ही है। और संगीत वे अलग-अलग वाद्यों पर उठा रहे होंगे, लेकिन उनका संगीत एक ही है, उनकी लयबद्धता एक ही है। जो कबीर ने कहा है वही लाओत्से कह रहा है--अपने ढंग से।
लाओत्से के एक-एक वचन को समझने की कोशिश करें।
"जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है। आउट ऑफ लाइफ डेथ एण्टर्स।"
तो तुम ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं अलग खड़ी है। ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कोई दुर्घटना है। ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं बाहर से आती है; कोई भेजता है। तुम्हारे भीतर ही मृत्यु बड़ी हो रही है; तुम्हारे साथ ही चल रही है। अगर तुम बायां कदम हो तो मृत्यु दायां, अगर तुम दायां कदम हो तो मृत्यु बायां। वह तुम्हारा ही पहलू है। एक पैर तुम्हारा जीवन है तो दूसरा पैर तुम्हारी मौत है। वह तुम्हारे साथ ही बढ़ रही है। तुम जब भोजन कर रहे हो तब जीवन को ही गति नहीं मिल रही है, मृत्यु को भी मिल रही है। जब तुम श्वास ले रहे हो तो जीवन ही उससे शक्तिमान नहीं हो रहा है, मृत्यु भी हो रही है। तुम्हारी हर श्वास में छिपी है। भीतर आती श्वास अगर जीवन है तो बाहर जाती श्वास मृत्यु है।
इसलिए तुम ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं भविष्य में है, दूर; सत्तर-अस्सी साल बाद घटेगी। ऐसे ही टाल-टाल कर तो तुमने जीवन गंवाया है; यही सोच-सोच कर कि कभी होगी, अभी क्या जल्दी है। और मृत्यु अभी हो रही है। क्योंकि संसार इस क्षण के अतिरिक्त किसी समय को जानता ही नहीं; कोई भविष्य नहीं है। अस्तित्व के लिए वर्तमान ही एकमात्र समय है। जो भी हो रहा है अभी हो रहा है। इसी क्षण तुम पैदा भी हो रहे हो, इसी क्षण तुम मर भी रहे हो। इसी क्षण जीवन, इसी क्षण मौत। वे दो किनारे; तुम्हारी जीवन की सरिता उनके बीच इसी क्षण बह रही है। तो तुम जो भी कर रहे हो, वह दोनों के लिए ही भोजन बनेगा। तुम उठोगे तो जीवन उठा और मौत भी उठी; तुम बैठोगे तो जीवन बैठा और मौत भी बैठी।

तो पहली बात लाओत्से कहता है कि मृत्यु को तुम अपने से अलग मत समझ लेना।
सारे जगत में, सारे पुराणों में कथाएं हैं। सभी कथाएं धोखा देती हैं। धोखा यह देती हैं कि मौत कोई भेजता है। कोई यमदूत आता है भैंसे पर सवार होकर, या कि कोई यमराज भेजता है मृत्यु को तुम्हें लेने के लिए। ये सब बातें कहानियां हैं। मृत्यु उसी दिन आ गई जिस दिन तुम पैदा हुए; तुम्हारे जन्म के बीज में ही छिपी थी।
अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत जल्दी इस बात के उपाय हो जाएंगे कि जैसे ही बच्चा गर्भ धारण करेगा वैसे ही हम पता लगा लेंगे कि कितने दिन जिंदा रहेगा। क्योंकि वह जो पहला बीज है, उस बीज में ब्लू-प्रिंट है, उस बीज में पूरी कथा छिपी है कि यह कितने साल जीएगा--सत्तर, कि अस्सी, कि पचास, कि दस, कि पांच। ज्योतिषी तो हार गए भविष्य के संबंध में बता-बता कर; विज्ञान जल्दी ही बताने में पूरी तरह समर्थ हो जाएगा। तो बच्चे के सर्टिफिकेट के साथ, कि बच्चे का जन्म हुआ, तुम जाकर सर्टिफिकेट ले आ सकोगे वैज्ञानिक से कि यह कितने दिन जीएगा, कितनी इसकी उम्र होगी। मौत उसी दिन आ गई जिस दिन यह पैदा हुआ। कहीं और मौत घटने वाली नहीं है। इसलिए तुम टाल न सकोगे। इसलिए पोस्टपोन करने का कोई उपाय नहीं है।
और तुम टालते हो। और तुम भी भलीभांति पहचानते हो इस बात को कि रोज तुम बूढ़े हो रहे हो, रोज तुम मर रहे हो। रोज तुम्हारे हाथ से जीवन-ऊर्जा छूटी जाती है; रोज तुम खाली हो रहे हो। लेकिन फिर भी तुम टालते हो। वह कहानी तुम्हें सहायता देती है कि मौत कहीं अंत में है, जल्दी क्या है। अभी और दूसरे काम कर लो।
इसीलिए तुम धर्म को भी टालते हो। क्योंकि जिसने मौत को टाला, उसने धर्म
को भी टाला। जिसने मौत को आंख भर कर देखा, वह धर्म को न टाल सकेगा। क्योंकि धर्म मौत के पार जाने का विज्ञान है। तुम बीमारी ही टाल देते हो तो औषधि को टालने में क्या कठिनाई है?
इसीलिए तो पशुओं में कोई धर्म नहीं है, वृक्षों में कोई धर्म नहीं है। क्योंकि उन्हें मृत्यु का कोई बोध नहीं है। छोटे बच्चे पैदा होते से धार्मिक नहीं हो सकते; छोटे बच्चे पैदा होते से तो अधार्मिक होंगे ही। क्योंकि वे पौधों जैसे हैं, पशुओं जैसे हैं। उन्हें भी मौत का कोई पता नहीं। सच तो यह है कि जिस दिन बच्चे को पहली दफे मौत का पता चलता है, उसी दिन बचपन समाप्त हो गया, उसी दिन भय प्रविष्ट हो गया, उसी दिन वह पौधों और पशुओं की दुनिया का हिस्सा न रहा। अदम ईदन के बगीचे के बाहर निकाल दिया गया। अब वह बगीचे का हिस्सा नहीं है। जिस दिन बच्चे को पता चल गया कि मौत है उसी दिन वह बूढ़ा हो गया।
लेकिन फिर जिंदगी भर हम टालते हैं कि है मौत जरूर, लेकिन अभी नहीं है। अभी नहीं करके हम अपने को सांत्वना देते हैं। फिर हमें यह भी दिखाई पड़ता हैः जब भी कोई मरता है कोई दूसरा ही मरता है; हम तो कभी मरते नहीं। कभी यह पड़ोसी मरता है, कभी वह पड़ोसी मरता है। तो मन में हम एक भ्रांति संजोए रखते हैं कि मौत सदा दूसरे की होती है, अपनी नहीं। और अभी बहुत देर है। और आदमी के मन की क्षमता इतनी नहीं है कि वह तीस, चालीस, पचास साल लंबी बात सोच सके। आदमी के मन का प्रकाश छोटे से मिट्टी के दीए का प्रकाश है, बस दो-चार फीट तक पड़ता है; इससे ज्यादा नहीं। चार कदम दिखाई पड़ते हैं, बस। उतना काफी भी है। इसलिए जब भी तुम किसी चीज को बहुत दूर टाल देते हो तो वह न होने के बराबर हो जाती है। जैसे तुमसे कहे कि तुम्हारी मृत्यु अभी होने वाली है, कोई बताए कि अभी तुम मर जाओगे घड़ी भर में, तो तुम्हारा रोआं-रोआं कंप जाएगा। लेकिन कोई कहे कि मरोगे सत्तर साल में; कुछ भी नहीं कंपता। सत्तर साल इतना लंबा फासला है कि तुम्हें करीब-करीब ऐसा लगता है कि सत्तर साल इतने दूर है; अनंतता मालूम होती है। कोई डर की अभी जरूरत नहीं। फिर सत्तर साल हाथ में हैं, हम कुछ उपाय भी कर सकते हैं बचने के। लेकिन अगर अभी ही मौत हो रही हो तो उपाय भी नहीं है करने का; समय भी नहीं है। तब तुम कंप जाते हो; तब तुम भयभीत हो जाते हो।

लेकिन क्या फर्क है, मौत सत्तर साल बाद घटे कि सात क्षण बाद? मौत घटेगी। अगर मौत घटेगी तो घट ही गई। यही तो बुद्ध ने कहा मुर्दे को देख कर। वह तुम नहीं कहते, इसलिए तुम बुद्ध नहीं हो पाते। बुद्ध ने मुर्दे को देख कर यही तो कहा कि अगर मौत होती ही है--और मेरी भी होगी--तो कहा अपने सारथी को, लौटा ले रथ वापस! जाते थे एक युवक महोत्सव में भाग लेने। वर्ष का बड़े से बड़ा उत्सव था। और राजकुमार ही उसका उदघाटन करता था। सारथी से कहा, वापस लौटा ले! अगर मौत होनी ही है--और मेरी भी होनी है--तो अब मेरे लिए कोई महोत्सव न रहा। अब मेरे जीवन में कोई महोत्सव नहीं है, मौत है। और मुझे मौत से निबटारा करना है।
सारथी ने कहा भी कि माना कि मौत है, लेकिन बहुत दूर है। घर रथ लौटा लेने
की कोई जरूरत नहीं है। यह महोत्सव तो घड़ी भर का है। मौत बहुत दूर है।
सारथी बुद्ध को न समझ पाया। वह सारथी तुम्हारे जैसा रहा होगा।
बुद्ध ने कहा, दूर हो कि पास, जो है वह है। पास और दूर से क्या फर्क पड़ता है? मैं मरूंगा। और अगर यह सच है तो मैं मर ही गया। अब मुझे उस सत्य तत्व की खोज करनी है जो नहीं मरता। अब जितने भी क्षण मेरे पास बचे हैं, इनको मुझे नियोजित कर देना है उस खोज में जो मृत्यु के पार ले जाती है। अब यह जीवन व्यर्थ हो गया।
आश्चर्य है कि तुम मरोगे, रोज तुम लोगों को मरते देखते हो, फिर भी तुम्हारा जीवन व्यर्थ नहीं होता! तुम धोखा देने में कितने कुशल हो!
कबीर कहते हैं, धोखा कासूं कहिए!
किससे कहने जाएं? कौन धोखा दे रहा है? तुम खुद ही अपने को धोखा दे रहे हो। कोई दूसरा देता होता तो शायद बच भी जाते; तुम खुद ही दे रहे हो, इसलिए बचाव का भी उपाय नहीं है। निहत्थे। अपने को ही वंचना में डाले हुए हो।
जो भी तुम इकट्ठा कर रहे हो, वह मौत छीन लेगी। अगर मौत दिखाई पड़ जाए तो संग्रह की वृत्ति खो जाएगी। जिनसे तुम संबंध, नाते-रिश्ते बना रहे हो, मौत तोड़ देगी। अगर मौत दिख जाए तो आसक्ति, संबंध आज ही टूट गया। इसे तोड़ना न पड़ेगा। मौत का बोध तोड़ देगा। तुम अनासक्त हो जाओगे। यह शरीर मौत तो छीन लेगी। यह जलेगा धू-धू करके मरघट पर, या सड़ेगा किसी कब्र में। अगर मौत की प्रतीति हो जाए तो इस शरीर से जो भी तादात्म्य है, जो भी लगाव है, वह आज ही जा चुका; तुम आज ही मर गए।
ज्ञानी मौत को जानते ही अपने को मुर्दा मान लेता है। अज्ञानी कहता है, अभी जल्दी क्या; आएगी तब देख लेंगे। अज्ञानी कहता है, जब आग लगेगी तब कुआं खोद लेंगे। ज्ञानी कहता है, अगर आग लगने ही वाली है तो कुआं तैयार होना चाहिए, आज ही कुआं खोद लो। क्योंकि कौन खोद पाएगा कुआं जब आग ही लग जाएगी? जब घर जल रहा होगा तब तुम कुआं खोदोगे पानी निकालने को आग बुझाने को?
तुम टाल रहे हो मौत को। आग तो लगेगी, तुम्हें पता है; कुआं तुम नहीं खोद रहे हो। आग बुझाने का तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं। और सच तो यह है कि आग तो लगेगी, यह भी तुम्हें पता है, और घर में तुम घी के पीपे इकट्ठे कर रहे हो, कि जब आग लगेगी तो बुझाना भी असंभव हो जाएगा। तुम जीवन में जो भी इकट्ठा करते हो, वह अग्नि में घृत का काम कर रहा है।
लाओत्से कहता है, "जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है।"
तुम्हारे भीतर ही बड़ी होती है। मृत्यु तुम्हारी ही संतान है। जैसे मां
के गर्भ में बच्चा बड़ा होता है, और मां से निकल कर बाहर आता है, ऐसे ही तुम्हारी मौत--हरेक की मौत--तुम्हारे भीतर ही बड़ी होती है; तुम्हारे भीतर से ही निकल कर बाहर आती है। कोई यमदूत नहीं है, कोई भैंसों पर सवार होकर यम नहीं आता; कोई मृत्यु का देवता नहीं है जो मृत्यु को भेजता हो। जीवन ही मृत्यु का देवता है। और तुम पर ही मौत सवार है; तुम ही वह भैंसे हो जिस पर मौत सवार होकर चल रही है। तुम इसे बाहर से आता हुआ न पाओगे।
अगर मौत बाहर से आती तो बचने के उपाय हो सकते थे। हम अपने को बंद कर लेते एक ऐसे सुदृढ़ किले के भीतर कि बाहर से कुछ भी न आ सकता। लेकिन तब भी तुम मरोगे। तुम बिल्कुल कांच की दीवारों में बंद कर दिए जाओ, जहां से हवा भी न आती हो, तो भी तुम मरोगे। क्योंकि मौत तुम्हारे भीतर बड़ी हो रही है। हां,

अगर तुम अपने को भी बाहर छोड़ आओ तो ही तुम न मरोगे। वही ज्ञानी करता है; वह अपने को बाहर छोड़ देता है, खुद भीतर सरक जाता है।
मृत्यु तुम्हारे भीतर प्रतिपल बड़ी हो रही है। जाग कर रहना।
ऐसा हुआ कि एक यहूदी फकीर एक अंधेरी रात में एक ध्यान की साधना कर रहा था। वह साधना थी चलते हुए स्मरण रखने की कि मैं हूं। स्मरण खो-खो जाता था। उसी अंधेरी रात में रास्ते पर चलते हुए जब वह साधना कर रहा था, उसने एक आदमी को और टहलते हुए देखा। सोचा, शायद वह भी साधना में लीन है। तो उसने पूछा कि तुम किस बात का स्मरण रख कर भटक रहे हो? तुम क्यों चल रहे हो? क्या है तुम्हारी साधना? उसने कहा, मेरी कोई साधना नहीं है, मैं तो एक अमीर आदमी का वाचमैन हूं, पहरेदार हूं। यह महल है मेरे मालिक का, मैं इसके सामने पहरा देता हूं। रात भर जागा हुआ मुझे एक ही स्मरण रखना होता है--मालिक के दरवाजे का।
फकीर उसके साथ ही फिर-फिर टहलता रहा। आखिर उस आदमी ने पूछा, और मैं तो तुमसे पूछा ही नहीं, आप किसका पहरा दे रहे हैं? उस फकीर ने कहा कि जरा कहना कठिन है, मालिक भीतर है, पहरा उसका दे रहा हूं। लेकिन तुम जैसा कुशल नहीं। चौबीस घंटे बहुत दूर, चौबीस क्षण भी पहरा नहीं लग पाता। कभी क्षण भर को लग जाए तो बहुत। फिर छूट जाता है; फिर छूट जाता है; फिर छूट जाता है।
फिर दोनों टहलते रहे। उस फकीर ने विदा होते वक्त कहा कि क्या तुम मेरे नौकर होना पसंद करोगे? उस आदमी ने कहा, बड़ी खुशी से। तुम प्यारे आदमी मालूम पड़ते हो; तुम्हारा पास होना ही सुखद था। ऐसी शांति मैंने कभी किसी के पास नहीं जानी। खुशी से। लेकिन काम क्या होगा? फकीर ने कहा, काम यही होगा, मुझे याद दिलाते रहना, टु रिमाइंड मी। जब-जब मैं सो जाऊं, मुझे जगा देना। जब-जब मैं होश खोऊं, मुझे हिला देना। याद मेरी बनी रहे। उसने पूछा, लेकिन याद क्या कर रहे हो? कौन सी चीज की याद कर रहे हो? तो उसने कहा, एक तरफ से मौत की याद और दूसरी तरफ से परमात्मा की याद।
और ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर तुमने मौत को पूरी तरह याद किया कि उधर परमात्मा की याद अपने आप सघन होने लगती है। अगर तुम्हें मौत अभी दिखाई पड़ जाए तो तत्क्षण तुम्हारे हृदय से परमात्मा की पुकार और प्यास उठेगी। जैसे प्यासे आदमी को पानी की याद आती है। मौत प्यास है; मौत से भयभीत मत होना। मौत तो पानी की याद है। इसलिए मौत से बचना नहीं है; मौत से छिपना भी नहीं है। छिप भी न सकोगे, बच भी न सकोगे। कोई कभी नहीं बचा। हां, मौत के पार जा सकते हो। मौत तुम्हारे भीतर उग रही है, बड़ी हो रही है। तुम उसे सम्हाल रहे हो। वह तुम्हारा गर्भ है। यह पहली बात।
"जीवन से निकल कर मृत्यु आती है। जीवन के साथी (अंग) तेरह हैं। मृत्यु
के भी साथी (अंग) तेरह हैं। और जो मनुष्य को इस जीवन में मृत्यु के घर भेजते हैं, वे भी तेरह ही हैं।"
चीन में लाओत्से के समय में ऐसी प्रचलित धारणा थी। धारणा ठीक भी है कि आदमी के शरीर में नौ छेद हैं; उन्हीं नौ छेदों से जीवन प्रवेश करता है। और उन्हीं नौ छेदों से जीवन बाहर जाता है। और चार अंग हैं। सब मिला कर तेरह। दो आंखें, दो नाक के स्वर, मुंह, दो कान, जननेंद्रिय, गुदा, ये नौ तो छिद्र हैं। और चार--दो हाथ और दो पैर। ये तेरह जीवन के भी साथी हैं और यही तेरह मृत्यु के भी साथी हैं। और यही तेरह तुम्हें जीवन में लाते हैं और यही तेरह तुम्हें जीवन से बाहर ले जाते हैं। तेरह का मतलब यह पूरा शरीर। इन्हीं से तुम भोजन करते हो; इन्हीं से तुम जीवन पाते हो; इन्हीं से उठते-बैठते-चलते हो; ये ही तुम्हारे स्वास्थ्य का आधार हैं। और ये ही तुम्हारी मृत्यु के भी आधार होंगे। क्योंकि जीवन और मृत्यु एक ही चीज के दो नाम हैं। इन्हीं से जीवन तुम्हारे भीतर आता, इन्हीं से बाहर जाएगा। इन्हीं से तुम शरीर के भीतर खड़े हो। इन्हीं के साथ शरीर टूटेगा, इनके द्वारा ही टूटेगा।
यह बड़ी हैरानी की बात है, ये ही तुम्हें सम्हालते हैं, ये ही तुम्हें मिटाएंगे। भोजन तुम्हें जीवन देता है, शक्ति देता है। और भोजन की शक्ति के ही माध्यम से तुम अपने भीतर की मृत्यु को बड़ा किए चले जाते हो। भोजन ही तुम्हें बुढ़ापे तक पहुंचा देगा, मृत्यु तक पहुंचा देगा। आंख से, कान से, नाक

से, जीवन की श्वास भीतर आती है, उन्हीं से बाहर जाती है। नौ द्वार और चार अंग।
लाओत्से कहता है, तेरह ही जीवन के साथी, तेरह ही मौत के साथी। ये तेरह
ही लाते हैं, ये तेरह ही ले जाते हैं। अगर तुम सजग हो जाओ तो तुम चौदहवें हो। इन तेरह में तुम नहीं हो; इन तेरह के पार हो।
इस तेरह की संख्या के कारण चीन में, और फिर धीरे-धीरे सारी दुनिया में, तेरह का आंकड़ा अपशकुन हो गया। वह चीन से ही फैला। पश्चिम में जहां तेरह का आंकड़ा अपशकुन है उनको पता भी नहीं कि क्यों अपशकुन है। उसका जन्म चीन में हुआ। उस सुपरस्टीशन की पैदाइश चीन में हुई।
तो आज तो हालत ऐसी है कि अमरीका में होटलें हैं जिनमें तेरह नंबर का कमरा नहीं होता; तेरह नंबर की मंजिल भी नहीं होती। क्योंकि कोई ठहरने को तेरह नंबर की मंजिल पर राजी नहीं है। तो बारह के बाद चौदह नंबर होता है। क्योंकि तेरह शब्द से ही घबड़ाहट पैदा होती है। तेरह नंबर का कमरा नहीं होता; बारह नंबर के कमरे के बाद चौदह नंबर का आता है। होता तो वह तेरहवां ही है, लेकिन जो ठहरता है उसको नंबर चौदह याद रहता है; तेरह की उसे चिंता नहीं पकड़ती। इसका जन्म हुआ चीन में, और बड़े अर्थपूर्ण कारण से यह विश्वास फैला। ये तेरह ही अपशकुन हैं। तुम चौदहवें हो। और तुम्हें चौदहवें का कोई भी पता नहीं। तुम न जीवन हो, न मौत; तुम दोनों के पार हो। अगर तुम इन तेरह के प्रति सजग हो जाओगे, जैसे-जैसे तुम जागोगे वैसे-वैसे शरीर दूर होता जाएगा। जैसे- जैसे तुम्हारा होश बढ़ेगा वैसे-वैसे शरीर से तुम्हारा फासला बढ़ेगा। तुम देख पाओगे, मैं पृथक हूं, मैं अन्य हूं। शरीर और, मैं और। और यह जो भीतर भिन्नता, शरीर से अलग चैतन्य का आविर्भाव होगा, इसकी न कोई मृत्यु है, न इसका कोई जीवन है। न यह कभी पैदा हुआ, न कभी यह मरेगा।
एक सयानी आपनी, फिर बहुरि न मरना होय। जिसने इसको जान कर जो मरा, वह सयाना, वह ज्ञानी। उसने जाना। जो इसको बिना जाने मर गए, उनकी मौत सम्यक नहीं। वे यूं ही मर गए। वे व्यर्थ ही जीए और व्यर्थ ही मर गए। अकारण ही दौड़-धूप हुई, बहुत चले, पहुंचे कहीं नहीं। बहुत खोजा, पाया कुछ भी नहीं; खोजने में सिर्फ अपने को गंवाया। अंत में जब वे जाते हैं, उनके हाथ खाली होंगे। जीसस ने कहा है, खाली हाथ तुम आते हो और खाली हाथ मैं तुम्हें जाते देख रहा हूं। और जीसस राजी थे कि तुम्हारे हाथ भर दें। लेकिन तुम सोचते हो कि तुम्हारे हाथ पहले से ही भरे हैं। खाली हों तो भर दिए जाएं। तुम कंकड़-पत्थरों से हाथ भरे हो। और अगर जीसस या लाओत्से हीरे-जवाहरातों से तुम्हारे हाथ भरना चाहें तो तुम कहते हो, हाथ खाली कहां हैं! तुम कंकड़-पत्थर जुटा रहे हो। तुम व्यर्थ का कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर रहे हो। वह सब भी तुम्हारे साथ जल जाएगा। तुम्हारी सारी संपदा तुम्हारी विपदा ही सिद्ध होती है। तुम उससे परेशान ही होते हो; तुम उससे कुछ शांति और चैन और आनंद अनुभव नहीं करते।
"यह कैसे होता है?"
यह जीवन में मृत्यु का आविर्भाव, यह जीने के रास्ते पर मौत की घटना, यह कैसे घटती है?
"जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।"
अगर तुम अपने भीतर पाओगे... तो मैंने दो ही तरह के लोग देखे। एक, जिनके भीतर और-और-और का मंत्रपाठ चलता है। जो भी है, उससे ज्यादा होना चाहिए। जो भी है, उससे उनकी कोई तृप्ति नहीं। उनके भीतर एक ही स्वर बजता है, एक ही संगीत वे पहचानते हैंः और-और। करोड़ रुपए हों तो भी और, का.ैडी हो तो भी और। कुछ भी न हो तो भी और, साम्राज्य हो तो भी और। उनका मुंह, उनके प्राण अभाव से भरे रहते हैं। जो भी है वह बढ़ना चाहिए।
लाओत्से कहता है, इसी कारण वे, जो जीवन और मृत्यु के पार तत्व है, उससे वंचित रह जाते हैं। जीवन और की दौड़ है, और मौत इसी और की दौड़ का अंत। अगर तुम इस दौड़ में रुक जाओ, उसी क्षण मौत भी रुक गई। फिर बहुरि न मरना होय। फिर दुबारा मरना नहीं होता।

तुम अपने भीतर खोजो, चौबीस घंटे क्या पाठ चल रहा है? कौन सा मंत्र तुम्हारे भीतर काम कर रहा है? तो तुम पाओगे, रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में एक ही आकांक्षा हैः जो भी है और बड़ा हो जाए।
करोगे क्या इसे बड़ा करके? अगर तुम्हें रहना ही नहीं आता तो मकान छोटा
हो तो भी तुम बेचैन रहोगे, मकान बड़ा हो तो भी तुम बेचैन रहोगे। अगर तुम्हें सोना ही नहीं आता तो तुम गरीब के बिस्तर पर सोओ कि अमीर के राजभवन में, क्या फर्क पड़ेगा? अगर तुम्हें भोजन करना ही नहीं आता तो तुम रूखी रोटी खाओ कि श्रेष्ठतम सुस्वादु भोजन, क्या फर्क पड़ेगा?
दूसरे तरह का आदमी है जो और की दौड़ नहीं करता। जो उसे मिला है--जो भी मिला है--वह उससे परितृप्त है, संतुष्ट है। एक गहन परितोष उसे घेरे रहता है। उसके चारों तरफ एक वायुमंडल होता है परम संतोष का। जो भी मिला है वह बहुत है, उसके भीतर एक स्वर होता है। और उसके कारण वह निरंतर धन्यवाद देता है। उसके भीतर अनुग्रह का भाव होता है। वह परमात्मा को कहता रहता है, धन्यवाद तेरा। जो भी तूने दिया है, उसकी भी कोई पात्रता मेरी न थी। जो भी तूने दिया है, वह मेरी योग्यता से सदा ज्यादा है। उसके भीतर एक अनुग्रह का नाद होता रहता है। उठते-बैठते-चलते एक परम अहोभाव से भरा रहता है।
ये दो ही स्वर के लोग हैं। जिनके भीतर और का नाद है, वे संसारी। और जिनके भीतर अहोभाव का नाद है, वे संन्यासी। कहां तुम रहते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर तुम्हारे भीतर अहोभाव है तो तुम परम संन्यासी हो। और अगर तुम्हारे भीतर और की ही, और की दौड़ है तो तुम चाहे आश्रम में रहो चाहे हिमालय पर, तुम संसारी रहोगे। तुम अगर अहोभाव से भर जाओ तो स्वर्ग यहीं और अभी है। और तुम और से ही भरे रहो तो तुम जहां भी जाओगे वहीं नरक पाओगे। क्योंकि नरक तुम्हारे भीतर है; स्वर्ग भी तुम्हारे भीतर है।
ऐसा हुआ। एक सूफी फकीर ने एक रात सपना देखा। कुछ ही दिन हुए, उसका गुरु
मर गया है। सपने में उसने देखा कि वह स्वर्ग गया है और अपने गुरु की तलाश कर रहा है। फिर उसने एक वृक्ष के नीचे अपने गुरु को प्रार्थना करते देखा तो वह बहुत हैरान हुआ कि अब किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं? जो पाना था पा लिया, आखिरी मंजिल आ गई। स्वर्ग के ऊपर तो कुछ है भी नहीं। अब किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं?
लेकिन गुरु प्रार्थना में था तो वह रुका रहा। एक देवदूत गुजरता था। उसने पूछा कि मैं बड़ा हैरान हूं! मैं तो सोचता था, पृथ्वी पर लोग प्रार्थना करते हैं स्वर्ग जाने के लिए। इसलिए हम भी छाती पीटते हैं और प्रार्थना करते हैं, सिर झुकाते हैं। मेरा गुरु तो स्वर्ग पहुंच गया। और यह ऐसा तन्मय बैठा है, ऐसा मगन होकर प्रार्थना कर रहा है। अब किसलिए? अब क्या पाने को है? मैं तो जानता था, सोचता था कि स्वर्ग में कोई प्रार्थना न होती होगी।
उस देवदूत ने कहा, स्वर्ग में कोई प्रार्थना नहीं होती; प्रार्थना में
ही स्वर्ग होता है। जिस क्षण इसकी प्रार्थना चूक जाएगी उसी क्षण स्वर्ग खो जाएगा। प्रार्थना स्वर्ग का द्वार नहीं है, प्रार्थना स्वर्ग है। प्रार्थना मार्ग नहीं है, प्रार्थना मंजिल है। प्रार्थना साधन नहीं है, साध्य है। वह कोई साधक की अवस्था नहीं है, सिद्ध का अहोभाव है।
लेकिन अहोभाव तो तभी होगा, जब और से छुटकारा हो जाए। इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि जो आदमी कह रहा है और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए, वह धन्यवाद नहीं दे सकता; वह शिकायत कर सकता है। क्योंकि वह हमेशा परेशान है, हमेशा कम है। अहोभाव कैसा? प्रार्थना कैसी? पूजा कैसी? अर्चना कैसी? धन्यवाद किसको? जो आदमी और-और की मांग कर रहा है वह परमात्मा के प्रति शिकायत से ही भरा रहेगा। उसके पूरे प्राणों में शिकायत का कांटा रहेगा, पीड़ा की तरह चुभता रहेगा, दंश देता रहेगा।
मंदिर शिकायत लेकर मत जाना। क्योंकि जो शिकायत लेकर गया वह मंदिर कभी पहुंचता ही नहीं। शिकायत लेकर परमात्मा के पास जाने की कोशिश मत करना, क्योंकि शिकायत परमात्मा से दूर ले जाने की व्यवस्था है। मांगने उसके द्वार पर जाना मत, क्योंकि मांगने का अर्थ ही है कि अभी धन्यवाद देने का क्षण नहीं आया, अभी और चाहिए।

लाओत्से कहता है, यह कैसे होता है कि तुम्हारे जीवन में ही मौत पनप जाती है। यह ऐसे होता है कि तुम और-और-और मांगते चले जाते हो।
"बिकाज ऑफ दि इनटेंस एक्टिविटी ऑफ मल्टीप्लाइंग लाइफ।"
तुम और ज्यादा करना चाहते हो, और ज्यादा करना चाहते हो। कितना ही मिल जाए, तृप्ति नहीं होती।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन नियाग्रा जलप्रपात देखने गया। शिकायती आदमी है; अहोभाव मुश्किल है। किसी चीज को देख कर तृप्त होना असंभव है। किसी चीज को देख कर प्रसन्न होना मुश्किल है। खड़ा है नियाग्रा जलप्रपात के पास। जो मार्गदर्शक है, वह प्रशंसा करता है। क्योंकि ऐसा कोई जलप्रपात नहीं, ऐसी अनूठी घटना है नियाग्रा। लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन ऐसे खड़ा है जैसे कुछ भी नहीं।
वह मार्गदर्शक कहता है, आप ऐसे खड़े हैं, गौर से तो देखें! यह अनूठी घटना है। कितना जल गिर रहा है, पता है आपको? अरबों-खरबों गैलन प्रति सेकेंड! मुल्ला ने ऐसी नजर डाली और कहा, दिन भर में कितना गिरता है? आंकड़े। दिन भर में कितना गिरता है? उस आदमी ने कहा, मुझे हिसाब नहीं, लेकिन आप अंदाज कर सकते हैं। असंख्य गैलन! और मुल्ला ने कहा, रात भर भी गिरता रहता है? लेकिन उसके मन पर कोई भाव नहीं है। इस विराट घटना के करीब भी वह ऐसे ही खड़ा है जैसे बाथरूम में नल की टोंटी खोल कर खड़ा रहता हो। कोई फर्क नहीं है।
शिकायती को तुम किसी भी क्षण में विराट से नहीं भर सकते। वह विराट की
भी नाप-जोख कर लेगाः कितने गैलन दिन में? रात में भी गिरता है? वह विराट को भी माप लेगा।
और जब भी तुम किसी चीज को माप लोगे, तुम्हारा मन कहेगा, इससे बड़ा भी तो
हो सकता है। तो इसमें प्रभावित होने का क्या है? पानी ही तो गिर रहा है। कोई सोना तो नहीं बरस रहा। और जितनी भी बड़ी संख्या हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अन्यथा तो एक पानी की बूंद, सुबह दूब पर पड़ी एक ओस, सूरज की चमकती किरणें--और विराट प्रकट हो जाता है। कोई नियाग्रा जाने की जरूरत है? एक बूंद काफी है, अगर अहोभाव हो। अन्यथा नियाग्रा भी काफी नहीं है।
कैसे तुम्हारे भीतर मौत बड़ी होती है?
लाओत्से कहता है, तुम्हारे भीतर मौत बड़ी होती है, क्योंकि तुम जो हो उससे तुम तृप्त नहीं। लाओत्से यह कह रहा है, अतृप्ति से मौत सघन होती है, बनती है, निर्मित होती है। अतृप्ति मौत है।
इसलिए तो बूढ़े मरते हैं। क्योंकि बूढ़े अतृप्ति के ज्यादा करीब पहुंच जाते हैं बच्चों की बजाय। बच्चे छोटी-छोटी चीजों में तृप्त मालूम होते हैं। एक खिलौना, एक उड़ती तितली काफी है। एक छोटा सा घास में खिला फूल पर्याप्त खजाना है। छोटे बच्चे इतने ताजे और जीवंत हैं, मौत बड़ी दूर है।
क्योंकि छोटे-छोटे में, क्षुद्र में भी विराट का दर्शन हो रहा है।
लेकिन यह अज्ञान के कारण हो रहा है। जल्दी ही मौत प्रवेश कर जाएगी।
जल्दी ही शिकायत शुरू हो जाएगी। जल्दी ही बच्चा भी कहने लगेगा, और चाहिए।
फिर उसका कोई अंत नहीं है।
एक मित्र मेरे पास आते थे। एक राज्य में शिक्षा मंत्री हैं। उन्होंने मुझसे कहा, मुझे नींद नहीं आती। और कहने लगे, न मुझे ईश्वर की खोज है, न मुझे आत्मा जाननी, न मुझे मोक्ष की इच्छा है। मैं आपके पास सिर्फ इसलिए आया हूं कि मुझे सिर्फ नींद आ जाए। यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। मैं सब दवाइयां लेकर हार चुका। ट्रैंक्वेलाइजर लेता हूं तो सुस्ती आ जाती है, नींद नहीं आती। उलटा सुबह और भी ज्यादा बेचैन उठता हूं। फिर सुबह मुझे शक्ति पाने के लिए और ताजगी पाने के लिए दूसरी दवाइयां लेनी पड़ती हैं। तो आप इतना ही करें कि मुझे किसी तरह नींद आ जाए। क्या ध्यान से नींद आ सकेगी? और ज्यादा मेरी मांग नहीं है।
जब वे यह बोल रहे थे तो मैंने इशारा किया और उनकी सब बातें टेप कर ली गईं। क्योंकि मैं जानता हूं, राजनीतिज्ञ हैं, इनकी बात का कोई भरोसा नहीं है। और यह भी मैं जानता हूं कि जब साधारण आदमी की और की दौड़ इतनी ज्यादा होती है तो राजनीतिज्ञ की तो और ज्यादा होनी ही चाहिए। वह तो मनुष्यों में

सब से ज्यादा पागल मनुष्य है। ये कैसे सिर्फ नींद से राजी हो जाएंगे? मुझे भरोसा नहीं आया।
उनसे ध्यान करने को कहा। उन्होंने मेहनत की। तीन सप्ताह बाद वह आए और कहने लगे कि ठीक है, नींद तो आ गई, लेकिन और कुछ नहीं हुआ। मैंने कहा कि अब आप रुकें। आप भूल गए कि तीन सप्ताह पहले आपने कहा था, यह जीवन-मरण का सवाल है। और आप कहते हुए आए थे कि मुझे सिर्फ नींद चाहिए, और कुछ नहीं चाहिए। और जब नींद आ गई तो आप कह रहे हैं कि और कुछ भी नहीं हुआ; बस नींद आ गई।
जो नींद वर्षों से नहीं आई थी, जो दवाओं से नहीं आई थी, वह आ गई, लेकिन उनके मन में धन्यवाद नहीं है। मैंने टेप लगवाया। सुना, कहने लगे कि हां, ठीक है। थोड़े चौंके, कहने लगे कि नहीं, ऐसी बात नहीं। मेरा मतलब यह था कि जब ध्यान से इतना हो सकता है तो और भी हो सकता है। पर मैंने कहा कि अब आप सोच लें, क्योंकि जैसे आप आदमी हैं, अगर आपको परमात्मा भी मिल जाए तो आप लौट कर कहेंगे, परमात्मा मिल गया, और कुछ नहीं हुआ। मोक्ष मिल जाए, आप कहेंगे, अब? मोक्ष मिल गया, और कुछ भी न हुआ।
और इस तरह के आदमी को मोक्ष नहीं मिल सकता। और यह नींद भी ज्यादा देर न टिकेगी। यह खो जाएगी। क्योंकि आपको नींद लेने की भी पात्रता नहीं है। क्यों गांव-देहात का गरीब आदमी, जिसे एक जून रोटी मिलती है, कभी वह भी नहीं मिलती, गहरी नींद सोता है? क्यों शहर का धनी, सुखी आदमी, जिसके पास सब है, एक झपकी नहीं ले पाता? होना तो उलटा चाहिए कि जिसके पास कुछ नहीं है वह चिंता में सो न सके, और जिसके पास सब है निश्चिंत होकर सो जाए। ऐसा होता नहीं। कारण कहीं और है। वह जो गांव का गरीब आदमी है उसके मन में शिकायत नहीं है। जो है, वह उससे भी तृप्त है। एक जून रोटी मिल गई, वह भी क्या कम है! हो सकता था, वह भी न मिले। वह एक जून रोटी के लिए भी धन्यवाद दे रहा है। उस धन्यवाद से ही उसके मन में विश्राम है। वही विश्राम उसकी प्रगाढ़ निद्रा बन जाता है।
भिखमंगों को सोते देख कर सम्राट ईर्ष्या से भर जाते हैं। तुमने रास्ते
पर भिखमंगों को सोते देखा होगा। दिन की भरी दुपहरी में--बाजार चल रहा है, कारें दौड़ रही हैं, शोरगुल मचा है, भोंपू, सब कुछ हो रहा है--और कोई आदमी वृक्ष के नीचे मजे से सो रहा है। सड़क की पटरी पर सो रहा है, घुर्राटे की आवाजें ले रहा है। और तुम अपने कक्ष में, जहां कोई आवाज नहीं पहुंचती, जहां कोई शोरगुल नहीं होता, सुखद से सुखद शय्या पर पड़े करवटें बदलते रहते हो। सम्राट ईर्ष्या से भर जाते हैं भिखारी को सोया हुआ देख कर। क्या होगा? कारण क्या होगा?
भिखारी को जो मिल जाता है, उसकी भी उसे अपेक्षा न थी। पक्का न था कि वह
भी मिलेगा। कोई गारंटी न थी। मिल जाए मिल जाए, न मिले न मिले। मिल गया तो धन्यवाद, न मिले तो पानी पीकर सो रहना है।
जब तुम्हारी अपेक्षा कम होती है तब तुम विश्राम में होते हो। जब तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा हो जाती है तब तुम तनाव से भर जाते हो। और अपेक्षा और प्रार्थना का कभी भी मिलना नहीं होता। और अपेक्षा और परम जीवन के मिलने का कोई उपाय नहीं है।
लाओत्से कहता है कि यह कैसे होता है? जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।
तुम दौड़े जा रहे हो--और ज्यादा चाहिए, और ज्यादा चाहिए, और ज्यादा चाहिए। किसी दिन वह तुम्हें मिल भी जाएगा। इस जगत का एक बड़ा चमत्कार यह है कि तुम्हारी नासमझियां भी पूरी हो जाती हैं। और परमात्मा ऐसा परम कृपालु है कि तुम्हारी मूढ़ता को भी आशीष दिए जाता है, आशीर्वाद दिए जाता है। तुम्हारी क्षुद्र और व्यर्थ वासनाएं भी तृप्त करने का आयोजन कर देता है। तब तुम अचानक पाते हो कि सब हाथ में है; खुद को तुम कहीं छोड़ आए, खुद को कहीं दूर अतीत में भटका आए। खुद कहीं छूट गया मार्ग पर, तुम तो मंजिल पर पहुंच गए। सब इकट्ठा हो गया, लेकिन तुम्हारी आत्मा कहीं राह में छूट गई है। और तब तुम्हें फिर कोई बेचैनी पकड़ लेती है। फिर अशांति पकड़ लेती है। तुम सब भी पाकर भिखारी ही रहोगे।

और इसी सब पाने की दौड़ में तुम्हारी मौत बड़ी हो रही है। क्योंकि तुम जीवन को चुका रहे हो। तुम जीवन को सम्हाल नहीं रहे। तुम जीवन की ऊर्जा को बेच रहे हो--ठीकरों में। इस जीवन-ऊर्जा से परमात्मा पाया जा सकता है। यही अवसर तुम तिजोड़ी भरने में लगा रहे हो। इसी अवसर से आत्मा भरी जा सकती है।
अवसर बहुमूल्य है। एक-एक क्षण खोया गया वापस नहीं लौट सकता।
तुम जीवन की इस और की दौड़ से बचो। तुम उसे देखना शुरू करो जो तुम्हें मिला ही हुआ है। तुम उसकी बहुत चिंता मत करो जो तुम्हें मिला हुआ नहीं है। क्योंकि उसकी जिसने चिंता की, वह कभी भी विश्राम को न उपलब्ध हो सकेगा। क्योंकि कितना ही मिल जाए, सदा कुछ शेष रहेगा जो नहीं मिला हुआ है। क्या तुम सोचते हो, ऐसी कोई घड़ी आ जाएगी जब पाने को कुछ भी शेष न रहेगा?
कभी भी न आएगी। अनंत है विस्तार। तुम कैसे सब पा सकोगे? तुम्हारे छोटे हाथों में तुम इस अनंत को कैसे समा सकोगे? तुम कुछ पा लोगे तो बहुत कुछ पाने को शेष रहेगा। तुम कितना ही पा लोगे तो भी अनंत गुना पाने को शेष रहेगा। और कभी वह क्षण न आएगा जब तुम धन्यवाद दे सको। शिकायत बड़ी होती जाएगी। सम्राट की शिकायत गरीब की शिकायत से भी बड़ी हो जाती है। जितनी वासना बड़ी होती है उतनी ही बड़ी शिकायत हो जाती है। और शिकायत अधार्मिक आदमी का लक्षण है।
अगर कोई मुझसे पूछे तो मैं नास्तिक उसको नहीं कहता जो कहता है ईश्वर नहीं है। नास्तिक मैं उसको कहता हूं जिसके जीवन में सिवाय शिकायत के और कुछ भी नहीं है। भला वह मंदिर जाता हो, मस्जिद जाता हो, गुरुद्वारा जाता हो, लेकिन वह वहां भी शिकायत करता है। वह वहां भी कहता है कि यह तू क्या कर रहा है? तू क्या करवा रहा है? बेईमान जीते जा रहे हैं, मैं ईमानदार हारा जा रहा हूं। जिनकी कोई योग्यता नहीं है, वे सिर पर बैठे हैं और मुझ जैसा योग्य आदमी सड़कों पर भटक रहा है। अन्याय हो रहा है।
तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं तुम्हारी शिकायतें हैं। और प्रार्थना कहीं शिकायत हो सकती है?
तुम उसी दिन मंदिर पहुंच पाओगे जिस दिन तुम धन्यवाद देने जाओगे, जिस दिन तुम कहने जाओगे कि मैं किसी योग्य न था, मेरी कोई क्षमता और पात्रता न थी, और तूने इतना दिया! जिस दिन तुम्हारे पास जो है, तुम्हारी पात्रता से तुम्हें ज्यादा दिखाई पड़ेगा, उसी दिन प्रार्थना का जन्म होगा। फिर उस प्रार्थना का कोई अंत नहीं है। वह बढ़ती जाती है, बढ़ती जाती है। और एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम्हारी पात्रता शून्य हो जाती है। उस शून्य पात्र में ही सारा अस्तित्व उतर आता है। जिस दिन तुम कह पाते हो, मेरी कोई भी योग्यता नहीं, मैं जीवन के योग्य भी न था, एक सांस भी ले सकूं अस्तित्व की, इसकी भी मेरी कोई क्षमता न थी, और तूने मुझे अनंत जीवन दिया, जिस दिन तुम्हें इसमें परमात्मा के अनुग्रह के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई पड़ेगा, तुम बिल्कुल शून्य मात्र हो जाओगे, उसी क्षण फिर तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है।
मृत्यु वासना की है। तुम्हारा जीवन वासना है, इसलिए तुम्हारे भीतर मृत्यु बड़ी होती है। तुम्हारे भीतर की वासना ही तुम्हारे भीतर की मृत्यु है। जो निर्वासना को उपलब्ध हुआ वह अमृत को उपलब्ध हो गया।
"कहते हैं, जो जीवन का सही संरक्षण करता है, उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता; न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं; जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं; बाघों के पंजे उसके समक्ष व्यर्थ हैं; और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं। यह कैसे होता है? क्योंकि वह मृत्यु से परे है।"
कृष्ण ने गीता में यही कहा हैः नैनं छिन्दंति शस्त्राणि--न तो तुझे शस्त्र छेद सकते हैं; नैनं दहति पावकः--न अग्नि तुझे जला सकती है।
लेकिन शरीर तो जल जाता है। शरीर को तो छेद देते हैं शस्त्र। और युद्ध
के मैदान पर कृष्ण कहते हैं अर्जुन को! कैसा झूठ बोल रहे हैं? युद्ध के मैदान पर, जहां कि मृत्यु अपनी प्रगाढ़ता में प्रकट होती है, जहां कि अर्जुन को साफ दिखाई पड़ रहा है कि ये मेरे प्रियजन, सगे, बंधु-बांधव, मेरे गुरुजन, ये सब थोड़ी ही देर में मिट्टी चाटते होंगे, थोड़ी ही देर में हम धूल-धूसरित हो जाएंगे, खून हमारा जमीन पर बह रहा होगा, शरीर कटे हुए पड़े होंगे, लाश और लाश के पहाड़ लग जाएंगे, वहां कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि नहीं, तुझे न

शस्त्र छेद सकते हैं और न अग्नि जला सकती है। यह ऐसे ही है जैसे मरघट पर कोई जल रही हो लाश और मैं तुमसे कहूं कि घबड़ाओ मत, आग तुम्हें जला नहीं सकती। लेकिन कृष्ण ठीक ही कह रहे हैं। वे कोई मजाक नहीं कर रहे, न कोई झूठ बोल रहे हैं। क्योंकि तुम जो हो, उसका तुम्हें पता ही नहीं। अग्नि में जो जलता है, वह तुम नहीं हो। शस्त्र जिसे छेद जाते हैं, वह तुमसे बाहर है। वह तुम्हारा आवास हो भला, तुम्हारा वस्त्र हो, तुम नहीं हो। थोड़ी देर तुम रुके हो, पड़ाव हो भला, लेकिन तुम्हारी सत्ता नहीं है। तुम तो चैतन्य हो, तुम शुद्ध चैतन्य हो। शुद्ध चैतन्य को कैसे शस्त्र छेदेंगे? चेतना को शस्त्र छुएंगे कैसे? चेतना को अग्नि में जलाओगे कैसे? चेतना, अग्नि का कोई मिलन ही नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, पानी और तेल को नहीं मिलाया जा सकता। लेकिन फिर भी पानी और तेल को मिलाने की कोशिश की जा सकती है। लेकिन अग्नि और चेतना को तो मिलाने की कोशिश भी नहीं हो सकती। चेतना कैसे जलेगी?
लाओत्से यही कह रहा है। वह यह कहता है कि कहते हैं, जो जीवन का सही संरक्षण करता है... ।
जो जीवन का ठीक-ठीक सम्यक उपयोग करता है, जीवन को वासना में नहीं गंवाता, समय को और की दौड़ में नहीं लगाता, अभाव के पीछे नहीं भागता, जो जीवन का संरक्षण करता है। क्या है संरक्षण?
तुम दो तरह से जी सकते हो। एक तो फूटी बाल्टी की तरह। कुएं में डालो, शोरगुल बहुत होता है, बाल्टी भरती भी दिखाई पड़ती है, जब पानी में डूबती है कुएं के तो भर जाती है। फिर खींचो, बड़ी आवाज मचनी शुरू होती है, क्योंकि सब तरफ से पानी गिरना शुरू होता है। और ऐसा लगता है कि बाल्टी पूरा सागर लेकर आ रही है। लेकिन जब तक तुम्हारे हाथ तक पहुंचती है, खाली हो जाती है। वह शोरगुल सागर का नहीं था, वह शोरगुल छिद्रों का था। वह शोरगुल इसलिए नहीं हो रहा था कि बाल्टी बड़ी विराट घटना को लेकर आ रही थी; वह इसलिए हो रहा था कि बाल्टी हजार-हजार छिद्रों से भरी थी।
तो एक तो फूटी बाल्टी की तरह का जीवन है। मरते दम तुम पाओगे कि तुम्हारे छेद से सब बह गया, जो भी तुम लेकर आए थे वह तुमने गंवा दिया, और बदले में तुम कुछ भी लेकर नहीं जा रहे हो। जीवन यूं ही गया। दूसरा एक ऐसा जीवन है, जिस बाल्टी में छिद्र नहीं। उसी को लाओत्से संरक्षण कह रहा है। वासनाएं तुम्हारे छेद हैं, जिनसे जीवन की ऊर्जा बह जाती है। जब भी तुम वासना से भरते हो, तभी तुम अपने को गंवाते हो। निर्वासना संरक्षण है। इसलिए तो बुद्ध, महावीर, सभी का एक जोर है कि तृष्णा छोड़ दो, वासना छोड़ दो। मांगो मत। जो है, वैसे ही काफी है। तुम, जो है, उसको जी लो। और जितने कम से चल जाए। क्योंकि वह कम भी तुम्हारी वासना के कारण मालूम पड़ता है। वासना हटाओगे तो तुम पाओगे, वह कम कभी था ही नहीं।
बहुत बार तुमसे मैंने कहा है। अकबर ने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींच दी और कहा, इसे बिना छुए छोटा कर दो। दरबारी बड़ी परेशानी में पड़ गए; न कर पाए छोटा। बिना छुए करोगे भी कैसे? फिर उठा बीरबल और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। बिना छुए लकीर छोटी हो गई, तत्क्षण छोटी हो गई। तुम्हारे पास जो है, वह बहुत थोड़ा मालूम पड़ रहा है; क्योंकि बड़ी वासना
की लकीर तुमने खींच रखी है। वह थोड़ा नहीं है। वह जरूरत से ज्यादा है। परमात्मा सदा जरूरत से ज्यादा देता है। वह कोई कृपण नहीं है। और अस्तित्व कोई सौदा थोड़े ही कर रहा है तुम्हारे साथ। और अस्तित्व का तो देना आनंद है, ओवरफ्लोइंग है। अस्तित्व तो ऊपर से बह रहा है। यह अस्तित्व है ही इसलिए कि परमात्मा के पास जरूरत से ज्यादा है। यह उसका आनंद है बांटना। बिना बांटे वह नहीं रह सकता।
इसलिए तुम यह मत सोचना कि तुम्हें जरूरत के हिसाब से दिया जा रहा है। तुम्हें तो जरूरत से सदा ज्यादा दिया जा रहा है। लेकिन तुम वासना की बड़ी लकीर खींचते चले जाते हो। और कितना ही तुम्हें मिलता जाए, तुम्हारी लकीर बड़ी होती जाती है। तो जो भी तुम पाते हो, वह सदा थोड़ा मालूम पड़ता है। जब तक वासना है तब तक तुम गरीब रहोगे, तब तक तुम भिखारी रहोगे। जिस दिन कोई वासना न रही उस दिन तुम्हारा सम्राट प्रकट होता है। उस दिन फिर तुम सम्राट हो।

राम, स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। लंगोटी थी उनके पास एक। और जब किसी ने पूछा अमरीका में कि क्यों कहते हो तुम अपने को बादशाह, कुछ तुम्हारे पास है नहीं!
तो रामतीर्थ ने कहा, इसीलिए। मेरी कोई जरूरत नहीं है और कोई मांग नहीं है, तो तुम मुझे भिखारी कैसे कह सकते हो? और जो भिखारी नहीं है, वही सम्राट है।
एक फकीर के घर एक अमीर आदमी एक बार मेहमान हुआ। फकीर का घर था, उसमें ज्यादा कुछ साज-सामान न था। थोड़ी-बहुत जरूरत की चीजें थीं। बस काम चल जाए, इतनी थीं। क्योंकि कम में काम चला लेने की कला फकीरों को आती है। अमीर बड़ा परेशान था। जब रात सोने लगा तो फकीर उसके द्वार पर आया और उसने कहा कि देखो, कोई ऐसी चीज जो यहां न हो और तुम्हें जरूरत मालूम पड़े तो मुझे बता देना। तो उस अमीर आदमी ने मजाक में कहा, बताने से क्या होगा? तुम करोगे भी क्या? जो है ही नहीं, मैं बता भी दूं तो तुम करोगे क्या? उस फकीर ने कहा, मैं तुम्हें रास्ता बता दूंगा कि उसके बिना कैसे काम चलाया जाए। हाउ टु डू विदाउट इट। कोई मैं चीज लाने वाला नहीं हूं। यहां चीज है ही नहीं, वह मुझे भी पता है। लेकिन जब मैं जी रहा हूं देखो, तो तुम भी जी सकते हो। तो अगर कोई अड़चन मालूम पड़े, तुम मुझे बता भर देना; फिर मैं तुम्हें तरकीब बता दूंगा कि उसके बिना कैसे चलाया जाए।
यूनान में एक फकीर हुआ डायोजनीज। वह महावीर जैसा फकीर था, नग्न ही रहता था। दुनिया में डायोजनीज और महावीर समानांतर हैं, और करीब-करीब एक ही समय में हुए हैं। जब वह फकीर हो गया और नग्न घूमने लगा, तो एक भिक्षा-पात्र उसने अपने पास रखा था, जिसमें वह पानी पी लेता था, रोटी ले लेता था। फिर एक दिन उसने देखा एक झरने में एक कुत्ते को पानी पीते, उसने फौरन भिक्षा-पात्र फेंक दिया, और कुत्ते के जाकर चरणों में नमस्कार किया कि गजब कर दिया तूने भी, मात दे दी। हम यह सोचते थे कि बिना भिक्षा-पात्र के पानी कैसे पीएंगे। उस दिन से वह कुत्ते जैसा ही पानी पीने लगा। और जब लोग उससे पूछते, यह क्या है! तो उसने कहा, जब एक कुत्ता चला लेता है तो मैं कोई कुत्ता से गया-बीता तो नहीं। जब कुत्ता इतना बुद्धिमान है, बिना भिक्षा-पात्र के चला लेता है, तो मैं कितना ही गया-बीता होऊं, कुत्ते से गया-बीता तो नहीं। हम भी चला लेंगे। अगर कुत्ता इतनी फकीरी की शान रखता है तो हम कोई कुत्ते से छोटे फकीर नहीं। और जिस कुत्ते के उसने पैर छुए थे और जिस कुत्ते से उसने सीखा था, कहते हैं, वह कुत्ता फिर सदा डायोजनीज के साथ रहा। जब सिकंदर डायोजनीज को मिला, तब वह कुत्ता भी पास बैठा हुआ था डायोजनीज के। वे दोनों रहते थे एक... । कचरेघर के आस-पास टीन का पोंगरा रख देते हैं कचरे को रोकने के लिए। ऐसा ही एक पोंगरा उसको कहीं पड़ा हुआ मिल गया था। उसी पोंगरे को आड़ा कर लिया था, उसी में वे दोनों रहते थे। सिकंदर जब मिलने आया, तब कुत्ता भी पास बैठा हुआ था। और जब सिकंदर ने डायोजनीज से प्रश्न पूछे तो वह सिकंदर को भी उत्तर देता था, बीच-बीच में वह कुत्ते से भी कहता था, सुन ले!
तो सिकंदर ने पूछा कि यह क्या बकवास है? तुम बात मुझसे करते हो, इस कुत्ते से क्या कहते हो, सुन ले?
और वह कुत्ता भी ऐसे ढंग से बैठा था कि लगता है सुनता है। और जब कहता डायोजनीज सुन ले, तो वह सिर हिलाता।
तो डायोजनीज ने कहा कि आदमियों को मैंने इस योग्य नहीं पाया कि उनसे कुछ समझ की बातें की जा सकें। नासमझी की बातें कितनी ही कर लो, समझदारी की बात आदमियों से नहीं हो सकती है। यह कुत्ता बड़ा समझदार है। और बड़ी से बड़ी समझदारी की बात तो यह है कि मैं कितना ही बोलूं, यह चुप रहता है। यह मुझसे भी ज्यादा समझदार है। कभी बेवक्त-वक्त सिर हिला देता है; इशारे में बात करता है। बड़ा ज्ञानी है।
ना-कुछ से काम चल सकता है; और सब कुछ से भी काम नहीं चलता। तो जरूर सवाल ना-कुछ और सब कुछ का नहीं हो सकता। तुम पर निर्भर है, सब तुम पर निर्भर है। सब कुछ से भी काम नहीं चलता, ना-कुछ से भी काम चल जाता है। जितना तुम ना-कुछ से काम चला लेते हो, उतनी ही वासना की लकीर छोटी होती चली जाती है। जिस दिन लकीर पूरी विदा हो जाती है उस दिन अचानक तुम पाते हो कि तुम्हारे भीतर की

चैतन्य की प्रतिमा, तुम्हारी आत्मा अपनी पूरी गरिमा में प्रकट हो गई। अब उसे छुपाने वाला कोई धुआं न रहा। अब सब बदलियां हट गईं। आकाश, नीला आकाश सामने है।

"जो जीवन का सही संरक्षण करता है... ।"
इसका अर्थ हुआ, जो तृष्णा से मुक्त होता है और तृष्णा में अपनी जीवन-ऊर्जा को नष्ट नहीं करता, जिसकी बाल्टी छेद वाली नहीं।
"उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता; न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं; जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं; बाघों के पंजे उसके समक्ष असमर्थ हैं, और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं।" तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे शरीर को छेदा न जा सकेगा। तुम यह भी मत सोचना कि तुम्हारे शरीर को आग न लगाई जा सकेगी। तुम यह भी मत सोचना कि भैंसे तुम्हारे शरीर में सींग न प्रवेश कर सकेंगे। लेकिन तुम शरीर न रह जाओगे। जिसने अपनी ऊर्जा को संरक्षित किया वह अशरीरी हो जाता है। तब सींग भी तुम्हारे शरीर में भैंसा चुभा रहा हो, और शस्त्र--भाला--तुम्हारे शरीर के आर-पार जा रहा हो, तो भी तुम साक्षी ही रहोगे। तब भी तुम जानोगे कि यह तुमसे बाहर घट रहा है--तुम्हारे आस-पास जरूर, पर तुममें नहीं। जैसे तुम्हारे घर में कोई दीवार को छेद दे, इससे तुममें छेद नहीं हो जाता। जैसे तुम्हारा वस्त्र जराजीर्ण हो जाए, उसमें छिद्र हो जाएं, तुममें छिद्र नहीं हो जाता। तुम्हारे शरीर के छिद्र तुम्हारे छिद्र नहीं हैं।
और शरीर तो मौत का ग्रास है ही; वह मरणधर्मा है, वह मरेगा ही। बुद्ध का शरीर भी मर जाता है; कृष्ण का शरीर भी मर जाता है; राम का शरीर भी धूल में खो जाता है। तुम्हारा भी खो जाएगा। क्योंकि शरीर धूल से उठता है। वह धूल से ही आया है। धूल में ही जाना उसकी नियति है। क्योंकि जो जहां से आता है वहीं वापस चला जाता है।
तुममें दो तत्व हैं। एक तो पृथ्वी से आया है, और एक आकाश से उतरा है। जो आकाश से उतरा है वही तुम हो। जो पृथ्वी से आया है वह केवल तुम्हारा आवरण है। वह तुम्हारा वेष्टन है, तुम उससे आच्छादित हो। पृथ्वी पृथ्वी में वापस लौट जाएगी। उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। वह उसका स्वभाव है। लेकिन वह मृत्यु तुम्हारी नहीं है। यह तुम उसी दिन जान पाओगे जिस दिन तुम तृष्णारहित होकर अपने भीतर जागोगे। क्यों तृष्णारहित होकर? क्योंकि जो तृष्णा से भरा है, वह जाग ही नहीं सकता। तृष्णा शराब है। वह बेहोशी है, वह अंधापन है।
सुना है मैंने, एक यहूदी फकीर वृद्धावस्था में अंधा हो गया। एक गांव से गुजर रहा था। अंधा था; किसी ने दया की और कहा कि अच्छा हुआ तुम यहां आ गए। यहां एक बड़ा चिकित्सक है, वह तुम्हारी आंखें ठीक कर देगा। उस फकीर ने कहा, लेकिन आंखें ठीक करवा कर करना क्या है? क्योंकि जो आंखों से देखा जा सकता था, खूब देख लिया, कुछ पाया नहीं। और जो आंखों के बिना देखा जा सकता है, उसे देख ही रहे हैं और खूब पा रहे हैं।
तो एक तो संसार है जो आंखों से देखा जा सकता है। लेकिन शरीर की आंखें वही देख सकती हैं जो शरीर जैसा है। पदार्थ को देख सकती हैं; पार्थिव को देख सकती हैं; पृथ्वी को देख सकती हैं। और एक वह भी है जो आंख बंद करके देखा जाता है। उसे देखने के लिए इन आंखों की कोई जरूरत नहीं है। उसे देखने के लिए आंख की ही जरूरत नहीं है। उसे तुम्हारा हृदय, उसे तुम्हारी अंतरात्मा देखती है, और जानती है। वह आंख बंद करके भी देख लिया जाता है।
उस फकीर ने ठीक ही कहा कि जो इन आंखों से देखा जा सकता था, खूब देख लिया, कुछ पाया नहीं। और जो इनके बिना देखा जा सकता है, उसे खूब भरपूर देख रहे हैं, और खूब पा रहे हैं। आंखों को ठीक करवाना किसे है? करवा कर आंखें ठीक क्या करेंगे?
"यह कैसे होता है?"
कैसे भीतर की आंख खुलती है? कैसे अमृत के दर्शन होते हैं? कैसे शरीर के पार तुम हो जाते हो, जहां मृत्यु नहीं पहुंचती, जहां शस्त्र नहीं छेदते, जहां आग नहीं जलाती, कैसे? जहां तुम बूढ़े नहीं होते, जहां जराजीर्णता नहीं आती?

कहता है लाओत्से, यह होता है मृत्यु के परे होकर।
"क्योंकि वह मृत्यु के परे है। बिकाज ही इ.ज बियांड डेथ।"
जैसे ही तुम जान लेते हो कि तुम मृत्यु के परे हो... । और तुम हो ही, इसलिए जानने में तुम देर कितनी ही लगाओ, कठिनाई कुछ भी नहीं है। टालो तुम कितना ही जानने को, जिस दिन जानना चाहोगे उसी दिन जान लोगे। आंख भर बंद करने की बात है। अपने को ही देखना है। कहीं जाना भी नहीं है; कोई यात्रा भी नहीं करनी है। कोई शर्त भी नहीं पूरी करनी है। किसी और से सौदा भी नहीं है, कोई कीमत भी नहीं चुकानी है। बस आंख बंद करनी है। थोड़ा तृष्णा को शिथिल करना है, ताकि दौड़ बंद हो।
दौड़ चलती रहे तो अपने घर कैसे आओगे? दौड़ चलती रहे तो तुम कहीं और, कहीं और। यह और की जो भीतर चल रही सतत धारा है, इसे थोड़ा कम करना है, ताकि तुम शांत बैठ सको। बैठते हो तुम ध्यान में, तब हजार विचार चलते हैं। मन दौड़ा ही रहता है, शरीर ही बैठा रहता है। शरीर को बिठाने से क्या होगा? वह जो दौड़ा हुआ मन है, वह बैठना चाहिए। वह बैठ जाए, तत्क्षण दर्शन हो जाएं। इधर मन बैठा, उधर आत्मा प्रकट हुई। और वह आत्मा अमृत है। वह न तो जीवन है, न वह मृत्यु है; वह दोनों के पार है। जब बिल्कुल जीवन नहीं था तब भी वह थी। और जब सारा जीवन खो जाएगा तब भी वह होगी। वह शाश्वतता है।
उस आत्मा को ही हम सत्य कहते हैं। सत्य का अर्थ होता हैः जो शाश्वत है,
जो सदा है, सदा था, सदा रहेगा। जिसके होने में कभी भी कोई भेद नहीं पड़ता; सब बदल जाए, पूरी सृष्टि प्रलय में चली जाए, नई सृष्टि हो जाए, लेकिन वह रहेगा वैसा ही जैसा था, उसके स्वभाव में रंच मात्र फर्क न आए, वही सत्य है। वैसे सत्य को तुम अपने भीतर लिए चल रहे हो।
तुम्हें परमात्मा ने सभी कुछ दिया है। लेकिन जो संपदा तुम्हारे पास है, उसको भी तुम नहीं देख पा रहे हो। दौड़ के कारण तुम बैठ नहीं पाते। वासना के कारण तुम शांत नहीं हो पाते। और के मंत्र के कारण राम का मंत्र नहीं जप पाते। इसे देखो, इसे पहचानो, इसे अपने भीतर विश्लेषण करो। क्योंकि लाओत्से के वचन किसी दार्शनिक के वचन नहीं हैं। लाओत्से के वचन एक ज्ञानी के वचन हैं--एक परम ज्ञानी के। और वह तुमसे जो भी कह रहा है, वह प्रयोग के लिए कह रहा है। वह तुम्हें कोई सिद्धांत नहीं दे रहा है; न तुम्हें किसी शास्त्र में बांधने का आयोजन है; न तुम्हें कोई रूढ़ अनुशासन दे रहा है। तुम्हें सिर्फ एक बोध दे रहा है। उस बोध की सुवास को तुम पकड़ो अपने भीतर तो ही लाओत्से की सही-सही व्याख्या तुम्हारी समझ में आएगी। अपने ही भीतर तुम जब जागोगे तब तुम पाओगे कि लाओत्से ने जो कहा है वह कैसा अनूठा है।
लेकिन बिना जागे, मैं कितना ही तुम्हें समझाऊं और कितना ही तुम्हें लगे कि समझ रहे हो, समझ पैदा न होगी। लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। तुम देखोगे अपनी ही आंख से तो ही जानोगे। लोगे स्वाद तो ही जानोगे। गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। तब एक मुस्कुराहट तुम्हारे तन-प्राण को भर लेगी। तब तुम्हारा रोआं-रोआं मुस्काएगा। क्योंकि तुमने एक स्वाद ले लिया। स्वाद से ही समझ होगी।
जो मैं तुम्हें समझा रहा हूं, यह स्वाद की तरफ इशारा है। यह असली समझ नहीं है, इससे असली समझ न होगी। इसे तुम असली समझ मत समझ लेना। नहीं तो रुक जाओगे। इससे तो तुम पंडित बन जाओगे। इसको पांडित्य मत बनाना। इसको तो सिर्फ इशारा समझना--मील का एक पत्थर जिस पर लगा है तीर। उधर बैठ मत जाना। थोड़ी देर विश्राम कर लेना विश्राम करना हो तो। मेरे शब्दों के साथ थोड़ा विश्राम कर लेना करना हो तो। लेकिन यात्रा करनी है। यह सारा समझाना इसलिए है, ताकि तुम स्वाद ले सको। और स्वाद मिल जाए, तभी असली समझ आएगी। उसके पहले, उसके पहले न कभी आई है, न आ सकती है।
आज इतना ही।

नवासीवां प्रवचन

ताओ या धर्म पारनैतिक है

Chapter 51

The Mystic Virtue

Tao gives them birth,
Teh (character) fosters them.
The material world gives them form.
The circumstances of the moment complete them.
Therefore all things of the universe worship Tao and exalt Teh.
Tao is worshiped and Teh is exalted
Without anyone"s order but is so of its own accord.
Therefore Tao gives them birth,
Teh fosters them, makes them grow, develops them.
Gives them a harbour, a place to dwell in peace,
Feeds them and shelters them.
It gives them birth and does not own them,
Acts (helps) and does not appropriate them,
It is superior, and does not control them.
-- This is the Mystic Virtue.

अध्याय 51
रहस्यमय सदगुण

ताओ उन्हें जन्म देता है, और तेह (चरित्र) उनका पालन करता है;
भौतिक संसार उन्हें रूपायित करता है;
और वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं।
इसलिए संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं और तेह की प्रशंसा।
ताओ पूजित है और तेह प्रशंसित।
और ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।
इसलिए ताओ उन्हें जन्म देता है,
तेह उनका पालन करता है, उन्हें बड़ा करता है, विकास देता है,
उन्हें आश्रय देता है, शांति से रहने की जगह देता है।
यह उन्हें जन्म देता है, और उन पर स्वामित्व नहीं करता;
यह कर्म (सहायता) करता है, और उन्हें अधिकृत नहीं करता;
श्रेष्ठ है, और नियंत्रण नहीं करता।
-- यही है रहस्यमय सदगुण।

शुभ को शुभ मानना साधारण सी बात है, कोई सदगुण नहीं। अशुभ को भी शुभ मानना सदगुण की महिमा है। साधु पर भरोसा तथ्यगत है, तुम्हारा कोई गौरव नहीं। असाधु पर भी भरोसा तुम्हारा गौरव है, सदगुण की श्रद्धा है।

सबसे पहले सदगुण का अर्थ समझ लें।

सदगुण नीति नहीं है। नीति तो तथ्य पर पूरी हो जाती है। कोई अच्छा है, उसका स्वागत करो; कोई बुरा है, उसे दंड दो। नीति बहुत साधारण सामाजिक व्यवहार है। साधु की प्रशंसा करो, असाधु की निंदा। अगर असाधु की भी प्रशंसा करोगे तो इससे साधुता की हानि होगी। भेद रखो। नीति भेद करती है। बुरे को दंड दो; भले को पुरस्कार दो। नीति नरक और स्वर्ग बनाती है। जो भले हैं उनके लिए स्वर्ग, जो बुरे हैं उनके लिए नरक। नीति पापी और पुण्यात्मा को अलग-अलग करती है।

सदगुण नैतिक बात नहीं है; सदगुण नीति के पार है।
लाओत्से कहता है, बुरे की भी मैं प्रशंसा करता हूं, भले की भी; यही सदगुण की श्रद्धा है।
तो सदगुण पारनैतिक है--बियांड मारेलिटी। उसका सामाजिक व्यवहार से कोई संबंध नहीं। उसका अगर कोई भी संबंध है तो विश्व की आंतरिक सत्ता से है, परमात्मा से है।
नीति का संबंध है समाज से, समूह से, हमारे आस-पास जो लोग हैं उनसे। धर्म
का संबंध है व्यक्ति का समष्टि से; समाज से नहीं, समष्टि से। हम जैसे ही आदमियों से नहीं, बल्कि हमारे पार जो हमारा मूल स्रोत है, जो हम सबकी नियति है, उस पारलौकिक तत्व से। उस पारलौकिक तत्व की दृष्टि में न तो कोई बुरा है, न कोई भला। न तो वह किसी को दंड देता है और न किसी को पुरस्कृत करता है। लेकिन तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारे धर्मशास्त्र कहते हैं, परमात्मा बुरे को दंडित करेगा और परमात्मा भले को स्वर्ग देगा, और बुरे को नर्क में डालेगा, सड़ाएगा, गलाएगा, आग में जलाएगा। ये शास्त्र भी सामाजिक हैं, और ये शास्त्र भी नीति के ही आधार से लिखे गए हैं। इन शास्त्रों में भी सामाजिक व्यवहार सिखाया गया है। लाओत्से का शास्त्र भिन्न है। यह पारलौकिक है। उपनिषद न दंड की बात करते, न पुरस्कार की। उपनिषद पारलौकिक हैं।
दुनिया में दो तरह के शास्त्र हैं, नैतिक शास्त्र और पारलौकिक शास्त्र। जो पारलौकिक शास्त्र हैं वही धार्मिक शास्त्र हैं। नीति के शास्त्र जरूरी हैं, पर उनमें कोई गुण-गौरव नहीं। नीति के शास्त्र इसलिए जरूरी हैं कि तुम बुरे हो, अन्यथा उनकी कोई उपादेयता नहीं। राह के चौराहे पर पुलिसवाला खड़ा है, वह कोई गरिमा नहीं है। अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा है, वह कोई गौरव नहीं है। वे हमारी दीनता के प्रतीक हैं। वे हमारी क्षुद्रता के सबूत हैं। वह पुलिसवाला खड़ा है वहां इसलिए, क्योंकि तुम पर भरोसा नहीं किया जा सकता कि तुम रास्ते के नियम का पालन करोगे। तुम भरोसे योग्य नहीं हो। वह पुलिसवाला तुम्हारी महिमा की खबर नहीं दे रहा है, तुम्हारे चोर, बेईमान, नियमहीन होने की सूचना दे रहा है। अदालतों के बड़े-बड़े भवन तुम्हारे गौरव की गाथा नहीं कहते; तुम्हारे अपराधों के भवन हैं। बड़े आश्चर्य की बात है! अदालतों के हम बड़े आलीशान भवन बनाते हैं। अपराध की कथा है वहां। वहां तुम्हारा सारा नरक लिखा हुआ है। वह अदालत खड़ी इसलिए है कि तुम ठीक नहीं हो। अदालत अस्पताल है। अस्पताल से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है। क्योंकि आदमी रुग्ण है, इसलिए नीति की जरूरत है। अगर सारे लोग स्वस्थ हो जाएं तो चिकित्सा खो जाएगी। और सारे लोग अगर सदवृत्ति के हो जाएं तो नीतिशास्त्र खो जाएगा।
लेकिन धर्मशास्त्र फिर भी रहेगा। वस्तुतः तभी धर्मशास्त्र शुरू होता
है जहां नीति पूरी होती है। धर्मशास्त्र के नाम से बहुत से नीतिशास्त्र भी धर्मशास्त्र माने जाते हैं। क्योंकि तुम्हारी आंखें उतने ऊपर नहीं देख सकतीं, जहां धर्मशास्त्र हैं। तुम नीति तक देख पाते हो।
जब पहली दफा उपनिषदों का अनुवाद हुआ पश्चिम की भाषाओं में तो पश्चिम
के विचारक बड़े चिंतित हुए। क्योंकि उपनिषदों में बाइबिल जैसी दस आज्ञाएं नहीं हैं; टेन कमांडमेंट्स का कोई उल्लेख नहीं है। चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, पर-स्त्री को मत देखो, ऐसी उपनिषदों में कोई बात ही नहीं। पश्चिम के विचारक बड़े हैरान हुए कि ये कैसे धर्मशास्त्र हैं! इनमें कुछ भी तो नीति- व्यवहार की बात नहीं। नीति, नियम, व्रत, अनुशासन, कुछ भी तो नहीं। सिर्फ ब्रह्म की चर्चा करते हैं। इस चर्चा से कहीं कोई धार्मिक हुआ है? बाइबिल--पुरानी और नई दोनों--किन्हीं-किन्हीं हिस्सों में धार्मिक हो पाती हैं। अन्यथा वे नैतिक शास्त्र हैं। कुरान कभी-कभी धार्मिक हो पाता है; अन्यथा नब्बे प्रतिशत नीतिशास्त्र है। वेद कभी-कभी धार्मिक हो पाता है, अन्यथा नीतिशास्त्र है। उपनिषद शुद्ध सोना है। आभूषण हम सोने का बनाते हैं तो कुछ न कुछ अशुद्ध करना पड़ता है, कुछ मिलाना पड़ता है। तो अठारह कैरेट होगा, सोलह कैरेट होगा, चौदह कैरेट होगा--लेकिन ठीक चौबीस कैरेट नहीं होता। क्योंकि सोना इतनी मुलायम धातु है कि उसके आभूषण नहीं बन सकते; थोड़ी सख्ती

चाहिए। धर्म का शुद्ध सोना, चौबीस कैरेट, तो मुश्किल से कभी किसी शास्त्र में मिलता है। फिर तुम जहां खड़े हो उतने ही नीचे धर्म को उतारना पड़ता है, क्योंकि तुम्हीं को सम्हालना है। जितना धर्म नीचे उतरता है उतना नैतिक हो जाता है।
तो उपनिषद या लाओत्से का ताओ तेह किंग या हेराक्लाइटस के वचन परम, आखिरी हैं। चौबीस कैरेट सोना हैं। तुम अगर न समझ पाओ तो अपनी मजबूरी समझना। तुम्हें अगर लाओत्से को समझना हो तो बड़ी ऊंची आंखें उठानी पड़ेंगी। अब अगर तुम गौरीशंकर देखना चाहते हो तो टोपी गिरेगी। तुम अगर टोपी को सम्हाले रहे तो गौरीशंकर न देख सकोगे। उतनी ऊंची आंखें उठानी हों तो तुम वैसे ही थोड़े खड़े रहोगे जैसे तुम बाजार में चलते हो, समतल भूमि पर चलते हो। आंख उठाने के लिए गर्दन मुड़ेगी, टोपी गिरेगी। जिन्होंने भी धर्मशास्त्र को जाना, टोपी ही नहीं, उनका सिर गिर गया, उनकी बुद्धि गिर गई, उनका सोचना-विचारना तहस-नहस हो गया। तभी वे जान पाए। उतने शुद्ध को जानने के लिए उतना ही शुद्ध होना पड़ेगा।
सदगुण की परिभाषा लाओत्से की है कि जब तुम बुरे को भी भला जानो, और जब तुम पापी को भी आशीर्वाद दे सको, और जब तुम्हारे हृदय में पापी के लिए भी स्वर्ग की सुविधा हो। पुण्यात्मा के स्वर्ग के जाने में कौन सा गुण-गौरव है? गणित की बात है; काव्य तो बिल्कुल नहीं। दुकानदारी की बात है। जो भला है वह स्वर्ग जाएगा; जो बुरा है वह नरक जाएगा। परमात्मा दुकानदार है जैसे। लिए है तराजू, बैठा है, तौल रहा है; तराजू में जो हिसाब में आ जाए। तो परमात्मा भी बुद्धि बन जाता है फिर, हृदय नहीं। हृदय तो शुभ-अशुभ को पार कर जाता है। एक मां के दो बेटे हैं। एक अच्छा है, एक बुरा है; इससे क्या फर्क पड़ता है? और अगर फर्क पड़ जाए तो मां भी दुकानदार है, मां नहीं। सच तो यह है कि अच्छे की चाहे मां थोड़ी कम चिंता करे, बुरे की ज्यादा करेगी। क्योंकि अच्छा तो अच्छा है ही, बुरे को भी उठाना है। जो खड़ा है उसको सम्हालने की क्या जरूरत, जो गिर गया है उसको सम्हालना है। जो स्वस्थ है उसको औषधि की क्या मांग, जो अस्वस्थ है उसे औषधि देनी है। तो भला तो अगर नरक में भी चला जाए तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि वह अपना स्वर्ग अपने साथ लिए है, बना लेगा वहां भी; बुरे को तो स्वर्ग में ले जाना ही होगा, अपने हाथ से तो वह नरक चला जाएगा। तो लाओत्से कहते हैं, सदगुण की श्रद्धा क्या है? सदगुण की श्रद्धा अशुभ में भी शुभ को देखने की क्षमता। अशुभ में भी छिपे शुभ के दर्शन। अंधेरी रात में भी जो सुबह को देख ले, वही सदगुण की श्रद्धा है।
सुबह तो, सुबह के सूरज को तो फिर अंधा भी पहचान लेता है, आंखों की कोई गरिमा नहीं। सुबह का उत्ताप तो अंधे को भी मालूम पड़ने लगता है; वह भी कह देता है, सूरज उग गया। रात के घने अंधेरे में, जब सूरज की एक किरण भी नहीं रहती, जब कोई भी प्रमाण नहीं रह जाता सूरज का, जब सब तरफ से सूरज विलीन हो जाता है, तब भी जो सुबह को जानता है, पहचानता है, जो सुबह की आशा और भरोसे से भरा है, उसी के पास आंख है देखने वाली।
इसी को लाओत्से सदगुण की श्रद्धा कहता है। पापी में भी पुण्यात्मा के दर्शन, अंधेरी रात में सुबह के दर्शन हैं। बुरे में भले को देख लेना, कांटे में भी छिपे हुए फूल के रस को पहचान लेना है। तब तुम सभी को आशीर्वाद दे सकते हो। तब तुम्हारे मन से निंदा विलीन हो जाती है। जब तक निंदा है, तब तक सदगुण नहीं। जब प्रशंसा बेशर्त है, जब तुम कोई शर्त नहीं लगाते कि मैं इसलिए प्रशंसा करूंगा। जब तुम्हारी प्रशंसा मनुष्य के होने मात्र में काफी है। तुम हो इतना ही क्या कम है! बुरे हो या भले हो, ये गौण बातें हैं; चोर हो कि साधु हो, ईमानदार हो कि बेईमान हो, ये तो ऊपर-ऊपर व्यवहार की बातें हैं। इससे तुम्हारी आत्मा का क्या लेना-देना?
तुम्हारे कृत्य तुम्हारी परिधि से ज्यादा नहीं हैं। जैसे सागर की छाती
पर लहरें हैं, लेकिन सागर की गहराई में कहां लहरें हैं? ऐसे ही तुम्हारी ऊपर की सतह पर लहरें हैं। अपराध की लहर तुम्हें अपराधी नहीं बनाती। लहर तो ऊपर ही घूमती है, खो जाती है; बनती है, मिट जाती है; तुम भीतर तो अछूते रह जाते हो। लहर तो हवा का झोंका है, तुम नहीं। कृत्य तुम्हारा बुरा भी हो या भला हो, इससे तुम्हारे अस्तित्व का कोई भी लेना-देना नहीं है। तुम्हें पता

न हो, तुम भी सोचते होओ कि मैं अपराधी हूं, बुरा हूं, लेकिन जिसके पास आंखें हैं उसे तो दिखाई पड़ता है। तुम भला संत के पास इसलिए जाओ कि मैं पापी हूं, उसके पास जाऊंगा तो शायद पुण्य की तरफ मुझे भी स्वाद लग जाए, तुम चाहे अपनी आत्मनिंदा से भरे होओ, लेकिन संत तो तुम्हारे भीतर उगते हुए सूरज को ही देखता है। संत तो तुम्हारी संभावना को देखता है, तुम्हारे भविष्य को देखता है। संत तो तुम्हारे केंद्र को देखता है, तुम्हारी परिधि को नहीं।
वही सदगुण है। सदगुण द्वंद्वातीत है। द्वैत से उसका कोई संबंध नहीं; अच्छे-बुरे का विभाजन नहीं करता। क्या है इस बात को कहने का अर्थ कि शुभ में भी शुभ देखता है, अशुभ में भी शुभ देखता है, भले पर श्रद्धा करता है, बुरे पर भी श्रद्धा करता है? इसका मतलब क्या है?
इसका मतलब इतना ही है कि अब भले और बुरे में कोई फासला न रहा। अब भला और बुरा समान हो गए। अब जहर और अमृत एक जैसे हैं। अब जन्म और मृत्यु बराबर हैं। अब पाना और खोना एक ही बात हो गए। सब द्वंद्व मिट गया, सब द्वैत गिर गया। अद्वैत की धारा जगी है।
अद्वैत सदगुण है। एक को जान लेना सदगुण है। और उस एक को जानना ही धर्म है।
नीति तो दो को मानती है। इसलिए नीति धर्म नहीं है। इसे समझो, क्योंकि नैतिक होने के लिए धार्मिक होना जरूरी भी नहीं है। नास्तिक भी नैतिक हो जाता है। हो सकता है; अक्सर होता है। तुम अगर नैतिक आदमी खोजना चाहो तो जितने तुम्हें माओ और स्टैलिन के देश में मिलेंगे उतने और कहीं नहीं। रूस नास्तिक है, लेकिन अगर तुम नैतिक आदमी खोजना चाहो तो तुम्हें जितने रूस में मिलेंगे उतने कहीं भी नहीं। भारत में तो कभी भी नहीं।
नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। सच तो यह है कि नास्तिक के पास नैतिक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। वह उसकी ऊंची से ऊंची दशा है। नास्तिक भी नैतिक हो सके तो फिर आस्तिक होने में सार क्या है?
आस्तिक का सार उस सदगुण में है जो नीति के पार है। आस्तिकता समाज के पार ले जाती है। समाज सब कुछ नहीं है। तुम्हारे संबंधों का जाल सब कुछ नहीं है। सच तो यह है, संबंधों का जाल बाहर-बाहर है; समाज बाहर है, तुम्हारे भीतर नहीं। तुम्हारे भीतर तो तुम ही हो--अपनी प्रगाढ़ता में, नीरव निबिड़ता में, शून्य में। भीतर की परम सत्ता में तुम्हारे प्रकाश के अतिरिक्त वहां कुछ भी नहीं है। वहां न मित्र हैं, न प्रियजन हैं, न सगे-संबंधी हैं। वहां बाहर की कोई रेखा भी नहीं पहुंचती, कोई धुन भी नहीं पहुंचती, कोई आवाज भी भीतर सुनी नहीं जाती। वहां तो तुम बिल्कुल अकेले हो।
कबीर ने कहा है, एक-एक जिन जानिया।
जिन्होंने भी जाना उन्होंने एक होकर जाना, भीतर अकेले होकर जाना। उनका अकेलापन बड़ी रोशनी से भरा है। तुम कभी अकेले भी होते हो तो तुम्हारा अकेलापन बड़ी उदासी से भर जाता है। क्योंकि अकेला होना तुम जानते ही नहीं। दो तरह के अकेलेपन हैं। दो शब्द याद रखोः एक शब्द है एकांत और एक शब्द है एकाकीपन। एकांत का अर्थ है अलोननेस। एकांत बड़ा विधायक, पाजिटिव शब्द है। उसका अर्थ हैः अपने होने के रस में निमग्न, जहां दूसरे की याद भी नहीं, जहां दूसरे का अभाव खलता नहीं, जहां दूसरा है भी इसका भी पता नहीं। जहां अपना होना इतना विस्तीर्ण है, इतना गहरा है कि चुकता नहीं; जहां अपने ही रस में तुम डूबे हो; जहां अपने में ही निमग्न हो, अपने में ही लीन हो। और यह होने की दशा बड़ी पाजिटिव, विधायक है; क्योंकि दूसरे का न कोई पता है, न कोई स्मृति है, न दूसरे का अभाव खलता है। अपना होने का भाव इतने आनंद से भर रहा है-- एकांत, अलोननेस।
और तब एक दूसरी दशा हैः लोनलीनेस, एकाकीपन। वह नकारात्मक है, निगेटिव है। तब भी तुम अकेले हो, लेकिन अकेले होने में कोई रस नहीं है; तुम अपने में डूबे नहीं हो; दूसरे की याद सता रही है, दूसरे की कमी खल रही है। नजर दूसरे पर लगी है कि दूसरा नहीं है। वह पत्नी हो, मित्र हो, प्रेयसी हो, कोई भी हो; लेकिन दूसरे की मौजूदगी का अभाव एकाकीपन है। और अपनी मौजूदगी का भाव एकांत है।

और जब तक तुमने एकांत नहीं जाना तब तक तुम लाओत्से को न समझ पाओगे। तुमने एकाकीपन तो बहुत बार जाना है, वह खालीपन की बात है। मन अपने को कहीं उलझा लेना चाहता है। तो तुम अखबार पढ़ने लगते हो, रेडियो खोल देते हो, टेलीविजन देखने लगते हो, सिनेमा चले जाते हो, क्लब पहुंच जाते हो, होटल में जाकर बैठ जाते हो। दूसरे की मौजूदगी तुम्हें बाहर उलझाए रखती है। और जब भी दूसरे की मौजूदगी नहीं होती, तुम्हें लगता है, अब क्या जीवन में सार? तुमने अपना सार कभी जाना नहीं; तुम्हारा सारा सार दूसरे से जुड़ा है। तुम्हारे होने के सब ढंग में दूसरा हमेशा मौजूद रहा है। तुमने अकेले का रस नहीं जाना; तुमने कभी अपने को पीया नहीं।
तुमने और सब तरह की शराब जानी, लेकिन वह सब शराब दूसरे से आती है। तुमने
एक शराब नहीं जानी जो अपने ही भीतर निर्मित होती है, जो स्वयं के होने में ही छिपी है। और जो उसमें बेहोश हो जाता है वह सदा के लिए होश से भर जाता है। एकांत को तुम जानोगे तो ही तुम धर्म को जानोगे। और एकांत तक जिसे पहुंचना हो उसे द्वंद्व पैदा करने वाली सभी धारणाओं को छोड़ देना जरूरी है। और तुम्हारे शुभ-अशुभ की धारणाएं भी द्वंद्व पैदा करती हैं। किसी की तुम निंदा करते हो; किसी की तुम प्रशंसा करते हो; किसी की तुम पूजा करते हो; किसी का तुम अपमान करते हो। तुम्हारी धारणा--क्या ठीक है, क्या गलत है; यह ठीक है, यह गलत है--तुम्हें बांटे रखती है। भीतर जाना हो तो अनबंटा होना पड़ेगा। अनबंटा होना सदगुण है। वह सदगुण की श्रद्धा है।
क्यों तुम करते हो निंदा? क्यों करते हो प्रशंसा? पीछे बड़े गहरे जाल हैं, वे समझ लेने जरूरी हैं। तब हम लाओत्से के सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे। लाओत्से के समय में एक आदमी हुआ कनफ्यूशियस। जगत में दो ही तरह के लोग हैं। तुम भी या तो लाओत्से के मानने वाले हो सकते हो या कनफ्यूशियस के। बस दो ही विभाजन हैं। और सदा से एक धारा कनफ्यूशियस की है, वह अलग बह रही है। और एक धारा लाओत्से की है, वह बिल्कुल अलग बह रही है।
कनफ्यूशियस है नीतिवादी, समाजवादी, समूहवादी--आचरण, व्यवहार। लाओत्से
है नीति का अतिक्रमण करने वाला, समाज के पार एकांत में ले जाने वाला। लाओत्से का संबंध स्वभाव से है, आचरण से नहीं; तुम्हारी मूल प्रकृति से है, तुम्हारे होने से है, तुम क्या करते हो इससे नहीं। और जब हम ठीक से समझेंगे तो हम समझ पाएंगे कि क्यों इतना जोर उसका है।
कहते हैं कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया था तो बहुत डर गया। क्योंकि
जब लाओत्से की बातें उसने सुनीं तो उसने कहा, यह तो अराजकता हो जाएगी। तुम तो नष्ट कर दोगे समाज को। नीति कहां बचेगी?
नीति का आधार ही दंड और पुरस्कार है। कनफ्यूशियस का जोर उस पर है कि बुरे को दंड दो, ताकि बुरा दुबारा बुरा काम न कर सके; भले को पुरस्कृत करो, ताकि दुबारा भला काम करने का लोभ जगे। और ध्यान रखना, दुनिया कनफ्यूशियस को मान कर चल रही है। लाओत्से को मानने वाला तो कभी कोई एकाध है--कोई विरला जन। सारी दुनिया कनफ्यूशियस के आधार पर निर्मित हुई है। फिर कनफ्यूशियस की धारा में बहुत लोग आए हैं; मार्क्स, स्टैलिन, लेनिन, माओ, सभी कनफ्यूशियस की धारा में हैं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि चीन जैसे बौद्ध मुल्क में कम्युनिज्म सफल कैसे
हो गया?
सफल होने का कारण है। क्योंकि चीन के विचार का जो आधार है वह कनफ्यूशियस है। और कनफ्यूशियस और मार्क्स बिल्कुल एक जैसे चिंतक हैं। अगर भारत में किसी दिन कम्युनिज्म आया तो तुम चकित होओगे, उसका कारण बुद्ध और महावीर नहीं होंगे, उसका कारण मनु और मनु की स्मृति होगी। क्योंकि मनु ठीक कनफ्यूशियस जैसा विचारक है। कनफ्यूशियस, मनु, मार्क्स, माओ--अगर राजनीति के जगत में तुम्हें देखना हो तो ये एक ही सूत्र में बंधे हुए लोग हैं। मार्क्स कहता है कि चेतना का कोई भी मूल्य नहीं है; समाज की परिस्थिति मूल्यवान है। समाज की जैसी परिस्थिति होती है, चेतना वैसी ही ढल जाती है। चेतना का कोई मूल्य नहीं है, मूल्य है समाज की व्यवस्था का। अगर लोगों को बदलना हो, व्यवस्था को बदल दो। और अगर लोगों को बदलना हो तो बुरे को दंडित करो।

इसलिए तो रूस में कोई एक करोड़ लोग मार डाले उन्होंने। जिसको वे बुरा समझते थे उसको फिर उन्होंने ठीक से ही दंडित कर दिया। चीन में भयंकर दंड दिया जा रहा है। लाखों लोग जेलों में पड़े हैं। बुरी तरह सताए जा रहे हैं। जिसको भी चीन की आज की धारणा, माओ की धारणा समझती है कि बुरे लोग हैं, उनके जीने का कोई उपाय नहीं है। और बुरा कौन है? बुरा वही है जो तुम्हारी धारणा से मेल न खाए।
आखिर चोर का कसूर क्या है, जिसको हमने जेल में डाल रखा है? उसका कसूर इतना ही है कि वह हमारी व्यक्तिगत संपत्ति की धारणा में भरोसा नहीं करता। उसका कसूर क्या है? वह एक तरह का साम्यवादी है। वह यह कहता है कि संपत्ति सब की है। इसलिए तुम्हारी संपत्ति उठा कर ले गया। वह कहता है, संपत्ति पर किसी की मालकियत नहीं है। कहता न हो, लेकिन यह उसकी भीतरी गहरी धारणा है। तुम मालिक हो, यही सिद्ध नहीं है, वह यह कह रहा है। इसलिए तुम्हें अधिकार क्या है कि तुम रखे रहो? वह यह कह रहा है कि जिसके पास ताकत हो वह ले जाए। ताकत मालिक है। माइट इ.ज राइट। जिसको भी तुम गलत समझते हो--और गलत तुम उसे समझते हो जो तुम्हारी धारणा के प्रतिकूल है--उसे तुम जेल में डाल देते हो।
तुम सोचते हो कि दंड देने से वह फिर यह काम न करेगा। तो तुम गलती में हो। और तुम अंधे हो, और इतिहास को तुम कभी देखते नहीं। क्योंकि हमने कितना दंड दिया, लेकिन पाप रत्ती भर कम नहीं हुआ। और लाओत्से खिलखिला कर हंस रहा है पूरे इतिहास के राह के किनारे खड़े कि तुमने कितना दंड दिया, लेकिन अपराधी कम कहां हुए? बढ़ते चले गए। और जिसको तुम एक बार दंड देते हो, फिर कभी तुम लौट कर नहीं देखते कि तुम्हारे दंड से वह सुधरा? जेलखाने में जो एक बार हो आया, वह फिर बार-बार जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे पर मुकदमा चला। कई बार उसे सजा दी जा चुकी। जेब काटने की उसे आदत है। मजिस्ट्रेट को भी दया आने लगी, क्योंकि वह कई बार सजा काट चुका और फिर भी वही करता है। आखिर उसने मुल्ला को बुलाया और कहा कि तुम बाप होकर इसे समझाते क्यों नहीं? यह बार-बार वही कर रहा है; दंड पा रहा है। तुम इसे समझाओ। मुल्ला ने कहा, समझा-समझा कर मैं भी हार गया; सुनता ही नहीं। कितनी बार इसे समझाया कि ढंग से काट, पकड़ा मत। सिखा-सिखा कर परेशान हो गए हैं।
जेलखाने से लोग सीख कर लौटते हैं कि कैसे ढंग से काटें, कैसे ढंग से चोरी करें। क्योंकि वहां उस्ताद उपलब्ध हो जाते हैं। जेलखाना एक विश्वविद्यालय है अपराधों का। आदमी नया-नया जाता है, सिक्खड़ होता है, चेला होता है। वहां बड़े गुरु मिल जाते हैं जो निष्णात हैं, जिनसे वह कई कलाएं सीख कर लौटता है, जिनके अभाव में वह पकड़ा गया था। वह वहां से और मजबूत होकर लौटता है, वहां से वह और तैयार होकर लौटता है।
सारा इतिहास यह कहता है कि जितना हमने दंड दिया, उतने लोग बुरे होते गए। लेकिन अंधे लोग देखते भी नहीं कि क्या हो रहा है। तुम्हारे पुरस्कार से कौन भला हो गया है? तुम्हारे पुरस्कार से इतना ही हुआ है कि लोग भले का नाटक कर रहे हैं; पाखंडी हो गए हैं। और जो आदमी पुरस्कार के लोभ और लालच में भला है, क्या वह भला है? उसकी साधुता कितनी गहरी है? चमड़े की जितनी गहरी भी नहीं है। हड्डियों तक नहीं पहुंच सकती; आत्मा तक तो पहुंचने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन यह सूत्र है हमारी धारणा का। मनोविज्ञान में भी कनफ्यूशियस से राजी होने वाले लोग हैंः रूस का पावलफ, अमरीका में जिंदा एक मनोवैज्ञानिक है बी.एफ.स्कीनर। उन सबका कहना यह है कि एक ही ढंग है नीति को लाने का और वह यह है कि बचपन से ही बच्चे को, अगर वह बुरा करे तो ठीक से दंड दो, वह भला करे, पुरस्कार दो। और यही हम सब कर रहे हैं। यद्यपि पूरा इतिहास हमारा असफल हुआ है, लेकिन लाओत्से की कोई सुनने को राजी नहीं। सुनते हम कनफ्यूशियस की हैं। क्योंकि किन्हीं कारणों से वह सरल मालूम पड़ता है। उसे मैं समझाऊंगा कि क्यों। कनफ्यूशियस गलत होते हुए सरल मालूम पड़ता है, लाओत्से ठीक होते हुए गलत मालूम पड़ता है, या सुनने योग्य मालूम नहीं पड़ता।
तुम भी यही कर रहे हो अपने बच्चों के साथ। उससे कुछ बदलता नहीं। तुम दंड देते हो; बच्चा दंड के लिए धीरे-धीरे राजी हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा

होता है कि अच्छे बाप बुरे बेटे पैदा करते हैं; अच्छे परिवारों से अपराधी निकलते हैं। जब बाप बहुत कोशिश करता है अच्छा करने की तो बेटे बुरे हो जाते हैं। वहीं कुछ सड़ जाता है, उस चेष्टा में ही कुछ मर जाता है, क्योंकि बाप अतिशय चेष्टा करता है। तो दो ही उपाय हैं। या तो बेटा पाखंडी हो जाए, वह ऐसा चेहरा दिखाने लगे जैसा वह नहीं है; चेहरा ओढ़ ले। तो पुरस्कार भी पा ले और कोई पीछे का दरवाजा भी खोल ले, जहां से जो उसे रसपूर्ण लग रहा है वह भी किए जाए। और जिस-जिस को हम पाप कहते हैं, वह हमारे पाप कहने से और भी रसपूर्ण हो जाता है, उसमें और आकर्षण आ जाता है, उसमें चुंबक पैदा हो जाता है।
एक घर में ऐसा हुआ कि घर के लोग बड़े नीति-नियम वाले लोग थे; एक भोज में आमंत्रित थे। तो घर के छोटे से बच्चे को उन सबने कहा कि देखो, ध्यान रखना, कोई चीज मांगना मत। सब चीज दी जाएगी; प्रतीक्षा करना, मांगना मत। घर में मांगते हो, वह एक बात। कोई चीज पसंद भी पड़े तो अपने पर नियंत्रण रखना और चुप रहना। जितना मिले उतने में राजी रहना। संयोग की बात, काफी लोग थे भोज में और लोग गपशप में लगे थे, छोटे से बच्चे को लोग भूल ही गए। उसके हाथ में प्लेट तो दे दी गई, आइसक्रीम बांटी जा रही थी, लेकिन लोग उसे भूल ही गए।
वह थोड़ी देर तो प्लेट लिए बैठा रहा। अब सोच सकते हो, एक छोटा बच्चा, आइसक्रीम बंटती हो और प्लेट लिए खाली बैठा हो। काफी दमन करना पड़ा होगा। फिर उसे जब आशा छूट गई, लगा कि अब तो आइसक्रीम दूर भी चली गई और अब कोई लौट कर आने का उपाय नहीं है, लोग बातचीत में लगे हैं, उसका किसी को ख्याल ही नहीं है; मौका पाकर जब उसने देखा कि एकाध-दो क्षण को सन्नाटा था, लोग आइसक्रीम खाने में लग गए, तो उसने खड़े होकर जोर से कहा कि किसी को खाली प्लेट तो नहीं चाहिए! खाली प्लेट ऊपर उठा कर। तब लोगों को पता चला कि उसको आइसक्रीम नहीं मिली।
छोटे बच्चे भी रास्ता तो निकाल ही लेंगे। तो बड़ों का तो क्या कहना? न मांगेंगे आइसक्रीम तो खाली प्लेट बता देंगे। पीछे से कोई द्वार खोलना पड़ेगा। आगे एक झूठा चेहरा और जीवन का पीछे का एक द्वार। करो कुछ, कहो कुछ, बताओ कुछ। जीवन खंड-खंड कर लो; इकट्ठे न रह जाओ।
सारे दंड और सारे पुरस्कार का परिणाम इतना हुआ है कि कुछ लोग पापी हो
गए हैं, अपराधी, और कुछ लोग पाखंडी हो गए हैं। पाखंडियों को तुम नैतिक कहते हो। पाखंडी का कुल मतलब इतना है कि कर तो वह भी वही रहा है जो दूसरे कर रहे हैं, लेकिन कुशलता से कर रहा है। वह ज्यादा चालाक है। निक्सन पकड़ लिया गया, इससे तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे दूसरे राजनीतिज्ञ, दूसरे मुल्कों के, वही नहीं कर रहे हैं जो निक्सन ने किया। करीब-करीब सभी राजनीतिज्ञ वही करते हैं। निक्सन थोड़ा ज्यादा आत्मविश्वास में फंस गया। अपने ही हाथ से फंस गया कि वह जो भी बोलता था वह उसने टेप करवा लिया। बोलते तो सभी राजनीतिज्ञ यही हैं।
तुम अगर उनकी अंतरंग वार्ता सुनो तो बड़े हैरान होओगे। वह बिल्कुल सड़क-छाप है; वह बातचीत, जो सड़क के किनारे बैठे हुए लोग करते हैं, उससे भी बेहूदी है। होगी ही। क्योंकि एक-दूसरे की जड़ें काटने की ही तो सारी बात है। ऊपर से मिलते हैं तो मुस्कुराते हैं, और भीतर एक-दूसरे को काट रहे हैं। और ऐसा नहीं कि विरोधी ही काट रहे हैं, जो अपने हैं वे भी काट रहे हैं। क्योंकि राजनीति में सभी एक-दूसरे के विरोधी हैं। अपना तो कोई है ही नहीं वहां। अपना तो राजनीति में कोई हो ही नहीं सकता। क्योंकि जहां पूरी दौड़ प्रतिस्पर्धा की हो वहां कोई जयप्रकाश ही इंदिरा के खिलाफ नहीं होते, चव्हाण भी भीतर से वही करते हैं। कोई बाहर से विरोधी है, कोई भीतर से विरोधी है; कोई भेद नहीं है। कुछ शत्रु हैं जो मित्र की तरह खड़े हैं और कुछ शत्रु हैं जो शत्रु की तरह खड़े हैं, बस इतना ही फर्क है। अगर तुम उनकी भीतरी बातें सुनो--जैसा मुझे सुनने का मौका मिला है--तो तुम चकित होओगे। वे साधारण आदमी से गए-बीते हैं। लेकिन तुम उनके पब्लिक चेहरे से परिचित हो; सार्वजनिक उनका जो मुखौटा है, जब वे सभा के मंच पर आते हैं, उससे तुम परिचित हो। तब वे लोकोद्धारक हैं, सर्वोदयी हैं, तब वे जनता के कल्याण के लिए हैं। और ये सब थोथे शब्द हैं, और इनके पीछे सिवाय पद की आकांक्षा के और शक्ति की लोलुपता के कुछ भी नहीं है। और शक्ति की लोलुपता इस जगत में बड़ी अंधी दौड़ है। वह न अपने को जानती है, न

पराए को जानती है। क्योंकि शक्ति की लोलुपता महा हिंसा है। ये सब बातें हैं। पांच साल पहले इंदिरा समाजवाद की बात कहती थी; वह खो गई। अभी जयप्रकाश कहते हैं। उनको बिठा दो पद पर, ऐसे ही खो जाएगी। पद मिलते ही सब खो जाता है। क्योंकि सब बातें पद पाने के लिए थीं। और पद पाने के बाद असली चेहरा प्रकट होना शुरू होता है। क्योंकि शक्ति मिल जाने के बाद तुम वह करना चाहोगे जो तुम छिपाए थे और सदा करना चाहते थे।
लार्ड एक्टन ने कहा है, पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। शक्ति व्यभिचारिणी है और परिपूर्ण रूप से व्यभिचार कर देती है व्यक्ति के साथ। लेकिन मैं एक्टन से राजी नहीं हूं। शक्ति व्यभिचारिणी नहीं है। असल में, व्यभिचारी व्यक्ति ही शक्ति की तरफ उत्सुक होते हैं। शक्ति तो केवल उघाड़ती है। जैसे ही शक्ति मिलती है तुम्हें... । तुम एक वेश्या के घर जाना चाहते थे, लेकिन कभी तुम उतने नोट न इकट्ठे कर पाए। तो तुम द्वार से भटक कर, गीत गुनगुना कर लौट आए। चक्कर तुमने बहुत मारे। लेकिन जिस दिन तुम्हारे पास रुपए होंगे, जिस दिन उतने नोट होंगे, उस दिन तुम्हें कैसे रोका जा सकेगा? नोट किसी को बिगाड़ते नहीं। धन क्या बिगाड़ेगा? धन से ज्यादा नपुंसक क्या है? धन कैसे बिगाड़ सकता है? और पद से ज्यादा नपुंसक क्या है? पद कैसे बिगाड़ सकता है? बिगड़े हुए लोग ही पद की तरफ लोलुप होते हैं। लेकिन जब वे पद की तरफ लोलुप होते हैं तब चारों तरफ एक साधुता का आवेष्टन निर्मित करना पड़ता है; क्योंकि तुम साधु को ही पद तक पहुंचाओगे। तो उनको साधु होना पड़ता है।
ऐसा हुआ कि सम्राट एक विनम्र आदमी की खोज में था। और उसने अपने लोग भेजे और उसने कहा, कोई ऐसा आदमी खोज कर आओ जो बिल्कुल विनम्र हो। वे मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में आए। नसरुद्दीन बाजार से निकल रहा था। उसके पास काफी धन था, बड़ी हवेली थी, लेकिन कंधे पर उसने मछलियों को पकड़ने का एक जाल लटका रखा था। उस मंडल ने, जो विनम्र आदमी की तलाश में था, पूछा कि क्या बात है? तुम इतने बड़े धनी हो, तुम यह मछली का जाल क्यों लटकाए हुए हो पुराना, फटा हुआ? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं मछलियां पकड़-पकड़ कर ही बड़ा हुआ। मैं उस छोटेपन को भूल नहीं जाना चाहता जहां से मूल स्रोत है। मैं गरीब मछुआ था। इस जाल को मैं अपने साथ रखता हूं, ताकि अहंकार न आ जाए। उन्होंने कहा कि यह आदमी, यह आदमी ठीक विनम्र आदमी है। जिसके पास बड़ी हवेली है, राजाओं जैसा जो रह सकता था, वह मछुए के कपड़े पहने हुए है और जाल लटकाए हुए है। उसे चुन लिया गया। उसे राज्य का वजीर बना दिया गया। जिस दिन वह वजीर बन गया उस दिन वह शानदार कपड़े पहन कर राजभवन पहुंचा। उस मंडल के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, क्या हुआ उस जाल का? उसने कहा कि जब मछली पकड़ ली गई तो जाल को कौन लिए फिरता है!
सब जाल--नाम कुछ भी हों--मछलियां पकड़ने के लिए हैं। जब मछली पकड़ ली गई, जाल फेंक दिए जाते हैं। गणित सीधा है। नीति ने, कनफ्यूशियस, मार्क्स, पावलफ, इन सबने एक ही बात सिखाई है कि नीति का आचरण ऊपर से थोपा जा सकता है। नीति एक कल्टीवेशन है, एक संस्कार है। पावलफ का शब्द हैः कंडीशंड रिफ्लेक्स। नीति एक संस्कार है। तो पावलफ का प्रसिद्ध प्रयोग तुमने सुना होगा। एक कुत्ते को वह खाना खिलाता है। जब रोटी कुत्ते के सामने आती है तो उसकी जीभ से लार टपकती है। यह स्वाभाविक है। वह घंटी बजाता है। जब भी रोटी देता है, घंटी भी बजाता है। पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं देता, सिर्फ घंटी बजाता है। लार टपकनी शुरू हो जाती है। अब घंटी बजने से कुत्ते की लार टपकने का कोई भी स्वाभाविक संबंध नहीं है। यह कंडीशंड रिफ्लेक्स है। रोटी के साथ घंटी बजती थी, इसलिए कुत्ते के मन में घंटी और रोटी एक हो गए। रोज घंटी रोटी के साथ बजती थी; इसलिए घंटी के बजने से लार शुरू हो गई।
पावलफ यह कह रहा है कि समस्त नीति कंडीशंड रिफ्लेक्स है। अगर बच्चे ने कुछ गलत काम किया, उसे मारो, दंड दो। क्योंकि दंड देने का संबंध हो जाएगा गलत काम से। तो दुबारा जब भी वह गलत काम करेगा, उसे याद आएगा कि मार पड़ेगी। घंटी जुड़ गई! तो वह बुरा काम नहीं करेगा। भला काम करे--मिठाई दो, पुरस्कार दो, खिलौना दो। भला काम और पुरस्कार जुड़ जाएगा। जब भी वह पुरस्कार पाना

चाहेगा--जो कौन नहीं पाना चाहता--तो वह भला काम करेगा। और धीरे-धीरे यह इतनी गहरी आदत हो जाएगी, यह आदत ही आचरण है।
लाओत्से कहता है, यह आदत धोखा है, आचरण नहीं। क्योंकि जो ऊपर से थोपा गया है वह ऊपर ही रहेगा। समाज के लिए काफी हो, परमात्मा के खोजियों के लिए काफी नहीं है। फिर कैसे सदगुण पैदा होता है?
लाओत्से कहता है, सदगुण का जन्म स्वभाव की अनुभूति से होता है, आत्मबोध
से होता है, ध्यान से हो सकता है। पाप, दंड, पुरस्कार, पुण्य, इस तरह की धारणाओं को जोड़ने से नहीं हो सकता। इस तरह की धारणाएं आदत बना सकती हैं, और आदत को हम आचरण समझ लेते हैं।
तुम अगर जैन घर में पैदा हुए हो तो मांसाहार नहीं कर सकते। लेकिन यह तुम्हारी आदत है। पचास साल तक तुमने मांसाहार नहीं किया। और मांसाहार गंदी बात है, घृणित है, शब्द ही मांस से तुम्हें बेचैनी होने लगती है; घंटी जुड़ गई रोटी से। शास्त्र सुने, गुरुओं के वचन सुने; जिस परिवार में रहे, वे सभी नाक-भौं सिकोड़ते हैं जैसे ही मांस का शब्द आ जाए। अगर जैन परिवार के बूढ़े लोग भोजन कर रहे हों और तुम मांस शब्द का नाम ले दो तो वे भोजन बंद कर देंगे। बहुत दिनों तक जैनी टमाटर नहीं खाते थे, क्योंकि वह मांस जैसा दिखाई पड़ता है। कटहल नहीं खाते, क्योंकि उसे काटने से खून जैसा निकलता हुआ मालूम पड़ता है। प्रतीक! तो अगर तुम जैन घर में बड़े हुए हो तो शाकाहार तुम्हारी आदत है। और अगर कोई मांस तुम्हारे सामने ले आएगा, तुम्हें उलटी होने लगेगी, नासिया मालूम होगा, सारा पेट खड़बड़ हो जाएगा। लेकिन इससे तुम यह मत समझना कि तुम महावीर हो जाओगे। यह आदत है; यह तुम कनफ्यूशियस के अनुयायी हो, महावीर के नहीं। यह आदत है; तुम पावलफ के अनुयायी हो। तुम्हारे साथ वही किया गया है जो पावलफ ने कुत्ते के साथ कियाः भोजन और घंटी। इस आदत को तुम आचरण अगर समझ लिए तो तुमने अपना जीवन गंवा दिया।
शाकाहार तो उस शुद्ध चैतन्य से पैदा होता है, जहां तुम इतने प्रेम से
भर जाते हो कि जहां तुम किसी को भी चोट न पहुंचाना चाहोगे। यह भीतर से आता है। वास्तविक आचरण का जन्म अंतस से होता है; झूठे आचरण का जन्म ऊपर के आरोपण से होता है। और यही भेद है। और दोनों एक जैसे दिखाई पड़ सकते हैं। व्यवहार में क्या फर्क करोगे कि कोई आदमी किसलिए मांस नहीं खा रहा है? महावीर भी मांस नहीं खाते, क्योंकि उनके अंतस से हिंसा खो गई। साधारण जैनी भी मांस नहीं खाता; अंतस से हिंसा नहीं खोई है। अंतस में पूरी हिंसा है, क्रोध है, वैमनस्य है, ईर्ष्या है, जलन है, सब है। लेकिन आदत के कारण मांसाहार नहीं करता। लेकिन और-और ढंग से मांसाहार करेगा। कहीं न कहीं वह भी चिल्ला कर कहेगा कि किसी को खाली प्लेट तो नहीं चाहिए! और-और रास्ते खोजेगा। किसी और ढंग से लोगों को सताएगा।
मांस नहीं खा सकेगा, खून नहीं पी सकेगा, तो शोषण करेगा। क्योंकि धन भी खून है। वह प्रतीक है खून का, वह समाज का खून है। और जैसे खून बहता है शरीर में और आदमी स्वस्थ रहता है, वैसा धन घूमता रहे समाज में तो समाज स्वस्थ रहता है। धन रुक जाए, तो जैसे खून रुक जाए, आदमी मर जाए, वैसे समाज मर जाता है। लेकिन जैनियों ने जगह-जगह धन रोक लिया। वे अकारण ही धनवान नहीं हो गए हैं। उनके धनवान होने का कुल कारण इतना है कि जो भी उनकी मांसाहार और खून पीने की वृत्ति थी, वह एक आदत से रोक दी गई है। उसको वे दूसरे रास्ते से खींच रहे हैं, दूसरे रास्ते से इकट्ठा कर रहे हैं। उन्होंने एक सब्स्टीट्यूट, एक परिपूरक मार्ग खोज लिया।
मन को बदलना इतना आसान नहीं है कि ऊपर से बदला जा सके। स्कीनर, पावलफ, कनफ्यूशियस आदमी को बदल नहीं सकते, आदमी को ढोंगी बना सकते हैं, झूठा बना सकते हैं। समाज के लिए काफी है, क्योंकि समाज को कोई लेना-देना भी नहीं कि तुम्हारी आत्मा से आ रहा है या नहीं। इतना काफी है कि तुम डर के मारे भी न करो तो काफी है। पुरस्कार के लिए करो तो भी काफी है; समाज इतना ही चाहता है कि तुम्हारा व्यवहार ठीक हो। व्यवहार कहां से पैदा हुआ, इससे समाज को कोई प्रयोजन नहीं है।

लेकिन धर्म को प्रयोजन है। अगर व्यवहार बाहर से पैदा हुआ तो तुमने जीवन गंवाया। तुम अभिनेता बन कर रह गए; तुमने नाटक किया। अगर तुम्हारा आचरण भीतर से आया तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हुई।
अब इस सूत्र को तुम समझ पाओगे। सदगुण का जन्म कहां से होता है?
"ताओ जन्म देता है सदगुण को।"
ताओ का अर्थ है स्वभाव। ताओ का अर्थ है तुम्हारा आंतरिक धर्म। ताओ का अर्थ है तुम्हारी चेतना।
"ताओ से जन्म होता है सदगुणों का, और चरित्र उनका पालन करता है।"
तो चरित्र मूल नहीं है, छाया की तरह है। जन्म तो भीतर की प्रज्ञा में होता है, ध्यान की गहन अवस्था में होता है। लेकिन उतना काफी नहीं है, वह बीज है। उसके पालने के लिए तुम्हें उसके अनुसार आचरण करना होता है। तो वह प्रगाढ़ होता जाता है। जो तुमने जाना है भीतर, उसे अपने जीवन में उतार लेने से वह प्रगाढ़ होता है, उसकी जड़ें जमने लगती हैं। तो चरित्र मूल नहीं है, मूल तो बोध है। और फिर बोध को प्रगाढ़ करने का प्रयोग चरित्र है। इसलिए ताओ से जन्म और तेह से पोषण।
तेह का अर्थ है चरित्र। जो तुम जानो भीतर, उसे करना। अन्यथा तुम्हारा ज्ञान झलक की तरह बनेगा और खो जाएगा। जब तुम ध्यान की गहरी अवस्था में कुछ उदभाव पाओ, कोई भीतर आदेश मिले, भीतर तुम्हारा अंतःकरण कुछ कहे, तो उसे करना भी। नहीं तो उसको जड़ न मिल पाएगी। अगर तुम करोगे तो आदेश रोज-रोज स्पष्ट होने लगेगा, और अंतःकरण की आवाज रोज-रोज साफ सुनाई पड़ने लगेगी। जितना ही तुम करोगे, जितना ही तुम अपने बोध को चरित्र में रूपांतरित करोगे, उतना ही तुम पाओगे, बोध साफ होने लगा, भीतर की ज्योति स्पष्ट जलने लगी; धुआं कम होने लगा, चीजें साफ दिखाई पड़ने लगीं। जन्म तो होता है भीतर, लेकिन व्यवहार में लाने से चरित्र की जड़ें गहरी होती हैं।
"ताओ में जन्म, चरित्र में पालन। भौतिक संसार उन्हें रूप देता है।" तुम्हारा चारों तरफ जो संसार है। जन्म तो होता है भीतर, चरित्र में जड़ें मिलती हैं, और जो विस्तार है तुम्हारे जीवन का, वह चारों तरफ के भौतिक संसार से उसे रूप मिलता है।
"भौतिक संसार उन्हें रूपायित करता और वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं।"
स्रोत है भीतर। फिर तुम्हारे व्यवहार पर आते हैं, वहां तुम्हारा चरित्र है, उससे जड़ें जमती हैं। फिर बाहर की भौतिक परिस्थितियों पर आते हैं, उनसे रूप मिलता है। जैसे अगर आज महावीर पैदा होना चाहें तो उनका रूप वही नहीं होगा जो ढाई हजार साल पहले था। क्योंकि आज की भौतिक परिस्थितियां उन्हें रूप देंगी। अगर वे तिब्बत में पैदा हुए होते तो नंगे नहीं खड़े हो सकते थे। नंगे खड़े होते तो मर जाते। नग्नता भारत में सरल थी, क्योंकि भारत का भौतिक संसार भिन्न है। महावीर अगर लंदन में पैदा हों तो व्यवहार और होगा, क्योंकि परिस्थितियां भिन्न हैं। महावीर के नग्न रहने के कारण दिगंबर जैन मुनि भारत के बाहर नहीं जा सका। वह संदेश भी नहीं ले जा सका बाहर, क्योंकि नंगा कैसे जाए बाहर! वह नंगापन अड़चन बन गई। महावीर को न बनती, क्योंकि ज्ञानी तरल होता है।
रूप देती हैं परिस्थितियां। तुम्हारे दीए का क्या रूप है, इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारी ज्योति जगनी चाहिए। दीए तो हर मुल्क में अलग होंगे, उनका ढंग अलग होगा, मिट्टी अलग होगी, रंग अलग होगा, लेकिन ज्योति का रंग एक ही होगा। दीए बदल जाएंगे, ज्योति नहीं बदलेगी।
तो तुम जिस परिस्थिति में पैदा हुए हो, जिस भौतिक परिस्थिति में तुम हो, तुम्हारे आचरण का रूप उससे बनेगा। इसलिए आचरण का कोई बंधा हुआ रूप नहीं है। और जो भी बंधे हुए रूप को मान कर चलता है वह जड़ता को उपलब्ध हो जाएगा। परिस्थिति बदलेगी, रूप बदलेगा।
लेकिन तुम्हें बड़ी मुश्किल है, क्योंकि तुम्हें भीतर का तो कोई आदेश
ही नहीं है। तुम तो शास्त्र से नियम उठा लिए हो। शास्त्र जा चुके, उनका समय जा चुका, उनकी परिस्थिति बदल गई। इसलिए शास्त्र के अनुसार जो भी जीएगा वह

जड़ हो जाएगा। स्वयं की अंतःप्रज्ञा के अनुसार जो भी जीएगा, उसके जीवन में तरलता, उसके जीवन में जीवंतता होगी।
इसलिए तो तुम तुम्हारे पुराने परंपरागत संन्यासियों को देखो, उनके चेहरों पर धूल जमी हुई है। वे ऐसे लगते हैं--अब गए, तब गए। वे ऐसे लगते हैं जैसे म्युजियम में पुरानी चीजें रखी हों। दर्शनीय भला हों, किसी काम के न रहे। खंडहर हैं। अतीत की कोई गौरव-गाथा कहते होंगे, लेकिन गौरव-गाथा आज की और वर्तमान की नहीं है। किसी पुराने समय की ऐतिहासिक सामग्री हैं वे, फोसिल्स, सम्हाल कर रखने योग्य, जैसा कि हम पुरानी चीजों को सम्हाल कर रखते हैं। लेकिन उपयोग के योग्य नहीं; आज के जीवन से उनका कोई भी संबंध नहीं है। अगर तुम्हारी अंतःप्रज्ञा से पैदा होता हो, ताओ से पैदा होता हो आचरण,
तो तुम कभी भी मुर्दा न होओगे, तुम सदा जीवंत रहोगे, तरल रहोगे, बहोगे। और जैसी परिस्थिति होगी, वैसा तुम्हारा रूप निर्मित हो जाएगा। तुम्हें चिंता नहीं करनी है, तुम्हें सिर्फ संवेदनशील और बोधपूर्ण होना है।
"और वर्तमान परिस्थितियां उसे पूर्ण बनाती हैं।"
और जो भी तुम्हारे भीतर से प्रकट होगा... । तुम किसी अतीत की पूर्णता को आधार मान कर मत चलना। तुम किसी अतीत की पूर्णता को आदर्श मत मान लेना। अन्यथा तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। आज की परिस्थिति, वर्तमान क्षण ही तुम्हें पूर्णता देगा। कोई भी नहीं जानता कि वर्तमान क्षण अगर पूर्णता देगा तो तुम कैसे होओगे--महावीर जैसे? बुद्ध जैसे? लाओत्से जैसे? सच तो यह है, तुम उनमें से किसी जैसे भी नहीं होओगे। तुम तुम जैसे ही होओगे। क्योंकि उनकी कोई की भी परिस्थिति ऐसी न थी। सब कुछ बदल गया।
शास्त्र नहीं बदलते, क्योंकि शास्त्र मुर्दा हैं। लेकिन चेतना का आदेश सदा बदलता रहता है। जैसी परिस्थिति होती है, उसके अनुकूल उदभाव होता है, और प्रति क्षण एक तरह की पूर्णता निर्मित होती है। वह पूर्णता किसी आदर्श के अनुसार नहीं होती, वह पूर्णता तुम्हारे भीतर के आनंद की होती है। और इसीलिए तो ऐसा हो जाता है कि जब भी कोई एक व्यक्ति तीर्थंकर, अवतार की भांति पैदा होता है, तब जिस धर्म में पैदा होता है उस धर्म के लोग ही उसे स्वीकार नहीं करते। क्योंकि वह एक नए तरह की पूर्णता होती है जो पहले कभी नहीं हुई। तो उसका कोई मापदंड पीछे से नहीं तौला जा सकता।
जीसस यहूदी घर में पैदा हुए, यहूदी जीवन भर रहे; लेकिन यहूदियों ने इनकार कर दिया। क्योंकि यहूदी कहते कि तुम अब्राहम जैसे हो? इजेकिल जैसे हो? तुम किस जैसे हो? वे अपने पुराने पैगंबरों का नाम लेते। और जीसस बिल्कुल भिन्न थे। और जीसस बिल्कुल नए थे। वैसा फूल पहले कभी हुआ नहीं था, क्योंकि वैसी परिस्थिति कभी न थी। यह सुबह और थी। यह हवा और थी। यह वक्त और था। एक नई पूर्णता खिली थी। लेकिन यहूदी पंडित अपने शास्त्रों में खोज रहे थे कि इस तरह की पूर्णता का मेल बैठता है या नहीं।
और जीसस ने बड़ी अनूठी बात कह दी। जब उनसे पूछा गया कि क्या तुम अब्राहम जैसे हो? पुराना, पुरानी याददाश्त, पुराना पैगंबर। तो जीसस ने कहा, बिफोर अब्राहम वा.ज, आई एम। अब्राहम के पहले भी मैं हूं। अखर गई बात यहूदियों को। यह तो बड़ा अहंकारी मालूम होता है कि अब्राहम के पहले भी और यह कहता है मैं हूं।
वे समझ न पाए। जीसस यह कह रहे हैं कि मैं समय के बाहर हूं।
जब भी कोई चेतना परिपूर्णता को उपलब्ध होती है, समय के बाहर हो जाती है। समय तैयार करता है, समय निर्मित करता है, समय पूर्णता के करीब लाता है, निन्यानबे डिग्री तक लाता है; सौ डिग्री पर तत्क्षण चेतना समय के बाहर हो जाती है। वे यह कह रहे हैं कि अब्राहम से भी पहले मैं हूं। कोई अतीत नहीं मेरे लिए अब, कोई भविष्य नहीं मेरे लिए अब; अब मैं शाश्वत हूं। यह घोषणा यहूदी न समझ पाए। यहूदियों ने जीसस को सूली दी।
ऐसा सदा हुआ है; ऐसा सदा होगा। बुद्ध को हिंदू स्वीकार न कर पाए। हिंदू
घर में पैदा हुए, हिंदू घर में बड़े हुए, और बुद्ध से बड़ा कोई हिंदू नहीं हुआ, और हिंदू स्वीकार न कर पाए। क्योंकि न राम से उनकी शक्ल मिलती है, न कृष्ण से। कृष्ण नाच रहे हैं गोपियों के साथ, और बुद्ध को राग-रंग बिल्कुल पसंद नहीं। नाच का बुद्ध से क्या संबंध? तुम बुद्ध के ओंठों पर बांसुरी रखो, वे

बड़े बेहूदे मालूम पड़ेंगे। और मोर-मुकुट बांध दो तो मजाक हो जाएगी। वे बोधिवृक्ष के नीचे शांत, बिना मोर-मुकुट के ही सुंदर मालूम पड़ते हैं। कृष्ण को तुम बिठाल दो बोधिवृक्ष के नीचे, वे ऐसे लगेंगे जैसे किसी बच्चे को जबरदस्ती बिठाल दिया है। उनको बांसुरी जरूरी है। रूप परिस्थिति से मिलता है। वह मोर-मुकुट कृष्ण पर बहुत शोभा देता है, लेकिन बस उन पर ही शोभा देता है। कोई और करेगा तो सर्कस का जोकर मालूम पड़ेगा। कोई और करेगा तो लोग हंसेंगे। लेकिन कृष्ण के साथ सारा अस्तित्व राजी था वैसे। वह उस क्षण की पूर्णता थी। वह क्षण अब कभी न आएगा; वह पूर्णता अब कभी न आएगी।
परमात्मा चुकता नहीं अपने कृत्य से, वह रोज नए को निर्मित किए चला जाता है। वह पुराने को दोहराता नहीं। पुराने को तो वही दोहराता है जिसकी प्रतिभा कम हो। परमात्मा की प्रतिभा अनंत है, अस्तित्व की संभावना अनंत है। क्या जरूरत है दोहराने की?
तो बुद्ध न तो राम जैसे लगे कि लिए खड़े हैं धनुष-बाण।
तुलसीदास राम के भक्त हैं। कहते हैं, मथुरा में वे कृष्ण के मंदिर में
गए तो झुके नहीं। क्योंकि उन्होंने कहा कि तब तक न झुकूंगा, जब तक धनुष-बाण हाथ में न लोगे। तुलसीदास जैसा आदमी भी कृष्ण के सामने नहीं झुक सकता, क्योंकि उसका अपना एक रूप है धारणा का, अपना एक आदर्श है। कहा कि तुलसी का माथा न झुकेगा तब तक, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे। और कहानी है कि कहती है कि फिर कृष्ण ने धनुष-बाण हाथ लिए, तब तुलसी का माथा झुका।
तो माथा झुकता है तब जब तुम वर्तमान में अतीत की पुनरुक्ति देखो, नहीं
तो नहीं झुकता। और अतीत की कोई पुनरुक्ति नहीं होती। यह कहानी झूठ है। कृष्ण भूल कर भी हाथ में धनुष-बाण नहीं ले सकते; वे जंचेंगे ही नहीं। वह बात मौजू नहीं है। और अगर तुलसीदास को दिखा होगा तो वह उनके मन का ही भ्रम रहा होगा। अक्सर प्रेमी भ्रम को देख लेते हैं। अगर तुम किसी के प्रेम में दीवाने हो, कोई दूसरी स्त्री निकलती रास्ते से, एक क्षण को भ्रम हो जाता है कि वही आ रही है, तुम्हारी प्रेयसी आ रही है। ऐसे ही कोई भ्रम हुआ होगा तुलसी को। धनुष-बाण के प्रेमी थे, राम के प्रेमी थे; प्रेम में आंखें अंधी हो जाती हैं, देख लिया होगा क्षण भर को। लेकिन क्या जरूरत पड़ी कृष्ण को धनुष-बाण लेने की?
लेकिन हिंदू बुद्ध को स्वीकार न कर सके। और बुद्ध का अस्वीकार इतना प्रगाढ़ था कि यहूदियों ने भी इतना बड़ा अस्वीकार जीसस का नहीं किया। उन्होंने कम से कम सूली तो लगा दी। सूली लगाने से जीसस की जड़ें जम गईं। यहूदियों को बड़ी मात्रा में ईसाई हो जाना पड़ा। क्योंकि सूली ने एक घाव बना दिया। हिंदुओं ने ज्यादा होशियारी की। वे ज्यादा चालाक कौम हैं, ज्यादा पुरानी कौम हैं। उन्होंने क्या चालाकी की?
हिंदुओं ने एक कथा गढ़ी। और कथा यह है कि परमात्मा ने नरक बनाया, स्वर्ग बनाया। नरक में बिठाया शैतान को। लेकिन सदियां बीत गईं, कोई पाप ही न करे, कोई नरक ही न जाए। शैतान थक गया। उसने परमात्मा से कहा कि मिटाओ यह नरक और मुझे छुटकारा दो। यह ड्यूटी किस काम की है? यहां बैठे-बैठे क्या सार? कोई आता नहीं। तो परमात्मा ने कहा, तू घबड़ा मत। मैं बुद्ध को पैदा करूंगा। वह अवतारी पुरुष होगा, लेकिन गलत बातें लोगों को समझाएगा; लोगों को भ्रष्ट कर देगा। जब लोग भ्रष्ट हो जाएंगे, अपने आप नरक आने लगेंगे। तू घबड़ा मत। हिंदू ज्यादा कुशल हैं, ज्यादा चालाक हैं। सूली न दी, तरकीब लगाई। बुद्ध को मान भी लिया, क्योंकि बुद्ध मानने जैसे थे। तो अवतार भी स्वीकार कर लिया; कहा कि दसवां अवतार हैं। लेकिन भ्रष्ट करने को पैदा हुए हैं। इसलिए स्वीकार मत करना, बचना। और इसका परिणाम इतना घातक हुआ कि बुद्ध और बुद्ध का विचार भारत से तिरोहित हो गया। पूरा एशिया डूब गया बुद्ध के प्रेम में, सिर्फ भारत वंचित रह गया। बादल यहां पैदा हुआ; बरसा कहीं और। हमारे खेत सूखे पड़े रह गए।
होने का कारण है। और कारण यह है कि जिस धर्म में कोई तीर्थंकर, कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट पैदा होता है, उस धर्म की अपनी मान्यता होती है। उस मान्यता से वह मेल नहीं खाता, क्योंकि हर तीर्थंकर नए कोंपल की तरह नया है, नई दूब की ओस की तरह नया है। उसका नयापन अप्रतिम है, आत्यंतिक है। वह बासा

और पुराना नहीं है। उसे वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं। वह बिल्कुल नया फूल है जो पहले कभी नहीं खिला था।
सदगुण एक फूल है। जब तुममें खिलता है तो न तो शास्त्रों में उसका उल्लेख है, न समाज की परंपराओं में उसका पता है। तुम एक बिल्कुल नए फूल की तरह खिलते हो। वह सदा नया है, कुंआरा है। सदगुण सदा कुंआरा है; नीति सदा बासी है। क्योंकि नीति दूसरे लोगों ने सिखाई है, और सदगुण तुम्हारे भीतर आविर्भूत होता है। नीति ऐसी है जैसे तुम किसी बच्चे को गोदी ले लो। कितना ही लाड़-प्यार करो, कितना ही अपने को समझाओ कि अपना है, लेकिन हर समझाने में ही पता चलता रहता है कि अपना नहीं है। और फिर एक बच्चा तुम्हारे घर पैदा होता है, तुम्हारी ही कोख से जन्मता है, तुम्हारी ही मांस-मज्जा को लेकर आता है। तब बात और हो जाती है; समझाने की कोई जरूरत नहीं रहती।
नीति गोद लिए गए बच्चे की भांति है, और धर्म, धर्म अपनी ही जीवन की ऊर्जा से पैदा हुआ है। और जब तक तुम धार्मिक न हो जाओ तब तक तुम जीवन का जो परम आनंद है, वह न जान पाओगे। क्योंकि वह तुमसे ही पैदा हो तो ही तुम्हारा होगा। इसे तुम कसौटी की तरह अपने हृदय में रख लो कि जो तुमसे पैदा हो वही तुम्हारा है; जो तुमसे पैदा न हुआ हो, किसी और ने दिया हो, वह उधार है। उधार का कोई भी अस्तित्व में मूल्य नहीं है। तुम धोखा दे रहे हो। गोद लेकर तुम अपने को धोखा दे रहे हो।
"इसलिए संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं और तेह की प्रशंसा।" लाओत्से कहता है, चूंकि सदगुण धर्म से पैदा होता है, भीतर के स्वभाव से पैदा होता है, इसलिए संसार में सभी धर्म की पूजा करते हैं। जब भी बुद्ध जैसा व्यक्ति तुम्हारे बीच खड़ा हो जाए तो तुम्हें माथा झुकाना थोड़े ही पड़ता है, वह झुकता है। वह बुद्ध के होने में ही छिपा है। समादर तुमसे बहने लगता है। उसके लिए तुम्हें कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। वह ऐसे ही बहता है, जैसे पानी गड्ढे की तरफ बहता है। वह स्वभाव है--कि प्रशंसा, पूजा सदगुण की तरफ बहती है।
और उस सदगुण से पैदा हुए चरित्र की एक गहरी प्रशंसा, एक गीत, एक गूंज तुममें छूट जाती है। जहां भी तुम देखते हो... । तुम साधारण चरित्र की भी प्रशंसा करते हो जो कि नकली है। तुम खोटे सिक्कों को भी सम्हाल कर रख लेते हो, यही सोच कर कि वे असली हैं। जब तुम्हें असली सिक्का मिलेगा, जब तुम किसी असली सिक्के को पहचान पाओगे, जब तुम्हारी आंखों की धुंध हटेगी, तुम्हारा पीलिया हटेगा, और तुम जीवन का वास्तविक रूप देख पाओगे, उस दिन तुम्हारे भीतर जो प्रशंसा पैदा होगी चरित्र की और तुम्हारे भीतर जो पूजा पैदा होगी सदगुण की, उसे तुम इससे ही सोच सकते हो कि नकली चीजें भी पूजी जा रही हैं। नकली की पूजा ही इसलिए होती है कि असली में कोई पूजा है। नकली धोखा क्यों दे पाता है? क्योंकि वह असली की नकल कर रहा है, वह काफी दूर तक असली का ढंग जाहिर कर रहा है। इसीलिए तो तुम पूजा करते हो। चोर भी, बेईमान भी ईमानदारी का सहारा लेता है। और तुम्हें झूठ भी बोलना हो तो तुम्हें सच बोलने का आभास पैदा करना पड़ता है। बेईमान को भी पहले ईमानदारी की हवा अपने चारों तरफ पैदा करनी पड़ती है। अगर तुम्हें किसी आदमी को धोखा देना हो तो तुम उससे एक रुपया उधार मांगते हो, लौटा देते हो; भरोसा आ गया। दस रुपया मांगते हो, लौटा देते हो; भरोसा और बढ़ गया। फिर हजार रुपए लेकर चंपत हो जाते हो। अगर ठीक से समझो तो हुआ क्या? तुम्हें बेईमानी भी करनी हो तो भी तुम्हें ईमानदारी करनी पड़ती है। बेईमानी के पास अपने पैर नहीं हैं, ईमानदारी के पैर उधार लेने पड़ते हैं। झूठ के पास अपना प्राण नहीं है, उसे भी सच का प्राण ही लेना पड़ता है। इससे सिर्फ एक ही बात पता चलती है कि सत्य के प्रति कोई सहज पूजा है और ईमानदारी के प्रति कोई सहज आकर्षण है। तभी तो बेईमान भी लाभ उठा लेता है।
"संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं, तेह की प्रशंसा। ताओ पूजित है, तेह प्रशंसित।"
धर्म की पूजा है, चरित्र की प्रशंसा।
"और ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।"

यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। ऐसा अपने आप है, ऐसा कोई करवा नहीं रहा है। शास्त्रों में कहा है, गुरु का समादर। मैं एक विश्वविद्यालय में मेहमान था। और वहां विश्वविद्यालय के अध्यापकों की एक छोटी गोष्ठी थी। और जैसा कि अध्यापकों को सारे संसार में एक ही चिंता है अब कि विद्यार्थियों में उनका सम्मान खो गया है, उनको भी चिंता थी। वह बात उठ गई कि ऐसा क्यों हो रहा है कि विद्यार्थी क्यों पूजा नहीं देते? क्यों आदर नहीं देते? और भारत जैसे मुल्क में, जहां कि हजारों साल की परंपरा है गुरु को भगवान मानने की! तो वे सभी दोष दे रहे थे कि कुछ दोष वर्तमान समय का, परिस्थितियों का; विद्यार्थियों का चरित्र हीन हो गया।
लेकिन, मैं सुनता रहा और हैरान हुआ, किसी ने भी यह न कहा कि अब गुरु गुरु जैसा नहीं है। शास्त्र में जो कहा है कि गुरु को पूजा मिलती है, वह कोई आदेश थोड़े ही है। जब भी कोई गुरु होता है तो पूजा मिलती ही है। जब न मिलती हो तो समझ लेना चाहिए गुरु वहां नहीं है। यह सीधी सी बात है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इसमें हजार कारण खोजने की कोई जरूरत नहीं है।
शिक्षक कोई गुरु नहीं है। वह शिक्षा का धंधा कर रहा है। वह वैसे ही दुकानदार है जैसे और दुकानदार हैं। वह कुछ बेच रहा है। ठीक है। और लोग पैसा देकर ले रहे हैं। खत्म हो गई बात। अब आदर का और क्या सवाल है? विद्यार्थी फीस चुका रहा है, शिक्षक पढ़ा रहा है। कोई आंतरिक नाता नहीं है। गुरु है नहीं वहां, इसलिए श्रद्धा उठती नहीं। जब कहीं गुरु हो, श्रद्धा अपने आप उठती है। जैसे पतिंगा जाता है प्रकाश की तरफ भागा हुआ ऐसे ही गुरु की तरफ श्रद्धा जाती है भागी हुई।
ऐसा अपने आप है। यह स्वभाव का गुणधर्म है। जैसे सौंदर्य की तरफ वासना जगती है; कोई जगाता है? कोई आज्ञा देता है? कोई प्रेसिडेंट को अधिनियम बनाना पड़ता है? राष्ट्रपति को घोषणा करनी पड़ती है कि अब आज से पक्का कर दिया गया कि जब भी कोई सुंदर व्यक्ति को देखे तो वासना से भर जाए, और जो न भरेगा वह दंडित किया जाएगा।
कोई जरूरत नहीं है। ऐसा अपने आप है कि सुंदर की तरफ मन आकर्षित होता है। तुम कितना ही दबाओ, तुम कितना ही आंख छिपाओ, तुम्हारे आंख छिपाने में भी इसी बात का पता चलता है। तुम कितनी ही आंख बंद करो, आंख बंद करने में उसी की ही खबर मिलती है। सौंदर्य की तरफ वासना दौड़ती है; सत्य की तरफ श्रद्धा दौड़ती है; सदगुण की तरफ पूजा दौड़ती है। ऐसा अपने आप है। ऐसा कोई परमात्मा नियंता की तरह बैठा हुआ नहीं है जो आज्ञा दे रहा है कि ऐसा करो, ऐसा मत करो। इस संसार में आज्ञा है ही नहीं। तुम परम स्वतंत्र हो। लेकिन इस स्वतंत्रता में भी कुछ नियम हैं। वे स्वतंत्रता के ही नियम हैं; उनसे तुम परतंत्र नहीं हो। वे स्वतंत्रता का स्वभाव हैं।
"ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।"
लाओत्से किसी ईश्वर में नहीं मानता है, कि जो दुनिया को चला रहा है। तुम थोड़ा सोचो। अगर ईश्वर दुनिया को चला रहा हो तो या तो कब का पागल हो गया होता, या कभी का आत्मघात कर लिया होता, या कभी का भाग गया होता इस दुनिया को छोड़ कर कहीं हिमालय--अगर हो अस्तित्व में कोई--संन्यासी हो गया होता। गृहस्थ भाग जाते हैं। एक गृहस्थी काफी थका देती है। यह पूरे संसार की गृहस्थी कोई चला रहा हो, तुम सोच सकते हो। नहीं, कोई व्यक्ति नहीं है जो चला रहा है। अस्तित्व अपने से चल रहा है, किसी की आज्ञा से नहीं। यह अस्तित्व का पूरा होना ही परमात्मा है; यहां कोई व्यक्ति की तरह बैठा हुआ नहीं है।
"ताओ उन्हें जन्म देता है--सदगुणों को--चरित्र, तेह उनका पालन करता है, उन्हें बड़ा करता है, विकास देता है, आश्रय देता है, शांति से रहने की जगह देता है।"
सदगुण का जन्म तो होता है ताओ में, फिर विकास, सुविधा विकास की, अवकाश, स्थान चरित्र देता है। इसलिए एक बात ख्याल रखना। जो भी तुम्हारे ध्यान में पैदा हो उसका तुम रस ही मत लेना, उसे जीवन में भी लाना। उसका रस लेना खूब गहरा है, लेकिन काफी नहीं है। क्योंकि वह खो जा सकता है।
तीन तरह की स्थितियां हैं साधक के लिए। एक तो स्थिति है कि तुम दूर से देखते हो हिमालय के शिखर को, हिमाच्छादित। बादल हट गए हैं, सुबह सूरज निकला

है, तुम हजारों मील दूर से देखते हो हिमाच्छादित शिखर को। देख कर भी एक शीतलता मन में छा जाती है; हृदय आनंदित, उत्फुल्लित हो जाता है। एक पुकार मच जाती है और पास जाने की। लेकिन इसको तुम सब कुछ मत समझ लेना। तुम यहीं मत बैठ जाना। यह सिर्फ झलक है। यह पहली समाधि है--झलक।
यहूदी फकीर झुसिया के संबंध में एक कथा है। एक दिन अपने शिष्यों के साथ बैठा था। अचानक उठा और एक शिष्य को हाथ पकड़ कर खिड़की के पास ले गया और कहा कि देख! शिष्य ने खिड़की के बाहर देखा। चांद की रात थी, पूरे चांद की रात। बड़ी शांत, स्निग्ध रात्रि थी। बड़ा नीरव संगीत छाया था। सब चुप था। और गुरु ने इतने जोर से कहा कि देख कि उस कहने में विचार की प्रक्रिया बंद हो गई। उसने गौर से देखा कि क्या मामला है? ऐसा तो कभी झुसिया ने किया नहीं। देखा और तब उसे याद आया, विचार एक क्षण को रुक गए। उस क्षण में एक अपरिसीम सौंदर्य प्रकट हुआ। वह घुटने टेक कर गुरु के चरणों में सिर रख दिया, रोने लगा, और कहा कि जो आज देखा है वह कब मेरा जीवन बन पाएगा? कितने जन्म लगेंगे?
झलक जीवन नहीं है; झलक से स्वाद जग जाएगा। लेकिन उसे तुम काफी मत समझ लेना। ध्यान के रस में डूब मत जाना। ध्यान का रस झलक है, उसे आचरण में सम्हालना, जड़ें देना, जगह बनाना, उसको फैलाना। जैसे-जैसे तुम फैलाओगे, झलक बदलने लगेगी।
तब एक दूसरी अवस्था है, कि एक आदमी गौरीशंकर पर पहुंच गया। अब वह वहीं बैठा है जहां परम सौंदर्य है; उसके बीच में बैठा है। लेकिन यह भी अंत नहीं है। अभी भी गिरना हो सकता है। अभी भी लौट सकता है। अभी लौटने का उपाय है। जिन पैरों से आया है वे ही वापस ले जा सकते हैं। जिस मन से यहां तक आ गया है उसी मन से वापस भी लौट सकता है। सीढ़ी लगी है।
फिर एक तीसरी अवस्था है, यह भी काफी नहीं हैः जब वह व्यक्ति स्वयं हिम
का शिखर हो गया। एक सत्य की झलक, दूसरा सत्य का अनुभव, और तीसरा सत्य के साथ एक हो जाना। बस तीसरे को लक्ष्य रखना। उसके बाद फिर लौटना नहीं है। क्योंकि कोई बचा नहीं जो लौट सके। सीढ़ी गिर गई; सीढ़ी पर चढ़ने वाला ही खो गया। यह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है; अब यहां से कोई वापस नहीं लौटता।
ध्यान में पहले झलक मिलती है स्वभाव की। उस स्वभाव को तुम काफी मत समझ लेना। बहुत वहां रुक जाते हैं। समझ लेते हैं मंजिल आ गई; पड़ाव बना लेते हैं; वहीं डेरा-डंगर डाल देते हैं। वह काफी नहीं है। सुखद है, उसका स्वाद लेना। और उसे आचरण में ढालना। अगर स्वभाव में उतर कर प्रेम की झलक मिली हो तो अब आचरण में प्रेम को लाना। अगर स्वभाव में शांति की झलक मिली हो तो अब आचरण में शांति को लाना। उठते-बैठते, बाजार में, दुकान पर काम करते भी उस शांति को सम्हालना। वह खो न जाए। वह तुम्हारा कृत्य भी बने, तो मजबूत होगा। अगर तुमने, जो तुमने झलक देखी, उसको आचरण बना लिया तो तुम दूसरी घटना के लिए तैयार हो गए। तुम अब सत्य का पूरा अनुभव कर सकोगे।
और जब सत्य का तुम्हें अनुभव होगा तब सत्य के अनुभव के कुछ अलग गुण हैंः करुणा, अहोभाव, एक सदा अकारण आनंदित रहना, एक्सटैसी। अब उसको आचरण में लाना। सदा आनंदित रहना। चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, चाहे हानि हो चाहे लाभ, चाहे सफलता चाहे असफलता, तुम्हारा आनंद खंडित न हो। जब तुम्हारे आचरण में आनंद प्रगाढ़ हो जाएगा, करुणा सघन हो जाएगी, तब तुम तीसरे के योग्य हो जाओगे। और जब तीसरे के कोई योग्य हो जाता है तो उसके आचरण को ही हम ब्रह्मचर्य कहते हैं।
ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः ब्रह्म जैसा आचरण, ब्रह्म जैसी चर्या। ब्रह्मचर्य का अर्थ सेलीबेसी से जरा भी नहीं है। वह तो उसका एक अंग मात्र है, छोटा सा, क्षुद्र अंग है। क्योंकि उसके जीवन से वासना खो जाती है, कामवासना खो जाती है। और उसका सारा जीवन ब्रह्मचर्य, ब्रह्म जैसी चर्या का हो जाता है। वह इस पृथ्वी पर एक ईश्वर जैसा है--एक बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट। वह एक अवतार है, तीर्थंकर है। वह परमात्मा है। अब उसके व्यवहार में सारी मनुष्यता खो गई। वह आखिरी शिखर है। जब तुम गौरीशंकर ही हो गए। अब कोई लौटना न हो सकेगा।
"यह उन्हें जन्म देता है, और उन पर स्वामित्व नहीं करता।"

ये भीतर के कुछ गुप्त रहस्य, जो साधक के लिए परम उपयोगी हैं। जन्म तो ताओ से होता है, स्वभाव से होता है, लेकिन उन पर स्वामित्व नहीं करता, मालकियत नहीं करता। और इसलिए कई बार तुम चूक जा सकते हो। क्योंकि भीतर तुम जो भी पाओगे, अगर तुमने न सम्हाला, तो जहां से पैदा हुआ है वह स्रोत आग्रह नहीं करेगा सम्हालने का। वह तुम्हें दबाएगा नहीं कि करो ऐसा। कोई दबाव नहीं है भीतर। स्वभाव परम स्वतंत्रता है। वह तुम्हें दिखाएगा, लेकिन कोड़ा नहीं उठाएगा कि चलो! इशारा करेगा, लेकिन इशारा परोक्ष होगा। समझा तो समझा, नहीं तो चूक गए। सीधे-सीधे आज्ञा नहीं देगा। क्योंकि सीधी आज्ञा हिंसा है। और स्वभाव में कोई हिंसा नहीं हो सकती। वह तुम्हें भला बनाने की कोशिश भी नहीं करेगा, क्योंकि सब कोशिश जबरदस्ती है। भला बनाने की कोशिश भी जबरदस्ती है। इसलिए अगर तुम न सम्हले तो तुम्हारे हाथ में है बात।
स्वभाव से रोशनी मिलेगी; रोशनी लेकर चलना तुम्हें है। जहां भी तुम चलोगे, रोशनी तुम्हें प्रकट कर देगी। लेकिन रोशनी यह न कहेगी कि अंधेरे में मत जाओ, गलत जगह पर मत जाओ, सांप-बिच्छू हैं वहां मत जाओ। रोशनी कुछ न कहेगी। रोशनी तो तुम जहां जाओगे वहीं जो भी है प्रकट कर देगी। रोशनी आदेश नहीं है। और तुम्हारी अगर सारी जिंदगी आदेश पर बनी हो, कि तुम सदा सुनते रहे हो कि कोई बताए, यह करो, यह मत करो, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। तो तुम चूक ही जाओगे।
इसलिए लाओत्से कहता है, ध्यान रखना, "यह उन्हें जन्म देता है, पर उन पर स्वामित्व नहीं करता। यह सहायता करता है, पर उन्हें अधिकृत नहीं करता।" सहायता पूरी मिलेगी, लेकिन तुम्हारी मालकियत को जरा भी न छुआ जाएगा। तुम्हारी स्वतंत्रता पर कोई बाधा न डाली जाएगी। तुम चाहो तो लौट सकते हो विपरीत, तुम्हें हाथ पकड़ कर प्रकाश भीतर का रोकेगा नहीं कि मत जाओ। कुछ भी न कहेगा।
"श्रेष्ठ है... ।"
यह भीतर की जो प्रतीति है, परम श्रेष्ठ है।
"पर नियंत्रण नहीं करता।"
तुम्हें कंट्रोल नहीं करेगा।
"यही है रहस्यमय सदगुण।"
सदगुण का जन्म स्वभाव में; चरित्र में पालन, और बिना किसी आग्रह के, न कोई दंड, न कोई पुरस्कार। वहां कोई पावलफ नहीं है, कोई कनफ्यूशियस नहीं है। वहां पावलफ और कनफ्यूशियस पहुंच ही नहीं पाए। और इसीलिए तो कनफ्यूशियस घबड़ा गया लाओत्से से मिल कर, डर गया। क्योंकि वह तो नीति-नियम वाला आदमी है, मर्यादा वाला आदमी है। और ये बातें तो बड़ी खतरनाक हैं कि भीतर से लो अपना आदेश; मत सुनो शास्त्र की, मत सुनो परंपरा की, मत सुनो समाज की; सुनो अपने भीतर के स्वर की।
कनफ्यूशियस डर गया, क्योंकि उसने कभी भीतर का स्वर सुना नहीं। वह तो एक
ही बात जानता है कि अगर बाहर से नियंत्रण न किया गया तो आदमी पशु हो जाएगा। आदमी आदमी बनाया है बाहर के सहारे लगा कर। तुम्हें कितनी बैसाखियां लगी हैं चारों तरफ से; उसी से तुम आदमी हो। ऐसा कनफ्यूशियस का ख्याल है। और सब तरफ से हथकड़ी डाली है, इसलिए तुम आदमी हो। अगर तुम्हारी जरा हथकड़ी छोड़ दी तो तुम खतरनाक हो। और लाओत्से कहता है, परम स्वतंत्रता, यही सदगुण की रहस्यमयता है।
जब कनफ्यूशियस वापस लौटा, उसके शिष्यों ने पूछा, क्या हुआ? तो कनफ्यूशियस ने कहा, भूल कर इस आदमी के पास मत जाना। तुमने जंगली जानवर देखे होंगे, लेकिन उनमें इतना खतरा नहीं है। शेर, सिंह कोई इतने खतरनाक नहीं हैं। चीन में एक आकाश में उड़ने वाले अजगर की पुराणकथा है, जो कहीं पाया नहीं जाता, सिर्फ पौराणिक है। तो कनफ्यूशियस ने कहा, इस आदमी के संबंध में सोचता हूं तो ऐसा लगता है, यही है वह आकाश में उड़ने वाला अजगर। तुम इसकी छाया से बचना। क्योंकि यह आदमी जगत में अराजकता ला देगा।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यही आदमी जगत में व्यवस्था ला सकता है। और
अब तक नहीं सुनी गई है इसकी बात, इसलिए जगत में अराजकता है। कनफ्यूशियस की काफी सुन ली गई। नियंत्रण बहुत किया जा चुका और आदमी के जीवन में कोई

क्रांति नहीं घटती, कोई रोशनी नहीं आती, कोई आनंद नहीं प्रकट होता, और आदमी वहीं के वहीं बना रहता है जहां था।
लेकिन इसका अनुशासन दूसरे तरह का है। ऊपर से कोई देखेगा तो डरेगा। इसका अनुशासन ध्यान का अनुशासन है, चरित्र का नहीं। इसका अनुशासन भीतर से जन्मता है और बाहर की तरफ फैलता है। जैसे हम एक पत्थर फेंकते हैं झील में, लहरें पैदा होती हैं पत्थर के पास, और फैलती चली जाती हैं। ऐसे ही तुम जब अपने को भीतर की चेतना में फेंकोगे--वही ध्यान है--तब उस झील में, भीतर की झील में, जो तुम्हारे चारों तरफ फैली है और तुम्हारे भीतर भी छिपी है, जिसका नाम परमात्मा है, उस झील में लहरें उठेंगी अनंत और वे तुम्हारे चारों तरफ फैलती जाएंगी। वह तुम्हारा चरित्र है।
ताओ है झील, तेह है उसमें उठी लहरें। तुम ध्यान में गहरे जाना। जितने गहरे जाओगे उतना ही एक नया अनुशासन पैदा होगा जो तुम्हारे भीतर से ही आता है। और न तो उसमें कोई नियंत्रण है, न कोई कारागृह है, न कोई दंड है, न कोई स्वर्ग-नरक का भय और प्रलोभन है। और उस सदगुण की पूजा सहज ही शुरू हो जाती है। ऐसा स्वभाव है। ऐसा किसी की आज्ञा से नहीं होता, ऐसा अपने आप होता है। आज इतना ही।

नब्बेवां प्रवचन

पुनः अपने मूल स्रोत से जुड़ो

Chapter 52

Stealing The Absolute

There was a beginning of the universe,
Which may be regarded as the Mother of Universe.
From the Mother, we may know her sons.
After knowing the sons, keep to the Mother.
Thus one's whole life may be preserved from harm.
Stop its apertures, close its doors,
And one"s whole life is without toil.
Open its apertures, be busy about its affairs,
And one"s whole life is beyond redemption.
He who can see the small is clear-sighted;
He who stays by gentility is strong.
Use the light, and return to clear-sightedness—
Thus cause not yourself later distress.
-- This is to rest in the Absolute.

अध्याय 52

परम की चोरी

ब्रह्मांड का एक आदि था , जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है।
माता से हम उसके पुत्रों को जान सकते हैं।
पुत्रों को जान कर , माता से जुड़े रहो ;
इस प्रकार व्यक्ति का पूरा जीवन हानि से बचाया जा सकता है।
उसके छिद्रों को भर दो , उसके द्वारों को बंद करो ,
और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम -मुक्त हो जाता है।
उसके छिद्रों को खुला छोड़ दो , उसके कारोबार में व्यस्त रहो ,
और फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।
जो लघु को देख सके , वह स्पष्ट दृष्टि वाला है ;
जो कुलीनता के साथ जीता है , वह बलवान है।
प्रकाश को काम में लाओ , और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो।
इस प्रकार अपने को बाद में आने वाली पीड़ा से बचा सकते हो।
-- इसे ही परम में विश्राम करना कहते हैं।

लाओत्से को चोरी का प्रतीक बहुत प्रिय है। इस प्रतीक को थोड़ा हम समझ लें , फिर सूत्र में प्रवेश करें।

सूफी फकीर हुआ जुन्नैद। वह एक गांव से गुजरता था। और गांव के काजी ने एक चोर को आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी। गांव का काजी जुन्नैद का भक्त था। खबर सुन कर जुन्नैद अदालत गया और काजी से बड़ी प्रार्थना की कि इस आदमी को छोड़ दो ; कितना ही बड़ा पाप हो , लेकिन पूरा जीवन इसका नष्ट न करो। और अभी यह जवान है , शायद सुधर जाए। काजी ने चोर को क्षमा कर दिया।

चोर को अदालत के बाहर लेकर जुन्नैद निकला और उस चोर से कहा कि अब बहुत हो गया , अब सम्हलो , अब चोरी बंद करो। और जीवन बचाया है तो इसीलिए मैंने कि तुम्हारे जीवन में अब प्रार्थना और परमात्मा का जन्म हो। उस चोर ने कहा ,

क्यों करूं बंद चोरी? एक बार असफल हुए तो क्या सदा असफल होते रहेंगे? और जीवन मिला है तो एक बार प्रयास करना और जरूरी है।
वे दिन जुन्नैद के जीवन में बड़ी कठिनाई के दिन थे। और वह बड़े संकट से गुजर रहा था। वर्षों से खोज रहा था परमात्मा को, और उस सुबह ही उसने यह तय किया था कि अब बहुत हो गया; नहीं मिलता, होगा ही नहीं। चोर की यह बात सुन कर जुन्नैद आंख बंद करके वहीं बीच रास्ते पर खड़ा हो गया और उसने सोचा, एक चोर भी कहता है कि जीवन मिला है तो एक प्रयास और। अब तक असफल हुए, लेकिन आगे भी होंगे इसका क्या पक्का है! सफलता संभव है। भविष्य सदा खुला है। मौके का और उपयोग कर लेना जरूरी है। जुन्नैद ने आंखें खोलीं, चोर को कहा, धन्यवाद! और अपने रास्ते पर चलने लगा।
चोर ने कहा, रुको! किस बात का धन्यवाद? जुन्नैद ने कहा, मैं भी उस घड़ी में आ गया था, जहां हताशा मन को पकड़ ली थी। और सोचता था, छोड़ दूं यह प्रयास; न कोई परमात्मा है, न कोई मोक्ष। बहुत हो गया। खोज लिया बहुत, कुछ हाथ न आया। संसार भी गंवा रहा हूं, शक्ति भी खो रहा हूं, जीवन हाथ से जा रहा है, और उसकी कोई खबर नहीं मिलती। लेकिन तूने मेरी हिम्मत जगा दी। और जब एक चोर भी चोरी छोड़ने को राजी नहीं है, क्योंकि एक अवसर और मिला है, इसका उपयोग करना चाहता है, तो अभी मेरे पास भी जीवन है और मैं भी तब तक उपयोग करूंगा जब तक कि आखिरी क्षण बचता है। तू मेरा गुरु है। धन्यवाद!
जब जुन्नैद ज्ञान को उपलब्ध हुआ कोई बीस वर्ष बाद इस घटना के तो उसके शिष्यों ने पूछा, कौन है तुम्हारा गुरु? किसकी कृपा से? तो उसने उस चोर का स्मरण किया। और जुन्नैद ने कहा, परमात्मा को पाना भी चोरी है। और चोर की तरह ही सतत हिम्मत चाहिए--अंधेरे में चलने की, अंधेरी रात में यात्रा करने की। खतरा वहां चोर जैसा ही है। मिले न मिले, कुछ पक्का नहीं है। जीवन खो जाए और न मिले। आजीवन कारावास हो जाए, फांसी लगे, और कोई संपदा हाथ न लगे। चोर जैसे ही हिम्मतवर लोगों का काम है। दूसरे के घर में ऐसे चलना है जैसे अपना हो-- रात अंधेरे में। यह संसार दूसरे का घर है, जुन्नैद ने कहा, यह अपना घर नहीं है। और यहां हिम्मत बनाए रखनी है। और अंधेरा हताशा न बन जाए, असफलता गहरी न बैठ पाए। आशा को जगाए रखना है--आज नहीं तो कल होगा; कल नहीं तो परसों होगा; होकर रहेगा। यह बात कभी टूटे न मन से, यह धागा कभी छूटे न। तो उस चोर ने ही मुझे बचाया। उस दिन तो मैंने तय कर लिया थाः लौट जाऊं संसार में वापस। लाओत्से को भी चोरी शब्द बड़ा प्रिय है। हिंदुओं ने भी, जिन्होंने भी खोज की है कभी, चोरी शब्द का कहीं न कहीं प्रयोग किया है। हिंदुओं ने तो परमात्मा का एक नाम, हरि, चोरी के कारण ही चुना है। हरि का मतलब है जो हर ले, चुरा ले। हरि का मतलब है चोर, परम चोर। उसने तुम्हें चुरा लिया है। और जब तक तुम उसे न चुरा लो तब तक यात्रा अधूरी है। जैसे उसने तुम्हें चुरा लिया है, जैसे उसने एक दांव खेला है, ऐसा ही तुम्हें भी जवाब देना है। तुम जब तक उसे न चुरा लोगे तब तक तुम हारी बाजी हो। इसलिए हिंदू परमात्मा को हरि कहते हैं। लाओत्से कहता है, उस परम सत्य को भी चुराना है। क्यों चुराना है? क्योंकि है तो वह हमारे हृदय का हृदय, लेकिन हमसे बहुत दूर पड़ गया है। अपना ही है, लेकिन इतना पराया हो गया है कि अब उसे पाने की कोशिश चोरी ही कही जाएगी। तुमने ही उसे इतना पराया कर दिया है, इतना दूर कर दिया है। अपनी ही संपदा है, लेकिन फासला तुमने इतना कर लिया है कि अब उसे भी पाने के लिए तुम्हें करीब-करीब चोर की हालत से गुजरना पड़ेगा। तुम उसे पूरा गंवा चुके हो, तुम उसे पूरा खो चुके हो। अब फिर से पाने जाओगे। तुम्हारा कोई दावा नहीं रह गया है; तुम्हारी मालकियत कभी की समाप्त हो गई है। तभी तो तुम भिखारी की तरह भटक रहे हो। यह भिखारी अब सम्राट फिर बनना चाहे तो करीब-करीब चोरी की हालत है। क्योंकि साम्राज्य तो कभी का उसका नहीं रहा है। न मालूम अतीत के किन क्षणों में, किन जन्मों में, तुम उसे गंवा दिए हो। फिर से पाना है, फिर से दावा करना है। वह दावा चोर जैसा ही दावा है। और चोर जैसा ही प्रयास है। अंधेरे में टटोलना है; रोशनी अभी है नहीं। रोशनी को धीरे-धीरे निर्मित करना है। और दूसरों को पता न लगे। क्योंकि दूसरों को पता लग जाए तो भी बाधा पड़ जाती है। इसलिए चोरी जैसा है।

सूफी कहते हैं कि तुम जब प्रार्थना करो तो रात के गहन अंधकार में, जब तुम्हारे बच्चे और तुम्हारी पत्नी भी सो गई हो तब करना। क्यों? क्योंकि किसी को पता चल जाए कि तुम प्रार्थना कर रहे हो, इससे हर्जा नहीं है; लेकिन किसी को यह पता चल जाए कि तुम प्रार्थना कर रहे हो, इससे तुम्हें रस पैदा होता है और तुम्हारा अहंकार निर्मित होता है। तब तुम, किसी को पता चले, इसीलिए प्रार्थना करने लगते हो। तब परमात्मा की खोज तो दूर रह जाती है, प्रार्थना भी अहंकार की पुष्टि बन जाती है। लोग जानें कि तुम साधक हो, लोग जानें कि तुम खोजी हो, लोग जानें कि तुम परमात्मा की यात्रा पर निकले हो--यह जो तुम्हारी चेष्टा है, यह चेष्टा ही बाधा बन जाएगी।
जीसस ने कहा है, तुम बाएं हाथ से दो तो तुम्हारे दाएं हाथ को खबर न लगे। तुम दान करो तो पता न चले, तुम पुण्य करो तो पता न चले; तुम्हीं को पता न चले, कानों-कान खबर न हो। देना और भूल जाना।
सूफी कहते हैं, नेकी कर और कुएं में डाल। अच्छा किया और कुएं में डाल दिया। उसको घर मत ले आना। उसको हृदय में मत रख लेना कि मैंने अच्छा किया, कि मैंने पूजा की, कि प्रार्थना की, कि पुण्य किया, कि दान किया, सेवा की। अगर तुम्हारा कर्ता आ गया तो तुमने गंवा दिया; पाया कुछ भी नहीं। तो दूसरे को पता न चले। क्योंकि दूसरे की आंखों में अपनी झलक देख कर तुम्हारा अहंकार बड़ा होता है।
चोरी का काम है, चुपचाप निबटा लेना है। कानों-कान खबर न हो। जब सब सोए हों--और सब सोए हैं--तब किसी की नींद न टूटे, ऐसे चुपचाप निबटा लेना है काम को। इसलिए चोरी जैसा कृत्य है, और बड़ा सम्हल कर करना होगा। चोर को बड़े सम्हल कर चलना पड़ता है।
तुमने कभी देखा नहीं, तुमने कभी सोचा भी नहीं; चोर को तुमने कभी उसकी पूरी महिमा भी नहीं दी, तुम सिर्फ निंदा ही करते रहे हो। अपने ही घर में तुम चलते हो तो टेबल-कुर्सी से टकरा जाते हो--दिन के उजाले में। हाथ से बर्तन छूट जाता है--दिन के उजाले में, भरे होश में। चोर दूसरे के घर में चलता है, जहां के रास्ते उसे पता नहीं, कमरों के द्वार पता नहीं। रात के अंधेरे में चलता है, जरा भी आवाज नहीं होती, आहट नहीं होती; कोई चीज टकराती नहीं। दीवारें तोड़ लेता है, और घर के लोग मजे से घुर्राते रहते हैं, सोये रहते हैं--प्रगाढ़ निद्रा में। बिना रोशनी जलाए खजाने खोज लेता है। तुमने खुद भी गड़ाया हो अपना खजाना तो भी खोदने में बड़ा शोरगुल मचेगा; उसने गड़ाया भी नहीं है। दूसरे के मन और दूसरे की चेतना के नियमों को समझ कर, कहां गड़ाया गया होगा, कैसे गड़ाया गया होगा, चुपचाप सब निबटा लेता है। तुम सोए ही रहते हो, और चोरी हो जाती है। चोर को बड़ी सजगता रखनी पड़ती है, बड़ा होश रखना पड़ता है। जिसको अवेयरनेस, सम्यक बोध कहा है, वह चोर को रखना पड़ता है।
ऐसा हुआ एक बार कि एक चोर एक झेन फकीर के पास गया। झेन फकीर बड़ा प्रसिद्ध फकीर था, लिंची। और चोर ने कहा कि मुझे ध्यान सिखाएं। लिंची को पता भी नहीं कि वह कौन है। लेकिन लिंची ने कहा, ध्यान? ध्यान तू जानता है; तेरी हवा में ध्यान है। तुझे देख कर लगता है, तू मुझे धोखा देने की कोशिश मत कर, तूने ध्यान पहले सीखा है। उस आदमी ने कहा कि आप भ्रांति में पड़ गए हैं और आपको मैं गलत कहूं, यह उचित नहीं। लेकिन ध्यान से मेरा क्या नाता? आप मुझे जानते नहीं हैं; ध्यान मैंने कभी नहीं किया।
लिंची विचार में पड़ गया। उसने आंखें बंद कीं, बहुत खोजा। उसने कहा कि तूने जरूर कुछ न कुछ किया है। तू तलवार चलाना जानता है?
क्योंकि झेन फकीर तलवार के माध्यम से भी ध्यान करवाते हैं। तलवार का खेल ध्यान का खेल है। क्योंकि रत्ती तुम चूके होश कि गए। दूसरा तलवार उठाए, इसके पहले बचाव हो जाना चाहिए। दूसरा वार करे, इसके पहले तैयारी हो जानी चाहिए। बड़ी सजगता चाहिए। और जरा सा फासला नहीं है समय का, तलवार सामने खड़ी है। तो तलवार के माध्यम से ध्यान का जापान में बड़ा प्रयोग किया गया है।
तो तू तलवार चलाना जानता है?
नहीं, मेरा काम ऐसा नहीं, उसमें तलवार की जरूरत नहीं। मेरा कोई नाता नहीं है।

तो तू क्या करता है? लिंची ने पूछा फिर; क्योंकि मैं यह समझ ही नहीं पा रहा हूं। और मेरी भूल कभी नहीं हुई आज तक जीवन में। मैं भलीभांति पहचान सकता हूं कि ध्यान की आभा क्या है। और तेरे चारों तरफ ध्यान का मंडल है।
वह आदमी रोने लगा। उसने कहा कि जरूर कोई भूल हो रही है; जीवन भर न किए हों, लेकिन इस बार हो रही है। मैं एक साधारण चोर हूं। अब मत वह बात उठाएं, उससे मन में ग्लानि उठती है।
लिंची हंसने लगा। उसने कहा, बात साफ हो गई; मैं गलती में नहीं हूं। क्योंकि चोर को ध्यान तो साधना ही पड़ता है। पर तू साधारण चोर नहीं है, मास्टर थीफ। तू बड़ा असाधारण, असाधारण चोर है। और तू मुझसे क्या सीखने आया है? जो तूने चोरी में जाना है उसको ही तू जीवन में उतार ले। जितनी सजगता से तूने चोरी की है उतनी सजगता से और काम भी कर। बस, हल हो जाएगा। सूत्र तुझे मिल गया है; तुझे खबर नहीं है। तेरे पास क्या है उसका तुझे पता नहीं है। जितनी सजगता से दूसरे के घर रात के अंधेरे में पैर उठाता था, श्वास लेता था... ।
श्वास भी चोर जोर से नहीं ले सकता दूसरे के घर में; उसको प्राणायाम साधना होता है। और तुम जानते हो, जब भी तुम कभी ऐसा कोई काम कर रहे हो जिसमें घबड़ाहट होती है तो श्वास ज्यादा हो जाती है। और चोर को श्वास साधनी पड़ती है कि वह ज्यादा न हो जाए, एक लयबद्धता रहे। श्वास का भी पता न चले। खांसता नहीं चोर, खखारता नहीं चोर। तुम्हें पता है कि संन्यासी भी ध्यान करने बैठता है तो खांसी आ जाती है तो नहीं रोक पाता, लेकिन चोर को तो रोकना ही पड़ेगा। क्योंकि खांस दे तो सब बात ही खराब हो गई। कैसा सम्यक! काम गलत है, लेकिन काम करने की जो प्रक्रिया है उसमें होश तो रखना ही पड़ेगा।
लाओत्से को भी बड़ा प्रिय है चोर का प्रतीक। और लाओत्से कहता है, उस परमात्मा को चुराना है; चोर की तरह अंधेरे में चलना है दूसरे के घर में। यह दुनिया पूरा दूसरे का घर है, अपना यहां कुछ भी नहीं। यहां हर जगह संभावना है टकराने की, यहां हर जगह कलह, संघर्ष की। उस संघर्ष से बचना है, कलह से बचना है। यहां हर जगह संभावना है भटक जाने की, क्योंकि अंधेरा है घना। उस भटकाव से बचना है, और एक ऐसे ढंग से चलना है कि अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगे। चोर को धीरे-धीरे अंधेरे में दिखाई पड़ने लगता है।
तुम भी अगर अंधेरे में थोड़े दिन बैठ कर शांत देखने की कोशिश करो तो तुम पाओगे, जैसे-जैसे तुम्हारी कोशिश गहन होती है वैसे-वैसे तुम्हें हलकी-हलकी प्रतीति होने लगती है। क्योंकि कोई अंधकार अंधकार नहीं है; सभी अंधकार प्रकाश के रूप हैं। जिसको हम अंधकार कहते हैं उसको अगर हम ठीक से कहें, वैज्ञानिक भाषा में कहें, आइंस्टीन से पूछ कर कहें, तो हम कहेंगे, वह कम प्रकाश है। सापेक्ष। अंधकार कहना उचित नहीं है; थोड़ा कम प्रकाश। क्योंकि उस अंधेरे में भी बिल्ली देखती है। बिल्ली की आंखें ज्यादा सचेत हैं। अगर तुम कभी बिल्ली की आंखों में देखो तो तुम्हें बहुत बेचैनी मालूम पड़ेगी। इसीलिए तो बिल्ली शैतान का प्रतीक हो गई। बहुत सचेत है। और इसीलिए तो बिल्ली को, जो लोग भी काली विद्याओं में यात्रा करते हैं, बिल्ली उनकी साथी हो गई। अंधेरे में देख सकती है, यह उसकी बड़ी गहन कला है।
और बिल्ली को तुमने कभी चलते देखा? बस चोर भी वैसे ही चलता है। जब बिल्ली चूहे को पकड़ने जाती है तब उसे देखो, चोर भी वैसे ही चलता है, आवाज भी नहीं होती। और जब चोर संपत्ति के करीब पहुंचता है, दूसरे की संपत्ति के, तब वह वैसी ही हालत में सजग होता है जैसे बिल्ली चूहे के छेद के पास बैठी रहती है। जरा भी पता नहीं चलता कि वह है। हलकी थिरकन भी नहीं करती, लेकिन तैयार ऐसी कि ओलंपिक में दौड़ने के लिए जो प्रतियोगी खड़े होते हैं वे भी इतने तैयार नहीं। चूहा निकला नहीं कि वह झपटी नहीं, लेकिन झपट में भी आवाज नहीं होती। दूसरे चूहों को भी पता नहीं चल पाता कि एक चूहा पकड़ा गया है, नहीं तो वे निकलना बंद कर देंगे।
बिल्ली की नींद तुमने देखी? गहन निद्रा में लीन होती है; हो सकता है कोई गहरा सपना देख रही हो; मूंछों को चाटती है, हो सकता है सपने में चूहा खा रही हो; बड़ी गहरी नींद में लीन है। लेकिन जरा सी खटक, चूहे का चलना-हिलना, आंख खुल गई। योगी की निद्रा बिल्ली जैसी होनी चाहिए। और बिल्ली चोरों में

चोर है। बिल्ली, जानवरों में वैसा कोई दूसरा चोर नहीं जैसा बिल्ली। चुरा कर ही जीती है; सारा धंधा ही चोरी का है।
स्मरण रहे कि सारा संसार पराया है, दूसरे का घर है। सब तरफ अंधेरा है। लेकिन अगर तुम थोड़ी अपनी दृष्टि को जमाना सीख जाओ--और दृष्टि के जमाने के अतिरिक्त ध्यान क्या है--अगर तुम्हारी दृष्टि थोड़ी थिर होने लगे, तो यह अंधकार धीरे-धीरे-धीरे-धीरे कम अंधकार होता जाता है और इसमें प्रकाश का आविर्भाव हो जाता है। और एक घड़ी ऐसी आती है कि जब तुम्हारा ध्यान पूरी तरह थिर हो जाता है तो अंधकार बचता ही नहीं। तुम्हारे भीतर का दीया जल उठता है; उस दीए की रोशनी चारों तरफ पड़ने लगती है। और जब तक तुम ऐसी अंतर-ज्योति को उपलब्ध न हो जाओ तब तक परमात्मा की चोरी नहीं हो सकती। इसलिए चोर का प्रतीक है।
दूसरी बात सूत्र के पहले। तुमने कहावत सुनी है कि वृक्ष को जानना हो तो
फल से जाना जाता है। हम सभी कहते हैं कि बेटे से बाप की परख हो जाती है। लेकिन लाओत्से ठीक उलटी बात कहता है। वह कहता है, फल को जानना हो तो वृक्ष से जाना जाता है, और बेटे को जानना हो तो बाप को या मां को पहचानना जरूरी है। साधारण कहावत ठीक है। लेकिन साधारण कहावत साधारण लोगों ने निर्मित की है। और लाओत्से जो कह रहा है वह उलटा दिखाई पड़ता है, लेकिन बहुत गहरा है। जिससे हम पैदा होते हैं उससे हम बड़े नहीं हो सकते। मूल से बड़े नहीं हो सकते; उदगम से बड़े नहीं हो सकते। क्योंकि जिससे हम आते हैं उससे बड़े हम कैसे हो सकते हैं? उससे छोटे हो सकते हैं। और अगर जीवन को साधना बनाएं तो उसके जैसे हो सकते हैं, लेकिन उससे बड़े होने का कोई उपाय नहीं। अगर भटक जाएं तो छोटे हो सकते हैं। इसलिए बेटे से बाप की पूरी खबर नहीं मिल सकती, क्योंकि बाप सदा बेटे से बड़ा है।
इसीलिए तो पूरब के मुल्कों में हम बाप को, मां को इतनी श्रद्धा देते हैं। पश्चिम में वैसी श्रद्धा नहीं है। और कारण उसका है कि पश्चिम में वे सोचते हैं, जो दिखाई पड़ता है स्थूल, वह उनका तर्क है। अगर तुम गंगोत्री पर जाओ तो गंगा बहुत छोटी है, बड़ी सूक्ष्म है। काशी में आकर खूब विराट है। लाओत्से कहता है कि अगर गंगा को पहचानना हो तो गंगोत्री! और हम तो कहेंगे, गंगोत्री में क्या रखा है? जरा सा झरना बहता है; बूंद-बूंद पानी रिसता है। गौमुख से बहती है गंगा गंगोत्री में--कितनी छोटी होगी। वहां क्या रखा है? वृक्ष की जड़ों में क्या रखा है? देखना हो वृक्ष को तो फूलों और फलों में देखो। बड़ा विस्तार है वहां।
माना विस्तार है, लेकिन जो विस्तीर्ण होकर दिखाई पड़ रहा है, वह सब अंकुर में छिपा था, बीज में छिपा था, जड़ में छिपा था। और ध्यान रहे, जो दिखाई पड़ रहा है उससे ज्यादा मूल में हमेशा छिपा है। मूल अनंत है। जो दिखाई पड़ रहा है... । यह वृक्ष सामने खड़ा है, यह पूरा नहीं है। क्योंकि हर वर्ष ये पत्ते गिर जाते हैं; फिर नए पत्ते आ जाते हैं। ऐसा सैकड़ों बार हुआ है, सैकड़ों बार होगा। हर बार हजारों-लाखों बीज लगते हैं, फिर लग जाते हैं। मूल देता ही चला जाता है। गंगा बहती ही चली जाती है। गंगोत्री सूक्ष्म है, छोटी नहीं। और जिसने सूक्ष्म को पहचान लिया वही विस्तार को समझ पाता है। विस्तार दिखाई पड़ता है, स्थूल आंखें उसे देख लेती हैं। मूल दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन मूल में सब छिपा है। और मूल में अनंत संभावनाएं छिपी हैं। मूल में वह भी छिपा है जो हो गया; वह भी छिपा है जो हो रहा है; वह भी छिपा है जो होगा। विस्तार तो एक क्षण का है; मूल शाश्वत है। विस्तार तो अभी है, सीमित है; मूल असीम है। सब आदि और अंत उसमें छिपे हैं।
तो लाओत्से की समस्त प्रक्रियाएं मूल की तरफ जाने वाली हैं। लाओत्से कहता है, मूल उदगम को खोज लो। परमात्मा विकास का आखिरी फूल नहीं है लाओत्से के हिसाब से। परमात्मा सभी चीजों का मूल उदगम है, मूल स्रोत है। जितना तुम स्रोत की तरफ जाओगे उतना वह छोटा होता जाता है। जितना स्रोत की तरफ जाओगे उतना वह अदृश्य होता चला जाता है। और उस अदृश्य को देखना हो तो तुम्हारी दृष्टि को जमाना पड़ेगा। इस दृष्टि से तुम न देख पाओगे; उसके लिए बड़ी सूक्ष्म, पैनी दृष्टि चाहिए। तुम्हारी आंखें थिर चाहिए, तुम्हारा ध्यान

अकंप चाहिए। जितना अकंप ध्यान होगा उतना तुम सूक्ष्म को देख सकोगे। और जिसने सूक्ष्म देख लिया उसने सब देख लिया।
इसका यह अर्थ हुआ कि ध्यान का अर्थ पीछे की तरफ लौटना है। पतंजलि ने इस क्रिया को ही प्रत्याहार कहा है। प्रत्याहार का अर्थ है वापस लौटना। महावीर ने इसी प्रक्रिया को प्रतिक्रमण कहा है। प्रतिक्रमण का अर्थ भी है रिटर्निंग बैक, पीछे की तरफ लौटना। आक्रमण है आगे की तरफ जाना, झपटना, दौड़ना, बाहर की तरफ; प्रतिक्रमण है भीतर की तरफ लौटना। प्रत्याहार। मूल में समा जाना; जहां से आए हैं उसी तरफ जाना।
अभी पश्चिम में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग चल रहा है। जैनोव नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक, पश्चिम में जो थोड़ी सी महत्वपूर्ण घटनाएं घट रही हैं उनमें जैनोव एक महत्वपूर्ण घटना है। उसने एक नए मनस-चिकित्सा शास्त्र को जन्म दिया है--प्राइमल थैरेपी। पूरी की पूरी चिकित्सा मूल की तरफ लौटने की है। अगर जैनोव सफल होता है तो पश्चिम में जैनोव के माध्यम से लाओत्से का प्रभाव बहुत बढ़ेगा।
जैनोव की प्रक्रिया हैः अगर तुम्हारे जीवन में कहीं भी कोई अड़चन है, दुविधा है, कोई रोग है, मानसिक तनाव, चिंता है, तो वह कहता है, बचपन की तरफ वापस लौटो। वह कहता है, आंख बंद करो और पीछे लौटो। ध्यान को पीछे ले जाओ। प्रतिक्रमण करो, प्रत्याहार करो। लौटो पीछे की तरफ। पहले जब तुम लौटोगे तो तुम ज्यादा नहीं लौट पाओगे, चार साल की उम्र तक लौट पाओगे। तीन साल, बहुत अगर सचेत हुए तो। फिर सब धुंधला हो जाता है, फिर कुछ याद नहीं आता, कोई स्मृति ख्याल में नहीं आती। लेकिन अगर तुम रोज-रोज, रोज-रोज याद को लगाए रखो तो धीरे-धीरे अंधेरा कम होने लगता है, छोटी-छोटी स्मृतियां प्रकट होने लगती हैं। अगर तुम लौटते ही चले जाओ तो कुछ लोग सफल हो जाते हैं उस घड़ी को याद करने में जब उनका जन्म हुआ। जब वे पैदा हुए, जब मां के गर्भ से वे बाहर आए, उस तक याददाश्त पहुंच जाती है। और जैसे ही उस पर याददाश्त पहुंचती है, जैसे ही एक बार उन्होंने ठीक से याद कर लिया--इसको प्राइमल, इसको जैनोव प्राथमिक घटना कहता है। जब तुम गर्भ के बाहर आए, वहीं से संसार शुरू हुआ। वहीं से विस्तार हुआ चीजों का। बीज टूटा, अंडा फूटा, पक्षी उड़ा। अगर तुम उस क्षण में पहुंच जाओ तो उस क्षण तुम बिल्कुल निर्दोष थे। न कोई बीमारी थी, न कोई तनाव था, न कोई चिंता थी। अगर तुम उस क्षण को लौट कर एक बार फिर से जान लो तो अचानक तुम अपने मूल स्वभाव को समझ लोगे कि चिंतित होना तुम्हारा स्वभाव नहीं है। चिंता दुर्घटना है, बाहर से आई है। तुम इसे लेकर न आए थे।
लेकिन जैनोव का प्रयोग अभी पूरा नहीं है, अधूरा है। हिंदुओं ने, लाओत्से के अनुयायियों ने, पतंजलि ने, महावीर ने इसे और गहरा किया। वे कहते हैं कि जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ उस दिन भी तुम नौ महीने पुराने हो चुके थे। उस दिन भी तुम पूरे शुद्ध न थे। जन्म से गंगा काफी दूर निकल गई थी, गंगोत्री यात्रा कर चुकी थी। नौ महीने लंबा वक्त है। इसलिए महावीर तो कहते हैं कि प्रतिक्रमण तुम्हारा वहां तक जाना चाहिए जहां गर्भाधान हुआ, जहां तुम शरीर में प्रविष्ट हुए। उस क्षण तुम और भी शुद्ध थे। क्योंकि नौ महीने में भी बच्चे की स्मृतियां बन जाती हैं। अगर मां बीमार पड़ती है तो बच्चा पीड़ित होता है; स्मृति बनती है। अगर मां गिर पड़ती है, पैर फिसल जाता है गुसलखाने में, तो बच्चे को चोट लगती है, और बच्चे को स्मृति बनती है। मां प्रसन्न होती है तो स्मृति बनती है। अगर मां गर्भवती है और तब भी पति संभोग किए जाता है तो भी बच्चे को स्मृति बनती है।
इसलिए हिंदुओं ने बिल्कुल वर्जित किया है कि गर्भस्थ स्त्री के साथ संभोग न किया जाए। अभी एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने पश्चिम में काम किया है और उसने भी हिंदुओं के साथ सहमति प्रकट की है कि जब मां गर्भवती हो तब संभोग न किया जाए। क्योंकि संभोग की घटना बच्चे के लिए घातक है, और बच्चे के चित्त में कामवासना को अभी से पैदा कर रही है। और बच्चे की निर्दोषता अभी से नष्ट हुई जा रही है। फिर तुम चिल्लाते हो कि बच्चे कामुक हैं; फिर तुम चिल्लाते हो कि बच्चे गंदे हैं, और बच्चे भटक गए हैं, और भ्रष्ट हो गए हैं। और तुम्हें पता नहीं कि तुमने उन्हें भ्रष्ट किया। जब वे बिल्कुल निर्दोष थे और जब

संसार का कुछ भी भीतर न प्रविष्ट किया था, जब वे अभी बिल्कुल कोमल थे, तभी कामवासना का वातावरण उनके चारों तरफ इकट्ठा हुआ।
और तुम्हें पता नहीं, अब तो वैज्ञानिक आधार से यह बात पुष्ट हो गई है। क्योंकि जब मां गर्भ की अवस्था में संभोग करे तो संभोग पूरे शरीर के रसायन को बदलता है। श्वास तेज हो जाती है, आक्सीजन की कमी हो जाती है शरीर में। इसीलिए तो तेजी से श्वास लेने लगते हैं संभोग करते हुए युगल; क्योंकि ज्यादा आक्सीजन की जरूरत है। जैसे दौड़ने में जरूरत है वैसे ही संभोग में जरूरत है। आक्सीजन की कमी पड़ जाती है। और बच्चा आक्सीजन मां से लेता है। जब मां को आक्सीजन की कमी पड़ जाती है तो बच्चा एकदम सफोकेटेड हो जाता है, उसको भीतर श्वास लेने की सुविधा नहीं रह जाती, उसका बिल्कुल कंठ अवरुद्ध हो जाता है। वह उसके लिए बहुत संघातक है। और इसलिए यह भी हो सकता है कि अगर नौ महीने के गर्भ की मां से संभोग किया जाए तो कभी-कभी बच्चा गर्भ में मर जाता है इसी कारण। तब हत्या हो गई। क्योंकि उसकी श्वास अवरुद्ध हो जाती है। और अगर यह ज्यादा देर तक चल जाए, या रोज चलता रहे, तो भयंकर घातक है--हिंसा है।
तो महावीर और लाओत्से और गहरा ले जाते हैं। वे कहते हैं, जन्म ठीक उस क्षण होता है जब गर्भाधान होता है। लेकिन वह भी काफी नहीं है। और पीछे जाया जा सकता है। क्योंकि गर्भाधान तो एक पहलू है सिक्के का; दूसरा पहलू है एक बूढ़े आदमी का मरना। वहां से शरीर-आत्मा अलग होते हैं और यहां फिर से जुड़ते हैं। तो जब एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, तब आधा हिस्सा वहां है जन्म का, और आधा गर्भाधान में है। ये दो पहलू हैं। अगर तुम और गहरे उतरोगे तो तुम पिछले जन्म में पहुंच जाओगे। और तब तुम्हारे लिए द्वार खुल गया। तब मूल इन जन्मों में खोजने से न मिलेगा। तब तो अनंत जन्म हैं। और उन जन्मों के पार, और पार, और पार जब तुम मूल उदगम पर पहुंचोगे जहां तुम्हारा पहला आविर्भाव हुआ। उसको लाओत्से कहता है, वहां तुम्हें माता मिलेगी, जब पहला आविर्भाव हुआ, जब पहली बार चेतना ने शरीर में प्रवेश किया। वह जो प्राथमिक है वही प्राइमल है।
अभी जैनोव को बहुत यात्रा करनी पड़ेगी प्राइमल को खोजने के लिए। यह प्राथमिक नहीं है। यह तो काफी पुरानी यात्रा है। लेकिन फिर भी उपयोगी है। और अनेक बीमारियां सिर्फ जन्म तक पहुंचते ही विलीन हो जाती हैं। स्मरण मात्र से, तुम चकित होओगे कि मन तनाव खो देता है, और फिर से बच्चे का तुम्हारे भीतर उदय हो जाता है।
तुम कल्पना करो कि जिन लोगों ने प्रथम क्षण पा लिया है अपने जन्म का, अनंत यात्राओं के पूर्व, उनका मन कैसा निर्मल न हो जाता होगा! उसी को हमने संत कहा है, जिसने आदि उदगम पा लिया। उसकी निर्मलता परम है। उसने परमात्मा को चुरा लिया। अब उसे पाने को कुछ भी न बचा। जिसने परमात्मा को चुरा लिया उसे पाने को क्या बचा? सब पा लिया गया। तब परम तृप्ति है। परमात्मा को पाए बिना कोई कभी तृप्त नहीं हुआ है। होना भी नहीं चाहिए। जो हो गए वे नासमझ हैं। उन्हें हीरा मिला ही नहीं; कंकड़-पत्थर से राजी हो गए। कम से राजी मत होना, परमात्मा से कम से राजी मत होना। कितनी ही लंबी हो यात्रा, कितना ही श्रम हो, कितना ही भटकना पड़े, कितना ही गहन अंधेरा हो, जारी रखना प्रयास। अब हम सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"ब्रह्मांड का एक आदि था, जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है। माता से हम उसके पुत्रों को जान सकते हैं, लेकिन पुत्रों को जान कर माता को नहीं। पुत्रों को जान कर भी माता से जुड़े रहो; इस प्रकार व्यक्ति का पूरा जीवन हानि से बचाया जा सकता है।"
एक ही उपाय है तुम्हें हानि से बचने का और वह यह है कि तुम पीछे लौटो; तुम उस क्षण को पुनः प्राप्त करो जहां से हानि शुरू हुई। जैसे कोई आदमी यात्रा करता हो और किसी चौराहे पर भटक जाए; जहां जाना था, वह राह न पकड़े, कोई और राह पकड़ ले। फिर कई मील चलने के बाद पता चले कि भूल हो गई, तो वह क्या करेगा? वापस चौराहे पर लौटना होगा। अगर वह कहे, अब इतने चल चुके, अब कैसे वापस लौटें? अब इतना तो लगा चुके दांव पर, अब कहां जाएं? और जाने से अगर डरे। डर आएगा। क्योंकि कोई आदमी तीस साल चल चुका, कोई पचास साल चल चुका, कोई पचास जन्म, कोई पचास हजार जन्म चल चुका। इतना तो इसमें न्यस्त हो गया हमारा

जीवन। अब अचानक पता चलता है कि हम गलत मार्ग चुन लिए हैं; पीछे छूट गया चौराहा बहुत।
और इसीलिए तो लोग संतों के पास जाने से डरते हैं। क्योंकि उनके पास जाकर आनंद तो मिलेगा, लेकिन बहुत बाद में। पहले तो बड़ी पीड़ा मिलेगी। पहली पीड़ा तो यह होगी कि तुम गलत हो। अब तक तुम यही माने रहे कि तुम ठीक हो। होगी सारी दुनिया गलत, तुम कभी गलत नहीं हो। संत के पास जाकर पहली पीड़ा तो यह भोगनी पड़ेगी कि तुम अचानक पाओगेः सारा जीवन तुम्हारा व्यर्थ है, तुमने सिवाय भूलों के और कुछ भी नहीं किया। तुमने बस भूलें ही कीं। तुम जहां भी चले, भटके। तुम जिसे यात्रा समझ रहे हो, वह यात्रा नहीं है, सिर्फ भटकाव रहा। तुम कहीं पहुंचे नहीं, मंजिल करीब न आई; दूर भला निकल गई हो। संत तुम्हें कहेगा, लौटो। और तुम बड़ी अकड़ से चले जा रहे थे। राह की धूल को तुम स्वर्ण समझ रहे थे। राह की धूल जम गई थी, इसको तुम अनुभव समझ रहे थे। यह तुम्हारी संपदा थी। और अचानक कोई मिल गया और उसने कहा, आंख तो खोलो! देखो तो सही! हाथ में सिवाय कंकड़-पत्थर के कुछ भी नहीं।
इसलिए संसारी संत के पास जाने से डरता है। और चला जाए, भूले-भटके ही सही, किसी के संग-साथ में ही सही, उत्सुकतावश ही सही, कुतूहल के कारण ही सही, तो फिर दुबारा वही नहीं हो सकता जो जाते वक्त था। चोट थोड़ी लग ही जाएगी। दीवार उस दुर्ग की थोड़ी गिर ही जाएगी। अनुभव पर शक आ जाएगा। अपने पर संदेह पैदा हो जाएगा। सारे धर्म की प्रक्रिया यही है कि तुम्हें पहले तुम पर संदेह आ जाए; तभी तुम किसी पर श्रद्धा कर सकोगे। तुम्हें अपने पर अगर बहुत श्रद्धा बनी रहे कि तुम ठीक हो, तो तुम किसी पर श्रद्धा न कर सकोगे। और तुम अगर ठीक हो तो फिर तुम्हारा दुख, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारा संताप, सब ठीक है। फिर मत शोरगुल मचाओ, फिर मत कहो कि मैं दुखी हूं। तुम चाहते हो कि कोई तुमसे कहे कि दुख किसी और के कारण है। वैसे बताने वाले लोग भी हैं। इसलिए उनकी जमात बहुत बड़ी हो जाती है।
आज दुनिया में करीब-करीब आधी संख्या कम्युनिस्ट है। कम्युनिज्म की अपील कहां है? इतनी बड़ी अपील किसी और विचारधारा की कभी नहीं रही। महावीर के मानने वाले लाखों में हैं। उनमें भी ठीक मानने वाले कोई नहीं हैं। लेकिन मार्क्स के मानने वाले करोड़ों में हैं। क्या कारण है? अपील कहां है? अपील यहां है कि मार्क्स कहता है, तुम्हारे दुख के लिए तुम जिम्मेवार नहीं, समाज जिम्मेवार है। यहां है सारा सार। उत्तरदायित्व तुम पर नहीं है। तुम अगर कष्ट पा रहे हो तो दूसरे लोग तुम्हारे कष्ट का कारण हैं, तुम नहीं।
और महावीर, पतंजलि, लाओत्से, नानक, कबीर, वह पूरी जमात तुम्हें आकर्षित नहीं करती। क्योंकि उसके पास जाने पर वे पहली ही बात यह कहते हैं कि तुम्हीं जिम्मेवार हो; यह नरक तुम्हारा बनाया हुआ है। यह बात मन को चोट करती है। यह नरक किसी और ने बनाया हो, यह बात समझ में आती है। हम क्यों अपना नरक बनाएंगे? और तुम्हारे अनुभव और तुम्हारे अहंकार और तुम्हारे सयानेपन को चोट लगती है। तुम चाहते हो कि स्वर्ग तो तुम बनाने वाले हो, नरक दूसरे बना रहे हैं।
कम्युनिज्म फैलेगा। क्योंकि आदमी के आत्म-अज्ञान से उसका बड़ा जोड़ है। अज्ञानी आदमी को कम्युनिज्म में बड़ा रस है। क्योंकि अज्ञानी को कम्युनिज्म अज्ञानी नहीं कहता, शोषित कहता है। और सारे ज्ञानी कहते हैं कि तुम अज्ञानी हो, शोषित नहीं। तुम जो पीड़ा पा रहे हो, तुम्हारे ही हाथों का इंतजाम है। तुम जिन गड्ढों में गिर रहे हो, ये तुम्हीं ने खोदे हैं। यह हो सकता है कल खोदे हों, पिछले जन्म में खोदे हों। तुम भूल ही गए हो कि हमने कभी खोदे थे।
एक गांव में मैं मेहमान था। वहां एक हत्या हो गई। हत्या बड़ी अनूठी थी। छोटा गांव है। पहाड़ी गांव है। छोटा सा स्टेशन है। बस दिन में एक ही बार ट्रेन आती-जाती है। एक आदमी--और रात को कोई नौ बजे ट्रेन आती है--एक आदमी बहुत सा रुपया लेकर ट्रेन पकड़ने के लिए आया हुआ था। स्टेशन मास्टर को सुराग लग गया। नौ बजे ट्रेन आने वाली थी; वह तीन घंटे लेट थी। बारह बजे आएगी। स्टेशन सन्नाटा है। कोई ज्यादा लोग नहीं हैं। स्टेशन मास्टर है, एक पोर्टर है; बस ऐसा दो-तीन आदमी हैं। उन तीनों ने तैयारी कर ली इस आदमी को समाप्त कर

देने की। पोर्टर को राजी कर लिया। पता भी नहीं चलेगा किसी को। और वह आदमी स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक बेंच पर लेटा हुआ है, विश्राम कर रहा है। बारह बजे ट्रेन आएगी। रुपए का तो उसे भी भय है। पोर्टर तैयार है कि ठीक वक्त ग्यारह बजे तय कर लिया है कि वह आकर कुल्हाड़ी से इस आदमी की गर्दन काट देगा। संयोग की बात। और वह आदमी सो भी नहीं सकता, क्योंकि रुपए उसके पास हैं। जिनके भी पास रुपए हों वे कहीं सो सकते हैं? तो वह बार-बार अपनी बसनी को, जो उसने कमर में बांध रखी है रुपयों से भरी हुई, उसको टटोल कर देख लेता है। फिर रात घनी होने लगी और सन्नाटा छा गया। स्टेशन पर कोई नहीं है। तो वह उठ कर टहलने लगा। स्टेशन मास्टर देखने आया। वह उठ कर टहल रहा है। जब बैठे तभी कुछ किया जा सकता है। कहीं लेटे, सो जाए, तो सुविधा होगी; चीख-पुकार न मचा पाए। तो वह उसी बेंच पर बैठ कर देखने लगा कि यह कहां बैठता है, क्या करता है। स्टेशन मास्टर को झपकी आ गई। वह उसी बेंच पर लेट कर सो गया।
और पोर्टर ने ठीक ग्यारह बजे उसकी हत्या कर दी। पोर्टर तो यही समझ कर मारा उसे कि यह वही आदमी लेटा हुआ है रात के अंधेरे में। बिजली नहीं है; छोटी सी लालटेन स्टेशन पर जली थी। और वह पोर्टर इतना भयभीत रहा होगा, इतना चिंतित रहा होगा कि उसने ख्याल भी नहीं किया कि क्या हो रहा है। स्टेशन मास्टर की हत्या हो गई। इंतजाम स्टेशन मास्टर ने ही किया था।
करीब-करीब ऐसा ही हो रहा है। तुम्हारी हत्या हो रही है; तुम्हारा ही इंतजाम है। गड्ढा तुमने ही खोदा है। अब तुम्हीं गिर गए हो और चिल्ला रहे हो। मन मानने को भी नहीं होता कि गड्ढा हम अपने लिए क्यों खोदेंगे! इसलिए जो भी तुमसे कहते हैं कि तुम्हीं ने गड्ढा खोदा, वे जंचते नहीं। जो तुमसे कहते हैं कि गड्ढा किसी और ने खोदा, वे तुम्हें जंचते हैं। उनमें तुम्हारे अहंकार का बचाव है।
लाओत्से कहता है कि हानि से पूरा जीवन बचाया जा सकता है, लेकिन लौटना पड़ेगा। चौराहा तुम पीछे छोड़ आए। आगे ही बढ़ते गए। तो जितना आ गए हो, यह भी काफी फासला है। और अगर बढ़ते गए तो फासला बढ़ता जाएगा। रुक जाओ और पीछे की तरफ लौटो, मूल स्रोत की तरफ देखो। फेर लो अपनी पीठ जिस तरफ जा रहे थे; कर लो अपना मुंह उस तरफ जहां से आ रहे हो--उदगम की तरफ।
"ब्रह्मांड का एक आदि था, जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है।"
और लाओत्से के लिए जो परम प्रतीक है वह पिता नहीं है, मां है। और यह उचित है। क्योंकि अस्तित्व एक गर्भ है। अस्तित्व स्त्रैण है। पुरुष सांयोगिक है। स्त्री अपरिहार्य है। अब तो आर्टिफीशियल इनसेमिनेशन संभव है। तो पुरुष का काम इंजेक्शन भी कर देगा। तो पुरुष तो बिल्कुल ही अपरिहार्य नहीं है; उसके बिना चल सकता है। स्त्री अपरिहार्य है। और पुरुष तो एक क्षण में घटना के बाहर हो जाता है। स्त्री को तो बच्चे को बड़ा करने में नौ महीने तो पेट में सम्हालना होता है और फिर सालों तक पेट के बाहर सम्हालना होता है।
प्रकृति एक गर्भ है। इसलिए परमात्मा लाओत्से के लिए स्त्रैण है, पुरुष जैसा नहीं। असल में, पुरुष के अहंकार ने ही परमात्मा को पुरुष का रूप दे रखा है। तो हम कहते हैं पिता-परमात्मा, गॉड दि फादर। पर वह बात सिर्फ पुरुष के अहंकार के कारण है। मौलिक रूप से परमात्मा मां की तरह ही होगा। क्योंकि अस्तित्व एक गर्भ है, और अस्तित्व के गर्भ से सब निकल रहा है।
"ब्रह्मांड का एक आदि था... ।"
और वही तुम्हारा आदि भी है। क्योंकि तुम और ब्रह्मांड दो नहीं हो। अस्तित्व एक है और इकट्ठा है। यहां कोई खंड-खंड बंटे नहीं हैं। वृक्ष से तुम जुड़े हो, झरने से तुम जुड़े हो, पत्थरों से, पहाड़ों से तुम जुड़े हो। अस्तित्व एक जुड़ाव है, एक जुड़ापन है। यहां कोई अलग नहीं है। क्या तुम अलग हो सकते हो? अगर सारा अस्तित्व खो जाए तो क्या तुम हो सकते हो? असंभव है। यहां सब चीजें साथ हैं।
कल मैं बाइबिल पढ़ रहा था। और बाइबिल का उल्लेख देख कर मुझे बहुत हंसी
आई कि बाइबिल में लिखा है, पहले दिन परमात्मा ने प्रकाश और अंधेरा पैदा किया और चौथे दिन सूरज-चांद-तारे पैदा किए।

अब पहले दिन प्रकाश और अंधेरा हो कैसे सकता है? और चौथे दिन सूरज-चांद-तारे पैदा किए! असल में, यह ख्याल ही कि पहले दिन कुछ किया, दूसरे दिन कुछ किया, तीसरे दिन कुछ किया, खंड-खंड है। अस्तित्व इकट्ठा है। इसको तुमने एक दिन थोड़ा सा कर लिया, फिर दूसरे दिन थोड़ा सा कर लिया, मुश्किल में पड़ोगे। पहले दिन अगर प्रकाश और अंधकार पैदा करोगे तो करोगे कैसे बिना सूरज के, बिना चांद-तारों के? और चौथे दिन चांद-तारे पैदा करोगे? नहीं, अस्तित्व अखंड है। सारा अस्तित्व इकट्ठा है।
एक बहुत बड़ा विचारक हुआ पश्चिम में, लुडविग विटगिंस्टीन। उससे किसी ने कहा कि तुम अपनी आत्मकथा लिख दो। उसने कहा, बहुत मुश्किल है। तब मुझे सारे अस्तित्व की आत्मकथा लिखनी पड़ेगी, क्योंकि सब चीजें जुड़ी हैं। मैं कहां से शुरू करूंगा और कहां अंत करूंगा?
यह बाइबिल की घटना बच्चों के लिए समझाने के लिए तो ठीक है, लेकिन बुद्धिमानों के समझाने के लिए ठीक नहीं है--कि पहले दिन यह किया, दूसरे दिन यह किया, तीसरे दिन यह किया, और छह दिन में सृष्टि पूरी हो गई; और सातवें दिन विश्राम किया, छुट्टी का दिन आ गया। बात ठीक है, बच्चों को समझानी हो ठीक है। लेकिन अस्तित्व एक साथ है; इसे तुम बांट न सकोगे। यहां सब जुड़ा है। यहां तुम एक फूल को हिलाओ, और आकाश के चांद-तारों तक खबर पहुंच जाती है। तुम यहां एक फूल तोड़ो, और परमात्मा के हृदय तक कंपन पहुंच जाता है। सब संयुक्त है। यह जो संयुक्तता है, इसे जान लेना ही परमात्मा को जानना है। और इस संयुक्तता को अगर पहचानना हो तो तुम मूल में ही पहचान सकोगे। क्योंकि वहां चीजें सब साथ-साथ होती हैं, संगठित होती हैं, सूक्ष्म होती हैं, शुद्ध होती हैं। यात्रा की धूल नहीं होती। फिर तो बहुत कुछ जुड़ता चला जाता है। गंगोत्री में गंगा शुद्धतम है; फिर तो बहुत नदी-नाले गिरते हैं। फिर तो गंगा उन नदी-नालों में खो ही जाती है। काशी में आकर अपवित्रतम हो जाती है, जहां तुम जाकर पूजा करते हो। क्योंकि वहां कितने नदी-नाले, कितने कानपुर और कितने इलाहाबाद और कितना कूड़ा-कर्कट, सब आकर मिल गया। गंगोत्री में शुद्ध है; वहां सिर्फ गंगा गंगा है। जैसे-जैसे विस्तार होता है वैसे-वैसे चीजें अशुद्ध होती जाती हैं। सूक्ष्म को ही जानना पड़ेगा।
"जिसे ब्रह्मांड की माता कहा जा सकता है।"
उससे हम विस्तार को समझ लेंगे। लेकिन विस्तार से तुम उसे न समझ सकोगे। "माता से जुड़े रहो--मूल उदगम के साथ बने रहो--फिर तुम्हारे जीवन में कोई हानि न होगी।"
तुम खोज लो अपने भीतर ही गंगोत्री को और उससे जुड़े रहो। करो कुछ भी, जुड़े रहो उससे जहां से चेतना जन्मी है। उस पहले प्रकाश-क्षण को, उस पहले अलौकिक ज्योतिर्मय क्षण को तुम पकड़ लो; तुम समय के बाहर हो गए। अगर तुमने मूल को समझ लिया, उदगम को, तो उसको समझ कर तुम एक काम करोगे।
"छिद्रों को भर दो, द्वारों को बंद करो, और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम-मुक्त हो जाता है।"
छिद्र क्या हैं? द्वार कहां हैं? छिद्र हैं तुम्हारे, द्वार हैं। द्वार हैं तुम्हारी वासनाएं। तुम कभी सोचो। तुम्हारे मन में कामवासना उठी, तो मस्तिष्क एक कामवासना के धुएं से आच्छादित हो जाता है; विचार चलने लगते हैं, कामोत्तेजना प्रगाढ़ होने लगती है। यह द्वार है, क्योंकि यहां से तुम बाहर जाते हो। तुम्हारे सब द्वार तुम्हारे मस्तिष्क में हैं, और तुम्हारे जब छिद्र तुम्हारे शरीर में हैं। फिर जब बहुत कामवासना घनी हो जाती है तो कोई उपाय नहीं रह जाता; तुम अपनी जीवन-ऊर्जा को शरीर के छिद्रों से बाहर फेंक देते हो। तभी तुम्हें राहत मिलती है। वासना पैदा होती है मन में, शरीर में पूर्ण होती है। द्वार मन में है; छिद्र शरीर में है। जननेंद्रिय छिद्र है, कामवासना द्वार है। और जब भी तुम वासना से भरे तब द्वार खुल गया; तुम चले बाहर। और इसका आखिरी परिणाम यह होगा कि तुम कुछ खोकर लौटोगे, कुछ गंवा कर लौटोगे। इसीलिए तो संभोग के बाद ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो किंचित विषाद से न भर जाता हो। क्योंकि कुछ खोया, पाया कुछ भी नहीं। कुछ गंवाया, जीवन-ऊर्जा बाहर गई, तुम थोड़े दरिद्र हुए। मरते वक्त भी ऐसा आदमी खोजना

मुश्किल है जो विषाद से न भर जाता हो; क्योंकि पूरा जीवन सिवाय खोने के कुछ भी न रहा। कभी इस वासना में गंवाया, कभी उस वासना में गंवाया।
लाओत्से कहता है, "छिद्रों को भर दो।"
निर्वासना छिद्रों का भर जाना हो जाएगी।
"द्वारों को बंद करो।"
मन को दौड़ाओ मत, क्योंकि मन के घोड़े दौड़े कि जल्दी ही शरीर भी पीछा करेगा। शरीर को पीछा करना पड़ता है; जहां मन जाता है वहीं शरीर जाता है।
"और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम-मुक्त हो जाता है।"
तब तुम अपने भीतर परिपूर्ण हो जाते हो। न ऊर्जा बाहर जाती है, न तुम्हारा चित्त बाहर जाता; तुम अपने एकांत में परिपूर्ण हो जाते हो, तुम अपने भीतर आत्मवान हो जाते हो, अब तुम दीन न रहे। अब तुम किसी के ऊपर निर्भर न रहे। अब तुम्हारा आनंद अपना है। अब कोई उसे दे, ऐसी आकांक्षा न रही। अब तुम भिखारी न रहे। अब तुम भिक्षा-पात्र न फैलाओगे किसी के सामने; तुम मांगोगे नहीं। यही तो संन्यास की गरिमा है। यही तो संत का गौरव है कि वह अपने में ऐसा भरा-पूरा हो जाता है। और भरा-पूरा तुम भी हो सकते हो, लेकिन तुम छेद भरी बाल्टी हो। भरते तुम भी हो, लेकिन छिद्रों से सब बह जाता है। भरो छिद्रों को, रोक दो द्वारों को। लेकिन यह तुम तभी कर पाओगे जब तुम मूल स्रोत से जुड़े रहो। इसको ख्याल में रखना, क्योंकि बहुत से लोग बिना मूल स्रोत से जुड़े छिद्रों को भरने की कोशिश करते हैं। वे और मुश्किल में पड़ जाते हैं। उनसे तो तुम्हीं बेहतर हो। वे पागल हो जाते हैं।
मनसविद कहते हैं कि पागलखानों में बंद नब्बे प्रतिशत लोग कामवासना के साथ दमन करने के कारण पागल हैं। तो तुम ऐसा मत करना कि मूल स्रोत से बिना जुड़े और तुम अगर कामवासना से लड़ने लगे, तो तुम्हारी वही दशा हो जाएगी जो चाय बनाते वक्त कभी केतली की हो जाती है--कि ढक्कन मजबूत है, खुलता नहीं; सब द्वार-छिद्र बंद हैं और भाप भयंकर है, और आग नीचे जल रही है। तो विस्फोट होगा। वही विक्षिप्तता है। ऐसा ही जब तुम्हारे भीतर विस्फोट होता है-- शक्ति तुम लेते चले जाते हो; द्वार-छिद्र बंद कर देते हो; आश्रमों में, हिमालय में छिपे अनेक संन्यासी यही कर रहे हैं--तब एक विस्फोट होता है। तब सब टूट-फूट जाता है। वह विस्फोट परमात्मा से मिलना नहीं है। वह विस्फोट तो सबसे बड़ी दूरी है। फिर तो रास्ता बिल्कुल भटक गया।
पहले मूल स्रोत से जुड़ो। ध्यान पहले है। फिर ही जीवन-ऊर्जा का रूपांतरण हो सकता है। पहले तुम चेतना को शुद्ध, निर्मल, प्रथम क्षण में ले चलो। उस प्रथम क्षण में बैठ कर द्वार को बंद कर लेना बिल्कुल आसान है। क्योंकि उस प्रथम क्षण में तुम इतने आनंदित हो कि अब कोई आकांक्षा नहीं है, जबर्दस्ती करने की कोई जरूरत नहीं है, द्वार जैसे अपने आप ही बंद हो जाते हैं। छिद्र जैसे न उपयोग में आने के कारण धीरे-धीरे अपने आप बंद हो जाते हैं। तुम अपने भीतर समाविष्ट हो जाते हो। तुम अपने भीतर काफी, पर्याप्त हो जाते हो। और तुम इतनी ऊर्जा से भरे होते हो, बाढ़ जैसे आ गई हो। तुम्हारी दीनता, दारिद्य्र सब मिट जाता है। तुम पहली दफा सम्राट हो जाते हो।
"उसके छिद्रों को खुला छोड़ दो, उसके कारोबार में व्यस्त रहो, और फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।"
वासना को बना लो अपना कारोबार--जो कि तुमने बनाया है--फिर जीवन भर उसमें व्यस्त रहो, छिद्र खुले रहें, द्वार खुले रहें, तुम रिसते जाओगे, तुम धीरे- धीरे खाली होकर मर जाओगे। खाली होकर मरे तो दुख में मरोगे। भरे हुए मरे तो जैसा कबीर कहते हैं, जिस मरने से जग डरे मेरो मन आनंद, कब मरिहों कब भेटिहों पूरन परमानंद।
और जिससे सब जग डर रहा है! ये डर कौन रहे हैं लोग? ये खाली घड़े हैं, छिद्र भरे घड़े, जिनका सब जीवन रिस गया और अब मौत द्वार पर खड़ी है। मौत को भेंट करने के लिए जिनके पास कुछ भी नहीं, जो भिखारी होकर मौत के द्वार पर आ गए हैं। जीवन की परिसमाप्ति आ गई और संपदा का जिनको स्वाद भी न लगा। ये न घबड़ाएंगे तो कौन घबड़ाएगा? ये न रोएंगे-चिल्लाएंगे तो कौन रोएगा-चिल्लाएगा? वही जिसने अपने को बचाया है; जो मृत्यु के क्षण में साबित चला आया है। इसलिए कबीर कहते हैं, ऐसे जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं

चदरिया। जैसी पाई थी उसे वैसी की वैसी वापस लौटा दी। जैसी पूर्ण लेकर आए थे जन्म के साथ वैसी ही पूर्ण परमात्मा को भेंट कर दी मृत्यु के समय, जरा भी मैली न होने दी। ऐसे जतन से ओढ़ी चदरिया। वह जो जतन है वही योग का सार है। वह जो जतन से ओढ़ना है वही साधना का सूत्र है।
और जिसने छिद्रों को खुला छोड़ा; और छिद्रों के, वासना के कारोबार में व्यस्त रहा; फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।
"जो लघु को देख सके... ।"
सूक्ष्म को, आणविक को, मूल को, क्योंकि मूल में सब चीजें बहुत सूक्ष्म हैं; गंगोत्री को जो देख सके।
"वह स्पष्ट दृष्टि वाला है।"
उसके पास ही दृष्टि है।
"जो कुलीनता के साथ जीता है, वही बलवान है।"
क्या है कुलीनता? कुलीनता का अर्थ किसी कुलीन घर में पैदा होना नहीं है। कुलीनता का अर्थ है कि जिसकी भीतरी संपदा अक्षुण्ण है। तुम उसे पहचान सकते हो। सिंहासनों पर बैठना उसके लिए जरूरी नहीं है। तुम उसे भिखारी के वेश में भी पहचान सकते हो। क्या तुम्हें कभी कोई ऐसा आदमी देखने मिला? न मिला हो तो तुम एक बड़े अनूठे अनुभव से वंचित रह गए। जो भिखारी के वस्त्रों में खड़ा हो, लेकिन जिसके चारों तरफ हवा बादशाहत की हो! जिसके वस्त्र चाहे फटे-पुराने हों, चीथड़े हों, लेकिन जिसकी आंखों में झलक किसी सम्राट की हो! उसी को कुलीनता कह रहा है लाओत्से। किसी परिवार से संबंध नहीं, इस जगत के धन से कोई नाता नहीं, इस जगत के पद से कोई सवाल नहीं; जो कुछ भी है उसके भीतर है। तुम उसे छीन नहीं सकते। वह जहां भी चलेगा एक हवा उसके साथ चलेगी, एक प्रभामंडल उसे घेरे रहेगा। तुम उसके प्रभामंडल में जाओगे तो तुम अचानक पाओगे कि तुम शांत होने लगे। वह ऐसे ही है जैसे कि रेगिस्तान में एक मेघ आ जाए--वर्षा से भरा। जैसे सूखी धरती पर बादल बरस जाएं, तुम उसके पास ऐसी ही वर्षा अनुभव करोगे। तुम्हारा रोआं-रोआं एक अननुभूत तृप्ति से भरने लगेगा। उसका सान्निध्य, उसका सत्संग तुम्हें समृद्ध करेगा। कोई सूक्ष्म ऊर्जा बांटी जा रही है। वह कुछ दे रहा है। उसका पूरा जीवन एक दान है। लेकिन दान सिक्कों का नहीं है, दान वस्तुओं का नहीं है; दान जीवन का है।
इसको लाओत्से कुलीनता कहता है। और जब तक ऐसी कुलीनता तुम्हें उपलब्ध न
हो जाए तब तक संन्यास फलित नहीं हुआ। जब तक बिना कुछ कारण के, अकारण तुम प्रसन्न न हो जाओ, तब तक तुम ठीक अर्थों में संन्यासी नहीं। जब तुम बिना कारण के प्रसन्न हो, जब तुम बिना कारण, कुछ दिखाई नहीं पड़ता तुम्हारे पास और तुम ऐसे लगते हो जैसे अनंत संपदा के धनी हो, तुम्हारे फटे वस्त्रों से भी जिस दिन तुम्हारे भीतर की गरिमा झलकती है--कुलीनता!
एक अंग्रेज चिकित्सक के मैं संस्मरण पढ़ रहा था। वैज्ञानिक है, बड़ा डाक्टर है। पूरब आया था सम्मोहन की कुछ विधियां सीखने, ताकि सर्जरी में उनका प्रयोग किया जा सके। तो वह अनेक साधुओं से मिला, संन्यासियों से मिला। बर्मा में उसे एक भिक्षु मिला, एक फकीर, जो एक खंडहर में रहता था। दूसरे महायुद्ध में मकान खंडहर हो गया था बम के गिरने से और आस-पास सिवाय कूड़ा- कबाड़ और खंडहर के टूटे-फूटे सामान के कुछ भी न था। दीवारों पर छप्पर भी न था। और वह इलाका बर्बाद हो गया था। लोगों ने उसे छोड़ दिया था; उसको सुधारा भी नहीं गया था। उसको उसने अपना आवास बना लिया था। इस डाक्टर ने लिखा कि जो चीज पहली मुझे प्रभावित की वह यह थी कि उस खंडहर में वह इस तरह रह रहा था जैसे कोई किसी आलीशान महल में रह रहा हो। उसकी शालीनता का अंत नहीं था। वह इस शान से बैठा था उस खंडहर में कि बड़े-बड़े सम्राटों के महल फीके पड़ जाएं। खंडहर भी दीप्त था उसकी मौजूदगी से। और उस चिकित्सक ने लिखा है कि मैं हैरान हो गया, क्योंकि मैंने ऐसा आदमी पहले कभी देखा नहीं था। यह इतना अनूठा था।
इसे कुलीनता कहता है लाओत्से। कुलीनता क्यों कहता है? क्योंकि कुलीनता शब्द तो कुल से आता है। कुलीनता इसीलिए कहता है कि तुम्हारा मूल कुल, जहां से तुम पैदा हुए हो, वह परमात्मा है; तुम्हारा परिवार नहीं। वही तुम्हारा कुल है; वस्तुतः वही तुम्हारी कोख है। वही, जहां से सारा अस्तित्व

आया है, वही माता है। वही तुम्हारा कुल है। और जिस दिन तुम परमात्मा की तरह चलने, उठने-बैठने लगोगे, जीने लगोगे, उसी दिन तुम कुलीन हो। उसके पहले नहीं। उस दिन तुम्हारी देह बूढ़ी हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि देह वस्त्रों से ज्यादा नहीं है। उस दिन तुम्हारी देह पर झुर्रियां पड़ जाएं, कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हारी भीतर की आभा उन झुर्रियों के पार भी प्रकट होती रहेगी। उस दिन तुम्हें बाहर की दीनता दीन नहीं बना सकेगी। उस दिन तुम्हारी संपदा इस संसार की न रही, पारलौकिक हो गई।
वही संपदा संपदा भी है। इस संसार की संपदा, छिपा ले तुम्हारी दीनता को, मिटाती नहीं। तुम धनी लोगों को देखो। धन का अंबार उनके चारों तरफ होगा, और गौर से तुम उन्हें देखोगे, तुम उन्हें दीन पाओगे। तुम बड़े राजनीतिज्ञों को देखो। बड़ी शक्ति उनके पास होगी, वे विध्वंस कर सकते हैं, लाखों को मार-जिला सकते हैं। लेकिन अगर तुम उन्हें देखोगे तो तुम उन्हें बड़ा दीन पाओगे। जिसने भी बाहर की संपत्ति को संपत्ति समझा वह कभी संपत्तिशाली नहीं हो पाता। भीतर एक संपदा का अजस्र स्रोत है।
"जो लघु को देख सके, वह स्पष्ट दृष्टि वाला है। जो कुलीनता के साथ जीता है, वह बलवान है। प्रकाश को काम में लाओ... ।"
तुम प्रकाश से ही आए हो; प्रकाश तुम्हारा स्वभाव है। उसे काम में लाओ।
"... और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो।"
क्योंकि वह दृष्टि कभी तुम्हारे पास थी। इसलिए लाओत्से कहता है, पुनः।
वह कोई नई बात नहीं है। तुमने उसे खोया है; वह तुम्हारे पास थी। लेकिन शायद जरूरी है कि जो हमारे पास है, उसे जानने के लिए कि वह हमारे पास है, उसे खोना जरूरी है। नहीं तो हमें पता ही नहीं चलता कि हमारे पास क्या है, जब तक तुम खोओ न। जो भी तुम्हारे पास होता है उसे ही तुम भूल जाते हो। और उस प्रकाश से ज्यादा पास तुम्हारे कुछ भी नहीं। पास कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पास में भी थोड़ी दूरी होती है। तुम प्रकाश हो। तुम उसे भूल गए हो। उसे भूलना जरूरी था। अब तुम जब दुबारा पाओगे तभी तुम उसे आनंद से पा सकोगे।
बचपन खोना जरूरी है, क्योंकि वह मुफ्त मिलता है। मुफ्त की कोई कीमत करता है? फिर जब तुम उसे अथक श्रम और साधना से पुनः पाओगे तभी तुम समझोगे उसका मूल्य। हर चीज का मूल्य चुकाना पड़ता है। बिना मूल्य चुकाए हमें कोई चीज मूल्यवान नहीं मालूम होती। तुमने गंवाया है परमात्मा को। यह भी जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया है कि गंवा कर ही तुम जब उसे श्रम से पाओगे, चेष्टा से पाओगे, तभी तुम पाओगे उसे पहली दफा। तभी तुम समझोगे कि अरे इतनी बड़ी संपदा, मैं ऐसे ही गंवा आया था! तो गंवाना भी प्रौढ़ता का अंग है। एक बार खोना जरूरी है। लेकिन खोए बैठे रहना उचित नहीं। खो चुके, अब उसकी खोज जरूरी है।
"प्रकाश को काम में लाओ, और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो। इस प्रकार अपने को बाद में आने वाली पीड़ा से बचा सकते हो।"
पीछे तो बहुत पीड़ा हो गई। अब उसको बदलने का कोई उपाय नहीं। अतीत जा चुका; अब कुछ किया नहीं जा सकता। उसके लिए बैठे मत पछताते रहो। भविष्य आ रहा है। अतीत की चिंता छोड़ो। प्रकाश को काम में लाओ, ताकि जो अतीत में हुआ वह भविष्य में न हो, वह पुनरुक्त न हो। लोग पीछे के लिए बैठे रोते रहते हैं। लोग अपने घावों को उघाड़-उघाड़ कर देखते रहते हैं। घावों में अंगुली डाल-डाल कर देखते रहते हैं। जो जा चुका, जा चुका; अब कुछ भी किया नहीं जा सकता। जो आ रहा है, जो हो रहा है, जो होने वाला है, उसे बदला जा सकता है।
लेकिन अगर तुम पछताते रहे अतीत के लिए तो भविष्य तुम्हारे लिए रुका नहीं रहेगा। वह आ ही रहा है। और तुम अतीत के लिए पछता रहे हो। और अतीत के लिए पछताने में तुम अपने को रूपांतरित भी नहीं कर पा रहे हो। फिर तुम अतीत को दुहराओगे। तुम्हारा भविष्य भी तुम्हारे अतीत की पुनरुक्ति होगा। यही दुर्भाग्य है। तुमने जो कल किया था वही तुम कल भी करोगे। क्योंकि आज को तुम गंवा रहो हो। प्रकाश को काम में नहीं ला रहे, और जीवन-ऊर्जा को उसके मूल स्रोत से नहीं जोड़ रहे। वही ध्यान है।
हम क्या सिखा रहे हैं ध्यान में? इतना ही कि तुम वापस अपने मूल स्रोत में गिर जाओ। तुम उसे भीतर लिए चल रहे हो। वह सरोवर तुम्हारे पास ही है। एक

डुबकी लगानी है, और तुम नए हो जाओगे। तुम्हारी सब अतीत की धूल झड़ जाएगी। तुम्हारा सब अंधेरा मिट जाएगा। ध्यान रखो, करोड़ों-करोड़ों जन्मों का अंधेरा भी हो, दीया जल जाए तो मिट जाता है। अंधेरा यह नहीं कहता कि मैं करोड़ों वर्ष पुराना हूं, इस छोटे से दीए से कैसे मिटूंगा? और तुमने कितने ही मार्गों पर यात्रा की हो, कितनी ही धूल-धवांस इकट्ठी कर ली हो, एक डुबकी पानी में, और धूल बह जाती है। एक डुबकी अपने में, सब अतीत धुल जाता है।
बैठे पश्चात्ताप मत करो। प्रकाश को काम में लाओ। और तब अतीत में पुनरुक्ति नहीं होती, तब अतीत की पुनरुक्ति नहीं होती। तब भविष्य तुम्हारा नया होगा; सुबह की ओस जैसा ताजा, नई कोंपल जैसा नया। उस नए को द्वार दो। वह तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा है।
तुम पछता रहे हो, रो रहे हो। या तो तुम गलत करते हो या गलत करने के लिए पछताते हो। दोनों गलत हैं। गलत करना तो गलत है ही, अब गलत के लिए पछताना और भी गलत है। जो हो चुका, हो चुका; जा चुका, जा चुका। मुर्दों को दफना दो। उनको ढोने की कोई भी जरूरत नहीं है।
लाओत्से कहता है, "इसे ही परम में विश्राम कहते हैं।"
प्रकाश को काम में ले आना, मूल में उतर जाना, छिद्रों का बंद हो जाना, द्वारों का अपने आप अवरुद्ध हो जाना, भीतर की ऊर्जा का संगृहीत होना, कुलीनता की उपलब्धि, एक समृद्धि जो भीतर की है, एक धन जो आत्मा का है--इसे ही परम में विश्राम कहते हैं। और ऐसा व्यक्ति ही परमात्मा की चोरी करने में सफल हो जाता है।
चोरी ही करनी है तो परमात्मा की करो। क्यों व्यर्थ चीजों को चुराने में लगे हो? संगृहीत ही करना है तो परमात्मा को करो। कूड़ा-कर्कट संगृहीत करके होगा भी क्या? अगर जीना ही है तो परमात्मा में जीओ। अगर मरना ही है तो परमात्मा में मरो। छोटे से राजी मत हो जाना। व्यर्थ से, छुद्र से राजी मत हो जाना।
आज इतना ही।

इक्यानबेवां प्रवचन

धर्म का मुख्य पथ सरल है

Chapter 53
Brigandage

If I were possessed of Austere Knowledge,
Walking on the Main Path (Tao)
I would avoid the by-paths.
The Main Path is easy to walk on,
Yet people love the small by-paths.
The (official) courts are spick and span,
(While) the fields go untilled,
And the (people's) granaries are very low.
(Yet) clad in embroidered gowns,
And carrying fine swords,
Surfeited with good food and drinks,
(They are) splitting with wealth and possessions.
— This is to lead the world towards brigandage.
Is it not the corruption of Tao?

अध्याय 53
लूटपाट

मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर,
मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता,
तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता।
मुख्य पथ पर चलना आसान है;
तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।
दरबार चाकचिक्य से भरे हैं,
जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।
तथापि जड़ीदार चोगे पहने, चमचमाती तलवारें हाथों में लिए,
श्रेष्ठ भोजन और पेय से अघाए, वे धन-संपत्ति में सराबोर हैं।
-- इससे ही संसार लूटपाट पर उतारू होता है।
क्या यह ताओ का भ्रष्टाचरण नहीं है?

सत्य सरल है। क्योंकि सत्य स्वभाव है। और स्वभाव का मार्ग सभी जगह है। पंखुड़ी-पंखुड़ी पर, तारे-तारे में, झरनों में, पहाड़ों में, पशुओं में, पक्षियों में, आदमियों में स्वभाव ऐसे ही पिरोया हुआ है जैसे मनके पिरोए हों धागे में। हर मनके के भीतर धागा है, ऐसे ही हर जीवन के भीतर स्वभाव का मार्ग है।

उसे पाना कठिन नहीं; क्योंकि तुम उसे पाए ही हुए हो। वस्तुतः उसे खोना ही कठिन है। उस पर चलना भी कठिन नहीं; चलना अति आसान है। आसान कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि आसान से भी ऐसा लगता है कि कुछ कठिनाई से संबंध होगा। कठिनाई से कोई संबंध ही नहीं है। अगर कठिन हो तो तुम हो। मार्ग तो सरल है। जटिल हो तो तुम हो। नहीं चल पाते तो इसलिए नहीं कि मार्ग दूर है; नहीं चल पाते तो इसलिए कि तुम जैसे हो उस होने में चलने में अवरोध आता है। ऐसा समझो कि मार्ग तो सपाट है, कंटकाकीर्ण नहीं, लेकिन तुम लंगड़े हो। तो मार्ग के सपाट होने से कुछ न होगा; तुम न चल पाओगे।

लेकिन मन हमेशा यही कहेगा कि मार्ग कठिन है, इसलिए हम नहीं चलते। क्योंकि अहंकार मानने को राजी नहीं होता कि हम लंगड़े हैं। अंधे को भी अंधा

कहो तो बुरा मानता है, झगड़ने पर उतारू हो जाता है। अंधे को भी सूरदास कहो तो प्रसन्न होता है, क्योंकि सूरदास शब्द से अंधे का कुछ सीधा संबंध नहीं जुड़ता। या अगर और तुम कुशल हुए तो अंधे को तुम कहोगे प्रज्ञाच्रु। तब अंधा और प्रसन्न होता है।
अब शरीर की आंखों के खोने से कोई प्रज्ञाच्रु नहीं होता, और न ही सभी अंधे सूरदास होते हैं। लेकिन औपचारिकताएं सत्य को छिपाने के उपाय हैं। किसी भी स्त्री की शादी हो, सभी दुलहनें, लोग आते हैं, कहते हैं, कैसी सुंदर है! तुमने कभी किसी को कहते सुना किसी दुलहन को कि सुंदर न हो। और जब भी कोई आदमी मर जाता है तो सभी कहते हैं, स्वर्गीय हो गए। जिंदगी में जिनको नरक में भी जगह न मिलती, मर कर वे सभी स्वर्ग जाते हैं। सुंदर स्त्री खोजना कठिन है, लेकिन सभी दुलहनें सुंदर होती हैं।
औपचारिकता का जाल है। और औपचारिकता के जाल में तुम सत्य को छिपाते हो। नहीं चल पाते हो तो यह नहीं सोचते कि मैं लंगड़ा हूं; नहीं देख पाते हो तो यह नहीं सोचते कि मैं अंधा हूं। नहीं देख पाते तो कहते हो, अंधेरा है। नहीं चल पाते तो कहते हो, मार्ग ऊबड़-खाबड़ है। कहावत तो सुनी है नः नाच न आवे आंगन टेढ़ा। जब नाच नहीं आता तो लोग कहते हैं, आंगन टेढ़ा है, नाचें कैसे! नाच आता हो तो आंगन टेढ़ा हो कि चौकोर, क्या फर्क पड़ता है? आंगन के टेढ़ेपन से नाचने का क्या लेना-देना? लेकिन नाच आता हो।
पहली बात, इसके पहले कि हम सूत्र में प्रवेश करें, यह समझ लेने की है कि सत्य बहुत सरल है। सारी जटिलता तुम्हारे मन की है। सारा उलझाव तुम्हारे भीतर है। बाहर तो सब सुलझा पड़ा है। रास्ता बिल्कुल खुला है। न कोई रोक रहा है, न कोई द्वार बंद है। लेकिन तुम ऐसे जकड़े हो अपने भीतर, तुम्हारी जकड़न ही तुम्हारे पैरों को नहीं उठने देती। नाच तो दूर, चलना ही मुश्किल है। चलना भी दूर, उठना ही मुश्किल है। क्योंकि जहां तुम बैठे हो, तुम सोचते हो, वहां खजाना गड़ा है। वह खजाने की आशा तुम्हें जकड़े हुए है। तुम जैसे हो, तुम सोचते हो कि यहां कुछ मिलने को है। वह मिलने की आशा तुम्हें हटने नहीं देती। तुम किसी वासना से भरे हो, इसलिए संसार को, भ्रम को, झूठ को तुमने अपना घर बना लिया है। फिर तुम चर्चा जरूर करते हो मार्ग की, सत्य की, धर्म की, लेकिन कभी चलते नहीं। तुम चर्चा से ही हल कर लेते हो। तुम बैठे-बैठे सोचते ही रहते हो। ऐसा हुआ एक गांव में, एक धनपति के पास एक बहुत कीमती घोड़ा था। वह सदा डरा रहता था, कहीं घोड़ा चोरी न चला जाए, क्योंकि हजारों की आंखें उस घोड़े पर थीं। तो एक दार्शनिक को, जो उसके पड़ोस में ही रहता था, उसने पूछा कि इसको बचाने के लिए मैं क्या करूं? क्योंकि मैं रात सो भी नहीं पाता; यही चिंता लगी रहती है कि घोड़ा अस्तबल में है या गया!
उस दार्शनिक ने कहा, घबड़ाओ मत। मैं अनिद्रा के रोग से पीड़ित हूं, मुझे नींद आती ही नहीं। तो अगर तुम्हें कोई पहरेदार रखना हो तो तुम मुझसे बेहतर पहरेदार न पा सकोगे। मैं वैसे ही पहरा देता रहता हूं घर में घूम-घूम कर, उठ-उठ कर, क्योंकि नींद मुझे आती नहीं।
इतनी चिंताएं हैं, सोए भी आदमी तो कैसे सोए? और इतने सवाल हल करने हैं।
और जिंदगी एक पहेली है। और जब तक उत्तर न मिले तब तक विश्राम कैसा? दार्शनिकों की जैसी गति होती है! ऐसा दार्शनिक खोजना मुश्किल है जो अनिद्रा से पीड़ित न हो। क्योंकि जब तुम बहुत सोचोगे, व्यर्थ की उलझनों में उलझोगे, तो विश्राम असंभव हो जाता है।
धनपति बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि तुम क्या चाहोगे, मैं वह तुम्हें दूंगा तनख्वाह। मैं कम से कम सो सकूं। तुम आज ही पहरे पर आ जाओ।
पहरे पर आ गया दार्शनिक, बैठ गया आकर। ताले पड़े हैं अस्तबल में और वह बाहर सीढ़ियों के पास बैठा है, सोच रहा है। पहला ही दिन है पहरेदार का, और पहरेदार एक दार्शनिक है, तो धनपति पूरा आश्वस्त नहीं है। थोड़ा संदिग्ध है। क्योंकि यह आदमी कोई कृत्य का आदमी नहीं है, कुछ कर सके ऐसा आदमी नहीं है। सोच भला सकता हो, लेकिन सोचने का कोई लेना-देना नहीं है अगर घोड़ा चोरी चला जाए तो। यह कहीं बैठा-बैठा सोचता ही न रहे।
तो उठा एक बार रात, आधी रात उठ कर गया, जागा हुआ देख कर प्रसन्न हुआ; कहा, क्या कर रहे हो? दार्शनिक ने कहा, एक बड़ी उलझन आ गई है। सोच रहा हूं कि लोग

जब खीली ठोकते हैं दीवार में, तो दीवार के जिस हिस्से में खीली प्रवेश करती है वह हिस्सा चला कहां जाता है? बड़ी जटिल समस्या है, और हल नहीं मिल रहा है। धनपति ने कहा--खुशी से कहा बहुत--कि सोचते रहो, मगर जागे रहना। और धनपति ने सोचा कि यह जागा ही रहेगा; ऐसी उलझनों वाला आदमी सो कैसे सकता है? अब यह हल भी कैसे होगी?
घड़ी भर बाद लेकिन उसे फिर बेचैनी लगी; क्योंकि आदमी भरोसे का नहीं है।
और जो ऐसी फिजूल की बातें सोच रहा है, कहीं ऐसा न हो कि सोचता ही रहे और कोई घोड़ा ले जाए। वह फिर आया। उसने पूछा कि क्या कर रहे हो? जागे हुए हो? कहा, बिल्कुल जागा हुआ हूं, नींद तो मुझे आती ही नहीं। अब सवाल यह है कि टूथपेस्ट को दबाते हैं तो बाहर आ जाता है, फिर भीतर क्यों नहीं डाल सकते? धनपति ने कहा, सोचते रहो, मगर जागे रहना। और धनपति बड़ा प्रसन्न हुआ कि यह सोने वाला है ही नहीं, क्योंकि अब जो टूथपेस्ट को दबा कर निकल आता है उसको वापस कैसे डालना ऐसी उलझन में पड़ा है, यह जिंदगी नहीं सो पाएगा।
लेकिन फिर सुबह चार बजे के करीब उसे लगा कि यह आदमी उलटी-सीधी बातें सोच रहा है, कहीं ऐसा न हो कि घोड़ा चला जाए। फिर आया। उसने पूछा कि कहो, जाग रहे हो? बिल्कुल जाग रहा हूं। अब क्या सोच रहे हो? उसने कहा, यही सोच रहा हूं कि मैं यहां बैठा हूं, ताला भी पड़ा है; घोड़ा चोरी कैसे चला गया?
कुछ लोग हैं जो सोचते ही रहते हैं और घोड़ा ही चोरी नहीं चला जाता, जिंदगी चोरी चली जाती है। वे खड़े-खड़े सोचते ही रहते हैं, भीतर सारी आत्मा चोरी चली जाती है। वे खड़े-खड़े बड़ी ऊंची बातें विचार करते रहते हैं, और सब गंवा देते हैं। मौत के क्षण में वे पाते हैं कि मैं इतना सोच-विचार वाला, सयाना आदमी, इतना समझदार, कुशल, कोई मुझे धोखा न दे सके एक कौड़ी का, और मैं बैठा रहा और सारी संपदा गंवा दी! घोड़ा चोरी ही चला गया! आत्मा ही चोरी चली गई!
समझदारी से धर्म का कोई संबंध नहीं है--उस समझदारी से जिसे तुम समझदारी समझे बैठे हो। तुम्हारी समझदारी तो तुम्हारे पागलपन का एक हिस्सा है। तुम्हारे प्रश्न भी तुम्हारी विक्षिप्तता से उठते हैं और तुम्हारे उत्तर भी तुम्हारे मनगढ़ंत होते हैं। तुम्हारे उत्तर हल नहीं करते, ज्यादा से ज्यादा राहत देते हैं। तुम्हारे उत्तर सिर्फ आशा बंधाते हैं कि करीब आ रहा है हल। हल कभी करीब नहीं आता। क्योंकि हल तो केवल उन्हीं को मिलता है जो जीवंत ऊर्जा से उसे हल करते हैं। हल तो केवल उन्हीं को मिलता है जो किसी गहन प्रक्रिया से गुजर कर अपने को रूपांतरित करते हैं। हल तो उन्हीं को मिलता है जो मन की पगडंडियों को हटा कर रख देते हैं और स्वभाव के मार्ग पर चल पड़ते हैं। मन पगडंडियां देता है। और स्वभाव का राजपथ तुम्हारे चारों तरफ फैला हुआ है। सब तरफ वही है। ताओ यानी स्वभाव। लाओत्से उसे ताओ कहता है, वेद ऋत, बुद्ध धर्म।
धर्म शब्द बड़ा प्रीतिकर है। उसके अनेक अर्थ होते हैं; पर गहरे से गहरा अर्थ होता है स्वभाव। जैसे हम कहते हैं, अग्नि का धर्म है गर्म होना, पानी का धर्म है नीचे की तरफ बहना। वह उसका स्वभाव है। और धर्म का एक अर्थ बड़ा महत्वपूर्ण है और वह यह है कि जो सबको धारण किए है, जो सभी को सम्हाले है। जो सभी को सम्हाले है वह सभी के भीतर होगा, धागे की तरह पिरोया होगा हर माले में, हर माला के मनके में।
जहां भी तुम देखते हो वहीं राजपथ खुला है। अनंत-असीम वह मार्ग है। सीधा
और सरल है कि तुम उसी पर बैठे हुए हो। उस मार्ग को पाने के लिए तुम्हें रत्ती भर चलना नहीं है। लेकिन मन सुझाता है पगडंडियां। वे पगडंडियां कहीं भी नहीं जातीं, वे वर्तुलाकार घूमती हैं। तुम मन का निरीक्षण करो और समझ जाओगे।
मन वर्तुलाकार घूमता है, कोल्हू के बैल की तरह घूमता है। कोल्हू के बैल
को भी लगता है कि काफी यात्रा हो रही है। क्योंकि कोल्हू के बैल को कोल्हू चलाने वाला बड़ी व्यवस्था में रखता है; उसकी दोनों आंखों पर पट्टियां बांध देता है। उसको आस-पास तो दिखाई ही नहीं पड़ता, बस सामने ही दिखाई पड़ता है। तो वह यह भी अंदाज नहीं लगा सकता कि गोल-गोल घूम रहा है। नहीं तो वह भी खड़ा हो जाए। अगर बैल की आंख पर पट्टियां न हों तो तुम उसे कोल्हू में नहीं जोत

सकते। क्योंकि वह कहेगा, यह क्या पागलपन है! वह भी समझ लेगा कि यह क्या पागलपन है कि मैं गोल-गोल, यहीं-यहीं घूमता रहूं। वह खड़ा हो जाएगा। आंख पर इसीलिए पट्टी बांधते हैं ताकि वह किनारे न देख सके। सामने देखता है; उसको दिखाता है हमेशा कि मार्ग सीधा है, कहीं जा रहा है वह। बैल को भी भरोसा दिलाना पड़ रहा है कि तुम कहीं पहुंच रहे हो, कोई मंजिल करीब आ रही है, ऐसे ही बेकार नहीं चल रहे हो।
ऐसे ही तुम्हारे मन पर पट्टियां हैं। मन भी किनारे नहीं देख पाता, मन
भी आगे ही देखता है। मन को तुम जरा समझने की कोशिश करना। तो ठीक कोल्हू के बैल जैसी हालत है। घूमता है चक्कर में, लेकिन सोचता है कि कहीं पहुंच रहे हैं। कल भी तुमने क्रोध किया था, परसों भी तुमने क्रोध किया था। परसों भी पछताए थे, कल भी पछताए थे। आज भी क्रोध करोगे और आज भी पछताओगे। और अगर उस सौभाग्य का उदय न हुआ जिससे तुम जाग जाओ तो कल भी तुम क्रोध करोगे, कल भी पछताओगे। और तुम दोहराओगे वही-वही। पुनरुक्ति का अर्थ है कि हम गोल-गोल घूम रहे हैं। वहीं से चलते हैं, वहीं पहुंच जाते हैं। फिर चलने लगते हैं, फिर पहुंच जाते हैं। लेकिन आंख पर कोई गहरी पट्टी है।
और वह पट्टी यह है कि आंख सब दिशाओं में एक साथ नहीं देख सकती। मन सब दिशाओं में एक साथ नहीं देख सकता, मन एक दिशा में ही देख सकता है। मन वन-डायमेंशनल है, एक आयामी है। और चेतना मल्टी डायमेंशनल है, बहुआयामी है। तो जब तक तुम मन को न हटा दोगे तब तक तुम बहुआयामी राजपथ को न देख पाओगे, जो सब तरफ खुला है। जहां कहीं कोई दीवार भी नहीं, कोई बाधा भी नहीं। बस तुम उठो और चलो, और तुम उस पर ही हो।
ध्यान बहुआयामी है। ध्यान और मन का यही फर्क है। मन एक तरफ देखता रहता है। जब क्रोध करता है तो क्रोध को ही देखता है, करुणा को नहीं देख पाता। जब प्रेम करता है तो प्रेम को ही देखता है, घृणा को नहीं देख पाता। जब प्रसन्न होता है तो प्रसन्नता को देखता है, अप्रसन्नता को नहीं देख पाता, खिन्नता को नहीं देख पाता। जब खुश होता है तो खुशी को देख पाता है, उदासी को नहीं देख पाता, जो कि किनारे ही खड़ी है, जो कि पास ही खड़ी है, जो कि खुशी का हिस्सा है, जो कि उसका दूसरा पहलू है। विपरीत को नहीं देख पाता, बस एक को देख पाता है। जैसे ही तुम मन को हटा कर रख देते हो और तुम्हारी चेतना के बहुआयामी द्वार खुलते हैं, तुम सब एक साथ देख पाते हो--युगपत। खुशी आती है तो उसके पीछे छिपा हुआ दुख भी तुम देख पाते हो। तब खुशी खुशी नहीं रह जाती, दुख दुख नहीं रह जाता। दुख आता है तो उसमें छिपे सुख को भी तुम देख पाते हो। रात तुम्हें सुबह दिखाई पड़ती है, भरी दुपहरी में तुम्हें रात दिखाई पड़ती है; क्योंकि वे दोनों एक हैं। तब तुम्हारे दुख में पीड़ा नहीं रह जाती, तब तुम्हारे सुख में उत्तेजना नहीं रह जाती; तब तुम जानते हो कि सुख दुख है, दुख सुख है। तब तुम दोनों से दूर अलग हो जाते हो। तब तुम स्वभाव में ठहर जाते हो।
स्वभाव न तो सुख है, न दुख। स्वभाव परम शांत, परम मौन, परम विराम, विश्राम है, जहां सब उत्तेजनाएं खो गईं--प्रीतिकर, अप्रीतिकर। यह स्वभाव तुम्हारे पास मौजूद है। लेकिन मन तुम्हें पगडंडियां सुझाता है। और मन कहता है, यह मार्ग तो बहुत लंबा है, मैं तुम्हें छोटा शार्टकट बता देता हूं, ऐसे चले जाओ, जल्दी पहुंच जाओगे। छोड़ो रास्ते को, मैं तुम्हें शार्टकट, छोटा सा सूक्ष्म रास्ता बता देता हूं। मन हमेशा शार्टकट खोज रहा है। और ध्यान रखना, परमात्मा की तरफ कोई शार्टकट नहीं है। जो भी परमात्मा की तरफ छोटा रास्ता खोज रहा है... ।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कोई ऐसी तरकीब बता दें कि जल्दी हो जाए। मन हमेशा जल्दी कर रहा है। और तुमने जल्दी की कि तुम हमेशा गलती करोगे। धैर्य चाहिए, जल्दी नहीं। तुम्हारी जल्दी के कारण तुम मन की अड़चन में पड़ जाते हो, मन की उलझन में पड़ जाते हो। और मन कहता है, यह जल्दी का रास्ता है, उस रास्ते पर तो बहुत वक्त लगेगा। इतना बड़ा रास्ता है, तुम जल्दी न पहुंच पाओगे। जिसके ओर-छोर का पता नहीं है, आदि-अंत का कोई पता नहीं है, इतने विराट स्वभाव में उतर कर तुम खो जाओगे। तुम कहां सागर में अपनी नौका उतार रहे हो! मैं तुम्हें छोटी सी नहर बता देता हूं, इसमें यात्रा सुगम होगी, सुरक्षित होगी, डूबने का डर न होगा। मन तुम्हें सुरक्षा का आश्वासन

देता है। उसी आश्वासन में तुम भटक जाते हो। मन भरोसे दिलाने में बड़ा कुशल है। और बार-बार तुम भूल जाओ और बार-बार भटको, तो भी मन भरोसे दिलाता है, फिर भी तुम उसकी मान लेते हो। तो मान लेने के तुम्हारे भीतर एक ही कारण है कि तुम भी जल्दी की इच्छा कर रहे हो।
इसलिए मैं साधकों को कहता हूं कि तुम जल्दी की इच्छा छोड़ देना, तो ही तुम स्वभाव के मार्ग से चल सकोगे। जल्दी शैतान की। जल्दी जिसने की वह शैतान के पास पहुंच जाएगा। जो धैर्य से चला वही परमात्मा तक पहुंचता है; क्योंकि धैर्य के खेत में ही परमात्मा के बीज बोए जा सकते हैं। और जिसका धीरज इतना अनंत है कि जो किसी जल्दी में ही नहीं है, जो कहता है अगर अनंत में होना हो तो ठीक, अगर अनंत काल में होता हो तो भी हम राजी हैं। और तब बड़ी अनूठी घटना घटती है कि जो अनंत काल ठहरने को राजी है वह इसी क्षण भी पहुंच जाता है। क्योंकि यह जो पथ है स्वभाव का, यहां पथ और मंजिल अलग-अलग नहीं हैं, मार्ग ही मंजिल है। यहां तुम जहां खड़े हो वहीं परमात्मा भी खड़ा है। फासला जरा भी नहीं है। तुम राजी हुए विश्राम के लिए, तुम राजी हुए तनाव छोड़ने को, तुमने जल्दी की आकांक्षा छोड़ी, तुम्हारे मन ने जल्दी के कारण यहां-वहां भटकना बंद किया, तुम अपने गृह-नीड़ में बैठ गए, जैसे सांझ पक्षी अपने नीड़ में आकर बैठ जाता है ऐसे संसार को छोड़ कर तुम अपने भीतर के नीड़ में आ गए और विश्राम से बैठ गए, और तुमने कहा, मुझे कोई जल्दी नहीं है--इसी क्षण भी घटना घट सकती है। जिस स्कूल में, जिस गुरुकुल में जीसस ने शिक्षा पाई उस गुरुकुल का नाम
था इसेनीस। उस परंपरा को मानने वाले लोग इसेनीस कहलाते थे। यह शब्द बड़ा अदभुत है। इस शब्द का अर्थ हैः धैर्य रखने वाले, जो धीरज रख सकते हैं। बस यही उनका गुण था। लेकिन जो धीरज रख सकता है उसे सब मिल जाता है। क्योंकि धीरज रखते ही मन की पगडंडियों का जो हमारे मन में प्रलोभन है वह छूट जाता है। मन कहता है, मैं जल्दी करवा दूंगा; हम कहते हैं, जल्दी ही नहीं है। मन कहता है, मैं छोटा रास्ता बता देता हूं; हम कहते हैं, हमें कहीं जाना नहीं है, हम जहां हैं तृप्त हैं, हम जैसे हैं ठीक हैं। उसकी मर्जी ही हमारी मर्जी है। अब हमारा कोई मार्ग नहीं, उसका मार्ग ही हमारा मार्ग है। तब बड़ा सरल है। तब कुछ भी इससे ज्यादा सरल नहीं है।
लेकिन सरलता कठिन हो गई। सरलता इसलिए कठिन हो गई कि सरलता में चुनौती नहीं मालूम होती तुम्हें। सरलता में चुनौती हो भी नहीं सकती। कठिनता में चुनौती होती है। तो तुम ध्यान रखना कि तुम अक्सर कठिन चीजों को चुनते हो। तुम इसीलिए चुनते हो कि वह कठिन है। क्योंकि कठिन लगने से तुम्हें लगता है कि जीतने का कोई उपाय है, जीत कर दिखा देंगे। अहंकार को तृप्ति मिलती है, अहंकार हमेशा कठिन के प्रति आकर्षित होता है। सरल के प्रति अहंकार को क्या आकर्षण? क्योंकि सरल को कर लिया तो भी तो कर्ता का भाव न जगेगा। कठिन को किया तो कर्ता का भाव जगेगा। अति कठिन को किया तो बड़ा कर्तृत्व का बोध पैदा होगा। अगर महा कठिन को कर लिया, अगर तुम गौरीशंकर के शिखर पर चढ़ गए, तो तुम्हारे अहंकार का कोई ओर-छोर न रहेगा।
कठिन में बुलावा है; सरल में कोई बुलावा नहीं है। और ध्यान रखना, कठिन में जैसे अहंकार की तृप्ति है और जीत का आकर्षण है, ठीक उससे उलटी दशा सरल की है। सरल में कोई चुनौती नहीं है, जीत का कोई उपाय नहीं है। जो हारने को राजी है वही सरल में उतर सकता है। क्योंकि सरल में उतरना तो समर्पण है, चुनौती नहीं। सरल में उतरने में कोई संकल्प ही नहीं है, विश्राम है। कठिन में कर्तृत्व है। सरल में तो समर्पण है। कठिन में तुम हो, सरल में तुम न रहोगे। कठिन तैरने जैसा है, सरल बहने जैसा है। धारा ले जाएगी। तो कठिन को तुम चुनना पसंद करते हो। तुम कहते कितना ही हो कि जल्दी कैसे हो जाए, कुछ सरल मार्ग बता दें, लेकिन तुम्हारे भीतर गहन आकांक्षा कठिन की है। और तुम जब तक कोई कठिन न बताए तब तक तुम कहोगे, यह इतना सरल है, इससे क्या होगा? मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि क्या होगा? शांत ही बैठने से क्या
हो जाएगा? न वे कभी बैठे हैं, न कभी उन्होंने स्वाद चखा। वे कहते हैं, ऐसा खाली आंख बंद करके बैठने से क्या होगा? क्या परमात्मा इससे मिल जाएगा? क्या नाचने-कूदने, नृत्य, इससे परमात्मा मिल जाएगा? तब तो नाचने वालों को ही मिल जाता।

उन्हें पता नहीं कि नाचने वाला परमात्मा से मिलने के लिए नाच ही नहीं रहा है; नाचने वाला पैसे के लिए नाच रहा है। ध्यानी किसी और बात के लिए नाचता है। ऊपर से दोनों नाचते हुए दिखाई पड़ते हैं। मीरा भी नाचती दिखाई पड़ती है। एक फिल्म अभिनेत्री भी नाचती दिखाई पड़ती है। और हो सकता है, फिल्म अभिनेत्री ज्यादा कुशलता से नाच रही हो। मीरा का नाच तो अनगढ़ होगा; किसी विद्यापीठ में सीखा तो नहीं। यह नाच तो मौज का है। यह नाच किसी को दिखाने को थोड़े ही है। और मीरा तुम्हारे सामने थोड़े ही नाच रही है, मीरा अपने परमात्मा के सामने नाच रही है। वहां कला नहीं पहचानी जाती, वहां हृदय की पहचान है। और मीरा का नाच एक प्रार्थना है, एक पूजा है। लेकिन ऊपर से तो एक जैसा है।
तो लोग मुझसे कहते हैं, नाचने से क्या होगा? कहीं नाचने से मिलता होता
तो नाचने वालों को मिल जाता। ये लोग क्या कह रहे हैं? ये यह कह रहे हैं कि ये इतनी सरल बातें हैं कि इनसे नहीं हो सकता। कोई उलटी बात बताएं, कोई कठिन बात बताएं, जिसमें चुनौती हो।
इन नासमझों की वजह से दुनिया में ऐसी पद्धतियां भी विकसित हो गई हैं जिनका आकर्षण कुल इतना है कि वे बहुत कठिन हैं, दुर्गम हैं। उनसे कोई कभी नहीं पहुंचता कहीं, लेकिन उनकी दुर्गमता के कारण आकर्षण है। क्योंकि अहंकारी उनकी तरफ आंदोलित हो जाते हैं। इसे बहुत ठीक से समझ लेना। अहंकार चाहता है चुनौती, संघर्ष का मौका, लड़ने का उपाय, जीत की सुविधा, कि वह बता दे कि मैं जीत गया। तब छोटे बच्चे से थोड़े ही तुम कुश्ती लड़ोगे! अगर एक छोटा बच्चा और गामा को चुनौती दे दे कि आओ, लड़ो! तो गामा चुपचाप वहां से चला जाएगा। इससे लड़ कर फायदा क्या? इसको अगर जीत भी लिया तो लोग हंसेंगे कि इसमें जीतने का कोई सवाल न था। और अगर हार गए तो मारे गए। मुस्कुरा कर बच्चे की पीठ थपथपा कर गामा चला जाएगा। वह चुनौती नहीं है।
अहंकार के लिए समर्पण तो बच्चे जैसा है। उससे चुनौती नहीं मिलती, उससे
लड़ कर कोई सार नहीं है। कोई कठिन बात बताओ! कोई बात जो बड़ी दुर्गम हो। कोई बात जो विरले ही कर सकें। कोई बात जो तलवार की धार पर चलने जैसी हो। तब! तब तुम्हें लगेगा कि हां, करने जैसा है।
और यही करने जैसा नहीं है। करने जैसा तो वही है जहां कोई चुनौती नहीं है, जहां कानों-कान किसी को खबर भी न पड़ेगी कि तुम कुछ किए, जो अक्रिया जैसी है। जो विश्राम है, जहां समर्पण है, और बहने की तैयारी है, और नदी को कहना है कि अब तू जहां ले जाए, तेरी जो मर्जी! तब सरल है।
अब हम लाओत्से के सूत्र समझने की कोशिश करें।
‘मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता, तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता।’
जब ज्ञान उपलब्ध हो रहा हो और जीवन तैयार हो बांटने को, देने को, तब भी तुम पगडंडियां चुनते हो। ताओ है धर्म। ताओ है स्वभाव। संप्रदाय हैं पगडंडियां। अगर मैं तुम्हें धर्म दूं, तुम लेने को राजी नहीं। तुम हिंदू धर्म चाहते हो। तुम इसलाम धर्म चाहते हो। तुम बौद्ध धर्म चाहते हो। मैं नानक पर बोल रहा था कुछ दिन पहले तो कुछ सिक्ख दिखाई पड़ते थे। वे पहले भी कभी दिखाई नहीं पड़े थे, उसके बाद फिर नदारद हो गए, फिर दिखाई नहीं पड़ते। मैं महावीर पर बोलता हूं तो जैनी शक्लें मुझे दिखाई पड़ने लगती हैं। महावीर पर नहीं बोलता हूं, वे विलीन हो जाते हैं, वे फिर नहीं दिखाई पड़ते। लोगों को धर्म से कोई प्रयोजन नहीं है, पगडंडियों से प्रयोजन है। मार्ग से कोई प्रयोजन नहीं है, मार्गों से प्रयोजन है। धर्म तो एक है; संप्रदाय अनेक हैं। एक से कोई नाता नहीं है, अनेक की आकांक्षा है।
लोग जानना चाहते हैं कि जैन धर्म क्या है? हिंदू धर्म क्या है? इसलाम धर्म क्या है?
धर्म भी कहीं हिंदू, मुसलमान और इसलाम होता है? धर्म का भी कोई विशेषण है? नाम है? लेकिन ये जो संप्रदाय हैं ये मन को लुभाते हैं। और सभी संप्रदाय कठिन हैं। धर्म बिल्कुल सरल है। धर्म ऐसा सरल है कि जैसे घर के सामने से गंगा बह रही हो और तुम प्यासे खड़े हो। संप्रदाय बहुत कठिन है। कठिन होने का कारण है। क्योंकि धर्म तो स्वभाव है अस्तित्व का, संप्रदाय मनुष्य-निर्मित

है। धर्म मनुष्य-निर्मित नहीं है, धर्म ने ही मनुष्य को निर्मित किया है। धर्म से ही मनुष्य आया है। वह उसका मूल स्रोत और उदगम है। लेकिन संप्रदाय मनुष्य-निर्मित हैं। वे मनुष्य ने बनाए हैं। और जो मनुष्य ने बनाया है, वह सत्य तक न ले जा सकेगा। मनुष्य के बनाए को तो छोड़ना है। मनुष्य के बनाए से तो पार उठना है। मनुष्य के बनाए से तो हटना है।
लेकिन जो भी मनुष्य ने बनाया है वह हमें आकर्षित करता है। क्योंकि वह हमारे मन के अनुकूल बैठता है। वह हमने ही बनाया है; वह हमारा ही खिलौना है। मंदिरों में जो भगवान की मूर्तियां हैं वे आदमी की बनाई हैं। उनके सामने हम झुक सकते हैं। क्योंकि हमें पता है कि हम झुक किसी के भी सामने नहीं रहे हैं; अपनी ही बनाई हुई मूर्ति है। झुकना झूठा है। समर्पण भ्रांति है। क्योंकि इस मूर्ति को हम ही खरीद लाए थे और हम ही ने प्रतिष्ठित किया है। और जिस दिन चाहें इसको उठा कर फेंक दे सकते हैं। यह समर्पण खेल है; यह वास्तविक नहीं है। और मंदिर की मूर्ति कुछ भी न कह सकेगी। अगर हम इसे उठा कर मंदिर के बाहर फेंक दें तो क्या करेगी मंदिर की मूर्ति?
लेकिन इसके सामने हम झुकते हैं। और अस्तित्व का परमात्मा चारों तरफ है; वहां हम कभी नहीं झुकते। क्योंकि वहां जो झुका वह फिर कभी उठ न सकेगा। वहां जो झुका वह गया। वहां जो झुका वह खोया। वहां से वापस आने की कोई घड़ी नहीं है। उस मंदिर में प्रवेश हुआ कि लौटना नहीं होता। उस मंदिर में प्रवेश ही तब होता है जब जो चीज लौट सकती थी उसे तुम मंदिर के बाहर छोड़ जाते हो। वह अहंकार है जो वापस लौट सकता था।
लेकिन पत्थर की मूर्तियां कहीं तुम्हारे अहंकार को मिटा सकेंगी? पत्थर की मूर्तियों की सामर्थ्य क्या है? तुमने ही गढ़ी हैं। और आदमी बड़ा चालबाज है। अपनी ही गढ़ी मूर्तियों के सामने घुटने टेक कर खड़ा होता है। यह प्रार्थना नहीं है, प्रार्थना का अभिनय है। धोखा किसको दे रहे हो तुम? सारा अस्तित्व तुम पर हंसता है। छोटे बच्चों को तो तुम मुस्कुराते हो अगर वे अपने गुड्डा-गुड्डी का विवाह रचा रहे हों। तो तुम हंसते हो, कहते हो, क्या कर रहे पागलपन! सोचते हो मन में कि बच्चे हैं। लेकिन तब, जब तुम रामलीला खेलते हो और एक लड़के को राम बना लेते हो और एक लड़की को सीता बना देते हो और तुम इन अभिनेताओं के चरणों में सिर रखते हो और जुलूस निकालते हो, शोभा- यात्रा, बारात जा रही है राम की और तुम बड़े उत्तेजित हो उठते हो; तुम छोटे बच्चों से कुछ भिन्न कर रहे हो? कुछ भेद है? तुम्हारी इस शोभा-यात्रा में और छोटे बच्चों की बारात में कुछ फर्क है? खेल-खिलौने हैं। तुम बूढ़े हो गए, फिर भी बचपना न गया।
मंदिरों में तुम झुकते हो, वह बचपना है। अस्तित्व के सामने झुको। वहां तुम अकड़े खड़े रहते हो। वहां तुम अपनी चलाने की कोशिश करते हो। और तुम जानते हो कि वहां अगर तुम झुके तो तुम गए। क्योंकि वहां झुकना वास्तविक ही हो सकता है। वास्तविक परमात्मा के सामने झुकना भी वास्तविक होगा। वहां असली सिक्के ही स्वीकार किए जाते हैं। नकली परमात्मा के सामने झुकोगे, वहां नकली सिक्के ही चलते हैं, वहां असली का कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हारे मंदिर, तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारे गुरुद्वारे तुम्हारे बनाए हुए हैं।
और परमात्मा का मंदिर तो मौजूद ही है। तुम नहीं थे तब भी था; तुम नहीं रहोगे तब भी रहेगा। यह आकाश ही उसका गुंबज है। यह पृथ्वी ही उसकी आधारशिला है। उसे बनाने की कोई जरूरत नहीं है। वह बना ही हुआ है। वह तुमसे ज्यादा प्राचीन है। वह तुमसे ज्यादा सनातन है। तुम उससे ही आए हो। तुम उसी में वापस जाओगे। लेकिन वहां सचाई का सिक्का ही चल सकता है।
तुम धार्मिक होना नहीं चाहते, इसलिए तुमने मंदिर बनाए हैं। वह तुम्हारी तरकीब है बचने की। तुम जो हो वैसे ही रहना चाहते हो। उसमें ही तुमने एक कोना निकाल कर मंदिर भी बना दिया है। लेकिन वह तुम्हारे होने का ही हिस्सा है। वह तुम्हारी बेईमानी और तुम्हारे धोखे का ही हिस्सा है। तुम अपने को समझा रहे हो। और तुमने खूब गहरा धोखा दे लिया है। मंदिर जाकर तुम समझ लेते हो, बात पूरी हो गई, हो गए तुम धार्मिक। कभी एक व्रत-उपवास कर लिया। कभी चार पैसे मंदिर में चढ़ा दिए। वह भी तुम चार चढ़ाते हो चार हजार मिलने की आशा में। तुम्हारी दुकान बंद नहीं होती, वह तुम्हारे मंदिर में भी खुली है।

और तुम्हारा दुकानदार वहां भी अपने काम में लगा है। इस धोखे को ठीक से पहचानो। ये पगडंडियां हैं जिनसे तुम भटके हो।
सत्य को जानना हो तो किसी भी शास्त्र की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि शास्त्र तो शब्द ही देगा। शब्दों से कैसे स्वाद आएगा? शब्दों में कोई स्वाद नहीं। शब्दों से कैसे गंध आएगी? शब्दों में कोई गंध नहीं। शब्दों से ज्यादा निर्जीव कोई चीज जगत में तुमने देखी है? कोई शब्द जिंदा नहीं होता, सभी शब्द मरे हुए हैं। हवा में पैदा हुई लकीरें खो जाती हैं। बबूले हैं पानी में बने, वे भी शब्दों से ज्यादा वास्तविक हैं। शब्द तो हवा में बने बबूले हैं। पानी के बबूले में तो कम से कम पानी की एक बड़ी झीनी और पारदर्शी दीवार होती है, शब्द में उतनी भी दीवार नहीं है। वह हवा का ही बबूला है; हवा में उठी लहर है, खो जाएगी। सभी शास्त्र शब्द हैं। शास्त्रों को तुम पकड़ कर बैठे हो। सत्य की तुम्हें कोई आकांक्षा नहीं है। शास्त्र पगडंडियां हैं। सत्य ताओ का राजपथ है। वह खुला है। सत्य को जानना हो तो ठीक उलटे चलना पड़ेगा उस चाल से, जो तुम शास्त्र को जानने के लिए चलते हो।
शास्त्र को जानना हो तो कुशल स्मृति चाहिए, याददाश्त चाहिए, तर्क-बुद्धि चाहिए, विचार की क्षमता चाहिए, मनन-चिंतन चाहिए, गणित-तर्क चाहिए। सत्य को जानना हो तो ये कुछ भी नहीं चाहिए--न मनन, न चिंतन, न तर्क, न बुद्धि। सत्य को जानना हो तो शून्यता चाहिए। सत्य को जानना हो तो तुम दर्पण की भांति हो रहो, ताकि सत्य का प्रतिफलन बन सके। तुम्हारा भराव नहीं चाहिए, तुम्हारा खालीपन चाहिए। इसलिए तो लाओत्से कहता है कि जो सीखने से मिल जाए वह ज्ञान नहीं। और संत सिखाते नहीं, संत भुलाते हैं। संत तुम्हें एक ही बात सिखाता है कि कैसे तुम सब सीखे हुए को हटा दो। संत तुम्हारे मन को हटाता है, ताकि तुम्हारी आंख पर बंधी हुई कोल्हू के बैल जैसी जो पट्टियां हैं वे हट जाएं; तुम सब तरफ खुले होकर देख सको।
हिंदू गीता को पढ़ सकता है, लेकिन कुरान को नहीं। यह कोल्हू का बैल है, एकतरफा है। गीता तो पढ़ सकता है, क्योंकि उतनी आंख हिंदुओं ने इसकी खुली छोड़ी है; बाकी दोनों तरफ पट्टियां बंधी हैं। उन पट्टियों में फिर मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब छिप गए हैं।
मुसलमान कुरान पढ़ सकता है, गीता नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि नहीं पढ़ सकता। पढ़ सकता है, मुसलमान गीता पढ़ सकता है, क्योंकि वह भी भाषा पढ़ सकता है। भाषा में क्या अड़चन है? गीता उर्दू में लिखी है, अरबी में लिखी है, पढ़ सकता है। लेकिन हृदय पर कहीं कोई चोट न पड़ेगी। हां, अनेक बार गीता में भूलें दिखाई पड़ेंगी। अनेक बार, जगह-जगह, जगह-जगह गीता में भूलें दिखाई पड़ेंगी। जब कृष्ण कहेंगे, सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, सब छोड़ कर मेरी शरण आ, मुसलमान हंसेगा। अहंकार हो गया। यह आदमी कुफ्र बोल रहा है। पापी है। ऐसे मंसूर को ही तो मारा मुसलमानों ने। वह ऐसी ही बकवास कर रहा था, कृष्ण जैसी। कह रहा थाः अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि। हिंदू की भाषा बोल रहा था। मुसलमान को नहीं जंचा। यह बात ही गलत है। तुम खुदा के चरणों तक पहुंच सकते हो, खुदा कभी नहीं हो सकते। यह मुसलमान की आंख है।
हिंदू कहते हैं कि अगर चरणों तक ही पहुंच पाए और खुदा न हो पाए तो पहुंच
ही न पाए। बात अधूरी रह गई। यात्रा पूरी न हुई। तो जब तक अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष न हो जाए, जब तक तुम्हारा पूरा तन-प्राण न कह दे कि मैं ब्रह्म हूं, तब तक अधूरी है बात। जब हिंदू कुरान को पढ़ता है तो वह मुस्कुराता है। वह कहता है, ठीक है, कामचलाऊ है, कुछ बड़ी गहरी बात नहीं है। क्योंकि मोहम्मद कहते हैं, मैं उसका केवल पैगंबर हूं, उसका संदेशवाहक हूं, उसका दूत हूं। हिंदू का मन कहता है कि दूत की क्या सुनना? कृष्ण की ही क्यों न सुनें जो कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि, मैं स्वयं वही हूं। दूत से गलती हो सकती है। मध्यस्थों को क्यों बीच में लें? दलालों की क्या जरूरत? और जिनकी इतनी ही हिम्मत नहीं है कहने की कि मैं वही हूं इनकी बात का भरोसा क्या? इनकी अथारिटी क्या? मुसलमान जब कृष्ण को पढ़ता है तो वह सोचता है, यह दावेदार, यह अहंकार है। क्योंकि ज्ञानी कहीं दावा करता है! ज्ञानी तो विनम्र होता है। वह तो कहता है, मैं कुछ भी नहीं हूं। जैसा मोहम्मद कहते हैं कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, उसका एक दूत हूं--एक खबर लाने वाला, एक डाकिया। उसकी चिट्ठी तुम तक पहुंचा

दी, बात खत्म हो गई। इससे ज्यादा मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह विनम्र आदमी का लक्षण है। यह संतत्व की बात है। यह कृष्ण, यह तो दंभी मालूम पड़ता है। यह तो हद, आखिरी दंभ है। ये उपनिषद, ये तो अहंकारियों की घोषणाएं मालूम पड़ते हैं।
जैन हिंदुओं को पढ़े, नहीं पढ़ पाता। यह सब पागलपन दिखाई पड़ता है। जैन जब गीता को पढ़ता है तो सिवाय महा हिंसा के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ती। और यह आदमी कृष्ण जो हिंसा करवाने की सहायता कर रहा है। अर्जुन जैनी मालूम पड़ता है कि कह रहा है कि क्यों मारूं? क्यों हत्या करूं? पहला गांधीवादी। वह यही तो कह रहा है कि मैं हिंसा करने से बचना चाहता हूं, क्यों मारूं? और अपने ही हैं लोग। और वह भी धन के लिए मारूं? पद के लिए? प्रतिष्ठा के लिए? राज्य के लिए? राज्य किस काम आएगा? वह बड़ी ज्ञान की बातें बोल रहा है।
तो जैनी अगर पढ़े या गांधीवादी अगर पढ़े, खुद गांधी पढ़ते थे तो भी वह अर्जुन ही उनको जंचता है, कि बात तो अर्जुन ही ठीक कह रहा है। गांधी संकोच के वश कह नहीं पाते, लेकिन तरकीब निकालते हैं। कह नहीं पाते, जंचती तो बात अर्जुन की ही है। मगर अब हिंदू हैं गांधी, इसलिए गांधी की मुसीबत है। गांधी की नब्बे परसेंट बुद्धि तो जैन की है। क्योंकि वे गुजरात में पैदा हुए। गुजरात में हिंदू भी जैन हैं। गुजरात की हवा जैन की है। तो यह कह भी नहीं सकते कि कृष्ण गलत हैं। हिंदुओं को चोट पहुंचेगी।
जैनियों ने तो कहा कि कृष्ण गलत हैं, क्योंकि उनको कोई लेना-देना नहीं। उन्होंने नरक में डाला हुआ है; कृष्ण मर कर नरक में गए हैं। अभी भी पड़े हैं-- जैनियों के शास्त्रों में। और इस कल्प के आखिर तक पड़े रहेंगे। क्योंकि अर्जुन तो भाग रहा था हिंसा से, महा हिंसा से, महा पातक से। और इस आदमी ने सब तरफ से समझा-बुझा कर... । कितनी कोशिश की अर्जुन ने निकलने की इसके जाल के बाहर! तब तो अठारह अध्याय पैदा हुए! वह पूछता ही गया, वह हर तरफ से कहता गया, मुझे बचाओ, मुझे जाने दो। मगर कृष्ण हिंसा के बड़े से बड़े सेल्समैन मालूम होते हैं। आखिर उसको समझा-बुझा कर पट्टी पढ़ा दी। और वह आदमी इस आदमी के चक्कर में आ गया। और आखिर घबड़ा कर या परेशान होकर उसने कहा कि ठीक, मेरे भ्रम सब दूर हो गए, अब मैं लड़ता हूं। जैन कैसे पढ़ सकता है हिंदू की गीता को? गांधी कहते हैं कि यह गीता तो सिर्फ कहानी है; यह युद्ध असली में हुआ नहीं। क्योंकि अगर युद्ध हुआ है तब तो फिर कृष्ण ने हिंसा करवाई। असली में युद्ध हुआ ही नहीं; यह तो एक पुराण कल्पना है। और युद्ध असली में कौरव-पांडव के बीच नहीं है, युद्ध तो बुराई और भलाई के बीच है। बस, तब रास्ता गांधी ने निकाल लिया। अब कोई हिंसा नहीं। बुराई को मारने में कोई हिंसा है? यह सत और असत के बीच युद्ध है। इस युद्ध में वास्तविक खून नहीं गिरा है। इसलिए कृष्ण जोर दे रहे हैं कि तू काट! यह असलियों को काटने के लिए जोर नहीं दे रहे हैं। यह तो सिर्फ असत को, बुराई को! तो पुराण-कथा कह कर रास्ता निकाल लिया। महाभारत एक सत्य है जो हुआ; उस सत्य को भी झुठला दिया।
कोई एक पंथ को मानने वाला दूसरे पंथ को नहीं पढ़ सकता है। हिंदुओं ने जैन तीर्थंकरों का उल्लेख ही नहीं किया, सिर्फ एक पहले को छोड़ कर। और पहले का भी उल्लेख इसीलिए किया है कि पहला करीब-करीब हिंदू रहा होगा। क्योंकि वह हिंदू घर में पैदा हुआ था। अभी जैन पैदा नहीं हुए थे। तो पहले का उल्लेख है, ऋषभदेव का वेदों में। फिर इसके बाद किसी का उल्लेख नहीं करते वे। तेईस तीर्थंकर, जो जैनों के लिए महिमापुरुष हैं, जिनसे ऊंचा कुछ हो नहीं सकता, इसी पृथ्वी पर, इसी पृथ्वी खंड पर होते हैं, लेकिन हिंदुओं ने अपनी किताबों में उल्लेख भी नहीं किया। भयंकर उपेक्षा की। बात ही नहीं उठाई। इस योग्य भी नहीं माना कि विरोध करें। जिसका हम विरोध करते हैं, उसको भी हम स्वीकार तो करते हैं कि कोई योग्यता है उसकी। जिसकी हम उपेक्षा करते हैं उसको हम इस योग्य भी नहीं मानते कि क्या तुम्हारा विरोध करना! बकवास है सब, इतना भी नहीं कहते हम। हिंदू ऐसे निकल गए हैं तेईस तीर्थंकरों के पास से कि जैसे वे तेईस तीर्थंकर हुए ही नहीं। अगर हिंदू शास्त्रों में देखें तो कोई उल्लेख नहीं आता; कहीं कोई उल्लेख नहीं आता। आश्चर्यजनक है!
मगर अगर हम मनुष्य के मन को समझें तो सब आश्चर्य समझ में आ जाता है। सबकी आंखों पर पट्टियां हैं। हिंदू पट्टी बांधे हुए निकल गए; तीर्थंकर

रास्ते पर पड़ते नहीं पट्टी के। फोकस है, बाकी सब अंधकार है। उस फोकस में राम और कृष्ण पड़ते हैं, जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव पड़ जाते हैं, क्योंकि वे हिंदू थे। ऋषभ के मरने के बाद धीरे-धीरे जैन धर्म संगठित हुआ और अलग धारा बनी। जैसे कि जीसस का उल्लेख तो यहूदियों में मिल जाएगा, लेकिन फिर जीसस के बाद जो जीसस के मानने वाले संत हुए उनका कोई उल्लेख नहीं मिलेगा। क्योंकि उनसे कोई संबंध ही न रहा। वह अलग धारा हो गई।
पगडंडियों की तलाश होती है जब कि राजपथ द्वार से फैला हुआ है। गंगा बह रही है, तब भी तुम नल की टोंटियां खोले बैठे हो, जिनसे बूंद-बूंद पानी भी शायद ही कभी टपकता है। गंगा द्वार से बह रही है, तुम अपने नल के पास बैठे प्रार्थना कर रहे हो कि हे नल, पानी दे! कभी बूंद-बूंद टपकता है। संप्रदाय से बूंद-बूंद पानी भी टपक जाए तो काफी है। क्योंकि उतना पानी भी संप्रदाय में नहीं है।
ऐसा हुआ कि एक यहूदी फकीर के संबंध में बड़ी ख्याति थी कि वह जब बोलता था
तो लोगों के मनोभाव को इस तरह छू देता था, उनकी हृदय-तंत्री ऐसी बज उठती थी कि कोई रोता, कोई हंसता; भावावेश पैदा हो जाता था। गांव के एक अमीर आदमी की मृत्यु हुई। जैसा कि अमीर आदमियों के साथ होता है, सारा गांव जी-हजूरी करता था, लेकिन मन ही मन तो ईर्ष्या से भरा था। तो ऊपर से तो लोगों ने कहा बड़ा बुरा हुआ, लेकिन भीतर से प्रसन्न भी हुए कि अच्छा हुआ मरा यह दुष्ट, झंझट मिटी। अमीर आदमी मरा था तो घर के लोगों ने इस सूफी फकीर को बोलने के लिए बुलाया उसकी मृत्यु पर। वह बोला जैसा कि वह सदा बोलता था। उसने बड़ी महिमा का गुणगान किया, लेकिन एक भी आंख गीली न हुई। परायों की तो छोड़ दो, घर के लोगों की भी आंख से आंसू न गिरा।
लोग बड़े चकित हुए। जब फकीर बोल चुका तो एक आदमी ने उससे पूछा कि क्या मामला हुआ आज? सदा तुम भाव-उन्माद से भर देते हो! तुम बोलते क्या हो, हृदय तक छिद जाते हैं तीर, लोग रोते हैं। आज एक आंख गीली नहीं हुई! उस फकीर ने कहा, हम क्या करें? हमारा काम टोंटी खोल देना है। अब पानी हो ही न। टोंटी हमने खोल दी, पानी हो ही न तो हम क्या करें? उसमें हमारा कोई जिम्मा नहीं है। संप्रदाय की टोंटी खोले तुम बैठे रहो; पानी वहां है नहीं। और वहां संप्रदाय की टोंटी के सामने तुम कितनी ही पूजा करो, कुछ पाओगे न। क्योंकि संप्रदाय आदमी निर्मित है। महावीर तो धर्म के महान पथ पर हैं, महावीर के पीछे चलने वाला महावीर की पीठ पर फोकस लगा कर चल रहा है। वह पथ का उसे पता नहीं है। वही संप्रदाय और धर्म का फर्क है। महावीर तो धर्म में चल रहे हैं। सांप्रदायिक वह है जो महावीर की पीठ देख कर चल रहा है कि वे कहां जा रहे हैं। उसकी नजर पीठ पर लगी है। अनुयायी पीठ देख रहा है, वह राजपथ नहीं जिस पर महावीर चल रहे हैं। बड़ा फर्क है। महावीर की पीठ देख कर तुम यह मत सोचना कि तुम पहुंच जाओगे कभी। क्योंकि महावीर को भी जो ले जा रहा है वही तुम्हें ले जाएगा; लेकिन वह पथ तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। और तुम्हारी आंखें अगर बहुत ही ज्यादा जड़ हो गईं महावीर की पीठ पर लगी-लगी, तो फिर तुम्हें वह पथ कभी भी दिखाई न पड़ेगा। तुम इतने सांप्रदायिक हो जा सकते हो कि धर्म को देखने की सुविधा ही समाप्त हो जाए।
जितना ज्यादा सांप्रदायिक आदमी उतना ही कम धर्म की संभावना रह जाती है। आकाश तो खुला रहता है, लेकिन उसकी आंखें जड़ हो गई होती हैं। अब महावीर खो गए हैं, वह अभी भी उन्हीं की पीठ पर आंख लगाए हुए है। अब वह पीठ भी नहीं है। अब वह चला जा रहा है अंधेरे में। अब अपनी ही कल्पना है।
तुमने कभी ख्याल किया, तुम एक खिड़की को देखते रहो, फिर आंख बंद कर लो, तो खिड़की का निगेटिव बनता है आंख में। बस संप्रदाय वैसा ही है। महावीर कभी थे एक महिमावान पुरुष। कभी बुद्ध थे, कभी राम थे, कृष्ण थे, मोहम्मद थे, जिन्होंने जाना। फिर उनके पीछे चलने वाला उनकी पीठ पर आंख लगाए हुए है। फिर धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे महावीर तो अनंत में खो गए। अब तुम्हारी आंख में निगेटिव रह गया है। अब भी तुम आंख बंद करते हो तो पीठ दिखाई पड़ती है। और तुम इस पीठ का पीछा कर रहे हो। अब तुम पागलपन में उतरोगे। अब तुम कहीं भी नहीं जा सकते, क्योंकि यह पीठ कहीं है ही नहीं, सिर्फ तुम्हारी आंख में बनी हुई

प्रतिमा है। वह भी नकारात्मक प्रतिमा है। पाजिटिव तो खो गया, निगेटिव को तुम लिए बैठे हो। वह तुम्हारे मन में है।
संप्रदाय तुम्हारी व्याख्या, तुम्हारा शास्त्र। संप्रदाय यानी तुम। महावीर के नाम से तुम्हीं बैठे हो अब। बुद्ध के नाम से तुम्हीं बैठे हो। बुद्ध को गए बहुत वक्त हो गया। महावीर को गए बहुत वक्त हो गया। जीसस को खोए अनंत में बहुत समय हो चुका। तुम पूजा किए जा रहे हो। तुम उन मेघों की पूजा कर रहे हो जो बरस चुके। अब खाली आकाश में धुआं रह गया है। जैसे जेट निकलता है कभी आकाश से, जेट तो जा चुका होता है, एक धुएं की लकीर छूट जाती है। ऐसे ही जब भी महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसे पुरुष गुजरते हैं आकाश से, तो वे तो तीव्रता से गुजर जाते हैं, देर नहीं लगती, धुएं की लकीर छूट जाती है; उनके पीछे उनके पदचिह्न छूट जाते हैं। उन पदचिह्नों की पूजा चलती है। तुम उनका अनुसरण करते रहते हो। वही संप्रदाय है।
महावीर जैसे होने का ढंग महावीर के पीछे चलना नहीं है। बुद्ध जैसे होने का ढंग बुद्ध के पीछे चलना नहीं है। क्योंकि बुद्ध किसी बुद्ध के पीछे नहीं चल रहे थे। अगर तुम बुद्ध ही हो जाना चाहते हो तो तुम्हें अपने ही तरह अपने ही मार्ग से स्वभाव को खोज लेना पड़ेगा। जिस दिन तुम स्वभाव को पहुंच जाओगे उस दिन तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां कोई भी कभी पहुंचा है। सब बुद्ध जहां पहुंचे, सब जिन जहां पहुंचे, जहां सब अवतार-पैगंबर पहुंचे, वहां तुम भी पहुंच जाओगे। लेकिन पहुंचने का ढंग होगाः उस पथ को खोज लेना जो चारों तरफ मौजूद है। तुम्हारा ध्यान ही तुम्हें ले जाएगा। तुम्हारी समाधि ही तुम्हें जोड़ेगी। अनुसरण से कुछ भी न होगा।
‘मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता, तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता। मुख्य पथ पर चलना आसान है; तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।’
क्यों पसंद करते हैं लोग छोटी पगडंडियां? छोटी पगडंडियां सुविधापूर्ण मालूम होती हैं। क्योंकि तुम उनसे बड़े होते हो। उन पगडंडियों पर चल कर तुम बड़े मालूम पड़ते हो। और लगता है पगडंडी तुम्हारी कब्जे में है; जहां ले जाना चाहो वहीं जाएगी। तुम मालिक रहते हो। सच तो यह है कि पगडंडी पर तुम नहीं चलते, पगडंडी तुम्हारे पीछे चलती है। क्योंकि पगडंडी मनुष्य की बनाई हुई है। तुम अपने हिसाब से व्याख्या करते जाते हो। पगडंडी तुम्हारे पीछे चलती है।
कृष्ण के पीछे तुम चलते हो, ऐसा मत सोचना तुम। तुम पहले कृष्ण की व्याख्या करते हो--व्याख्या तुम्हारी है--फिर अपनी व्याख्या के पीछे तुम चलते हो। इसलिए तो कृष्ण को मानने वाले बहुत हैं, लेकिन सब अलग-अलग ढंग से चलते हैं। क्योंकि सबकी व्याख्या अलग है। निम्बार्क, वल्लभ, रामानुज, वे भक्ति से चलते हैं, और कृष्ण को मानते हैं। गीता से भक्ति निकाल लेते हैं। शब्दों का जाल जमाते हैं; गीता में से भक्ति निकल आती है। फिर वे भक्ति को चलते हैं। वे कहते हैं, कृष्ण के पीछे चल रहे हैं। पगडंडी उनका पीछा कर रही है, क्योंकि पगडंडी वे अपनी निकाल लेते हैं। शंकर और दूसरे अद्वैतवादी कृष्ण से ज्ञान निकाल लेते हैं, ज्ञान का मार्ग निकाल लेते हैं; उसके पीछे चलते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता से कर्म निकाल लिया और फिर वे कर्म के पीछे चलने लगे। फिर लोकमान्य के पीछे गांधी और विनोबा की कतार लगी। वे सब फिर कर्म को मान लिए। कृष्ण से किसी को मतलब है? तुम अपनी व्याख्या के पीछे चलते हो। और तुम अपने को समझाते हो कि हम कृष्ण के पीछे चल रहे हैं। धोखा किससे कहें?
तुम मुझे सुनते हो। तुम इस ख्याल में मत रहना कि तुम वही सुनते हो जो मैं कहता हूं। उस भ्रांति में पड़ना मत। क्योंकि वह बहुत आसान है। लेकिन तुम वह करोगे न। तुम जो करोगे वह आसान नहीं है, कठिन है। न केवल कठिन है, भ्रांत है, गलत है। लेकिन करोगे तुम वहीं। तुम पहले, मैं जो कहूंगा, उसकी व्याख्या करोगे; व्याख्या करके तुम उसे अपने अनुकूल बना लोगे; फिर तुम उसके पीछे चलोगे।
पगडंडी का अर्थ है, जो तुम्हारा पीछा करती हो। वह जो विराट पथ है ताओ का
वह तुम्हारा पीछा नहीं करेगा; तुम्हें उसमें डूबना होगा। तुम उसे अपने

पीछे आने वाली छाया नहीं बना सकते। महावीर ने तो एक ही बात कही, लेकिन दिगंबर एक व्याख्या करता है, श्वेतांबर दूसरी व्याख्या करता है। फिर दिगंबरों में भी छोटे-छोटे पंथ हैं जो अलग-अलग व्याख्या करते हैं। श्वेतांबरों में भी छोटे-छोटे पंथ हैं जो अलग-अलग व्याख्या करते हैं। और अगर तुम गौर से देखो तो हर आदमी का अपना ही पंथ है; वह अपनी व्याख्या करता है। धर्म के अनुसार तुम अपने को निर्मित नहीं करते, तुम धर्म को अपने अनुसार निर्मित करते हो।
और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक जो सत्य के पीछे चलते हैं, और दूसरे वे जो सत्य को अपने पीछे चलाने की कोशिश करते हैं। सुगम मालूम पड़ेगा तुम्हें सत्य को अपने पीछे चलाना। क्योंकि सत्य का दावा भी हो गया और सत्य होने की जो झंझट है उससे भी बच गए। धार्मिक बिना हुए धार्मिक होने का मजा लोग ले रहे हैं।
व्याख्या मत करना। तुम व्याख्या कर भी कैसे सकोगे? सत्य की कोई व्याख्या नहीं हो सकती, सत्य का अनुभव होता है। अनुभव को कोई व्याख्या की जरूरत नहीं। और जब तुम व्याख्या करोगे अपनी अज्ञान की दशा से, तुम जो भी व्याख्या करोगे वह गलत होगी, वह भ्रांत होगी। फिर उसी व्याख्या को मान कर तुम चलते रहोगे। कहीं न पहुंचोगे।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हम आपको दस साल से सुन रहे हैं और आपकी मान कर चलते हैं, लेकिन कहीं पहुंचे नहीं। मैं उनसे कहता हूं, तुम मेरी मान कर कभी चले नहीं। वे मुझसे विवाद करते हैं कि नहीं, हम मान कर चलते हैं। मैं कहता हूं, देखो, अभी भी मैं कह रहा हूं उसको भी तुम नहीं मान रहे! मैं कह रहा हूं कि तुम मेरी मान कर नहीं चले, उसमें भी तुम कह रहे हो कि नहीं, हम मान कर ही चलते हैं। तुम अपनी जिद्द कायम रखते हो।
तुम्हारी जिद्द ही तुम्हारा अहंकार है। तुम अपनी व्याख्या के अनुसार
चल रहे हो। अगर पहुंच गए तो तुम कहोगे, अपनी व्याख्या से पहुंचे; अगर न पहुंचे तो गुरु गलत था। तुम्हारा गणित बिल्कुल साफ है। अगर पहुंच गए तो तुम अपनी पीठ थपथपाओगे; अगर नहीं पहुंचे तो तुम कहोगे कि तुम्हारे पीछे दस साल से चल रहे हैं और भटक रहे हैं। पहुंच गए तो तुम कहोगे, कैसे कुशल हम! ठीक बिल्कुल व्याख्या कर ली और पहुंच गए। तब तुम धन्यवाद देने भी न आओगे। ‘मुख्य पथ पर चलना आसान है, तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।’
छोटी, तुमसे भी छोटी। तुम वही पगडंडी पसंद करोगे जो तुमसे छोटी है। लोग अपने से छोटी चीजें पसंद करते हैं। क्योंकि उन छोटी चीजों के कारण वे बड़े मालूम पड़ते हैं। लोग अपने से छोटे लोगों का संग-साथ करते हैं। क्योंकि उनके बीच वे बड़े मालूम पड़ते हैं। हमेशा लोग अपने से छोटे की तलाश करते हैं। उस छोटे के पास खड़े होकर वे बड़े महिमावान मालूम पड़ने लगते हैं।
इससे ठीक उलटा मार्ग है धर्म का--जब तुम अपने से बड़े की तलाश करते हो। बड़ी पीड़ा होगी। क्योंकि तुम छोटे मालूम पड़ोगे। जितने बड़े के पास तुम जाओगे उतने छोटे मालूम पड़ोगे। कहते हैं, ऊंट हिमालय के पास जाना पसंद नहीं करते, रेगिस्तान में रहते हैं इसीलिए जहां पहाड़ वगैरह से मिलना ही न हो। रेत की छोटी-मोटी पहाड़ियां भी मिल जाएं उनसे कुछ डर नहीं। ऊंट की ऊंचाई कायम रहती है। और जब ऊंट पहाड़ के पास आता है तो बड़ी दीनता अनुभव करता है। ऐसे ही शिष्य जब गुरु के पास आता है, आने की चेष्टा में ही एक क्रांति शुरू हो जाती है। आना ही क्रांति है। क्योंकि तुमने यह अनुभव कर लिया कि अपने से छोटे को खोज कर तुम छोटे होते जाओगे। अपने से बड़े को खोज कर ही तुम्हारे बड़े होने का उपाय है। यद्यपि बड़े होने में पहले तुम्हें छोटे होने की बड़ी गहरी पीड़ा होगी। उस पीड़ा से गुजरना होगा।
छोटे लोगों का साथ खोज कर तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा, लेकिन वह सुख दो कौड़ी का है। क्योंकि उस सुख के कारण तुम्हें और भी पीड़ाओं में उतरना पड़ेगा। तुम्हें रोज छोटे, और छोटे को खोजना पड़ेगा। क्योंकि तुम छोटे होते जाओगे।
जिनके साथ तुम रहोगे, वैसे ही हो जाओगे। संग का बड़ा परिणाम है; क्योंकि चेतना की आदत है सम्मिलित हो जाने की। अगर तुम क्षुद्र लोगों के साथ रहे तो तुम थोड़े दिन में सम्मिलित हो जाओगे।

तुम ख्याल न किए हो, अगर दो-चार आदमी बड़े प्रसन्न मिल जाएं तुम्हें--हंस रहे हों, गपशप कर रहे हों--तुम उदास भी हो तो तुम भूल जाते हो कि उदास हो, तुम भी हंसने लगते हो। संक्रामक है हंसी। कोई उदास बैठे हों दो-चार सज्जन और तुम उनके पास बैठ जाओ थोड़ी देर, तुम उदास हो जाओगे। तुम्हारे मन में विचार उठने लगेंगे कि कैसे उदासीन संप्रदाय में सम्मिलित हो जाएं! वैराग्य का भाव उदय होने लगेगा कि सब संसार असार है, तो जीवन व्यर्थ है। आत्महत्या मन में उठने लगेगी। चेतना तुम्हारे शरीर में सीमित नहीं है। चेतना तुम्हारे चारों तरफ बहती है और मिलती है। सदा पहाड़ को खोजना, सदा अपने से ऊंचे को खोजना। तो तुम्हारी ऊंचाई बढ़ेगी और गहराई बढ़ेगी। तुम जिनके साथ रहोगे, वैसे होते जाओगे।
इसीलिए तो सत्संग की इतनी महिमा है। सत्संग का अर्थ है, सदा अपने से श्रेष्ठ को खोजते रहना, उसकी हवा में जीने की कोशिश, उसकी आभा को पीना, उसकी चेतना को बहने देना अपने भीतर। गुरु का अर्थ यही है कि जिसके पास तुम रहो तो वह तुम्हें उठाए, तुम उसे न गिरा सको। अगर तुम उसे गिरा लो तो वह गुरु नहीं। क्योंकि एक घटना साफ है। जब तुम एक गुरु के पास जाते हो तो दो तरफ से सोचो। तुम गुरु के पास जा रहे हो, तुम अपने से बड़े के पास जा रहे हो। लेकिन गुरु तुम्हें आज्ञा दे रहा है पास आने की, वह अपने से छोटे को आज्ञा दे रहा है। तो गुरु की कसौटी यही है कि जिसे तुम अपने तल पर न उतार सको। हालांकि तुम पूरी कोशिश करोगे अपने तल पर उतार लेने की। पगडंडियों और संप्रदायों में तुम पाओगे, अनुयायी अपने साधुओं को चला रहा है। जैनियों की पंचायत होती है, वह साधु पर नजर रखती है कि वह कहीं आचरण से भ्रष्ट तो नहीं हो रहा।
तुम कैसे तय करोगे कि वह आचरण से भ्रष्ट हो रहा है कि नहीं? और वह भी राजी है तुमसे कि तुम उसके नियंता हो। तुम मर्यादा तय करते हो, वह अनुसरण करता है। फिर तुम उसे गुरु मानते हो! पहले तुम उसे उतार लेते हो अपने तल पर, अपने से भी नीचे, तभी तुम उसे गुरु मानते हो।
गुरु वही है जो तुम्हारी न सुने, जो तुम्हारे तल पर उतरने को राजी न हो; जिसे तुम कुछ भी करो तो अपने तल पर न उतार सको; जिसकी चेतना संगठित हो गई हो एक ऊंचाई के तल पर जहां से कि बिखर न सके। वही उसकी गुरुता है, वही उसका घनत्व है कि वह तुमसे इतना घना है कि तुम उसे बिखरा न सकोगे। तुम उसके पास जाओगे तो तुम्हें ही ऊपर उठना पड़ेगा। हालांकि तुम हर उपाय करोगे। यह कोई जानकारी से करोगे, ऐसा भी नहीं है। यह सब अचेतन प्रक्रिया है। तुम हर उपाय करोगे कि वह तुम्हारे तल पर आ जाए।
मेरे पास अनेक मित्र आते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि आपकी बातें ठीक लगती हैं, लेकिन क्या यह नहीं हो सकता कि हम आपके प्रति मित्र-भाव रखें और शिष्य-भाव न रखें। तो क्रांति नहीं होगी?
कुछ बुरी बात नहीं कह रहे हैं; बिल्कुल ठीक बात कह रहे हैं। कौन उनकी बात को गलत कहेगा? और अगर मैं कहूं कि नहीं, मित्र-भाव से काम न चलेगा; तो स्वभावतः उनके मन में ख्याल उठेगा, यह आदमी बड़ा अहंकारी है, यह गुरु बनना चाहता है। और अगर मैं कहूं कि ठीक, बिल्कुल मित्र-भाव रखो तो वे मुझे अपने तल पर लाने की कोशिश में लगे हैं। आज वे कहेंगे मित्र-भाव, कल वे मेरे कंधे पर हाथ रख कर हंसी-मजाक करना चाहेंगे।
शिष्य जब गुरु के पास आता है तब भी उसकी अचेतन बीमारियां लेकर आता है। उसका कोई कसूर नहीं है। वह जैसा है वैसा ही आएगा, बदल कर नहीं आ सकता। बदलने आया है। बीमार है, इसीलिए आया है। लेकिन वह अपनी बीमारी भी लाया है। और गुरु अगर उसके तल पर जरा भी उतर जाए तो उसे बदल न पाएगा। बिना उतरे भी अगर वह उसको सहमति दे दे इतनी भी कि ठीक है, मित्र रहो--मित्रता बड़ी कीमती बात है, और गुरु की तरफ से कोई अड़चन नहीं है, गुरु की तरफ से वस्तुतः तुम मित्र ही हो-- लेकिन स्वीकृति भी दे दे, तो तुम्हें उठा नहीं सकेगा।
कृष्णमूर्ति चालीस साल की निरंतर मेहनत के बाद किसी को भी उठा नहीं सके, क्योंकि एक भ्रांति की स्वीकृति उन्होंने दे दी, जो उनकी तरफ से बिल्कुल ठीक थी। उन्होंने कहा, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, ज्यादा से ज्यादा एक मित्र। कृष्णमूर्ति की तरफ से बात बिल्कुल ठीक है; गुरु की तरफ से मित्रता ही है। लेकिन सुनने वाले का अहंकार परिपुष्ट हुआ। जो शिष्य

होने आए थे वे मित्र होकर वापस लौट गए। बात ही खतम हो गई। अब क्रांति का कोई उपाय न रहा। क्योंकि क्रांति का उपाय तभी है जब तुम किसी को ऊपर देख सको-- इतनी ऊंचाई पर कि तुम्हारा सिर झुक जाए तो भी तुम उसे पूरा न देख पाओ, उसका अंतिम शिखर दूर आकाश में खोया हो--तभी तुम चढ़ोगे, तभी तुम उठोगे, तभी तुम यात्रा पर निकलोगे।
छोटी पगडंडियां लोग पसंद करते हैं। इसलिए छोटे-छोटे गुरु लोग पसंद करते हैं। जिनको तुम मैनेज कर सको, जिनको तुम व्यवस्था दे सको, जो तुम्हारी आज्ञा से इधर-उधर न जाएं। अगर कबीर होते तो वे कहते, एक अचंभा मैंने देखा कि शिष्य गुरु को ज्ञान बताए। पर ऐसा हो रहा है। शिष्य गुरुओं को चला रहे हैं। संप्रदाय धर्म बन बैठे हैं। पगडंडियां राजपथ होने का दावा कर रही हैं। और तुम्हें सुखद लगता है। क्योंकि तुम उन पगडंडियों से बड़े बने रहते हो। तुम अपने गुरु से भी बड़े बने रहते हो।
मेरे पास जैन साधु आकर कई बार कह कर गए हैं कि बड़ी मुश्किल है, समाज आने नहीं देता आपके पास; अनुयायी कहते हैं कि वहां मत जाना। और अनुयायियों की उन्हें माननी पड़ती है। मुझसे चोरी से भी मिलने जैन साधु आए हैं, क्योंकि वे प्रकट नहीं आ सकते। किसी को पता न हो। किसी को पता चल जाए तो वे कहेंगे, तुम वहां क्यों गए?
इसको मैं कह रहा हूं कि जिसको तुम मैनेज कर सको। अब इस गुरु से तुम क्या पाओगे? यह तुम्हारी कठपुतली है। यह तुमसे डरा हुआ है; यह तुमसे भयभीत है। जो तुमसे भयभीत है उसका परमात्मा से क्या संबंध? जो तुमसे डरा है वह तुमसे गया-बीता है। तुम्हारे गुरु तुमसे गए-बीते हैं। लेकिन पगडंडियों पर यही तो चलने का मजा है कि तुम गुरुओं को भी चला पाते हो।
‘दरबार चाकचिक्य से भरे हैं, जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।’
लाओत्से कहता है कि मनुष्य स्वभाव से इस बुरी तरह छूट गया है कि उसे ख्याल में नहीं रहा है कि जीवन को उसने कितने असार से भर लिया स्वभाव से छूट कर। और असार इतना सारपूर्ण मालूम होने लगा है कि तुम बिल्कुल अंधे ही होओगे, तुम्हें बिल्कुल बोध की एक किरण भी न होगी, तभी ऐसा हो सकता है। थोड़ा सोचो। लोग सोने को इकट्ठा करने के पीछे पागल हैं। न खा सकते हो सोने को, न पी सकते हो, न ओढ़ सकते हो। और जीवन का बहुमूल्य अवसर उसे इकट्ठा करने में गंवाया जा रहा है। रोटी जरूरी है, मगर लोग रोटी चाहे न खाएं, सोना जरूर चाहिए। भूखे सो जाएं, लेकिन सोना जरूर चाहिए। क्या कारण होगा कि लोग अपनी वास्तविक जरूरतों को छोड़ कर भी गैर-जरूरी जरूरतों को भरने की पहले कोशिश करते हैं? क्या कारण है? क्योंकि जरूरतें तो साधारण हैं; उनको तुम पूरा भी कर लो तो भी तुम असाधारण की तरह दिखाई न पड़ोगे। भूख तुमने भर भी ली तो जानवर भी भर लेते हैं, पशु-पक्षी भी भर लेते हैं; उसमें क्या खूबी? सोना अगर तुमने ढेर लगा लिया तो कोई पशु-पक्षी ऐसा नहीं करता। पशु-पक्षी इतने नासमझ नहीं हैं।
और सोना न्यून है, और अहंकार न्यून से ही भरता है। जो जितना कम है उतना मूल्यवान है। बड़ी हैरानी की बात है! उसकी उपयोगिता के कारण कोई चीज मूल्यवान नहीं है; उसकी कमी के कारण। सोने का क्या उपयोग है? एक ही उपयोग है कि वह न्यून है; इतना कम है कि सभी लोग उसको नहीं पा सकते। कुछ थोड़े से लोग ही ढेर लगा सकते हैं। उस ढेर के कारण वे विशिष्ट हो जाएंगे, खास हो जाएंगे, असाधारण हो जाएंगे। सोना न्यून है, इसलिए उसकी कीमत है। व्हाइट गोल्ड और भी कम है तो उसकी दुगुनी कीमत है। फिर प्लेटिनम और भी कम है तो उसकी और भी ज्यादा कीमत है। जो चीज जितनी न्यून है, उसके आधार पर उसका मूल्य हो रहा है। इसकी कोई चिंता ही नहीं कि उसका कोई उपयोग है?
अहंकार को उपयोग से मतलब ही नहीं है। अहंकार को सिर्फ एक घोषणा करनी है जगत में कि मैं असाधारण हूं। पेट भूखा रह जाए, कंठ प्यासा हो, कोई फिक्र नहीं; शरीर गहनों से सजा हो। जीवन की गहरी से गहरी जरूरतें खाली रह जाएं, प्रेम से तुम वंचित रह जाओ, कोई फिक्र नहीं; हीरे-जवाहरात चाहिए।

अन्यथा जीवन की तो जरूरतें बड़ी थोड़ी हैं। अगर अहंकार बीच में न आए तो पृथ्वी पर बड़ा संतोष हो। असंतोष का स्वर अहंकार से आता है। क्या है जरूरत तुम्हारी? कि पेट भरा हो!
जीसस अपने शिष्यों से कहे हैं। कई बार लगता है कि जीसस इतनी सी छोटी सी बात क्यों प्रार्थना में जोड़े हैं! जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है कि तुम यह प्रार्थना रोज करना; उसमें एक पंक्ति हैः हे प्रभु, मुझे मेरी रोज की रोटी दे, गिव मी माइ डेली ब्रेड। समझ में नहीं आता कि इसको मांगने की क्या जरूरत है? रोटी! पर जीसस रोटी शब्द को प्रतीक की तरह चुन रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि जीवन की मेरी जो छोटी-छोटी जरूरतें हैं--प्यास है तो पानी चाहिए, भूख है तो रोटी चाहिए, जीवन है तो प्रेम चाहिए--यह मेरी छोटी सी रोटी है, दि डेली ब्रेड, पानी, रोटी, प्रेम, छप्पर। इतना ही चाहिए जीवन के लिए और जीवन परम महिमा को उपलब्ध हो जाता है, उस कुलीनता को, जिसकी चर्चा लाओत्से करता है कि बाहर कुछ भी न हो, भीतर एक ऐसी संपदा हो जाती है; बाहर फटे कपड़े हों तो भी भीतर का सम्राट जगमगाता है।
नहीं, लेकिन दुनिया उलटे रास्ते चलती है। भीतर कुछ भी न हो, भीतर भिखारी हो, भिखारी का पात्र हो, खंडहर आत्मा हो, बाहर चाकचिक्य हो, बाहर सब हो। क्योंकि भीतर की आत्मा तो किसको दिखाई पड़ेगी? बाहर की चीजें लोगों को दिखाई पड़ती हैं। आत्मा को गंवाओ। बदल लो आत्मा को धन-दौलत में, तिजोड़ी भर लो, खुद खाली हो जाओ।
लाओत्से कह रहा है, इसलिए लोग स्वभाव से टूट गए हैं। क्योंकि स्वभाव में होने के लिए इतनी तो समझ होनी ही चाहिए कि जो जरूरी है वही जरूरी है; जो गैर-जरूरी है वह जरूरी नहीं है।
और जो एक दफा गैर-जरूरी की दा.ैड पर निकल गया वह माया में जा रहा है। अब उसका कोई अंत नहीं है। तुम कुछ भी पा लो तो भी बहुत कुछ पाने को शेष रहेगा। वह घड़ी कभी न आएगी जब तुम कह सको कि मैंने सब पा लिया। सिकंदर को नहीं आई तो तुम्हें कैसे आएगी? आज तक दुनिया में बड़े से बड़े धनपति को नहीं आई तो तुम्हें कैसे आएगी? कुबेर भी रो रहा है। सोलोमन भी मरते वक्त परेशान है। सब नहीं हो पाया; सब नहीं मिल पाया।
जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को कि देखो खेत में खिले हुए लिली के फूल! देखो इनकी शान! सोलोमन, सम्राट सोलोमन, अपनी पूरी सफलता के क्षणों में भी इतना सुंदर नहीं था।
लिली के फूल के पास है भी क्या? साधारण जंगली फूल है। लेकिन क्या कमी है? तुमने कभी लिली के फूल को कोई शिकायत करते देखा कि उसने कहा हो कुछ कम है? जल मिलता है पृथ्वी से, प्यास तृप्त हो जाती है। सूरज की किरणें मिलती हैं, जीवन प्रफुल्लित हो जाता है, सुवास आ जाती है। और चाहिए क्या? लाओत्से कहता है, जीवन की जो साधारण जरूरतें हैं जो उनसे ही राजी हो गया वह उस महा पथ को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि उसकी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ की दौड़ में नहीं पड़ेगी। वह जीवन-ऊर्जा बच रहेगी। वह जीवन-ऊर्जा उसे ऐसा संपन्न बना देगी, भीतर की गरिमा से ऐसा भर देगी जैसा हर फूल भरा है। उसके भीतर का दीया जल जाएगा।
‘दरबार चाकचिक्य से भरे हैं, जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।’
खेत की किसी को चिंता नहीं। खलिहान खाली पड़े हैं। बखारियां रिक्त हैं। जीवन की मूल जरूरतें लोग चूक गए हैं। और व्यर्थ की बातें, दरबार, दिल्लियां, बड़ी महत्वपूर्ण हो गई हैं। सब दिल्ली की तरफ भाग रहे हैं। राजनीतिज्ञ भाग रहे हैं; जो सोचते हैं कि राजनीतिज्ञ नहीं हैं वे भी भाग रहे हैं। साधु- संन्यासी भाग रहे हैं। क्या है दरबार में? दरबार प्रतीक है लाओत्से के लिए व्यर्थता का, असार का। क्या है राजधानियों में? वे आदमी की मूढ़ता के स्तंभ हैं। वे आदमी की नासमझी के प्रतीक हैं। लेकिन सभी भाग रहे हैं। मन में एक ही दौड़ लगी है कि कैसे दरबार में पहुंच जाएं। दरबार में पहुंच कर क्या होगा? खाली पेट, खाली आत्मा। तुम बाहर स्वर्ण से थोप भी दिए जाओगे तो क्या होगा?

‘तथापि जड़ीदार चोगे पहने, चमचमाती तलवारें हाथों में लिए, श्रेष्ठ भोजन और पेय से अघाए, वे धन-संपत्ति में सरोबोर हैं। इससे ही संसार लूटपाट पर उतारू होता है। क्या यह ताओ का भ्रष्टाचरण नहीं है?’
ताओ का एक ही भ्रष्टाचरण है, ताओ से वंचित हो जाने का एक ही ढंग है--कि तुम गैर-जरूरी को जरूरी समझ लो। फिर सब भ्रष्ट हो जाएगा। हर समाज भ्रष्टाचार से मुक्त होना चाहता है, लेकिन हो नहीं सकता।
इधर भारत में बड़ी चर्चा चलती हैः भ्रष्टाचार है, इससे मुक्त होना है। भ्रष्टाचार सदा से है। और सदा से लोग मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं। और बिना लाओत्से की आवाज सुने कोशिश कर रहे हैं। भ्रष्टाचार मिट नहीं सकता, जब तक असार सार मालूम पड़ता है। इसलिए भ्रष्टाचार मिटाने का कोई ढंग कानून बनाना नहीं है पार्लियामेंट में और न ही कोई जयप्रकाश की तरह आंदोलन चलाने से भ्रष्टाचार मिटता है। क्योंकि वह आंदोलन भी कानून को ही बदलने का जोर करेगा। और क्या करेगा? और आंदोलन चलाने वाले भी उतने ही भ्रष्टाचारी हैं जितने कि जो पद में बैठे हैं। कोई फर्क नहीं है। क्योंकि भ्रष्टाचार का मूल तो दोनों के भीतर एक है। और वह मूल यह है कि जो व्यर्थ है वह सार्थक मालूम होता है।
तो भ्रष्टाचार तो तभी मिट सकता है जब लोग ताओ से जुड़ जाएं, लोग धार्मिक हों; उसके पहले नहीं मिट सकता। जब तक हीरा मूल्यवान मालूम होता है, स्वर्ण मूल्यवान मालूम होता है, पद मूल्यवान मालूम होता है, प्रतिष्ठा मूल्यवान मालूम होती है, राजनीति मूल्यवान मालूम होती है, दरबार, राजधानियां मूल्यवान मालूम होती हैं, सिंहासन का जब तक कोई भी मूल्य है, तब तक भ्रष्टाचार नहीं मिट सकता। क्योंकि भ्रष्टाचार का एक ही अर्थ है कि तुम अपने स्वभाव से च्युत हो गए। कौन सी जगह से तुम च्युत हुए हो? कहां तुम्हारी पहली भूल है?
वह पहली भूल यह है कि तुमने जीवन में साधारण होने का राजीपन न दिखाया। तुम असाधारण होना चाहते हो। और आदमी का मन बड़ा अजीब है। तुम साधुता से असाधारण होने की कोशिश करो तो भी तुम भ्रष्टाचारी हो। कोई नहीं पहचान पाएगा तुम्हारे भ्रष्टाचार को। लोग कहेंगे कि इस आदमी के पास तो कुछ भी नहीं है, नंगा खड़ा है; इसको कैसे भ्रष्टाचारी कहते हो? यह तो कोई राजधानी में भी नहीं गया, राजनीति में भी नहीं है, धन-दौलत भी इकट्ठी नहीं की, कोई लाइसेंस का घोटाला भी नहीं करता, कुछ भी नहीं है; यह तो बेचारा अपना नंगा खड़ा है; भगवान का भजन करता है।
यह भी भ्रष्टाचारी है, अगर यह विशिष्ट होना चाहता है। अगर यह भगवान का भजन भी बीच बाजार में करता है ताकि लोग सुन लें, अगर यह भगवान का भजन भी जोर-जोर से करने लगता है अगर लोग पास हों तो यह भ्रष्टाचारी है। क्योंकि मूल स्रोत भ्रष्टाचार का एक ही है और वह यह, कि तुम असाधारण होने की कोशिश करो। लाओत्से कहता है कि इस जगत में साधारण हो जाना ही कला है। और जो साधारण
हो गया--सब अर्थों में साधारण--जिसका कोई दावा ही नहीं है, जो किसी पद, इस जगत में या परलोक में, कोई फिक्र नहीं कर रहा है, जिसने व्यर्थता समझ ली इस बात की, जो जीवन की बहुत छोटी चीजों से प्रसन्न है, कि रोटी मिल गई, कि पानी मिल गया, कि श्वास मिल गई, कि प्रेम मिला, कि प्रार्थना मिल गई, बस काफी है; जो इतने ना-कुछ से राजी है, वही राजी हो पाएगा, और उसके जीवन में ही असाधारण का जन्म होता है। जो साधारण होने को राजी है, उससे ज्यादा असाधारण पुरुष कोई भी नहीं।
नहीं तो भ्रष्टाचार है। और जब तक हम भ्रष्टाचार के इस मूल को न समझें
तब तक हम ऊपर-ऊपर सब कुछ करते रहें, कुछ भी न होगा। जो पद में होते हैं वे भ्रष्टाचारी मालूम होते हैं। जब वे पद में नहीं थे तब वे भी क्रांतिकारी थे। फिर दूसरे खड़े हो जाते हैं जो पद पर नहीं हैं, वे क्रांति की चर्चा करते हैं। वे भ्रष्टाचार के विरोध में हैं; लेकिन उनको पद दो, वे भी भ्रष्टाचारी हो जाते हैं। अब तक सभी क्रांतियां असफल हो गई हैं। आदमी की आशा अदभुत है! कोई क्रांति कभी सफल नहीं हुई, फिर भी आदमी सोचता है क्रांति से सब ठीक हो जाएगा। क्रांति करने वाले भी छिपे भ्रष्टाचारी हैं जो अपने समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे आज भ्रष्टाचार के खिलाफ हैं, क्योंकि जनता

भ्रष्टाचार से परेशान है, लोग पीड़ित हैं, जनता का साथ मिलेगा। कल वे सत्ता में पहुंचे कि सब वही का वही हो जाएगा। क्योंकि उनको भी मौलिक भूल का कोई पता नहीं है। मौलिक भूल विशिष्ट होने की भूल है। फिर विशिष्ट होने के हजार ढंग हैं। तुम विशिष्ट हो सकते हो धन से, पद से, ज्ञान से, त्याग से, लेकिन विशिष्ट होना।
लाओत्से कहता है, एक बात ही भ्रष्टाचार है स्वभाव का। जहां तुमने विशिष्ट होना चाहा, तुम भ्रष्ट हुए, और तुमने भ्रष्टाचार की हवा पैदा की। साधारण हो रहो! भूख लगे, खा लो; प्यास लगे, पी लो; प्रार्थना लगे, कर लो। किसी को दिखाना क्या? किसी को बताना क्या? ऐसे जीओ जैसे तुम हो ही नहीं। चुपचाप जी लो कि तुम्हारी कोई रेखा भी न छूटे।
लेकिन मन कहता है, इतिहास में नाम रह जाए। अगर इतिहास में नाम रखना है
तो तुम फिर भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि इतिहास तो सिर्फ भ्रष्टाचारियों का है। इतिहास में तो जो जितना भ्रष्ट है उतना ही ज्यादा नाम आएगा। क्योंकि वह उतने ही उपद्रव करता है, उतनी ही घटनाएं पैदा होती हैं। अच्छे आदमी का कोई इतिहास होता है? वह कुछ करता ही नहीं जिससे इतिहास बने। या वह जो कुछ भी करता है वह अखबारों में छापने योग्य नहीं होता, सुर्खियां उससे नहीं बनतीं।
तुम ध्यान कर रहे हो। कोई अखबार उसको पहले पेज पर छापेगा कि फलां-फलां सज्जन ध्यान में बैठे हैं? कोई नहीं छापेगा। तुम जाओ और किसी की छाती में छुरा भोंक दो; तुम सुर्खी में आ गए। दुनिया में छुरा भोंकना ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ता है ध्यान करने की बजाय। तुम उपद्रव करो कुछ, तुम कुछ मिटाओ तो तुम सुर्खियों में आ जाओगे अखबार की। तुम कुछ बनाओ; कौन पूछता है? तुम्हारे होने का कोई मूल्य नहीं है। तुम कुछ व्याघात पैदा करो, तुम चारों तरफ कुछ हलचल पैदा करो; तब तुम पूछे जाते हो।
अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें आत्मा खोनी पड़ेगी। क्योंकि आत्मा की कोई पूछ इतिहास में नहीं है। अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें ताओ खोना पड़ेगा। क्योंकि ताओ का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं है। अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें दुख और पीड़ा और अशांति में और नरक में जीना पड़ेगा। क्योंकि नरक का ही केवल इतिहास लिखा जाता है। स्वर्ग का क्या इतिहास? स्वर्ग में कहीं अखबार छपते हैं? नरक में छपते हैं। वहां कुछ घटता ही नहीं; घटना ही नहीं घटती तो अखबार क्या छपेगा?
नहीं, अगर दुनिया शांत और आनंदित हो तो इतिहास धीरे-धीरे खो जाएगा। अगर लोग सिर्फ जीएं, और लोग सिर्फ प्रसन्न हों अपने न होने में, और कोई दौड़ न हो किसी से आगे निकलने की, लोग अपनी-अपनी जगह राजी हों--इतिहास खो जाएगा। इसीलिए तो पूरब के देशों के पास इतिहास नहीं है। हमने लिखना न चाहा। हमने लिखने योग्य न माना। क्योंकि जो भी लिखने योग्य लगता था वह कचरा था। जो लिखने योग्य था उसकी लहर ही न बनती थी, वह लिखा नहीं जा सकता था।
इसलिए हमने पुराण लिखे; इतिहास नहीं लिखा। पुराण बड़ी अलग बात है। पुराण सार की बात है। पुराण का मतलब यह है कि हम एक बुद्ध के संबंध में नहीं लिखे, दूसरे बुद्ध के संबंध में नहीं लिखे, हमने बुद्धत्व के संबंध में लिखा। एक कहानी गढ़ ली जिसमें बुद्धत्व की कथा समा जाए, सार आ जाए। इसीलिए तो पश्चिम के लोग कहते हैं कि तुम्हारे बुद्ध संदिग्ध हैं--हुए या नहीं! तुम्हारे तीर्थंकर संदिग्ध हैं। इनका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। किस पत्थर पर इनका नाम लिखा है? न, हमने अलग-अलग तीर्थंकरों की फिक्र न की।
तुम जाओ जैन मंदिर में, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा हैं। तुम कुछ फर्क न कर पाओगे कि कौन कौन है। शक्लें एक सी, बैठे एक से पालथी मारे, एक ही ध्यान में लीन। यह भी हमें पक्का पता नहीं कि इनकी शक्लें तो निश्चित अलग-अलग रही होंगी। चौबीस आदमी थे, शक्ल अलग थी, एक ही शक्ल के कैसे हो सकते हैं? लेकिन अब बिल्कुल एक शक्ल के हैं; कोई फर्क नहीं है। भेद करने के लिए जैनियों को हर प्रतिमा के नीचे एक चिह्न बनाना पड़ता है। तो उन्होंने चिह्न बना दिए हैं। किसी के नीचे सिंह, किसी के नीचे कमल, किसी के नीचे सांप; वे चिह्न बनाने पड़े हैं, ताकि पता चले कि यह प्रतिमा है किसकी। नहीं तो वे चौबीस ही एक जैसे हैं।

पश्चिम कहता है कि ये गैर-ऐतिहासिक हैं, क्योंकि चौबीस आदमी एक जैसी शक्ल के, एक जैसी ऊंचाई के, एक जैसे शरीर के कैसे हो सकते हैं? और अनंत काल में? यह बात कथा मालूम होती है।
यह है भी कथा। हमने फिक्र नहीं की एक-एक तीर्थंकर की। क्योंकि तीर्थंकर का क्या प्रयोजन है? एक-एक का क्या अर्थ है? वह भीतर जो उसने पाया है वह इतना एक जैसा है, वह इतना सारभूत है, वह कथा इतनी एक जैसी है कि हमने एक ही कथा गढ़ ली और एक ही प्रतिमा बना ली। हमने सब बुद्धों को एक घटना में समा लिया, और हमने सब अवतारों को एक अवतार में समा लिया। सार को हमने सिद्धांत बना लिया। इतिहास की चिंता छोड़ दी, क्योंकि इतिहास घटनाओं की फिक्र करता है। हमने उसकी फिक्र की जो भीतर है; जो घटता नहीं, जो है ही; जो कोई घटना नहीं है, जो अस्तित्व है।
इसलिए पुराण हमने रचा। पुराण बड़ी अनूठी बात है। पुराण उनका है जिनकी कोई लकीर पार्थिव जगत में नहीं छूटती; हमने उनकी सार-सुगंध इकट्ठी कर ली। अब हर गुलाब की क्या कथा लिखनी? हमने गुलाब का इत्र निचोड़ लिया। वह पुराण है। क्योंकि हर गुलाब की कथा एक है। बार-बार दुहराने का सार भी क्या है? गैर-जरूरी बातें भिन्न होंगी कि कोई इस बाप से पैदा हुआ, कोई उस बाप से पैदा हुआ। इसका क्या लेना-देना है कि कोई इस मां की कोख में आया, कोई उस मां की कोख में आया। कोख एक है; जन्म की घटना एक है। कोई इधर मरा, कोई उधर मरा, इस गांव में या उस गांव में; इससे क्या फर्क पड़ता है। यह सांयोगिक है। मृत्यु घटी; जन्म हुआ, मृत्यु घटी। कोई इस दुख से ऊबा और ध्यान में गया, कोई उस दुख से ऊबा और ध्यान में गया; इससे क्या फर्क पड़ता है? लोग दुख से ऊबे और दुख-निरोध की तरफ ध्यान में गए। हमने निचोड़ लिया सार। सब गुलाबों की अलग-अलग कथा लिखना नासमझी है; हमने तो निकाल लिया इत्र, सुवास पकड़ ली, उस सुवास को लिख लिया।
इसलिए पुराण शाश्वत है। पुराण का मतलब यह नहीं कि जो पहले हुआ। पुराण
का मतलबः जो पहले हुआ, अभी भी हो रहा है, आगे भी होगा। इतिहास का मतलबः जो हुआ और चुक गया; अभी नहीं हो रहा वैसा, कुछ अन्य हो रहा है; आगे कुछ अन्य होगा। इतिहास गैर-जरूरी विस्तार है। पुराण आत्मा है, सार है।
लाओत्से कहता है, इस संसार में लूटपाट चल रही है, शोषण चल रहा है, हिंसा है, घृणा है, प्रतिस्पर्धा है। और कारण क्या है? कारण इतना है कि कोई भी साधारण होने को राजी नहीं।
इसे तुम ठीक से समझ लो। जो साधारण हो गया वह संन्यासी है। जो असाधारण होने की दौड़ में लगा है वह संसारी है। अगर तुम संन्यास से भी असाधारण होने की दौड़ में लगे हो, तुम संसारी हो।
एक युवक ने दो दिन पहले मुझे आकर कहा कि वह लंदन वापस जाता है तो मन नहीं लगता, यहां आने की इच्छा बनी रहती है। मैंने पूछा कि तू ठीक से सोच, क्या कारण होगा? क्योंकि लंदन और यहां में क्या है फर्क? ध्यान यहां करना है, ध्यान तुझे वहां करना; जीना यहां, श्वास यहां लेनी, श्वास वहां लेनी है। उसने कहा, यह बात नहीं है। वहां मैं एक साधारण सा मजदूर हूं; यहां मैं एक विशिष्ट संन्यासी हूं। तो वहां जाता हूं, एक साधारण आदमी हूं, एक मजदूर; यहां आता हूं तो हर आदमी देखता है कि पश्चिम से आया हुआ एक विशेष संन्यासी! यहां एक विशिष्टता है।
अगर ऐसे कारण से कोई संन्यासी है, संसारी है। क्योंकि संन्यास का अर्थ
ही इतना हैः साधारण हो जाना; ऐसे हो जाना कि तुम जैसे हो ही नहीं; जैसे तुम न होते तो कोई फर्क न पड़ता; जैसे तुम्हारे जाने से कोई कमी न होगी। जब कोई मर जाता है तो हम कहते हैं, यह कमी कभी न भरेगी, यह पूर्ति असंभव है अब इसको करना, यह जगह सदा खाली रहेगी। ये संसारियों के लक्षण हैं। तुम इस तरह जीना कि जब तुम हट जाओ तो किसी को पता ही न चले; जब तुम विदा हो जाओ, तुम्हारी कोई कमी किसी को मालूम न पड़े। क्योंकि जब तुम थे तब तुम्हारी मौजूदगी ही पता न चली तो अब तुम्हारी गैर-मौजूदगी कैसे पता चलेगी? न, तुम्हें कोई उल्लेख न करे, कोई तुम्हारी चर्चा न करे। कोई तुम्हारी बात न उठाए। तुम ऐसे भूल जाओ जैसे थे ही नहीं। तुम ऐसे खो जाओ जैसे भाप खो जाती है आकाश में; कहीं कोई पता नहीं चलता। ऐसे साधारण हो जाने का नाम संन्यास है।

और जब तक संसार संन्यास न बन जाए तब तक भ्रष्टाचार जारी रहेगा। अभी तो जिनको हम संन्यासी कहते हैं वे भी संसारी हैं। वे चाहे कितनी ही बात करते हों भ्रष्टाचार मिटाने की, इसकी उसकी, वे भी संसारी हैं। उनकी भी दौड़ वही है, जो संसारी की है। वे भी कुछ होने के पीछे पड़े हैं।
होने की कुछ जरूरत ही नहीं। क्योंकि तुम जो हो सकते थे वह तुम हो। तुम्हारी महिमा में एक कण भी जोड़ना आवश्यक नहीं है; क्योंकि तुम्हारी महिमा अनंत है। तुम्हारी ज्योति में अब और ज्योतियां जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि तुम महा ज्योति हो, तुम परमात्मा हो। यही अर्थ है अहं ब्रह्मास्मि का। यह उदघोष यह कह रहा है कि अब तुम्हें कुछ करना नहीं है। कभी कुछ करना नहीं था। तुम परम पहले से ही हो। तुम आखिरी हो। तुमसे ऊपर जाने का कोई उपाय भी नहीं है।
जब कोई साधारण हो जाता है तब श्वास-श्वास ऐसे आनंद से भर जाती है; संघर्ष खो जाता है, समर्पण फलित होता है, तब सारा जीवन एक ऐसे संतोष, एक ऐसी तृप्ति, एक ऐसी दीप्ति से भर जाता है कि उसी दीप्ति और तृप्ति में तुम पहचान पाते हो अपने भीतर के स्वभाव को, ताओ को।
अन्यथा तुम भ्रष्टाचार में ही जीओगे। और उस भ्रष्टाचार में तुम कुछ पाओगे न, सिर्फ अपने को खोओगे। खोने का रास्ता है पाने की दौड़; पाने का रास्ता है खोने की तैयारी।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
बानबेवां प्रवचन

संगठन, संप्रदाय, समृद्धि, समझ और सुरक्षा

पहला प्रश्नः आपने कल संप्रदायों को पगडंडी की संज्ञा दी और धर्म को राजपथ की। लेकिन प्रायः सभी संप्रदाय राजपथ से गुजरने वाले ज्ञानियों के पीछे निर्मित हुए। फिर इन परम ज्ञानियों ने इसकी चिंता क्यों नहीं की कि उनके पीछे संप्रदाय न बनें? और इसके निवारण के लिए आप क्या कर रहे हैं?

पहली बात कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति चिंता नहीं करते कि पीछे क्या होगा। पीछे की चिंता अज्ञानी करता है; ज्ञानी कोई चिंता ही नहीं करता। चिंता के विसर्जित हो जाने पर ही तो ज्ञान होता है। ज्ञानी सिर्फ जीता है। जो हो, हो। जो न हो, न हो।
ज्ञानी का जीवन कोई आयोजना नहीं है। ज्ञानी का जीवन एक सहज प्रवाह है। ज्ञानी तो ऐसे हो रहता है जैसे पौधे हैं, वृक्ष हैं, पहाड़ हैं। न आगा है कुछ, न पीछा है कुछ। न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। तो ज्ञानी तो परम निर्दोषता में जीता है; इसलिए चिंता कर भी नहीं सकता। और चिंता करे भी तो भी संप्रदाय बनने से रुक नहीं सकता। बिना चिंता किए हुए भी ज्ञानी इस ढंग से जीए हैं कि संप्रदाय न बने; फिर भी संप्रदाय बना है।
बुद्ध ऐसे ही जीए; नहीं कि चिंता की। क्योंकि चिंता ज्ञानी कर ही नहीं सकता। पर इस ढंग से जीए कि संप्रदाय निर्मित न हो। कहा कि कोई भगवान नहीं है, और कहा कि मुझे भी भगवान मत कहना। कहा कि पूजा का कोई उपाय नहीं है, मेरी भी पूजा मत करना। कहा कि प्रतिमा से कोई लाभ न होगा, और तुम मेरी प्रतिमा मत बनाना। लेकिन इससे कोई फर्क न पड़ा। इससे लोगों का प्रेम और भी उपजा। इसका उलटा ही परिणाम हुआ। जितनी प्रतिमा बुद्ध की बनीं उतनी कभी किसी की न बनी थीं। और बुद्ध को जितने लोगों ने भगवान कहा इतना किसी को भी कभी लोगों ने न कहा था। और बुद्ध की शरण जितने लोग गए, किसी की शरण नहीं गए।
संप्रदाय बनेगा ही। बनने का कारण ज्ञानी के जीवन और ढंग में नहीं है; बनने का कारण तो पीछे आने वाले अन्य अज्ञानियों के भीतर है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है। एक ही उपाय है कि कोई अज्ञानी न हो। वह तो कैसे किया जा सकता है? वह तो अज्ञानी की मर्जी पर निर्भर है कि कब वह ज्ञानी होगा। अज्ञानी तो पीछे आएगा ही। और अज्ञानी पूजा भी करेगा। और अज्ञानी मूर्ति भी बनाएगा।
इसलिए दूसरे ज्ञानी हैं जो इसको चुपचाप स्वीकार करके जीए। तो कृष्ण ने नहीं कहा कि मेरी मूर्ति बनाना या मत बनाना। कृष्ण ने नहीं कहा कि मेरी पूजा करना कि नहीं करना। जो करोगे वह तुम करोगे ही। कोई कहे कि करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कोई कहे कि न करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि तुम्हारे अज्ञान में जो हो सकता है वही होगा। ज्ञानी के कहने से तुम चलते नहीं हो; चलो तो तुम अज्ञानी न रह जाओ।
तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं है। तुम जैसे हो वैसे हो। जैसे हम पानी में सीधी लकड़ी को भी डालें तो वह तिरछी होकर दिखाई पड़ने लगती है। क्योंकि पानी का स्वभाव पानी का स्वभाव है। पानी में जैसे ही कोई किरण प्रवेश करती है प्रकाश की, वह तिरछी हो जाती है। लकड़ी को जब तुम देखते हो पानी में तो वह तिरछी दिखाई पड़ती है, क्योंकि प्रकाश की किरण के द्वारा ही देखी जा सकती है। सीधी लकड़ी पानी में तिरछी दिखाई पड़ती है।
राजपथ पर चलने वाले ज्ञानियों के पीछे पगडंडियां निर्मित होती हैं, क्योंकि अज्ञानी का मन और अज्ञानी के मन के नियम हैं। और दो ही उपाय हैं ज्ञानियों के लिए; दोनों उपाय किए जा चुके हैं।
एक उपाय है बुद्ध का जो कृष्णमूर्ति कर रहे हैंः मत करो पूजा, मत मानो गुरु, मत कहो भगवान। कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्णमूर्ति को मानने वाले भक्त हैं, जो उन्हीं को मानते हैं और किसी को नहीं मानते, और जो उनके शास्त्रों की पूजा करेंगे। जो अभी भी पूजा कर रहे हैं; और जिनके हृदय में संप्रदाय

पैदा हो ही चुका है। कृष्णमूर्ति के मरते ही संप्रदाय गठित हो जाएगा। एक उपाय यह है जो बुद्ध, कृष्णमूर्ति ने किया।
दूसरा उपाय कृष्ण का, महावीर का है; जो मैं कर रहा हूं। वह उपाय यह है कि
जब तुम बनाओगे ही संप्रदाय तो बेहतर है कि मैं खुद ही बना दूं। कम से कम तुम जैसा बनाओगे, उससे बेहतर मैं बना सकता हूं। और जब यह होने ही वाला हो तो बेहतर है कि इसे मैं अपने रहते ही तैयार कर दूं। तुम जैसा बनाओगे, उससे यह बेहतर होगा।
कृष्णमूर्ति का संप्रदाय तुम बनाओगे; मेरा संप्रदाय मैं बनाए देता हूं।
और तुम पक्का जानना कि कृष्णमूर्ति के पीछे जो संप्रदाय बनेगा वह ज्यादा खतरनाक होगा। होगा ही, क्योंकि कृष्णमूर्ति ने बनाने में कोई सहायता न दी। मेरे पीछे जो बनेगा, संप्रदाय तो जितना खतरनाक होता है उतना होगा, लेकिन कृष्णमूर्ति वाले संप्रदाय से कम खतरनाक होगा। क्योंकि मैंने तुम्हें साथ दिया। मैंने तुम्हें वस्त्र दिए, नाम दिए, संन्यास दिया। मैंने तुम्हें सब सुविधा दी है संप्रदाय के बना लेने की। क्योंकि मैं जानता हूं, जो होने ही वाला है वह होने ही वाला है। अच्छा यही होगा कि मैं साथ दे दूं। थोड़ा सुगढ़ होगा। थोड़ा ज्यादा दूरगामी होगा। राजपथ के थोड़ा करीब होगी पगडंडी। तुम जो बनाओगे वह बहुत दूर निकल जाएगी। राजपथ के सहारे ही बनेगी तो राजपथ के किनारे-किनारे ही होगी। उस पगडंडी से राजपथ पर आ जाना ज्यादा मुश्किल न होगा। जब भी तुम चाहोगे, एक छलांग, और तुम राजपथ पर आ जाओगे।
अगर तुम, मैं कहूं कि मत बनाओ संप्रदाय, फिर बनाओगे तो मेरे विपरीत बनाओगे, जैसा कि बुद्ध के विपरीत बना, जैसा कि कृष्णमूर्ति के विपरीत बन रहा है, बनेगा। जब तुम मेरे विपरीत बनाओगे तो राजपथ से बहुत दूर हट कर बनाओगे। बनाना ही पड़ेगा, क्योंकि मेरे विपरीत बनाओगे। राजपथ के पास मैं बनाने भी न दूंगा। तब उस पगडंडी से लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
और दो ही उपाय हैं। ज्ञानियों ने दोनों उपाय कर लिए हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने-अपने चुनाव की बात है। सवाल ज्ञानी की चिंता का नहीं है, सवाल तुम्हारी समझ का है। तुम्हारी समझ ही अंततः निर्णायक होगी। क्योंकि ज्ञानी तो जा चुकेगा; सिर्फ उसकी याद रह जाएगी तुम्हारे हृदय में गूंजती। उस याद का तुम क्या करोगे? उससे तुम संप्रदाय बनाओगे? या उस याद से तुम धर्म के राजपथ पर प्रवेश करोगे? वह याददाश्त तुम्हें पुकारेगी स्वभाव और धर्म की तरफ; या उस याददाश्त को तुम अपनी तिजोड़ी में छिपा कर पूजा करने लगोगे? वह याददाश्त पुकार बनेगी, आवाहन, प्यास; या वह याददाश्त एक खिलौना हो जाएगी और तुम उससे अपना मन बहलाओगे? यह तुम पर निर्भर है। ज्ञानी धर्म में जीता है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम धर्म में जीओगे या संप्रदाय में। यह तुम्हारा निर्णय है। और ज्ञानी क्या कर सकता है?
ज्ञानी के लिए दो विकल्प हैं। वे दोनों ही किए गए हैं।
मेरे अनुकूल यही है कि मैं तुम्हें सहायता दे दूं, ताकि तुम पास ही अपनी पगडंडी बनाओ। तुम्हारी पगडंडी और मुझमें ज्यादा फासला न हो। तो जब तुम जागो, या तुम्हें जरा होश आए, तो तुम छलांग ले सको, राजपथ पास ही हो।

दूसरा प्रश्न हैः आप कहते हैं कि आदमी की जरूरतें बहुत थोड़ी हैं। फिर आदमी यदि जरूरत भर ही पैदा करे तो सभ्यता का, समृद्धि का निर्माण असंभव हो जाएगा। और आप यह भी कहते हैं कि समृद्धि में ही धर्म का उदय होता है। फिर आदमी क्या करे?

निश्चित ही, समृद्धि में ही धर्म का उदय होता है। लेकिन जितनी तुम्हारी वासनाएं कम हों उतने ही जल्दी तुम समृद्ध हो जाते हो। जितनी वासनाएं ज्यादा हों उतनी ही देर लगती है समृद्ध होने में। अगर वासनाएं बहुत हों तो तुम समृद्ध कभी नहीं हो पाते। तो समृद्धि तुम्हारे धन से नहीं आंकी जाएगी। समृद्धि तो तुम्हारे धन और तुम्हारी वासनाओं के बीच का फासला है। जब फासला कम होता है तब तुम समृद्ध हो। अगर फासला बिल्कुल नहीं है तो

तुम सम्राट हो, शाहंशाह हो। अगर फासला बहुत बड़ा है तो तुम दरिद्र हो, भिखारी हो। समझो!
अगर तुम्हारी जरूरतें एक रुपए में पूरी हो जाती हैं, और तुम्हारे पास
दस रुपए हैं। दूसरा आदमी है जिसकी जरूरतें गैर-जरूरतों से जुड़ी हैं, सार असार से जुड़ा है; उसे दस अरब रुपए भी मिल जाएं तो भी पूरा नहीं हो सकता; और उसके पास पांच अरब रुपए हैं। पांच अरब रुपए हैं, दस अरब में भी वासनाएं पूरी न हों इतनी वासनाएं हैं। तुम्हारे पास दस रुपए हैं, एक रुपए में पूरी हो जाएं इतनी जरूरतें हैं। दोनों में कौन समृद्ध है? वह आदमी जिसके पास दस रुपए हैं, उस आदमी से ज्यादा समृद्ध है जिसके पास पांच अरब रुपए हैं। क्योंकि पांच अरब वाले के पास आधे हैं उसकी जरूरतों से, और इस आदमी के पास दस गुने हैं उसकी जरूरतों से। समृद्ध कौन है?
और निश्चित ही, मैं फिर कहता हूं, बार-बार कहता हूं कि समृद्ध ही धर्म में प्रवेश करेगा। लेकिन तुम समृद्धि का यह मतलब मत समझ लेना कि जब तुम सिकंदर हो जाओगे तब तुम धर्म में प्रवेश करोगे। तब तो तुम कभी प्रवेश करोगे ही नहीं। समृद्धि का अर्थ है कि तुम्हारी जरूरतें इतनी कम हों कि तुम जब भी, जैसे भी हो, वहीं पाओ कि समृद्ध हो। जब जरूरतें पूरी हो जाती हैं--थोड़ी हैं तो जल्दी पूरी हो जाती हैं, देर ही नहीं लगती, तुम पाते हो कि पूरी ही हैं--तब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा क्या करेगी? वही जीवन-ऊर्जा तो धर्म की यात्रा पर निकलती है। तुम्हारी जरूरतें पूरी हैं, अब तुम क्या करोगे? अब तुम्हारे होने में क्या होगा? तुम्हारा होना किस दिशा में बहेगा? संसार की जरूरतें तुम्हारी पूरी हो गईं, इतनी थोड़ी थीं कि पूरी हो गईं, अब तुम मुक्त हो उस दूसरे संसार की यात्रा के लिए, अब तुम्हें यहां रोकने को कोई भी नहीं है। अब इस किनारे पर तुम्हारी नाव बंधी रहे, इसकी कोई जरूरत नहीं। तुम तैयार हो दूसरे किनारे पर जाने को; नाव खोल सकते हो, खूंटियां छोड़ सकते हो, पाल फैला सकते हो। इस किनारे की जरूरतें पूरी हो चुकीं।
तो ध्यान रखना। यही तो मैं कहता हूं कि जो मैं कहता हूं तुम वही सुनोगे, इसमें संदेह है; जो मेरा अर्थ है तुम वही समझोगे, इसमें संदेह है। मैं निरंतर कहता हूं कि जब तक तुम समृद्ध न हो जाओगे तब तक तुम धार्मिक न हो सकोगे। और तुम जरूर अपने मन में यही अर्थ निकालते रहे, तभी तो यह प्रश्न उठा, कि पहले सिकंदर हो जाना है, सारी दुनिया को जीत लेना है, तब फिर धार्मिक होंगे। वह मैंने कहा नहीं; तुमने उलटा ही समझा। तुम समझे कि जरूरतों को बढ़ाते जाना है, समृद्ध होना है।
मैंने कहा है कि तुम जरूरतों को घटाते जाना, व्यर्थ को छोड़ देना। जो बिल्कुल जरूरी है वह बहुत थोड़ा है। बहुत थोड़े में आदमी की तृप्ति हो जाती है। तुम्हारी प्यास के लिए समुद्र की जरूरत नहीं है; छोटा सा झरना काफी है। और समुद्र से कभी किसी की तृप्ति हुई? वह दिखता ही बहुत बड़ा है; जाओगे तो पाओगे, वह तो प्यास बुझाता नहीं, प्यास को बढ़ाता है। धन से कभी किसी की तृप्ति हुई? धन समुद्र का खारा पानी है, जितना पीते हो उतनी प्यास बढ़ती है। क्योंकि नमक ही नमक है। उतना ही कंठ सूखता है। आदमी मर जाए भला समुद्र का पानी पीकर, जी नहीं सकता। पानी पीना हो तो छोटा सा कुआं, जो तुम अपने आंगन में खोद ले सकते हो, जिसके लिए तुम्हारा आंगन भी काफी बड़ा है, छोटा सा झरना, छोटी सी झिर जिससे चुल्लू भर पानी वक्त पर निकल आए, उतना काफी है।
तब तुम कैसे दरिद्र रह पाओगे, अगर तुम थोड़े से राजी हुए?
और जब मैं कहता हूं, थोड़े से राजी हुए, तो तुम यह मतलब मत समझना कि मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम अपनी जरूरतों को दबाना, कि भूखे सो रहना, कि नंगे घूमना। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारी जरूरतें ही समझ लेना ठीक से, कौन सी जरूरतें हैं, उनको पूरा करना। गैर-जरूरी जरूरतों को बीच में मत आने देना, क्योंकि उनका कोई अंत नहीं है। शरीर की सुनना, मन की मत सुनना। और सभी धर्मों ने तुम्हें कुछ उलटा ही सिखाया है। वे कहते हैं, मन की सुनना, शरीर की भर मत सुनना। और शरीर बिल्कुल थोड़े में तृप्त हो जाता है। मन ही अतृप्त है। कितना करोगे भोजन? कितना पानी पीओगे? शरीर के लिए चाहिए क्या?

इसीलिए तो तुम देखते हो कि शरीर में जीने वाले पशु-पक्षी इतने प्रसन्न हैं, क्योंकि जरूरत बिल्कुल थोड़ी है। आदमी भर अप्रसन्न है। क्योंकि आदमी की जरूरत मन की जरूरत है। मन का कोई अंत नहीं है। वह कामना किए जाता है। वह वासना को बढ़ाए चला जाता है। तुम जहां भी पहुंचो वह वहीं कहता है कि यह मंजिल नहीं, मंजिल अभी दूर है। अभी पहुंचे कहां? थोड़ा और दौड़ो। तुम दौड़ते-दौड़ते मर जाते हो, तृप्ति हाथ नहीं लगती।
तो यह तो पहली बात समझ लो कि समृद्ध वही है जो अपनी जरूरतों को जरूरत समझता है और गैर-जरूरतों को गैर-जरूरत समझता है, जो अपनी आधार की जरूरतों को भर लेता है, और जो व्यर्थ की बातों को जो सिर्फ दिखावा है... । सोने-चांदी से न तो प्यास बुझती है, हीरे-जवाहरातों से न तो भूख मरती है। तुम ही मर जाओ उनमें दबकर, लेकिन भूख नहीं मर सकती उनसे। जिसने यह ठीक से समझ लिया कि व्यर्थ के विस्तार को छोड़ देना है, जो आवश्यक है वह शरीर को दे देना है, उसके जीवन में परम तृप्ति का स्वाद आता है। वही तृप्ति समृद्धि है, उसी समृद्धि के बाद धर्म की कोई संभावना है। नहीं तो नहीं।
और आप पूछते हैं कि क्या होगा फिर सभ्यता का, समृद्धि का?
असली सभ्यता की सुविधा बनेगी। असली समृद्धि आएगी; असली संस्कृति आएगी। अभी तो सब नकली है। क्योंकि नकली आदमी की आकांक्षा है। उसी पर सारा फैलाव है। तुम दौड़ रहे हो। बहुत कुछ होता हुआ दिखाई पड़ता है। बड़ा विराट उपक्रम है। सभी लोग काम में लगे हैं। लेकिन क्या पैदा कर रहे हैं?
मैं हिसाब देखता था। अमरीका में पचास प्रतिशत श्रम व्यर्थ की चीजों को पैदा करने में लगाया जा रहा है, जिनकी कोई जरूरत ही नहीं। स्त्रियों के साज-शृंगार का सामान! उसकी बिल्कुल भी जरूरत नहीं है। उससे स्त्रियां सुंदर नहीं होतीं, बल्कि उनका जो सहज सौंदर्य है वह भी खो जाता है, उनका जो लावण्य है वह भी खो जाता है।
ओंठों पर लिपिस्टिक लगाई हुई स्त्री का चेहरा तुम सुंदर समझते हो?
तो तुम्हारी सुंदर की परिभाषा में कहीं कोई भ्रांति है। जिस ओंठ पर लिपिस्टिक लगा है वह खबर दे रहा है कि ओंठ की अपनी लाली खो गई है, ओंठ बीमार है; अब उसको ऊपर की पालिश से छिपाना पड़ रहा है। ओंठ जब सुंदर होता है खून की गति से तब उसकी बात और है। ऊपर के रंग-रोगन से जब ओंठ लाल दिखाई पड़ता है तब तुम मूढ़ हो, अगर तुम उसे सुंदर समझ रहे हो। वह तो घोषणा है इस बात की कि ओंठ का अपना लावण्य खो गया है, अब ओंठ का अपना सौंदर्य नहीं है, यह छिपावा है। जब कोई व्यक्ति सुंदर होता है तो आभूषण की कोई जरूरत नहीं रह जाती, तब ऊपर से रंग-रोगन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। पक्षी हैं, पौधे हैं, पशु हैं, बिना रंग-रोगन के कितने सुंदर हैं! आदमी को क्या जरूरत है? आदमी ने सभी वास्तविकता खो दी है। सब धोखा है। और अदभुत हो तुम कि इसको तुम सौंदर्य भी मान लेते हो। स्वास्थ्य सौंदर्य हो सकता है, ऊपर से पोती गई कृत्रिम प्रसाधन की सामग्री सौंदर्य नहीं हो सकती।
जब कोई व्यक्ति ठीक-ठीक सुंदर होता है, शांत होता है, प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है, तो उसकी देह से एक गंध आती है जो गंध बड़ी सोंधी है। जैसे कि जब पहली वर्षा होती है और पृथ्वी से गंध उठती है, क्योंकि पृथ्वी प्रसन्न होती है, तृप्त होती है, प्यास बुझती है; वैसी ही गंध शरीर से भी उठती है, जब कोई व्यक्ति तृप्त होता है, शांत होता है। वैसी गंध को तुम खो चुके हो। वह नहीं उठती। शरीर से दुर्गंध उठती है। तो उसे छिपाने के लिए तुम्हें फिर बाजार से खरीदी हुई सुगंधों का उपयोग करना पड़ता है। वे सुगंधें केवल इतनी ही खबर देती हैं कि तुम्हारा शरीर दुर्गंध से भरा होगा। अन्यथा छिपाते क्यों? अन्यथा दबाते क्यों?
तुम जितना उपाय करते हो, वह सब प्रवंचना है। और यह सारी दौड़-धूप जो इतनी दिखाई पड़ती है सारे संसार में चलती हुई कि बड़ा काम हो रहा है, बड़ी समृद्धि हो रही है, बड़ा विकास हो रहा है, कुछ भी नहीं हो रहा। इसमें से पचास प्रतिशत तो बिल्कुल व्यर्थ है। शेष पचास प्रतिशत में चालीस प्रतिशत ऐसा है जो कि युद्ध, संघर्ष, कलह की तैयारी में जा रहा है। पचास प्रतिशत प्रसाधन के साधन हैं कि खो गया सौंदर्य कैसे बचाया जाए या कैसे दिखाया जाए कि नहीं खो गया है, कैसे आदमी को अभिनेता बनाया जाए--धोखा, प्रवंचना। बाकी चालीस प्रतिशत

युद्ध के लिए है। पचास प्रतिशत खो गए जीवन के सौंदर्य को धोखा देने के लिए; और चालीस प्रतिशत जीवन को अंत करने के लिए कि जो थोड़ा-बहुत जीवन बचा है उस पर हाइड्रोजन बम और एटम बम कैसे गिराया जाए। यह नब्बे प्रतिशत मनुष्य की सभ्यता है। बाकी दस प्रतिशत बचता है। उस दस प्रतिशत में आधी दुनिया भूखी है। एक जून रोटी लोगों को नहीं है, छप्पर नहीं है, औषधि नहीं है। और जीवन कीड़े-मकोड़ों जैसा है। यह हमारी सभ्यता है।
अगर हम जीवन की जरूरतों को ही पूरा करने में लगें--जैसा लाओत्से चाहता है, जैसा मैं चाहूंगा--तो न तो झूठे सौंदर्य के प्रसाधन, झूठी प्रतिष्ठा के उपाय, झूठी महत्वाकांक्षा की तृप्ति में पचास प्रतिशत श्रम का अंत होगा। और उसी प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता से पैदा होता है युद्ध जिसमें चालीस प्रतिशत शक्ति व्यय हो रही है। अगर यह पूरी नब्बे प्रतिशत शक्ति जीवन की जरूरतों को पूरा करने में लगाई जाए तो जरूरतें पूरी हो जाएंगी और इतनी विराट ऊर्जा बचेगी मनुष्य के पास कि उसी विराट ऊर्जा से संस्कृति का निर्माण होगा।
लेकिन वह संस्कृति बड़ी भिन्न होगी। वह ऊर्जा प्रार्थना में लगेगी। वह ऊर्जा ध्यान में लगेगी। वही ऊर्जा संगीत बनेगी। वह ऊर्जा सृजनात्मक गतिविधियों में लीन होगी। और जब भी तुम कुछ बना लेते हो, एक छोटी मूर्ति, एक छोटा चित्र, एक नया गीत, एक नई धुन निकाल लेते हो, और जब यह धुन तुम्हारे भीतर की तृप्ति से निकलती है, तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति है साहित्य, संस्कृति है कला, संस्कृति है सत्य की खोज। संस्कृति है एक प्रेम के समाज का निर्माण; एक शांत, आनंदित, प्रफुल्लित समाधि की ओर उत्सुक समाज का जन्म।
लेकिन ऊर्जा हो तभी। अभी तो ऊर्जा बचती नहीं। अभी तो तुम व्यर्थ के गोरखधंधे में समय व्यतीत कर देते हो। थके-हारे रात तुम लौटते हो, किसी तरह सो भी नहीं पाते रात भर; क्योंकि दिन में जो तुमने चिंताएं समाई हैं, इकट्ठी की हैं, वे रात भर तुम्हारा पीछा करती हैं। तो रात बन जाती है दुख-स्वप्न। दिन है एक व्यर्थ की दौड़-धूप। ऐसे ही तुम चुक जाते हो। एक दिन पाते होः जीवन समाप्त हो गया, मौत द्वार पर खड़ी है। इसे तुम संस्कृति कहते हो? इसे तुम सभ्यता कहते हो?
न तो यह सभ्यता है, न यह संस्कृति है। क्योंकि न तो इसमें प्रेम है, न इसमें प्रार्थना है, न इसमें पूजा-अर्चना है, न इसमें समाधि का सौरभ है, न इसमें ध्यान की गरिमा है। इसमें भीतर की कुलीनता नहीं। इसमें सब बाहर का दिखावा है, दरबार का चाकचिक्य है। और खेत-खलिहान सूखे पड़े हैं। और दरबार में बड़ी रोशनी है। लोग तलवारें लिए खड़े हैं, चोगे पहने हैं कीमती। सम्राट हीरे-जवाहरातों से जड़े सिंहासन पर बैठा है। वे ज्यादा खा-पीकर अघा गए हैं और रुग्ण हैं। और इधर खेत-खलिहान खाली पड़े हैं। और आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं हो रही हैं।
कुछ हैं जो ज्यादा खाकर बीमार हैं; कुछ हैं जो भूख की वजह से बीमार हैं। सारी दुनिया बीमार है। कुछ इसलिए बीमार हैं कि जीवन को सम्हालने के उपाय नहीं; कुछ इसलिए बीमार हैं कि उनके पास इतना ज्यादा है कि वे जानते नहीं करें क्या, वे उस ज्यादा से दबे जा रहे हैं। इसे तुम सभ्यता कहते हो? इससे ज्यादा और बर्बरता क्या होगी? यह एक असभ्य स्थिति है। और इसमें कैसे संस्कृति का जन्म होगा? इससे जो भी निर्मित होता है उसमें भी बर्बरता होती है। फर्क तुम देखोगे।
पुराना संगीत है--पूरब का या पश्चिम का। बीथोवन है या मोझर्ट है। तो उस संगीत की बात ही और है। उस संगीत में एक शांति है; तुम सुनोगे तो शांत हो जाओगे, तुम सुनोगे तो तृप्त हो जाओगे। फिर आज का नया संगीत है; नए युवक-युवतियां जो संगीत पश्चिम में पैदा कर रहे हैं। जो संगीत एक उपद्रव है और एक अराजकता जैसा मालूम होता है, जिसे सुन कर तुम्हारे भीतर भी अराजकता पैदा होती है, तुम भी हिंसात्मक हो उठते हो या कामातुर हो उठते हो।
पुराने चित्र हैं। अजंता हैं, एलोरा हैं, ताजमहल है। किसी एक और ढंग की चित्त-दशा से पैदा हुए। ताजमहल को तुम अगर अशांत होकर भी देखते रहो थोड़ी देर तो तुम पाओगे, भीतर सब शांत होने लगा। फिर आधुनिक चित्रकला है। पिकासो

है। चित्र को अगर तुम थोड़ी देर देखो तो तुम्हें लगेगा कि तुम भीतर पागल हुए जा रहे हो। चित्र को ज्यादा देर देखा नहीं जा सकता; आंख गड़ा कर देखोगे, मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि चित्र में सिर्फ बेचैनी है, विक्षिप्तता है, तनाव है, अशांति है, संताप है।
जब सभ्यता रुग्ण होती है तो संस्कृति भी रुग्ण हो जाती है। क्योंकि संस्कृति तो सौरभ है। जब फूल बीमार होता है तो उसकी सुगंध में सुगंध नहीं होती, दुर्गंध हो जाती है। सभ्यता फूल है; संस्कृति उसकी सुवास है। लेकिन जब फूल ही सड़ा हो तो फिर सुवास कहां? इसलिए सब दिशाओं में संस्कृति भी रुग्ण हो गई है।
नहीं, संस्कृति तो तभी पैदा होगी जब लोग इतने तृप्त होंगे और लोगों के पास इतना जीवन बचेगा। जो बचता है अभी, युद्ध में खो जाता है। युद्ध कोई संस्कृति है? युद्ध तो एक भयानक रोग है, और खबर देता है कि हमारे भीतर कितने नासूर होंगे। रोग तो कैंसर है समाज के भीतर लगा हुआ।
लेकिन रोग को हम पहले पालते-पोसते हैं। अगर तुम दुनिया भर की सरकारों
के बजट देखो तो पचास से साठ प्रतिशत उनका बजट युद्ध की तैयारी में जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। ये सरकारें जीवन को सम्हालने को हैं या मौत लाने को? इनका प्रयोजन क्या है? ये साठ प्रतिशत मुल्क की धन-संपदा को युद्ध में लगा रहे हैं। जीवन के लिए तो कुछ बचता ही नहीं। जैसे मरने का आयोजन करने के लिए हमने इन सरकारों को बनाया हो। यह किस भांति का जीवन है, जहां मरने की तैयारी इतनी प्रगाढ़ता से चलती है; मारने और मरने के सिवाय कोई दूसरी महत्वपूर्ण बात नहीं दिखाई पड़ती।
अगर लाओत्से की हम सुनें, संतों को हम समझें, तो एक दूसरी ही तरह की जीने की व्यवस्था पैदा होगी। उस जीवन-व्यवस्था का मूल आधार यह होगा कि तुम्हारी जरूरतें जरूर पूरी होनी चाहिए। लेकिन जरूरतें तो बहुत कम में पूरी हो जाती हैं। असली काम गैर-जरूरतों को छांटना है, जरूरतों से अलग करना है। घास-फूस को अलग करो। तुम्हारी बगिया में बहुत ज्यादा घास-फूस है, उसमें गुलाब पैदा नहीं हो सकते। वह घास-फूस ही सब पृथ्वी की शक्ति को खा जाता है। उसे अलग करो, अगर तुम चाहते हो कि फूल खिलें। फूल तो बड़े कम में खिल सकते हैं, लेकिन उतना भी तो बचता नहीं।
समृद्ध है वह व्यक्ति जिसकी जरूरतें इतनी कम हैं कि अल्प में पूरी हो जाती हैं, और जिसका पूरा जीवन शेष रह जाता है, पूरी ऊर्जा बच जाती है। उस ऊर्जा को वह सृजन में, संगीत में, समाधि में संलग्न कर सकता है। वही ऊर्जा उसे परमात्मा तक ले जाएगी।
समृद्ध ही धार्मिक हो सकता है। लेकिन समृद्धि का तुम ठीक से अर्थ समझ लेना।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि भगवान सदा सबको जरूरत से ज्यादा ही देता है
और यह कि उसकी स्वीकृति ही संन्यास है। तब प्रश्न उठता है कि वही भगवान हमारे भीतर इच्छाओं और वासनाओं का एक समुद्र ही क्यों भर देता है, जिसके चलते कि जीवन सब गुड़-गोबर हो जाता है?

वासना जरा भी बुरी नहीं; वासना से कुछ भी नहीं बिगड़ रहा है। वासना तो तुम्हारे जीवन को प्रौढ़ता देने की एक विधि है। वह तो विद्यापीठ है जहां तुम सीखते हो, जहां तुम बढ़ते हो, जहां तुम्हारी चेतना सुदृढ़ होती है, सुकेंद्रित होती है, क्रिस्टलाइज होती है। बिना वासना के तो तुम अबोध रह जाओगे। वासना से गुजर कर ही तुम बोध को उपलब्ध होओगे। वासना तो ऐसे है जैसे आग है। और सोना आग से गुजरे तो ही निखरता है और शुद्ध होता है।
वासना को तुम बुरा मत समझना। वासना को बुरा समझा तो तुम अड़चन में पड़ जाओगे। वासना को जीना, समझपूर्वक जीना, वासना से गुजरना। क्योंकि परमात्मा की यही मर्जी है कि तुम वहां से गुजरो। तुम आग को देख कर भाग मत खड़े होना जैसा कि बहुत लोग भाग खड़े होते हैं। दो तरह के लोग हैं साधारणतः। और परमात्मा की मर्जी है कि तुम तीसरे तरह के व्यक्ति बनो।

एक, जो आग को ही जीवन समझ लेता है, जैसे सोना आग में ही पड़ा रहे। सोने को डालना जरूरी है, निकालना भी जरूरी है। डालना आधा हिस्सा है। और जब कचरा जल जाए सोने का तो उसे खींच लेना जरूरी है।
तो एक तो ऐसा व्यक्ति है जो कि समझता है कि आग ही जीवन है। उसने डाल दिया सोने को, फिर निकालने की बात ही भूल जाता है। उसका सोना जलेगा, शुद्ध भी होगा, और फिर अशुद्ध हो जाएगा। क्योंकि राख मिल जाएगी अब, कूड़ा-कर्कट फिर वापस मिल जाएगा। शुद्ध होने के बाद एक क्षण भी वासना के भीतर रहना फिर अशुद्ध हो जाना है।
दूसरे तरह का आदमी, यह देख कर कि कुछ लोग आग में पड़े-पड़े राख, कचरे-कूड़े
से भर गए हैं, भाग खड़ा होता है आग से--हिमालय चला जाता है, संन्यास ले लेता है, साधु-मुनि बन जाता है। वह भाग खड़ा हुआ, आग से डर गया। यह भी कचरे से भरा रह जाएगा। क्योंकि आग कचरा जलाने को थी। और यह कभी प्रौढ़ न हो पाएगा। जो लोग भाग गए हैं जीवन से, अगर तुम उन्हें ठीक से निरीक्षण करोगे तो तुम पाओगे, उनमें कुछ कमी रह जाती है। तुम अपने साधु-संन्यासियों को, जो कि वस्तुतः भाग गए हैं, हमेशा पाओगे, उनमें थोड़ा सा बचकानापन रह जाता है। जीवन उन्हें तपा नहीं पाया; वे बड़ी छोटी स्थिति में रह जाते हैं।
एक जैन मुनि मेरे पास मेहमान थे। जब मुझसे निकटता उनकी बढ़ गई और आत्मीय हुए तो उन्होंने कहा कि एक दफा मुझे सिनेमा देखना है। क्योंकि मैं नौ साल का था, तब संन्यासी हो गया। मेरे पिता जैन संन्यासी थे। मां मेरी मर गई थी; पिता ने संन्यास लिया। मेरे लिए कोई उपाय न था तो पिता ने मुझे भी दीक्षा दिलवा दी।
नौ साल का बच्चा जब संन्यासी हो जाए! और जैन संन्यासी! क्योंकि जैन संन्यास का मतलब है कि जीवन से बड़ी गहरी खाई खोद ली, दीवार खड़ी कर ली। हिंदू संन्यासी को तो थोड़े उपाय भी हैं कि कहीं भी जाकर सिनेमा देख ले, जैन संन्यासी को कोई उपाय नहीं। क्योंकि समाज चौबीस घंटे पीछे रहता है और जांच रखता है--कहां जाते, कहां उठते, क्या करते, कैसे बैठते, कब सोते।
तो नौ साल का बच्चा, उसके मन में नौ साल की अवस्था अटकी रह गई। तो वे मुझसे बोले कि मुझे बड़ी जिज्ञासा होती है कि क्या होता होगा अंदर! बाहर से मैं निकलता हूं भीड़ लगी देखता हूं, कि वहां भीड़ लगी है, क्यू लगा है, जरूर अंदर कुछ... । और अंदर क्या हो रहा है, यह मुझे पता नहीं। अब यह एक छोटे बच्चे की दशा है। इसमें कुछ भी बुरा नहीं है। लेकिन यह आदमी अगर अपने भक्तों से कहेगा कि मुझे सिनेमा देखना है तो वे कहेंगे, तुम क्या कह रहे हो? जैन मुनि होकर और सिनेमा?
तो मैंने कहा कि ठीक, मैं तुम्हें सिनेमा भिजवा देता हूं। इसमें कोई हर्जा नहीं है, एक दफे देख कर झंझट खतम करो। एक मित्र को मैंने कहा कि इन्हें ले जाओ।
मित्र भी जैन थे। उन्होंने कहा, आप भी क्या कहते हैं? हमको भी फंसाएंगे इनके साथ! पर वे समझदार थे, कहा कि मैं समझता हूं बात, अगर उनकी ऐसी जिज्ञासा है तो देखने में कुछ हर्जा नहीं है; एक बार देख कर छुटकारा हो जाएगा। तो उन्होंने कहा कि मैं ले जा सकता हूं, लेकिन कैनटोनमेंट एरिया में ले जाऊंगा। क्योंकि वहां मुझे कोई जानता-वानता नहीं।
पर वहां अंग्रेजी फिल्म चलती है। जैन मुनि अंग्रेजी भी नहीं जानता। तो
वह जैन मुनि ने कहा कि कोई हर्जा नहीं; कम से कम देख तो लेंगे। अंग्रेजी हो कि हिंदी हो, इससे कोई बड़ा सवाल नहीं है; देख तो लेंगे। तो वे उन्हें छिपा कर किसी तरह सिनेमा दिखा लाए।
वे जैन मुनि लौट कर मुझसे बोले कि मेरा मन ऐसा हलका हो गया है जैसे कि भार उतर गया है, कि कुछ भी नहीं है। पर लोगों की कतार लगी बाहर ही देखता था-- भीतर क्या हो रहा होगा? जरूर कुछ महत्वपूर्ण हो रहा होगा, रसपूर्ण हो रहा होगा। नहीं तो ये इतने लोग क्यों दीवाने हैं! यह मैं किसी से कह भी नहीं सकता था।
जब सिनेमा के संबंध में ऐसी हालत होगी तो तुम सोच सकते हो, और संबंधों में कैसी हालत होगी। नौ साल का बच्चा अगर संन्यासी हो गया हो, संसार छोड़ कर हट गया हो, तो जरूर सोचता होगा कि क्यों हर आदमी स्त्री के प्रेम में पड़ता

है? क्या होता होगा? और उसके भीतर भी कामवासना की ऊर्जा है, जो उसकी छाती में धक्के मारती रहेगी। क्योंकि उसका शरीर भी वैसे ही निर्मित हुआ है, जैसे और सब शरीर हैं। उसके शरीर में भी वैसे ही काम-ऊर्जा बनती है रोज, जैसे सबके शरीरों में बनती है। वह विक्षिप्त होगा, वह भीतर ही भीतर परेशान होगा। लेकिन वह किसी से कह भी नहीं सकता। और जितना परेशान होगा उतना ही सुबह अपने प्रवचन में मंदिर में ब्रह्मचर्य का समर्थन करेगा। यह वीसियस सर्किल है, यह उसमें दुष्ट-चक्र है। वह उतना ही कामवासना की निंदा करेगा। क्योंकि उसको लगेगा, यह कामवासना मुझे डांवाडोल कर रही है, डिगा रही है।
जब मैं संभोग से समाधि पर बोला तो सारे मुल्क में भगोड़ों ने उसका विरोध किया। जैन मुनि उसमें सबसे ज्यादा आगे थे कि यह मैं क्या कह रहा हूं कि संभोग से समाधि! लेकिन ऐसा एक जैन मुनि नहीं है जिसने वह किताब चोरी से न पढ़ी हो। और वह किताब सबसे ज्यादा बिकी; उसके बहुत संस्करण हुए। और जो थोड़े ईमानदार थे उन्होंने मुझे पत्र भी लिखे, जैन मुनियों ने भी पत्र लिखे, कि आप किसी को कहना मत, लेकिन इससे हमारे मन को बड़ा साफ रास्ता हुआ, हम हलके हुए। मगर किसी को कहना मत। दस्तखत भी नहीं किए कि कहीं किसी की पकड़ में आ जाए पत्र।
जो आदमी भाग जाएगा आग में उतरने से वह भी वंचित रह जाएगा; जो आग में ही पड़ा रहेगा वह भी वंचित रह गया। आग में जाना जरूरी है और निकलना जरूरी है। तब तुम आग का पूरा लाभ ले पाओगे।
वासनाएं अग्नि की तरह हैं; वे तुम्हें निखारने के लिए हैं। उनसे गुजर
कर तुम कुंदन बनोगे। स्वच्छ होगा तुम्हारा स्वर्ण; तुम शुद्ध होओगे। कोई वासना बुरी नहीं है। भागे, तो मुश्किल में पड़ोगे; अटक गए, तो मुश्किल में पड़ोगे। बिना अटके गए और निकल आए, वही तो कला है। काजल की कोठरी में जाना जरूरी है, लेकिन काजल की कोठरी में रह जाना आवश्यक नहीं है।
और काजल की कोठरी से अगर तुम अपने को बचा कर निकल आए, बिना कालिख लगाए निकल आए, अगर तुम कह सके कबीर की भांति कि ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी।
कबीर तो गृहस्थ हैं। पत्नी है, बच्चा है; फिर भी कह रहे हैं, खूब जतन से ओढ़ी।
क्या मतलब है? कबीर कोई भगोड़े नहीं हैं। भगोड़ा तो चादर छोड़ कर ही भाग गया, उसने तो ओढ़ी ही नहीं। और कबीर कोई भोगी भी नहीं हैं कि चादर ओढ़े ही पड़े रहे जब तक कि चादर कफन न बन जाए। कबीर ने ओढ़ी भी, जतन से ओढ़ी, सम्हाल कर रख दी। और कहते हैं, परमात्मा को वैसी की वैसी वापस लौटा दी जैसी उसने दी थी; जरा भी मैली न होने दी।
तुम्हारी देह तुम्हारी चादर है; उसे जतन से ओढ़ना। तुम्हारी वासनाएं तुम्हारी चादर हैं; उन्हें जतन से ओढ़ना। और परमात्मा का दान उनमें भी देखना। क्योंकि उनके बिना तुम कभी भी निखार को उपलब्ध न हो सकोगे। तुम्हें गलत से गुजरना ही पड़ेगा, ताकि तुम अपने ठीक को ठीक से पहचान पाओ। गलत पृष्ठभूमि है, काला ब्लैकबोर्ड है, जिसमें हम सफेद रेखा खींचते हैं। तुम्हारी वासना काला ब्लैकबोर्ड है। उस पर ही तुम्हारी आत्मा की सफेद लकीर खिंचेगी। तुम ब्लैकबोर्ड के दुश्मन मत हो जाना, नहीं तो तुम सफेद लकीर कभी खींच ही न पाओगे।
वासना और आत्मा एक कंट्रास्ट है, एक विपरीतता है। तुम वासना को पृष्ठभूमि बनाओ और आत्मा को तुम बनाओ सफेद लकीर। फिर तुम धन्यवाद दे पाओगे परमात्मा को; फिर तुम यह न कहोगे कि इतनी वासनाएं हमें क्यों दीं। तब तुम यह कहोगे कि तेरी बड़ी कृपा है कि तूने वासनाएं दीं, अन्यथा हम इस आत्मा को कैसे पहचानते? तूने यह जो काली रात दे दी, बड़ी तेरी कृपा है, क्योंकि बिना काली रात के ये आत्मा के तारे कैसे चमकते? हम इनको कैसे पहचानते? दिन में तो इनका पता ही नहीं चलता।
अगर परमात्मा तुम्हें शुद्ध ही बना दे तो तुम्हें शुद्धि का कोई अनुभव
न होगा। शुद्धि होगी, लेकिन तुम अनुभव से वंचित रह जाओगे। इसलिए परमात्मा तुम्हें शुद्ध भी बनाता है और तुम्हें अशुद्धि का अवसर भी देता है। उस अवसर से अगर तुम सम्हल कर गुजरे--सम्हल कर गुजरना ही संतत्व है; सम्हल कर गुजरना

संन्यास है। भाग जाना संन्यास नहीं है, भोग संन्यास नहीं है, सम्हल कर गुजरना संन्यास है। भोग में योग को साध लेना संन्यास है। संसार में वीतरागता को बना लेना संन्यास है। ऐसे रहो संसार में कि संसार तुम्हारे भीतर न रहे। बस फिर तुम सम्हाल कर जतन से ओढ़ लोगे चादर को, लौटा दोगे धन्यवाद सहित।
और अगर तुम जीवन को लौटाते वक्त परमात्मा को धन्यवाद न दे सके तो फिर-फिर आना पड़ेगा। क्योंकि तुम प्रौढ़ न हो पाए, तुम अधकच्चे रहे। और अधकच्चा स्वीकार नहीं किया जा सकता। तुम पक जाओ, तभी तुम स्वीकार होओगे।
तुम्हारा नैवेद्य तभी परमात्मा के चरणों में स्वीकार होगा, तभी तुम उसके हृदय के हिस्से बन सकोगे, जब तुम धन्यवाद देकर विदा होओगे, जब तुम मरते क्षण कह सकोगे, तेरी बड़ी अनुकंपा कि तूने शुद्धि की इतनी बड़ी संभावना दी और अशुद्धि का इतना बड़ा अवसर दिया।

चौथा प्रश्नः माना जाता है कि मनुष्य विकास का श्रेष्ठतम बिंदु है और मनुष्य ही विकसित होकर भगवान हो जाता है। तब ताओ में प्रवेश आगे का विकास है या पीछे लौटना है?

दोनों। पीछे लौटना ही आगे का विकास है। पीछे जाना ही आगे जाना है। क्योंकि पीछे मूल स्रोत है। जहां से तुम आए हो, वही पहुंच जाना अंतिम लक्ष्य है। क्योंकि मूल उदगम ही आखिरी मंजिल है। तुम वर्तुल बन जाओगे, तभी तुम पूर्ण होओगे। तुम एक वर्तुल खींचते हो; तो जहां से तुम शुरू करते हो, जिस बिंदु से वर्तुल को, वहीं वर्तुल वापस लौट जाता है। और वर्तुल इस जगत में पूर्णता का चिह्न है। इसलिए तो हमने वर्तुल को शून्य का भी चिह्न बनाया है। शून्य और पूर्ण एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं। तुम्हें वहीं लौट जाना है जहां से तुम आए हो। और ध्यान रखना, जब तुम लौटोगे तो तुम वही न रहोगे जैसे कि तुम तब थे जब आए। क्योंकि यह सारी यात्रा, यह यात्रा-पथ तुम्हें प्रौढ़ कर देगा, तुम्हें जगा देगा, होश से भर देगा।
संसार से गुजरना है, और पहुंच जाना है वापस मूल स्रोत पर। इसलिए तो कहते हैं कि जब कोई दुबारा बच्चा हो जाता है फिर से बुढ़ापे में, जब कभी बूढ़ा फिर बालक जैसा हो जाता है, तो संतत्व का उदय हुआ। फिर से वर्तुल पूरा हो गया। अगर तुम बुढ़ापे तक चालाक रहे, जैसा कि अक्सर होता है, तो वर्तुल पूरा नहीं हुआ। तुम फिर-फिर फेंके जाओगे, तुम स्वीकार नहीं किए जा सकते। तुम अभी योग्य नहीं हुए। तुम आधे हो। जब कोई बुढ़ापा आते-आते फिर इतना ही सरल हो जाता है जैसे छोटा बच्चा; इसी को हम संतत्व कहते हैं। इसी को लाओत्से परम उपलब्धि कहता है। बच्चे के पास सब है, सिर्फ होश नहीं है। होश अनुभव से आएगा। अगर तुम फिर से होशपूर्वक बालक हो गए तो सब पा लिया।
तो पीछे लौटना है, वही आगे जाना है; मूल को पाना है, क्योंकि वही अंत है। स्वभाव को उपलब्ध करना है। स्वभाव था ही तुम्हारे पास, लेकिन तब तुम होशपूर्ण न थे। होशपूर्वक पुनः स्वभाव को उपलब्ध कर लेना है। कहावत है कि जब कोई व्यक्ति दूसरे मुल्कों में जाता है और वापस लौटता है अपने देश, तभी अपने देश को ठीक से समझ पाता है। क्योंकि पहले अपना ही देश था, तौलने का कोई उपाय न था; ठीक है कि गलत, अच्छा है कि बुरा, सुंदर है कि कुरूप, नैतिक कि अनैतिक; कुछ भी पता नहीं चलता था। क्योंकि तुलना ही न थी। जब कोई व्यक्ति अनेक देशों में भटकता है--यात्रा का वही तो फायदा है--और फिर घर वापस लौटता है, तभी अपने देश को ठीक से पहचान पाता है।
ठीक यही यात्रा संसार है। इसीलिए तो हम उसे आवागमन कहते हैं। वह यात्रा है। और जब तुम अपने देश वापस लौटोगे... । जैसे मानसरोवर से हंस आता है; भटकता है अनेक-अनेक स्थानों में, और अनेक स्थानों में भटक-भटक कर उसे याद आनी शुरू होती है मानसरोवर की, घर की याद आती है; और जब वापस मानसरोवर पहुंचता है, तो तुम जानते हो उसका आनंद! इतनी अशुद्धियों से गुजरकर, इतने अशुद्ध वातावरणों से गुजरकर, इतनी धूल-धवांस और व्यर्थ की दुनिया से गुजर कर पहली दफा मानसरोवर की शुद्धि, निर्मलता, निर्दोष वातावरण, मानसरोवर का महासुख पहली दफा उसकी समझ में आता है।

कबीर कहते हैं बार-बारः चल हंसा वा देश! अपने घर लौट चल, उस देश लौट चल जहां से हम आए हैं। अब बहुत हो गई यात्रा, देख लिया सब, पाया कुछ भी नहीं; अब अपने घर लौट चलें।
यह घर लौटना यद्यपि उसी घर में लौटना है जहां से तुम आए, लेकिन बड़ा नया है। क्योंकि तुम नए हो गए; तुम्हारे अनुभव ने तुम्हें निखारा। पीछे लौटना ही आगे जाना है। और आगे जाने का एक ही उपाय है कि तुम पीछे लौटो। स्वभाव में पहुंच जाना ही मनुष्य का चरम उत्कर्ष है। वही परमात्मा हो जाना है।

पांचवां प्रश्नः लाओत्से कहते हैं, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है, समझ काफी है। समझाएं कि समझना होना कब और कैसे बन पाता है?

कब और कैसे का सवाल ही नहीं; समझना होना है।
लेकिन तुम्हें सवाल उठता है। तुम्हें सवाल इसलिए उठता है कि तुम सोचते
हो कि समझना एक चीज है और होना दूसरी चीज है। तुम सोचते हो, समझना शुरुआत है यात्रा का, प्रारंभ है, और होना अंत है। नहीं, समझने होने में रत्ती भर का भी फासला नहीं, इंच भर का भी फासला नहीं। हां, तुम्हें ऐसा अनुभव में आता है कि समझ लेते हो तुम कई चीजें, फिर भी हो तो नहीं पाते। तो उसका एक ही अर्थ हुआ कि तुम समझ ही न पाए।
बौद्धिक समझ को समझ नहीं कहा जाता। मैं कुछ बोल रहा हूं, तुम समझ रहे हो; क्योंकि तुम भाषा समझते हो। हो सकता है, मुझसे बेहतर समझते होओ। तुम भाषा का गणित समझते हो, भाषा का तर्क समझते हो। तुम पढ़े-लिखे हो, बुद्धिमान हो, विचार कर सकते हो; सब तुम्हें समझ में आ जाता है। मैं कोई कठिन बातें तो नहीं बोल रहा हूं; कोई पहेलियां तो नहीं बूझ रहा हूं। सीधी-साधी बात है; बिल्कुल समझ में आ जाती है।
तब सवाल उठता है, अब करें कैसे? जैसे ही सवाल उठता है करें कैसे, खबर आ जाती है कि तुम समझे नहीं। बुद्धि से समझे, विचार से समझे, लेकिन आत्मसात न हुआ, तुम्हारे हृदय तक न पहुंचा; खोपड़ी में अटक गया। वहां कोई समझ नहीं है; वहां समझ का धोखा है। हृदय में उतर जाए।
ऐसा समझो कि घर में आग लग गई और मैंने तुमसे कहा कि घर में आग लगी है। क्या तुम मुझसे कहोगे कि समझ गए, अब बाहर कैसे निकलें? समझ गए, यह तो शुरुआत हुई, अब धीरे-धीरे कोशिश करेंगे बाहर निकलने की; तो बाहर निकलने का उपाय बताइए। क्या तुम ऐसा कहोगे? जैसे ही तुम समझे कि घर में आग लगी है, तुम मुझे तो पीछे ही छोड़ दोगे, तुम छलांग लगा कर पहले बाहर निकल जाओगे। घर में आग लगी हो तो जैसी समझ आती है वह समझ बुद्धि की नहीं है। तुम्हारे तन-प्राण से, तुम्हारे रोएं-रोएं से, तुम्हारी श्वास-श्वास से समझ उठती है; तुम्हारे पूरे अस्तित्व से समझ आती है; तुम अपनी समग्रता में समझते हो। खोपड़ी का सवाल नहीं है। खोपड़ी को मौका भी नहीं दिया जा सकता सोचने का, क्योंकि समय है नहीं। और खोपड़ी बड़ा समय लेती है।
तो जहां भी कहीं तत्क्षण कुछ करना हो वहां तुम बुद्धि को सोचने का मौका
ही नहीं देते; वहां तुम बुद्धि को हटा देते हो और कुछ कर गुजरते हो; खिड़की से कूद कर बाहर हो जाते हो।
सांप रास्ते पर आ गया हो, दिखाई पड़ते ही तुम छलांग लगा लेते हो। इतना भी शब्द भीतर नहीं बनता कि सांप आ रहा है, कि सांप खतरनाक है, कि अनुभव कहता है, सांप से उछल कर बच जाना चाहिए। इतना भी तर्क नहीं चलता, इतना भी विचार नहीं चलता। विचार को मौका ही नहीं मिलता। तुम अपनी समग्रता से, इधर सांप दिखा नहीं कि उधर तुम कूदे नहीं। इन दोनों के बीच फासला नहीं होता। हां, कूदने के बाद फिर तुम बैठ कर वृक्ष के नीचे आराम से सोच सकते हो सांप के संबंध में, दर्शन-शास्त्र खड़ा कर सकते हो। लेकिन जब सांप सामने था तब तुम छलांग लगा कर कूद गए। न तुमने गुरु से पूछा, गुरु कोई इतना आसानी से मिलेगा भी नहीं वहां। न तुम शास्त्र को अध्ययन करने गए, क्योंकि कहां अध्ययन करने जाओगे, सांप सामने खड़ा है! न तुमने अपनी स्मृति से पूछा, क्योंकि हो सकता है पहले कभी सांप का मुकाबला ही न हुआ हो। तो स्मृति क्या कहेगी कि क्या करो। नहीं, अब तुमने किसी से न पूछा; अब तो तुम्हारी समग्रता ने एक कृत्य किया।

समझ समग्रता का कृत्य है।
जब मैं कहता हूं, तुम्हारे जीवन में आग लगी है, तो तुम बुद्धि से समझते हो। जब मैं कहता हूं, तुम्हारे घर में आग लगी है, तब तुम समग्रता से समझते हो। जब मैं कहता हूं, यह जीवन सांप जैसा है, इससे बचो, तब तुम बुद्धि से समझते हो। लेकिन जब सांप रास्ते पर मिल जाता है तब! जिस दिन तुम इस तरह समझोगे धर्म को भी, उसी दिन तुमने समझा। फिर तुम्हारी समझ और करने में फर्क न होगा। समझ ही करना है। समझ मुक्ति है।
अगर तुमने समझ लिया कि क्रोध जहर है तो क्या तुम मुझसे पूछोगे कि अब क्रोध को कैसे रोकें? अगर पूछते हो तो साफ है, अभी भी समझे नहीं; अभी भी लगाव बना है; अभी भी तुम सोचते हो कि हां, कहते हैं लोग कि जहर है; लेकिन यह तुम्हारा अनुभव नहीं बना है। और अभी भी तुम्हें रस है उसमें और क्रोध में अभी भी तुमने कुछ नियोजित किया हुआ है, अभी भी तुम्हारा इनवेस्टमेंट है। अभी भी तुम मानते हो कि किन्हीं-किन्हीं समय में क्रोध करने की जरूरत है। अब बच्चा कुछ गलती कर रहा हो, क्रोध कैसे न करें? कि अगर क्रोध न करें तो पत्नी सुनती ही नहीं! और अगर क्रोध न करेंगे तो किसी का सुधार कैसे होगा? अभी क्रोध से तुम्हारे लगाव भीतर बने हैं। अभी क्रोध का जहर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि अगर जहर दिखाई पड़ जाए तो तुम यह न कहोगे कि जहर तो है माना, लेकिन बच्चे को सुधारने के लिए थोड़ा पिलाना पड़ेगा। जहर कोई पिलाता है सुधारने के लिए? और जहर से कभी किसी ने किसी को सुधारा? क्रोध से कभी कोई बच्चा सुधरा है? तुम्हें पता है? बिगड़ सकता है, क्रोध से कभी कोई बच्चा नहीं सुधरा।
क्रोध से कोई व्यवस्था बनी है? बिगड़ सकती है; बनने की क्या संभावना है?
और अगर क्रोध से कोई व्यवस्था बनेगी भी तो धोखा होगा, झूठ होगा। तुम्हारी पत्नी अगर तुम्हारे क्रोध के कारण शांत भी रहेगी तो वह शांति शांति नहीं हो सकती; उसके भीतर आग जलती रहेगी। और उस शांति से प्रेम का कोई जन्म नहीं हो सकता। वह तुम्हारी गुलाम हो जाएगी, लेकिन तुम्हारी प्रेयसी न हो पाएगी। और गुलाम घृणा करता है, प्रेम नहीं।
अगर तुमने किसी तरह जबर्दस्ती क्रोध के आधार पर कुछ कर भी लिया तो यह बहुत ही अस्थायी है। और इसके भीतर इसका विरोध मौजूद है जो इसे तोड़ देगा। तुमने एक ऐसा भवन बनाया जिसकी कोई बुनियाद नहीं है, जो रेत पर खड़ा है, और किसी भी दिन गिरेगा। इससे तो बेहतर था तुम खुले आकाश के नीचे सो जाते; कम से कम खतरा तो न था। यह महल खतरनाक है। यह गिरेगा। और इसके गिरने में तुम मिटोगे।
क्रोध को पूरा देखो। तब क्रोध को देखने से तुम्हें एक समझ आएगी। कामवासना को पूरा देखो, जानो, पहचानो। जल्दी कुछ नहीं है। किसी की मान कर मत चल पड़ो। तब तुम पाओगे कि यह तो व्यर्थ है। यह इतनी व्यर्थ है कि इसकी व्यर्थता ही काफी है इससे मुक्ति के लिए। अगर अतिरिक्त कुछ करना पड़े, कि जाकर मंदिर में कसम लेनी पड़े कि अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं, तो वह तुम्हारा कसम लेना ही बता रहा है कि तुम अभी समझ नहीं पाए, और समझ की जो कमी है वह तुम व्रत से पूरा कर रहे हो। जिसने जान लिया, वह व्रत लेगा ब्रह्मचर्य का? जिसने जान लिया, बात खतम हो गई। वह मंदिर जाएगा? वह किसी के सामने घोषणा करेगा?
वह घोषणा और मंदिर और किसी गुरु के सामने व्रत लेना सिर्फ तरकीब है। वह तरकीब है कि अब चार आदमियों के सामने इज्जत का सवाल हो गया। तो अब इज्जत के नाम से किसी तरह अपने को रोकेंगे। लेकिन ब्रह्मचर्य कहीं इज्जत के कारण आता है? ब्रह्मचर्य समझ से आता है। ब्रह्मचर्य कहीं अहंकार, प्रतिष्ठा--कि अब लोग हमको ब्रह्मचारी मानते हैं इसलिए अब कैसे ब्रह्मचर्य को छोड़ें-- इससे आता है? ऐसा ब्रह्मचर्य दो कौड़ी का है; आ ही नहीं सकता। तब तुम रास्ते निकाल लोगे। तब तुम प्रतिष्ठा को भी बचाओगे, छिपे रास्ते भी निकाल लोगे ब्रह्मचर्य से बचने के। तब तुम्हारे जीवन में पाखंड होगा। और पाखंड इस जगत में सबसे बड़ा पतन है; पाप नहीं। पापी भी सीधा-साफ है। पाखंडी इस जगत में सबसे ज्यादा कठिन अवस्था में है। उसके जीवन में बड़ी जटिलता है। दिखाता कुछ

है; करता कुछ है। कहता कुछ है; होता कुछ है। उसका जीवन बिल्कुल अस्तव्यस्त है।
समझ को पहले समझ लो कि समझ क्या है। जब समग्र की है तभी हम उसे समझ कहते हैं। तुम बुद्धि की समझ को समझ मत मानना। वह काफी नहीं है। क्योंकि तुम बुद्धि से बहुत बड़े हो।
इसलिए तो अनेक बार तुमने तय कर लिया कि अब क्रोध न करेंगे, समझ कर तय कर लिया कि अब क्रोध न करेंगे। फिर टूट जाता है दूसरे दिन। घड़ी भर बाद टूट सकता है। इधर तुम तय किए बैठे थे कि क्रोध न करेंगे, और कोई आ गया और उसने गाली दे दी, तुम्हें याद ही नहीं रहता कि हमने क्या तय किया था। उस क्षण में सब भूल जाता है। फिर पछताते हो; फिर कसम खाते हो। यही तो तुम कर रहे हो--करो, पछताओ, कसम खाओ। फिर कसम टूट जाती है, फिर पछताते हो। इसी तरह तो तुम दीन होते गए हो।
बुद्धि बहुत छोटी है। और बुद्धि जो तय करती है, वह तुम्हारे प्राणों तक पहुंचता ही नहीं। यह ऐसा ही है कि घर का मालिक तो भीतर बैठा है; द्वार पर पहरेदार बैठा है; और तुम पहरेदार से मिल कर लौट आते हो। पहरेदार कहता है, ठीक, चलो मकान तुम्हें बेच दिया। और घर के मालिक को पता ही नहीं है। तुम्हारी बुद्धि पहरेदार से ज्यादा नहीं है। वह राडार है। वह तुम्हारे बाहर की जांच-परख के लिए है। मालिक तो भीतर बैठा है। बुद्धि कोई निर्णय ले कैसे सकती है मालिक से पूछे बिना? मालिक निर्णय लेता है। बुद्धि क्या निर्णय लेगी? इसीलिए तो बुद्धि के निर्णय रोज टूटते हैं; छोटे-छोटे निर्णय टूट जाते हैं।
एक आदमी सिगरेट पीता है; वह कसम खाता है। एक तो सिगरेट पीने के लिए कसम खाना ही मूढ़ता है। इतनी क्षुद्र बात के लिए व्रत लेना ही मूढ़ता है। व्रत बताता है कि तुम हद दर्जे के नासमझ हो। धुआं निकालते हो बाहर-भीतर, कुछ खास कर भी नहीं रहे हो; इतना कुछ मूल्य का भी नहीं है। और इसके लिए तुम्हें कसम लेनी पड़ती है, और वह भी टूट जाती है।
तुमसे तो मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा होशियार है। वह मुझसे कह रहा था कि मैंने सब पढ़ा। धूम्रपान कैसा बुरा है, कैसा घातक है, कैसे अस्थमा पैदा कर सकता है, कैंसर आ सकता है; सब पढ़ डाला। फिर मैंने निर्णय कर लिया। मैंने पूछा, क्या निर्णय किया--धूम्रपान छोड़ने का? उसने कहा कि नहीं, पढ़ना छोड़ दिया। पक्का कर लिया, अब पढ़ना ही नहीं। वह तुमसे ज्यादा समझदार है। कम से कम पछताएगा नहीं।
एक मेरे मित्र हैं; दिमाग थोड़ा खराब है। अक्सर पागल समझदारों से ज्यादा समझदार साबित होते हैं। जैन हैं। तीर्थयात्रा को गए। वहां जैन मुनि कोई ठहरे थे उनके; उनको नमस्कार करने गए। तो जैसा जैन मुनि कहते हैं कि कोई नियम ले लो, कोई व्रत ले लो; तीर्थयात्रा में आए हो तो कुछ करके जाओ। तो उन्होंने कहा, अच्छी बात, ले लिया व्रत। तो मुनि ने पूछा, क्या व्रत लिया? उन्होंने कहा, अब तक धूम्रपान नहीं करता था, अब से करूंगा।
पागल हैं। लेकिन जब वे मेरे पास आए तो मैंने पूछा, तुमने ऐसा क्यों किया? तो उन्होंने कहा कि इसमें कम से कम पछताने का मौका नहीं आएगा। कुछ छोड़ो; छूटता नहीं है। तो उसमें पछतावा होता है, और व्रत टूट जाता है। यह कम से कम टूटेगा नहीं, इतना पक्का है। पीते रहेंगे मरते दम तक। इतना तो रहेगा कि एक व्रत पूरा किया।
तुम्हारे व्रत टूटते हैं, क्योंकि बुद्धि से तुम सोचते हो। व्रत लेती
ही बुद्धि है, और बिना जाने कि बुद्धि केवल पहरेदार है, घर का मालिक नहीं है। मालिक से पूछे बिना तुम क्या कर रहे हो? मेरी सुन कर अगर तुमने समझा कि समझ आ गई तो तुम गलती में पड़ोगे। मुझे सुन कर समझ आती होती तो समझ बड़ी सस्ती चीज है। शास्त्र को पढ़ कर आती, बड़ी सस्ती चीज है। समझ तो जीवन को जीने से आएगी।
मैं तुमसे नहीं कहता कि क्रोध बुरा है। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि क्रोध को परखो, जानो, पहचानो। जल्दी क्या है? क्रोध करो। क्रोध की पीड़ा झेलो। पछताओ। क्रोध को जीओ। क्रोध के अंग-अंग जानो। क्रोध को सब दिशाओं से पहचानो। तब समझ का उदय होगा। वह समझ मुझे सुन कर न आएगी। वह तो तुम क्रोध के

साथ सत्संग में रहोगे, तभी आएगी। हां, होशपूर्वक रहना, उतना मैं तुमसे कहता हूं। नहीं तो क्रोध के साथ तो तुम जन्मों से रह रहे हो, समझ नहीं आई। क्योंकि जब तुम क्रोध करते हो, तुम समझ का हिसाब ही छोड़ देते हो। तुम बेहोशी में क्रोध करते हो। उतना ही मैं तुमसे कहता हूं मत करो। क्रोध जब आए तो तुम होश के धागे को सम्हाले रहो।
पहले कठिन होगा। धीरे-धीरे सुगम हो जाएगा। धीरे-धीरे तुम क्रोध भी करोगे और भीतर तुम जानते भी रहोगे कि क्या हो रहा है। इस जानने वाले तत्व का ही नाम तुम्हारा मालिक है। यह साक्षी ही भीतर बैठा मालिक है। इस साक्षी को जगाओ। क्रोध को छोड़ने की फिक्र मत करो, साक्षी को जगाओ। सो रहा है भीतर; दरवाजे खोलो, उसे उठाओ, और उसे और क्रोध को सामने-आमने कर दो; बस। तब तुम पाओगे एक दिन, कोई सांप इतना जहरीला नहीं जितना क्रोध है।
वस्तुतः सत्तानबे प्रतिशत सांप में तो कोई जहर होता ही नहीं; केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। हालांकि लोग मर जाते हैं उन सांपों के काटे हुए भी जिनमें जहर नहीं होता। वे अपने ख्याल से ही मर जाते हैं; कोई उन्हें मारता-वारता नहीं। सांप ने काट लिया, बस इसलिए मर जाते हैं। यह बड़ा चमत्कार है। चिकित्सा-शास्त्र के सामने बड़ा सवाल है। क्योंकि सांप तो बहुत कम हैं जिनके जहर से कोई मरता है--तीन प्रतिशत। आम तौर से वे तुम्हें काटते भी नहीं। क्योंकि उतना जहरीला सांप बहुत छिप कर रहता है। जो सांप तुम आस-पास घूमते देखते हो ये कोई जहरीले नहीं हैं। इनके काटने में कोई मामला ही नहीं है। लेकिन मर तुम जाओगे अगर सांप काट ले। यह मन का ही भाव है कि सांप ने काट लिया, अब मरे! अब कैसे बच सकते हैं! यह सम्मोहन है।
सूफियों की एक कहानी है कि एक फकीर बैठा था एक नगर के द्वार पर और उसने
एक बड़ी भयंकर काली छाया गुजरते देखी। उसने कहा कि रुक, तू कौन है? सूफी फकीर था, तो उसने कहा फकीर का जवाब दे देना उचित। उसने कहा, मैं मौत हूं, इस नगर में जा रही हूं। इस नगर में मुझे पांच सौ आदमी मारने हैं। फकीर ने कहा, ठीक।
कुछ दिनों बाद मौत वापस निकली तो फकीर ने रोका, कहा कि रुक, तूने धोखा दिया। कहा था पांच सौ मारने हैं, पांच हजार मार डाले। उसने कहा, बाकी साढ़े चार हजार अपने आप मरे हैं; मैंने तो पांच सौ ही मारे। लेकिन हवा फैल गई मौत की। बाकी साढ़े चार हजार का जिम्मा तुम मुझे मत देना।
बहुत से लोग अस्पतालों में हवा के कारण पड़े हैं। बहुत से लोग इसलिए मर जाते हैं कि और लोग मर रहे हैं। प्लेग फैल गई; हैजा फैल गया। संक्रामक हो जाता है रोग; शरीर में कम, मन में ज्यादा। सांप ने काट लिया, मर गए। कैसे बच सकते हैं जब सांप ने काट लिया?
सांप इतना जहरीला नहीं है। सांप का काटा बच जाता है; क्रोध का काटा नहीं बचता, लोभ का काटा नहीं बचता, मोह का काटा नहीं बचता, काम का काटा नहीं बचता। तुम कितनी बार मर चुके हो? सांप ने कब काटा था? तुम इतनी बार क्यों मरे? किसी ने तुम्हें जहर नहीं दिया; जहर तुम अपने को ही देते रहे। लोभ, क्रोध, माया, मोह, सब जहर हैं। लेकिन धीरे-धीरे तुम जहर पीते रहे और उससे ही मरते रहे।
अगर तुम चाहते हो अमृत को पा लेना, तो जागो, इन जहरों को देखो; साक्षी को उठाओ। निर्णय की कोई जरूरत न आएगी। करने को कुछ है ही नहीं, सिर्फ साक्षी देख ले और पहचान ले भरपूर आंख--जहर कहां है? आग कहां है? बात खतम हो गई। आगे सवाल नहीं उठता। तुम छलांग लगा कर बाहर हो जाते हो। समझ क्रांति है। समझ ही एकमात्र क्रांति है। शेष सब क्रांतियां ऊपर-ऊपर हैं, धोखे की हैं। और तुम उन पर भरोसा मत करना। उन पर भरोसे के कारण तुम बहुत भटके हो। अगर और भटकना चाहते हो तो बात अलग। अन्यथा बुद्धि की बातों पर भरोसा मत करना। बुद्धि पहरेदार है। मालिक को जगाओ। मालिक से पूछो कि तेरी मर्जी क्या है। और मालिक की मर्जी तत्क्षण कृत्य बन जाती है।

आखिरी सवालः लाओत्से पर बोलते हुए आपने कहा कि जिस पर भरोसा न हो उसके लिए नीति, नियम और पुलिस की व्यवस्था की जाती है; और आपने यह भी कहा कि बुरे आदमी में भी शुभ देखना गरिमा है। तो प्रश्न यह उठता है कि यहां आश्रम में सुरक्षा की इतनी कड़ी व्यवस्था क्यों है?

बहुत सी बातें समझनी पड़ें; और समझ लेनी उचित हैं।
मेरे लिए तो कोई बुरा नहीं है, कोई शत्रु नहीं है। आश्रम में जो व्यवस्था है वह किसी शत्रु से बचने की व्यवस्था भी नहीं है। तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ता होगा, वह तुम्हारी व्याख्या है। आश्रम में जो व्यवस्था है, वह मित्रों से बचने की है। और शत्रुओं से कभी कोई किसी को बचा भी नहीं सका; कैसे बचा सकते हो?
जीसस को सूली लग गई; बारह ही पहरेदार, बारह शिष्य पहरा दे रहे थे। तो अब क्या करोगे? बारह शिष्य क्या करोगे? दुश्मन पांच सौ की भीड़ लेकर आ गया था। सब व्यवस्था तोड़ी जा सकती है।
फिर जीसस तो फकीर थे, लेकिन अमरीका के पास जितनी व्यवस्था है लिंकन को, केनेडी को बचाने की--वे भी नहीं बचा सकते। बचाना तो करीब-करीब असंभव है शत्रु से। कभी नहीं बचा सकते।
गांधी के लिए बचाने के सब उपाय थे। क्या करोगे? एक पागल आदमी खतम कर दे सकता है। जिनसे तुम बचा लेते हो, उनसे बचाने की कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि वे कोई खतम करने को हैं नहीं। लेकिन जो खतम करना चाहता है, उससे तुम नहीं बचा पाते। अभी ललित नारायण मिश्र की जो मृत्यु हुई, उसमें एक हजार सैनिक चारों तरफ खड़े थे। क्या करोगे? एक पागल आदमी बम फेंक देता है।
शत्रु से बचाने का तो कोई उपाय ही नहीं है। उस भूल में तो कोई कभी पड़े
ही नहीं कि कोई शत्रु से कभी किसी को बचा सकता है। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मेरे लिए कोई शत्रु है भी नहीं। उस दिशा में सोचने का कोई कारण नहीं है। यह व्यवस्था है मित्रों से बचाने की। मेरी परेशानी मित्रों से है। और परेशानी का कारण मुझे नहीं है, वह भी समझ लेना चाहिए।
वर्षों तक मैं अकेला घूम रहा था सारे मुल्क में। काम करना असंभव हो गया; काम--जिसको करने के लिए इस शरीर में मैं रुका हूं। रात सो रहा हूं, कोई दो बजे रात कमरे में घुस जाता है। वह कहता है, पैर दबाने हैं। वह बड़े भाव वाला आदमी है। वह रात भर पैर ही दबाता रहता है; सोना ही मुश्किल है। रात मैं कुछ और कर रहा हूं, वह भी करना मुश्किल है।
ट्रेन में सवार हूं, चार आदमी ट्रेन में चढ़ आते हैं। वे कमरे में बैठे हैं; वे बातचीत कर रहे हैं। ट्रेन में मुझे इतने लोगों ने बातचीत की कि जब मैं पहुंचूं जहां मुझे बोलना है, तो मेरा गला ही बिठा दिया उन्होंने! ट्रेन में जरा जोर से बोलना पड़ता है। और उन्हें सुविधा मिल गई कि आठ-दस घंटे वे बातचीत में लगाए हुए हैं। उनको मैं कितना ही कहूं कि अब मुझे छोड़ दें, कृपा करें! पर वे प्रेमी हैं, वे कहते हैं, छोड़ने का मन नहीं होता।
यहां भी खुला छोड़ा जा सकता है। मैं वृक्ष के नीचे हो सकता हूं। लेकिन तब, जो मैं कर रहा हूं, वह करना असंभव हो जाएगा। बिल्कुल असंभव! और जो मैं कर रहा हूं, उनमें से बहुत सी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है। शंकराचार्य के जीवन में एक उल्लेख है। एक बड़ा महत्वपूर्ण विवाद हुआ मंडन मिश्र के साथ। बड़ा मुश्किल था, किसको खोजें अध्यक्षता के लिए? क्योंकि शंकर और मंडन का विवाद था--दो बड़ी महिमाशाली प्रतिभाएं! खोज मुश्किल थी। लेकिन मंडन की पत्नी एकमात्र दिखाई पड़ती थी, जो अध्यक्ष हो सकती। लेकिन शंकर के अनुयायियों को चिंता थी कि मंडन की पत्नी कहीं पक्षपात न करे! क्योंकि पति एक प्रतियोगी है।
कोई उपाय न सोच कर--शंकर को तो चिंता न थी, शंकर ने कहा कि ठीक। विवाद हुआ। और मंडन मिश्र की पत्नी ने जितना निष्पक्ष होकर निर्णय दिया, बड़ा कठिन है। उसने मंडन मिश्र को पराजित घोषित किया। लेकिन एक शर्त लगा दी, और शर्त बड़ी मुश्किल की हो गई। उसने कहा कि ये तो मंडन तो हार गए, लेकिन यह हार आधी है, क्योंकि अभी पत्नी... । और शंकर से कहा, यह तो आप भी मानेंगे कि पत्नी अर्धांग है; तो अब मुझे भी हराना पड़ेगा आपको; तभी पूरी जीत समझना; नहीं तो आधी जीत है।
शंकर इसके लिए तैयार भी न थे। यह कभी सोचा भी न था कि यह दांव-पेंच हो सकता है इसमें। विवाद के लिए तैयार होना पड़ा। और मंडन मिश्र की पत्नी ने

बड़ी कुशलता की; उसने ब्रह्म और माया, ये सब बातें ही नहीं पूछीं; उसने तो काम-ऊर्जा और कामवासना के संबंध में सवाल उठाए।

शंकर ब्रह्मचारी, मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहा कि तुम ऐसे सवाल उठा रही हो जिनका मुझे अनुभव नहीं है। तो मंडन मिश्र की पत्नी ने कहा, तुम समय चाहो तो समय ले लो। अनुभव करके आ जाओ।
छह महीने का समय मांग कर शंकर किसी तरह विदा हुए। बड़ी मुश्किल में पड़
गए कि क्या किया जाए! तो छह महीने तक शंकर ने अपनी देह छोड़ दी और उनकी लाश पर छह महीने तक सतत उनके बारह शिष्य पहरा देते रहे। चौबीस घंटे पहरा देना पड़ा। क्योंकि शंकर एक दूसरे आदमी के शरीर में प्रविष्ट हुए जो कि गृहस्थ था--जो अभी-अभी मरा था--एक राजा। उसके शरीर में प्रविष्ट हो गए। उसकी पत्नी के साथ काम के सारे रहस्यों का अनुभव करके वापस अपनी देह में लौटे। वह सतत पहरा था, कि उसमें एक क्षण भी पहरे में चूक हो जाती तो वह देह अस्तव्यस्त हो जाती, वापस लौटना मुश्किल हो जाता।
बहुत क्षणों में मैं देह के बाहर हूं। अब मैंने जितने लोगों को दीक्षा
दी है, जितने लोगों को संन्यास दिया है, उन पर बहुत तरह के काम मुझे करने हैं। कोई हजारों मील दूर है और उसे जरूरत है; तो मैं इस शरीर के बाहर हूं। और मेरे कमरे में उस समय अगर कोई भी घुस जाए तो मेरा लौटना मुश्किल है। अगर मेरे शरीर को कोई हिला दे, कोई पैर ही दाबने लगे, तो फिर मेरे लौटने का कोई उपाय नहीं है।
इन सारी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है। इसलिए तुम अपनी बुद्धि
से जितना सोच सकते हो, सोच लेते हो। तुम सोचते हो कि इतने पहरेदार यहां खड़े हैं; इसकी क्या जरूरत? तुम बड़े तर्क अपने मन में उठा लेते हो।
ये पहरेदार अभी कम हैं। जैसा काम मैं कर रहा हूं, उसके लिए और भी व्यवस्था की जरूरत है। क्योंकि अभी इनको भी पार करके लोग पहुंच जाते हैं। दो महीने पहले ही यहां मीटिंग पूरी हुई, दो महिलाएं पीछे की गैलरी में पहुंच गईं। मैं अंदर कमरे में पहुंचा और वे दोनों वहां पीछे से दरवाजा खटखटा रही हैं। वे सब प्रेमी हैं, भाव से भरे हुए लोग हैं! यह जो पहरा है, यह कोई शत्रुओं से बचाने के लिए नहीं है; यह तुमसे ही बचाने के लिए है और तुम्हारे ही काम के लिए है। और तुम अपने भावावेश में कुछ कर सकते हो। लेकिन तुम्हारा भावावेश सवाल नहीं है; तुम्हारा भावावेश बिल्कुल ठीक है। लेकिन तुम कुछ कर सकते हो जो तुम्हारे लिए ही अंततः घातक हो जाए।
मुझे लोग पूछते हैं कि आपसे मिलने-जुलने में इतनी अड़चन क्यों है? साधु- संतों से मिलने-जुलने में कोई अड़चन नहीं होती।
मैं भी जानता हूं। मैं भी झाड़ के नीचे बैठ सकता हूं। पर तब मैं सिर्फ तुम्हारी पूजा ले सकता हूं; तुम्हारे लिए कुछ कर नहीं सकता। सो तुम्हारे साधु-संत तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मगर तुम बड़े प्रसन्न हो, क्योंकि जब चाहो तब तुम जाकर मिल सकते हो। लेकिन काम असंभव है।
तुम्हारे लिए कुछ करना हो मुझे तो मैं झाड़ के नीचे नहीं हो सकता। तुम्हारी बुद्धि से तुम सोचते हो कि क्यों मैं एयरकंडीशंड कमरे में हूं? साधु-संत को एयरकंडीशंड कमरे की क्या जरूरत?
लेकिन तुम्हें कुछ भी अंदाज नहीं, इसलिए तुम्हारी अपनी मुश्किलें हैं।
और बहुत सी बातें तुमसे कही भी नहीं जा सकतीं। अगर मैं शरीर छोड़ता हूं तो मेरे कमरे का टेंपरेचर वही का वही रहना चाहिए। जिस टेंपरेचर में मैंने छोड़ा, उसी टेंपरेचर में मैं शरीर में प्रवेश हो सकता हूं, नहीं तो संभव नहीं है।
तो दो ही उपाय हैं। या तो मैं हिमालय की गुफा में चला जाऊं जहां टेंपरेचर बराबर रहता है। इसीलिए हिमालय की गुफा खोजते रहे लोग। लेकिन तब तुम पर इतना काम न कर सकूंगा। अगर मुझे अपने पर ही काम करना हो तो हिमालय की गुफा ठीक है। लेकिन वह काम पूरा हो चुका है। मुझे अपने पर कोई काम नहीं करना है। अगर तुम पर काम करना है तो यहां भीड़ और बाजार और बस्ती में मुझे होना जरूरी है।

तुम्हारी धारणाएं तुम्हारी समझ के ऊपर नहीं जा सकतीं। तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं है। लेकिन जब भी तुम्हें यहां कुछ ऐसा मालूम पड़े जो तुम्हारी समझ के पार जा रहा है तो जल्दी निर्णय लेने की कोशिश मत करना; कोशिश करना कि समझ थोड़ी और बढ़ जाए। जैसे-जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे चीजें तुम्हें साफ होने लगेंगी; वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा कि क्या प्रयोजन है। शत्रु से बचने का कोई सवाल नहीं है; कोई कभी किसी को शत्रु से बचा नहीं सकता। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मित्रों से बचाने का सवाल है। क्योंकि वे ही अपने भावावेश में सारे काम को बाधा डाल दे सकते हैं। तो मुझे निरंतर सख्त होता जाना पड़ेगा। अगर मैं सच में ही तुम्हें इसी जीवन में कहीं पहुंचा देना चाहता हूं तो मुझे और सख्त होता जाना पड़ेगा। वह भी तुम तभी समझ पाओगे जब तुम उस ऊंचाई पर पहुंचोगे। तभी तुम मुझे धन्यवाद दे पाओगे, उसके पहले तुम धन्यवाद भी नहीं दे सकते। तब तक तुम न मालूम कितने तरह की आलोचना करते रहोगे। और तुम ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी आलोचना का मुझे पता नहीं चलता है। तुम्हारी बुद्धि को मैं जानता हूं। इसलिए मुझे पता है कि उस बुद्धि से क्या-क्या सवाल उठ सकते हैं। तुम्हारे बिना कहे मैं जानता हूं कि तुम्हारे सवाल क्या हैं।
निर्णय भर मत लेना। कोई मत मत बनाना। जल्दी मत करना। समझ को थोड़ा बढ़ने
दो, थोड़ी ऊंचाई पर आने दो; थोड़ा प्रकाश फैलने दो। तुम्हें सब चीजें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी कि क्यों ऐसा है।
लाओत्से कुछ काम नहीं कर सका, क्योंकि झाड़ के नीचे बैठा था। बहुत से ज्ञानी इस संसार से ऐसे ही चले गए हैं बिना काम किए। क्योंकि तुम्हारी मान्यताएं बड़ी अजीब हैं। तुम्हारी मान्यताओं के अनुसार काम ही करना मुश्किल है। तुम अपनी ही मान्यताओं के कारण हजार तरह की हानियां झेलते रहे हो।
एक संन्यासी को मैं अपने बचपन से जानता रहा हूं, परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति वे हो गए। तुम में से शायद कभी कोई जबलपुर आता-जाता रहा हो, तो शायद कभी उनका देखना भी हुआ हो। जबलपुर में एक परम योगी थे; उनका नाम भी किसी को पता नहीं। लेकिन चूंकि वे अपने हाथ में हमेशा एक मग्गा लिए रहते थे इसलिए उनका नाम मग्गा बाबा था। वे कहीं भी बैठे रहते थे--खुले झाड़ के नीचे, या किसी दुकान के बाहर, छप्पर के नीचे, किसी की दहलान में। और जब भी मैं उनके पास कभी जाता तो उनको हमेशा परेशानी में पाता; और परेशानी यह थी कि उनको लोग छोड़ते ही नहीं थे। रात-दिन लोग बैठे हैं। क्योंकि लोगों को यह ख्याल था कि उनके चरण दबाने से बड़े पुण्य का अर्जन होता है और तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं!
तुम सोच सकते हो कि उनकी क्या गति कर दी! चौबीस घंटे लोग उनके पैर दबा रहे हैं। न वे सो सकते हैं--उनको मतलब ही नहीं लोगों को उनसे--न वे कोई काम कर सकते हैं। कोई उपाय ही नहीं है। वहां कतार लगी रहती लोगों की, एक ने पांव दबा लिए तो दूसरा कतार लगाए खड़ा है। और रात में, जो लोग दिन भर काम करते हैं-- रिक्शेवाले हैं, ड्राइवर हैं, फलां हैं, ढिकां हैं--वे सब रात में वहां इकट्ठे हैं। रात में कोई किसी के रिक्शे को काम नहीं है, रिक्शेवाले अपनी कतार लगाए खड़े हैं--मग्गा बाबा का पैर दबा रहे हैं।
मैं उनसे कहा कि यह आपका जीवन यूं ही जा रहा है; इस जीवन-ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो पा रहा। वे साधारणतः किसी से बोलते नहीं थे। एक दिन एकांत पाकर मैंने उनको कहा तो उन्होंने कहा कि ऐसे ही जाएगा; पहले से ही गलती हो गई। कुछ भी लाभ नहीं हो पा रहा है। और ये जो लोग हैं, इनको भी कोई लाभ नहीं हो रहा है।
उनको ये सब छोटे ख्याल हैं कि बस पैर दबाने से किसी की बीमारी ठीक हो जाएगी। बीमारी ठीक भी हो गई तो क्या ठीक हो गया? किसी को ख्याल है मुकदमा अदालत में जीत जाएगा। जीत भी गए तो क्या हो गया? मग्गा बाबा जैसा आदमी इन कामों के लिए नहीं है। ये तो बिना उसके भी हो जाएंगे। और हों या न हों, उनका मूल्य ही कुछ नहीं है।
उनको देख कर मैंने तभी तय कर लिया था कि जिस दिन भी मुझे काम करना हो उस दिन पहले से ही सावधानी बरतनी जरूरी है। इसलिए जब तक मैं यात्रा करता रहा

मैंने कोई व्यवस्था नहीं की, क्योंकि मैंने दूसरी तरह का काम शुरू नहीं किया। तब तक तो मैं लोगों को निमंत्रण देता रहा घूम कर; तब तक मैं अकेला ही घूम रहा था। सुरक्षा की जरूरत तो तब थी। अगर शत्रु से सुरक्षा करनी हो तो जरूरत तब थी जब कि मैं बिना एक आदमी को लिए घूम रहा था पूरे मुल्क में; चौबीस घंटे भीड़ में था। लेकिन तब कोई सुरक्षा का सवाल न था। क्योंकि शत्रु कोई नहीं है; उससे कोई सुरक्षा की जरूरत भी नहीं है।
पूना आते ही मैंने अपनी व्यवस्था का पूरा आयाम बदल दिया है। अब मैं काम
कर रहा हूं। अब मुझे भीड़ में उत्सुकता नहीं है; और न मैं चाहता हूं कि यहां भीड़ हो। गलत लोगों को मैं किसी भी कारण भीतर नहीं आने देना चाहता हूं। एक क्षण भी उनको देने को मेरे पास नहीं है। अब मैं सिर्फ उन पर काम कर रहा हूं जिन पर कुछ हो सकता है। और मेरी सारी शक्ति उन पर ही लगा देनी है। इसलिए मेरी शक्ति का एक कण भी यहां-वहां व्यर्थ न जाए, इसलिए सारी व्यवस्था जरूरी है।
मैं व्यवस्था से ही रहूंगा। और यह तुम्हारे लिए है, यद्यपि तुम्हें यह जंचेगा न। तुम पसंद करते कि मैं वृक्ष के नीचे बैठा होता; जब तुम्हारी मौज होती आ जाते, मिल जाते, बकवास कर जाते, पैर दबा लेते, फूल चढ़ा जाते। हालांकि उससे तुम्हें कुछ भी न होता। लेकिन तुम प्रसन्न होते!
तुम्हारे अज्ञान की कोई सीमा नहीं है!
आज इतना ही।

तिरानबेवां प्रवचन

धर्म है समग्र के स्वास्थ्य की खोज

Chapter 54

The Individual And The State

Who is firmly established is not easily shaken.
Who has a firm grasp does not easily let go.
From generation to generation his ancestral sacrifices
shall be continued without fail.
Cultivated in the individual, character will become genuine;
Cultivated in the family, character will become abundant;
Cultivated in the village, character will multiply;
Cultivated in the state, character will prosper;
Cultivated in the world, character will become universal.
Therefore:
According to (the character of) the individual, judge the individual;
According to (the character of) the family, judge the family;
According to (the character of) the village, judge the village;
According to (the character of) the state, judge the state;
According to (the character of) the world, judge the world.
How do I know the world is so?
By this.

अध्याय 54

व्यक्ति और राज्य

जो दृढ़ता से स्थापित है, उसे आसानी से डिगाया नहीं जा सकता।
जिसकी पकड़ पक्की है, वह आसानी से छोड़ता नहीं है।
पीढ़ी दर पीढ़ी उसके पूर्वजों के त्याग अबाध रूप से जारी रहेंगे।
व्यक्ति में उसके पालन से, चरित्र प्रामाणिक होगा; परिवार में उसके पालन से, चरित्र अतिशय होगा;
गांव में उसके पालन से, चरित्र बहुगुणित होगा; राज्य में उसके पालन से, चरित्र समृद्ध होगा;
संसार में उसके पालन से, चरित्र सार्वभौम बनेगा।
इसलिएः
व्यक्ति के चरित्र के अनुसार, व्यक्ति को परखो; परिवार के चरित्र के अनुसार, परिवार को परखो;
गांव के चरित्र के अनुसार, गांव को परखो; राज्य के चरित्र के अनुसार, राज्य को परखो;
संसार के चरित्र के अनुसार, संसार को परखो।
मैं कैसे जानता हूं कि संसार ऐसा है?
इसके द्वारा।

चरित्र के दो आयाम हैं। एक तो चरित्र है जो बाहर-बाहर से आरोपित है। ऐसे चरित्र की कोई दृढ़ता नहीं। ऐसा चरित्र कितना ही मजबूत दिखाई पड़े, मजबूती धोखा है। ऐसा चरित्र किसी भी क्षण टूट सकता है। ऐसा चरित्र टूटा ही हुआ है। क्योंकि ऐसे चरित्र के पीछे उसका विरोधी, बड़ी शक्ति से मौजूद है।

ऐसा चरित्र एकरस नहीं है। उसका तोड़ने वाला तत्व दबाया गया है। उसका तोड़ने वाला तत्व रूपांतरित नहीं हुआ है।
दूसरा चरित्र है जो भीतर से आविर्भूत होता है, और बाहर की तरफ फैलता है। जिसे ऊपर से रंग-रोगन की तरह नहीं पोता जाता, बल्कि जो भीतर की गरिमा की तरह, भीतर की अग्नि की भांति बाहर की तरफ दौड़ता है; जिसका जन्म तुम्हारे अंतःकरण में होता है, जिसका जन्म तुम्हारे हृदय में होता है। जिसकी जड़ें स्वभाव में छिपी हैं; जो तुम्हारी आत्मा से आता है।
एक है चरित्र जो आरोपित है, और एक है चरित्र जो अंतस से जाग्रत है। जो अंतस से जाग्रत है वह दृढ़ है; उसे तोड़ा नहीं जा सकता। उसके तोड़ने का उपाय ही नहीं बचा। उसके भीतर विरोधी तत्व मौजूद नहीं है। तुम उसे डिगा भी नहीं सकते। क्योंकि कोई दूसरा थोड़े ही किसी को डिगाता है। जब तुम डिगते हो तब डिगने का कारण तुम्हारे भीतर ही होता है। तुम्हें कोई डिगाता नहीं; तुम डिगने को तैयार होते हो, इसीलिए कोई डिगाता है।
एक स्त्री ने एक पुलिस दफ्तर में जाकर कहा कि मेरे साथ बलात्कार किया गया है, और जिसने किया है वह महामूर्ख है। चकित हुआ जो आफीसर ड्यूटी पर था! और उसने कहा, यह तो मैं समझ सकता हूं, बलात्कार की रोज ही घटनाएं घटती हैं; लेकिन दूसरी बात मेरी समझ में नहीं आती कि यह तुझे कैसे पता चला कि वह महामूर्ख था। उस स्त्री ने कहा, निश्चित महामूर्ख था, क्योंकि बलात्कार कैसे करना यह भी मुझे ही बताना पड़ा।
कोई तुम्हें डिगाता नहीं। बलात्कार भी कोई नहीं कर सकता है, अगर तुम्हारे भीतर ही स्वर न छिपा हो। बलात्कार में भी तुम्हारे साथ की जरूरत पड़ेगी। अन्यथा बलात्कार भी संभव नहीं है।
यह थोड़ा कठिन लगेगा। क्योंकि तुम सोचोगे, बलात्कार तो जबरदस्ती की गई घटना है।
लेकिन जबरदस्ती को भी तुम आमंत्रित करते हो। मनसविद कहते हैं कि कुछ स्त्रियां हैं जो बलात्कार को आमंत्रित करती हैं; कुछ स्त्रियां हैं, जब तक उनके ऊपर बलात्कार न हो तब तक उनको तृप्ति नहीं। वे सब तरह का आयोजन करती हैं कि उन पर बलात्कार हो। और बलात्कार में भी सहयोग की तो जरूरत है ही, क्योंकि अगर स्त्री का बिल्कुल असहयोग हो तो वह मुर्दे की, लाश की भांति हो जाएगी; उससे बलात्कार नहीं किया जा सकता। अगर उसका पूर्ण असहयोग हो तो ठीक बलात्कार के क्षण में ही शरीर से प्राण अलग हो जाएंगे।
भारत के पुराने शास्त्रों में कहा है, सती के साथ बलात्कार नहीं किया
जा सकता, सती का सतीत्व भ्रष्ट नहीं किया जा सकता।
ऊपर से देखने पर बात अजीब लगती है। क्योंकि कोई जबरदस्ती दस आदमी इकट्ठे होकर स्त्री का सतीत्व क्यों नष्ट नहीं कर सकते? लेकिन सतीत्व अगर सच में ही सतीत्व है तो स्त्री के प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे, लेकिन बलात्कार नहीं हो सकेगा। सहयोग से ही होगा। सहयोग में ऊपर कितना ही विरोध हो, भीतर गहरी आकांक्षा होगी।
तुम डिगा नहीं सकते, अगर चरित्र की जड़ें स्वभाव में हैं। तुम कैसे किसी
को लोभ में डाल सकोगे, अगर भीतर लोभ न बचा हो?
हर आदमी की लोभ की सीमा अलग हो सकती है। कोई तुम्हें पांच रुपया रिश्वत
दे तो तुम हो सकता है, कह दो, नहीं लूंगा। क्या समझा है तुमने मुझे? मैं कोई भ्रष्टाचारी नहीं हूं। लेकिन पांच हजार दे तो इतनी आसानी से न कह पाओगे। और अगर पांच लाख दे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। और अगर पांच करोड़ दे तो तुम्हारे मन में ख्याल ही न उठेगा कि यह भ्रष्टाचार है।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि पांच रुपए लिए कि पांच करोड़ लिए? यह भेद तो संख्या का है। इससे एक ही बात पता चलती है कि तुम्हारे लोभ की जो सीमा है वह पांच रुपए के बाद शुरू होती है। बस पांच रुपए तक तुम अलोभ में हो। उतना गहरा तुम्हारा चरित्र है। पांच रुपए की गहराई तुम्हारा चरित्र है। पांच करोड़ की गहराई पर तुम्हारा चरित्र नहीं है। वहां तुम डगमगा जाते हो।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की के साथ गांव के सम्राट ने अनैतिक संबंध स्थापित कर लिया और वह गर्भवती हो गई। मुल्ला बहुत नाराज हुआ; बहुत चीखा-चिल्लाया। उठाई तलवार और चला गांव के सम्राट की तरफ। आगबबूला हो

रहा था, क्रोध से जला जा रहा था। और उसने कहा कि तुमने क्या किया? जीवन से मूल्य चुकाना पड़ेगा। तुमने मुझे समझा क्या है? लेकिन गांव का जो राजा था, उसने कहा, बैठो शांति से, पहले मेरी बात सुनो। क्या मामला क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, मेरी लड़की को तुम्हीं ने गर्भ दिया, तुम्हीं ने उसे भ्रष्ट किया; यह मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। राजा ने कहा, चिंता मत करो! क्योंकि अगर सच में ही तुम्हारी लड़की गर्भवती है तो पचास हजार रुपया तो मैं तुम्हें दूंगा, ताकि तुम बच्चे को पाल-पोस सको; और पांच लाख रुपए मैंने जमा कर रखे हैं बच्चे के भविष्य के लिए, वे बैंक में हैं। नसरुद्दीन एकदम हलका हो गया। क्रोध खो गया। और उसने कहा कि और अगर इस बार बच्चा पैदा न हुआ, कुछ भूल-चूक हो गई, मुर्दा पैदा हुआ, समय के पहले पैदा हो गया, मर गया, या कुछ हो गया, तो आप एक और अवसर देंगे या नहीं? मैं यही पूछने आया हूं कि मेरी लड़की को एक और अवसर देंगे या नहीं?
सीमा है। कोई तुम्हें कुछ कहे, तुम क्रोधित न होओ, फिर कोई तुम्हें और बड़ी गाली दे तो तुम क्रोधित हो जाओ, तो यह मत समझना कि तुम अक्रोध को उपलब्ध हुए हो। इतना ही समझना कि क्रोध की और तुम्हारे अक्रोध की पर्त की एक व्यवस्था है। एक सीमा तक तुम क्रोधित नहीं होते, वहां तक तुम्हारा आचरण है। उसके भीतर क्रोध उबल रहा है, वही तुम्हारी असली स्थिति है। जब तक तुम डिगाने के बाहर न हो जाओ तब तक तुम्हारा चरित्र चमड़ी के जैसा है, ऊपर-ऊपर है। जरा सा कांटा चुभे और उखड़ जाएगा। जिस दिन तुम डिग ही न सको, आसान न रह जाए यह बात, आसान क्या असंभव ही हो जाए।
तो ये दो हैं चरित्र के आयाम। एक आयाम है ऊपर से आरोपित करना। वह व्यवहार-कुशलता है, चरित्र नहीं है। लोगों के साथ व्यवहार करने के लिए तुम्हें थोड़ा शिष्टाचार सीखना पड़ता है। हर जगह, हर स्थिति में क्रोधित होना मंहगा है। तुम चालाक हो। तो तुम जानते हो, कहां क्रोधित होना, कहां नहीं होना, किस पर होना, किस पर नहीं होना। क्रोध में भी तुम मुस्कुराते रहते हो, अगर जिस पर क्रोध करने का मौका आया है वह बली है, शक्तिशाली है। अगर यही बात कमजोर ने कही होती, तुम गर्दन दबा देते। तो यह तुम्हारी चालाकी हो सकती है; चरित्र नहीं है। समाज में जीना है तो कुशलता चाहिए। अकेले तुम नहीं हो; चारों तरफ हजारों लोग हैं। उनके साथ चलना है, उठना है, बैठना है, व्यवहार करना है। तो तुम्हें एक गणित सीखना पड़ेगा। तुम अपने मनोवेगों को स्वतंत्रता नहीं दे सकते हो; अन्यथा जीना मुश्किल हो जाएगा। और तुम चौबीस घंटे अड़चन में रहोगे।
इस गणित को तुम चरित्र मत समझ लेना। यह गणित तो ऊपर-ऊपर है। इसीलिए तो निरंतर यह होता है कि जब भी तुम थोड़े ज्यादा शक्तिशाली हो जाते हो, यह गणित बदलने लगता है। क्योंकि यह गणित तभी तक काम देता है जब तक तुम कमजोर थे। जैसे ही तुम्हारी शक्ति बढ़ती है, थोड़ा धन बढ़ता है, थोड़ा पद बढ़ता है, तो सारी स्थिति बदल जाती है। जो कल ताकतवर थे वे कमजोर हो जाते हैं। अब तुम उन पर क्रोध कर सकते हो। कल जो कमजोर थे वे और कमजोर हो जाते हैं; अब तुम उनके सिर पर पैर रख कर सीढ़ियां बना सकते हो।
जो लार्ड एक्टन ने कहा है, पावर करप्ट्स, एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली, कि शक्ति लोगों को भ्रष्ट करती है और परिपूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है, वह एक अर्थ में सही है और एक अर्थ में सही नहीं। ऐसा होता है, यह निश्चित है। तो लार्ड एक्टन जो कह रहा है वह ठीक कह रहा है। उसका निरीक्षण सही है कि जो भी व्यक्ति शक्ति में पहुंचता है वही भ्रष्ट हो जाता है। लेकिन फिर भी यह सही नहीं है। क्योंकि शक्ति किसी को भ्रष्ट नहीं करती। वह व्यक्ति भ्रष्ट तो था ही। कमजोर था, इसलिए भ्रष्टता को प्रकट नहीं कर सकता था। शक्ति ने, जो छिपा था, उसे प्रकट करने का मौका दिया। यह करना तो वह सदा से चाहता था, लेकिन करने की सुविधा नहीं जुटा पाता था। अब उसके पास सुविधा है।
तुम देखते हो, भारत में ऐसा हुआ। आजादी के पहले जो राजनीतिज्ञ सेवक थे
वे ही आजादी के बाद शोषक हो गए। आजादी के पहले जो बड़े त्यागी मालूम होते थे वे ही आजादी के बाद बड़े भोगी हो गए। उनका त्याग ऊपर से थोपा हुआ आचरण था, जो परिस्थिति की मजबूरी थी, जो वास्तविक नहीं थी। उनकी अहिंसा ऊपर-ऊपर थी। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि इन पच्चीस वर्षों में इन्हीं राजनीतिज्ञों ने,

जो अहिंसा का दिन-रात उदघोष करते रहते हैं, जितनी हत्या की है इतनी अंग्रेजों ने भारत में कभी भी न की थी। इसे कोई सोचता भी नहीं। जितनी गोली इन्होंने चलाई है उतनी एक विजातीय, एक परदेशी सत्ता ने भी न चलाई थी। अगर अंग्रेज इतनी ही गोली चलाने को राजी होते तो तुम कभी स्वतंत्र ही न हो पाते। जितने लोगों को तुमने जेल में डाला है इतनों को अगर अंग्रेज डालने को तैयार होते और इस बुरी तरह दमन करने को राजी होते तो गुलामी कभी टूट नहीं सकती थी।
गोली चलाना खेल हो गया है। रोज कहीं न कहीं भारत में गोली चलती है। दो- चार, पांच आदमियों के मरने की कोई बात ही खास नहीं रही है। लाठी तो रोज पड़ती है। जेलों में बहुत बुरी दशा है। और ये सब अहिंसक हाथों से हो रहा है। हिंसा के करने वाले लोग अगर ऐसा करें तो संगति है। लेकिन अहिंसक दावेदार, जो गांधी की छाया में बड़े हुए और जो दिन-रात गांधी का गुणगान करते रहते हैं, उनके हाथ तले यह सब हो रहा हो, तो एक बात समझ लेनी चाहिए कि गांधी इस देश को चरित्र नहीं दे सके। गांधी ने इस देश को कुशलता दी, चालाकी दी। ऊपर-ऊपर रही बात, भीतर गहरे में न गई। और उनके सारे अनुयायी भ्रष्ट साबित हुए।
लेकिन भ्रष्टता का पता सैंतालीस के पहले नहीं चला। चल नहीं सकता था। ताकत ही हाथ में न थी तो भ्रष्ट कैसे होंगे? तब वे बड़े शुद्ध मालूम पड़ते थे। शुभ्र खादी के वस्त्रों में उन जैसे साधु खोजना कठिन थे। वस्त्र अब भी वही हैं। शुभ्रता और भी बढ़ गई है। लेकिन भीतर का कालापन पूरी तरह प्रकट हो गया है।
एक आचरण है जो आदमी सामाजिक व्यवहार की तरह सीखता है--कैसे बोलना, कैसे उठना, कैसे चलना--ताकि तुम व्यर्थ ही किसी के विरोध में न पड़ जाओ, व्यर्थ ही शत्रु न बना लो, कुशलता से काम लो, ताकि जो लक्ष्य तुम्हारे जीवन की महत्वाकांक्षा है, वह पूरी हो सके।
राजनीतिज्ञ जब चुनाव के समय तुम्हारे पास आता है तो कैसे हाथ जोड़ कर मुस्कुरा कर खड़ा हो जाता है! इनकी मुस्कुराहट और हाथ जुड़े देख कर बुद्ध और महावीर की विनम्रता भी छोटी मालूम पड़ेगी। एकदम विनम्र हो जाता है, पानी- पानी मालूम होता है। ऐसा लगता है कि तुम्हारे चरणों में सिर रख देने को लालायित है। फिर पद पर पहुंच जाने पर यह तुम्हें पहचानेगा नहीं। यह यह बात भी नहीं मानेगा कि कभी यह तुम्हारे द्वार गया था। तुम भूल कर इसके पास मत चले जाना कि आप हमारे द्वार आए थे और हमने आपको मत दिया था, और आप हाथ जोड़ कर खड़े हुए थे। सच तो यह है कि चूंकि इसे हाथ जोड़ना पड़ा, यह तुमसे बदला लेकर रहेगा, यह तुम्हें नीचा दिखा कर रहेगा। क्योंकि परिस्थिति ऐसी थी, हाथ जोड़ने पड़े, तुम्हें भुला नहीं सकता; यह तुम्हारा अपमान करके रहेगा।
तो यह एक आचरण है। ऐसा आचरण ऊपर आचरण भीतर गहन पाखंड है। जीसस निरंतर अपने वचनों में कहते हैं, अरे ओ पाखंडियो! अपने शिष्यों को कहते हैं कि तुम पाखंडियों जैसे आचरण से मत भर जाना, उससे तो दुराचरण भी ठीक है। कम से कम ईमानदार तो है; कम से कम सच्चा तो है। जीसस अपने शिष्यों को कहते हैं कि ध्यान रखना, दुराचारी पहले पहुंच जाएंगे तुम्हारे सदाचारियों से। क्योंकि दुराचारी कम से कम सीधे-साफ हैं, चालाक नहीं हैं। ये तुम्हारे सदाचारी बिल्कुल चालाक हैं और पाखंडी हैं। और जिस-जिस को ये दिखा रहे हैं कि इनमें नहीं है, वही-वही इनमें छिपा है।
अगर तुम्हारे साधुओं के सिर में एक खिड़की बनाई जा सके और तुम उसके भीतर झांक सको तो तुम बहुत हैरान होओगे। वहां तुम महान अपराध को होते देखोगे; यद्यपि वे आचरण से नहीं करते ऐसा अपराध, यह उनके विचार में ही चलता है। पर विचार और आचरण का कोई फर्क नहीं है धर्म के लिए। तुमने सोचा कि हो गया; तुमने किया या नहीं, यह सवाल नहीं है। क्योंकि धर्म का इससे कुछ लेना-देना नहीं है कि तुमने क्या किया। धर्म का इससे ही संबंध है कि तुमने क्या करना चाहा, तुम्हारे भीतर क्या करने का विचार उठा। अगर तुमने व्यभिचार सोचा तो व्यभिचार हो गया। कानून तुम्हें न पकड़ पाएगा, लेकिन परमात्मा के कानून से तुम बच न सकोगे। इस जमीन का कानून तुम्हें न पकड़ पाएगा। तुम अपने मन में बैठ कर किसी की भी हत्या करते रहो, कोई अदालत तुम पर मुकदमा नहीं चला सकती। कम से कम सपने की स्वतंत्रता है। तुम स्वप्न देख सकते हो हत्या के, कोई कुछ

नहीं कह सकता। जब तक तुम कृत्य न करो तब तक तुम गिरफ्त में नहीं आते। क्योंकि संसार कृत्य से जीता, कृत्य से सोचता है। संसार का सिक्का कृत्य है। लेकिन परमात्मा का सिक्का और। वहां सोच-विचार... आखिरी हिसाब इसका नहीं है कि तुमने क्या किया, आखिरी हिसाब इसका है कि तुम क्या करना चाहते थे।
तब तुम पापियों में और पुण्यात्माओं में बहुत फर्क न पाओगे। तब तुम अपने पुण्यात्माओं को पापियों से भी बड़ा पापी पाओगे। क्योंकि पापी तो गुजर जाता है, कर लेता है, निपट जाता है; पुण्यात्मा सोचता ही रहता है, सोचता ही रहता है। वही-वही पुनरुक्त होता रहता है। उसकी आत्मा एक गर्त में पड़ती जाती है। उसकी आत्मा के चारों तरफ एक ही धुआं घूमने लगता है; वह पाप का धुआं है। ऐसा आचरण बेबुनियाद है। और ऐसा आचरण रेत पर बनाए गए भवन की तरह है जो गिरेगा ही देर-अबेर। संयोग है कि थोड़ी देर टिक जाए। कागज की नाव है, इससे तुम यात्रा न कर सकोगे। यह तुम्हें डुबाएगी। इससे तो बेहतर है तुम बिना नाव के ही यात्रा कर लो। क्योंकि बिना नाव के जो यात्रा करता है वह तैरने का इंतजाम करके चलता है। कागज की नाव में जो चलता है वह सोचता है, नाव पास है; तैरने की जरूरत क्या? तैरना सीखने का प्रयोजन क्या? लेकिन कागज की नावें पार नहीं जातीं, बीच में डूब जाती हैं।
और फिर यह जो ऊपर-ऊपर से साधा गया आचरण है, यह तुम्हें बड़ी भीतरी कलह में डाल देगा। एक कांफ्लिक्ट, एक द्वंद्व तुम्हारे भीतर चलता ही रहेगा। क्योंकि जो भी तुम करना चाहोगे, करोगे नहीं; और जो भी तुम करोगे वह तुम करना न चाहोगे। मुस्कुराओगे ऊपर, भीतर क्रोध से भरे रहोगे। तुम्हारा जीवन नरक बन जाएगा। तुम दोनों दिशाओं में तने रहोगे।
अशांति और क्या है? पाखंड के बीज अशांति लाते हैं। संताप और क्या है?
कि तुम इस तरह खिंचे हो दो चीजों में कि न इस तरफ हो पाते हो, न उस तरफ हो पाते हो। ऊपर से तुम्हें लगता है कि क्रोध बुरा है, क्रोध करना नहीं; और भीतर क्रोध उबलता है। तब तुम एक मुखौटा ओढ़े लेते हो, मुंह छिपा लेते हो, झूठे चेहरे मुंह पर ढांक लेते हो। पर तुम किसको धोखा दे रहे हो? दूसरे को चाहे तुम देने में सफल भी हो जाओ, अपनी ही अंतरात्मा के समक्ष तो तुम नग्न ही रहोगे। वहां तो कोई मुखौटे काम न देंगे। और वहां तो तुम जानोगे ही कि असलियत क्या है। सत्य इस तरह के मुखौटों से कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। और इनको जरा में हिलाया जा सकता है।
लाओत्से कहता है कि एक ऐसा चरित्र भी है जिसे हिलाना आसान नहीं। उस चरित्र की बुनियाद तुम्हारे स्वभाव में है; चालाकी में नहीं, तुम्हारी प्रज्ञा में है; गणित में नहीं, तुम्हारी अंतस चेतना में है। होशियारी में नहीं; होशियारी को बहुत होशियारी मत समझना। होशियारी अंत में बड़ी नासमझी सिद्ध होती है। होशियारी में नहीं, होश में असली चरित्र की बुनियाद रखी जाती है। फर्क को समझ लो। फिर हमें इस सूत्र को समझना आसान हो जाएगा। क्रोध तुम्हारे जीवन में है--एक तथ्य। इस क्रोध के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो है कि तुम इसे दबा दो, छिपा दो अपने ही भीतर। लेकिन जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह मिट नहीं गया है। और जो तुम्हारे भीतर छिपा है उसे रोज-रोज छिपाना पड़ेगा; क्योंकि वह रोज-रोज बाहर आना चाहेगा। और जिसे तुम भरते ही जाओगे भीतर वह धीरे-धीरे तुम्हारे ऊपर से बहने लगेगा। क्योंकि भरने की भी एक सीमा है। जगह भी सीमित है तुम्हारे भीतर।
इसलिए एक बहुत अनूठी बात समझ लेना। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो लोग रोज-रोज क्रोध कर लेते हैं और उसे दबाते नहीं, इनमें से कभी शायद ही कोई आदमी हत्या करता है। शायद ही। असंभव है। लेकिन जो लोग क्रोध को दबाते रहते हैं इनमें से अधिक लोग हत्या करते हैं। क्योंकि इतना क्रोध इकट्ठा हो जाता है कि फिर छोटी-मोटी घटना से तृप्त नहीं होता, फिर हत्या ही चाहिए। जब तक तुम किसी की गर्दन ही न तोड़ दोगे, सिर ही न फोड़ दोगे, लहूलुहान ही न कर दोगे, जब तक तुम जीवन को सामने ही अपने तड़पते हुए, मिटते हुए न देख लोगे, तब तक तुम्हारी आत्मा को शांति न मिलेगी।
अगर कोई मुझसे पूछे कि क्रोध करना ही हो और बचने का कोई उपाय ही न हो तो क्या करना, तो मैं उससे कहूंगा, जब भी करना हो कर लेना, उसे इकट्ठा मत करना। छोटे बच्चों जैसा करना; क्रोध आए जब, पूरा निकाल लेना। इसलिए छोटे बच्चे

घड़ी भर बाद हंस रहे हैं; जिस बच्चे से घड़ी भर पहले लड़े थे और कहा था कि अब जिंदगी भर बोलेंगे नहीं, खत्म हो गई बात, अब तुम्हारी शक्ल न देखेंगे, घड़ी भर बाद फिर दोनों पास बैठे हैं और गपशप कर रहे हैं। जैसे वह बात आई और गई, जैसे उससे कोई जीवन का लेना-देना नहीं है। एक झोंका था हवा का, आया और गया। और झोंका साफ कर गया, धूल-धवांस झाड़ गया।
अगर क्रोध करना ही हो तो बच्चों जैसा करना--कर लेना और इकट्ठा मत करना। क्योंकि इकट्ठा करने वाला ही मुसीबत में पड़ेगा। वह हत्या करेगा। वह कोई भयानक अपराध करेगा। जब क्रोध ज्यादा हो जाएगा तो छोटे-मोटे कृत्य से तृप्त न होगा; अकारण बहेगा। जो आदमी रोज-रोज क्रोध कर लेता है, जब जरूरत होती है तब क्रोध कर लेता है, वह आदमी क्रोधी नहीं है। उसका कोई कृत्य क्रोध का होता है, लेकिन बस कृत्य ही होता है। चौबीस घंटे वह आदमी हलका-फुलका होता है। और जो आदमी क्रोध नहीं करता, इकट्ठा करता है, उसके कृत्य में क्रोध नहीं होता, उसके व्यक्तित्व में क्रोध हो जाता है। जहर सबमें फैल जाता है; वह चौबीस घंटे क्रोधी होता है। उसके चौबीस घंटे में क्रोध की छाया पड़ती रहती है। वह सामान भी रखेगा तो जोर से रखेगा; दरवाजा खोलेगा तो जोर से खोलेगा। जूते उतारेगा तो ऐसे कि जैसे दुश्मन को फेंक रहा हो। वह बात करेगा तो उसकी बात में जहर होगा। वह देखेगा तो उसकी आंखों में कांटे होंगे। वह प्रेम भी करेगा तो उसके प्रेम में भी हिंसा होगी।
वात्स्यायन ने, जिसने सबसे पहले जगत में कामशास्त्र पर विचार किया, उसने लिखा है कि प्रेम तब तक अधूरा है जब तक प्रेमी एक-दूसरे को काटें न, लोचें न। तो प्रेम की अनेक बातों में नखदंश और प्रेम की अनेक बातों में दांतों के चिह्न प्रेमी पर न छूट जाएं तब तक प्रेम अधूरा है। लेकिन प्रेम में तुम काटना चाहोगे? कि लोंचना चाहोगे? यद्यपि प्रेमी यह करते हैं। निश्चित ही, यह जहर कहीं और से आ रहा है। अन्यथा प्रेम में तो आदमी अति कोमल होगा। काटने की बात ही बेहूदी है। पशु भी नहीं करते प्रेम में काटना या लोंचना तो आदमी क्यों करेगा?
लेकिन आदमी करता है। और ऐसी घटनाएं घटी हैं कि कभी-कभी प्रेमियों ने एक-दूसरे की हत्या कर दी--प्रेम में। ऐसे कुछ मुकदमे दुनिया में चले हैं जब कि पहली ही सुहागरात, पति ने गर्दन दबा दी पत्नी की। और वह बड़े प्रेम में था। और वह खुद भी भरोसा न कर सका कि क्या हो गया। और अदालत में वह कहता है तो कोई उसकी मानता नहीं! वह कहता है कि मैं तो इतना प्रेम करता था, जार-जार रोता हूं कि मुझसे क्या हो गया। यह किस प्रेत ने मुझे पकड़ लिया! किस शैतान ने मुझे पकड़ लिया! मैं आविष्ट हो गया; मैं मैं नहीं था। यह मुझसे हो नहीं सकता, क्योंकि अपनी प्रेयसी को मैं क्यों मारूंगा? और कोई कारण नहीं मारने का। और अभी तो पहली ही रात थी। और कितने दिन से आशा संजोई थी।
लेकिन अगर तुम क्रोध को इकट्ठा करते जाओ तो वह किसी भी क्षण बह सकता है। और प्रेम का क्षण बड़े खुलने का क्षण है। क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम सब खिड़की-दरवाजे खोल देते हो। अगर क्रोध बहुत भरा हो तो बह जाएगा। तुम करोगे क्या? घड़े में जो भरा है वह बाहर आ जाएगा, अगर सब खुल जाए। तो प्रेम में तुम अपने को सम्हाले नहीं रख सकते, नहीं तो प्रेम न कर पाओगे। और सम्हालना छोड़ा कि जो तुम्हारे भीतर भरा है वही बाहर आ जाएगा।
तो क्रोध के साथ एक तो रास्ता है कि तुम उसे दबाओ, भीतर-भीतर सरकाते जाओ; तुम्हारे अचेतन में लबालब क्रोध हो जाए। तब तुम क्रोधी व्यक्ति हो जाओगे। भला तुम्हारा क्रोध का कृत्य हो या न हो, तुम्हारे व्यक्तित्व में क्रोध का जहर होगा। तुम्हारे साधु-संन्यासियों में तुम ऐसे आदमियों को पाओगे। दुर्वासा तुम्हें सब जगह मिल जाएंगे। दुर्वासा ऋषि बड़े रिप्रेजेंटेटिव, प्रतिनिधि ऋषि हैं। उन जैसे ऋषि तुम्हें जगह-जगह मिलेंगे। छोटी सी बात उन्हें आगबबूला कर देगी। बात का बतंगड़ हो जाएगा। बहुत क्षुद्र सी बात उन्हें क्रोध से भर देगी। वे विनाश को उतारू हो जाएंगे, अभिशाप उनसे बहने लगेगा। क्रोध को अगर दबाया तो तुम्हारा अचेतन जहरीला हो जाएगा।
और यही पहले तरह का चरित्र करता है; क्रोध को, काम को, लोभ को, मोह को दबाता है। कचरा भीतर भरता है। और जितना यह कचरा भीतर भरता जाता है,

तुम्हारी आत्मा तुमसे उतनी ही दूर होती चली जाती है। फिर तुम भीतर जाने में भी डरने लगोगे। क्योंकि भीतर गए तो यही कचरा पहले मिलेगा। तब तुम बाहर ही बाहर रहोगे, घर के बाहर ही घूमोगे, पोर्च में ही विश्राम करोगे। उससे भीतर जाने की तुम्हारी हिम्मत टूट जाएगी।
आखिर इतना तुम सुनते हो, सारी दुनिया के बुद्ध पुरुष कहते हैं, भीतर जाओ, जानो अपने को, आत्मज्ञान, अपनी पहचान; तुम जाते नहीं। तुम सुन लेते हो। कहते हो, ठीक है, जाएंगे कभी; लेकिन जाते नहीं। तुम जानते हो कि भीतर गए तो ब्रह्म से मिलने की तो कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती, मिलेगा यह कचरा जो तुमने दबाया है। और जब भी कभी तुम भीतर गए हो थोड़े तो यही कचरा मिला है। इसीलिए तो तुम अकेले तक रहने में डरते हो। कोई दूसरा रहे तो मुखौटा लगा रहता है। दूसरे को दिखाने के लिए तुम अभिनय करते रहते हो। जब तुम बिल्कुल अकेले रहते हो, मुखौटा उतर जाता है। जब दूसरा है ही नहीं तो दिखाना किसको? तब अपने से संबंध होने शुरू हो जाते हैं। और अपने से तुम बड़े भयभीत हो। तुम जानते हो, कुछ उपद्रव हो जाएगा।
बहुत से प्रयोग किए गए हैं वैज्ञानिक ढंग से, कि लोगों को तीन सप्ताह
के लिए एकांत में रख दिया गया, बिल्कुल एकांत, गहन अंधेरी कोठरी में। सब सुविधा जुटा दी गई है, कोई कमी नहीं है। तीन सप्ताह में लोग पागल हो जाते हैं। क्या हो जाता है? पागल? और यह आदमी स्वस्थ था, ठीक था, सब तरह से साधारण था। अचानक पागल क्यों हो गया?
तीन सप्ताह बहुत ज्यादा है अपने साथ रहना। और तीन सप्ताह अंधेरे में अपने को ही देखना, अपने से ही मिलना, तो सब कचरा दिखाई पड़ने लगता है। सब घाव फिर से हरे हो जाते हैं, मवाद ही मवाद मालूम होती है। घबड़ाहट हो जाती है। उस घबड़ाहट में आदमी पागल हो जाता है।
कोई अपने साथ रहना नहीं चाहता। अकेलेपन से तुम बचते हो। मैंने ट्रेन में बहुत वर्षों तक सफर की, तो मैं देख कर हैरान हुआ कि लोग एक ही अखबार को चार-चार दफे पढ़ते हैं, लेकिन खाली नहीं बैठ सकते। उस अखबार को पहले पढ़ लेते हैं। ठीक शुरू से, जहां लिपटन की चाय का विज्ञापन कोने में है, आखिर तक कि कौन संपादक है, कौन प्रकाशक है, वहां तक पढ़ गए। फिर से शुरू कर देते हैं; थोड़ी देर रख देते हैं साइड में, फिर से शुरू कर देते हैं; उलझाए रखते हैं अपने को। खोलते हैं खिड़की, फिर बंद कर देते हैं; फिर थोड़ी देर में खोलते हैं। फिर सूटकेस खोलते हैं; फिर कुछ इधर-उधर सामान जमा कर फिर बंद कर देते हैं।
लंबी यात्रा में अगर तुम चुपचाप किसी आदमी को देखते रहो तो तुम बहुत हैरान होओगे कि यह कर क्या रहा है! क्यों कर रहा है! उसे भी पता हो जाए तो वह भी हैरान होगा। लेकिन करने का वह सब उपाय कर रहा है अपने से बचने के लिए इस अकेलेपन में। इसलिए अजनबी से लोग बातचीत शुरू कर देते हैं; व्यर्थ की बातचीत शुरू कर देते हैं। मौसम की चर्चा शुरू कर देते हैं। अब दोनों को दिखाई पड़ रहा है कि बाहर पानी गिर रहा है; इसमें कुछ कहने का नहीं है। लेकिन कुछ भी बात चाहिए।
अजनबियों से लोग मौसम की ही चर्चा शुरू करते हैं पहले कि कैसी सुंदर रात है। क्योंकि दूसरी कोई भी चर्चा खतरनाक हो सकती है। अभी पक्का पता नहीं है कि अजनबी कम्युनिस्ट है, कि हिंदू है, कि मुसलमान है। मौसम बिल्कुल निष्पक्ष बात है। इसमें कोई ज्यादा मत का सवाल नहीं है, झगड़े का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जब चांद निकला है तो यह भी कहेगा कि हां, सुंदर है, इसमें एकमत हो जाएगा। और कोई दूसरी बात उठाना खतरे से खाली नहीं है; कहीं विरोध हो जाए। और यह मौका विरोध करने का नहीं है; यहां साथ चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसके लड़के ने एक दिन पूछा कि जब भी आप बाल बनवाने नाई के यहां जाते हैं तो आप हमेशा मौसम-मौसम की चर्चा क्यों करते हैं नाई से? दूसरी बात क्यों नहीं करते? घर पर तो आप और कई बातें करते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, तू समझता नहीं। जब एक आदमी के हाथ में उस्तरा हो तो कोई भी ऐसी बात करना, जिसमें विरोध हो जाए, उचित नहीं है। मौसम बिल्कुल ठीक है। राजनीति में भेद हो सकता है, धर्म में विरोध हो सकता है, दर्शन-शास्त्र में अलग मत हो सकता है। और उस आदमी के हाथ में छुरा है! अपनी गर्दन कटवानी है?

गुस्से में आ जाए, क्रोध हो जाए। ऐसी बात करनी उचित है जो बिल्कुल तटस्थ है, जिसमें कोई झगड़े का उपाय नहीं।
आदमी अपने से भयभीत है। और भय का कारण है कि सब जो बुरा है भीतर दबा लिया।
ऐसे चरित्र की कितनी जड़ें हो सकती हैं? कोई जड़ ही नहीं है, बिना जड़ का चरित्र है। इसे हिलाने में कोई कठिनाई है? इसे कोई भी हिला दे सकता है। तुम बिल्कुल अपनी पत्नी से मात्र प्रेम करते हो। अगर ऐसा ही प्रेम है तो कोई भी सुंदर स्त्री सड़क से निकलती हुई इसे हिला दे सकती है। हिलाने की जरूरत भी नहीं है। उस स्त्री को पता भी नहीं होगा कि आप हिल गए, कि आपके मन में विचार चल पड़ा, कि कामवासना जग गई। कोई भी छोटी सी घटना आंदोलित कर देगी।
दूसरा चरित्र है जो दमन से पैदा नहीं होता, जो जागरण से पैदा होता है। क्रोध को दबाना नहीं है, क्रोध को समझना है। लोभ को दबाना नहीं है, लोभ को समझना है। लोभ क्या है? उसके पक्ष-विपक्ष में होने की आवश्यकता नहीं है, उसकी निंदा भी नहीं करनी है, क्योंकि परमात्मा ने जो भी दिया है कोई प्रयोजन होगा। अस्तित्व में निष्प्रयोजन तो कुछ भी नहीं है। अगर क्रोध दिया है तो कोई आधार होगा। क्रोध दिया है तो कारण होगा। क्रोध दिया है तो कोई सदुपयोग होगा। क्रोध दिया है तो इस ऊर्जा से कुछ निर्मित हो सकता होगा। तुम्हें पता न हो आज कि क्या करें।
तुम्हें पता न हो कि घर में सितार रखा है, यह संगीत इससे पैदा होता है।
और तुमने कभी संगीत इससे पैदा होते देखा भी नहीं। कभी कोई चूहा धक्का मार देता है तो रात में नींद टूट जाती है। कभी कोई बच्चा आकर तार छेड़ देता है तो घर में सिर्फ शोरगुल मच जाता है। इससे तुमने संगीत पैदा होते देखा नहीं; क्योंकि संगीतज्ञ के हाथों ने इसे छुआ नहीं। तुम अपरिचित हो। सितार भी शोरगुल पैदा करेगा, अगर तुम जानते नहीं कि कैसे बजाएं। ऐसा ही शोरगुल तुम्हारे व्यक्तित्व में हो रहा है। तुम जानते नहीं कि कैसे जीवन को बजाएं, जीवन की बांसुरी से कैसे सौंदर्य उठे, संगीत उठे। इससे क्रोध उठ रहा है, इससे लोभ उठ रहा है। लोभ और क्रोध तो सिर्फ अभाव हैं। वे तो यह बताते हैं कि तुम्हें बजाना न आया। वे तो यह बताते हैं कि तुम राग को सम्हाल न पाए। वे तो यह बताते हैं कि जो तुम्हें मिला था, उसका तुम संयोजन न बिठा पाए। तुम्हारी दशा वैसी है कि आटा रखा हो, पानी रखा हो, घी रखा हो, सिगड़ी जल रही हो--और तुम भूखे बैठे हो, क्योंकि रोटी बनाने का तुम्हें कुछ पता नहीं है। सब मौजूद है, सिर्फ मिलाना है ठीक अनुपात में, अंगीठी पर चढ़ाना है; ठीक समय देना है। जब भूख है तो पास ही कहीं भोजन छिपा होगा; क्योंकि भूख अकारण नहीं हो सकती। और भोजन न हो तो भूख नहीं दी जा सकती। और फिर हमने उनको भी देखा है जो तृप्त हो गए। हमने बुद्ध को देखा है, जिनकी भूख जा चुकी। उन्होंने भोजन बना लिया है; उन्होंने रोटी तैयार कर ली है। आटा अकेला नहीं खाया जा सकता। खाओगे, पेट में दर्द होगा, तकलीफ होगी। आटे के दुश्मन हो जाओगे। पानी अकेला पीओगे, भूख नहीं मिटेगी। थोड़ी देर पेट भर जाएगा, फिर खाली हो जाएगा। और जोर से भूख लगेगी। आग से सेंकते रहोगे हाथ, पसीना बहेगा, भूख न मिटेगी। तत्व सब मौजूद हैं; रोटी बनानी है। सितार तैयार है; सिर्फ अंगुलियां साधनी हैं।
जिसे तुम क्रोध कह रहे हो, वही करुणा बनेगा। वही ऊर्जा जिसे तुम लोभ कह रहे हो, वही दान बनेगा। वही ऊर्जा--जिस दिन तुम संगीतज्ञ हो जाओगे, जिस दिन तुम बजाना सीख लोगे--जिसे तुम काम कह रहे हो, वही ब्रह्मचर्य बनेगा। वही ऊर्जा! एक ही ऊर्जा है; जब तुम उसे भ्रष्ट होने देते हो तो क्रोध हो जाती है, जब तुम उसे सम्हाल लेते हो, रूपांतरित कर लेते हो, करुणा हो जाती है। एक ही ऊर्जा है। जब तुम छिद्रों से बहने देते हो तो कामवासना हो जाती है, जब तुम अछिद्र हो जाते हो और उसे संयम में साध लेते हो--संयम यानी संगीत--वही ऊर्जा ब्रह्मचर्य हो जाती है।
जो भी तुम्हारे पास है, सभी सार्थक है। तुम बड़े धनी हो। यह अस्तित्व इतना समृद्ध है कि यहां गरीब पैदा होते ही नहीं। और अगर गरीब हो, अपने कारण हो। अगर रो रहे हो, अपने कारण। यह सारा जगत हंसता हुआ है। यहां रोने में तुम्हारी कोई भूल हो रही है। और उस भूल में तुम ऐसा मत करना कि यह आटा गलत

है, फेंक दो; कि यह आग गलत है, बुझा दो; कि पानी भूख नहीं मिटाता, उलटा दो। फिर तो तुम भूख को कभी भी न बुझा पाओगे; क्योंकि तुमने साधन ही नष्ट कर दिए।
तो मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम क्रोध को फेंक दो। वह आटा है। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम कामवासना को बुझा दो। वह आग है। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम लोभ के दुश्मन हो जाओ। क्योंकि वह जल है। उन सबसे मिल कर तुम्हारी भूख मिटेगी। उन्हें समझो, उन्हें पहचानो, उनका सम्यक अनुपात खोजो। उनके प्रति बोध।
बोध आने में बाधा पड़ रही है, क्योंकि तुम पहले ही से दुश्मनी लिए बैठे हो। अब जिस आदमी ने पहले ही से आटे से दुश्मनी बांध ली, वह आकर बैठेगा तो पीठ करके बैठेगा आटे की तरफ। दुश्मन को क्या देखना? तुमने जीवन में जो भी ऊर्जाएं हैं उनके साथ दुश्मनी समझ ली है। छोड़ो दुश्मनी। समझ को पकड़ो। पहले पहचानो, निंदा मत करो। क्योंकि निंदा जो करेगा वह पहचान न पाएगा। कहीं हम अपने शत्रु को पहचान सकते हैं? जिसका हमारे मन में विरोध है उसे हम पहचानना ही नहीं चाहते; उसे हम चाहते हैं कि वह हो ही न। पहचान का क्या सवाल है? वह रास्ते पर मिल जाए तो हम आंखें नीचे झुका कर गुजर जाते हैं। वह हाथ बढ़ाए तो हम पीठ फेर लेते हैं।
नहीं, तुम जीवन की ऊर्जाओं से शत्रुता मत बांधना। क्योंकि जीवन की ऊर्जाएं जीवन की ऊर्जाएं हैं। कुछ भी निरर्थक नहीं है। इस अस्तित्व में एक छोटा सा तिनका भी निरर्थक नहीं है। सार्थकता तुम्हें पता न हो, यह बात तुम्हारी रही। समझ बढ़ाओ, सार्थकता का पता चलेगा। लड़ो मत, जागो।
जैसे-जैसे तुम जागोगे वैसे-वैसे तुम चकित होओगे। इधर तुम जागते हो, इधर क्रोध क्षीण होने लगता है--बिना कुछ किए, बिना छुए। इधर तुम्हारा जागरण बढ़ता है, इधर तुम पाते हो, क्रोध असंभव होने लगा। क्योंकि जो ऊर्जा तुम्हें जगा रही है वह ऊर्जा भी तो क्रोध से ही ली जाएगी, वह ऊर्जा लोभ से ली जाएगी। जो व्यक्ति ध्यान करने लगता है, धन की तरफ जाने की उसकी दौड़ अपने आप कम हो जाती है। क्योंकि अब बड़ा धन उपलब्ध होने लगा, छोटी दौड़ छूटने लगी। जब हीरे मिलते हों तो कंकड़-पत्थर कौन इकट्ठे करता है? तुम छोटे से मत लड़ो, तुम बड़े को जगाओ। छुद्र से लड़े कि भटक जाओगे। विराट से जुड़ो; छोटा अपने आप विराट में लीन हो जाएगा। और विराट में लीन होकर छोटा भी विराट हो जाता है।
बुद्ध में भी क्रोध था, जैसा तुममें है; विराट में लीन होकर क्रोध करुणा बन गया। क्रोध का अर्थ हैः दूसरे को विनष्ट करने की आकांक्षा। करुणा का अर्थ हैः दूसरा फले-फूले, ऐसी आकांक्षा। बात वही है। दूसरा मिटे; दूसरा बने। वही ऊर्जा है, यात्रा बदल गई। लोभ का अर्थ है छीनना, और दान का अर्थ है देना। बात वही है। वे ही हाथ छीनते हैं, वे ही हाथ देते हैं। दूसरों से छीना जाता है, दूसरों को दिया जाता है। वे ही चीजें छीनी जाती हैं, वे ही चीजें दी जाती हैं। कुछ भी फर्क नहीं है। यात्रा वही है। सीढ़ी वही है, जिससे तुम नीचे आते हो और जिससे तुम ऊपर जाते हो। स्वर्ग और नरक तुम्हारी दिशाएं हैं; सीढ़ी तो एक ही लगी है।
जितनी तुम्हारी समझ होगी जीवन की ऊर्जाओं की, वैसे-वैसे तुम धन्यभाग अपना समझोगे। वैसे-वैसे तुम परमात्मा के अनुगृहीत होओगे कि कितना दिया है! और कैसा संगीत संभव था! घर में ही वाद्य रखा था; तुम बजाना न जान पाए। तुम नाच न सके; आकाश था, फूल खिले थे, पक्षी गीत गा रहे थे। तुम्हारे पैर नाच न पाए, तुम इस पूरी धुन को समझ न पाए कि क्या हो रहा है। अस्तित्व एक उत्सव है। जैसे-जैसे तुम्हारा बोध बढ़ेगा वैसे-वैसे तुम्हें चारों तरफ उत्सव दिखाई पड़ेगा। अस्तित्व दरिद्र नहीं है, बड़ा समृद्ध है। उसकी समृद्धि का कोई अंत नहीं है। फूल चुकते नहीं हैं, कितने-कितने अरबों वर्ष से खिलते हैं। चांद-तारे चुकते नहीं, कितने-कितने अरबों वर्ष से रोशनी बांटते हैं। जीवन का न कोई आदि है, न कोई अंत। उसी से तुम जुड़े हो।
इतने विराट से जुड़े हो। लेकिन तुम्हारी नजर क्षुद्र पर लगी है।
नजर को लौटाओ। चलो उलटे--गंगोत्री की तरफ, स्रोत की तरफ, भीतर की तरफ। करो प्रतिक्रमण। और तब तुम स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाओगे। और ऐसा चरित्र उपलब्ध होता है जो फिर डिगाया नहीं जा सकता। जिसका क्रोध करुणा बन गया, तुम उसे क्रोधित कैसे करोगे? क्रोध वहां बचा नहीं। और जिसने करुणा जान ली,

जिसने क्रोध का इतना परम संगीत जान लिया, तुम उसे गाली दोगे तो वह मुस्कुराएगा। क्योंकि जिसने अपनी क्रोध की ऊर्जा से करुणा की संपदा पा ली, अब उस ऊर्जा को वह क्रोध में व्यय न करेगा।
बुद्ध को कोई गाली देता है तो वे कहते हैं, तुम जरा देर से आए; थोड़े पहले आना था। अब तो मुश्किल हो गई। अब तुम मुझे क्रोधित न कर पाओगे। और तुम पर मुझे बड़ी दया आती है, क्योंकि तुम खाली हाथ लौटोगे। और तुम कितनी धारणाएं लेकर आए होगे कि अपमान करूंगा, गाली दूंगा, नीचा दिखाऊंगा, और तुम असफल लौटोगे। और मैं कुछ भी तुम्हें सहायता नहीं कर सकता; तुम जरा देर से आए, दस साल पहले आना था। तब मैं भी क्रोधित होता; तुमने गाली दी, इससे वजनी गाली मैं तुम्हें देता। तब मैं नासमझ था। तब जीवन-ऊर्जा को मैं ऐसे ही फेंक रहा था। ठीक-ठीक पता नहीं था कि इससे क्या खरीदा जा सकता है।
जिस जीवन से तुम परमात्मा खरीद सकते हो उस जीवन से तुम क्या खरीद रहे हो? उसे तुम क्षुद्र के साथ व्यर्थ ही खो रहे हो। तुम गंवा रहे हो, कमा नहीं रहे हो। और बड़ी उलटी दुनिया है। संसारी जो गंवाते हैं, लोग उन्हें समझते हैं, कमा रहे हैं; संन्यासी जो कमाते हैं, लोग समझते हैं, गंवा रहे हैं। एक ही कमाई है कि तुम्हारा जीवन उस परम संगीत से भर जाए जिसका सारा साज-सामान तुम्हारे भीतर मौजूद है, जिसे तुम जन्म के साथ लेकर आए हो। वह गीत तुम गाकर जाना--एक ही कमाई है। वह संगीत तुम बजा कर जाना--एक ही कमाई है। तब तुम हंसते हुए जाओगे। तब तुम कहते हुए जाओगे कबीर के साथ कि जिस मरने से जग डरे मेरो मन आनंद; कब मरिहों कब भेंटिहों पूरन परमानंद। तब मृत्यु का स्वागत भी तुम नृत्य से करोगे। अभी तुमने जीवन का स्वागत भी क्रोध से किया है, लोभ से किया है, क्षुद्रताओं से किया है, बीमारियों से किया है। ये दो आयाम हैं।
"जो दृढ़ता से स्थापित है, आसानी से डिगाया नहीं जा सकता।"
तुम डिग जाते हो। दूसरे को कसूर मत देना; इतना ही समझना कि तुम दृढ़ता से स्थापित नहीं हो। जब कोई गाली दे और तुम क्रोध से भर जाओ तब यह मत समझना कि दूसरे ने तुम्हें कोई नुकसान पहुंचाया; इतना ही जानना कि तुम्हारा चरित्र दृढ़ता से स्थापित नहीं है। और इस आदमी को धन्यवाद देना कि तेरी बड़ी कृपा है कि तूने बता दिया कि कितना गहरा हमारा चरित्र है। हमें पता ही न चलता अकेले रहते तो। अकेले रहते तो हमें कैसे पता चलता कि हम दृढ़ता से स्थापित नहीं हैं।
अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग घर-द्वार छोड़ कर हिमालय चले जाते हैं वे वहां समझने लगते हैं कि उनको चरित्र उपलब्ध हो गया। क्योंकि वहां कोई हिलाने वाला नहीं है। और जब वापस लौटते हैं, तत्क्षण हिल जाता है। फिर डरने लगते हैं तुम्हारे पास आने से, क्योंकि वे समझते हैं कि तुम उनके पतन का कारण हो। तुम उनके पतन का कारण नहीं, तुम केवल परीक्षा हो। तुम्हारे पास आकर कसौटी मिल जाती है, पहचान हो जाती है कि कितना गहरा है।
एक संन्यासी तीस वर्षों तक हिमालय में रहा। आश्वस्त हो गया कि सब ठीक है। न क्रोध, न लोभ, न मोह, न काम, शांत हो गया हूं। अब क्या डर रहा? तो कुंभ का मेला था, नीचे उतरा कि अब तो कोई भय नहीं संसार से। मेले में आया। किसी आदमी का पैर पर पैर पड़ गया। भीड़ थी, धक्कम-धुक्का था, पैर पर पैर पड़ गया। एक क्षण में तीस साल हिमालय के खो गए। एक क्षण न लगा, तीस साल ऐसे पुछ गए जैसे पानी पर खिंची लकीर मिट जाती है। उचक कर गर्दन पकड़ ली उस आदमी की और कहा कि तुमने समझा क्या है? अंधा है? देख कर नहीं चलता! तब होश आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं। पर वह संन्यासी ईमानदार आदमी रहा होगा। वह वापस हिमालय न गया। उसने कहा, इस हिमालय का क्या मूल्य है? भीड़ में ही रहूंगा अब, अब यहीं साधना है; क्योंकि हिमालय में तीस साल साधा और भ्रांति पैदा हो गई कि सध गया। और इधर भीड़ ने एक क्षण में मिटा दिया।
भीड़ का कोई कसूर नहीं है। कोई दृढ़ता के आधार न थे। समाज में ही साधना, भीड़ में ही साधना, संसार में ही रहते हुए साधना। क्योंकि जहां निरंतर कसौटी हो रही है वहीं तुम जांच पाओगे कि दृढ़ता गहरी हो रही है या नहीं, जड़ें उपलब्ध हो रही हैं या नहीं। मत छोड़ना पत्नी को, मत छोड़ना बच्चों को, मत छोड़ना दुकान-बाजार को। जहां हो वहीं रहना और होश को सम्हालना। तब तुम बड़े चकित होओगे कि ये सारे मित्र, प्रियजन, परिजन, दुश्मन, भीड़, बाजार, कोई भी

तुम्हारे विरोधी नहीं हैं; सब तुम्हें सहारा दे रहे हैं। क्योंकि सभी तुम्हारी परीक्षा हैं; और सभी तुम्हारी कसौटी हैं। तब मरते वक्त तुम मित्रों को ही धन्यवाद न दोगे, तुम अपने शत्रुओं को भी धन्यवाद दोगे। क्योंकि उनके बिना भी तुम पा न सकते थे।
"जिसकी पकड़ पक्की है, वह आसानी से छोड़ता नहीं है।"
तुम्हारी पकड़ तो छूट-छूट जाती है। वह है ही नहीं।
"पीढ़ी दर पीढ़ी उसके पूर्वजों के त्याग अबाध रूप से जारी रहेंगे।"
दो तरह की पूर्वजों की यात्रा है। एकः तुम्हारे पिता, तुम्हारे पिता
के पिता; तुम्हारी शरीर की परंपरा। और एकः तुम्हारा यह जन्म, और तुम्हारा पिछला जन्म, और तुम्हारा पिछला जन्म; तुम्हारी आत्मा की परंपरा। तुम दो तरह की वसीयत लेकर पैदा हुए हो। दोनों वसीयत सनातन हैं। क्योंकि तुम सदा से हो। तुम्हारा शरीर सदा से है। शरीर भी अपनी संपदा को संगृहीत करके चलता है, और आत्मा भी अपनी संपदा को संगृहीत करके चलती है। जो तुमने किया है अतीत जन्मों में, उसकी हवा तुम्हारे साथ आज भी है। क्योंकि तुम्हारा सारा अतीत सिमट आया है इस वर्तमान के क्षण में। ऐसा मत सोचना कि अतीत नष्ट हो गया; कुछ भी नष्ट नहीं होता। इस वर्तमान में तुम्हारा सारा अतीत समाया हुआ है। इसलिए तो हिंदू कर्म की बहुत-बहुत धारणा और विचारणा करते हैं। क्योंकि कर्म का अर्थ है, तुमने जो किया है कभी भी वह सब समाया हुआ है आज। तुम आज ही पैदा नहीं हुए हो, तुम्हारा सारा अतीत आज के भीतर छिपा है। न केवल तुम्हारा अकेला। इस संबंध में लाओत्से हिंदुओं से बड़ा भिन्न है, और ज्यादा सही है। हिंदू तो सिर्फ तुम्हारे अतीत की बात करते हैं। लाओत्से कहता है कि तुम्हारा अतीत तो समाया हुआ ही है, तुम्हारे पूर्वजों का अतीत भी समाया हुआ है। क्योंकि तुम जिनसे पैदा हुए हो, जिनका कण तुम्हारे जीवन का आधार बना है, जिनकी वीर्य-ऊर्जा ने तुम्हारे शरीर और मन को ढांचा दिया है, वे भी तुममें छिपे हैं, वे भी तुम्हारे भीतर छिपे हैं। और तुम्हारे चरित्र में उन सबका प्रकटन होता है। अगर तुम्हारी परंपरा पाखंड की ही रही हो तो वह पाखंड प्रकट होगा।
इसलिए तुम अकेले नहीं हो। और तुम सिर्फ अपने लिए ही मत सोचना। सारा अस्तित्व तुम्हारे पीछे गुंथा है। ताने-बाने हैं जीवन के; कोई व्यक्ति अकेला नहीं है। और तुम जो भी कर रहे हो वह सिर्फ तुम्हारे लिए ही नहीं है। तुम्हारा कृत्य तुम्हारे पूरे अतीत की कथा भी कहेगा।
हिंदू कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऋण लेकर चल रहा है--पिता का ऋण, माता का ऋण, गुरु का ऋण। क्या है वह ऋण? वह ऋण यह है कि अगर तुम खिल गए वास्तविकता से तो तुम्हारे माता और पिता और तुम्हारी अनंत काल की परंपरा तुममें खिल कर प्रफुल्लित होगी। तुम जब तक न खिलोगे, वे भी पूरी तरह न खिल पाएंगे। क्योंकि वे तुममें समाविष्ट हैं। उनका खिलना भी अधूरा-अधूरा रहेगा।
इससे तुम कुछ बातें समझ पाओ; क्योंकि प्रत्येक बात बहुत सी बातों से जुड़ी है।
अधिकतम बुद्ध पुरुष अविवाहित रहे हैं। और रहने का एक कारण यह है कि अगर तुम्हें परिपूर्ण बुद्धत्व पाना हो तो तुम्हारे बच्चे भी जब तक बुद्धत्व को प्राप्त न हो जाएं, तुम्हारीशृंखला अधूरी रहेगी। क्योंकि जो मुझसे पैदा हो रहा है, जब तक वह भी न पा लेगा तब तक मैं अधूरा रहूंगा। क्योंकि वह मेरी ही यात्रा है। अधिक बुद्ध पुरुष अविवाहित रहे हैं। रहने के कारण बहुत हैं। उनमें एक बुनियादी कारण यह है--प्रसंगवशात तुमसे कहता हूं। तुम जब तक मुक्त न हो जाओगे, तुम्हारे पिता और पिता के पिता और पिता के पिता बंधे हैं। तुम्हारी मुक्ति उनकी मुक्ति भी बनेगी। व्यक्ति अकेला नहीं है, बंटा हुआ नहीं है, कटा हुआ नहीं है। हम सब एक बड़े ताने-बाने के धागे हैं।
बुद्ध ने तो इस बात को उसकी आखिरी, चरम तार्किक निष्पत्ति तक पहुंचा दिया है। कथा है कि बुद्ध जब स्वर्ग के, मोक्ष के द्वार पर पहुंचे, द्वार खुला स्वागत के लिए तैयार, लेकिन बुद्ध पीठ करके खड़े हो गए। द्वारपाल ने कहा, आप भीतर आएं। बुद्ध ने कहा, यह संभव नहीं है। जब तक अंतिम व्यक्ति मुक्त न हो जाए तब तक मैं द्वार पर ही रुकूंगा।

यह तो कथा है, लेकिन बहुत गहरे अर्थों में सही है। क्योंकि अगर अस्तित्व इकट्ठा है तो एक व्यक्ति कैसे बुद्धत्व को प्राप्त होगा? अगर हम सब जुड़े हैं और द्वीप की तरह अलग-अलग नहीं हैं, महाद्वीप की तरह हैं, तो कैसे एक व्यक्ति मुक्त होगा? एक की मुक्ति सबकी मुक्ति होगी। एक अलग होता तो अलग मुक्त हो सकता था।
लाओत्से कहता है कि तुम जिस दिन खिलोगे और तुम जिस दिन आधारित हो जाओगे, केंद्र को पा लोगे, तुम्हारी जड़ें पहुंच जाएंगी स्वभाव में, उस दिन तुम्हीं नहीं, तुम्हारी पीढ़ी दर पीढ़ी से चल रही अबाध त्यागों की परंपरा अपनी पूर्णाहुति पर आएगी। और तुम्हारे आधार पर आने वाला भविष्य एक नई सीढ़ी को पार कर लेगा।
"व्यक्ति में उसके पालन से चरित्र प्रामाणिक होगा।"
ताने-बाने की पूरी कथा लाओत्से कहता है।
"कल्टीवेटेड इन दि इंडिविजुअल, कैरेक्टर विल बिकम जिन्यून।"
जब कोई एक व्यक्ति अपने भीतर गहरा उतरता है और अपनी जड़ों से संबंध जोड़ लेता है और अपने स्वभाव के साथ एकरस हो जाता है, जब किसी व्यक्ति का चरित्र उसके अंतस से जगता है, तो चरित्र प्रामाणिक होता है, आथेंटिक होता है। नहीं तो पाखंड होता है। अगर एक व्यक्ति भी प्रामाणिक चरित्र को उपलब्ध हो जाता है, तो उसके आधार पर उसका परिवार प्रामाणिक क्षेत्र की तरफ बढ़ सकता है। क्योंकि हम अलग-अलग नहीं हैं। इससे विपरीत भी सही है। अगर परिवार चरित्र को उपलब्ध हुआ हो तो उसके भीतर पैदा हुआ व्यक्ति दुश्चरित्रता की तरफ जाने में बड़ी कठिनाइयां पाएगा, और चरित्र की तरफ जाने में बड़ी सुगमता पाएगा।
इस सत्य को अब पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है, एक दूसरी दिशा से। पहले जब कोई आदमी पागल, विक्षिप्त, मानसिक रोग-ग्रस्त हो जाता था तो हम उसका इलाज करते थे। फिर धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिकों को समझ में आना शुरू हुआ कि इस व्यक्ति के इलाज से कुछ भी न होगा जब तक इसका परिवार न बदले। क्योंकि यह अनुभव में आया कि व्यक्ति को अगर अस्पताल में रखो, वह ठीक हो जाता है। घर भेज दो, फिर महीने, दो महीने में वापस बीमारी शुरू हो जाती है। तो निरंतर अध्ययन करने से पता चला कि व्यक्ति तो एक हिस्सा है परिवार का, और जब तक पूरे परिवार में कोई गहरा रोग न हो मानसिक तब तक यह व्यक्ति रुग्ण नहीं हो सकता। लेकिन पूरा परिवार सामान्य मालूम पड़ता है; कोई पागल नहीं है दूसरा आदमी।
तब इस बात की खोज की गई कि यह कारण क्या है? तो पता चला कि जैसे परिवार में अगर दस आदमी हैं तो जो सबसे ज्यादा कमजोर है वह सबसे पहले पूरे परिवार के पागलपन को प्रकट करने का आधार बन जाएगा--जो सबसे ज्यादा कमजोर है। जैसे यह मकान गिरे तो इसमें सबसे पहले वह खंभा गिरेगा जो सबसे ज्यादा कमजोर है। परिवार इकट्ठा है; उसमें एक व्यक्ति गिरेगा जो सबसे ज्यादा कमजोर है। इसलिए अक्सर छोटे बच्चे पागल हो जाएंगे, या पैदाइश से ही विक्षिप्त होंगे। या पैदाइश से ही उनके मन में कुछ गड़बड़ होगी, व्यक्तित्व में कुछ गड़बड़ होगी। क्योंकि वे कमजोर हैं। या स्त्रियों पर निकलेगा; स्त्रियां पागल होंगी। क्योंकि वे कमजोर हैं। पुरुषों पर आते-आते देर लगती है। पहले बच्चे पागल होते हैं। अगर बच्चे न हों तो स्त्रियां पागल होती हैं। तब पुरुषों तक बात आती है। क्योंकि जो जितना कमजोर है, उतना ही संभव है कि रोग उससे प्रकट हो।
तो अगर घर में एक आदमी पागल होता है, पागल तो पूरा घर है, वह एक आदमी तो सिर्फ शिकार है कमजोर होने के कारण। वह सबसे कमजोर कड़ी है जो टूट जाती है। और हम सब उसको जिम्मेवार ठहराते हैं। और तुम्हें पता नहीं कि वह सिर्फ तुम्हारा निकास है। अगर उस व्यक्ति को हटा लिया जाए तुम्हारे घर से सदा के लिए तो दूसरा व्यक्ति पागल होगा। अब जो कमजोर होगा वह पागल होगा।
ये तथ्य बड़े वैज्ञानिक अध्ययन से जाहिर हुए तो पश्चिम में एक नई मनोचिकित्सा शुरू हुई। वह है परिवार की चिकित्सा। अकेले एक आदमी की चिकित्सा से कुछ न होगा। लेकिन यह बड़ी मुश्किल बात है। जब और थोड़ी खोज-बीन की तो पता चला कि परिवार तो पूरे गांव का एक हिस्सा है आर्गेनिक। जैसे व्यक्ति एक परिवार का हिस्सा है ऐसा परिवार गांव का हिस्सा है। तब तो झंझट

बढ़ गई। वह पूरे गांव में जो पागलपन है, सबसे कमजोर परिवार से प्रकट हो रहा है। तो ग्रुप थेरेपी पैदा हुईः समूह की चिकित्सा करो।
लेकिन वह सफलता की तरफ जा नहीं सकते, क्योंकि गांव पूरे राष्ट्र से जुड़ा है, राष्ट्र पूरे संसार से जुड़ा है, संसार पूरे विश्व से जुड़ा है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जब तक पूरी विश्वसत्ता शुद्ध न हो, स्वस्थ न हो, तब तक हम आशा नहीं बांध सकते। एक-एक व्यक्ति को ठीक करके भी कुछ होगा न, कहीं और से बीमारी निकलने लगेगी। समग्र स्वस्थ होना चाहिए। इस समग्र की स्वस्थता की खोज ही धर्म है। एक-एक की चिकित्सा से हल नहीं होने वाला। अगर हम अलग-अलग होते तो हल हो जाता।
इसलिए तुम जब रास्ते पर किसी को पागल देखो तो यह मत सोचना कि तुम सौभाग्यशाली हो, यह दुर्भाग्यशाली है। तुम उसे धन्यवाद देना, क्योंकि तुम्हारा पागलपन वह प्रकट कर रहा है। हर गांव में एकाध-दो पागलों की जरूरत है--छोटे से छोटे गांव में भी। हर गांव का पागल होता है। और वह पागल पूरे गांव के पागलपन का निकास-द्वार है, जैसे घर में एक नाली होती है जिससे कचरा- कूड़ा सब निकल जाता है। ठीक ऐसे ही वह पागल तुम्हें स्वस्थ रख रहा है। तुम उसको धन्यवाद देना। और तुम उसके अनुगृहीत रहना। क्योंकि अगर वह पागल मर जाए तो दूसरे आदमी को पागल होना पड़ेगा। एक नाली टूट जाए तो दूसरी बनानी पड़ेगी। क्योंकि घर का कचरा तो बहना ही है। कचरा है।
समग्र का स्वास्थ्य!
तो लाओत्से कहता है, "चरित्र जब व्यक्ति में पालन किया जाता है-- वास्तविक चरित्र जो स्वभाव से उठता है--तो चरित्र प्रामाणिक होता है। परिवार में उसके पालन से चरित्र अतिशय होता है, एबनडेंट।"
क्योंकि एक व्यक्ति अगर चरित्र का पालन भी करे और घर भर के लोग पाखंडी हों, तो एक तो उसे चरित्र के पालन में बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि सारा घर उसके विरोध में होगा। ऊपर-ऊपर भला प्रशंसा करे, लेकिन भीतर विरोध में होगा। इसलिए तुम जान कर हैरान होओगे कि ज्ञानियों के घरों में ज्ञानियों का बड़ा विरोध रहा है।
जीसस ने कहा है कि पैगंबर को उसके गांव में कोई पूजा नहीं मिलती। ऐसा हुआ कि जीसस ने बड़े चमत्कार किए। जहां वे गए चमत्कार हुए। व्यक्तित्व उनका वैसा था। लेकिन जब वे अपने गांव आए तो कुछ भी न कर सके। तो बाइबिल में इस बात का उल्लेख है कि उनके शिष्य बड़े चकित हुए कि आप दूर-दूर इतना चमत्कार किए हैं, हजारों लोग प्रभावित हुए हैं, गांव में कोई भी प्रभावित नहीं हो रहा आपसे? तो उन्होंने कहा, गांव में पैगंबर की पूजा नहीं होती। और गांव में लोग समझते हैं कि यह जीसस! वह जोसेफ बढ़ई का लड़का है, इसका दिमाग कुछ खराब है, अनाप-शनाप बातें करता है। किसी को गांव में आस्था नहीं है। आस्था नहीं तो चमत्कार असंभव है। क्योंकि चमत्कार पैगंबर से नहीं होता, आस्था से होता है। फिर जीसस दुबारा उस गांव नहीं गए, क्योंकि उस गांव का परिणाम उनके शिष्यों पर भी बुरा पड़ता था, यह देख कर कि अपने ही गांव में... । क्योंकि शिष्य बड़ी अपेक्षा रखते थे।
पैगंबर अपने ही गांव में बड़ी मुश्किल में पड़ता है। और अपने ही परिवार में तो और भी मुश्किल में पड़ जाता है। पूरा परिवार कितनी ही बातें करे, लेकिन भीतर एक विरोध होता है। क्योंकि यह परिवार भरोसा ही नहीं कर सकता कि हमारे बीच और ऐसा आदमी पैदा हो जाए! और हम इतने छोटे रह जाएं और यह आदमी इतना आगे चला जाए! वे अनजाने मार्गों से उसे नीचे खींच कर अपनी सतह पर लाना चाहते हैं।
इसलिए जब कोई एक व्यक्ति चरित्र की तरफ जाता है और परिवार नहीं जाता तो
वह धारा के विपरीत उसे बहना पड़ता है। उसमें उसकी शक्ति बड़ी व्यय होती है। और चरित्र उसका हो भी जाए तो भी अतिशय न होगा। वह एक ऐसा वृक्ष होगा जो बामुश्किल जिंदा है, किसी तरह पानी प्राप्त कर रहा है। फूल खिलेंगे भी तो अधखिले होंगे, क्योंकि सब तरफ विरोध है। हवाओं में विरोध है, सूरज की किरणों में विरोध है, जमीन में विरोध है।
लाओत्से कहता है, "परिवार में उसका पालन हो तो चरित्र अतिशय होगा।"

तब प्रगाढ़ता से होगा; बड़ी समृद्धि होगी। और तब उस धारा में कोई भी बह सकेगा।
"गांव में उसके पालन से चरित्र बहुगुणित होगा।"
और अगर पूरा गांव पाखंडी न हो और लोग स्वभाव में थिर हों तो हजार-हजार गुना हो जाएगा। जरा सा करो और बहुत हो जाएगा। एक कदम चलो और हजार कदम हो जाएंगे। शुभ भी भूमि चाहता है, सत्य भी भूमि चाहता है।
"राज्य में उसके पालन से चरित्र महान समृद्धि को उपलब्ध होगा। संसार में उसके पालन से चरित्र सार्वभौम होगा।"
इसीलिए तो यह होता है कि कभी-कभी एक प्रगाढ़ धारा उठती है और एकशृंखलाबद्ध ज्ञानियों का जन्म होता है; जैसा बुद्ध के समय में हुआ। क्योंकि एक ज्ञानी दूसरे ज्ञानी के लिए सहारा बन जाता है। दूसरा ज्ञानी तीसरे के लिए सहारा बन जाता है। हवा भर जाती है एक नई उत्तेजना और गरिमा से, और उस गरिमा में लोग सहजता से बह जाते हैं। बुद्ध हुए, उसी वक्त जरथुस्त्र हुआ, उसी वक्त हेराक्लाइटस हुआ, उसी वक्त लाओत्से हुआ। उसी वक्त महावीर हुए, उसी वक्त च्वांगत्से हुआ। सारे जगत में एक प्रगाढ़ लहर उठी और उस लहर में हजारों लोग पार हो गए। ये लोग और किसी समय में शायद पार न हो पाते। इसलिए जब हिंदू कहते हैं कि पंचम काल में या कलियुग में बुद्धत्व को उपलब्ध होना कठिन है, तो उसका कारण है। कठिन इसीलिए है कि परिवार झूठा, गांव झूठा, राज्य झूठा, समाज झूठा, सारी दुनिया ही झूठी है। इस पाखंड के बीच जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो तो उसे बड़ी धारा के विपरीत बहना पड़ेगा। उसकी सारी शक्ति तो धारा के विपरीत बहने में लग जाएगी। इसलिए कठिन है। और समय में कोई कठिनाई नहीं है।
लेकिन ठीक फिर वह घड़ी आ रही है। जैसा मैं बार-बार तुमसे कहा हूं कि हर पच्चीस सौ वर्ष में मनुष्य-जाति का इतिहास एक वर्तुल पूरा करता है। बुद्ध के पच्चीस सौ वर्ष पहले कृष्ण, पतंजलि। बुद्ध के समय में बड़े ज्ञानियों कीशृंखला। फिर पच्चीस सौ वर्ष पूरे होने के करीब आ गए हैं। इन आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में दुनिया में बड़ा प्रगाढ़ वेग उठेगा और तुम उस वेग को चूक मत जाना। क्योंकि वह चूक जाने पर फिर बहुत कठिनाई है। फिर शायद तुम पच्चीस सौ साल प्रतीक्षा करोगे, तब दुबारा उस वेग की घड़ी आएगी। ऐसे ही जैसे कि जब हवा बह रही हो पूरब की दिशा में, तुम नाव को खोल दो तो बिना पतवार उठाए नाव पूरब की तरफ बहने लगती है। और जब हवा पश्चिम की तरफ बह रही हो तब तुम्हें पूरब जाना हो तो तुम्हें बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। पहुंच भी जाओ तो बिल्कुल थके हुए पहुंचोगे।
फिर एक घड़ी आ रही है। उत्तुंग लहर उठ रही है सारी दुनिया में, बड़ी नई चहल-पहल है अंतःकरण में; लोग सत्य के संबंध में, परमात्मा के संबंध में पुनर्विचार कर रहे हैं। जैसे रात करीब है टूटने के और सुबह होने के पास आ रही है। इस क्षण को तुम मत खो देना। इस क्षण का अगर तुम ठीक उपयोग कर लोगे तो तुम्हें सिर्फ बह जाना है, लहर ले जाएगी। यह क्षण खो गया तो फिर तुम्हें तैरना होगा। फिर लहर न ले जाएगी।
इसलिए जब भी यह क्षण आता है तब ऐसे ज्ञानी पैदा होते हैं जो कहते हैंः लेट गो, छोड़ दो। जब यह लहर नहीं होती, बीच के पच्चीस सौ वर्षों में ऐसे ज्ञानी आते हैं जो कहते हैंः बड़ा श्रम करना पड़ेगा। अगर तुम बीच के पच्चीस सौ वर्षों में पड़ जाओ तो पतंजलि रास्ता है; अगर तुम पच्चीस सौ वर्ष के किनारे पड़ जाओ तो लाओत्से रास्ता है। इसलिए मैं तुमसे निरंतर कह रहा हूं कि प्रयास का बड़ा सवाल नहीं है, समर्पण की बात है। संकल्प की कोई जरूरत नहीं है। तुम छोड़ दो। अभी तैयार हो रही है लहर, और जल्दी ही यह किनारा छोड़ देगी लहर। तुम अगर छोड़ने को तैयार हो गए तो बह जाओगे। सुगम है अभी।
इसलिए दो धाराएं हैं धर्मों की। एक धारा है जो मध्य के काल में पैदा होती है, पच्चीस सौ वर्ष के बीच में। वह धारा सदा जोर देती हैः श्रम, संकल्प, योग, हठ। दूसरी धारा है धर्म की जो पच्चीस सौ साल पूरे होने पर पैदा होती हैः झेन, लाओत्से। छोड़ दो; तुम्हें कुछ करना नहीं है। तुम्हें कोई श्रम नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ बह जाना है। ऐसी घड़ियों में सारा अस्तित्व तुम्हें साथ देता है। एक वर्तुल पूरा होने के करीब होता है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप इतने लोगों को संन्यासी बना रहे हैं! संन्यासी बनना तो बड़ा कठिन है।
वे ठीक कहते हैं। ऐसी घड़ियां होती हैं जब संन्यासी बनना अति कठिन है।
एक ऐसी घड़ी करीब आ रही है जब संन्यासी बनना अति सरल है और संसारी बनना अति कठिन है। बस तुम राजी भर होओ कि घटना घट सकती है। यह ऐसे है जैसे सुबह तुम आंख खोलो, और सब तरफ रोशनी है, सब दिखाई पड़ता है। और आधी रात में आंख खोलो, आंख भी खोलो तो क्या होता है, अंधेरा है। रात के क्षण होते हैं, और दिन के क्षण होते हैं। पच्चीस सौ साल रात चलती है। बीच में थोड़े से समय के लिए अस्तित्व शिथिल होता है, चीजें विश्राम को उपलब्ध होती हैं। उस क्षण का जो उपयोग जान लेता है वह द्वार से प्रवेश कर गया। अन्यथा फिर दीवार में सेंध मारनी पड़ती है। उसमें बड़ा श्रम है।
"इसलिएः व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो।"
लाओत्से कहता है कि धारणाओं से नहीं, पहले से पूर्व-निर्धारित विचारों
से नहीं, व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो।
तुम इससे ठीक उलटा करते हो। किसी ने कहा कि यह आदमी मुसलमान है और तुम हिंदू हो, तुमने बस मुसलमान सुनते ही से मान लिया कि आदमी बुरा है। मुसलमान और अच्छा हो सकता है? तुम व्यक्ति का चरित्र नहीं परखते। तुम्हारी पूर्व-धारणा है, उस पूर्व-धारणा से तुम तय करके चलते हो।
यह गलत है। एक-एक व्यक्ति को सीधा-सीधा परखो। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई में मत बांटो। व्यक्ति को सीधा देखो। क्योंकि जब तुम व्यक्ति को सीधा देखोगे तब तुम अपने को भी सीधा देखने में समर्थ हो पाओगे। और पूर्व-निर्धारित धारणाओं में किसी को मत ढालो। क्योंकि कल जो आदमी बेईमान था, आज ईमानदार हो गया होगा। तुम कल की धारणा मत खींचो। कल जो तुम्हें गाली दे गया था वह आज फिर आ रहा है। तुम देख कर लकड़ी लेकर खड़े मत हो जाओ, क्योंकि हो सकता है, वह क्षमा मांगने आ रहा हो।
तुम कल को जाने दो; तुम आज ही देखो सीधा। सब बदलता है, तो आदमी की चेतना क्यों न बदलेगी? पापी पुण्यात्मा हो जाते हैं। असाधु साधु हो जाते हैं। जो दूर थे वे पास आ जाते हैं, जो पास थे वे दूर हो जाते हैं। यह बदलाहट रोज होती है। इसलिए तुम पूर्व-धारणाओं को मत बनाओ। तुम सदा तथ्य को सीधा देखो। आज जो हो उसे देखो। कल को बीच में मत लाओ।
"व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो। परिवार के चरित्र के अनुसार परिवार को परखो। गांव के चरित्र के अनुसार गांव को परखो।"
क्योंकि होता क्या है, परिवार की भी धारणा होती है। ख्याल होता है कि फलां परिवार कुलीन है; तो उसमें जो पैदा होगा वह कुलीन होगा। फलां परिवार बुरा है। यहूदी जीसस को स्वीकार न कर पाए, क्योंकि जीसस का जो गांव था, बेथलहम, ऐसी धारणा थी वहां कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ है? हुआ भी नहीं था पहले। तो लोग जीसस से सवाल पूछते थे कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ है जो तुम हो गए?
बेथलहम की वैसी ही दशा थी जैसी हिंदुस्तान में भी कुछ गांव हैं; जैसे पंजाब में होशियारपुर है। होशियारपुर में लोगों की धारणा है कि सिर्फ गधे रहते हैं। और इसीलिए उन्होंने नाम होशियारपुर रख लिया है छिपाने के लिए। अगर कोई आदमी होशियारपुर रहता है और तुम उससे पूछो, कहां रहते हो? तो वह झगड़े पर उतारू हो जाता है। वह कहता है, क्या मतलब है आपका पूछने से? क्या चाहते हैं? आपको क्या जरूरत? कहीं रहते हों। वह सीधा नहीं बताता कि होशियारपुर रहता है। क्योंकि जैसे ही उसने कहा कि होशियारपुर रहता है कि आपने धारणा बना ली कि... ।
ऐसी कथा है कि अकबर के जमाने में होशियारपुर के लोगों ने प्रार्थना की अकबर को कि हम नाहक बदनाम हैं और हम बड़े लज्जित होते हैं कि हम जहां भी... बता नहीं सकते कि कहां रहते हैं। क्योंकि जिसको हमने बताया होशियारपुर रहते हैं कि बस वह मुस्कुराने लगता है। तो आप जांच-पड़ताल करवाएं और यह भ्रांति तुड़वाएं।
अकबर ने कहा कि बात ठीक है, सुना तो मैंने भी है। वह भी सुन कर होशियारपुर मुस्कुराने लगा। उसने एक कमीशन, एक आयोग बिठाया। सात आदमी

भेजे, विचारशील आदमी, कि तुम जाकर पता लगाओ, कुछ दिन रहो वहां, जांच-पड़ताल करो कि यह बात कहां तक सच है।
होशियारपुर के लोगों ने बड़ी तैयारी की, क्योंकि तैयारी करनी जरूरी थी।
यह कमीशन का आखिरी फैसला है। एक दफा अकबर कह दे तो मामला ठीक हो जाए। तो उन्होंने रत्ती भर भूल-चूक न की। ऐसा स्वागत किया कि वे लोग भी दंग हो गए। बहुत ज्यादा जब कोई सावधानी से करे, जब कोई अतिशय सावधानी से करे, तो अतिशय सावधानी भी चिंता बन जाती है। सब ठीक गया, सब ठीक गुजर गया। तीसरे दिन आयोग बड़ा प्रसन्न और विचार करके कि नहीं, यह बात गलत है, लोग नाहक इनको बदनाम करते हैं, वापस लौटा। गांव के बाहर दूर तक होशियारपुर के लोग पहुंचाने आए। जब कमीशन विदा हो गया बड़ा तृप्त, सब लोग गांव वापस लौटे। और उन्होंने कहा, भाई, कोई भूल-चूक तो नहीं हुई? अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अभी कमीशन पास ही है; अगर कोई भूल-चूक हुई हो तो माफी मांग लें। तब रसोइए ने बताया कि मैं जीरा डालना भूल गया सब्जी में। कहीं ऐसा न हो कि वे समझें कि ये गधे जीरा ही खाना नहीं जानते। क्योंकि लोग कहते हैं न, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद! तो उन्होंने कहा, यह तो भारी भूल हो गई, जीरा भूल गया। अब क्या करना? गांव भर से, जितना जीरा था, गाड़ियों में भर कर, घोड़ों पर लाद कर भागे एकदम। जाकर बीच में बड़ी चीख-पुकार मचाई कि रुको, रुको, रुको! आप यह मत समझना कि हमें जीरे का स्वाद नहीं है। कतारें गाड़ियों की बंधी हैं, घोड़ों पर, गधों पर जीरा लदा है, कि आप देख लो।
वह कमीशन बिल्कुल तय कर लिया था कि ठीक है। उसने कहा, नहीं, गड़बड़ ही हैं। ये हैं ही गधे, इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। अब ये जीरा लाने की इतनी क्या जरूरत थी?
अतिशय कभी भूल हो जाती है। ऐसा बेथलहम के संबंध में ख्याल था लोगों का
कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ? तो जीसस से जगह-जगह लोग पूछते, अच्छा आप बेथलहम में पैदा हुए। बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी पैदा हुआ जो आप हो गए? ज्ञानी का न तो गांव से कुछ लेना है, न परिवार से कुछ लेना है।
जैनों की कथा है, और कथा का कारण है। क्योंकि जैनों के तेईस तीर्थंकर क्षत्रियों के घर में पैदा हुए तो जैनियों की धारणा है कि तीर्थंकर क्षत्रिय के घर में ही पैदा होता है। तो बड़ी मीठी कथा है, नासमझी की भी है, मीठी भी है, और आदमी के मन को समझने के लिए उपयोगी है। महावीर एक ब्राह्मणी की कोख में आए। तो कहते हैं, बड़ी मुश्किल, बड़ा तहलका मच गया देवताओं में कि यह तो सब गड़बड़ हो जाएगा। कहीं कोई तीर्थंकर ब्राह्मण के घर में कभी पैदा हुआ है? और जैनी तो ब्राह्मण के विरोधी हैं। और ब्राह्मण के घर में तीर्थंकर पैदा हो जाए तो सब गड़बड़ हो जाएगा। क्षत्रिय के घर में पैदा होता है तीर्थंकर। सदा से ऐसा हुआ है। तो कहानी है कि देवता बड़े बेचैन हुए। फिर कोई उपाय न देख कर उन्होंने एक बड़ी सर्जरी की। गर्भ को ब्राह्मणी की कोख से निकाला और राजा की पत्नी की कोख में जाकर रखा, और उसकी कोख में जो लड़की थी उसको निकाला और उसको जाकर ब्राह्मणी के गर्भ में रखा। फिर तृप्ति, शांति हुई। क्योंकि फिर महावीर क्षत्रिय के घर पैदा हो सके।
अब यह कहानी जिन्होंने गढ़ी है वह ब्राह्मणों के अपमान के लिए गढ़ी है--
कि कहीं ब्राह्मणों के घर में कोई तीर्थंकर हुआ? ब्राह्मण यानी भिखमंगे। इनके घर में कभी कोई तीर्थंकर हुआ है? कोई ज्ञानी कभी हुआ है इनके घर में? पंडित-पुरोहित, भीख मांगने वाले लोग, इनका क्या बल है कि तीर्थंकर को पैदा करें! भूल-चूक हो गई तो उसे ठीक कर लेना जरूरी हो गया।
न तो कुल से कुछ लेना-देना है, न गांव से कुछ लेना-देना है। इस तरह मत सोचना, सीधा देखना। व्यक्ति को सीधा देखना, परिवार को सीधा देखना, गांव को सीधा देखना। पूर्व-धारणाएं मत रखना।
"राज्य के चरित्र के अनुसार राज्य को परखो।"
मगर कोई परखता नहीं। हम परखते अपनी धारणाओं के अनुसार हैं। तुमने कभी ख्याल किया? हिंदुस्तान और चीन की दोस्ती थी तो हिंदी-चीनी भाई-भाई चाऊ एन लाई और नेहरू दोनों दोहराते थे। और सारा बड़ा सब ठीक था। फिर दुश्मनी हो गई। फिर चीन राक्षसों का देश हो गया। फिर हिंदुस्तानी नेता चिल्लाने लगे कि ये तो राक्षस हैं, ये तो दानव हैं, ये तो बड़े भ्रष्ट हैं। एक घड़ी पहले भाई-भाई

थे। और चीनी नेता वहां चिल्लाने लगे कि भारतीयों को तो नष्ट करना ही पड़ेगा, ये ही तो पूंजीवाद की जड़ हैं एशिया में। इनको मिटाना पड़ेगा, ये महारोग हैं। एक क्षण में सब बदल जाता है। और सारा मुल्क दोहराने लगता है। और कभी तुम सोचते भी नहीं कि पूरे मुल्क को दानव कहना नासमझी है। दोस्ती-झगड़ा एक बात है; बनती बिगड़ती है। लेकिन यह अतिशय पैदा हो जाता है तत्क्षण।
जो आदमी कल तक मित्र था, उससे अच्छा आदमी नहीं था, आज वह शत्रु हो गया, उससे बुरा आदमी नहीं है। एक दिन में यह हो कैसे गया? जो स्त्री कल तक बड़ी सुंदर मालूम पड़ती थी, आज बनाव बिगड़ गया, बस वह कुरूप हो गई। अब उससे ज्यादा डायन इस दुनिया में कोई है ही नहीं। पूरे समूह, पूरे राष्ट्र इस तरह जीते हैं। और पूरे राष्ट्र को तुम छापा लगा देते हो कि यह बुरा या अच्छा। सीधे-सीधे देखना। यह धारणाओं का जाल उचित नहीं है। इससे तुम्हारी आंखें धुएं से भर जाएंगी, और तुम कभी सीधे देखने में समर्थ न हो पाओगे। दुश्मन भी अच्छा हो सकता है।
जरूरी नहीं है कि रावण राक्षस रहा हो। वह राम के मानने वालों की धारणा है। और अब अगर उन्होंने राम के पुतले जला दिए दक्षिण में तो बड़ी बेचैनी फैलती है। और तुम पुतले जलाते रहे रावण के और अभी भी जलाओगे और जरा भी बेचैनी नहीं फैलती। रावण राक्षस रहा हो, ऐसा जरूरी नहीं है। राक्षस कोई भी नहीं है। दुश्मन हमेशा राक्षस मालूम होता है; मित्र अच्छे मालूम पड़ते हैं, शत्रु राक्षस मालूम होता है। तो तुम फिर विकराल मूर्तियां रावण की बनाते हो। जरूरी नहीं है कि विकराल रहा हो। संभावना तो बहुत है कि बहुत सुंदर आदमी रहा होगा। क्योंकि डर ऐसा है, और शक्तिशाली आदमी था, डर ऐसा था राम के भक्तों को, मित्रों को कि अगर रावण स्वयंवर में मौजूद रहा तो वह शिव का धनुष तोड़ देगा। वह शिव का भक्त भी था। और भक्ति उसकी अपरिसीम थी। कथा है कि अपनी गर्दन चढ़ा देता था। वही तो भक्ति है जब तुम अपना सिर रख दो। तो डर था कि वह शिव का भक्त है, और धनुष भी शिव का है; तोड़ दे सकता है। और बलशाली था। और सुंदर था। समृद्धशाली था। प्रतापी था। बड़ा राज्य था। स्वर्ण की उसकी लंका थी। डर था। इसलिए एक शड्यंत्र रचा गया। और ऐन वक्त पर जब स्वयंवर रचा था तब उसको झूठी खबर दी गई कि लंका में आग लग गई है। वह खबर झूठी थी। लेकिन लंका में आग लग गई है, इसलिए वह भागा हुआ लंका गया। इस बीच स्वयंवर हो गया। राम ने धनुष तोड़ दिया। सीता ब्याह कर चली गई।
यहीं सारी उपद्रव की बात शुरू हुई। सीता का चुराना सिर्फ प्रत्युत्तर है। और रावण बुरा आदमी नहीं था। क्योंकि सीता को ले जाकर भी कोई दुराचरण नहीं किया; सीता को सुरक्षित रखा। सीता के ऊपर कोई जबरदस्ती नहीं की। राम ने जितनी जबरदस्ती सीता पर की उतनी रावण ने नहीं की है। क्योंकि कथा बड़ी अजीब है। जब रावण हार गया और सीता को राम वापस ले आए, तो वाल्मीकि में जो शब्द हैं वे बड़े दुखद हैं। क्योंकि राम ने सीता से कहा कि तू यह मत समझना कि यह युद्ध हमने तेरे लिए किया। यह युद्ध तो परंपरा के लिए, वंश की प्रतिष्ठा के लिए। ये शब्द अभद्र हैं। और फिर एक धोबी के कहने पर सीता को जंगल में फेंक दिया; गर्भिणी को जंगल में छोड़ दिया बिना चिंता किए।
फिर भी राम के भक्त को यह कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। रावण की सब बुराई दिखाई पड़ेगी; राम की सब भलाई दिखाई पड़ेगी। अब दक्षिण में रावण के भक्त पैदा हो रहे हैं। उनको रावण की सब भलाई दिखाई पड़ती है; राम की सब बुराई दिखाई पड़ती है। आंख साफ होनी चाहिए और सीधा देखना चाहिए। भलाई राम में भी है; और बुराई रावण में भी है। बुराई राम में भी है; भलाई रावण में भी है। असल में, इस पृथ्वी पर कोई पूर्ण नहीं हो सकता। जो पूर्ण हो जाते हैं वे तिरोहित हो जाते हैं। इस पृथ्वी पर कोई आदमी इतना कर सकता है कि निन्यानबे प्रतिशत भला हो जाए। लेकिन एक प्रतिशत बुराई बची ही रहेगी। नहीं तो इस जमीन से संबंध ही टूट जाता है। बुराई ही तो बांधती है। और इस दुनिया में कोई आदमी चाहे तो निन्यानबे प्रतिशत बुरा हो सकता है। लेकिन एक प्रतिशत भलाई बची रहेगी। न तो सौ प्रतिशत बुरा आदमी मिलता है कहीं, न सौ प्रतिशत भला आदमी मिलता है कहीं। पुण्यात्मा में छोटा सा पापी छिपा रहता है; पापी में छोटा सा पुण्यात्मा छिपा रहता है। तभी तो वह बदलाहट की संभावना है, नहीं तो बदलाहट की संभावना भी खो जाएगी। न तो कोई रावण और न कोई देव है। सब मिश्रित है।

और तुम सीधा देखना। और अपनी धारणा को बना कर मत देखना। जैसे ही तुमने धारणा बना ली वैसे ही तुम्हारी आंखें अंधी हो गईं। धारणा अंधापन है। "संसार के चरित्र के अनुसार संसार को परखो। मैं कैसे जानता हूं कि संसार ऐसा है?"
इस परख के द्वारा कि मैं सीधे देखता हूं। मेरा कोई लगाव नहीं। मेरा कोई पक्ष-विपक्ष नहीं।
ध्यान रखना, पक्ष-विपक्ष बुद्धि के खेल हैं। निष्पक्ष जब तुम देखोगे तभी तुम्हारा हृदय देखने में समर्थ हो पाएगा। तुम पक्ष-विपक्ष में खड़े ही मत होना। तुम सीधे-सीधे देखना। तुम आंख को दर्पण बना कर देखना। तुम्हारी आंख देखने में कुछ भी न जोड़े। जो तुम्हारे सामने हो उसी को देखना। अगर तुम्हें राम में भी बुराई दिखाई पड़े तो देखना। अगर रावण में भी भलाई दिखाई पड़े तो देखना। तुम यह मत कहना कि यह रावण है, इसमें भलाई कैसे हो सकती है! यह तुम मत कहना कि ये राम हैं, इनमें बुराई कैसे हो सकती है! अगर तुमने ऐसी धारणाएं रखीं तो तुम अंधे हो। तब तुम न तो चरित्र को देख पाओगे और न चरित्र को उपलब्ध कर पाओगे। निष्पक्ष होकर देखना।
मुश्किल है निष्पक्ष आदमी खोजना, क्योंकि निष्पक्ष आदमी अगर हो तो कोई
भी उसके पक्ष में न होगा। वह इतना सीधा देखेगा कि न तो वह तुम्हारे राम को राम कहेगा और न तुम्हारे रावण को रावण कहेगा। रावण के मानने वाले उस पर नाराज होंगे कि तुम रावण में कुछ बुराई देखते हो? राम के मानने वाले नाराज होंगे कि तुम राम में कुछ बुराई देखते हो? सब अंधे उससे नाराज होंगे। आंख वाला अंधों के बीच में पड़ जाए तो सभी नाराज होंगे। और अंधे पूरी कोशिश करेंगे कि तुम्हारी आंखों में कुछ गड़बड़ है। क्योंकि हम सब जैसा देखते हैं, तुम क्यों नहीं देखते? अंधे कोशिश करेंगे कि तुम्हारी आंखों का आपरेशन कर दिया जाए। तब तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे।
एक गांव में ऐसा हुआ। एक जादूगर ने एक कुएं में मंत्र फेंक दिया और कहा
कि अब जो भी इसका पानी पीएगा, पागल हो जाएगा। सारे गांव ने पानी पीया। एक ही कुआं था गांव में। एक और कुआं था, लेकिन वह राजा के महल में था। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, और वजीर बड़े प्रसन्न हुए कि कम से कम हमारा अलग कुआं है। तो वजीर और राजा तो पागल नहीं हुए, पूरा गांव पागल हो गया।
लेकिन शाम तक बड़ा तनाव फैलने लगा। क्योंकि राजा के पहरेदार, सिपाही, सैनिक सब पागल हो गए। और गांव में एक अफवाह उड़ने लगी कि मालूम होता है, राजा पागल हो गया है। शाम होते-होते गांव में आंदोलन तैयार हो गया। लोग भीड़ लगा कर राजमहल के चारों तरफ इकट्ठा हो गए और उन सबने चिल्ला कर कहा कि यह राजा पागल हो गया है, हम राजा को बदलना चाहते हैं!
राजा छत पर आया; उसने वजीर से पूछा, अब क्या करना? उसने कहा, एक ही रास्ता है कि हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। अब ये सब पागल हो गए हैं, मगर अब इनको कौन समझाए? और ये सभी हैं सहमत, अब हम इन्हें पागल दिखाई पड़ रहे हैं। हालांकि हमें पता है कि हम पागल नहीं हैं, लेकिन इससे अब कुछ होगा नहीं। अब देर न करें। वजीर ने राजा से कहा कि आप लोगों को समझा कर रोकें, थोड़ी देर में मैं पानी लेकर आता हूं भागा हुआ। वह गया और कुएं से पानी भर लाया। दोनों ने पानी पीया, दोनों पागल हो गए। गांव उस रात भर उत्सव मनाता रहा कि हमारे राजा और वजीर की बुद्धि ठीक हो गई; धन्यवाद परमात्मा का!
तुम जिस बस्ती में हो वह पागलों की है, पाखंडियों की है। तुम जिनके बीच
हो उनके बीच शुद्ध आंख को पैदा करने में बड़ी कठिनाई होगी। लेकिन वह कठिनाई गुजरने जैसी है। शुद्ध आंख पैदा कर लो। क्योंकि उसके बिना परमात्मा को देखने का कोई उपाय नहीं। सत्य को निष्पक्ष आंख ही देख सकती है। पक्षपात सभी असत्य हैं।
आज इतना ही।

चौरानबेवां प्रवचन

शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है

Chapter 55

The Character Of The Child

Who is rich in character is like a child.
No poisonous insects sting him, no wild beasts attack him,
And no birds of prey pounce upon him.
His bones are soft, his sinews tender, yet his grip is strong,
Not knowing the union of male and female, yet his organs are complete,
Which means his vigour is unspoiled.
Crying the whole day, yet his voice never runs hoarse,
Which means his (natural) harmony is perfect.
To know harmony is to be in accord with the eternal,
(And) to know eternity is called discerning.
(But) to improve upon life is called an ill-omen;
To let go the emotions through impulse is called assertiveness.
(For) things age after reaching their prime;
That (assertiveness) would be against Tao.
And he who is against Tao perishes young.

अध्याय 55

शिशु का चरित्र

जो चरित्र का धनी है, वह शिशुवत होता है।
जहरीले कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते,
और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।
यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें कोमल, तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है।
यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।
जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है।
दिन भर चीखते रहने पर भी उसकी आवाज भर्राती नहीं है;
जिसका अर्थ हुआ कि उसकी स्वाभाविक लयबद्धता पूर्ण है।
लयबद्धता को जानना शाश्वत के साथ तथाता में होना है, और शाश्वतता को जानना विवेक कहलाता है।
लेकिन जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण कहाता है; और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।
क्योंकि चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं; वह आक्रामक दावेदारी ताओ के खिलाफ है।
और जो ताओ के खिलाफ है वह युवापन में ही नष्ट होता है।

शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है। पुनः बच्चे की भांति हो जाना, स्रोत की तरफ लौट जाना, मूल के साथ एक हो जाना; उस अवस्था को फिर पा लेना, जब भेद नहीं था।

पहले हम शिशु की धारणा को समझ लें।

तीन अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है भेद-पूर्व, द्वैत-पूर्व, जब दो का पता न था, अबोध, अज्ञानी की। दूसरी अवस्था है द्वैत की, जब भेद हुआ, जब हमने दो को

जाना, जब सब चीजें टूट कर विभाजित हो गईं। यह दशा है तथाकथित ज्ञानी की। और फिर एक तीसरी दशा है कि पुनः टूटी हुई चीजें जुड़ गईं। जो अलग-अलग हो गया था, वापस एक हो गया; जो लयबद्धता छिन्न हो गई थी, वह फिर छंद में बंध गई। फासले समाप्त हुए। अद्वैत का पुनर्भाव हुआ। फिर एक दिखाई पड़ने लगा। यह अवस्था है परम ज्ञानी की।
परम ज्ञानी शिशुवत है। परम ज्ञान अज्ञान जैसा है। अज्ञान से बड़ा भिन्न, फिर भी अज्ञान जैसा। भेद है परम ज्ञान का, उसका विवेक, भेद है उसकी बोध की अवस्था, भेद है जानते हुए एक को जानना।
शिशु भी एक को ही जानता है, लेकिन जानता नहीं। पहचान नहीं है। दो को करने की क्षमता नहीं है, इसलिए एक को जानता है। उसकी अवस्था अबोध है। उसे पता ही नहीं कि दो होता है। अभी विभाजन नहीं हुआ। विभाजन होगा; चीजें टूटेंगी। सब चीजें भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ने लगेंगी। मैं और तू का पता चलेगा। मैं अलग हूं, तू अलग है, इसका पता चलेगा। सफलता-असफलता में भेद पैदा होगा। धन-मिट्टी में फर्क दिखाई पड़ेगा। सोना अलग हो जाएगा, हीरे अलग हो जाएंगे, कंकड़-पत्थर अलग हो जाएंगे। सुख और दुख भिन्न होंगे। स्वर्ग और नरक का फासला हो जाएगा। यह मैं पाना चाहता हूं, यह मैं नहीं पाना चाहता हूं; वासना जगेगी, सारा संसार खड़ा होगा।
बालक तो मिटेगा; मिटने को है। मिटने के पूर्व की दशा है। बालक तो पाप में उतरेगा, उतरना ही पड़ेगा। क्योंकि पाप के बिना कोई प्रौढ़ता नहीं। बालक तो खोएगा इस निर्दोष स्वभाव को, क्योंकि यह निर्दोष स्वभाव अन-अर्जित है, यह मुफ्त मिला है। और ध्यान रखना, जो मुफ्त मिलता है वह तुम्हारा कभी भी न हो पाएगा। जो तुमने कमाया है वही तुम्हारा होगा। बालक का संतत्व मुफ्त मिला है; उसने कमाया नहीं है। वह प्रकृति का दान है। उसे छोड़ना पड़ेगा।
इसे बहुत गहरे समझ लेना कि जो तुम कमाओगे अपने ही श्रम, अपने ही बोध, अपनी ही जीवन-ऊर्जा से, केवल वही तुम्हारा होगा। बाकी सब धोखा है। आज है, कल नहीं होगा।
बालक का संतत्व धोखा है। क्योंकि जा रहा है, जा रहा है; अभी गया, अभी गया। देर नहीं है। क्षण भर का है। नींद जैसा है, जो टूटेगी। कब तक सोए रहोगे? सुबह हर क्षण करीब आ रही है; नींद टूटेगी। नींद में तो पापी भी पुण्यात्मा जैसा हो जाता है। नींद में तो असाधु भी साधु जैसा शांत रहता है; न हिंसा करता, न हत्या करता, न चोरी करता। लेकिन नींद टूटेगी। भेद शुरू होगा। बचपन तो जाएगा। पानी की लहर है। बच्चा तैयार हो रहा है टूटने को; संसार में उतरने को। वह तैयारी के पहले का क्षण है।
संत तैयार नहीं हो रहा है संसार के लिए; संत संसार से गुजर चुका। संत संसार के पार हो चुका। जान लिया जो जानना था; भटक लिया व्यर्थ में। क्योंकि व्यर्थ के भटकाव में ही सार्थकता की तलाश थी। असार को जान लिया, उसे सार की पहचान आ गई। कांटों में गिरा, क्योंकि बिना गिरे फूलों को पहचानने का कोई उपाय न था। कंकड़-पत्थर भी बीने, क्योंकि हीरों को जांचने की तब कोई सुविधा न थी। अब विवेक जगा।
अनुभव से जगता है विवेक। बच्चा गैर-अनुभवी है। निर्दोष है, लेकिन अनुभव के न होने के कारण निर्दोष है। तो बचपन की निर्दोषता नकारात्मक है। इस बात को ठीक से समझ लेना। वह विधायक नहीं है। संत की निर्दोषता विधायक है। जानने के कारण है, अज्ञान के कारण नहीं। अंधेरे के कारण नहीं है, रोशनी के कारण है। अंधेरी रात में नींद के कारण वह साधु नहीं है, खुले प्रकाश में भरी दुपहरी में अपने बोध के कारण साधु है। लेकिन है बच्चे जैसा। जो बच्चे को अज्ञान में हो रहा था अब उसे वह ज्ञान में हो रहा है। बच्चे का तो मिटता; उसका अब कभी न मिटेगा। उसने शाश्वत को पा लिया। बच्चे को भेंट मिली थी प्रकृति से; उसने अर्जित किया है। उसने खोजा, पीड़ा पाई, अग्नि से गुजरा, निखरा। यह निखार अब उसे छोड़ न सकेगा। यह किसी की देन नहीं है जो छीन ली जाए। न यह बाहर की भेंट है जो चोरी चली जाए। यह अब आविर्भाव हुआ है अंतस में, अब इसे कोई भी छीन न सकेगा। इसकी चोरी नहीं हो सकती। इस पर जंग भी नहीं लग सकती। क्योंकि यह चैतन्य का आविर्भाव है। प्रकृति जो भी देती है उस पर तो जंग लग जाएगी; क्योंकि वह पदार्थ से आया है। बचपन शरीर से आया है; संतत्व

चेतना से। बच्चे की निर्दोषता प्रकृति से जुड़ी है; संत की परमात्मा से। बच्चा अवश है; संत अवश नहीं है, अपने वश में है।
लेकिन फिर भी दोनों में एक समानता है। और वह समानता यह है कि दोनों अद्वैत में जी रहे हैं। इसलिए संत शिशुवत है। शिशु ही नहीं, शिशुवत। इस फर्क को भी ख्याल में ले लेना। नहीं तो तुम कहीं शिशुवत होने के ख्याल से शिशु जैसे होने मत लग जाना। वह तो मूढ़ता होगी। तुमने अगर मूढ़ों को देखा हो तो वे भी बच्चों जैसे हैं। पागलखानों में जाकर तुम उन्हें देख सकते हो। उनका विकास ही नहीं हुआ; वे अटक गए। उनकी ऊर्जा कहीं उलझ गई; वे जवान नहीं हो पाए। वे भटक न पाए संसार में।
मूढ़ कौन है? मूढ़ वह बालक है जिसका बालपन अटक गया। इसलिए तो हम उसे रिटार्डेड कहते हैं, उसे कहते हैं कि वह विकसित नहीं हो पाया। तो बचपन में तो बालपन सुंदर मालूम पड़ता है, मूढ़ में बड़ा कुरूप हो जाता है। तो तुम मूढ़ता को मत आरोपित कर लेना।
ऐसा हुआ है। भारत में ऐसे कई मूढ़ हैं जो संतों की तरह पूजे जाते हैं। वे सिर्फ मूढ़ हैं। अगर दूसरे किसी मुल्क में होते तो पागलखानों में होते या मनोचिकित्सालय में होते, उनका इलाज हो रहा होता। यहां वे संतों की भांति पूजे जाते हैं। उनकी मूढ़ता के कारण उन्हें भेद नहीं है।
एक बार मैं एक गांव में मेहमान था। वहां एक संत की बड़ी पूजा थी। तो मैं देखने गया। वे संत थे ही नहीं, वे मूढ़ थे। लेकिन लोग व्याख्या कर रहे थे। जैसे कि वे वहीं पाखाना कर लेते, वहीं बैठे खाना खाते रहते; इसको लोग समझते थे परमहंस की अवस्था हो गई। यह परमहंस की अवस्था नहीं है, सिर्फ मूढ़ता है। उनमें बोध जन्मा ही नहीं; वे छोटे बच्चे जैसे हैं। जैसे छोटा बच्चा कर सकता है यह। पाखाना कर ले, वहीं बैठ कर खाना खाता रहे। अभी पाखाने और खाने का फर्क उसे हुआ नहीं है। ये संत भी उसी दशा में थे। उनके मुंह से लार टपक रही, जैसे छोटे बच्चों को टपकती रहती है। लोग उनकी लार का प्रसाद ले रहे थे। और वह लार इसलिए टपक रही थी कि उनका जबड़ा लटका हुआ था। मूढ़ों का जबड़ा लटका होता है।
तुम्हें पता नहीं होगा, शरीरशास्त्री जबड़े के कारण बड़े चकित हैं। क्योंकि जबड़े को तुम चौबीस घंटे सम्हाले रहते हो, तभी वह ऊपर है। नहीं तो गुरुत्वाकर्षण के कारण वह नीचे लटक ही जाना चाहिए। तुम्हारा मुंह खुला रहना चाहिए साधारणतः। और अगर तुम बिल्कुल ढीला छोड़ दो तो तुम पाओगे, तुम्हारा मुंह खुल गया।
मूढ़ आदमी का एक लक्षण है, उसका जबड़ा खुला होगा; छोटे बच्चों जैसा होगा जबड़ा उसका। इसीलिए तो छोटे बच्चे के गले पर टावेल बांधना पड़ता है कि उसका थूक टपकता रहे तो कोई चिंता नहीं। थूक तो तुम्हारे मुंह में भी चौबीस घंटे बनता है, लेकिन तुम उसे लील जाते हो। जबड़ा खुला रहे तो वह बाहर की तरफ बहता है।
थूक टपक रहा था, उसे लोग हाथ में ले-लेकर प्रसाद की भांति ग्रहण कर रहे थे। वह आदमी निपट मूढ़ था।
लेकिन मूढ़ भी संतों जैसा मालूम हो सकता है; क्योंकि उसे भी अभेद तो है।
भारत में बहुत से मूढ़ पूजे जाते रहे हैं। अभी भी पूजे जा रहे हैं। क्योंकि परमहंस और उनमें कुछ साम्यता है। परमहंस का भेद खो जाता है।
लेकिन भेद खो जाने का यह मतलब नहीं है कि वह भोजन की जगह मिट्टी खाने लगता है। वह जानता है कि भोजन भी मिट्टी है, मिट्टी से ही पैदा होता है। आखिर मिट्टी ही तो गेहूं बनती है; गेहूं रोटी बनता है। वह जानता है कि भेद जरा भी नहीं है। लेकिन फिर भी मिट्टी को नहीं खाने लगता। क्योंकि यह अज्ञान नहीं है, यह विवेक है। मिट्टी पचाई नहीं जा सकती। भेद तो नहीं है, मिट्टी ही गेहूं बनती है; लेकिन गेहूं मिट्टी का ऐसा ढंग है जो शरीर में पच सकता है।
यह विवेक कायम रहता है।
आखिर पाखाने और खाने में फर्क क्या है? खाना ही तो पाखाना हो जाता है।
फर्क तो जरा भी नहीं है। जिसे तुम मुंह से डालते हो वही तो आखिर पाखाना होकर निकल जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संत पाखाने को खाने लगेगा।

क्योंकि खाते हम इसलिए हैं, ताकि उससे शरीर चल सके। वे सब तत्व तो पाखाने से खींच लिए गए जो शरीर के काम के थे। अब तो जो असार है वह छोड़ दिया गया है। भेद कुछ भी नहीं है, लेकिन व्यावहारिक भेद है। पारमार्थिक भेद कुछ भी नहीं है, व्यावहारिक भेद है। तुम्हारा शरीर किन्हीं चीजों को स्वीकार करता है, किन्हीं को स्वीकार नहीं करता। शरीर की सीमाएं हैं। शरीर पत्थर नहीं खा सकता, मिट्टी नहीं खा सकता। मिट्टी से ही सब बनता है, लेकिन बनने की प्रक्रिया में वह इस योग्य हो जाता है कि तुम उसे खा सकोगे। पौधे कर क्या रहे हैं? पौधे यही कर रहे हैं कि मिट्टी को फल बना रहे हैं। फल को तुम पचा सकते हो। पौधे मिट्टी को पचा सकते हैं। मिट्टी पौधों के द्वारा पचा कर एक रूपांतरण से गुजरती है। एक केमिकल, रासायनिक परिवर्तन हो जाता है उसमें, वह तुम्हारे भोजन के योग्य हो जाती है।
संत यह जानता है कि जीवन इकट्ठा है, अद्वैत है। यह वृक्ष तुम्हारा साथी है; इसके बिना तुम न जी सकोगे। क्योंकि यह फल बना रहा है तुम्हारे लिए। सारा अस्तित्व जुड़ा है और एक है। सूरज की किरणें पड़ रही हैं, वृक्ष उन्हें पी रहा है; उन किरणों को फलों में इकट्ठा कर रहा है। फलों में इकट्ठी होकर वे विटामिन बन गई हैं। तुम सूरज की किरण को सीधी ज्यादा न पी सकोगे। थोड़ी सी पी सकते हो चमड़ी के द्वारा; डी विटामिन थोड़ा सा तुम चमड़ी के द्वारा पी सकते हो। लेकिन वह भी ज्यादा नहीं। ज्यादा पीओगे तो सारा शरीर काला पड़ जाएगा। इसलिए तो गर्म मुल्कों में शरीर काला हो जाता है। अगर बहुत पी जाओगे डी विटामिन तो चमड़ी बिल्कुल काली हो जाएगी। शरीर से नहीं पीया जा सकता सीधा, लेकिन फलों के माध्यम से डी विटामिन की जो जलाने की क्षमता है वह कम हो जाती है। फिर तुम कितने ही फल ले सकते हो; फिर वे जीवनदायी हैं। जीवन संयुक्त है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम चीजों में भेद करना छोड़ दोगे। मूढ़ भेद ही नहीं कर सकता। ज्ञानी भेद कर सकता है, विवेक को उपलब्ध हुआ है, फिर भी भेद में अभेद को जानता है। ज्ञानी निकलेगा तो दरवाजे से निकलेगा, यद्यपि दरवाजा और दीवार में अभेद है। दोनों एक ही घर के हिस्से हैं। लेकिन निकलना तो दरवाजे से होगा ज्ञानी को भी। दीवार से निकलने लगे तो मूढ़ है। दरवाजे से निकले और जाने कि दरवाजा भी दीवार का ही हिस्सा है, दोनों संयुक्त हैं, दोनों में भेद है व्यावहारिक। अगर निकलना हो तो भेद है; न निकलना हो तो दोनों एक ही अखंड भवन के हिस्से हैं। पारमार्थिक भेद नहीं है। अंततः भेद नहीं है। लेकिन व्यावहारिक रूप से बड़ा भेद है। ज्ञानी भेद को जानते हुए अभेद को पहचानता रहता है। स्वर अलग-अलग हैं, लेकिन ज्ञानी की दृष्टि स्वरों पर नहीं होती, स्वरों के बीच जो लयबद्धता है उस पर होती है। ज्ञानी भेद कर सकता है, करता है; लेकिन अभेद में जीता है। अज्ञानी भेद नहीं कर सकता; करना भी चाहे तो करने का उसके पास उपाय नहीं है। वह भी अभेद में जीता है।
तो तुम बच्चे जैसे होने की कोशिश में मूढ़ जैसे मत हो जाना। अन्यथा तुम चूक गए, तुम समझ न पाए।
मूढ़ता परमहंसत्व नहीं है। परमहंसत्व में मूढ़ता का एक तत्व है; और वह तत्व है अभेद। और परमहंसत्व में साधारण सांसारिक का भी एक तत्व है; वह है भेद। परमहंस का अर्थ है, जिसमें संसार और परमात्मा मिल गए, एक हो गए। जो संसारी जैसा भेद करता है और मूढ़ जैसे अभेद में जीता है; जो दोनों का परम संगीत है। इस परम संगीत को लाओत्से तथाता कहता है। सब उसे स्वीकार है। और सब स्वीकार के माध्यम से उसने एक लयबद्धता खोज ली है। अब उसका संगीत अखंडित है।
शिशुवत होना! हमारे पास दो शब्द हैं भाषा में, एक शब्द है बालपन और दूसरा शब्द है बचकाना। बचकाने मत हो जाना। क्योंकि वह तो मूढ़ता का लक्षण है। शिशुवत होना, बालपन को उपलब्ध होना। वह शिशु जैसा है, फिर भी शिशु से बहुत दूर है। शिशु से बहुत भेद है।
"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है।"
हमने चर्चा की पीछे कि किस बात को लाओत्से वास्तविक चरित्र कहता है।
वह कहता है, स्वभाव से जिस जीवन का आविर्भाव हो वह चरित्र है।
अब कहता है, "जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत है।"

जिसके पास भीतर से आ रहा है चरित्र, जिसकी धारा भीतर से बाहर की तरफ बह रही है, जो केंद्र से परिधि की तरफ बह रहा है, जैसे सूरज की किरणें उसके अंतस से निकलती हैं और सारे संसार में व्याप्त हो जाती हैं, ऐसा जो बह रहा है केंद्र से परिधि की ओर सूर्य की भांति, ऐसे धनी व्यक्ति का, चरित्र के धनी व्यक्ति का स्वभाव शिशु के जैसा होगा। शिशु के क्या लक्षण हैं?
एक लक्षण है कि अभी वह अभेद में है, उसे मेरा-तेरा पता नहीं। छोटा बच्चा दूसरे के हाथ में खिलौना देख कर चीखने-चिल्लाने लगता है कि मुझे चाहिए। हम उस पर नाराज नहीं होते। हम कहते हैं, बालक है। लेकिन यही बालक कल बीस साल का हो जाएगा और फिर भी दूसरों की चीजें देख कर चिल्लाने लगे तो हम नाराज होंगे। हम कहेंगे, क्या बचकानापन कर रहे हो? वह तुम्हारी नहीं है। मेरे- तेरे का भेद करो। जो अपना है वह तुम मांग सकते हो; जो दूसरे का है उसे मांगना अनुचित है। अपने के तुम मालिक हो, दूसरे की चीज उठा लेना चोरी है।
इसलिए छोटे बच्चों को अदालतें दंड नहीं देती हैं अगर वे चोरी भी कर लें। क्योंकि जिन्हें अपने-तेरे का भेद नहीं है, उनको चोरी का क्या सवाल है? उन्हें पता ही नहीं है कि चीजें किसी की होती हैं या मालकियत जैसी कोई चीज है। स्वामित्व अभी पैदा नहीं हुआ।
संत भी स्वामित्व को नहीं मानता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह तुम्हारी चीज उठा लेगा। संत भी स्वामित्व को नहीं मानता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह तुम्हारे घर में घुस जाएगा और चोरी करेगा। जानता है कि चीजें किसी की भी नहीं हैं, सभी कुछ परमात्मा का है, स्वामित्व के सभी दावे गलत हैं; यह जानते हुए भी होशपूर्ण जीएगा और सर्वाधिक अपनी चीजों पर कोई स्वामित्व नहीं रखेगा। और कोई अगर उसकी चीजें छीन ले तो तुम उसे रोता हुआ न पाओगे। और कोई उसकी चीज छीन ले तो तुम उसे अदालत जाते हुए न पाओगे। वह किसी की चीज नहीं छीनेगा। क्योंकि जो अज्ञान में जी रहे हैं, उनकी तो धारणा में स्वामित्व है; वे चीजें उनकी हैं। अगर उसकी चीज तुम छीन लोगे तो वह स्वामित्व का दावा नहीं करेगा। वह दावा उसके बाहर है। स्वामित्व का बोध उसका गिर गया है। क्योंकि उसने परम स्वामी को जान लिया; वही मालिक है। शिशुवत होगा, लेकिन फर्क होंगे। चरित्र का धनी होगा। भीतर से आता उसका स्वभाव, बहता हुआ, उसके चरित्र में होगा। और जिसके पास चरित्र का धन है उसे किसी और धन की आकांक्षा नहीं है। इसलिए कई बार तुम संत को समझ भी न पाओगे। कई बार तुम्हें भूल हो जाएगी।
कबीर ने अपने बेटे को अलग कर दिया था, क्योंकि बेटा बड़ा विद्रोही था। कबीर तो समझते थे। निश्चित समझते रहे होंगे। कबीर न समझेंगे तो कौन समझेगा! लेकिन कबीर के शिष्यों को उससे अड़चन होती थी। तो कबीर ने उससे कहा कि तू ऐसा कर कमाल, कि तू अलग ही हो जा। इनको बार-बार कष्ट क्यों देना? तो कमाल पास ही एक अलग झोपड़े में रहने लगा था। काशी के नरेश कबीर को मिलने आते थे। पूछा, कमाल दिखाई नहीं पड़ता! तो कबीर ने कहा कि उसे अलग कर दिया है। शिष्यों के साथ तालमेल नहीं खाता। तो नरेश मिलने गए। शिष्यों से पूछा तो उन्होंने कहा कि वह लोभी है। और कबीर के पास उसका होना ठीक नहीं। कोई कुछ भेंट लाता है तो कबीर तो कहते हैं, कोई जरूरत नहीं, लेकिन वह रख लेता है सम्हाल कर। तो वह संग्रह कर रहा है।
तो नरेश ने कमाल से पूछा कि तू ऐसा क्यों करता है? तो उसने कहा कि जब चीजों का कोई मूल्य ही नहीं है तो क्या लौटाना? वह ले आया बेचारा, यहां तक बोझ ढोया, अब फिर वापस ले जाए। कबीर की कबीर समझें, बाकी मैं समझ पाया हूं कि जब कोई मतलब ही नहीं है और चीज किसी की भी नहीं है, न तुम्हारी है, न मेरी है, तो किसी के पास रहे क्या फर्क पड़ता है!
नरेश को थोड़ा संदेह हुआ कि बात तो ज्ञान की कर रहा है, लेकिन चालाक मालूम पड़ता है। तो उसने अपनी जेब से एक बड़ा बहुमूल्य हीरा निकाला और कहा कि यह रख। कमाल ने कहा, है तो पत्थर, लेकिन अब ले ही आए तो रख जाओ। कहां रख दूं, नरेश ने पूछा। तो कमाल ने कहा, तुम समझे नहीं। क्योंकि तुम पूछते हो कहां रख दूं, तो तुम्हें यह पत्थर नहीं है, तुम इसे हीरा ही मान रहे हो। कहीं भी रख दो, पत्थर ही है! तो नरेश ने उसकी झोपड़ी में, छप्पर में खोंस दिया। सनौलियों का छप्पर था, उसमें खोंस दिया।

पंद्रह दिन बाद वापस आया देखने कि हालत क्या है। पक्का था उसे कि मैं इधर बाहर निकला कि उसने हीरा निकाल लिया होगा। अब तक तो हीरा बिक भी चुका होगा, बाजार पहुंच चुका होगा। लाखों की कीमत का था। पहुंचा, बैठा। पूछा कि हीरे का क्या हुआ? कमाल ने कहा, फिर वही बात! जब पत्थर ही है तो भूल क्यों नहीं जाते! और फिर भेंट भी दे दी, फिर भी याद जारी रखते हो। अगर बहुत ही उत्सुकता है तो जहां रख गए वहीं देख लो। अगर किसी ने न निकाला हो तो वहीं होगा। नरेश समझ गया कि है तो चालाक। यह कह रहा है अगर किसी ने न निकाला हो! निकाला खुद ने ही होगा। उठ कर देखा, हीरा वहीं का वहीं रखा था।
यह संत का व्यवहार है। बड़ा कठिन है इस धनी आदमी को पहचानना।
तुम पहचान लोगे अगर वह कहे कि ले जाओ, मैं छूता नहीं। तुम कहोगे, परम साधु है। तुम त्यागी को परम साधु कहते हो। लेकिन त्यागी भोगी का ही विपरीत है; त्यागी भोगी का ही उलटा छोर है। भोगी पकड़ता है, त्यागी छोड़ता है; लेकिन दोनों की संपदा मध्य में है। पकड़ो या छोड़ो, लेकिन दोनों मानते हो धन का मूल्य है। संत शिशुवत है। धन का कोई मूल्य नहीं है; न पकड़ने में आतुर है, न छोड़ने में आतुर है। क्योंकि छोड़ने की आतुरता भी बताती है कि तुम्हारे मन में अभी जागरण नहीं हुआ, अभी विवेक का उदय नहीं हुआ।
तो संत कभी भोगी जैसा दिख सकता है तुम्हें, कभी त्यागी जैसा दिख सकता
है तुम्हें। यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कैसे व्याख्या करोगे। लेकिन संत न भोगी है और न त्यागी है; शिशुवत है। जीवन जैसे एक खेल है। उस खेल में गंभीरता नहीं है। हो नहीं सकती। खेल में कहीं गंभीरता होती है?
इसलिए साधु को जब भी तुम गंभीर देखो तो समझना कि कहीं कोई चीज गड़बड़ हो गई; कोई रोग लग गया; त्याग का रोग लग गया। पहले भोग का रोग लगा था, अब त्याग का रोग लग गया। और अगर भोग निमोनिया है तो त्याग डबल निमोनिया है। जब भोग ही गलत है तो भोग का छोड़ना तो और भी गलत होगा। भोग के पार होना है; छोड़ने में ग्रसित नहीं हो जाना।
इसलिए संत को पहचानना कठिन है। इन दो को तुम पहचान सकते हो। भोगी को तुम भलीभांति जानते हो; तुम्हारा अपना अनुभव भी भोग का है। त्यागी को भी तुम जानते हो, क्योंकि वह तुमसे विपरीत है। उसको तौलने में कठिनाई नहीं है। तुम पूरब जा रहे हो, वह पश्चिम जा रहा है। साफ दिखाई पड़ता है कि उसकी पीठ दिखाई पड़ रही है। जिस तरफ तुम चेहरा किए हो उस तरफ वह पीठ किए है। जहां तुम उन्मुख हो वहां वह विमुख है। भाषा एक ही है। मार्ग एक ही है। सीढ़ी एक ही है। साफ-साफ पहचान हो जाती है। लेकिन संत को तुम न पहचान पाओगे।
इसलिए संत अक्सर बिना पहचाने मर जाते हैं। क्योंकि वे कहां जा रहे हैं, तुम पक्का ही नहीं कर पाते। तुम अगर उनसे कहो कि चलो पूरब की तरफ, तो तुम्हारे साथ हो लेते हैं कि चलो, थोड़ा टहलना ही हो जाएगा। तभी संदेह पकड़ जाता है कि यह कैसा संत! हमको ले जाना था पश्चिम की तरफ, सो उलटा हमारे साथ आ रहा है और कहता है टहलना हो जाएगा।
झेन कथा है। एक सम्राट एक फकीर के प्रेम में था। और सम्राट अक्सर फकीरों के प्रेम में पड़ जाते हैं। क्योंकि फकीर बड़ी दूसरी दुनिया का अजनबी मालूम पड़ता है। अपने ही जैसा नहीं, अपने से बड़ा अजीब लगता है। और अजनबी में आकर्षण होता है। जो अपने से बहुत भिन्न है उसमें एक रस होता है। जो अपने से विपरीत है उसको जानने की जिज्ञासा जगती है। वह किसी और लोक का निवासी है। जैसे कोई खबर कर दे कि कोई चांद का आदमी चांद से उतर कर बाजार में आ गया है, माणिक चौक में खड़ा है, तो सारे लोग भागें अजनबी को देखने, चांद से आए आदमी को देखने। ऐसे ही सम्राट अक्सर फकीरों के प्रेम में पड़ जाते हैं।
यह सम्राट प्रेम में था। और प्रेम से ही इसने एक दिन निवेदन किया कि मुझे बड़ा दुख होता है कि तुम वृक्ष के नीचे पड़े हो। मैं यहां मौजूद हूं सेवा के लिए, महल मेरा मौजूद है, खाली पड़ा है। इन सैकड़ों कक्षों में कोई रहने वाला नहीं है। मैं अकेला हूं। तुम चलो!
लेकिन कभी उसने यह न सोचा था कि फकीर राजी हो जाएगा। फकीर अपना बोरा- बिस्तर बांध कर खड़ा हो गया। उसने यह भी न कहा कि सोचूंगा। सम्राट एकदम हताश हो गया कि यह आदमी तो अपने ही जैसा निकला। फंस गए। कहां भूल में पड़े रहे! यह तो ठीक भोगी मालूम पड़ता है। इसने एक दफा न भी न की। जैसे प्रतीक्षा ही कर

रहा था। जैसे सब आयोजन यह फकीरी का इसीलिए था कि कब महल में निमंत्रण मिल जाए। फंस गए। इसके जाल में उलझ गए। अब अपना शब्द वापस भी कैसे लें? लाना पड़ा फकीर को, लेकिन बेमन से। खुशी चली गई। ठहराया, लेकिन बेमन से। लेकिन अब अपने शब्द को कैसे वापस लेना?
छह महीने फकीर राजा के महल में रहा। धीरे-धीरे तो राजा ने आना भी बंद कर दिया कि इसकी क्या सुनना; हमारे ही जैसा आदमी है। ठीक है, रहता है। सब व्यवस्था कर दी और बिल्कुल भूल गया। छह महीने बाद एक दिन सुबह फकीर को बगीचे में टहलते देखा तो आया और कहा, महाराज, अब तो मुझमें और आप में कोई फर्क ही नहीं; जैसा मैं वैसे आप। अब क्या फर्क रहा?
फकीर ने कहा, चलो, थोड़ा गांव के बाहर चलें, वहां फर्क बताऊंगा। राजा साथ
हो लिया; गांव के बाहर पहुंच गए। नदी आ गई जो गांव की सीमा बनाती थी। फकीर ने कहा कि उस तरफ चलें। पार हो गए नदी। राजा ने कहा, अब देर हुई जाती है, सूरज भी खूब चढ़ आया, अब आप बता दें। दूर जाने की क्या जरूरत है? अब यहां कोई भी नहीं है, वृक्ष के नीचे बैठ कर बता दें। उसने कहा कि थोड़ा और। दोपहर तक वह सम्राट को चलाता रहा। आखिर सम्राट खड़ा हो गया। उसने कहा, अब बहुत हो गया। व्यर्थ चलाए जा रहे हैं। जो कहना है कह दें!
फकीर ने कहा, अब मैं वापस नहीं लौटूंगा। तुम मेरे साथ चलते हो? सम्राट
ने कहा, मैं कैसे साथ चल सकता हूं? राज्य है, महल है, व्यवस्था, काम-धाम, हजार उलझनें हैं। आपको क्या? तो फकीर ने कहा, अब समझ सको तो समझ लेना। हम जाते हैं, तुम नहीं जा सकते हो; वहीं भेद है। हम महल में थे, महल हममें न था। तुम महल में हो और महल भी तुममें है। भेद बारीक है। समझ सको, समझ लेना।
सम्राट रोने लगा, पैर पकड़ लिया, कहा कि मैं पहचान ही न पाया। और आप छह महीने वहां थे और मैं धीरे-धीरे आपको भूल ही गया। और मैं तो समझा कि आप भी भोगी हैं। वापस चलिए!
फकीर ने कहा, मुझे चलने में कोई हर्जा नहीं, लेकिन फिर वही गलती हो जाएगी। मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। कहो कि मैं चला। सम्राट फिर चौंका। और उस फकीर ने कहा कि देखो, तुम भोग को समझ सकते हो, तुम त्याग को समझ सकते हो; तुम संत को नहीं समझ सकते। मुझे क्या अड़चन है? इधर गए कि उधर गए, सब बराबर है। सब दिशाएं उसी की हैं। महल में रहे कि झोपड़े में, सब महल, सब झोपड़े उसी के हैं। फटे कपड़े पहने कि शाही कपड़े पहने, जमीन पर सोए कि शय्या पर, बहुमूल्य शय्या पर सोए; सभी उसका। जो दे दे वही ले लेते हैं। जो दिखा दे वही देख लेते हैं। अपनी कोई मर्जी नहीं। बोलो, क्या इरादा है? कहो तो हम लौट पड़ें। मगर तुम पर फिर बुरी गुजरेगी। इसलिए बेहतर है तुम हमें जाने दो; कम से कम श्रद्धा तो बनी रहेगी। तुम कम से कम कभी याद तो कर लिया करोगे कि किसी त्यागी से मिलना हुआ था। शायद वह याद तुम्हारे लिए उपयोगी हो जाए। तुम्हारे कारण बहुत से संत त्याग में जीए हैं, झोपड़ों में पड़े रहे हैं, वृक्षों के नीचे बैठे रहे हैं। तुम्हारे कारण! क्योंकि तुम समझ ही न पाओगे। तुम समझ ही व्यर्थ बातें सकते हो। सार्थक की तुम्हें कोई पहचान नहीं है। सार्थक की पहचान हो भी नहीं सकती, जब तक तुम उस सार्थकता को स्वयं उपलब्ध न हो जाओ। तुम कैसे पहचानोगे संत को बिना संत हुए? वही गुणधर्म तुम्हारी चेतना का भी हो जाए, वही सुगंध तुम्हें भी आ जाए, तभी तुम पहचानोगे। कृष्ण हुए बिना कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। लाओत्से हुए बिना लाओत्से को पहचानना मुश्किल है।

तुम यहां मेरे पास हो; निरंतर मुझे सुनते हो; हर भांति मेरे रंग में रंगे हो; फिर भी तुम मुझे पहचान नहीं सकते जब तक तुम ठीक मेरे जैसे ही न हो जाओ। तब तक तुम्हारी सब पहचान बाहर-बाहर की, तब तक तुम्हारी सब पहचान अधूरी, तब तक तुम्हारी सब पहचान तुम्हारी ही व्याख्या। उससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। अगर तुम इतना भी समझ लो तो काफी समझना है। क्योंकि यह समझ तुम्हें और आगे की समझ की तरफ सीढ़ी बन जाएगी।
"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है।"

बचकाना नहीं, बालक जैसा। अविकसित नहीं; कहीं बचपन में अटक नहीं गया कि
बढ़ न पाया हो। इतना बढ़ा, इतना बढ़ा, इतना बढ़ा कि वापस बच्चा हो गया। क्योंकि सभी चीजें बढ़ कर अपने मूल स्रोत पर आ जाती हैं।
जीवन वर्तुलाकार है। जीवन की सभी गति वर्तुलाकार है। चांद-तारे घूमते हैं वर्तुल में, पृथ्वी घूमती है वर्तुल में, सूरज घूमता है वर्तुल में। पृथ्वी एक वर्ष में चक्कर लगा लेती है सूरज का; एक वर्तुल पूरा हो जाता है। सूरज स्वयं पच्चीस सौ वर्षों में किसी महासूर्य का चक्कर लगा रहा है।
इसीलिए तो पच्चीस सौ वर्षों में चेतना में फिर से ज्वार-भाटा आता है। एक वर्ष पूरा हुआ सूरज का। एक वर्ष में पृथ्वी चक्कर लगाती है; इसीलिए तो मौसम पैदा होते हैं। गर्मी आती है, वर्षा आती है, शीत आती है; फिर गर्मी लौट आती है। यह जो तुम्हें मौसम की बदलाहट दिखाई पड़ती है, पृथ्वी के चक्कर के कारण। तुम्हारी चेतना भी ऐसे ही वर्तुलाकार में घूम रही है। इससे तुम बच्चे होते हो, जवान होते हो, बूढ़े होते हो। वे तुम्हारे मौसम हैं।
सूरज चक्कर लगा रहा है किसी महासूर्य के किसी अज्ञात केंद्र का। पच्चीस सौ वर्ष में उसका एक चक्कर पूरा होता है। तो चेतना के उस परम जगत में भी बचपन आता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है। हर पच्चीस सौ वर्षों में जगत की चेतना अपनी आखिरी ऊंचाई पर पहुंचती है। उस समय जैसे द्वार खुले होते हैं; जो प्रवेश कर जाए, कर जाए। उस समय तुम बाढ़ के साथ जा सकते हो। उस समय भयंकर लहरें जा रही हैं परमात्मा की तरफ, उनके साथ तुम बह सकते हो। उस समय बुद्ध पैदा होते हैं, महावीर पैदा होते हैं, कृष्ण, पतंजलि पैदा होते हैं, जरथुस्त्र। उनकी प्रगाढ़ धारा में कोई भी बह जा सकता है।
इन आने वाले पच्चीस वर्षों में, इस सदी के पूरे होते-होते, वैसी प्रगाढ़ता का क्षण आएगा। तुम्हारे साथ मेहनत उसी क्षण के लिए तुम्हें तैयार करने को कर रहा हूं कि उस क्षण तुम्हें वह समय तैयार पाए। और इसलिए मैं इतनी जल्दी में हूं, क्योंकि वह समय आ सकता है और हो सकता है तुम सुनते ही बैठे रहो, तुम विचार ही करते रहो, द्वार खुले और बंद हो जाए।
सभी चीजें वर्तुल में घूमती हैं; जहां से शुरू होती हैं वहीं वापस पहुंच जाती हैं। तुम्हारी चेतना भी अगर बढ़ती ही जाए, बढ़ती ही जाए, तो फिर बालवत, शिशुवत हो जाएगी। तुम अगर बहुत आगे निकल जाओ तो तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां से तुम आए थे।
इसलिए जब तुम पूछते हो कि लाओत्से को मान कर पीछे लौट रहे हैं, तो यह आगे जाना है? आगे जाएं कि पीछे लौटें? तुम ठीक से आगे चले जाओ तो तुम पीछे पहुंच जाओगे। तुम ठीक से पीछे पहुंचने को सम्हाल लो तो तुम आगे निकल जाओगे। वहां विरोध नहीं है। वर्तुल में कोई विरोध नहीं है। वर्तुल से चूकता वही है जो बैठा है और चलता ही नहीं; कहीं भी नहीं जाता--न पीछे, न आगे।
"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है। जहरीले कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।"
शिशु पर हमला करना मुश्किल है। नहीं कि हमला नहीं किया जा सकता; मुश्किल है। क्या कारण है? कई बार तुम देखते हो, ऐसा होता है कि मकान में आग लग गई, सब मर गए; एक छोटा बच्चा बच गया। मकान से, ऊंचाई से एक छोटा बच्चा गिरता है और जरा भी चोट नहीं लगती। लोग कहते हैं, जाको राखे साईयां मार सके न कोय! नहीं, परमात्मा को इसमें कुछ करना नहीं पड़ता। साईयां का इसमें कुछ हाथ नहीं है, कुछ लेना-देना नहीं है। यह शिशुवत होने में कुछ खूबी है। शिशु गिरते हैं, टूट नहीं पाते। क्योंकि गिरने की उन्हें समझ नहीं है। वे जब गिर रहे हैं तब भी वे खेल ही समझ रहे हैं। तन नहीं गए हैं, घबड़ा नहीं गए हैं, हड्डियां खिंच नहीं गईं, मस्तिष्क में तनाव नहीं है। क्योंकि तुम जब पृथ्वी से जाकर टकराओगे खिड़की से गिर कर तो पृथ्वी नहीं मारेगी तुम्हें, तुम्हारा तनाव मारेगा। अगर तुम बहुत तने हुए हो तो तुम्हारे तनाव पर पड़ी चोट को तुम झेल न पाओगे, टूट जाओगे।
कड़ी चीज टूट जाएगी, मुलायम चीज क्षण भर को झुकेगी, फिर अपनी जगह आ जाएगी। जितनी कोमल चीज होगी उतनी ही लोचपूर्ण होती है। शिशु लोचपूर्ण है। वह चोट खा जाएगा, टूटेगा नहीं। तूफान आता है; छोटे पौधे झुक जाते हैं, अपनी

जगह खड़े हो जाते हैं। तूफान को हरा दिया उन्होंने, झुकने में उनकी कला थी। बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, फिर उठ नहीं पाते। क्योंकि बड़े वृक्ष पहले तो लड़ते हैं, पहले तो पूरी कोशिश करते हैं तूफान के खिलाफ खड़े रहने की; उस लड़ाई में, उस प्रतिरोध में, उस रेसिस्टेंस में ही जड़ें उखड़ जाती हैं। कहां तूफान? छोटे पौधे इस झंझट में नहीं पड़ते। वे अपने को छोटा मानते हैं, झुक जाते हैं। झुक गए, तूफान तो निकल जाता है। बड़े वृक्षों को मिटा जाता है, छोटों को नया जीवन दे जाता है। फिर खड़े हो जाते हैं लहलहाते। तूफान में सिर्फ उनकी धूल झड़ जाती है। तूफान और कुछ नहीं कर पाता।
अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि छोटे पौधे बच जाते हैं, बड़े वृक्ष नहीं
बच पाते। नहीं, इसमें परमात्मा का कुछ हाथ नहीं है। छोटे वृक्ष की खूबी है उसका लोचपूर्ण होना। छोटे बच्चे लोचपूर्ण हैं। इसलिए तो दिन भर गिरते रहते हैं। तुम जरा दिन भर एक दिन बच्चे के साथ गिर कर देखो; फिर जिंदगी भर उठ न सकोगे।
पश्चिम में उन्होंने एक प्रयोग किया है, एक बहुत बड़े पहलवान को... । एक मनोवैज्ञानिक लाओत्से को पढ़ रहा था। तो उसे लगा कि इस पर प्रयोग करने जैसा है। तो हार्वर्ड युनिवर्सिटी में प्रयोग किया गया। एक बड़े से बड़े पहलवान को बुलाया गया, जिसका शरीर बड़ा शक्तिशाली है। और उसे एक काम दिया गया है कि आठ घंटे वह एक बच्चे का अनुकरण करे, बच्चा जो करे वही वह भी करे। बस कुछ और नहीं करना है, एक आठ घंटे बच्चा बैठे तो बैठ जाए, बच्चा खड़ा हो तो खड़ा हो जाए, बच्चा घिसटे तो घिसटे, बच्चा लोटे तो लोटे, बच्चा उचके तो उचके, रोए तो रोए, चिल्लाए तो चिल्लाए। जो भी बच्चा करे, बस उसका अनुकरण करता रहे।
वह पहलवान छह घंटे में चारों खाने चित्त हो गया। और बच्चे को बहुत मजा आया तो वह और ज्यादा करने लगा। जब कोई आदमी उसकी नकल कर रहा था तो उसने ऐसे- ऐसे काम किए कि वह पहलवान को उसने पस्त कर दिया। छह घंटे में वह पड़ गया। और उसने कहा कि मेरी हिम्मत अब आगे खींचने की नहीं, यह मार डालेगा। और बच्चा प्रसन्न है; उसे कुछ हुआ ही नहीं है। वह खेल समझ रहा है।
लाओत्से ठीक है। क्योंकि बच्चे के लिए जीवन अभी खेल है। काम जिस दिन हुआ उसी दिन थकान शुरू हुई। जिस दिन काम आया चित्त में उसी दिन थकान शुरू हुई। जब तक खेल है तब तक सब मौज है। खेल में कभी कोई थकता है?
मैं एक गांव में रहता था। एक वकील मेरे पास रहते थे। बड़े से बड़े वकील थे
उस गांव के। बड़े थके-मांदे सांझ वे अदालत से लौटते। हाईकोर्ट का बड़ा कारोबार था उनका। और फिर वे आते ही से कि बहुत थक गया हूं, अब जरा टेनिस खेलने जा रहा हूं। मैंने उनसे पूछा कि तुम कभी सोचो भी तो कि थक कर आए हो और अब टेनिस खेलने जाओगे तो और थकोगे। उन्होंने कहा कि नहीं, कभी इस पर सोचा नहीं, क्योंकि टेनिस खेल है। तो फिर, मैंने कहा, तुम अदालत भी खेल की तरह क्यों नहीं जाते कि थको ही न? और जब बात ही साफ है, क्योंकि तुम इतना काम करके आए, अब टेनिस खेलने जा रहे हो तो शरीर तो थकेगा ही! पर वे कहते हैं, नहीं, टेनिस खेल कर घंटे भर बाद आता हूं, बिल्कुल ताजा हो जाता हूं। तो फिर तुम इतनी सी बात के सूत्र को समझ क्यों नहीं ले रहे हो कि अदालत को भी खेल बना लो।
श्रम से कोई भी नहीं थकता, काम से थकता है। क्योंकि श्रम से थकता होता
तो खेल से भी थकता। क्योंकि खेल भी श्रम है। काम से थकता है आदमी। और जिस काम को तुम प्रेम करते हो वह खेल हो जाता है। जिस काम को तुम प्रेम नहीं करते, वही काम है। अगर तुम खेल को भी प्रेम न करो, वह भी काम हो जाएगा। प्रोफेशनल खिलाड़ी होते हैं, वे थक जाते हैं। क्योंकि उनका धंधा है, एक घंटा खेलना है। यह काम है। इससे कमाई करनी है।
खेल और काम में एक ही फर्क है। खेल है क्षण में जीना। यहीं प्रारंभ है, यहीं अंत है। यही साधन है, यही साध्य है। काम का अर्थ हैः यह साधन है, साध्य आगे है, फल में है। अगर कृष्ण की पूरी गीता का कोई सार है तो वह इतने से में है कि तुम जीवन को खेल बना लो, फल की आकांक्षा मत करो। फल की आकांक्षा से प्रत्येक चीज काम हो जाती है। खेल में कुछ फल थोड़े ही है। खेलना ही फल है। शिशु थकता नहीं। उसकी ऊर्जा सदा बहती रहती है। मां-बाप थक जाते हैं, पूरा घर थक जाता है; एक छोटा सा बच्चा सबको नचा डालता है, थका डालता है अच्छी

तरह से। और जब वे थक कर विश्राम के लिए जा रहे हैं तब भी वह अपने बिस्तर पर बैठा है, अभी उसे नींद नहीं आ रही। अब उसको सुलाने की भी कोशिश करनी पड़ती है। क्या कारण होगा उसकी इस अथक ऊर्जा का?
लाओत्से कहता है, वही सूत्र बना लो। और जिसकी ऊर्जा लोचपूर्ण है, और जिसकी ऊर्जा सरल है, और जिसकी ऊर्जा निर्दोष है, उस पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहता। तुम्हारी कोई जेब भी काट ले, बच्चे की कोई जेब नहीं काटता। और बच्चे को तुम एक रुपया हाथ में दे दो और वह चला जाए, गिर जाए रुपया, तो चोर भी पास में खड़ा हो तो वह भी ढूंढ़ कर उसका रुपया उसको दे देता है। बच्चा खो जाए तो लोग उसे कंधे पर रख कर घूमते हैं कि भई, किसका बच्चा है! मिठाई खिलाते हैं, खिलौना खरीद देते हैं। इस बच्चे में मामला क्या है? यही बच्चा अगर बड़ा होता तो इसकी ये ही आदमी जेब काट लेते। बच्चे पर लोग आक्रमण नहीं करते। रहस्य कहां है? अगर वह दिख जाए तो तुम उस रहस्य को कुंजी की तरह उपयोग कर सकते हो। क्योंकि बच्चा किसी पर आक्रमण नहीं करता। बच्चा अनाक्रामक है। इसलिए
उस पर करुणा आती है, इसलिए उस पर दया का प्रवाह होता है, इसलिए उस पर प्रेम उपजता है। वह अहिंसात्मक है। वह किसी को कुछ नुकसान नहीं करना चाहता। इसलिए किसी का भी मन उसका नुकसान करने का नहीं होता है।
तुम इसीलिए नुकसान उठाते हो, क्योंकि तुम किसी का नुकसान करना चाहते हो। यह भी हो सकता है, आज तुम न करना चाहते होओ नुकसान, पीछे कभी किया हो। इसलिए तो हिंदू कहते हैं कि जो भी किया है उसका निबटारा करना होता है। कभी पीछे नुकसान किया हो तो भी उसका फल भुगताना पड़ेगा। या कभी आगे करने की योजना बना रहे होओ तो भी उसका फल भुगताना पड़ेगा।
अभी तुम बिल्कुल निरीह चले जा रहे हो रास्ते से, किसी का नुकसान करने
का अभी इरादा भी न हो, ख्याल भी न हो, लेकिन तुम आदमी नुकसान करने वाले हो।
तुम पर किसी को प्रेम नहीं आता। तुम गिर पड़ो तो लोग हंसते हैं, प्रसन्न होते हैं। तुम हार जाओ तो लोग मिठाइयां बांटते हैं।
एक बच्चा गिर पड़ता है तो कोई नहीं हंसता; लोग उसे दौड़ कर उठा लेते हैं। क्या है बच्चे का राज? वही राज तुम्हारी साधना का सूत्र हो जाना चाहिए। अनाक्रामक! उसकी ऊर्जा अपने में है, वह किसी पर हमला नहीं करना चाहता। वह अपने में जीता है। न किसी के लेने में है, न किसी के देने में है। न माधो का लेना, न साधो का देना। अपने में काफी है। छोटे बच्चे की एक पर्याप्तता है, वह अपने में पूरा है। कोई कमी नहीं है। वासना की कोई दौड़ नहीं है। कोई भविष्य नहीं है। इसी क्षण में पूरा का पूरा जी रहा है। तितली के पीछे दौड़ रहा है तो बस यह दौड़ना ही सब कुछ है। कंकड़-पत्थर नदी के किनारे बीन रहा है तो यह बीनना ही सब कुछ है। इस क्षण में उसकी समग्रता है, उसका पूरा अस्तित्व लीन है।
इस पर प्रेम उपजेगा। और जिस दिन तुम शिशुवत हो जाओगे, तुम पर भी प्रेम उपजेगा। इसलिए संतों पर बड़ा प्रेम आता है। उनके पास होना ही, और उनके प्रति प्रेम से भर जाना हो जाता है। कोई अंतस का एक संबंध जुड़ने लगता है। तुम बचाना चाहोगे। तुम संत के साथ ऐसा ही व्यवहार करोगे जैसे वह छोटा बच्चा है। उसके तुम चरणों में भी झुकोगे, क्योंकि उसकी ऊंचाई अनंत; और तुम उसे पंख फैला कर अपने में बचा भी लेना चाहोगे, क्योंकि वह शिशुवत है। इसलिए संत के प्रति बड़ी अनूठी प्रतीति होती है। श्रद्धा की, प्रेम की, करुणा की, सबकी सम्मिलित अनुभूति होती है। जो जानता है वही जानता है। न तुम्हें वैसी अनुभूति हुई हो तो बड़ा कठिन हो जाएगा। तुम संत को छिपा लेना चाहोगे, बचाना चाहोगे, उसे कांटा न गड़ जाए, पत्थर न लग जाए। क्योंकि वह शिशुवत हो गया है। तुम उसके चरणों में सिर भी रखोगे; क्योंकि उससे और बड़ी कोई ऊंचाई नहीं। तुम्हारा सारा हृदय उसकी तरफ बहेगा; क्योंकि उससे बड़ा तुम कोई प्रेम-पात्र न पा सकोगे।
संतों को जिन्होंने मारा है वे निश्चित विचारणीय लोग हैं। क्योंकि संतत्व के निकट सहज ही प्रेम उपजता है, बचाने का भाव उपजता है। तुम संत को आशीर्वाद भी देना चाहोगे--अपने गहनतम हृदय से! तुम उससे आशीर्वाद भी पाना चाहोगे और उसे आशीर्वाद भी देना चाहोगे। तुम अपने जीवन को खोकर भी उसके जीवन को बचाने की आकांक्षा करोगे। इसलिए बड़ी अनूठी घटना है कि जब कोई जुदास

जीसस को धोखा देता है। क्योंकि असंभव जैसी घटना है, पर घटती है। इससे पता चलता है कि कितनी आदमी की ऊंचाई हो सकती है और कितनी आदमी की नीचाई हो सकती है। जीसस जैसी ऊंचाई हो सकती है, जुदास जैसी नीचाई हो सकती है।
इसलिए जुदास नाम भी अपमानित हो गया। यहूदियों में जुदास का नाम बहुत प्रचलित नाम था। जीसस के बारह शिष्यों में दो का नाम जुदास था। बहुत प्रचलित नाम था। जिस गांव में जाओगे सौ-पचास जुदास पाओगे। कुछ नाम सभी जगह प्रचलित होते हैं। लेकिन जीसस को सूली देने के बाद वह नाम रखना भी मुश्किल हो गया। उस नाम में ही निंदा हो गई। वह नाम ही घृणित हो गया। क्या हो गया? क्योंकि इससे और नीचाई क्या हो सकती है कि एक शिशुवत व्यक्ति को इस जुदास ने सूली पर लटकवा दिया? पीड़ा फिर उसको भी अनुभव हुई तत्क्षण, क्योंकि इतना बुरा आदमी भी नहीं हो सकता न! कितना ही बुरा रहा हो, उसे भी यह प्रगाढ़ अनुभव हुआ कि यह मैंने क्या किया? तीस रुपए में बेच दिया! केवल तीस रुपए मिल थे उसे, तीस चांदी के सिक्के। उस आधार पर उसने जीसस को धोखा दे दिया, पकड़वा दिया।
और एक आदमी यह जीसस है कि जाने के पहले, विदा होने के पहले उसने सबके पैर धोए। उसमें जुदास के पैर भी थे। एक शिष्य ने पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? आप और हमारे पैर धो रहे हैं! हम अपने आंसुओं से धोएं, अपने प्राणों से धोएं, तो भी थोड़ा है। लेकिन आप क्यों यह कर रहे हैं? तो जीसस ने कहा, ताकि तुम्हें याद रहे। क्योंकि ये मेरे आखिरी क्षण हैं। जल्दी ही तुममें से कोई मुझे धोखा देगा। यह रात आखिरी है। ताकि तुम्हें याद रहे। और जो मैंने तुम्हारे साथ किया, तुम नीचे से नीचे व्यक्ति के साथ वही करना। क्योंकि अगर मैं तुम्हारे पैर धो सकता हूं तो फिर तुम किसी के भी पैर धोने के योग्य हो और कोई भी तुमसे पैर धुलाने के योग्य है। तुम छोटे से छोटे हो जाना। जो मैंने तुम्हारे साथ किया है वह तुम दूसरों के साथ करना, और सदा याद रखना। और यह भी याद रखना कि जो मुझे धोखा देगा क्षण भर बाद, उसके भी मैं पैर धो रहा हूं। तुम उस पर भी नाराज मत होना।
एक ऊंचाई यह हो सकती है!
और तब जीसस ने जुदास के पैर धोने के बाद कहा कि अब तू जल्दी कर, क्योंकि रात बीतने के करीब है। कोई भी नहीं समझा कि जीसस क्या कह रहे हैं। तू जल्दी कर, तुझे जो भी करना है जल्दी कर। क्योंकि अब रात बीतने के करीब है। और जुदास वहां से नदारद हो गया। उसने तीस रुपए लिए और लोगों को खबर दे दी कि जीसस कहां हैं। जीसस को जब पकड़ कर ले जाया गया तब उसके प्राणों को पीड़ा हुई। तब वह समझा कि उसने क्या कर दिया है! तीस रुपए के अंधेपन में उसने क्या कर दिया है! ये तीस ठीकरे किस काम के हैं? उसे बोध हुआ। वह भागा और जाकर उसने प्रधान पुरोहित को, जिसने तीस रुपए दिए थे, जाकर तीस रुपए उसके ऊपर फेंक दिए और कहा कि रख लो अपने ये रुपए। और उसने जाकर आत्महत्या कर ली। जुदास जीसस को सूली लगने के बाद ही आत्महत्या कर लिया उसी दिन।
ये दो छोर हैं। नीचे-नीचे तुम अगर जाओ तो अंत में सिर्फ आत्महत्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और इससे बड़ी क्या नीचाई होगी--एक शिशुवत व्यक्ति को धोखा दे दिया! जिसका तुम पर इतना भरोसा था कि तुम्हारे पैर धोए, और जिसका तुम पर इतना प्रेम था कि तुम उसकी हत्या करवाने जा रहे थे तो भी उसने कहा, अब तू जल्दी कर जो भी तुझे करना है, क्योंकि रात फिर बीती जाती है। जिस पुरोहित ने तीस रुपए दिए थे और जीसस को फांसी लगवाई थी वह भी डरा कि
इन तीस रुपयों को वापस कैसे रखना? उसको भी लगा कि ये हैं तो रुपए बहुत घृणित, इनका कोई उपयोग तो हो नहीं सकता। तो उसने अपने सब पुरोहितों को इकट्ठा किया और पूछा, इनका क्या करना? उन्होंने कहा, इनका कुछ उपयोग नहीं हो सकता, एक ही काम हो सकता है कि एक जमीन बिकती है उसे हम खरीद लें इन रुपयों से और भिखमंगों और गरीबों के लिए मरघट नहीं है तो उनके लिए मरघट हो जाए। बस इन रुपयों से मरघट ही खरीदा जा सकता है।
वह मरघट जेरूसलम में अब भी है। उन तीस रुपयों से सिर्फ मरघट खरीदा जा सकता है। जीवन का कुछ भी उनसे खरीदना जीवन को कलुषित करना होगा। सिर्फ लाशें ही दफनाई जा सकती हैं उन तीस रुपयों से। यह पुरोहित को भी लगा, जिसने कि फांसी लगवाई है। वह भी उन रुपयों को रख न सका वापस। वे रुपए भारी थे पाप

से। और बड़े से बड़े पाप से भारी थे। क्योंकि एक शिशुवत, बच्चे को... । एक छोटा सा बच्चा रास्ते पर जा रहा हो और तुम उसकी हत्या कर दो।
लाओत्से कहता है, "जंगली कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते, और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।"
पर आदमी उन सबसे गया-बीता है। और आदमी ने शिशुवत व्यक्तियों की भी हत्याएं की हैं; उनको भी जहर पिला दिया है। इसे तुम ख्याल रखना कि आदमी की ऊंचाई कोई जानवर नहीं पा सकता और आदमी की नीचाई भी कोई जानवर नहीं पा सकता। अगर आदमी ऊंचा होना चाहे तो परमात्मा की ऊंचाई उसकी ऊंचाई हो जाती है। और अगर नीचा होना चाहे तो कोई जानवर उससे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। कोई जानवर प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता; हिंस्र से हिंस्र पशु भी पीछे छूट जाएंगे। आदमी का कोई मुकाबला नहीं है। नीचे गिरे तो नरक तक जा सकता है; ऊंचा उठे तो स्वर्ग उसकी श्वास-श्वास में बस जाता है।
लेकिन लाओत्से कहता है कि जब तुम शिशुवत हो जाते हो तो सारा अस्तित्व जैसे तुम्हारी सुरक्षा करता है। तुम जब आक्रामक नहीं हो तो कोई क्यों आक्रामक होगा?
"यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें कोमल, तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है।"
छोटे बच्चे की पकड़ का तुम्हें ख्याल है? तुम एक अंगुली दे दो, वह अंगुली
को पकड़ ले, तब तुम्हें पता चलेगा कि उसकी पकड़ मजबूत है। कोमल की पकड़ मजबूत! छोटा पौधा झुकता है तो भी जड़ों की पकड़ मजबूत है। जड़ें बड़ी छोटी हैं और बड़ी कोमल हैं। कोमलता की भी एक पकड़ है जो बड़ी मजबूत है। सच तो यह है कि कोमलता से बड़ी मजबूत जड़ें किसी चीज की नहीं हैं। कोमल से ज्यादा शक्तिशाली कोई नहीं है। निर्मल से ज्यादा शक्तिशाली कोई नहीं है। सरलता से ज्यादा शक्तिशाली कोई भी नहीं है। निर्दोषता परम शक्ति है, इनोसेंस, उसकी पकड़ मजबूत है। और अगर तुम्हारे हृदय से बहा हो तुम्हारा चरित्र तो उस चरित्र की भी पकड़ ऐसी ही मजबूत होगी; उसे कोई हिला न सकेगा। तूफान आएं, चले जाएं; तुम पर कोई चोट, कोई निशान भी नहीं छूटेगा।
"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।"
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। छोटा बच्चा अभी विभाजित नहीं है सेक्स की दृष्टि से भी। छोटे बच्चे के भीतर की स्त्री और पुरुष अभी मिले हुए हैं। इसीलिए तो छोटा बच्चा, चाहे वह लड़का हो, तो भी स्त्रैण मालूम होता है। लड़के और लड़कियों में एक उम्र तक कोई फर्क नहीं होता; दोनों एक जैसे कोमल होते हैं। फर्क इतना ही होता है, कपड़े हम उनको अलग-अलग पहना देते हैं। संभावनाएं भिन्न हैं उनकी, लेकिन एक सीमा तक उनमें कोई फर्क नहीं होता; तब तक वे दोनों एक ही जैसे होते हैं। क्योंकि दोनों के भीतर के स्त्री और पुरुष संयुक्त हैं। अभी वर्तुल पूरा है। अभी वर्तुल कहीं से टूटा नहीं है।
इसलिए तो बच्चे के अंग-अंग पूरे हैं। और बच्चा एक गहन ब्रह्मचर्य में जीता है। अभी वासना नहीं जगी। वासना के साथ ही भेद शुरू होगा। वासना जगेगी, तभी तो वह पुरुष और स्त्री बनेगा। और वासना के जगते ही भीतर का वर्तुल टूट जाएगा। भीतर की स्त्री से मिलन छूट जाएगा, भीतर के पुरुष से मिलन छूट जाएगा। फिर बाहर खोज शुरू होगी। जिससे भीतर हम टूट जाते हैं उसको हम बाहर खोजते हैं।
बच्चा काफी है। बच्चा एक तृप्त अवस्था है। उसकी सारी जीवन-ऊर्जा भीतर
ही संयुक्त है। इसलिए तुम किसी बच्चे को कुरूप न पाओगे। सभी बच्चे सुंदर होते हैं। फिर क्या हो जाता है बाद में? यही सुंदर बच्चे बड़े कुरूप व्यक्तियों में परिवर्तित हो जाते हैं। फिर ऐसा सौंदर्य संतत्व को पुनः उपलब्ध होता है, अन्यथा नहीं उपलब्ध होता। जब फिर दुबारा भीतर की स्त्री और पुरुष मिल जाते हैं, तब फिर ब्रह्मचर्य आता है। तब कोई जरूरत नहीं रह जाती बाहर की खोज की। वही ब्रह्मचर्य का अर्थ है।
तो दो ब्रह्मचर्य हैं। एक बच्चे का ब्रह्मचर्य, क्योंकि वह भेद के पूर्व। और एक संत का ब्रह्मचर्य, क्योंकि वह भेद के बाद।
"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है... ।"

उसे कोई पता नहीं कि नर और नारी का कोई मिलन होता है। वह अभी मिला ही हुआ है; अभी उसके भीतर सब पूरा है।
"तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।"
अंग-अंग पूरे हैं, क्योंकि वह पूरा है। जब भीतर पूर्णता होती है तो रोएं-रोएं में पूर्णता होती है।
"जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है।"
अभी उसका बल विभाजित नहीं हुआ; अभी उसका वर्तुल टूटेगा। चौदह वर्ष की उम्र में लड़की का मासिक धर्म शुरू होगा। वर्तुल टूट गया। लड़के की काम प्रौढ़ता होगी; चौदह वर्ष में वह योग्य हो गया, अब बच्चों को जन्म दे सकता है। उसका वर्तुल टूट गया। जब भीतर का वर्तुल टूट जाता है तो जिससे हमारा संबंध अब तक भीतर था उसको हम बाहर खोजते हैं; बेचैनी शुरू होती है।
इसलिए चौदह वर्ष की उम्र सबसे ज्यादा बेचैन उम्र है। सबसे ज्यादा बेचैन। समझ ही नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है! क्यों हो रहा है! चौदह वर्ष का लड़का और लड़की बड़ी संकट की अवस्था में होते हैं। जानते भी नहीं क्या हो रहा है। जो अतीत था वह खो गया; जो सुख था, जो शांति थी, वह खो गई। एक बेचैनी है; एक अनजानी प्यास है। किस पानी से बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। कैसे बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। सब स्वप्न वासना से भर जाते हैं। सारा चित्त वासना से भर जाता है। किसी से कह भी नहीं सकता; कोई उसकी सुनने को भी नहीं है। किसी के साथ अपने भीतर की अवस्था को बता भी नहीं सकता। बताना भी चाहे तो उसके पास शब्द भी नहीं हैं अभी कि क्या हो रहा है। बस सिर्फ बेचैन है। कुछ खोया-खोया है।
तुम चौदह वर्ष के लड़के-लड़कियों को देखो, उनकी आंखों में तुम्हें पता लगेगा, कुछ खोया-खोया है। कुछ था जो खो गया है। और कुछ मिलने की तलाश है जिसका पता नहीं, वह कहां मिलेगा। वर्तुल टूट गया है। भीतर की ऊर्जा अब खंडित हो गई है। इसलिए चौदह साल के लड़के और लड़कियां बहुत उत्तेजित अवस्था में होते हैं। और उनको सहना मां-बाप को भी मुश्किल होता है। वे जहां भी जाते हैं अपने साथ एक उत्तेजना का वातावरण ले जाते हैं। क्योंकि न तो वे अब बच्चे रहे और न अभी जवान हुए। एक बड़ी बेहूदी अवस्था है। उनकी आवाज कठोर हो जाती है लड़कों की, भर्रायी हुई हो जाती है। वह भर्रायी हुई आवाज भीतर के संगीत के टूट जाने के कारण है। लड़कियां शरमाई-शरमाई हो जाती हैं, अपने को छुपाई-छुपाई रखना चाहती हैं। कुछ शरीर में हो रहा है जो समझ के बाहर हो रहा है। लड़कियां बड़ी पीड़ित होती हैं जब उनका मासिक धर्म शुरू होता है। क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कोई उत्तर नहीं है आस-पास। और अपने ही सहारे अंधेरे में रास्ता खोजना है।
इन्हीं क्षणों में भटकाव हो जाता है। समाज ऐसा चाहिए जो इस क्षण में बड़ा सहयोग दे। मां-बाप, शिक्षक। क्योंकि इस समय से ज्यादा फिर और कोई महत्वपूर्ण क्षण कभी नहीं आएगा। इस क्षण में जो चूक हो गई तो पूरे जीवन भटकाव होगा। और बड़े दुख की बात यह है कि इस क्षण में गलत लोग ही सहायता देने आते हैं, ठीक लोग नहीं। तुम किसी संत के पास नहीं जा सकते पूछने; जाना चाहिए संत के पास पूछने। मुहल्ले-पड़ोस के उपद्रवी लफंगे, उनसे तुम पूछोगे, उनका सत्संग करोगे। क्योंकि वे ही इन बातों को बता सकते हैं। गलत का शिक्षण गलत लोगों से होता है।

मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं कि तुम अपनी सारी चिंतना को, सारी चिंता को मेरे पास ले आओ। तो कभी-कभी कोई बुजुर्ग बैठा होता है मेरे पास तो उसे बड़ी बेचैनी होती है। एक सज्जन मुझसे कहने लगे कि यह क्या मामला है! आपको तो सिर्फ ध्यान के संबंध में ही इन्हें समझाना चाहिए। परमात्मा के संबंध में। यह लड़का अपनी कामवासना की बात कर रहा है। इसको आप क्यों समझा रहे हैं? इससे आपको क्या लेना-देना?
अगर इसे ठीक लोग न बताएंगे तो इसे गलत लोग बताएंगे। यह सीखेगा तो ही। अगर इसके लिए कोई सम्यक मार्ग न होगा जानने का तो भी यह जानेगा--गलत लोगों से जानेगा। और सारे लोग जीवन की बड़ी महत्वपूर्ण बातें गलत लोगों से जानते हैं। फिर जीवन भर अड़चन बनी रहती है। और जो संत हैं वे निंदा किए जा रहे हैं।

इसलिए वे सिखाएंगे कैसे? साधु हैं, वे गाली दिए जा रहे हैं। इसलिए वहां तो सीखने का कोई उपाय नहीं है। असाधु तैयार हैं सिखाने को। लेकिन उनसे जो भी सीखा जाएगा वह गंदे कुएं का पानी है। उसको पीना जहरीला है।
यह समाज इतना विकृत है इसीलिए कि हम चौदह साल की उम्र में, जो बहुत महत्वपूर्ण क्षण है, क्योंकि वहीं बच्चा टूटता है। अगर यह क्षण चूक गया तो जोड़ने का क्षण बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि कैसे टूटता है इस पर ही निर्भर होगा कैसे जुड़ेगा। अगर बहुत व्यवस्था से टूट हो सके, होशपूर्वक उसके भीतर के स्त्री और पुरुष अलग हो सकें, उसकी जानकारी में यह सब हो सके कि क्या हो रहा है, तो जिस दिन उसे इन दोनों को मिलाना होगा उसके पास कुंजी होगी। क्योंकि जिस तरह वह अलग हुआ था उसी तरह मिलने का इंतजाम कर लेगा। इसलिए दो अड़चन के क्षण हैंः एक चौदह वर्ष के करीब और एक उनचास वर्ष के करीब। चौदह वर्ष के करीब आदमी टूटता है और उनचासवें वर्ष के करीब फिर दूसरा क्षण आता है, पचास वर्ष के करीब, जहां जुड़ाव होना चाहिए। और हर सात वर्ष के बाद मंजिलें हैं। इसलिए पचास नहीं कह रहा हूं, उनचास।
सात वर्ष बच्चा बालक है। सात वर्ष के बाद काम-ऊर्जा सघन होनी शुरू होती है। चौदहवें वर्ष में काम-ऊर्जा प्रकट होती है। इक्कीसवें वर्ष में काम-ऊर्जा अपनी पूरी चरम उत्कर्ष स्थिति में होती है। अट्ठाइसवें वर्ष में व्यवस्थित हो जाती है। वह जो ऊंचाई थी इक्कीस वर्ष की वह खो जाती है, और एक संतुलन आ जाता है। पैंतीसवें वर्ष में उतार शुरू हो जाता है; पैंतीसवें वर्ष में जवानी उतरने लगती है। घाटी शुरू हो गई। बयालीसवें वर्ष में चिंतन फिर शुरू होता है, जैसा सात वर्ष में शुरू हुआ था। इसलिए धर्म का आविर्भाव करीब-करीब लोगों के मन में बयालीसवें वर्ष के करीब होना शुरू होता है। थोड़ा हेर-फेर होता है, बाकी औसत।
जुंग ने, पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि मैंने जितने मरीज देखे चालीसवें साल के बाद, उनकी बीमारी धार्मिक है। उनको धर्म चाहिए। बयालीसवें वर्ष के करीब धर्म का चिंतन शुरू होता है। देख ली जिंदगी, समझ लिया सब; कुछ सार न पाया। यह अवस्था फिर वैसी है जैसी सात साल में थी। अब एक नया उपक्रम शुरू हो रहा है। उनचासवें वर्ष में जोड़ का क्षण आता है, जैसा चौदह वर्ष में आया था। अगर चौदह वर्ष की घटना ठीक से घटी हो तो उनचासवें वर्ष की घटना सुगमता से घट जाती है। जो टूटा था वह फिर जुड़ जाता है।
इसलिए हमने पचास वर्ष में वानप्रस्थ की अवस्था मानी थी कि पचास वर्ष में आदमी वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का अर्थ हैः मुंह जंगल की तरफ हो जाए। जंगल न जाए, लेकिन मुंह जंगल की तरफ हो जाए। पीठ हो जाए संसार की तरफ। गया, वह वक्त गया। सपना, दुख-सपना, जो भी था, बीत गया। उसे देख लिया, जान लिया। अब फिर भीतर जुड़ गए। यह जो भीतर का जुड़ना है यह फिर एक नए ब्रह्मचर्य का उदय है। इस क्षण में फिर आदमी बालक जैसा हो जाना चाहिए। न हो पाए तो जिंदगी में कहीं कोई भूल हो गई।
"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग पूरे-पूरे हैं।"
पचास वर्ष में फिर नर और नारी का मिलन व्यर्थ हो जाएगा। अब भीतर के नर
और नारी का फिर मिलन होगा। वह फिर शिशुवत हो जाएगा। अब फिर उसके अंग पूरे- पूरे हो जाएंगे। और जब कभी यह घटना घटती है तो इससे ज्यादा सुंदर आदमी फिर न पा सकोगे। इसका बुढ़ापा बड़ा सौंदर्य से भरा हुआ होगा।
आमतौर से बुढ़ापा बड़ी दरिद्रता से भरा हुआ होता है। क्योंकि वर्तुल फिर जुड़ ही नहीं पाता। टूटा कैसे, उसका पता नहीं है, तो जोड़ कैसे पाओगे? जैसे टूटा है उसके ही विपरीत चल कर तो जुड़ना होगा।
"जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है। दिन भर चीखते रहने पर भी उसकी आवाज भर्राती नहीं।"
बच्चा दिन भर रोता है, चिल्लाता है, चीखता है, आवाज नहीं भर्राती। क्योंकि भीतर एक अहर्निश नाद बज रहा है; भीतर की स्त्री और पुरुष मिल रहे हैं। अधूरापन नहीं है।
"जिसका अर्थ हुआ कि उसकी स्वाभाविक लयबद्धता पूर्ण है।"

लयबद्धता का क्या अर्थ है? लयबद्धता का अर्थ हैः तुम पूरे हो, कुछ कमी नहीं है। तुम्हारी प्रेयसी, तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे भीतर है। मैं-तू दोनों भीतर हैं, इकट्ठे हैं। उन दोनों के मिलन से जो संगीत पैदा होता है वही लयबद्धता है।
संभोग में उसकी ही तो क्षण भर को झलक मिलती है। वह झलक क्षण भर की ही होगी। क्योंकि बाहर की स्त्री से तुम कितनी देर मिले रहोगे? क्षण भर को भी मिलना हो जाए तो बहुत है। पराए से तो तुम दूर हो ही; एक क्षण को भी पास आना हो जाए तो काफी है। समाधि में वही सतत मिलता है, संभोग में जो क्षण भर को मिलता है। समाधि का अर्थ हैः अब भीतर संभोग हो गया, अब भीतर लयबद्धता बजने लगी; भीतर का तार पूरा जुड़ गया। अब कोई कमी नहीं है।
संत है पूरा अस्तित्व अपने में। कोई जरूरत न रही; कोई कमी न रही। तभी तो संत के आस-पास एक तृप्ति की वर्षा होती रहती है। तुम उसके पास भी बैठोगे, तुम उसे देखोगे भी, तो भी तुम पाओगे कि कुछ बरस रहा है, कुछ अहर्निश बरस रहा है। इसलिए तो हिंदुओं ने, जो कि पुराने से पुराने धर्म के तलाशी हैं, दर्शन को इतना मूल्य दिया है। पश्चिम के लोग समझ ही नहीं पाते कि दर्शन का क्या मतलब? पश्चिम से कोई आता है तो वह पूछने को आता है, संत को देखने को नहीं। देखने से क्या लेना-देना है? देख तो तस्वीर ही लेते हैं। यहां आने की क्या जरूरत थी! सवाल लेकर आता है। पश्चिम से जब कोई आता है तो सवाल लेकर आता है, पूछने आता है, विचार करने आता है। पूरब ने जान लिया राज। पूरब कहता हैः संत को देख लिया, आंखें भर गईं; बस बहुत है। पूछना क्या है? और जो देखने से न दिखा वह पूछने से कैसे दिखेगा? सवाल लेकर थोड़े ही संत के पास जाना है। संत के पास तो खुला हुआ मन लेकर जाना है, ताकि दर्शन हो जाए।
यह दर्शन जैसी घटना हिंदुस्तान के बाहर कहीं भी नहीं घटी है। क्योंकि
इस राज को वे पहचान ही न पाए कि संत एक अहर्निश वर्षा है, एक तृप्ति है, एक परितोष है; जहां कोई कमी नहीं है, जहां सब भरा-भरा है। और जिसका भराव इतना है कि ऊपर से बह रहा है; एक बाढ़ आई है। तुम कहां पूछने जा रहे हो? तुम सिर्फ बैठ जाओ और बाढ़ में थोड़े नहा लो, थोड़ी सुगंध से भर जाओ। संत बंट रहा है--तुम थोड़ा बांट लो, और अपने साथ ले जाओ।
यह जो घटना घटती है, तभी घटती है, जब भीतर के स्त्री-पुरुष का मिलन हो जाता है। तब फिर से बच्चा पैदा हो गया; एक नया जन्म हुआ। यह द्विज की अवस्था है, जिसको जीसस ने रिबर्थ कहा है।
निकोडेमस से जीसस ने कहा कि जब तक तू फिर से पैदा न हो जाए तब तक तू मेरे परमात्मा के राज्य में प्रविष्ट न हो सकेगा। निकोडेमस ने कहा, तो फिर से पैदा होने का तो मतलब हुआ कि मरना पड़े, फिर जन्म लेना पड़े। जीसस ने कहा कि नहीं, जीते जी मरने की विधि है।
तब जन्म होता है, तब फिर से बच्चा आया संसार में। इसके बाल सफेद होंगे, इसके चेहरे पर झुर्रियां होंगी। लेकिन नहीं, इस जगत ने इससे बड़ा सौंदर्य नहीं देखा है। जब कोई ब.ूढा फिर से बच्चा हो जाता है तब अप्रतिम सौंदर्य का जन्म होता है। क्योंकि यह सौंदर्य अब भीतर का है। चरित्र भीतर का था, अब यह सौंदर्य भी भीतर का है। अब कुछ भी बाहर का नहीं है। अब यह लेता नहीं, अब यह सिर्फ देता है। अब यह सिर्फ बांटता है। यह अनंत के स्रोत से जुड़ गया। जितना बांटता है उतना बढ़ता है। संत एक सतत प्रसाद है। वह बांट रहा है, बंट रहा है। जो भी ले सकते हैं वे ले लें। जो भी देख सकते हैं वे देख लें। जो भी सुन सकते हैं वे सुन लें।
"लयबद्धता को जानना शाश्वत के साथ तथाता में होना है।"
और जैसे ही भीतर लय हो जाती है बाहर सब विसंगीत खो जाता है। जो अपने से जुड़ गया वह परमात्मा से जुड़ गया। इसलिए तो याद आती है बचपन की बार-बार; बार-बार पछताते हो कि कहीं बचपन थोड़ी देर और टिक जाता। बार-बार सपना देखते हो कि कैसे प्यारे दिन थे बचपन के! एक-एक क्षण कैसी गरिमा से भरा था! न कोई चिंता थी, न कोई संताप था, न कोई दायित्व था, न कोई विचार पीड़ित करते थे। हर घड़ी कितनी आनंदपूर्ण थी! बचपन की तरफ बार-बार लौट कर तुम देखते हो।
उस लौट कर देखने में कुछ सार नहीं। एक और बचपन आगे प्रतीक्षा कर रहा है,
जो पहले बचपन से बहुत बड़ा है। जिस दिन तुम उस बचपन को जान लोगे उस दिन पहला

बचपन एकदम फीका पड़ जाएगा। वह जैसे केवल दूसरे आने वाले परम बचपन का संकेत मात्र था, सिर्फ सूचना मात्र थी, सिर्फ एक झलक थी। तुम जब तक अपने पीछे लौट कर देख रहे हो तब तक तुम्हें पता नहीं कि आगे एक और बचपन आ सकता है। तुम्हारे हाथ में है वह घड़ी।
अगर तुम उस बचपन को पा लिए तो फिर तुम्हारा कोई जन्म-मरण न होगा। अगर तुमने उसे न पाया, फिर आएगा बचपन जो तुम मांग रहे हो, लेकिन वह फिर बाहर से आएगा। जब तक तुम भीतर से न ला सकोगे बचपन को तब तक तुम्हें बाहर से बचपन आता रहेगा। और जब तक तुम भीतर से न ला सकोगे मृत्यु को तब तक बाहर की मृत्यु तुम्हें झेलनी पड़ेगी। तब तक तुम पैदा होओगे, मरोगे; आवागमन जारी रहेगा। जिस दिन तुम भीतर से ले आओगे बचपन को, फिर बाहर के बचपन की कोई जरूरत न रही। तुम खुद ही गर्भ बन गए और तुमने स्वयं को ही स्वयं से जन्म दे दिया। तुम स्वयंभू हो गए। तुम न केवल अपने बच्चे हो, अपने मां-बाप भी हो गए। अब तुम पूरे हो गए। अब कुछ कमी न रही। अब तुम्हें मरने की कोई जरूरत नहीं। अब तुमने अमृत को पा लिया।
"शाश्वतता को जानना विवेक कहलाता है। लेकिन जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण है; और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।"
लाओत्से कहता है, जीवन में संशोधन करना अशुभ है।
"टु इम्प्रूव अपान लाइफ इ.ज काल्ड एन इल ओमेन।"
वह यह नहीं कहता कि तुम अपने चरित्र को सम्हालो, संशोधन करो, शुद्ध करो, चरित्रवान बनो, नैतिक बनो। वह कहता है, यह सब तो अशुभ लक्षण है, क्योंकि यह सब ऊपर-ऊपर होगा। तुम फिर से जन्मो। इम्प्रूवमेंट नहीं, रिबर्थ; सुधार नहीं, नया जन्म।
सुधार से कुछ भी न होगा। वह तो घर को सजाना है; उससे आत्मा में कोई क्रांति न होगी। तुम कितने ही अच्छे हो जाओ, सज्जन से सज्जन हो जाओ, तो भी तुम संत न हो सकोगे। दुर्जन न रहोगे, सज्जन हो जाओगे। दुर्जन भी मरते हैं, सज्जन भी मरते हैं। क्योंकि दोनों की संपदा बाहर है। दुर्जन फिर पैदा होते हैं; सज्जन फिर पैदा होते हैं। क्योंकि दोनों की संपदा बाहर है। सिर्फ भीतर की संपदा का आदमी फिर पैदा नहीं होता।
तो तुम सुधार में मत लगना। क्रांति से कम में काम न चलेगा। आमूल रूपांतरण चाहिए। टोटल, समग्र ट्रांसफार्मेशन। रत्ती भर कम से काम नहीं चलेगा। तुम ऊपर से रंग-रोगन मत लगाना। क्रोध को दबा कर तुम करुणा मत दिखाना। लोभ को थोड़ा काट कर दान मत कर देना। इससे कुछ भी न होगा। तुम्हारा नया जन्म चाहिए। तुम पूरे के पूरे ही गलत हो। तुम ऐसे मकान नहीं हो कि जिसमें थोड़ा सा यहां पलस्तर बदल दिया और वहां थोड़ा डंडा खड़ा कर दिया और खंभा बदल दिया और सब ठीक हो गया। रिनोवेशन से काम न चलेगा। तुम बिल्कुल जीर्ण-जर्जर भवन हो। तुम खंडहर हो। कितना ही तुम्हें ऊपर-ऊपर से सुधारें, तुम सुधरोगे न। और जब तक एक कोने को ठीक कर पाओगे, पाओगे दूसरा कोना बिगड़ गया। दूसरे कोने को ठीक करने जाओगे, पहला तब तक जराजीर्ण हो चुका होगा। नहीं, इस पूरे भवन को गिरा देना है। पुनर्जन्म चाहिए। इस भवन को बिल्कुल ही गिरा देना है; नये आधार रखने हैं। तुम जैसे हो, इसको सुधारने की चिंता मत करो। वही तो सज्जन लोग सारी दुनिया में कर रहे हैं। तुम पूरे नए भवन को बनाने का विचार करो। उसी का नाम संन्यास है।
संन्यास का अर्थ है कि मैं आमूल बदलने को तत्पर हुआ हूं। संन्यास क्रांति है, सुधार नहीं। संन्यास कपड़े बदल लेना नहीं है। संन्यास नाम बदल लेना नहीं है। संन्यास आमूल क्रांति है; सब बदल देना है। रत्ती भर इसमें से बचाने योग्य नहीं है। यह सब जहरीला है जो तुम्हारे पास है। यह सब विषाक्त हो गया है। तुम्हारा क्रोध ही बुरा नहीं है, तुम्हारे प्रेम तक में तुम्हारा क्रोध घुस गया है। वह भी विषाक्त हो गया है। तुम्हारी घृणा तो बुरी है ही, तुम्हारे प्रेम में भी तुम्हारी घृणा की छाया पड़ गई है। वह भी नष्ट हो गया है। तो तुम अगर सोचो कि घृणा को काट दें, प्रेम को बचा लें, तो तुम गलती में हो। उस प्रेम में तुम्हारी घृणा बच जाएगी। उस पर छाया पड़ गई है। वह प्रेम तुम्हारी घृणा को काफी सोख गया है। बहुत दिन से साथ-साथ रहे

हैं; वे दोनों ही विकृत हो गए हैं। तुम्हारा बुरा तो बुरा है ही, तुम्हारा जिसको तुम भला कहते हो वह भी बुरा हो गया है। इसलिए आमूल!
लाओत्से कहता है, "जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण है।"
इस भूल में तुम पड़ना ही मत। क्योंकि इसमें जीवन गंवाओगे, कुछ होगा नहीं। अशुभ लक्षण है।
"और मनोवेगों को राह देना आक्रामक है।"
लेकिन इसका तुम यह मतलब भी मत समझ लेना कि जो भी बुरा है उसको राह देनी है। लाओत्से कहता है, क्रोध को काटने से कुछ भी न होगा। क्रोध को काट-काट कर करुणा न आएगी। लेकिन लाओत्से तत्क्षण यह भी कहता है कि इसका यह मतलब नहीं है कि तुम क्रोध करने में लग जाना। क्योंकि कर-करके भी कोई करुणा न आएगी। तुम्हें दो ही रास्ते दिखाई पड़ते हैंः या तो क्रोध करो या क्रोध दबाओ। अगर कोई कहता है, मत दबाओ! तुम फौरन समझते हो, करो। क्योंकि तुम्हें तीसरे विकल्प का पता नहीं है। वही तीसरा विकल्प नव-जीवन का सूत्र हैः तुम साक्षी बनो। न तो तुम करो और न तुम दबाओ। क्योंकि दोनों में तुम कर्ता हो जाते हो। और कर्ता ही तुम्हारा रोग है। अहंकार ही तुम्हारा रोग है।
ऐसा हुआ कि सिकंदर भारत की तरफ यात्रा पर आ रहा था। तो उसे खबर मिली एक मरुस्थल को पार करते समय कि एक मरूद्यान, शिवा नाम के मरूद्यान में एक छोटा सा मंदिर है और उस मंदिर का पुजारी बड़ा अनूठा पुरुष है। सिकंदर अपने से अनूठा तो किसी को मानता नहीं था। जब बार-बार लोगों ने खबर दी कि सच ही अनूठा पुरुष है, इसके दर्शन कर ही लेने चाहिए, तो वह दर्शन करने गया।
संत को यूनानी भाषा नहीं आती थी। सिकंदर के आदमियों ने पहुंच कर उसे थोड़ी यूनानी भाषा पहले सिखाई कि सिकंदर आ रहा है तो आप कम से कम कुछ शब्द तो उससे बोल दें। संत ने बहुत कहा कि बोलने से हमेशा भूल होती है, मैं चुप रहना ही पसंद करता हूं। क्योंकि चुप रहने में, कम से कम जो मैं हूं वही तुम देखोगे। शब्द बोलने में खतरा है, तुम अपनी व्याख्या करोगे। लेकिन उन लोगों ने नहीं माना। उन्होंने कहा, सिकंदर आता है, वह अगर कुछ पूछ बैठा, और कम से कम स्वागत में तो दो शब्द कहने ही पड़ेंगे। संत राजी हो गया। संत सदा ही राजी है। उसने कहा, ठीक। तो उन्होंने कुछ शब्द सिखा दिए।
सिकंदर आया। तो संत को आदत थी कहने की किसी को भी, जब वह बोलना था तो कहता था, मेरे बेटे! वत्स! तो ग्रीक में शब्द है मेरे बेटे के लिए पायदीयान। तो जब सिकंदर आया, अपनी अकड़... सिकंदर अपनी अकड़ कहां छोड़ कर आएगा? अकड़ के अलावा उसमें कुछ है भी नहीं। अकड़ ही तो उसकी सब संपदा है। वह आया अपने दरबारियों के साथ, नंगी तलवारों के साथ, अपना मुकुट लगाए हुए।
फकीर ने कहा, पायदीयान! कि मेरे बेटे! सिकंदर बड़ा प्रसन्न हो गया और उसने कहा, अब कुछ और कहने की जरूरत नहीं। जो मैं सुनने आया था सुन लिया। क्योंकि सिकंदर ने समझा, वह कह रहा हैः पायदीयाज। पायदीयाज का मतलब होता है सन ऑफ गॉड, ईश्वर के बेटे। उसने कहा था, मेरे बेटे, पायदीयान। और सिकंदर ने समझा कि वह कह रहा है, ईश्वर के बेटे, ईश्वर के पुत्र, पायदीयाज।
जरा ही सा फर्क है पायदीयान और पायदीयाज में। और सिकंदर को फिर लोगों
ने बहुत कहा कि नहीं, उसने पायदीयान कहा था। उसने कहा, अपनी जबान बंद! नहीं तो जबान खिंचवा दूंगा। पायदीयाज कहा था, लिखो! और उसके इतिहासकारों ने लिखा है कि ठीक, पायदीयाज कहा था।
तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही समझ लेते हो जो तुम समझना चाहते हो।
अहंकार सुधार के लिए तो राजी होता है, क्रांति के लिए राजी नहीं होता। क्योंकि सुधार से अहंकार को और आभूषण मिलेंगे; अहंकार और अहंकारी हो जाएगा। चरित्र भी तो आभूषण बन जाता है। तुम सत्य बोलते हो, ईमानदार हो, साधु हो, चोरी नहीं करते, बेईमानी नहीं करते, तुम कोई भ्रष्टाचारी नहीं हो, तो अहंकार की अपनी अकड़ हो जाती है। साधुओं का अहंकार हो जाता है।
जयप्रकाश को किसी ने पटना में पूछा कि अगर इंदिरा गांधी मिलना चाहें
तो आप तैयार हैं? तो उन्होंने कहा, हां, मैं तैयार हूं। और अगर इंदिरा गांधी मिलना चाहें तो मैं दिल्ली आने को तैयार हूं, क्योंकि मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं कि इंदिरा गांधी को पटना आना पड़े।

लेकिन यह बात ही ख्याल में आनी कि मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं! और जिस ढंग से कही गई बात! कोई पूछ ही नहीं रहा था कि तुम कितने बड़े आदमी हो या नहीं हो। यह बात ही कहां थी? लेकिन मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं। आकांक्षा, वासना, अहंकार साधुता में और गहन हो जाता है। जयप्रकाश साधु की तरह जीए हैं; उनका अहंकार और भी सूक्ष्म है। और वे और भी खतरे में ले जा सकते हैं इस मुल्क को, क्योंकि अहंकार साधु का है। अकड़ इस बात की है कि मैंने पदों पर लात मारी है। और बुढ़ापे में--जीवन भर पदों को लात मारी, वह बाहर-बाहर से मारी है--इसलिए अब बुढ़ापे में जब जीवन चुकता जा रहा है तो पद की प्रगाढ़ आकांक्षा भीतर पैदा हो गई है।
ऐसा होगा ही। अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य को ऊपर-ऊपर साधे तो मरते वक्त कामवासना इस बुरी तरह सताएगी कि वह पागल हो जाएगा। क्योंकि जीवन हाथ से जा रहा है, और सारी वासना इकट्ठी हो गई। कोई आदमी उपवास करता रहे तो मरते वक्त सिवाय भोजन की याद करने के और कोई चीज में नहीं मरेगा; भोजन ही करता हुआ मरेगा--मन में करेगा।
अब जयप्रकाश जीवन भर पद को छोड़ते रहे कि पद छोड़ने से भी तो भारत में बड़ा आदर मिलता है। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें ऐसा लगने लगा इन पीछे के दिनों में कि अब कोई फिक्र नहीं कर रहा है, और जीवन हाथ से चुका जा रहा है, तो अब पद की प्रगाढ़ आकांक्षा पैदा हो गई। जयप्रकाश को किसी को जाकर कहना चाहिए कि जय जय जयप्रकाश, गए राम भजन को, ओटन लगे कपास।
लेकिन वह होता है। वह होता है। अगर तुम क्रोध को ऊपर से दबाओगे तो भीतर क्रोध इकट्ठा होगा। और किसी न किसी दिन कपास ओटोगे। कामवासना दबाओगे, किसी न किसी दिन कपास ओटोगे। दबाना भूल कर मत। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि प्रकट करना। तब तुम कहोगे, बड़ी अड़चन में डालते हो। न दबाने देते, न प्रकट करने देते, तो फिर हम करें क्या?
वहीं सारी खूबी है। तुम साक्षी होना। कर्ता मत बनना, तुम सिर्फ देखना।
जब क्रोध है तो सिर्फ देखना। करने की जरूरत क्या है? दबाने की भी कोई जरूरत नहीं है। तुम आंख बंद करके क्रोध को देखना। बड़े प्रेम से देखना; शांति से देखना। यह क्रोध उठ रहा है, यह धुआं उठ रहा है, यह चारों तरफ फैल रहा है, यह हत्या करना चाहता है, यह उपद्रव करना चाहता है, यह पद पाना चाहता है, यह यह करना चाहता है--इसको देखना। तुम चुपचाप अपने भीतर छिप कर अपनी गुफा में बैठ जाना और वहीं से टकटकी लगा कर देखना। यह सब ट्रैफिक गुजर रहा है क्रोध का। बड़ा बनजारा है क्रोध का, तुम गुजरने देना। तुम न पक्ष में, न विपक्ष में; तुम निष्पक्ष हो जाना।
उस निष्पक्षता से ही, उस सिर्फ देखने मात्र से तुम पाओगे, यह बनजारा धीरे-धीरे, यह लंबा काफिला धीरे-धीरे छोटा होने लगा, तुमसे दूर होने लगा। एक ऐसी घड़ी आती है जब न तो दबा कर और न करके तुम अचानक मुक्त हो जाते हो। सिर्फ देख कर, दर्शन से, द्रष्टा-भाव से, साक्षी से। वहीं तुम्हारा नया जन्म है, जब तुम साक्षी-भाव से मुक्त हो जाते हो।
अन्यथा तुम कुछ भी करो, क्रोध करो तो मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि क्रोध करने से क्रोध कीशृंखला पैदा होती है; अभ्यास घना होता है। क्रोध को दबाओ तो मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि दबाने से क्रोध भीतर इकट्ठा होता है, और उसका नासूर बड़ा होता जाता है। सज्जन बनने की कोशिश मत करना। दुर्जन होने में कोई सार नहीं है। सज्जन होने में भी कोई सार नहीं है। तुम संत होने की कोशिश करना। उससे कम पर राजी मत होना।
और संत, दुर्जन और सज्जन दोनों के पार है। संत फिर बालक हुआ। भेद मिट गया। अब न कोई दुर्जन, न कोई सज्जन। अब न कुछ अच्छा, न कुछ बुरा। अब सिर्फ साक्षी-भाव ही एकमात्र संगीत रह गया।
"और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।"
संशोधन अशुभ। मनोवेगों को राह देना आक्रामक।
"और चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं। वह आक्रामक दावेदारी ताओ
के खिलाफ है।"
और तुम किसी चीज को उसकी अति पर मत ले जाना। क्योंकि अति पर जाकर चीजें बुढ़ा जाती हैं। किसी भी चीज को अति पर मत ले जाना। भोग को भी नहीं, त्याग को

भी नहीं। क्योंकि जब कोई चीज अति हो जाती है तभी तुम्हारे जीवन का संतुलन खो जाता है। जहां संतुलन खो जाता है वहीं तुम्हारी जीवन-ऊर्जा मर गई। तब तुम बहते नहीं। तब तुम बर्फ की तरह हो जाते हो, धार की तरह नहीं नदी की। "चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं।"
जब तुम किसी चीज को उसके पूरे पर खींच देते हो, बस बात वहीं मर जाती है।
तो करो क्या?
लाओत्से कहता है, किसी चीज को अति पर मत ले जाओ; समय रहते रुक जाओ। मध्य में ठहर जाओ। न इस तरफ, न उस तरफ। वहीं साक्षी-भाव का उदय होता है, मध्य में। अगर चौदह वर्ष के बच्चे को ठीक से शिक्षित किया जा सके तो हम उसे तरकीब बताएंगे कि वह जीवन में उतरे, लेकिन अति पर न जाए; मध्य में रहे। जीवन के अनुभव से गुजरे, लेकिन अति पर न जाए। क्योंकि एक अति दूसरे अति पर ले जाती है। अगर वह भोग में बहुत उतर गया तो त्यागी हो जाएगा कभी न कभी। और दोनों गलत हैं। अगर दुर्जन हुआ तो कभी न कभी सज्जन हो जाएगा। अगर सज्जन हुआ तो कभी न कभी दुर्जन हो जाएगा। क्योंकि एक अति पर पहुंच कर चीजें बुढ़ा जाती हैं। फिर वहां से लौटना पड़ता है दूसरी अति पर। क्योंकि एक अति पर जब तुम जाते हो तो तुम्हें दिखता है कि जीवन दूसरी अति पर है।
भोगी सोचता है, त्यागी बड़े आनंद में है। तुम्हें त्यागी का पता नहीं। त्यागी सोचता है, भोगी सारी दुनिया का मजा ले रहा है; हम मुफ्त मारे गए। हम न मालूम किस बात में फंस गए। मैं दोनों को जानता हूं। भोगी दुखी है, भोग की चिंताएं हैं। त्यागी दुखी है, क्योंकि त्याग की चिंताएं हैं। भोगी वासना के कारण दुखी है, क्योंकि वह उलझा रही है। त्यागी वासना को दबाने के कारण दुखी है, क्योंकि वह मवाद की तरह भीतर बढ़ रही है।
अगर व्यक्ति ठीक, सम्यक राह पकड़े तो इतना भोग में जाने की जरूरत नहीं
है कि त्याग पैदा हो जाए। मध्य में ठहर जाना जरूरी है कि भोग से साक्षी-भाव आ जाए। बस इतना काफी है। वहीं रुक जाए। ऐसा व्यक्ति कभी नहीं बुढ़ाता। ऐसे व्यक्ति के भीतर की जीवन-धार सदा युवा बनी रहती है। ऐसे व्यक्ति के भीतर जीवन सदा अपनी उत्कृष्टता में, संतुलन में, गरिमा में ठहरा रहता है। ऐसा व्यक्ति कभी चुकता नहीं। ऐसा व्यक्ति सदा ही भरा रहता है।
"क्योंकि चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं; वह आक्रामक दावेदारी ताओ के खिलाफ है।"
और जब भी तुम अति पर गए तुम स्वभाव के विपरीत चले गए। क्योंकि स्वभाव मध्य में है, संतुलन में है, संयम में है। न भोग, न त्याग; दोनों के मध्य में है, साक्षी-भाव में है।
"और जो ताओ के खिलाफ है वह युवापन में ही नष्ट हो जाता है।"
और जो व्यक्ति भी स्वभाव के विपरीत गया वह मरने के पहले मर जाता है। उसकी मौत तो बाद में आती है, वह मर जाता है तीस साल में। सत्तर साल में मौत आती है, चालीस साल वह मुर्दे की तरह जीता है। उसका जीवन एक बोझ हो जाता है। वह लाश की तरह अपने को ढोता है। वह एक कब्र हो जाता है। जीसस ने बहुत जगह कहा है कि तुम सफेद पुती हुई कब्रों की भांति हो। ऊपर सफेद-सफेद, भीतर सिवाय हड्डियों के और कुछ भी नहीं।
तुम मुर्दे हो। तुम दिखाई पड़ते हो कि जी रहे हो। क्या तुम जी रहे हो? तुम्हारे जीने की कहां है गरिमा? कहां है गौरव? तुम्हारे जीवन का कहां है आनंद? कहां है नृत्य? तुम्हारे जीवन का गीत कहां है? चिंताओं को तुम जीवन कहते हो? संताप को तुम जीवन कहते हो? हताशा को तुम जीवन कहते हो? तो फिर मृत्यु क्या है?
तुम एक अर्थ में जी नहीं रहे हो, मरे-मरे हो। और तुम जीवन को ही नहीं जान
पा रहे हो तो तुम मृत्यु को कैसे जान पाओगे? तुम वंचित हुए जा रहे हो। लाओत्से कहता है, जो स्वभाव में जीता है वह सतत शाश्वत जीवन को उपलब्ध
हो जाता है। उसके भीतर फिर कभी कुछ मरता नहीं।
भीतर कभी कुछ मरता ही नहीं। तुम बाहर इतने अटके हो, इसलिए तुम्हें मौत मालूम पड़ती है। और भीतर वही पहुंचता है जो दो से बच जाए--दुर्जन से और सज्जन से, जो भोग से और त्याग से बच जाए। जो अति से बच जाए, वही शाश्वत जीवन को उपलब्ध हो जाता है।

अति से सावधान! और साक्षी-भाव में जितनी ज्यादा लीनता ला सको लाना। साक्षी-भाव से तुम्हारा पुनर्जन्म होगा, तुम नए हो जाओगे। और ऐसे नए कि वह नयापन फिर कभी बासा नहीं होता है। ऐसे नए कि वह कुंआरापन फिर सदा कुंआरा ही रहता है। ऐसे नए कि उस नएपन में शाश्वतता है। वह जराजीर्ण नहीं होता है। वह टिकता है, सदा टिकता है। और उसे पाए बिना कभी कोई परितोष को उपलब्ध नहीं हो सकता। जो खो जाएगा, उसे पाकर कोई कैसे परितोष पा सकता है! जो नहीं खोएगा, कभी नहीं खोएगा, वहीं घर बनाया जा सकता है। वही घर है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
पंचानबेवां प्रवचन

सत्य कह कर भी नहीं कहा जा सकता

Chapter 56

Beyond Honour And Disgrace

He who knows does not speak;
He who speaks does not know.
Fill up its apertures,
Close its doors,
Dull its edges,
Untie its tangles,
Soften its lights,
Submerge its turmoil,
-- This is the Mystic Unity.
Then love and hatred cannot touch him.
Profit and loss cannot reach him.
Honour and disgrace cannot affect him.
Therefore he is always the honored one of the world.

अध्याय 56

मान और अपमान के पार

जो जानता है, वह बोलता नहीं है;
जो बोलता है, वह जानता नहीं है।
इसके छिद्रों को भर दो, इसके द्वारों को बंद करो,
इसकी धारों को घिस दो, इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो, इसके प्रकाश को धीमा करो, इसके शोरगुल को चुप करो;
-- यही रहस्यमयी एकता है।
तब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं।
लाभ और हानि उससे दूर रहती हैं।
मान और अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते।
इसलिए वह सदा संसार से सम्मानित है।

जो जानता है वह बोलता नहीं; और जो बोलता है वह जानता नहीं।"
यह तो बड़ी पहेली है। क्योंकि लाओत्से बोलता है। उपनिषद भी यही कहते हैं कि जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता है वह जानता नहीं। और उपनिषद भी बोलते हैं। सुकरात भी यही कहता है। मैं भी यही कहता हूं, और रोज बोले चला जाता हूं। इस पहेली को ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है।
इसका क्या अर्थ है? क्या गूंगे जानते हैं, क्योंकि वे बोलते नहीं? और क्या बोलने वाले नहीं जानते, क्योंकि बुद्ध बोलते हैं, कृष्ण बोलते हैं, मोहम्मद बोलते हैं, जीसस बोलते हैं? तब तो गूंगे उनसे आगे पहुंच गए होंगे। और मजा यह है कि ये सब बोलने वाले यही कहते हैं कि वह गूंगे का गुड़ है, गूंगे केरी सरकरा! उसे जो खाता है वह चुप होता है, मुस्कुराता है, बोलता नहीं। फिर ये सारे लोग क्यों बोले चले जाते हैं?
यह बात तो बड़ी अतर्क्य मालूम होती है। अगर ये सही कहते हैं तो ये सही नहीं हो सकते। अगर ये सही हैं तो ये जो कहते हैं वह सही नहीं हो सकता। अगर लाओत्से को हम समझें कि इसने पा लिया है तो इसे चुप हो जाना चाहिए। और अगर

हम समझें कि यह बोल रहा है तो जाहिर है कि इसने पाया नहीं है। अगर हम लाओत्से की ही मानें तो लाओत्से गलत हो जाता है। हम करें क्या?
नहीं, बोलने और न बोलने का जो अर्थ लाओत्से, उपनिषद और सुकरात का है वह
हम समझ नहीं पाए। हमें उस न बोलने का पता ही नहीं है, जिसकी तरफ वे इशारा कर रहे हैं। हम तो जिस बोलने को और न बोलने को जानते हैं उसी को समझ रहे हैं। तुम बोलते हो दूसरे से। वहां तक तो ठीक है, क्योंकि दूसरे से बोले बिना कोई उपाय नहीं। शब्द दूसरे से जुड़ने का सेतु है, संवाद का मार्ग है। स्वाभाविक है। अगर यह भी लाओत्से को कहना हो कि जानने वाला नहीं बोलता तो भी शब्द में ही कहना पड़ेगा, बोल कर ही कहना पड़ेगा। असंगत होना पड़ेगा, क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता बिना बोले। बोलने के विपरीत भी बोलना हो तो बोलना ही एक उपाय है।
लेकिन तुम जब अकेले हो तब तुम क्यों बोलते हो? दूसरे से जुड़ने का उपाय
है शब्द, अपने से जुड़ने का नहीं। जब तुम अकेले बैठे हो तब भी तुम्हारे भीतर बोलना क्यों चलता रहता है?
वही बोलना रुक जाता है जानने वाले का। जो जान लेता है उसके भीतर बोली रुक जाती है--भीतर, याद रखना। वह भीतर नहीं बोलता। वह अपने से नहीं बोलता। अपने से बोलने का क्या अर्थ है? दूसरे से बोलने की तो सार्थकता है, अपने से बोलना तो विक्षिप्तता है। वह तो पागलपन का लक्षण है। लेकिन तुम खाली बैठे हो और अपने से बोले चले जाते हो; भीतर ही बात करते हो। अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ लेते हो; एक बोलता है, एक जवाब देता है, एक पूछता है। सारा विचार विक्षिप्तता है।
जो जान लेता है वह नहीं बोलता, इसका अर्थ है कि वह विचार नहीं करता। जब
वह अकेला है तो निश्चित ही बिल्कुल अकेला है। उसका एकांत परिशुद्ध एकांत है। उस एकांत में कोई भी नहीं है; वही है। शब्द भी नहीं है; वहां परम मौन है। जब दूसरे के साथ है तो जरूरत हो तो बोलता है। जब अपने साथ है तो बोलना तो बिल्कुल ही गैर-जरूरी है। अपने साथ तो बोलने की कभी कोई जरूरत नहीं पड़ती। अपने साथ क्या बोलना है? कौन बोलेगा? कौन सुनेगा? वहां तो द्वैत नहीं है, वहां तो तुम अकेले हो।
लेकिन तुमने वहां भी द्वैत निर्मित कर लिया है। वहां भी तुम बंटे हो, खंड-खंड हो। तुम अपने भीतर बोलते हो, वह बताता है कि तुम खंडित हो, टूटे हुए हो। तुम एक नहीं हो, तुम अनेक हो।
जानने वाला एक हो जाता है। उसके भीतर कोई अनेकता नहीं है। वह किससे बोलेगा? उसके भीतर परम मौन है। उसका एकांत भरपूर है। उसके एकांत में रत्ती भर भी जगह नहीं है किसी और के लिए। और वह अपने भीतर एक है, इसलिए अपने को तोड़ नहीं सकता दो में कि बोले और सुने। खुद ही बोले, खुद ही सुने, खुद ही जवाब दे; ऐसे खंड उसके भीतर नहीं हैं। मौन उसकी सहज स्थिति है, जब वह अकेला है। जब वह दूसरे के साथ है तब जरूरत हो तो बोलता है। तब भी शर्त ख्याल रखना, जरूरत हो तब बोलता है। अन्यथा वह दूसरे के साथ भी चुप होता है।
तुम दूसरे के साथ भी गैर-जरूरत बोलते हो। ऐसा लगता है, बोलना ही तुम्हारी जरूरत है। और कोई जरूरत के कारण तुम नहीं बोलते हो, बोलना तुम्हारी बेचैनी है। बोलना तुम्हारी कैथार्सिस, रेचन है। तुम बोलते हो तो व्यस्त मालूम होते हो। तुम बोलने के लिए बोलते हो। तुम कुछ कहने के लिए नहीं बोलते हो। तुम बस बोलते हो, ताकि बोलने से दूसरे से संबंध जुड़ा रहे, और तुम अकेले न छूट जाओ। क्योंकि दूसरे से संबंध जुड़े रहने का एक ही ढंग हैः बोलना। अगर दूसरा आदमी मौजूद हो और तुम न बोलो तो तुम दूसरे की मौजूदगी में भी अकेले हो जाओगे। इस अकेलेपन से बचने के लिए तुम बोलते हो।
इसलिए तो तुम अकेले में भी बोलते हो। क्योंकि वहां भी अकेलेपन से बचने
का एक ही उपाय है कि तुम बोले चले जाओ। अपने को ही दो हिस्सों में कर लो। एक नाटक चलाओ। खुद ही बोलो, खुद ही सुनो। वहां अभिनेता भी तुम्हीं हो, वहां दिग्दर्शक भी तुम्हीं हो, वहां कथा-लेखक भी तुम्हीं हो, वहां दर्शक भी तुम्हीं हो। वहां पूरी कहानी के पात्र, निर्माता, देखने वाले, सभी तुम्हीं हो। तुम्हारा अंतस्तल एक ड्रामा बन जाता है, एक आंतरिक नाट्य बन जाता है। और तब तुम अकेले नहीं मालूम होते। तब तुमने एक झूठ पैदा कर लिया। उस झूठ के

कारण तुम अपने से बच जाते हो। तुम्हारा बोलना अपने से बचने का एक उपाय है। तुम्हारे बोलने में कोई सार्थकता नहीं है। तुम्हारा बोलना एक रुग्ण प्रतीक है कि तुम चुप नहीं हो सकते इसलिए बोलते हो। बोलना किसी कारण से नहीं है। इसीलिए तो तुम्हारे बोलने से कुछ सार नहीं निकलता; दूसरा सिर्फ ऊबता है, परेशान होता है।
लेकिन तुम कहोगे कि फिर उसे सुनने की क्या जरूरत है अगर वह ऊबता है?
ऊबना भी बेहतर है, परेशान होना भी बेहतर है; अकेले होना उसको भी मुश्किल है। वह सुनता है। फिर सुनने में भी उसका भीतरी कारण यह है कि कभी तो तुम चुप होओगे और उसको भी बोलने का मौका दोगे। वह एक साझेदारी है, वह एक पारस्परिक सहयोग है एक-दूसरे के रेचन के लिए।
इसलिए तो जो आदमी तुम्हें बोलने का मौका न दे उस पर तुम बहुत नाराज हो जाते हो; तुम कहते हो कि बहुत बोर है, बड़ा उबाने वाला है। उबाने वाला का मतलब क्या है?
उबाने वाले का इतना ही मतलब है कि तुम्हें वह मौका नहीं देता। तुम भी उसे उबा लो उतना जितना वह तुम्हें उबाता है, सौदा पूरा हो गया, निबटारा हो गया। फिर तुम उस पर नाराज नहीं हो। और जो आदमी तुम्हारी चुपचाप सुनता है, और जितना तुम चाहो उसे उबाना तुम्हें उबाने देता है, तुम कहते हो, बड़ा गजब का आदमी है, बड़ा भला आदमी है, सज्जन है, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, उससे वार्तालाप में बड़ा मजा आता है। वार्तालाप का तुम उसे मौका ही नहीं देते, तुम्हीं बोलते हो। लेकिन इसको तुम वार्तालाप कहते हो।
तुम्हारा बोलना एक आंतरिक रोग है। तुम्हारे भीतर इतने विचार चल रहे हैं कि तुम उन्हें अगर बाहर न फेंक सके तो तुम पगला जाओगे। तुम दूसरे का उपयोग कर रहे हो एक कचरे की टोकरी की भांति। तुम उसमें डाल रहे हो। अगर यह दूसरा न होगा तो तुम अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ लोगे और एक नाटक शुरू कर दोगे। तुमने पागलों को देखा है? बैठ कर वे बातें करते रहते हैं। तुम धीरे- धीरे करते हो, वे जरा जोर से करते हैं। तुम भीतर-भीतर करते हो, ओंठ के भीतर-भीतर करते हो। हालांकि तुम्हारे भी ओंठ थोड़े से कंपते हैं, और कोई अगर सूक्ष्म निरीक्षण करे तो पहचान सकता है कि तुम भीतर बात कर रहे हो कि नहीं। क्योंकि थोड़ा सा तुम्हारा ओंठ खबर देता है। पागल जोर से बोलने लगता है। पागल और तुममें सिर्फ मात्रा का भेद है। तुम निन्यानबे डिग्री हो, वह
एक सौ एक डिग्री, बस। वह सौ की सीमा पार कर गया। अब उसने फिक्र छोड़ दी दुनिया की। अब वह अपने भीतर के जगत में ही पूरा रहता है। अब उसके मित्र, संगी, साथी, प्रेमी, प्रेयसी, दुश्मन, सब उसके भीतर ही हैं। अब वह उनको खुद ही बनाता है, दिल खोल कर बात करता है, खुद ही मिटाता है। पागल का अर्थ यह हैः जिसने बाहर के वस्तुगत संसार को बिल्कुल भुला दिया और जिसने एक भीतरी संसार खड़ा कर लिया जो उसका अपना ही निर्मित है। पागल बड़ा स्रष्टा है।
इसलिए अक्सर तो कवि और दार्शनिक पागल हो जाते हैं। क्योंकि वे भी स्रष्टा हैं; शब्दों के, विचारों के, सिद्धांतों के, कल्पनाओं के जाल को बुनने में कुशल हैं। बुनते-बुनते एक घड़ी आ जाती है जब कि उन्हें अपना जाल ही सच मालूम होने लगता है। तब तुम फीके पड़ जाते हो, तुम बड़े दूर मालूम पड़ते हो। तुम झूठे लगने लगते हो, तुम असत्य हो जाते हो। उनके शब्दों का जाल इतना सघन हो जाता है, और उनके ही प्राणों से चूस-चूस कर वे शब्द और कल्पनाएं बड़ी यथार्थ हो जाती हैं। तब वह अपने यथार्थ में जीने लगता है। उसका अपना निजी यथार्थ है, प्राइवेट ट्रुथ, उसका अपना सत्य है। वह किसी सार्वजनिक सत्य में विश्वास नहीं करता। तुम्हें न दिखाई पड़ रहा हो उसका मित्र, वह किससे बात कर रहा है, उसे दिखाई पड़ रहा है। तुमसे प्रयोजन भी नहीं है। तुम्हें नहीं दिखाई पड़ रहा है तो तुम कहीं भूल में हो। उसने अपना निजी सत्य बना लिया है। इस बात को ठीक से समझ लो। सत्य तो सार्वभौमिक है, कभी निजी नहीं। और जब
भी तुम्हें ऐसी भ्रांति हो कि निजी है तभी समझ लेना कि पागलपन के करीब हो। निजी तो सपने होते हैं। सत्य तो सार्वभौम है, युनिवर्सल है। सत्य तो सभी का है। सपने भर निजी होते हैं।
इसलिए तुम्हारे सपने में दूसरे का कोई हाथ नहीं है। तुम्हारा सपना बस बिल्कुल तुम्हारा अपना है। तुम दूसरे को अपना सपना दिखा भी नहीं सकते। तुम

अपने प्रियतम को भी, अपनी पत्नी को, अपने पति को, अपने निकटतम आत्मीय मित्र को भी अपने सपने में निमंत्रित नहीं कर सकते कि आना आज रात, आज एक बड़ा सुंदर सपना देखने जा रहा हूं। तुम भी देख लेना। मैं बांटना चाहूंगा; ऐसा सुंदर है, अकेले लूटता हूं तो अपराधी लगता हूं। नहीं, तुम किसी को निमंत्रित न कर सकोगे। किसी का उपाय नहीं है। सपना बिल्कुल निजी है।
पागल का क्या लक्षण है? उसका सारा संसार निजी है। उसने सारे संसार को सपने जैसा कर लिया। अब वह खुली आंखों से सपना देख रहा है। मजे से बात करता है, जो चाहे बात करता है। चाहे अपने को सम्राट मान ले, क्योंकि उसके सपने के जो चाकर हैं वे फौरन गुलाम बनने को तैयार हैं। उसका ही सपना है, कोई बाधा नहीं है। तो पागल अपने को सम्राट समझ लेता है। भिखमंगा हो तो भी तुम उसे समझा नहीं सकते कि तुम भिखमंगे हो, कैसे तुमने सम्राट समझ लिया! वह कोई न कोई रास्ता निकाल लेगा अपने को समझाने का।
सपना होता है निजी और सत्य होता है सार्वभौम। ये कसौटियां हैं। जितने तुम सत्य के करीब पहुंचोगे उतना ही तुम दूसरे को भागीदार बना सकते हो। इसलिए तो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, लाओत्से हजारों लोगों को भागीदार बना लेते हैं; हजारों लोगों को उस चीज के निकट ले आते हैं जो उन्हें दिखाई पड़ रही है। और हजारों लोगों को भी वह चीज दिखाई पड़ जाती है। अगर यह सपना हो तो इसमें कोई भागीदार नहीं हो सकता।
इसलिए तुमने कभी कवियों के अनुयायी न देखे होंगे। कवियों का कोई अनुयायी नहीं हो सकता। कैसे होगा? क्योंकि कवि का जो सत्य है वह सपने जैसा है। कवि ने जो जाना है वह उसकी कल्पना है। वह तुम्हें बुला कर दिखा नहीं सकता कि आओ, तुम भी देख लो। कवि बिल्कुल असहाय है उस संबंध में।
कवि और ऋषि का यही फर्क है। ऋषि उस सत्य की बात कर रहा है जो है, जो उसने अपनी सारी कल्पनाओं को हटा कर जाना है। इसलिए सारी चेष्टा यही है साधक की कि कल्पनाएं हट जाएं, और वह प्रकट हो जाए जो है, उसे जान लूं जो है अपने आप में, मेरी कल्पनाओं के कारण नहीं। मेरे प्रत्यय, मेरी धारणाएं, मेरे विचार, सब हट जाएं, ताकि निर्मल सत्य का उदय हो सके, सार्वभौम सत्य का।
तुम बोले चले जा रहे हो--अकेले हो तो, नहीं अकेले हो तो। ज्ञानी ऐसा नहीं बोलता। ज्ञानी अपने अकेले में तो बोलता ही नहीं। अपने अकेले में तो वह शून्य मंदिर की भांति होता है, जहां गहन सन्नाटा है, जहां निबिड़ मौन है, जहां विचार की एक तरंग भी नहीं आती। झील बिल्कुल बिल्कुल शांत है, जहां एक शब्द नहीं उठता, एक ध्वनि नहीं उठती। अपने अकेले में तो बोलना बिल्कुल निष्प्रयोजन है। तो ज्ञानी चुप है अपने एकांत में। और जब वह दूसरे से भी बोलता है तब भी उसका बोलना रेचन नहीं है। बोलना उसकी बीमारी नहीं है। चुप होने में वह कुशल है। बोलना उसकी आवश्यकता नहीं है। वह अगर दो-चार साल न बोले तो कोई परेशानी नहीं होगी। वह वैसा ही होगा जैसा बोलता था तब था। शायद बोलने में थोड़ी परेशानी हो, मौन में उसे कोई परेशानी न होगी। बोलने में परेशानी होती है। क्योंकि उसे उन सत्यों के लिए शब्द खोजने पड़ते हैं, जिनके लिए कोई शब्द नहीं। उसे उन अनुभूतियों को बांधना पड़ता है रूप में, आकार में, जो निराकार की हैं। उसकी कठिनता बड़ी गहन है। और सब कुछ करके भी उसे पता चलता है कि वह जो कहना चाहता था वह तो नहीं कह पाया। शब्दों का कितना ही मालिक हो वह, कितना ही धनी हो शब्दों का, विचार उसके कितने ही साफ, निखरे हुए हों, तो भी जब वह सत्य को कहता है तो पाता है, सब धूमिल हो गया, बात कुछ बनी नहीं। इसीलिए तो बार-बार कहता है।
तुम मुझसे पूछते हो कि मैं रोज तुमसे कहे चला जाता हूं! इसीलिए तो बार-बार कहता हूं। इस कोने से हार जाता हूं, उस कोने से कहता हूं। इस दिशा से नहीं सफल हो पाता, दूसरी दिशा खोज लेता हूं। और जब तक तुम न हार जाओगे तब तक मैं हारने वाला नहीं हूं। जहां से भी तुम राह दोगे वहीं से।
यह बात ही ऐसी है कि इसे कहा नहीं जा सकता, और यह बात ही ऐसी है कि इसे बिना कहे नहीं रहा जा सकता। नहीं कहा जा सकता, यह बात का स्वरूप ऐसा है। क्योंकि मौन में उपलब्ध होती है, परम शून्य में इसकी प्रतीति होती है। इसका साक्षात ही वहां होता है जहां एक भी विचार गवाही नहीं होता। फिर विचार से गवाही दिलवानी है जो वहां मौजूद न था। तो अड़चन तुम समझ सकते हो। फिर मन को

लाना है बीच में, जिसके पार घटना घटी। तो मन बेचारा कहता है कि मैं करूं क्या, मुझे कुछ पता नहीं है। जिसको पता है वह बोल नहीं सकता है। और मन मौजूद न था, उसे बोलना है। और मन को फुसला-फुसला कर राजी करना है कि तू बोल दे। हर बार असफलता होनी है। इसलिए ज्ञानियों की--समस्त ज्ञानियों की--धारणाओं में कितना ही भेद हो, उन्होंने कितने ही भिन्न ढंग से अपने विचार कहे हों, बड़े विपरीत उपाय खोजे हों, लेकिन हर ज्ञानी की आखिरी गवाही यही है कि कहा नहीं जा सकता कह-कह कर भी।
बुद्ध चालीस वर्ष बोलते ही रहे, सतत बोलते रहे। और आखिर में वे यही कहते हैं कि अपने दीए खुद हो जाओ। तुम जानोगे तभी जानोगे; दूसरे के बताए न बनेगी बात।
तो एक तो सत्य का स्वभाव ऐसा है कि वह शून्य में उपलब्ध होता है जहां मन
की कोई छाया भी नहीं पहुंच सकती। और जिसने जाना ही नहीं वह बेचारा मन करे भी क्या? उसका कोई कसूर भी नहीं है। जाना मैंने, गवाही तुमसे दिलवाता हूं। तुम भीतर न गए थे, भीतर मैं गया था। तुम बाहर द्वार पर खड़े रहे थे, भीतर क्या हुआ तुम्हें कुछ पता नहीं है। मैं द्वार पर वापस लौट कर तुमसे कहता हूं कि कहो कि ऐसा-ऐसा जाना। मन सकुचाता है।
इसलिए ज्ञानी हमेशा सकुचाता है। अज्ञानी बिना सकुचाए बोलते हैं, चिल्ला कर बोलते हैं, मकानों के छप्परों पर चढ़ कर बोलते हैं। ज्ञानी सकुचाता है, झिझकता है, एक-एक कदम सम्हाल कर रखता है। क्योंकि उसे पक्का ही पता है कि सब सम्हाल कर कहने पर भी गलती हो जाती है। शब्द उसे नहीं कह पाते। इसलिए कहा नहीं जा सकता और बिना कहे नहीं रहा जा सकता। क्योंकि जो जाना
है उसके अनुभव में ही उसे बांटने की बात भी छिपी है। आनंद का स्वभाव है कि वह बंटना चाहता है। दुख का स्वभाव है कि वह सिकुड़ना चाहता है। जब तुम दुखी होते हो तो द्वार-दरवाजे बंद करके अपने बिस्तर में पड़े रहते हो, ओढ़ लेते हो रजाई, छिप जाते हो, चाहते हो कोई मिलने न आए। कोई मिलने भी आए तो कहते हैं, फिर कभी आना, अभी मिलना न हो सकेगा। अपने निकटतम, प्रियतम व्यक्ति से भी तुम कुछ कहना नहीं चाहते। दुख सिकोड़ता है।
इसलिए दुख की आखिरी अवस्था में लोग आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात का मतलब है बिल्कुल सिकुड़ जाना, सब संबंध तोड़ लेना। अब इतना भी नहीं संबंध जोड़ना है जरा सा कि जीवन का भी संबंध रहे। जीएंगे तो कुछ संबंध रहेगा ही; श्वास चलेगी तो कुछ संबंध रहेगा ही। आत्मघात का इतना ही अर्थ है कि दुख का इतना प्रगाढ़ संघात हुआ है कि अब आदमी कहता है, मैं पूरा सिकुड़ जाता हूं, मैं जीवन से विदा हो जाता हूं। अब मैं महान अंधकार में खो जाना चाहता हूं; अब रोशनी में खड़ा नहीं रहना चाहता। क्योंकि रोशनी में तो बांटूंगा; कुछ न कुछ संबंध होगा।
आनंद ठीक विपरीत है। जब तुम आनंद से भरते हो तब तुम बांटना चाहते हो।
तब तुम किसी को निमंत्रण करना चाहते हो। तब तुम उत्सव मनाना चाहते हो। तब तुम चाहते हो, जो तुम्हारे हैं, जिनके साथ तुम जीए हो, बढ़े हो, खेले हो, जो अभी भटक रहे हैं अंधेरे में, उनको भी खबर मिल जाए कि तुम्हें मिल गया है।
तुम सारी दुनिया को जगा देना चाहते हो। तुम एक प्रगाढ़ करुणा से भर जाते हो कि जो तुमने पाया है वह सभी को मिल जाए।
आनंद का स्वभाव बंटना है, विस्तार है। इसलिए हमने ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा है। उसके आनंद को हमने उसमें एक अपरिहार्य अंग माना है।
क्यों? और उसको ब्रह्म भी कहा है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः जो विस्तीर्ण होता जाए, फैलता जाए, फैलता जाए; जिसके फैलाव का कोई अंत न हो, जिसकी कोई सीमा न आती हो।
अभी वैज्ञानिक इस सत्य पर पहुंचे हैं कि अस्तित्व फैल रहा है। एक्सपैंडिंग युनिवर्स। इसके पहले ऐसा ख्याल था पश्चिम में कि अस्तित्व की कोई सीमा है। लेकिन अब पता चला है कि अस्तित्व फैल रहा है। लेकिन हिंदू इसे सदियों से कहते रहे हैं। उनके ब्रह्म शब्द में ही यह बात छिपी है। ब्रह्म वहीं से आता है, उसी धातु से, जहां से विस्तार। ब्रह्म का अर्थ हैः फैलता जाता है जो, जिसके फैलाव की कोई सीमा नहीं, जो रुकता ही नहीं, फैलता ही जाता है। उसका ही अनिवार्य अंग है आनंद। सत्य, चैतन्य और आनंद--ये तीनों फैलने

वाले तत्व हैं। इसलिए हमने इनको ब्रह्म कहा है, और ब्रह्म का स्वभाव कहा है। और जब कोई व्यक्ति अपनी गहन आत्मा में उतरता है और उस द्वार को खोल लेता है जो स्वयं के भीतर ही छिपा था, जब कोई मन के पार जाता है, विचार दूर छूट जाते हैं, बहुत दूर, जैसे अपने न रहे, और कोई अपने केंद्र को छू लेता है, उसी क्षण उस महा विस्तार से एक हो जाता है। फिर वह भी फैलना चाहता है। फिर वह भी बंटना चाहता है।
जीवन का स्वभाव फैलाव का है। एक बीज तुम बोते हो छोटा सा, एक विराट वृक्ष पैदा होता है। कितना फैल गया! इसी को हम ब्रह्म कहते हैं। फिर एक बीज बोया था, एक बड़ा वृक्ष लगा, और वृक्ष पर कितने अरबों-खरबों बीज लगते हैं! अब तुम एक-एक बीज को फिर बो दो, अरबों-खरबों वृक्ष होंगे और हर वृक्ष पर अरबों- खरबों बीज लगेंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि एक बीज पूरी पृथ्वी को हरा कर सकता है, एक बीज पूरी पृथ्वी को जंगलों से ढंक दे सकता है। एक बीज की इतनी क्षमता! यही अस्तित्व का लक्षण हैः फैलते जाना, फैलते जाना, फैलते जाना। कहां रुकेगा यह बीज? कहीं नहीं रुकने वाला है। इसका कोई रुकना नहीं है। आनंद आखिरी बीज है जीवन का। उससे ऊपर कुछ नहीं है। उसके पार कुछ नहीं है। उसका फैलना कहीं रुकता नहीं। इसलिए जिन्होंने जाना है, वे बोल नहीं सकते और बिना बोले नहीं रह सकते। यह पहेली है। बोलेंगे ही, और बोल-बोल कर बार-बार कहेंगे कि जो जानता है वह बोल नहीं सकता, वह कह नहीं सकता। यह शर्त भी बता देंगे कि तुम कहीं उनके शब्दों को न पकड़ लो। क्योंकि शब्दों को पकड़ा कि तुम चूक गए।
जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह मेरे शब्दों में नहीं है। जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं वह मेरे शब्दों से तुम्हें नहीं मिलेगा। तुम मेरे शब्दों को पकड़ कर रुक गए तो तुम वह न जान पाए जो मैं कहना चाहता था। शब्द तो इंगित थे, इशारे थे। उनके पार जाना जरूरी था। तुम मेरे शब्दों को सुनना, लेकिन उन पर रुक मत जाना। क्योंकि शब्द सत्य नहीं हैं। तुम शब्दों को सुनना और शब्द के पार देखना। शब्द को समझना और शब्द के पार उठना। मैं जो कहूं उसे सुनना और मैं जो हूं उसे देखना। अंततः तो दर्शन ही काम आएगा, श्रवण काम नहीं आएगा। श्रवण केवल दर्शन के योग्य बना दे, बस काफी है। तुम सुन-सुन कर इस योग्य हो जाओ कि देखने की कला और कुशलता आ जाए।
इसलिए तो हम ज्ञानी को द्रष्टा कहते हैं, श्रोता नहीं। सुन-सुन कर तो कोई ज्ञानी नहीं होता; देख कर कोई ज्ञानी होता है। इसलिए द्रष्टा कहते हैं। इसीलिए तो हम उसे आंख वाला कहते हैं। इसीलिए तो हम इस सत्य की पूरी खोज को दर्शन कहते हैं। सुन कर तुम इस योग्य हो जाओ कि देखने की कला आ जाए। कान पर पड़ती चोट तुम्हारी आंख को खोल दे। और जैसे साधारणतया शरीर की आंख और कान जुड़े हैं--इसीलिए तो आंख का, कान का और नाक का एक ही विशेषज्ञ होता है, क्योंकि वे शरीर में भी जुड़े हैं, उनके तीनों का केंद्र एक है--और ऐसे ही वे चेतना में भी जुड़े हैं। कान पर चोट कर-कर के सारी कोशिश यह है कि तुम्हारी आंख खुल जाए।
कोई आदमी सो रहा है, तुम क्या करते हो? क्या तुम उसकी आंख खोलते हो? तुम कान पर चोट करते हो कि उठो! जागो! कभी तुम्हें किसी को सोते से जगाने के लिए पलकें खोलनी पड़ती हैं? कान पर करते हो चोट, पलकें खुलती हैं। बस वही ज्ञानी भी कर रहा है। कान पर करता है चोट कि पलकें खुल जाएं। सोए हो तुम, जगाता है। और पलकें खोलना सीधा थोड़ा आक्रामक होगा। सीधे किसी सोए आदमी की पलकें खोल दो, नाराज हो जाएगा, क्रोध से भर जाएगा, लड़ने-मारने को उतारू हो जाएगा कि यह तुमने क्या किया! कान पर चोट करने से आहिस्ता-आहिस्ता आंख पर चोट पड़ती है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे एक माधुर्य के साथ आंखें खुल जाती हैं। इसलिए ज्ञानी को बोलना पड़ता है। और ज्ञानी भलीभांति जानता है कि बोल कर बोलने का कोई उपाय नहीं है। तो बोलना एक विधि है। सत्य उससे न मिलेगा। सत्य तो आंख से ही दिखेगा; तुम्हारे ही अनुभव से मिलेगा।
इसलिए निरंतर यह शर्त कही गई है कि जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता
है वह जानता नहीं। पंडित सिर्फ बोलता है। वह तुम्हारे कानों को भरता है। ज्ञानी बोलता भी है तो तुम्हारी आंखों को ही खोलने के लिए। लक्ष्य अलग-अलग हैं। पंडित बोलता है तो तुम्हारे ज्ञान को बढ़ाता है, ज्ञानी बोलता है तो

तुम्हारे अस्तित्व को बढ़ाता है, तुम्हारे ज्ञान को नहीं। ज्ञान तो कचरा है। ज्ञान तो जूठन है। ज्ञान तो बासा है। और परमात्मा सदा ताजा है। तुम उसे जूठन की तरह न पाओगे। तुम उसे सदा ताजी अनुभूति की तरह पाओगे।
जब तुम उसे पाओगे तब तुम जानोगे कि ज्ञानियों ने जो भी कहा, इससे इसका कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन जब तुम जानोगे तब! तब तुम पाओगे कि ज्ञानी तुतला रहे थे और जो कहना चाह रहे थे वह कह नहीं पा रहे थे। सभी ज्ञानी तुतला रहे हैं। और एक अर्थ में यह सही भी है। क्योंकि ज्ञानी का अर्थ ही हैः जिसका नया जन्म हुआ। जैसे छोटे बच्चे तुतलाते हैं; कुछ कहना चाहते हैं, कुछ निकलता है। और तुम कुछ समझ ही नहीं पाते कि वे क्या कह रहे हैं। वे काफी कहें भी तो भी कुछ पकड़ में नहीं आता।
तुम फिर क्या करते हो? एक मां क्या करती है छोटे बच्चे के साथ? जब वह कुछ-कुछ कहता है तो वह इसकी फिक्र नहीं करती कि वह क्या कह रहा है, वह यह समझने की कोशिश करती है कि उसका इशारा क्या है--भूख लगी है? प्यास लगी है? वह उसका इशारा समझने की कोशिश करती है। वह पानी नहीं कहता, वह कहता है पम्मा। वह पानी कह नहीं सकता अभी। वह प्यास लगी है, यह कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन मां उसकी समझ लेती है कि वह क्या कह रहा है। वह जो कह रहा है उससे नहीं समझती, वह जो उस दशा में प्रकट कर रहा है उससे समझती है। धीरे-धीरे शब्दों की जरूरत नहीं रह जाती। धीरे-धीरे मां उसका इशारा समझने लगती है। ज्ञानी भी फिर से हो गए बच्चे हैं। वे किसी और ही प्यास और किसी और ही पानी और किसी और ही परमात्मा की बात कर रहे हैं। उन्होंने फिर तुतलाना शुरू कर दिया है। और पहले बचपन का तुतलाना था, वह तो किसी दिन ठीक भी हो जाता है। क्योंकि वह बचपन आता है और चला जाता है। यह बचपन न जाने वाला बचपन है। यह अब सदा रहेगा। इससे ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है। ज्ञानी तुतलाते ही रहेंगे। वे जो भी कहेंगे वह हमेशा इशारा ही होगा; इससे ज्यादा नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञानी ने अब उस निर्दोष बालपन को पा लिया जो सदा रहेगा, जो शाश्वत है। इस तुतलाहट के ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है।
तो तुम ज्ञानी का इशारा समझना। ज्ञानी क्या कहता है, यह कम फिक्र करना; ज्ञानी क्या है, इसकी तुम ज्यादा फिक्र करना। इसीलिए तो श्रद्धा का इतना मूल्य है। क्योंकि अगर तुम श्रद्धा से न सुन पाओगे तो तुम कहोगे, यह सब बकवास है। क्योंकि तुम्हारी कुछ समझ में नहीं आएगा। जो समझ में न आए वह बकवास है। छोटे बच्चे की मां तो समझ लेती है, लेकिन इस छोटे बच्चे को दूसरा आदमी अगर बिठा दो तो वह परेशान हो जाएगा। वह कहेगा, हटाओ इस उपद्रव को! यह क्या बक रहा है, कुछ पता भी नहीं चलता। क्योंकि मां का तो प्रेम है इसलिए वह समझने की कोशिश करती है। इसका कोई प्रेम तो है नहीं। वह यह कहेगा कि जो कहना है ठीक से बोल, नहीं बोल सकता है, चुप बैठ।
तो जब तक गुरु से कोई प्रेम का संबंध न जुड़ जाए, जब तक कोई ऐसा हृदय का नाता न हो जाए कि वह जो भी कह रहा है उसे समझने की एक आतुरता हो, एक तैयारी हो, एक त्वरा, तीव्रता हो, तो ही तुम समझ पाओगे। अन्यथा वह बकवास मालूम पड़ेगी। अनेक समझदारों ने बुद्धों को बकवासी समझ कर छोड़ दिया है। क्योंकि लगता है कि बातचीत ही करते हैं। क्या कहना चाहते हैं, कुछ साफ नहीं है। खुद को भी साफ नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि कहते हैं, ज्ञानी बोलता नहीं है।
इसको मैं तुतलाहट कहता हूं। यह उस शाश्वत बालपन का हिस्सा है, उस निर्दोषता का, जो ज्ञानी को उपलब्ध होती है। उसका पुनर्जन्म हुआ है। श्रद्धा से तुम सुनोगे--श्रद्धा से सुनने का अर्थ है हृदय से सुनना। शब्दों पर बहुत जोर नहीं देना, उनका बहुत मूल्य नहीं है। तर्क और विचार से नहीं, वरन एक लगाव से, एक लगाव से कि शायद कुछ हो। खोज की तैयारी से, आतुरता से। जब तुम ज्ञानी के साथ श्रद्धा से जुड़ोगे तभी तुम थोड़ा-बहुत समझ पाओगे। और तब तुम यह भी समझ लोगे कि इस आदमी की कठिनाई क्या है। यह ऐसी कुछ बात कहना चाहता है जो कही नहीं जा सकती। तब तुम यह भी समझ पाओगे कि इस आदमी की करुणा कैसी है कि उस बात को भी कहने की कोशिश करता है जो कही नहीं जा सकती। लेकिन इसकी करुणा के कारण रुक भी नहीं सकता, बिना कहे रह भी नहीं सकता।
"जो जानता है वह बोलता नहीं; जो बोलता है वह जानता नहीं।"

इसका एक और अर्थ है, वह भी ख्याल में ले लेना। इसकी एक और भाव-भंगिमा है। जो जाना जाता है, जो सत्य, जो अनुभव, जो प्रतीति, वह नहीं कही जा सकती; लेकिन कैसे जानी जाती है वह प्रतीति, वह कहा जा सकता है। इसलिए ज्ञानी विधियों की बात करते हैं। मंजिल की बात नहीं करते, मार्ग की बात करते हैं। साध्य की बात नहीं करते, साधन की बात करते हैं। और पंडित हमेशा मंजिल की बात करते हैं। तुम उससे फर्क समझ लोगे। पंडित हमेशा ब्रह्म की चर्चा करेगा; ज्ञानी ध्यान की। पंडित तर्क जुटाएगा और सिद्ध करेगा कि ईश्वर है, क्यों ईश्वर को मानो। ज्ञानी न कोई तर्क जुटाएगा, न ईश्वर की बहुत चर्चा करेगा। प्रासंगिक बात और, अन्यथा सीधा ईश्वर से कुछ लेना-देना नहीं है। ज्ञानी चर्चा करेगा उस विधि की कि कैसे ईश्वर जाना जाता है, किस मार्ग से मिलती है झलक, किस द्वार से होती है प्रतीति, कैसे तुम उठाओ पैर कि पहुंच जाओ वहां। पंडित तर्क देता है, प्रमाण देता है। ज्ञानी विधि देता है; न तर्क देता, न प्रमाण देता। और विधि से अनुभव होगा।
बुद्ध ने कहा है, मैं तो वैद्य की भांति हूं, मैं तुम्हें औषधि देता हूं
कि तुम्हारी बीमारी हट जाए। स्वास्थ्य की व्याख्या कैसे करूं? औषधि देता हूं, बीमारी मिटा दूंगा। स्वास्थ्य तुम जान लेना। तुम आज पूछो कि स्वास्थ्य कैसा होगा? मैं तुम्हें कैसे समझाऊं! स्वास्थ्य की कोई भी तो परिभाषा नहीं है।
सब परिभाषाएं बीमारियों की हैं। दुख की परिभाषा हो सकती है, आनंद की कोई परिभाषा नहीं। क्योंकि दुख की सीमा है, आनंद की कोई सीमा नहीं। दुख छोटा है, क्षुद्र है; परिभाषा से बंध जाता है। आनंद विराट है, विस्तीर्ण है; सब परिभाषाएं छोटी पड़ जाती हैं, आनंद बहता चला जाता है, आगे निकल जाता है। परिभाषा का अर्थ हैः जिसको बांधा जा सके शब्द के धागे से।
तो बुद्ध कहते हैं, मैं स्वास्थ्य की बात ही न करूंगा, और तुम मुझसे स्वास्थ्य की बात पूछना ही मत। मैं तो एक वैद्य हूं, निदान कर दूंगा बीमारी का, औषधि का इंतजाम कर दूंगा। तुम औषधि लेने की तैयारी दिखाना, बस इतना काफी है। बीमारी जब मिट जाएगी तो जो शेष रहेगा वही स्वास्थ्य है। जब तुम मिट जाओगे तो जो शेष रहेगा वही परमात्मा है। प्रमाण कहां हो सकता है?
और तुम जो मांग रहे हो प्रमाण, तुम्हीं बाधा हो, तुम्हीं उपद्रव हो, जिसके कारण परमात्मा की प्रतीति नहीं हो रही। तुम खोज रहे हो परमात्मा को, और तुम्हीं अवरोध हो। और तुम पूछते हो कि तर्क, सिद्ध करो, प्रमाण दो, तब मैं आगे बढूंगा। तुम्हारे आगे बढ़ने की जरूरत ही नहीं है। सब तर्क, सब प्रमाण तुम्हारे अहंकार को ही परिपोषित करेंगे। और अहंकार को खोए बिना कौन कब उसे जानता है?
ज्ञानी नहीं देता तर्क, नहीं देता प्रमाण, ज्ञानी तो संक्रामक है। ज्ञानी को तो स्वास्थ्य लग गया, जैसे तुम्हें बीमारी लग गई। ज्ञानी संक्रामक है, स्वास्थ्य देता है। लेकिन स्वास्थ्य को देने का और तो कोई उपाय नहीं। बीमारी काटो, बीमारी हटाओ, मिटाओ; स्वास्थ्य बच रहता है।
जो सदा बच रहता है सब हट जाने पर, वही परमात्मा है। जब तुम नहीं हो, विचार नहीं है, मन नहीं है, भाव नहीं है, शून्य निर्मित हो गया, भीतर कोई भी नहीं है, एक गहन सन्नाटा है, तब जो बच रहा, जो सदा शेष है, वही परमात्मा है। जो सदा शेष है वही सत्य है। क्योंकि फिर उसको मिटाया नहीं जा सकता। जो-जो मिटाया जा सकता है, जो-जो काटा जा सकता है, काट दो; जो-जो हटाया जा सकता है, हटा दो। और जब तुम ऐसी घड़ी में आ जाओ कि तुम पाओ, अब हटाने को कुछ बचा ही नहीं, घर बिल्कुल खाली है; अब कोई फर्नीचर नहीं है जिसको हटाएं, अब कोई सामान नहीं बचा, कूड़ा-कर्कट नहीं जिसको हटाएं, अब तो सिर्फ खालीपन बचा है; यही खालीपन तत्क्षण एक विस्फोट हो जाता है। तत्क्षण तुम पाते हो, यह खालीपन खालीपन नहीं है। तुम्हारी नजरें फर्नीचर से बंधी थीं, इसलिए यह खाली मालूम होता है। क्योंकि फर्नीचर हट गया। जरा आंखों को सध जाने दो, जरा प्राणों को लयबद्ध हो जाने दो, जरा थोड़ा सा इस नए की प्रतीति को गहन में उतर जाने दो। अचानक तुम पाओगे, खालीपन? मैं पागल हूं, यह तो भरा है! जिससे तुम इसे भरा पाते हो, सब हटा देने पर, वही परमात्मा है। चाहे तुम उसे शून्य कहो, अगर तुम

फर्नीचर के हिसाब से सोचते हो; चाहे तुम उसे पूर्ण कहो, अगर तुम जो उस शून्य में भरा हुआ पाते हो।
लेकिन औषधि है धर्म, और गुरु चिकित्सक है। वह कोई व्याख्याकार नहीं है। विधि देता है।
अब बड़ा मुश्किल है। तुम कहते हो, जिस परमात्मा का हमें पक्का भरोसा न
हो उसको खोजने की हम विधि का भी क्या करेंगे?
तो जो परम ज्ञानी है वह तुम्हें परमात्मा की खोजने की विधि भी नहीं देता। वह तो तुमसे कहता है, तुम परमात्मा की बात ही मत उठाओ; तुम्हारी तकलीफ क्या है वह बोलो। तुम अशांत हो? अशांति को काटने की विधि है। तुम दुखी हो? दुख को काटने की विधि है। तुम चिंतित हो? चिंता को काटने की विधि है। परमात्मा को तुम बीच में ही मत लाओ। तुम्हारा परमात्मा किसी मतलब का भी नहीं है। उसकी खोज का भी कोई सार नहीं है। तुम्हारी तकलीफ क्या है? उसे काट लो। जिस दिन तुम ऐसे क्षण में पहुंच जाओगे जहां कोई तकलीफ नहीं है, कोई चिंता नहीं है, कोई संताप नहीं है, जहां तुम अचानक पाओगे कि तुम परितुष्ट हो, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो जाएगा। तुम्हारा संतोष सत्य से मिलने का द्वार है। तो तुम कैसे संतुष्ट हो जाओ, इसकी ही बात करो।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि हम तो नास्तिक हैं। तो मैं कहता हूं, मजे से रहो। इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं। बिना जाने तुम आस्तिक हो कैसे सकते हो? आश्चर्य तो उन पर है मुझे जो आस्तिक हैं बिना जाने! वे अदभुत लोग हैं। जिनको कोई पता ही नहीं है परमात्मा का, आस्तिक बने बैठे हैं। उनसे बड़े धोखेबाज तुम कहीं भी न पाओगे।
इसलिए जितना मुल्क आस्तिक होता है उतना धोखेबाज होता है। भारत इसका प्रमाण है। यहां तुम जितना धोखा पाओगे, नास्तिक मुल्कों में न पाओगे, रूस में न पाओगे। यहां धोखाधड़ी जन्मजात है; यहां खून में है। क्योंकि बड़े से बड़ा धोखा तुम दे रहे हो आस्तिक होने का। जिसकी तुम्हें कोई भी खबर नहीं है, जहां तुम खड़े हो उस अंधकार में जिसकी कोई किरण तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ी, और तुम आस्तिक हो। और तुम मरने-मारने को उतारू हो, अगर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है। झगड़ा-झांसा करने में तुम कुशल हो। तलवारें उठा लोगे। और तुम्हारी आस्तिकता बिल्कुल ही पोच, उसमें कोई प्राण नहीं है। वह बिल्कुल निर्जीव है।
आश्चर्य इसमें कुछ भी नहीं है, स्वाभाविक है। जब मेरे पास कोई आकर कहता है, मैं नास्तिक हूं, क्या मैं भी ध्यान कर सकता हूं? तो मैं कहता हूं, इसमें अड़चन कहां है? आस्तिक तक ध्यान कर रहे हैं तो तू तो नास्तिक है। बिल्कुल ठीक है। स्वाभाविक है। क्योंकि जिसे हमने जाना नहीं उसे मानने का दावा, इससे बड़ा धोखा और क्या होगा? नास्तिक कम से कम ईमानदार तो है। कम से कम यह तो एहसास करता है कि मुझे पता नहीं तो मैं कैसे मानूं? कम से कम साफ तो है। किसी प्रवंचना में तो नहीं है।
आस्तिकता-नास्तिकता से कुछ लेना-देना नहीं है, धर्म का कोई संबंध नहीं है। धर्म का तो संबंध है तुम्हारे जीवन की चिकित्सा से। तुम आस्तिक हो या नास्तिक, क्या फर्क पड़ता है!
जब तुम डाक्टर के पास जाते हो वह तुमसे पूछता है? तुम्हें सर्दी-जुकाम, पहले पूछता है, आस्तिक कि नास्तिक? क्या लेना-देना आस्तिकता-नास्तिकता से! सर्दी-जुकाम का इलाज करना है; आस्तिक-नास्तिक से क्या लेना-देना है! हिंदू या मुसलमान, ईसाई कि जैन--पूछता है? क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ता है! सर्दी- जुकाम को पता ही नहीं हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई का; सर्दी-जुकाम सभी को होती है, एक ही नियम से होती है; वह कोई धर्म का भेद नहीं मानती। वह तो चिकित्सा देता है। मुसलमान पर भी वही दवा काम करती है; हिंदू पर भी वही दवा काम करती है; ईसाई पर भी वही दवा काम करती है। दवा ही वही है जो सार्वभौम है। अगर कोई दवा का यह हो कि पहले हिंदू होना पड़ेगा तब काम करेगी, तो वह दवा नहीं है, धोखा है। ताबीज होगा; दवा नहीं है। किसी भ्रांति पर खड़ी होगी, किसी सत्य पर नहीं।
ध्यान का क्या लेना-देना कि तुम कौन हो--काले हो कि गोरे? स्त्री हो कि पुरुष? बच्चे हो कि बूढ़े? कोई लेना-देना नहीं है। ध्यान का सीधा संबंध,

तुम्हारा रोग क्या है, उस रोग से है। और रोग सबके हैं। मुसलमान अशांत है, हिंदू अशांत है, जैन अशांत है। उनकी अशांति में जरा भी फर्क नहीं है। अशांति का नियम एक है। शांति का भी नियम एक है। लाओत्से अब उसकी चर्चा करता है। पहले वह कह देता हैः जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता है वह जानता नहीं। क्योंकि सत्य के संबंध में कुछ नहीं बोला जा सकता। लेकिन विधि के संबंध में निश्चित बोला जा सकता है। अब वह विधि की बात करता है।
"इसके छिद्रों को भर दो, इसके द्वारों को बंद करो; इसकी धारों को घिस दो, इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो; इसके प्रकाश को धीमा, इसके शोरगुल को चुप; यही रहस्यमयी एकता है।"
यही ध्यान की परम स्थिति है। जितनी बातें वह कहता है वे समझ लेने जैसी हैं। एक-एक बात ध्यान के लिए संभावनाओं को बढ़ाएगी। एक-एक औषधि स्वास्थ्य को करीब लाएगी। एक-एक बीमारी गिरे, स्वास्थ्य की क्षमता बढ़े।
"इसके छिद्रों को भर दो।"
इंद्रियां छिद्र हैं, जिनसे तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बाहर जाती है। आंख से तुम सिर्फ देखते ही नहीं हो, आंख से तुम्हारे देखने की क्षमता बाहर जाती है। इसीलिए तो तुम बहुत देर देखते रहो तो बड़े थके हुए अनुभव करते हो। क्योंकि दर्शन की तुम्हारी जो क्षमता है वह प्रतिपल आंख से बाहर जा रही है। तुम यह मत समझना कि आंख सिर्फ एक खिड़की है। आंख एक सक्रिय इंद्रिय है। जब तुम देख रहे हो तो हजारों स्नायुओं पर तनाव पड़ रहा है। एक-एक आंख के पीछे लाखों-करोड़ों स्नायु हैं। बड़ा सूक्ष्म जाल है। उससे सूक्ष्म कोई चीज जगत में नहीं है। आंख से सूक्ष्म कोई इंद्रिय जगत में नहीं है। तुम्हारे भीतर आंख के पीछे छिपा हुआ तुम्हारा तंतुओं का जाल, तुम्हारा पूरा मस्तिष्क है। और जब तुम आंख से देख रहे हो तो आंख के भीतर रोशनी जा रही है, बाहर की चीजों के चित्र जा रहे, प्रतिबिंब जा रहे; आंख से भी कुछ बाहर जा रहा है। तुम्हारी देखने की क्षमता, तुम्हारी देखने की ऊर्जा बाहर जा रही है।
इसलिए अगर ज्ञानी हजारों वर्षों से आंख बंद करके ध्यान करते रहे हैं
तो पागल नहीं थे। क्योंकि अगर परमात्मा को देखना हो तो देखने की ऊर्जा तो संगृहीत कर लो! देखने की क्षमता तो इकट्ठी हो जाने दो! देखोगे कैसे? और जितने विराट को देखना हो उतनी बड़ी ऊर्जा संगृहीत होनी चाहिए।
बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे, बैठते वक्त तो देखना ही मत, आंख खोलने
की कोई जरूरत नहीं है। चलते वक्त चार कदम आगे, बस इतना देख लेना। आंख आधी खुली रहे, पूरी भी मत खोलना, और चार कदम आगे देखते हुए चलना। उतना काफी है। चार कदम देख लोगे, चार कदम चल लोगे, फिर चार कदम आगे दिखाई पड़ने लगेगा। चार कदम देख-देख कर तो आदमी हजारों मील की यात्रा कर लेता है। और ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जितना तुम देखोगे उतने देखने की क्षमता का व्यय हो रहा है। और तुम परमात्मा को देखने की आकांक्षा से भरे हो। और तुमने सत्य को देखने का संकल्प किया है। और तुम वह जानना चाहते हो इस जीवन का जो परम रहस्य है। तो उसको जानने की क्षमता तो इकट्ठी कर लो। आंख तो चाहिए जो देख सके।
तुम्हारी थकी आंखें उसे न देख पाएंगी। और तुम कहां आंखों को थका रहे हो, कभी तुमने ख्याल ही नहीं किया। रास्ते के किनारे दीवारों पर लगे-- हमदर्द दवाखाना--उसको पढ़ रहे हो। कितनी बार पढ़ चुके हो? उसी दीवार से बार-बार गुजरते हो; उसी को बार-बार पढ़ते हो। कचरा, कूड़ा-कबाड़; अखबार बैठते हो पढ़ने, कचरा, कूड़ा-कबाड़, उसको तुम रोज पढ़ रहे हो। कुछ भी बोले प्रधानमंत्री, तुम उसको पढ़ रहे हो, बिना इसकी फिक्र किए कि कभी प्रधानमंत्री में कोई बुद्धिमान आदमी हुआ है। कभी एकाध प्रधानमंत्री ने भी कोई ऐसी बात कही जिसमें कोई सार हो। लेकिन उसको ऐसे आत्मसात कर रहे हो जैसे वेद-वचन है। सुबह से लोग एकदम अखबार की तलाश में लग जाते हैं। अगर थोड़ी देर हो जाए तो बड़ी खलबली मच जाती है।
क्या पढ़ रहे हो? और पढ़ना साधारण बात नहीं है, क्योंकि उतनी क्षमता व्यय
हो रही है। आंख उतनी थक रही है। क्या देख रहे हो? कुछ भी देख रहे हो। रास्ते पर कुछ भी हो रहा है--मदारी खड़ा डमरू बजा रहा है, बंदर नचा रहा है--वहीं खड़े हो। ये आंखें परमात्मा को कैसे देख पाएंगी जो बंदर का नाच देख रही हैं! यह

बुद्धि अभी बड़े नीचे तल पर है। इस बुद्धि को अभी कुतूहल के ऊपर उठने का मौका नहीं मिला। तो मदारी भी जानता है कि सिर्फ डमरू बजा दो, एक बंदर को नचा दो, बंदर इकट्ठे हो जाएंगे। आदमी किसलिए इकट्ठा होगा? बंदर नाच रहा हो, इसमें क्या देखने जैसा है?
सारी दुनिया बंदरों से भरी है। सभी बंदर नाच रहे हैं। सभी जगह मदारी हैं, तरह-तरह के डमरू बजा रहे हैं। वहां भीड़ लगी है। हजार काम छोड़ कर लोग खड़े हो जाते हैं। कहीं दंगा-फसाद हो रहा है, दो आदमी एक-दूसरे को गाली दे रहे हैं। तुम बड़ी उत्सुकता से खड़े हो। दवा लेने जा रहे थे पत्नी के लिए, वह काम गौण हो गया। बच्चे के लिए दूध खरीदने जा रहे थे, वह अभी थोड़ी देर ठहर सकता है। लेकिन यह घटना देखने जैसी है। और कभी अगर ऐसा हो जाता है कि दो आदमी लड़ने के बिल्कुल करीब आ गए और फिर अलग हो गए, तुम बड़े उदास लौटते हो कि कुछ भी न हुआ। बेकार ही खड़े रहे। खून बह जाए, सिर खुल जाएं, थोड़ा रस आता है। तुम्हारे भीतर की हिंसा थोड़ी तृप्त होती है। तुम जो करना चाहते थे, दूसरे ने कर दिया तुम्हारे एवज। थोड़ा सुख मिलता है। तुम थोड़े हलके होकर घर जरा तेज कदम से कोई फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए लौटते हो। जिंदगी में रस आ जाता है।
तुम्हारा रस क्या है, क्या तुम देखते हो, क्या तुम सुनते हो, उस सब में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बह रही है। यहां कुछ भी मुफ्त नहीं है। हर चीज के लिए चुकाना पड़ रहा है। कचरा भी खरीदोगे, उसके लिए भी चुकाना पड़ रहा है। क्योंकि जीवन-ऊर्जा जा रही है, समय जा रहा है। प्रतिपल हाथ से जीवन का जल गिरा जा रहा है। थोड़ी ही देर में मुट्ठी खाली हो जाएगी। फिर तुम पछताओगे। लेकिन फिर पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! जब जीवन जा चुका, फिर पछताने से क्या होगा? जब तक जीवन हाथ में है, कुछ बचा लो। अगर तुम आंख से देखने का उतना ही उपयोग लो जितना जरूरी है, तो तुम पाओगे तुम्हारे भीतर तीसरी आंख का जन्म शुरू हो गया।
लोग मुझसे पूछते हैं कि तीसरी आंख कैसे खुले? मैं उनसे कहता हूं, पहले
दो आंखें थोड़ी बंद करो। तीसरी आंख को खोलने की और क्या जल्दी है? कुछ और उपद्रव देखना है? दो से तृप्ति नहीं हो रही?
तुम दो को थोड़ा कम करो, तीसरी अपने आप खुलती है। क्योंकि जब तुम्हारे भीतर देखने की क्षमता प्रगाढ़ हो जाती है, उस प्रगाढ़ता की चोट से ही तीसरी आंख खुलती है। और कोई उपाय नहीं है। इन दो को तुम व्यय कर दो; तीसरी कभी न खुलेगी। जीवन में एक व्यवस्था है; भीतर एक बड़ी सूक्ष्म यंत्र की व्यवस्था है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाए उसकी ऊर्जा ऊपर की तरफ अपने आप बहनी शुरू हो जाती है। क्योंकि इकट्ठी होती है ऊर्जा, कहां जाएगी? नीचे जाना बंद हो गया। अपने आप ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। अपने आप उसके भीतर के नए चक्र खुलने शुरू हो जाते हैं और नए अनुभव के द्वार। तुम चक्रों को खोलना चाहते हो, वह ऊर्जा पास नहीं है। तुम बटन दबाते हो, बिजली नहीं जलती। बिजली चाहिए भी तो, बहनी भी तो चाहिए, होनी भी तो चाहिए भीतर जुड़े तारों में। वह प्रवाह वहां न हो तो क्या होगा? जब दो आंख धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शांत होने लगती हैं... ।
तुम एक छोटा सा प्रयोग करो। जब भी तुम अकारण बैठे हो, कोई काम नहीं है,
मत आंख को खोलो। और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर एक शक्ति का जन्म हो रहा है। तुम जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्ति और एक नई क्षमता इकट्ठी हो रही है। तुम चीजों को पैना देखने लगोगे, गहरा देखने लगोगे। कल जो चीज ऊपर से उथली-उथली दिखाई पड़ती थी, अब तुम गहरा देख सकोगे। तुम मुझे सुनोगे उसके बाद, तब तुम पाओगे कि तुम उस मेरे सुनने में कुछ और देखने लगे जो तुमने कभी न देखा था। मेरे शब्द वही थे, मैं वही था, लेकिन तुम्हारी देखने की क्षमता गहरी हो गई। जितनी बड़ी ऊर्जा हो उतनी गहरी जाती है।
अभी तुम्हारी देखने की क्षमता सुई की तरह है; अगर तुम इकट्ठा करो तो तलवार की तरह हो जाती है। तब बड़े गहरे तक उसकी चोट होती है। तब तुम देख कर कुछ चीजें देख लोगे जो तुम पहले हजार बार उपाय करते सोच कर तो भी नहीं सोच पाते थे। सोचने का सवाल नहीं है, देखने का सवाल है; दृष्टि पैनी चाहिए। वह पैनी होती है, उसमें निखार आता है, जितना तुम संजोओगे, जितना इकट्ठा करोगे।

जब तुम व्यर्थ हो, कुछ नहीं कर रहे हो, आंख की कोई जरूरत नहीं है, मत खोलो। कार में बैठे हो, ट्रेन में बैठे हो, बस में सवार हो; तुम्हारी आंख की क्या जरूरत है? वह काम ड्राइवर कर रहा है। तुम नाहक ही अपनी आंख को दुखा रहे हो खिड़की में झांक-झांक कर। सड़क पर चलते हुए चेहरे, जिनका कोई प्रयोजन देखने का नहीं है। तुम आंख बंद कर लो। तुम मत देखो। तुम सिर्फ शांत रहो।
और एक ख्याल करो। एक बहुत पुरानी तिब्बतन विधि है जो बड़े काम की है। जब
भी तुम खाली बैठे हो, अगर आंख खोलनी भी पड़े, तो बहुत आहिस्ता खोलो। जैसे कोई पर्दा उठाया जा रहा है, बड़े धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, ऐसी तुम्हारी पलक उठे। फिर जब तुम पलक झपकाओ तो वैसी ही वापस धीरे-धीरे जाए, जैसे कोई पर्दा गिराया जा रहा है। और तुम एक बड़ी गहन शांति अनुभव करोगे। क्योंकि तुम्हारी आंख जितनी जल्दी खुलती है, जितनी जल्दी बंद होती है, उतना ही तनाव तुम्हारे भीतर के मस्तिष्क पर पड़ता है।
तुम हमेशा पाओगे, जब भी कोई व्यक्ति शांत होगा तो उसकी आंख की पलकें, तुम पाओगे, बड़ी आहिस्ता से गिरती हैं, आहिस्ता से उठती हैं। अशांत व्यक्ति की आंखें बड़ी तेजी से। बहुत बेचैन आदमी की आंखें अगर तुम नींद में भी देखोगे तो पाओगे कि हिल रही हैं पलकें, तनाव अभी भी बाकी है, कंपन जारी है। इंद्रियां हैं छिद्र, उन्हें भर दो।
उन्हें भरने का एक ही उपाय है कि उनकी ऊर्जा को व्यर्थ मत बहाओ; वही ऊर्जा उन्हें भर देगी।
"इसके द्वारों को बंद कर दो।"
तुम्हारे मस्तिष्क में उठने वाली वासना हैं द्वार। जैसे ही मन में कोई वासना उठती है वैसे ही सजग हो जाओ, उसको ज्यादा देर साथ मत दो। क्योंकि ज्यादा देर साथ देने का अर्थ है कि उसकी जड़ें फैल जाएंगी। राह से तुम गुजरते हो, देखते हो एक बड़ा भवन। एक वासना मन में उठती है, ऐसा मकान अपना भी हो। इस पर अगर तुम ज्यादा देर सोचते रहे तो यह वासना जड़ें जमा लेगी। और जब वासना की जड़ें जम जाती हैं तो इंद्रियां उसका अनुगमन करती हैं। करना ही पड़ता है। क्योंकि शरीर तुम्हारा अनुगामी है।
तो पहले वासना का द्वार खुलता है, फिर इंद्रियों के छिद्र खुल जाते हैं। अगर तुम्हारे मन में मकान की वासना आ गई तो जहां भी तुम्हें मकान दिखाई पड़ेंगे वहीं तुम गौर से देखोगे। अगर तुम्हारे मन में कोई भी चीज की वासना आ गई, जिस चीज की वासना आ गई, उसी पर तुम्हारी सारी इंद्रियां संलग्न हो जाएंगी। अगर तुमने भोजन को मन में जगह दे दी, रूप को मन में जगह दे दी, तो उसी तरफ तुम्हारी सारी इंद्रियां भागने लगेंगी।
"इसके द्वारों को बंद करो।"
और ध्यान रखना, जब भी वासना की पहली झलक भीतर उठती है उसी वक्त उससे सहयोग तोड़ लेना सुगम है। जितनी देर कर दोगे उतना ही मुश्किल हो जाएगा। और क्यों व्यर्थ समय नष्ट करना; पहले उसको जमाना, फिर उखाड़ना; जमने ही मत दो। उस फसल में कोई सार नहीं है। कभी किसी ने कुछ सार पाया नहीं है। और जब वासना तुम्हें पकड़ लेगी तो फिर उसके न पूरे होने से अतृप्ति होगी, असंतोष होगा, अशांति होगी, तनाव होगा, चिंता होगी। फिर तुम सो न सकोगे। फिर तुम बेचैन रहोगे। ध्यान पर न बैठ सकोगे। जो वासना है वह तुम्हारा पीछा करेगी। वह सब जगह तुम्हें बेचैन रखेगी।
वासना एक ज्वर है, चेतना का ज्वर। चेतना का तापमान ऊपर चला जाता है। तब
एक उद्विग्नता भीतर समा जाती है। वह उद्विग्नता हर घड़ी मौजूद रहती है। और कठिनाई यह है कि अगर तुम ऐसा वर्षों उद्विग्न रह कर अपनी वासना को पूरा भी कर लो, तब भी कुछ हल नहीं। पूरा करके तुम पाते हो, नाहक ही इतने परेशान हुए। जब तक मिला नहीं तब तक दौड़ते थे; अब मिल गया तो कुछ सार नहीं मालूम पड़ता। क्या करोगे बड़े महल में होकर भी? जितना सपने में सुंदर मालूम पड़ता है उतना यथार्थ में कुछ भी सुंदर नहीं है। लेकिन पाकर ही तुम पाओगे। लेकिन तब तक जीवन जा चुका।
और मन की यह खूबी है, वासना का यह जाल है कि वह तुम्हें नई आशाएं और नए आश्वासन देता है। वह कहता है, इस मकान में नहीं हो सका रस, नहीं आनंद आ सका, लेकिन और बड़े मकान हैं। अभी हारने की कोई जरूरत नहीं। इतने धन से नहीं मिली

तृप्ति, स्वाभाविक है। इतने धन में किसको मिलती है? अभी धन का बड़ा विस्तार है; अभी और बड़ा धन पाया जा सकता है। अभी खजाने कायम हैं। और अभी जिंदगी शेष है। क्यों थकते हो? क्यों हारते हो? मन कहता है, बढ़े जाओ! बढ़े जाओ! मन आखिरी क्षण तक, जब मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है, तब तक कहे जाता है कि अभी भी कुछ हो सकता है। मन से बड़ा आश्वासन देने वाला तुम दूसरा न पाओगे। और तुमसे बड़ा नासमझ तुम न खोज सकोगे जो इसकी माने चला जाता है। यह किसी भी आश्वासन को कभी पूरा नहीं करता। इसने कोई आश्वासन अतीत में पूरे नहीं किए हैं। लेकिन फिर भी तुम माने चले जाते हो। थोड़ा जागो!
"इसके द्वारों को बंद करो; इसकी धारों को घिस दो।"
धार क्या है? इंद्रियां हैं छिद्र; मन में उठी वासनाएं हैं द्वार। धार क्या है? तुम्हारे नकारात्मक मनोवेग, निगेटिव इमोशंस धार हैं। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी घृणा, तुम्हारा वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, ये तुम्हारी धारें हैं। इनके कारण जो भी तुम्हारे पास आएगा उसको तुम चुभोगे। तुम्हारा क्रोध दूसरों के लिए कांटे की तरह है। तुम्हारी घृणा दूसरों के लिए जहर की तरह है। तुम्हारे पास जो भी आएगा वही पीड़ित होगा। तुम चाहे किसी को प्रेम में ही छाती से आलिंगन क्यों न कर लो, लेकिन तुम्हारे कांटे उसे भी चुभेंगे।
"धारों को घिस दो।"
ये चारों तरफ तुम्हारी जो धारें हैं इनको घिसो। क्रोध से न किसी दूसरे
को सुख मिलने वाला है, न तुम्हें। घृणा से न किसी और को स्वर्ग मिलेगा, न तुम्हें। और तुम जब तक दूसरे के लिए नरक बनाते रहोगे तब तक तुम अपने लिए ही नरक बना रहे हो, इसे ठीक से जान लेना। कोई इस दुनिया में दूसरों के लिए गड्ढे नहीं खोद सकता। तुम भला दूसरों के लिए खोदते हो; आखिर में तुम पाओगे, तुम्हीं उनमें गिर गए हो। तुम और तुम्हारे गड्ढे! दूसरे के अपने गड्ढे हैं जो उसने खुद खोदे हैं। वह तुम्हारे गड्ढों में गिरने क्यों आएगा? प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के गड्ढों में गिरता है। दूसरों के अपने गड्ढे हैं। तुम्हें मेहनत करने की जरूरत भी नहीं है। वे खुद अपनी तरफ से गिरेंगे। लेकिन तुम खोदते दूसरे के लिए हो; आखिर में पाते हो कि खुद गिर गए। फसल बोते हो दूसरे के लिए, काटनी खुद पड़ती है। जो तुम बोओगे वह तुम्हीं काटोगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। यह भी हो सकता है, तुम भूल ही जाओ कि हमने बोई थी फसल। जब काटो, समय बहुत बीत चुका हो। लेकिन काटोगे तुम्हीं। यह जीवन का शाश्वत नियम है।
आखिर तुम्हारे कांटे तुम्हें ही चुभेंगे। और तुम अगर गौर से देख सको
तो आज भी तुम्हें ही चुभते हैं। तुम्हारा क्रोध जरूरी नहीं है कि जिस पर तुमने क्रोध किया उसे दुख दे। अगर वह नासमझ है तो देगा; वह उसकी नासमझी का दुख है, तुम्हारे क्रोध का नहीं। लेकिन तुमने क्रोध किया, तुम तो दुखी होओगे ही। तुम अगर बुद्ध को जाकर गाली दो तो बुद्ध को तुम दुखी नहीं कर सकते। तुम्हारी गाली वहां निस्तेज है। क्योंकि तुम्हारी गाली थोड़े ही दुख देती है; उस आदमी का अपना अज्ञान दुख देता है। अज्ञान गाली को पकड़ लेता है। अज्ञान गाली से चिपक जाता है। अज्ञान कांटे से उलझ जाता है। अज्ञान ही दुख देता है। बुद्ध को गाली दोगे, तुम दुख न दे पाओगे; लेकिन तुम दुख पाओगे। क्योंकि गाली देना कुछ आसान थोड़े ही है। उसे ढालना पड़ता है; उसे तैयार करना पड़ता है। जहर को तुम अपने ही भीतर की प्रयोगशाला में पहले निर्मित करते हो।
उसमें तुम जहरीले हो जाते हो।
"धारों को घिस दो; इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो।"
ग्रंथियां क्या हैं? गांठ कहां लगी है तुम्हारे भीतर? कई गांठें हैं।
और लाओत्से के हिसाब से गांठ का अर्थ होता है कि तुम्हारी एक इंद्रिय दूसरी इंद्रिय के साथ उलझ जाए तो गांठ पैदा होती है। जैसे एक धागा दूसरे धागे से उलझ जाए तो गांठ पैदा होती है। और तुम्हारी सब इंद्रियां एक-दूसरे में उलझ गई हैं।
प्रत्येक इंद्रिय का एक सम्यक कृत्य है। यह बड़ी रहस्यपूर्ण बात है। इसे तुम ठीक से समझ लेना। कामवासना जननेंद्रिय का कृत्य है। मन को उस संबंध में सोचने की कोई जरूरत भी नहीं है। वह कृत्य मन का नहीं है। कामवासना

जननेंद्रिय का कृत्य है। वह जननेंद्रिय के पास ही सीमित रहना चाहिए। उसके लिए मन तक ले जाने का अर्थ है, मन और जननेंद्रिय एक-दूसरे में गुंथ गए, उलझ गए।
गुरजिएफ ने इस पर बहुत काम किया इस सदी में। वह अपने साधकों की ग्रंथियां खोलने का पहले काम करता था। वह कहता था, जब तक तुम्हारी ग्रंथियां न सुलझ जाएं, कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि अगर कामवासना जननेंद्रिय में हो तो कुछ किया जा सकता है। लेकिन कामवासना खोपड़ी में हो तो क्या करें? क्योंकि वह कामवासना की इंद्रिय ही नहीं है। बीमारी ठीक जगह हो तो सुधारी जा सकती है। बीमारी ऐसी जगह हो जहां उसकी जगह ही नहीं है तो सुधारना बहुत मुश्किल है। जो जहां है पहले वहां रख देना जरूरी है। तो गुरजिएफ कहता था, पहले कामवासना को वापस जननेंद्रिय में ले आओ।
भूख पेट में लगनी चाहिए, खोपड़ी में नहीं। खोपड़ी की भूख अलग होती है; पेट
की भूख अलग होती है। पेट की भूख तो वास्तविक है, उसे भोजन से भरा जा सकता है। वह कोई कठिन काम नहीं है। लेकिन खोपड़ी में भूख समा जाए, फिर भरने का कोई उपाय नहीं है। नीरो के संबंध में कथा है कि उसने डाक्टर रख छोड़े थे। खाना खाता, उलटी करवाता, ताकि फिर खाना खा सके। यह भूख पेट की नहीं हो सकती। बीस-बीस बार खाना खाता था। अब खाना बीस बार कोई भी नहीं खा सकता। तो एक ही उपाय है कि खाना खा लो, फिर उलटी कर दो; फिर से खाना खा लो। यह खोपड़ी में चली गई बात।
कामवासना अगर जननेंद्रिय में हो तो वास्तविक होती है। खोपड़ी में चली गई, फिर मुश्किल हो जाती है। खोपड़ी के साथ सभी इंद्रियां गुंथ गई हैं।
तो गुरजिएफ कहता था, हर चीज को पहले तो सुधार लो, अपनी जगह ले आओ। फिर बहुत आसान है। क्योंकि जननेंद्रिय से ब्रह्मचर्य को ले आना बिल्कुल आसान है, कठिन नहीं। बहुत सीधी, सुगम, साधारण, सरल बात है। कोई अड़चन नहीं है। पेट की भूख हो, जरा भी अड़चन नहीं है। अड़चन तो तब खड़ी होती है जब कि भूख उन जगहों पर पहुंच जाती है जो भूख के लिए बने नहीं हैं। तब सब चीजें भीतर उलझ जाती हैं। तुम बाहर से साफ-सुथरे दिखाई पड़ते हो, कि तुम्हारे हाथ हाथ हैं, आंख आंख है, कान कान है, लेकिन भीतर सब गड़बड़ है, भीतर सब उलझा हुआ है और ग्रंथियां पड़ गई हैं। ये ग्रंथियां सुलझ जानी चाहिए। कैसे यह होगा?
एक-एक ग्रंथि को अपनी जगह लाने की कोशिश करो। भूख पेट की होनी चाहिए। घड़ी के कारण भूख नहीं लगनी चाहिए। जब भूख लगे तभी खाओ। कभी ऐसा हो कि आज भूख नहीं है तो मत खाओ। कोई आवश्यकता नहीं है। तुम उपवास भी करते हो, वह भी मन का होता है। वह भी पेट का नहीं होता; वह भी झूठा है। पेट का उपवास तब है जब पेट कह रहा है कि मुझे नहीं खाना, भूख नहीं है। बात खतम हो गई। मत खाओ। क्योंकि जब भूख ही नहीं है तो भोजन जहर हो जाएगा। और तब उलझन बढ़ती जाएगी।
और जब भूख नहीं होती तब अगर खाना हो तो स्वाद पर ध्यान देना पड़ता है, जो
कि मन का है, जो कि पेट का नहीं। पेट को स्वाद से क्या लेना-देना? पेट में कोई स्वाद का उपाय भी नहीं है। पेट को स्वाद का पता भी नहीं चलता है। स्वाद मन का है, पेट का कोई स्वाद ही नहीं है। और जब पेट में भूख न हो तो फिर तुम्हें झूठी भूख पैदा करने के लिए स्वाद का उपाय करना पड़ता है। तब तुम ऐसी चीजें खाना शुरू कर देते हो जिनका कोई भी मूल्य शरीर के लिए नहीं है। आइसक्रीम खा रहे हो; उसका कोई मूल्य शरीर के लिए नहीं है। नुकसानदायक है शरीर के लिए। लेकिन मन का स्वाद है। मिठाइयां खा रहे हो, जिनका शरीर के लिए कोई भी मूल्य नहीं है। घातक है। लेकिन मन के लिए मूल्य है। मन के लिए स्वाद है उनमें।
और ध्यान रखना, जब तुम स्वाद से खाओगे तो तुम ज्यादा खा जाओगे। क्योंकि तुम शरीर की सुनोगे ही नहीं। मन कहेगा, थोड़ा और खा लो। अभी क्या बिगड़ा है, अभी थोड़ा और खा सकते हो। अभी और थोड़ी जगह है। पेट से तो तुम पूछते ही नहीं। यह उलझाव है। यह ग्रंथि है।
तब ऐसा आदमी उपवास करे तो भी मन से ही करेगा। वह कहेगा कि अब ये पर्युषण
आ गए जैनियों के, अब उपवास करना है; कि रमजान के दिन आ गए मुसलमानों के, अब उपवास करना है। शरीर के लिए कोई रमजान है? कोई पर्युषण है? शरीर के लिए तो तब उपवास है जब शरीर रुग्ण अनुभव कर रहा है, खाने की इच्छा नहीं है। शरीर कह

रहा है कि नहीं कोई भूख है, तब शरीर का उपवास। वह उपवास शुद्ध है, वह कीमती है। उस उपवास से तुम्हें लाभ होगा। उस उपवास से तुम्हारी वास्तविक भूख जगेगी। लेकिन मन का उपवास झूठा है कि पर्युषण के दिन हैं, रमजान है, इसलिए उपवास कर रहे हैं। तुम शरीर को नुकसान पहुंचा रहे हो। तुमने खाकर भी शरीर को नुकसान पहुंचाया; तुम उपवास करके भी नुकसान पहुंचा रहे हो।
तुम नुकसान पहुंचाने में ऐसे कुशल हो गए हो कि तुम कुछ भी करो, तुम नुकसान पहुंचाते हो। भूख लगे तब भोजन, नींद आए तब नींद, प्यास लगे तब पानी। लेकिन कोका-कोला दिखाई पड़ गया, प्यास नहीं लगी है, और एक तरह की प्यास लगती है जो झूठी है। तुम्हें एक क्षण पहले तक कोई पता नहीं था कि प्यास लगी है। कोका-कोला दिखाई पड़ गया। पेट को कोका-कोला से क्या लेना-देना है? लेकिन मन को स्वाद आ गया, मन को अतीत की याद आ गई। पहले भी कोका-कोला पीया है, बड़ा स्वादिष्ट था। अब एक रस जगा, जो झूठा है। अब तुम एक ग्रंथि पैदा कर रहे हो। मन कहता है, कल संभोग किया था बड़ा सुख आया, आज भी संभोग करो। यह शरीर की भूख नहीं है।
शरीर की भूख एक-एक इंद्रिय की अलग-अलग है। तुम अगर इंद्रिय की भूख को सुनो तो तुम भोजन ठीक से कर पाओगे। और जो भोजन ठीक से कर पाता है उसके जीवन में उपवास की भी जगह हो जाती है। तुम अगर कामेंद्रिय की बात सुनोगे तो कभी- कभी संभोग जीवन में होगा, और बड़ा कीमती होगा। और उसका अनुभव बड़ा मूल्यवान होगा। और वही अनुभव तुम्हें ब्रह्मचर्य की तरफ ले जाएगा। धीरे-धीरे संभोग विदा हो जाएगा। अगर इंद्रियां सुलझी हों तो जीवन से वासना का विदा हो जाना बड़ा आसान है। अगर उलझी हों तो बिल्कुल असंभव है। तब इलाज तुम कहीं करते हो, बीमारी कहीं और। आपरेशन कहीं करते हो, ग्रंथि कहीं और। तब तुम्हारे आपरेशन से और सब उलझ जाता है।
लाओत्से कहता है, "इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो।"
पहले इसकी ग्रंथियों को खोलो। पहला काम है इसे खोल लेना; साफ सब चीजों
को अपनी जगह रख देना।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमारी थी और वह चौके में कुछ तैयार कर रहा था। भागा हुआ आया और उसने कहा कि मुझे नमक नहीं मिल रहा है। उसने कहा कि तुममें बुद्धि नहीं है। पत्नी ने कहा, सामने ही जिस डिब्बे में जीरा लिखा है उसी में तो नमक रखा है। आंख के सामने रखा है, और तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता! अब जिस डिब्बे में जीरा लिखा है उसमें नमक रखा है! इसमें मुल्ला नसरुद्दीन का कसूर भी क्या है बेचारे का? वह तो डिब्बा उसको भी दिखाई पड़ रहा है। लेकिन पत्नी के अपने कोड हैं। सभी स्त्रियों के होते हैं। उनके चौके में घुस कर आप ठीक पता नहीं लगा सकते कि मामला क्या है। कहां कौन सी चीज है, वह उनको ही पता है। और जहां-जहां जो-जो लिखा है, उस भूल में मत पड़ना, वह वहां हो नहीं सकता। लिखने से कुछ लेना-देना नहीं है।
और वैसी ही दशा तुम्हारी है। जहां जननेंद्रिय लिखी है प्रकृति ने, वहां जननेंद्रिय नहीं है। जहां प्रकृति ने पेट लिखा है, वहां पेट नहीं है। तुम एक अराजकता हो। तुम्हारे भीतर सब असंगत हो गया है, अस्तव्यस्त हो गया है।
तो लाओत्से कहता है, "ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो। इसके प्रकाश को धीमा करो; इसके शोरगुल को चुप करो"
एक प्रकाश है तुम्हारे भीतर जिसको हम बुद्धि कहें, तर्क कहें, विचार कहें। वह अतिशय है। तुम हर चीज को उसी प्रकाश से देख रहे हो। वह प्रकाश तुम्हारे अंधेपन का कारण हो गया है। लाओत्से कहता है, इस प्रकाश को धीमा करो। इतना ज्यादा विचार करने की जरूरत नहीं है। और पाया भी क्या विचार करके? इस दीए को इतना मत जलाओ। कभी-कभी इसे बुझा भी दो, और गहन अंधकार में हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में एक नए प्रकाश का उदय होगा जो बुद्धि का नहीं है, जो आत्मा का है। तुम्हारे जीवन में एक नया प्रकाश आएगा जो तर्क का नहीं है, जो श्रद्धा का है। एक नया प्रकाश आएगा जो विवाद का नहीं है, संवाद का है। वह धीमा होगा शुरू में। और अगर तुम यह बुद्धि का प्रकाश ही जलाए रखे तो उसका तुम्हें पता ही न चलेगा। तुम इसे हटाओ। तुम इसे पहले धीमा करो, फिर इसे तुम बिल्कुल बुझा दो।

"इसके शोरगुल को चुप करो।"
और तुम इसे विचार समझ रहे हो, यह सिर्फ शोरगुल है। तुम इसे विचार समझ रहे हो, यह सिर्फ बाजार है। इससे तुम कहीं भी नहीं जा रहे हो। तुमने व्यर्थ कचरा सब तरफ से इकट्ठा कर लिया है; वह कचरा तुम्हारे भीतर घूम रहा है। कोई विचार कहीं से, कोई विचार कहीं और से; कोई शास्त्र से, कोई अखबार से, कोई रेडियो से, कोई मित्र से, कोई दुश्मन से; सब तुमने इकट्ठा कर लिया है। वह सब तुम्हारे भीतर है। उसका शोरगुल मचा हुआ है। और तुम इस पर भरोसा किए हो। और यही भरोसा तुम्हें भटका रहा है।
निर्विचार ले जाता है; विचार भटकाता है। निर्विचार का एक संगीत है; विचार में केवल एक शोरगुल है।
लेकिन लोग शोरगुल के आदी हो जाते हैं। रेलवे स्टेशन पर जो लोग सोते हैं, अगर रेलगाड़ियां आती-जाती रहें तो उनकी नींद लगी रहती है। अगर उस दिन रेलगाड़ियां न आएं, हड़ताल हो जाए, तो उनको नींद नहीं आती, नींद टूट जाती है। जो लोग ज्यादा यात्रा करते हैं, जब तक रोज बदलाहट न हो तब तक उनको नींद नहीं आती। अपने घर में आकर दो-चार दिन शांति से रहें तो उनकी नींद खो जाती है। शोरगुल की भी आदत हो जाती है।
तुम पहाड़ पर जाओ, तुम्हें बड़ी बेचैनी लगेगी। शोरगुल याद आएगा बाजार का।
मैं एक नगर में जहां रहता था एक मित्र के बंगले में, वह थोड़ा गांव के बाहर था। मित्र मेरे कारण आने को उत्सुक थे, लेकिन पत्नी सख्त विरोध में थी। मैंने पूछा कि कारण क्या है? तो उसने कहा, यहां कोई न बाजार, न शोरगुल; सड़क पर भी जाकर खड़े हो जाओ तो कोई निकलता ही नहीं है, देखने को कुछ भी नहीं। वह जिंदगी भर बाजार में रही; वहां छज्जे पर खड़े होकर नीचे का सारा उपद्रव देखती रही। आधी रात तक शोरगुल जारी रहता। सुबह पांच-चार बजे फिर उपद्रव शुरू हो जाता। सामने ही सिनेमाघर, वहां निरंतर भीड़ लगी रहती। उस बंगले की शांति उसे बड़ी कठिन पड़ी। और जैसे ही मैंने वह गांव छोड़ा वे वापस अपने शहर के घर में चले गए। मुझे पीछे मिलने आए तो पत्नी बोली कि अब बड़ा सब ठीक है।
शोरगुल की आदत! शोरगुल न हो तो ऐसा लगता है कि मर गए, कुछ जीवन ही नहीं है। लोग बाजार में घूमने जाते हैं, लोग उपद्रव की तलाश करते हैं। स्वाद लग गया उपद्रव का। जब भी शांति होती है तभी उनको बेचैनी लगती है कि कुछ गड़बड़ हो रहा है। यह जो बुद्धि का शोरगुल है इसके भी तुम आदी हो गए हो। इस आदत को छोड़ो।
"यही रहस्यमयी एकता है।"
और क्या होगा फिर? अगर छिद्र हो जाएं बंद, द्वार हो जाएं बंद, धारों को घिस डाला जाए, ग्रंथियां खुल जाएं, बुद्धि का प्रकाश शांत हो जाए, भीतर चलता बाजार बंद हो जाए; क्या होगा? लाओत्से कहता है, एक रहस्यमयी एकता का जन्म होता है। तुम एक हो जाओगे। तुम्हारी अनेकता समाप्त हो जाएगी। तुम्हारे खंड-खंड सब जम कर अखंड हो जाएंगे। वही पाने योग्य है। वही एक सत्य है।
जो उसे जान लेता है वह कैसे उसे कहे? जो उसे जान लेता है वह बिना कहे कैसे रहे? वह स्वाद ही ऐसा है; कहा नहीं जा सकता और कहे बिना नहीं रहा जा सकता।
"तब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं।
जिसने इस रहस्यमयी एकता को उपलब्ध कर लिया वह सभी द्वंद्वों के पार हो गया। अब दो का कोई अर्थ न रहा। जो-जो चीजें दो हैं अब उसे नहीं छू सकतीं। अब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं। अब वह दोनों के मध्य में स्थिर हो गया जहां करुणा का वास है। करुणा न तो घृणा है, करुणा न तो प्रेम है। या करुणा में कुछ है जो प्रेम जैसा है और करुणा में कुछ है जो घृणा जैसा है।
इसे थोड़ा समझ लो। क्योंकि करुणा बड़ा रहस्यपूर्ण तत्व है जो उस एक के साथ आता है। करुणा में कुछ प्रेम जैसा है। क्योंकि करुणा तुम्हें रूपांतरित करना चाहेगी। करुणा तुम्हें आनंदित देखना चाहेगी। करुणा तुम्हें परम सुख की तरफ ले जाने में सहारा देना चाहेगी। करुणा, तुम धूप में थके-मांदे आए हो, तुम्हारे लिए छाया बनना चाहेगी। करुणा में कुछ प्रेम जैसा

है। लेकिन करुणा में कुछ घृणा जैसा भी है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो-जो गलत है करुणा उसे मिटाना चाहेगी, नष्ट करना चाहेगी। तुम जैसे हो, करुणा तुम्हें वैसा ही नहीं बचाना चाहेगी। प्रेम तुम्हें वैसा ही बचाना चाहता है; करुणा तुम्हें बदलना चाहेगी। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी धारों को घिस डालेगी, तोड़ेगी।
करुणा तुम्हारी मित्र है, अगर तुम्हारी अंतिम नियति को ख्याल में रखा जाए; करुणा तुम्हारी दुश्मन है, अगर तुम्हारी आज की वास्तविकता को समझा जाए। करुणा तुम्हें मिटाएगी और बनाएगी। करुणा तुम्हें मारेगी तुम जैसे हो, और जन्माएगी तुम्हें जैसे तुम होने चाहिए। तो करुणा में घृणा का तत्व भी होगा, विध्वंसक, और करुणा में प्रेम का तत्व भी होगा, सृजनात्मक। करुणा दोनों जैसी है और दोनों जैसी भी नहीं है। क्योंकि अगर तुम करुणावान व्यक्ति की न सुनो तो वह बेचैन न होगा, जैसा कि प्रेम बेचैन होता है। नहीं सुनी, तुम्हारी मर्जी। इससे कुछ करुणावान आदमी को तुम चिंतित न कर पाओगे। करुणा घृणा से भी भिन्न है। क्योंकि जिसको हम घृणा करते हैं, अगर उसको न मिटा पाएं, या न मिटाने के लिए रास्ते पर लगा पाएं, कुछ उपाय न कर पाएं, तो चिंता, बेचैनी पकड़ती है। लेकिन करुणावान व्यक्ति अगर तुम्हारे बुरे को, तुम्हारे व्यर्थ को न मिटा पाए, तो इससे चिंतित नहीं होता। तुम उसकी नींद को नहीं नष्ट कर सकते। करुणावान व्यक्ति घृणा की तरह ठंडा होगा और प्रेम की भांति सौहार्द से परिपूर्ण। एक शीतल प्रेम, जिसमें कोई उत्ताप नहीं है, जिसमें कोई ज्वर नहीं है। करुणा बड़ी रहस्यपूर्ण है, क्योंकि उसमें दोनों विरोध खो जाते हैं।
"तब प्रेम और घृणा नहीं छू सकतीं। लाभ और हानि उससे दूर रहती हैं।" क्योंकि अब कुछ पाने योग्य ही न रहा; लाभ कहां? सब पा लिया; हानि कैसी?
"मान और अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते।"
क्योंकि नजर अब अपने पर लग गई है। अब नजर दूसरे पर नहीं है। अब दूसरा क्या कहता है, इससे कोई अर्थ नहीं बनता। अब अपना होना इतना महत्वपूर्ण है, ऐसी गरिमा से भरा है कि तुम अपमान करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम सम्मान करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। अपमान करके तुम मुझसे कुछ छीन नहीं सकते, सम्मान करके तुम मुझे कुछ दे नहीं सकते। तो क्या अर्थ रहा तुम्हारे अपमान और सम्मान का? व्यक्ति पहली दफा उस परम धन का धनी हो जाता है जिसमें न कुछ घटाया जा सकता, न कुछ बढ़ाया जा सकता। यह आत्म-गरिमा है, जिसको लाओत्से कुलीनता कहता है। उसके भीतर से प्रकाश आता है। अब तुम्हारा मान-अपमान कुछ भी जोड़ता नहीं। अब वह परम स्वतंत्र है। अब उसकी निर्भरता नहीं है। अब तुम्हारे विचारों पर, मंतव्यों पर उसका कुछ भी फर्क नहीं पड़ता--ऐसा या वैसा, इधर या उधर, पक्ष या विपक्ष। सारी दुनिया साथ हो तो भी उसकी चाल वही होगी। और सारी दुनिया विरोध में हो जाए तो भी उसकी चाल वही होगी। उसकी चाल में कोई अंतर नहीं पड़ता।
"मान-अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिए वह संसार में सदा ही सम्मानित है।
और इसलिए उसका सम्मान अंतिम है। तुम उसका अपमान नहीं कर सकते; उसका सम्मान आखिरी है। क्योंकि तुम उसका सम्मान भी करके सम्मान नहीं कर सकते।
उसका सम्मान अब भीतरी है, उसकी प्रतिष्ठा आंतरिक है।
जो तुम पर निर्भर है उसकी प्रतिष्ठा तुम पर निर्भर है। तुम साथ दो तो
वह सम्राट है; तुम साथ न दो, सड़क का भिखारी है। तुम प्रशंसा करो तो वह गौरवान्वित है; तुम अपमान करो, गौरव भ्रष्ट धूल-धूसरित हो गया। आत्म-प्रतिष्ठावान व्यक्ति की स्थिति में तुम कुछ भी तो नहीं घटा-बढ़ा सकते। तुम प्रशंसा करो तो भी वह साक्षी है; तुम निंदा करो तो भी वह साक्षी है। तुम्हारी प्रशंसा से तुम्हीं को लाभ हो सकता है, तुम्हारी निंदा से तुम्हारी ही हानि हो सकती है। तुम्हारी गालियां तुम पर ही लौट आएंगी। तुम्हारे फूल भी तुम पर ही बरस जाएंगे।
इसलिए क्या तुम करते हो, सोच कर करना। ऐसे आदमी के साथ बड़ा खतरा है। क्योंकि जो भी तुम करोगे वही तुम्हें वापस मिल जाएगा। ऐसा आदमी तो ऐसा है जैसा कभी तुम किसी पहाड़ में गए हो। माथेरान की पहाड़ियों में एक जगह है, इको

प्वाइंट। तुम जो भी बोलो वही आवाज लौट कर वापस आ जाती है। तुम कुत्ते की तरह भौंको, सारी घाटी कुत्तों की आवाज लौटा कर तुम पर बरसा देती है। तुम कोई प्रेम का गीत गाओ, घाटी उसे दोहरा देती है। तुम ओंकार का मंत्र पढ़ो, घाटी उसे दोहरा देती है।
आत्म-प्रतिष्ठा को उपलब्ध हुआ व्यक्ति, ताओ को उपलब्ध हुआ व्यक्ति एक शून्य घाटी है। उसमें तुम जो भी ले जाओगे, वापस आ जाएगा। वह एक प्रतिध्वनि है। इसलिए उसे सोच कर देना। जो तुम पाना चाहते हो वही उसे देना। अगर गाली पाना चाहते हो, गाली दे देना; सम्मान पाना चाहते हो, सम्मान दे देना। उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता; तुम अपने को ही उसके बहाने कुछ दोगे; दे रहे हो। सब तुम्हीं पर वापस लौट आता है।
यह रहस्यमयी एकता को सोचो, समझो, कुछ कदम उठाओ। थोड़ी-थोड़ी धारों को घिसो। थोड़ा-थोड़ा बुद्धि का प्रकाश धीमा करो। थोड़े-थोड़े शांति में विराजमान होओ। बचाओ अपनी इंद्रियों की ऊर्जा को, ताकि छिद्र बंद हो जाएं। सजग बनो, ताकि भीतर उठती वासनाएं पहले ही क्षण में काट दी जाएं, उनकी जड़ें न जम पाएं। और तुम जानोगे। तभी मेरे शब्द तुम्हें साफ होंगे। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह शब्दों में कहा नहीं जा सकता है। जो तुम सुन रहे हो वह सिर्फ सुनने से समझा नहीं जा सकता है।
इसलिए तो लाओत्से कहता है, "जो जानता है वह बोलता नहीं; जो बोलता है वह जानता नहीं।"
आज इतना ही।

छियानबेवां प्रवचन

आदर्श रोग है ; सामान्य व स्वयं होना स्वास्थ्य

Chapter 57

The Art Of Government

Rule a kingdom by the Normal.
Fight a battle by (abnormal) tactics of surprise.
Win the world by doing nothing.
How do I know it is so?
Through this:
The more prohibitions there are, the poorer the people become.
The more sharp weapons there are, the greater the chaos in the state.
The more skills of technique, the more cunning things are produced.
The greater the number of statutes,
The greater the number of thieves and brigands.
Therefore the Sage says:
I do nothing and the people are reformed of themselves.
I love quietude and the people are righteous of themselves.
I deal in no business and the people grow rich by themselves.
I have no desires and the people are simple and honest by themselves.

अध्याय 57

शासन की कला

राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो।
युद्ध असामान्य, अचरज भरी युक्तियों से लड़ो।
संसार को बिना कुछ किए जीतो।
मैं कैसे जानता हूं कि यह ऐसा है?
इसके द्वाराः
जितने अधिक निषेध होते हैं, लोग उतने ही अधिक गरीब होते हैं।
जितने अधिक तेज शस्त्र होते हैं, राज्य में उतनी ही अधिक अराजकता होती है।
जितने अधिक तकनीकी कौशल होते हैं, उतने ही अधिक चतुराई के सामान बनते हैं।
जितने ही अधिक कानून होते हैं, उतने ही अधिक चोर और लुटेरे होते हैं।
इसलिए संत कहते हैंः
मैं कुछ नहीं करता हूं और लोग आप ही सुधर जाते हैं।
मैं मौन पसंद करता हूं और लोग आप ही पुण्यवान होते हैं।
मैं कोई व्यवसाय नहीं करता और लोग आप ही समृद्ध होते हैं।
मेरी कोई कामना नहीं और लोग आप ही सरल और ईमानदार हैं।

मनुष्य को जिस बड़ी से बड़ी बीमारी ने पकड़ा है और जिससे कोई छुटकारा होता दिखाई नहीं पड़ता, उस बीमारी का नाम है आदर्श।

समझना कठिन होगा, क्योंकि हम सब उसी बीमारी में दीक्षित किए गए हैं। और हम इस कुशलता से दीक्षित किए गए हैं कि आदर्श हमें बीमारी नहीं मालूम पड़ती, जीवन का लक्ष्य मालूम पड़ता है। लगता है वही परम ध्येय है। बीमारी ही स्वास्थ्य की तरह हमें समझाई गई है। और हमारे मन पूरी तरह से बीमारी से ही भर दिए गए हैं।

दूध पीने के साथ बच्चे को आदर्श का जहर दिया जा रहा है। आदर्श का अर्थ हैः तुम किसी और जैसे होने की कोशिश करना। एक बात भर आदर्श समझाता है कि तुम अपने जैसे मत होना, किसी और जैसे होना; कोई महावीर, कोई बुद्ध बनना। जैसे तुम अपने लिए पैदा नहीं हुए हो। जैसे यहां तुम इसलिए हो कि किसी और का अभिनय करो। जैसे यहां तुम उधार जीवन जीने को पैदा हुए हो। जैसे परमात्मा के द्वारा तुम तिरस्कृत हो। और कोई और व्यक्ति तुम्हारा आदर्श है जिसके अनुसार तुम्हें अपने को ढालना है।
बस फिर तुम्हारे जीवन में सब रुग्ण हो जाएगा। जिस व्यक्ति ने स्वयं होने को छोड़ा और कुछ और होने की कोशिश की, उसके रोगों का कोई अंत नहीं है। वह रोज नए रोग खड़े कर लेगा; क्योंकि उसकी पूरी जीवन-शैली ही रुग्ण है। व्यक्ति, समाज, राज्य, सभी आदर्श से अनुप्राणित होकर चल रहे हैं। इसलिए जगत एक पागलखाना हो गया; पृथ्वी रुग्णचित्त लोगों की भीड़ हो गई है।
लाओत्से कहता है, सामान्य को ध्यान में रखो, असामान्य को नहीं। और सामान्य के द्वारा अनुशासन हो, सामान्य के आधार पर अनुशासन हो। राज्य, समाज, व्यक्ति सामान्य को सूत्र मान कर चलें। सामान्य नियम हो, असामान्य नहीं।
इसे थोड़ा समझें। असामान्य व्यक्ति कथा के आधार बन जाते हैं, क्योंकि
वे विशिष्ट होते हैं। विशिष्ट यानी भिन्न। मैं विशिष्ट शब्द का उपयोग किसी आदर के कारण नहीं कर रहा हूं। सामान्य से भिन्न होते हैं।
मैं एक महाविद्यालय में अध्यापक था। नया-नया पहुंचा; एक शिक्षक से मेरा परिचय करवाया गया। शिक्षक की ऊंचाई साढ़े सात फीट थी। जिन मित्र ने परिचय करवाया उन्होंने बड़ी प्रशंसा की कि देखिए, ऊंचाई हो तो ऐसी हो! मैंने उन मित्र को देखा। सभी उनकी प्रशंसा करते रहे होंगे; शायद मैं पहला ही आदमी था जिसने उन्हें चेताया। मैंने कहा कि मैं समझता हूं कि आपकी ग्लैंड्स ठीक से काम नहीं कर रही हैं; यह ऊंचाई रोग है। आप चिकित्सक को दिखाएं, कहीं कोई गड़बड़ हो गई है। क्योंकि आपकी आंखें बाहर निकली पड़ रही हैं। आपका शरीर स्वस्थ नहीं मालूम पड़ता, शांत नहीं मालूम पड़ता; कोई बड़ी गहन बेचैनी भीतर है। और मैंने उनसे पूछा कि क्या अभी भी आपकी ऊंचाई बढ़ रही है?
उन्होंने कहा, हां। तो मैंने कहा, पूरा खतरा है। आप चिकित्सक को दिखाएं, और इसको गौरव मत मानें।
उन्हें कुछ मेरी बात पर भरोसा आया, क्योंकि बेचैनी तो उनको भी अनुभव होती थी। प्रशंसा के कारण वे कभी किसी को बेचैनी कहते नहीं थे। चिकित्सक को दिखाया तो पाया कि वे तो बड़े महारोग से ग्रस्त हैं जिसका कोई इलाज नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का ऊंचाई का मापदंड पहले वीर्याणु में छिपा होता है। उसमें ब्लू-प्रिंट छिपा होता है कि वह छह फीट ऊंचा होगा, कि पांच फीट ऊंचा होगा। उतनी ऊंचाई, जैसे ही व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ होता है, पूरी हो जाती है। उसके बाद ऊंचाई का बढ़ना खतरनाक है। और उसके बाद ऊंचाई का बढ़ता ही जाना, और उनकी उम्र अब तो कोई अट्ठाइस वर्ष थी, अभी भी ऊंचाई बढ़ रही है तो उसका अर्थ ही यह है कि ब्लू-प्रिंट कहीं खो गया, कोई प्राकृतिक भूल हो गई, और सेल को पता नहीं है कि अब कहां रोकना; रुकने की व्यवस्था भीतर नहीं है।
जिस दिन से वे चिकित्सकों के पास गए उस दिन से उनकी अकड़ चली गई। न केवल अकड़ चली गई, बल्कि उलटी हालत हो गई। वे अब झुक कर चलने लगे और छिपाने लगे ऊंचाई को।
मैंने कहा कि अब यह दूसरा रोग मत पालो। पहला रोग यह था कि तुम अकड़े हुए
थे कि बड़ी ऊंचाई है तुम्हारी, तुम जैसे मापदंड थे। और तुम्हारे आस-पास सब बौने मालूम पड़ते थे। और तुम प्रत्येक को एक हीनता की ग्रंथि से भर रहे थे। अब बीमारी उलटी पकड़ रहे हो तुम। अब इसका इलाज करो, लेकिन अब दूसरी हीनता मत पकड़ो कि तुम झुक कर चलो, कि तुम छिपाओ।
जिन व्यक्तियों को मैं विशिष्ट कहता हूं, इसी अर्थ में कह रहा हूं। कहीं इस जीवन का सामान्य सूत्र खो गया है। तुम कितना ही उनका सम्मान करो, कहीं बुनियादी भूल है। उसके कारण वे, जीवन की जो सहज व्यवस्था है, उससे भिन्न हो गए हैं। समझो। चाहे वे कितने ही बड़े व्यक्ति हों, इससे कोई भेद

नहीं पड़ता। क्योंकि लाओत्से या मेरे लिए बड़े से बड़ा व्यक्ति वही है जो अति सामान्य हो जाए। क्योंकि सामान्य में छिपा है स्वभाव। सत्य सार्वभौम है। सत्य कोई विशिष्टता नहीं है। सत्य तो कण-कण में छिपा है। वह जो स्वभाव के अनुसार बहने की व्यवस्था है वही सत्य है। तो जो अति सामान्य है, जिसमें तुम कुछ भी विशिष्ट न खोज पाओगे, वही स्वास्थ्य का मापदंड है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं है।
धृतराष्ट्र की कथा में उल्लेख है कि उन्होंने जिस स्त्री से विवाह किया, गांधारी से--तो धृतराष्ट्र तो अंधे थे--गांधारी ने पति के प्रेम में अपनी आंखें बंद कर लीं और जीवन भर आंखें न खोलीं, पट्टी बांधे रही। गांधारी का उल्लेख किया जाता है कि स्त्री हो तो ऐसी हो।
एक आदमी अंधा है, उसकी पत्नी के पास चार आंखें होनी चाहिए। न कि अपनी और
दो आंख बंद कर लेना। पति के लिए जरूरत थी पत्नी की जो कि आंख वाली हो। पति को आंख की कमी है; आंख की कमी पूर्ति होनी थी। लेकिन गांधारी को कहानियां कहती हैं, प्रेम में उसने अपनी दोनों आंखें भी करीब-करीब फोड़ लीं, क्योंकि कभी खोलीं नहीं। बड़ी प्रशंसा है शास्त्रों में गांधारी की कि पत्नी हो तो गांधारी जैसी।
यह पत्नी थोड़ी सी विशिष्ट है, लेकिन स्वाभाविक नहीं। कथा इसके आधार पर अच्छी बनेगी, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य के आधार पर कोई कथा नहीं बन सकती। इसलिए पुराणों में तो कथा ही उनकी लिखी होती है जो कुछ स्वभाव से भिन्न, अन्यथा हो गए होते हैं। स्वाभाविक आदमी की क्या कथा?
एक धोबी ने कह दिया कि सीता के आचरण पर शक है और राम ने उसे निकाल कर फेंक दिया। अब राम जो हैं वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। पति हो तो ऐसा!
अगर सभी लोग ऐसा करें तो एक भी पत्नी घर में न रह पाएगी। क्योंकि धोबियों की कोई कमी है? बिना किसी विचार के, बिना पूछताछ के, बिना सीता को कोई न्याय दिए सीता को जंगल में फिंकवा दिया। यह अहंकार पति का हो भला, लेकिन यह कोई स्वाभाविक घटना नहीं है। इतने हजार-हजार लोग हैं, हजार-हजार उनके मंतव्य हैं। उनके मंतव्यों के आधार पर अगर कोई जीवन को इस तरह छिन्न-भिन्न करने लगे तो यह जीवन का कोई सामान्य मापदंड नहीं बन सकता। इस आदमी के आस-पास कहानी अच्छी बन सकती है, यह कथा का पात्र होगा, लेकिन यह जीवन का आदर्श नहीं हो सकता।
महावीर नग्न हो गए। सर्दी हो, धूप हो, छाया हो, गर्मी हो, नग्न खड़े हैं। इनको आधार नहीं बनाया जा सकता। इनको आधार मान कर अगर लोग नग्न खड़े हो जाएं तो आत्मा को पहचान पाएंगे इसमें तो संदेह है, शरीर को जरूर खो देंगे। लेकिन महावीर के आस-पास कथा गढ़ने की बड़ी सुविधा है। विशिष्ट के पास कथा निर्मित होती है, ध्यान रखना। और कथा को तुम मनोरंजन की तरह लेना, आदर्श मत बना लेना। उसको पढ़ना, समझना। सुंदर है। लेकिन साहित्य की कृति है, जीवन का आधार नहीं
बुद्ध पत्नी को छोड़ कर चले गए, घर-द्वार छोड़ जंगल में भाग गए। सभी लोग घर-द्वार छोड़ कर जंगल में भाग जाएं तो बुद्धों का पैदा होना भी बंद हो जाएगा। जीवन उससे गरिमा को उपलब्ध न होगा। जीवन की सारी गरिमा खो जाएगी। और बुद्ध से इस संसार में फूल न खिलेंगे फिर, संसार मरुस्थल जैसा हो जाएगा। उदासी-उदासी के मरुस्थल फैल जाएंगे। दुख और रुदन के सिवाय यहां कुछ भी दिखाई न पड़ेगा।
पर बुद्ध की कथा में इस घटना से बड़ा कुतूहल आ जाता है। और बुद्ध की कथा
एक अनूठापन ले लेती है। अनूठे लोग कथाओं के लिए ठीक हैं; जीवन के लिए तो सामान्य ही सूत्र है। जब तुम जीवन को बनाना चाहो तो कभी किसी अनूठी बात के प्रभाव में जीवन को मत बनाना। अन्यथा तुम रुग्ण होओगे; तुम परेशान होओगे। और फिर यह भी हो सकता है कि जो महावीर को हुआ, जो बुद्ध को हुआ, जो राम को हुआ, वह उनके लिए स्वाभाविक रहा हो। तुम अपने स्वभाव की परख करना। और तुम अपने स्वभाव को ही अपने जीवन का मापदंड बनाना। अगर तुमने आदर्श को अपने जीवन का मापदंड बनाया तो तुम एक कारागृह में जीने लगोगे। वह आदर्श तो कभी पूरा न होगा, क्योंकि स्वभाव के प्रतिकूल कुछ भी पूरा नहीं हो सकता। न पूरा होने के कारण तुम हमेशा दंश से पीड़ित रहोगे, तुम हमेशा अपने को हीन मानते

रहोगे कि यह आदर्श पूरा नहीं हो रहा, मुझ जैसा क्षुद्र कौन! पापी! पतित! तुम पापी-पतित अपने आदर्श के कारण हो रहे हो; तुम पापी-पतित हो नहीं। तुम्हें पापी और पतित होने का ख्याल इसलिए पैदा हो रहा है कि तुमने एक आदर्श बना लिया जो पूरा नहीं होता। तुमने कसम ले ली ब्रह्मचर्य की जो पूरी नहीं होती। अब तुम पापी हो गए। न ली होती कसम तो? और न तुमने ब्रह्मचर्य का आदर्श बनाया होता तो? तो तुम पापी होते?
एक और ब्रह्मचर्य है जो कामवासना की स्वाभाविकता में से खिलता है, किसी आदर्श के कारण नहीं; अपने जीवन को जीने की प्रक्रिया से ही निकलता है, किसी दूसरे के जीवन के पीछे चलने के कारण नहीं। अपने ही जीवन के आविर्भाव में एक क्षण आता है। कामवासना तुम्हारी है, ब्रह्मचर्य भी तुम्हारा ही होगा तभी सत्य होगा। तुम दूसरे से ब्रह्मचर्य सीखते हो; कामवासना तुमने किससे सीखी है? तुम कामवासना सीखने पापियों के पास नहीं जाते तो ब्रह्मचर्य सीखने के लिए पुण्यात्माओं के पास क्यों जाते हो? जब कामवासना प्रकृति से मिली है तो तुम कामवासना की प्रकृति को ही समझो, कामवासना की प्रकृति को बोधपूर्वक जीओ। और उसी से आने दो तुम्हारे ब्रह्मचर्य को। तभी तुम्हारे जीवन में वास्तविक फूल आएगा।
आदर्श थोथे हैं, क्योंकि उधार हैं। और आदर्श तुम बाहर से थोपोगे, भीतर
की समझ से नहीं निकलेंगे। वे तुम्हारे भीतर के प्रकाश से न आएंगे, बाहर के संस्कार से आएंगे। वे नैतिक होंगे, धार्मिक न होंगे।
अंतस को खिलने दो। अड़चनें तो हैं ही। पर तुम्हारी अड़चनें कोई दूसरा थोड़े ही चलेगा; तुम्हीं को चलना होगा। सपना देखना एक बात है। महावीर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होते हैं, तो कामवासना की अड़चनें महावीर ने झेली हैं। ऐसे ही मुफ्त कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता। तुम बिना यात्रा किए घर बैठे महावीर का ब्रह्मचर्य पाना चाहते हो। तो महावीर की यात्रा कौन करेगा? तुम फूल तो चाहते हो; बीज बोने की, वृक्ष को सम्हालने की कठिनाई को नहीं झेलना चाहते। तब तुम्हारे फूल प्लास्टिक के होंगे।
सभी आदर्श प्लास्टिक के हैं, कागजी हैं, असली नहीं हैं। असली तो सदा स्वभाव से आता है। असली तो सदा सामान्य से आता है। नकली सदा आदर्श से आता है, जो कि झूठा है, जो कि दूर आकाश में तुमने अपनी कामनाओं के आधार पर बनाया है।
अब यह भी समझ लेना जरूरी हैः आवश्यक नहीं है कि तुम जैसा महावीर को कहते हो वैसे वे रहे हों। न यह आवश्यक है कि तुमने राम की जो प्रतिमा गढ़ी है वैसी राम की रही हो। तब जाल और गहरा है। पहले तो तुम राम के जीवन में आदर्श को थोप देते हो--जो कि रहा हो, न रहा हो। पहले तो तुम महावीर के आस-पास प्रकाश की कल्पना कर लेते हो--जो कि रहा हो, न रहा हो। फिर तुम उसको आदर्श बना कर उसका अनुसरण करते हो। और जब तुम उसका अनुसरण करने लगते हो तो पहले तुमने ही तो आरोपित किया। तुम्हें क्या पता कि महावीर कैसे व्यक्ति हैं? तुम शास्त्रों से पढ़ते हो। शास्त्र प्रशंसक लिखते हैं, प्रशंसक अतिशयोक्ति करते हैं, प्रशंसक भावावेश में होते हैं। जो नहीं होता वह भी उन्हें दिखाई पड़ता है। प्रशंसक और निंदक, दो का भरोसा कभी मत करना। दोनों ही अंधे होते हैं। और दो के अलावा तीसरा आदमी तो खोजना मुश्किल है। और तीसरा आदमी अगर होगा तो वह कोई महावीर का चरित्र लिखने जाएगा? वह अपना चरित्र निर्मित करेगा। क्योंकि तीसरा आदमी जो इतना तटस्थ होगा कि न प्रशंसा न निंदा, वह किसकी फिक्र करेगा? अपने जीवन को वह क्यों गंवाएगा किसी दूसरे के जीवन को लिखने में? वह अपने को ही लिखेगा। उसकी कथा उसकी भीतरी कथा होगी।
निंदक को अगर सुनो तो जीसस सूली पर लटकाने जैसे योग्य हैं; प्रशंसक को सुनो तो वे ईश्वर के पुत्र हैं। दोनों अतिशय कर रहे हैं। और दोनों अतिशय को खींचे चले जा रहे हैं। निंदक और प्रशंसक में होड़ लगी है। और दोनों खींच रहे हैं अति की ओर। जिन्होंने जीसस को सूली दी उन्होंने दो चोरों को भी साथ में सूली दी, सिर्फ यह बताने को कि हम चोरों से ज्यादा हैसियत नहीं मानते जीसस की। और प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को माफ करने का अधिकार था गवर्नर जनरल को, क्योंकि यहूदियों का मुल्क इजरायल रोमन साम्राज्य के अंतर्गत था। तो जो

रोमन वाइसराय था उसको हक था प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को मुक्त करने का। चार व्यक्तियों को फांसी दी जानी थी इस वर्ष, एक जीसस और तीन चोर। तो उसने पूछा लोगों से कि इन चार में से तुम किसकी मुक्ति चाहते हो? तो उन्होंने एक चोर चुना जिसकी मुक्ति मांगी, जीसस की मुक्ति नहीं।
वाइसराय थोड़ा जीसस के प्रति सदय था, क्योंकि वाइसराय को यहूदियों की निंदा से कुछ लेना-देना न था। वह ज्यादा निष्पक्ष आदमी था, बाहर का आदमी था। उसका मन था कि किसी तरह जीसस छूट जाए। यह सीधा-सरल आदमी मालूम पड़ता है; नाहक फंस गया है। इसके प्रशंसक इसको परमात्मा का बेटा कह रहे हैं; वैसा भी यह नहीं है। इसके दुश्मन इसको कह रहे हैं कि यह महापापी है, इससे देश का विनाश हो जाएगा; वैसा भी नहीं है। सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त का आदमी है; कुछ कीमती बातें कहता है। कुछ किसी का उपद्रव भी नहीं कर रहा है। उसके भीतर आकांक्षा थी, यह छूट जाए। उसने तीन बार, बार-बार पूछा कि तुम फिर से सोच लो कि तुम उस चोर को छोड़ना चाहते हो या जीसस को? तीनों बार भीड़ ने हाथ उठा कर चिल्लाया कि जीसस को हम मारना चाहते हैं; चोर को हम छोड़ने को राजी हैं।
यह तो विरोधी था जो यहां तक खींच लिया बात को। और पक्ष में लोग थे जिन्होंने ईश्वर का बेटा जीसस को घोषित किया। न केवल बेटा, बल्कि एकमात्र बेटा! ताकि कोई दूसरे बेटे का दावा भी न कर सके। निंदक और प्रशंसक दोनों ही अति पर चले जाते हैं। मध्य में कहीं सत्य होता है, जो कि छिप ही जाता है।
तो पक्का पता भी नहीं है कि तुम पहले आदर्श थोप देते हो, फिर उस आदर्श
को मान कर तुम अपने अनुसरण करना शुरू कर देते हो। तुम्हारे आदर्श तुम्हारी आकांक्षाओं की सूचना देते हैं, सत्यों की नहीं। तुम चाहोगे कि ऐसा हो सके। जो तुम चाहते हो, तुम आरोपित कर लेते हो किसी व्यक्ति में। आरोपित इसलिए कर लेते हो कि अगर यह किसी व्यक्ति में कभी हुआ ही नहीं तो फिर तुम भरोसा न कर सकोगे।
तो अगर तुम ब्रह्मचर्य चाहते हो, जो कि कौन नहीं चाहता? क्योंकि जो भी काम की पीड़ा को झेलता है उसके मन में ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। जो काम की व्यर्थता को झेलता है उसके मन में ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। उसे लगता है, कब आएगी वह घड़ी, परम सौभाग्य का क्षण, जब मेरी ऊर्जा मुझमें ही बसेगी और मैं व्यर्थ उसे फेंकता न फिरूंगा। कब होगा वह मधुर क्षण जीवन में जब दूसरे की मुझे कोई जरूरत न रह जाएगी और मैं अपनी परम शुद्धि में, अपने एकांत में तृप्त हो सकूंगा? स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हें भरोसा कैसे आएगा कि यह हो भी सकता है? यह आकांक्षा है। लेकिन यह हो कैसे सकता है? अपने आपको अगर तुम जांचोगे तब तो तुमको भरोसा नहीं आ सकता। क्योंकि तुम जानते हो, कितनी बार तुमने तय किया और कितनी बार तोड़ा। कितनी बार व्रत लिया और कितनी बार उल्लंघन किया। कितनी बार निर्णय लिया और निर्णय तुम ले भी नहीं पाते हो कि निर्णय टूट जाता है, एक दिन भी तो नहीं टिकता। अगर तुम गौर से जांचो, तो इधर तुम निर्णय ले रहे हो और उसी वक्त मन का दूसरा कोना वासना की तैयारी कर रहा है। एक क्षण भी, जब तुम निर्णय ले रहे हो उस क्षण में भी, तुम ईमानदार नहीं हो। अगर तुम पूरा मन देखोगे तो तुम पाओगे, तुम क्या कर रहे हो! भीतर तो तुम्हारे मन में तैयारी हो रही है वासना की, और ब्रह्मचर्य का तुम निर्णय ले रहे हो। तो तुम अपने पर तो भरोसा कर नहीं सकते, और ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। फिर क्या करो?
फिर यही करो कि तुम किसी में मान लो कि वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया है। और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होकर तुम जो-जो कल्पना करते हो अपने लिए वह-वह सब कल्पनाएं कर लो। महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर के शरीर से पसीने की दुर्गंध नहीं उठती, सुगंध आती है। ये तुम्हारी कल्पनाएं हैं। पसीना पसीना है। पसीना जिस नियम से बहता है वह नियम महावीर और गैर-महावीर में फर्क नहीं करता। महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर मल-मूत्र विसर्जन नहीं करते। क्योंकि मल-मूत्र विसर्जन करने जैसी क्षुद्र बात महावीर करेंगे, यह सोच कर ही मन को धक्का लगता है। तुम्हीं सोचो कि बुद्ध और महावीर टॉयलेट पर बैठे हैं। मन इनकार करता है कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता। वे तो बोधिवृक्ष के नीचे ही ठीक मालूम पड़ते हैं।

तुम भी चाहोगे कि तुम्हारे जीवन से मल-मूत्र बिल्कुल विदा हो जाए। तुम परिशुद्ध, खालिस सोना हो जाओ। यह आकांक्षा है। इस आकांक्षा को पहले तुम आरोपित करते हो। वर्तमान में करोगे तो मुश्किल पड़ेगी। क्योंकि वर्तमान का महावीर तो मल-मूत्र विसर्जन करेगा। इसलिए अतीत के महावीर सुखद हैं। वे चिल्ला कर कह भी नहीं सकते कि क्या कर रहे हो! और तुम उनको कभी उलटा काम करते हुए पकड़ भी न पाओगे। तुम जो कहोगे, अतीत पर थुप जाता है। इसलिए तो मरे हुए गुरु ज्यादा आदृत हो जाते हैं जीवित गुरुओं की बजाय। जैसे ही गुरु मरता है कि कथा रचनी शुरू हो जाती है। तुम्हारी सब आकांक्षाएं हमला कर देती हैं गुरु पर। जो-जो मानवीय था, तुम सब काट देते हो। जो-जो सामान्य था, तुम सब अलग कर देते हो। जो-जो असामान्य तुम्हारे सपनों में उठता है, वह सब तुम आरोपित कर देते हो।
अब ये सपने हैं और झूठे हैं। और अगर इनको तुमने आदर्श मान लिया तो तुम सोच लो कि तुम हमेशा ही अतृप्त रहोगे। जब तक पसीने में बदबू आएगी और जब तक तुम्हें मल-मूत्र विसर्जन करना पड़ेगा, तब तक तुम जानते हो कि तुम पापी हो। और यह तृप्ति कभी होने वाली नहीं है। और अगर इसकी दौड़ में तुम लग गए तो तुम एक ऐसी रुग्णता की तरफ जा रहे हो जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता और कोई औषधि नहीं है। यह तो कैंसर से भी ज्यादा घातक बीमारी है आदर्श की। कैंसर का मारा बच जाए, आदर्श का मारा नहीं बचता।
इसे समझने के लिए बड़ी समझ चाहिए। यह पूरा का पूरा जाल है तुम्हारे मन का। तुम महिमा-पुरुषों को उठाते चले जाते हो आकाश में; उस जगह रख देते हो जहां वे मनुष्यता के बिल्कुल पार हैं। मैं तुमसे कहता हूं कि सभी महिमावान पुरुष तुम्हारे जैसे ही मनुष्य थे। उनमें वह सब था जो तुममें है; सिर्फ उन्होंने, तुममें जो सब है, उसका आयोजन भर बदला था। वीणा तुम्हारे पास भी है। अंगुलियां तुम्हारे पास भी हैं। उन्होंने वीणा और अंगुली को जोड़ दिया था और उनकी अंगुलियां सध गई थीं और वीणा में संगीत उठ गया था। तुम भी छेड़ते हो तो सिर्फ विसंगीत उठता है और मुहल्ले-पड़ोस के लोग लड़ने-झगड़ने को खड़े हो जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा एक दिन कि कैसा अभ्यास चल रहा है हारमोनियम पर?
उसने कहा, फुरसत कहां! कार में ही उलझा रहता हूं।
तुम्हें कार किसने दे दी? कहां से कार मिल गई?
उसने कहा कि मुहल्ले वालों ने हारमोनियम के बदले में कार दी है।
तुम एक हारमोनियम ले आओ और बजाने-पीटने लगो, मुहल्ले वाले देंगे ही। आखिर उनको अपनी सुख-शांति की थोड़ी चिंता... ।
सिर्फ आयोजन बदलता है। महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण, ठीक तुम जैसे व्यक्ति हैं। तुम्हारे पास जितना है उतना ही उनके पास है; रत्ती भर ज्यादा नहीं। इस जगत में अन्याय है भी नहीं; रत्ती भर ज्यादा हो भी नहीं सकता। यहां न किसी को कम मिलता है, न ज्यादा; बराबर मिलता है। फर्क इतना है कि कोई अपने आटे और पानी को मिला कर आग पर सेंक कर रोटी बना लेता है और तृप्त हो जाता है। और तुम बैठे हो, आग जल रही है, उससे पसीना बह रहा है। आटा पड़ा है, वह सड़ रहा है, और तुम भूखे हो। पानी भरा है, सब मौजूद है। मौजूद सब है पूरा का पूरा, उसका सरंजाम, संगीत, उसका समन्वय बिठाने का फर्क है।
महावीर जब तीर्थंकर हो जाते हैं तब भी वे तुम्हारे ही जैसे हैं। तीर्थंकर तो संगीत है जो उन्होंने पैदा कर लिया, उसी इंतजाम से जो तुम्हारे पास भी है। जीसस जब ईश्वर जैसे हो जाते हैं तो वह संगीत है। जीसस में तुमसे जरा भी भेद नहीं है। भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, मल-मूत्र भी--सब कुछ वही है। लेकिन उस इंतजाम में से अब एक नई सुवास उठ रही है, एक नया संगीत उठ रहा है, जो तुममें से भी उठ सकता है।
लेकिन तुम दीन हो अपनी ही नासमझी से। तुमने अपने प्राणों की पूरी व्यवस्था को नहीं पहचाना, और इन विभिन्न विपरीत जाते स्वरों को कैसे बिठाएं एक राग में, वह तुमने न सीखा।
एक नर्तक को देखो। उसके पास शरीर तुम्हारे ही जैसा है, लेकिन नृत्य के क्षणों में नर्तक ऐसा लगता है जैसे वेटलेस, भाररहित हो गया। उसकी छलांग,

उसकी कूद, उसकी भाव-भंगिमाएं किसी अलौकिक को उतार लाती हैं। एक समां बंध जाता है। तुम विमुग्ध हो जाते हो, क्षण भर को तुम भूल ही जाते हो कि तुम हो भी। तुम्हारे ही जैसा शरीर है, तुम्हारे ही जैसे अंग हैं, सब कुछ तुम्हारे जैसा है; लेकिन इसी शरीर से एक कला को जन्मा लिया, एक नया कौशल पैदा हुआ। वह कौशल सब कुछ बदल देता है। शरीर को एक नया रूप दे देता है। शरीर को एक नया ढंग दे देता है। जीवन की एक नई शैली का जन्म हो जाता है।
और यह जो जीवन की नई शैली है यह आदर्श को स्थापित करने से कभी भी नहीं फलित होगी। आदर्श झूठे हैं। तुम्हारी मनोकांक्षाएं हैं, मृग-मरीचिकाएं हैं। दिखाई पड़ते हैं दूर से मरुस्थल में सरोवर, जब तुम पास जाते हो तब वहां कुछ भी नहीं है। सरोवर और आगे हट गया। क्षितिज की भांति हैं तुम्हारे आदर्श। तुम इन्हें कभी पा न सकोगे। जैसे जमीन और आकाश कहीं भी मिलते नहीं, सिर्फ मिलते मालूम होते हैं, ऐसे हैं तुम्हारे आदर्श। कभी मिलते नहीं, बस ऐसा लगता है कि मिल रहे हैं, मिल रहे हैं।
सामान्य को स्वर बनाओ, सहज को पहचानो; असहज से बचो। विशिष्ट को मत अपने ऊपर थोपो, सामान्य को उघाड़ो। जो तुम्हारे भीतर है उसे विकसित करो। और किसी ढांचे में नहीं। क्योंकि ढांचा विकास नहीं देता, बंधन देता है। तुम तुम्हारे जैसे ही होओगे। जब तुम खिलोगे अपनी परिपूर्णता में तो तुम न महावीर जैसे होओगे, न कृष्ण जैसे, न मेरे जैसे, न किसी और जैसे। जब तुम खिलोगे तो तुम्हारा फूल अनूठा होगा, तुम्हारे जैसा ही होगा। आनंद वही होगा, जो महावीर का है, बुद्ध का है, लाओत्से का है; भीतर की शांति वही होगी। लेकिन तुम्हारे जीवन की रूप-शैली बिल्कुल भिन्न होगी।
लाओत्से कहता है, "राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो।"
समाज को सामान्य से सम्हालो; आदर्श मत थोपो। इसलिए जितना आदर्शवादी समाज होता है उतना ही भ्रष्ट हो जाता है। भारत इसका प्रमाण है। हमने जितने आदर्श थोपे हैं, दुनिया में कभी किसी ने नहीं थोपे। और इससे ज्यादा भ्रष्ट समाज तुम कहीं खोज पाओगे?
और बड़े मजे की बात और बड़ा दुष्ट-चक्र है। बड़ा दुष्ट-चक्र है और वह दुष्ट-चक्र यह है कि आदर्शवादी जब भी देखता है कि समाज भ्रष्ट हो रहा है तो वह और नए आदर्शों की तजवीज करता है। वह कहता है, आदर्श नष्ट हो रहे हैं। और बड़े आदर्श लाओ। और सख्ती से आरोपित करो आदर्श। और नियम बनाओ। और नीति खोजो। आचरण को शिथिल मत छोड़ो, अनुशासन दो। और उस बेचारे को पता नहीं कि वही बीमारी की जड़ है--उसके आदर्श ही। जब आदर्श को टूटते देखता है वह तो और आदर्श ले आता है। और आदर्श के साथ और भ्रष्टाचार आता है।
भारत के भ्रष्टाचार में गांधी का जितना हाथ है उतना किसी का भी नहीं। इसे कोई कहता नहीं; कोई कहेगा भी नहीं। इसे कहने के लिए लाओत्से की समझ चाहिए। क्योंकि गांधी ने ऐसे-ऐसे आदर्श थोपने की कोशिश की जो संभव नहीं हैं। जिनको गांधी चाहें तो अपने आश्रम में भी नहीं थोप सकते, इतने बड़े समाज में तो थोपने का सवाल क्या है!
गांधी अचौर्य को आदर्श मानते हैं कि चोरी बिल्कुल न हो।
यह असंभव है। क्योंकि जब तक संपदा है तब तक चोरी होगी। संपदा मिट जाए
तो चोरी मिट सकती है। क्योंकि चोरी सिर्फ इस बात की कोशिश है कि किसी के पास ज्यादा है और किसी के पास कम है। और जिसके पास ज्यादा है और जिसके पास कम है, उनके बीच चोरी पैदा होती है।
तुम्हारा नौकर चोरी करता है। तुम सोचते हो, शायद इसलिए चोरी करता है कि कोई आदर्श नहीं रहे। तो तुम गलती में हो। उसके पास कम है; तुम्हारे पास ज्यादा है। और जीवन का एक सहज नियम है कि चीजों को एक तल पर ले आओ। जैसे पानी है। तुम घड़ा भर लो नदी से, फिर तल बराबर हो जाता है; तुम घड़ा भर डाल दो नदी में, फिर तल बराबर हो जाता है। नदी का जल अपना तल समान रखता है--कितना ही निकालो, कितना ही डालो। और समाज के जीवन का तल इतना भिन्न है कि चोरी अनिवार्य है। अगर तुम अचौर्य को लक्ष्य बना लोगे तो कुछ हल न होगा; सिर्फ चोर और बढ़ जाएंगे।
अगर चोरी को तुम समझने की कोशिश करो कि चोरी इसलिए है--कोई पाप नहीं है चोरी--चोरी इसलिए है, क्योंकि किन्हीं के पास बहुत है और किन्हीं के पास ना-

कुछ है। यह फासला इतना ज्यादा है कि इस फासले में चोरी होगी, तुम कितना ही रोको। तुम जितना रोकोगे, चोर नए उपाय खोजेगा। तो असली सवाल फासले को कम करने का है। चोर को मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। फासला अस्वाभाविक है। इसे हम उदाहरण से समझें। स्मगलर या तस्करी नया शब्द है। आज से पचास साल पहले कोई भी नहीं जानता था, स्मगलर कौन है? तस्कर कौन है? लेकिन अभी तस्कर सबसे बड़ा पापी है, सबसे बड़ा चोर है। तस्करी क्या है? चीन में एक दाम है सोने का, भारत में दूसरा दाम है, पाकिस्तान में तीसरा दाम है। सोने का दाम एक होने की कोशिश करता है, जैसे पानी एक होने की कोशिश करता है। सोना एक ही दाम का हो सकता है, अगर दुनिया में कोई व्यर्थ की दीवारें न हों; राज्य बंटे न हों तो सोने का एक ही दाम होगा। क्योंकि जहां खड्डा होगा वहां सोना भागेगा, जैसे पानी भागता है खड्डे की तरफ। अगर इस मुल्क में सोने का दाम ज्यादा है और पाकिस्तान में कम है तो पाकिस्तान से सोना भारत की तरफ दौड़ेगा। यहां खड्डा है। जैसे ही खड्डा भर जाएगा, दाम बराबर हो जाएगा; सोने की दौड़ बंद हो जाएगी। तस्कर कौन है?
तस्कर कानून के खिलाफ है, सोने के पक्ष में है। वह सोने को सहायता दे रहा है, इधर से उधर ला रहा है। वह स्वभाव को सम्हालने की कोशिश कर रहा है। कानून स्वभाव के विपरीत खड़ा है। पूरी राज्य की सत्ता खड़ी है कि नहीं, सोने का जो दाम हमारे मुल्क में है हम उसको जारी रखेंगे। दूसरे मुल्क में अगर कम है तो वह उनकी बात, लेकिन हम अपने मुल्क का दाम न गिरने देंगे। तस्कर बेचारा कुछ भी नहीं कर रहा है, तस्कर इतना ही कर रहा है कि वह जीवन की जो सामान्य व्यवस्था है उसमें सहायता पहुंचा रहा है। लेकिन वह पापी है। होना यह चाहिए, अगर तस्करी मिटानी है, तो दुनिया में लैसे-फेअर की व्यवस्था होनी चाहिए। तो ही तस्करी मिटेगी। बाजार खुले होने चाहिए, नहीं तो तस्करी जारी रहेगी। हिंदुस्तान में तो तस्करी मुल्क के भीतर भी चलती है। अगर बंबई से दिल्ली जाओ तो कम से कम बीस दफा कार खोल कर देखी जाएगी, जांच-पड़ताल की जाएगी। क्या पागलपन है! अपने ही मुल्क में चलने में स्वतंत्रता नहीं है! क्योंकि यहां भी प्रांत-प्रांत नियम की दीवार खड़ी है। गेहूं कहीं सस्ता बिक रहा है, कहीं मंहगा बिक रहा है। कहीं चावल को खरीदने वाला कोई नहीं है, कहीं लोग कतार लगाए खड़े हैं। चावल भागता है। वह नियम की व्यवस्था है, सीधी जीवन की व्यवस्था है। लोग चावल को लाने लगते हैं वहां जहां कतार लगी है। और ठीक ही कर रहे हैं, क्योंकि कतार को हटाने का यही एक उपाय है।
लेकिन सरकार नियम बना कर खड़ी है। जितने नियम होंगे उतनी चोरी होगी। चोरी का कुल मतलब इतना है कि तुमने जरूरत से ज्यादा, स्वभाव के विपरीत नियम बना दिए। नियम को कम करो, चोरी कम हो जाएगी।
भ्रष्टाचार है मुल्क में। तो जयप्रकाश कहते हैं, नियम को बढ़ाओ तो भ्रष्टाचार कम हो जाएगा; सख्ती करो तो भ्रष्टाचार कम हो जाएगा। भ्रष्टाचार और बढ़ेगा। जयप्रकाश गांधी की संतान हैं। गांधी ने जो उपद्रव मुल्क को दिया उसको वे फिर थोपना चाहते हैं। जरूरत इस बात की है कि नियम को कम करो, छांटो। यह तो पक्का है कि बिल्कुल बिना नियम के हम समाज नहीं बना सकते; आदमी की अभी इतनी ऊंचाई नहीं। लेकिन लक्ष्य वही है कि कभी ऐसा वक्त आए कि कोई नियम न हो, ताकि कोई चोर न हो, ताकि कोई नियम का उल्लंघन करने वाला न हो।
पहले तुम नियम बनाते हो, फिर तुम चोर को पकड़ लेते हो। समझ लो कि एक कानून बना दिया जाए, अगर योगियों के हाथ में सत्ता आ जाए जैसे गांधीवादियों के हाथ में आ गई तो योगी नियम बना दें कि सुबह उठते वक्त दाएं स्वर से ही सांस लेते हुए उठना! जो बाएं स्वर से सांस लेता उठा, वह पकड़ा जाएगा; क्योंकि दाएं स्वर से ही सांस लेना सुबह अच्छा है। अब फंसे तुम। अगर सुबह तुम बाएं स्वर से सांस लेते उठ गए, अदालत में पहुंचाए गए--क्यों तुमने बाएं स्वर से सांस ली? तो तुम कृत्रिम उपाय करोगे, बाएं स्वर में रुई लगा कर सोओगे, ताकि सुबह कुछ भी हो दाएं स्वर से सांस चले।
फिर कुछ ऐसे होंगे जो इस बात को व्यर्थ मानेंगे कि क्या फिजूल है! हम सांस भी नहीं ले सकते? सांस हमारी स्वतंत्रता है। अगर उनके दाएं स्वर से भी सांस चल रही होगी तो वे बाएं से लेते हुए उठेंगे। क्योंकि कानून को तोड़ने

में भी एक रस है, एक बगावत है, एक विद्रोह है। और अहंकार कानून को तोड़ने में बड़ा रस लेता है। अपराधी पैदा होते हैं, डाकू पैदा होते हैं, चोर पैदा होते हैं। और इन सबके पैदा होने के पीछे बुनियादी कारण यह है कि तुम ऐसे असंभव आदर्श सिर पर खड़े कर देते हो जो पूरे नहीं किए जा सकते।
गांधी ने आश्रम में आदर्श बना दिया ब्रह्मचर्य का, सब ब्रह्मचर्य का पालन करें। गांधी के सेक्रेटरी खुद न कर पाए, प्यारेलाल। और बुढ़ापे में गांधी को खुद अपने ब्रह्मचर्य पर संदेह होने लगा था। और संदेह उनका इतना बढ़ गया--बढ़ेगा ही, क्योंकि ऊपर से थोपा हुआ आदर्श था--कि एक युवती को नग्न लेकर एक वर्ष तक वे सोते रहे अंतिम दिनों में, सिर्फ यह जांचने के लिए मेरा ब्रह्मचर्य सच्चा है या नहीं।
लेकिन जब ब्रह्मचर्य सच्चा होता है तो जांचने का सवाल ही नहीं उठता। जांचने का ख्याल ही बताता है कि कोई चीज ऊपर से थोप ली है, पक्का भरोसा खुद भी नहीं आ रहा है। जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम्हें किसी से पूछना पड़ता है? जांच करनी पड़ती है? जांच इसलिए करवा सकते हो तुम कि क्यों दर्द हो रहा है। लेकिन यह तो नहीं कि तुम संदिग्ध हो कि दर्द हो रहा है कि नहीं हो रहा है। जब तुम प्रसन्न होते हो तो प्रसन्नता अपने आप में प्रमाण होती है। जब तुम दुखी होते हो तो दुख प्रमाण होता है। ब्रह्मचर्य का आनंद तो ऐसा, ऐसा अपूर्व है कि जब ब्रह्मचर्य फलता है तो किसी से पूछना पड़ेगा, कोई परिणाम की जांच-परीक्षा करनी पड़ेगी?
लेकिन गांधी का ब्रह्मचर्य ऊपर से थोपा हुआ था। वह जबरदस्ती थोपा गया था। आखिरी क्षणों में डर पैदा होने लगा उन्हें खुद भी कि मैं ब्रह्मचारी हूं या नहीं! और डर के कारण भी थे। क्योंकि आखिरी, सत्तर वर्ष, पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी, स्वप्न में कामवासना पीछा करती थी। स्वप्नदोष भी आखिरी उम्र तक जारी रहा। तो घबड़ाहट स्वाभाविक थी। चिंता, भय था। इस भय को पार करने के लिए एक युवती को साथ लेकर सोने लगे--यह जांच के लिए कि मेरे मन में वासना उठती है कि नहीं उठती।
गांधी के अनुयायियों ने बुरी तरह इस बात को छिपाने की कोशिश की है कि
यह कभी जैसे हुआ ही नहीं। क्योंकि यह तो सारी की सारी ढांचे को तोड़ देने वाली बात है। अगर गांधी खुद संदिग्ध हैं तो अनुयायियों का क्या भरोसा? गांधी को खुद ही अपने पर भरोसा नहीं है, तो क्या दूसरे को सिखाना? और क्या हुआ गांधी का अनुभव इस युवती के साथ सोकर, उसकी कोई जाहिर खबर नहीं की गई-- उन्होंने पाया कि नहीं पाया कि ब्रह्मचर्य सही था कि नहीं था। और बड़ी कठिनाई है। क्योंकि एक आदर्श को ऊपर से थोप लिया है; अब उसको पूरा करने की जिद्द है। और वासना भीतर कहीं न कहीं छिपी है, कहीं न कहीं अचेतन में दबी है। घाव की तरह है। उसे हमने ऊपर से ढांक लिया, मलहम-पट्टी कर दी है। लेकिन घाव मिटा नहीं है।
असंभव को मत थोपो, असाधारण को मत थोपो, अगर तुम चाहते हो कि लोग पुण्यात्मा हों। क्योंकि जितना तुम असंभव थोपोगे उतने ही लोगों के मन में अपराध और पाप का भाव पैदा होगा कि हम पापी हैं, हम पापी हैं; हमसे कुछ भी नहीं हो रहा। न हम उपवास कर सकते, न हम ब्रह्मचर्य साध सकते, न हम लोभ छोड़ सकते, न क्रोध छोड़ सकते। कुछ भी तो नहीं कर सकते। तो हमसे ज्यादा महागर्त में कोई भी नहीं है।
और जिसको यह भरोसा आ गया कि मैं महागर्त में हूं, उसके उठने के उपाय बंद
हो गए। कौन उठेगा अब जब तुम्हीं गिर पड़े, और जब तुम्हीं ने हताशा ले ली, और जब तुमने आशा छोड़ दी। अब तुम्हारा आकाश दूर आकाश का तारा है जिसको तुम अपने गड्ढे में पड़े हुए देखते रहते हो। गड्ढा असलियत है, आकाश का तारा तो बहुत दूर है।
और तुम्हें पता नहीं है, जहां तारे दिखाई पड़ते हैं वहां होते नहीं। वहां कभी थे वे; क्योंकि प्रकाश को आने में बड़ा समय लगता है। जो निकटतम तारा है जमीन के उससे आने में चार साल लगते हैं। चार साल पहले वह तारा वहां था, अब है नहीं। तो रात तो तुम्हारी बिल्कुल झूठी है। जो तारे तुम्हें दिखाई पड़ते हैं बिल्कुल झूठे हैं। वहां कोई तारा नहीं है जहां तुम्हें दिखाई पड़ रहा है, वहां वह कभी था। चार साल में यह भी हो सकता है, वह नष्ट हो गया हो। लेकिन

चार साल तक दिखाई पड़ता रहेगा, क्योंकि जब तक रोशनी आती रहेगी। चार साल तक का फासला रहेगा।
और यह तो निकटतम तारा है। फिर दूर के तारे हैं, जिनसे करोड़ वर्ष में रोशनी आती है, दस करोड़ वर्ष में रोशनी आती है, अरब वर्ष में रोशनी आती है। और ऐसे तारे हैं जिनकी रोशनी उस दिन चली थी जब पृथ्वी नहीं बनी थी और अभी तक पहुंची नहीं है। वे तारे कहां खो गए होंगे, कुछ पता नहीं। लेकिन दिखाई पड़ते हैं।
तुम्हारे अतीत के महावीर, बुद्ध, कृष्ण, बस ऐसे ही तारे हैं जो कभी थे।
और तुम अपने गड्ढे में पड़े हो और दूर तारों पर आंखें लगाए हो जो हैं ही नहीं। तुम्हारा गड्ढा तुम्हारी असलियत है। और उस असलियत को तुम जितना ढांकना चाहते हो उतने ही आदर्श की तरफ देखते हो। आदर्श की तरफ देखने में एक सुविधा है, अपना नरक नहीं दिखाई पड़ता। पड़े रहते हो लोभ में, पड़े रहते हो कामवासना में; ब्रह्मचर्य के तारे पर आंखें लगाए रहते हो। तो जो है असलियत वह दिखाई नहीं पड़ती। और ध्यान रखना, जो है उसे देखना पड़ेगा; तभी किसी दिन ब्रह्मचर्य का जन्म होगा। तुम्हारा आदर्श तुम्हारा पलायन है, एस्केप है, बचने की तरकीब है। कब तक बचे रहोगे? तारे को देखते पड़े रहोगे, गड्ढा नहीं मिट जाएगा। तारे को देखने से कभी गड्ढा नहीं मिटा है। गड्ढे को ही देखना पड़ेगा। उठना पड़ेगा, चलना पड़ेगा। तारे को तो छोड़ो; असलियत को, यथार्थ को पकड़ो। क्योंकि यथार्थ में ही सत्य छिपा है; तुम्हारी कल्पनाओं, मनोवांछाओं में नहीं, तुम्हारे सपनों में नहीं।
क्रोधी आदमी अक्सर अहिंसा का आदर्श बना लेता है। उससे सुविधा हो जाती है। क्रोध को कहता है, है, माना। लेकिन अहिंसा की कोशिश कर रहा हूं; देखो, पानी छान कर पीता हूं, रात भोजन नहीं करता। धीरे-धीरे सधेगा। कोई जल्दी तो हो भी नहीं सकती; लंबा सवाल है, जन्मों-जन्मों की बात है। कभी न कभी अहिंसा को उपलब्ध हो जाऊंगा। आज तो क्रोध करूंगा, क्योंकि अभी तो अहिंसा सधी नहीं है। कभी! भविष्य में टालता है। और आज जो कर रहा है उसी में से भविष्य निकलेगा; वह जो कह रहा है उसमें से नहीं।
इसे तुम ठीक से समझ लेना, बारीकी से। तुम जो कर रहे हो उसी से तुम्हारा भविष्य निकलेगा। आज क्रोध कर रहे हो और सोच रहे हो, कल अहिंसा! तो अहिंसा तुम्हें राहत दे रही है। कंसोलेशन है, सांत्वना है। कोई फिक्र नहीं; तुम्हारा अहंकार कहता है कि मान लिया क्रोध कर रहे हो, क्योंकि मजबूरी है, जरूरत है, वैसे अहिंसा तुम्हारा लक्ष्य है। तुम आदमी तो बड़े गजब के हो। अभी तुम्हारा वक्त नहीं आया; तुम तो छिपे हुए प्रकाश हो; कल प्रकट होगा। तो इससे तुम्हें आज क्रोध करने में सुविधा मिल जाती है। अहिंसा कल पर टल गई। आज खाली बचा, क्रोध से भर लो। दिल खोल कर भर लो; क्योंकि कल तो अहिंसा हो जानी है। कल तो ब्रह्मचर्य आ जाएगा; आज आखिरी दिन और है, भोग कर लो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य तुम्हें भोगी बनाता है। क्योंकि आदर्श तुम्हारी असलियत छिपाता है।
तुम छोड़ो आदर्शों को। तुम सामान्य सत्य को पहचानो। क्या स्थिति है? और उसी स्थिति को जीओ सजगता से। आदर्श नहीं; जागरूकता! भविष्य नहीं; वर्तमान! यह तो क्रांति घटित होगी। और जब तुम आज को बदलोगे बोधपूर्वक, समझपूर्वक। क्योंकि समझ ही एकमात्र बदलाहट है, और कोई बदलाहट नहीं। समझ ही एकमात्र मुक्ति है, और कोई मुक्ति नहीं। आज जब तुम्हारी समझ के प्रकाश से प्रकाशित होगा और बदलेगा, उसी से तो कल का जन्म होगा। आज अगर तुम कम क्रोध किए-- होशपूर्वक--तो कल और कम होगा, परसों और कम होगा, एक दिन अक्रोध की दशा आ जाएगी। उस दिन अहिंसा का फूल खिलेगा। वह आदर्श की तरह नहीं, वह जीवन के यथार्थ से गुजर कर मिलता है।
लाओत्से कहता है, सामान्य को सूत्र बना लो। तुम जैसे हो उसे देखो। और राज्य को कहता है कि राज्य भी मनुष्य के सामान्य को नियम बनाए, असामान्य को आदर्श न बनाए।
अब हम क्या कर रहे हैं? हम चाहते हैं कि हमारे मंत्री, प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति झोपड़े में रहें। तब तुम आदमी की सामान्य स्थिति को नहीं समझ रहे। जिसको झोपड़े में रहना है वह पागल है जो प्रधान मंत्री बनने जाए! जब

झोपड़े में ही रहना है तो तुम्हारे पैर दबा-दबा कर वोट पाने की जरूरत क्या है? झोपड़े में रहने के लिए तुम से कोई आज्ञा नहीं लेनी। सामान्य आदमी की सामान्य मनोदशा है। वह महल में रहने के लिए तो जा रहा है, तुम्हारे पैर दबा रहा है, तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा है। तुम, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है, तुम्हारे सामने झुक रहा है, जी-हुजूरी कर रहा है। तुम अकड़े खड़े हो और वह तुम्हें फुसला रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन चुनाव में खड़ा हुआ। तो गांव भर में उसने चक्कर लगाया जांच-पड़ताल के लिए--कौन अपने पक्ष में है, कौन विपक्ष में है। तो वोटर-लिस्ट लेकर निशान लगाता गया। जिसने कहा पक्ष में उस पर लगा दिया पक्ष, जिसने कहा विपक्ष में उस पर लगा दिया विपक्ष। एक महिला के द्वार पर गया, वह अपने बगीचे में काम कर रही है। उसने वहीं से कहा कि बाहर रहो, भीतर मत आओ! तो भी मुस्कुराया, फाटक खोल कर कहा कि और किसी कारण से नहीं आया हूं, सिर्फ यह पूछने आया हूं कि चुनाव में खड़ा हो रहा हूं मेयर के, तो आपका मत तो मुझे मिलेगा? वह स्त्री आगबबूला हो गई। उसने कहा, लावारिस! आवारा! तुम्हें मत? और मेयर बनना है? तुम सड़क पर भीख मांगने के योग्य भी नहीं। तुम्हें तो असल में गांव के बाहर निकाला जाना चाहिए। हटो बाहर! वह झाडू से जिससे साफ कर रही थी, झाडू उसने उठा ली। नसरुद्दीन पीछे हटता जा रहा है, मुस्कुराता जा रहा है, और कह रहा है कि नहीं, कोई बात नहीं, सोच लेना, अभी कोई जल्दी भी नहीं है। उस स्त्री ने कहा, सोचने का सवाल ही नहीं। तुम निकलते हो कि मैं झाडू चलाऊं? तो वह बाहर आ गया। बाहर से उसने फिर नमस्कार किया, अपनी डायरी देखी, और उसने डायरी पर लिखाः डाउटफुल, संदिग्ध।
विपक्ष में है, उसको भी विपक्ष में राजनीतिज्ञ नहीं मानता। तुम्हारे हाथ-पैर जोड़ रहा है।
फिर मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया और उसका बेटा एक दफा चुनाव में खड़ा हुआ, तो यही गुजरी बेटे पर। उसने बाप से आकर कहा कि यह तो बड़ा कठिन काम है, लोग बड़ा अपमान करते हैं।
नसरुद्दीन ने कहा, अपमान? कितने चुनाव मैं लड़ा, ऐसी भी नौबत आ गई कि पीटा गया, फेंका गया, घरों से धक्के देकर निकाला गया, लोगों ने जूते मारे, केले के छिलके फेंके, सड़े टमाटर मारे। लेकिन अपमान? अपमान कभी किसी ने नहीं किया।
सब तरह झुकता है, और तुम चाहते हो झोपड़े में रहने के लिए! तो झोपड़े में रहने के लिए यहीं कौन सी तकलीफ थी? और जब वह जाकर महल में रहता है, तुम कहते हो भ्रष्टाचारी। तुम अजीब हो। सीधी-सीधी बात है। आदमी का सामान्य मन है। तुम जैसा ही आदमी है। उसी आकांक्षा से बेचारा दिल्ली की यात्रा किया है। जूते खाता है, सड़े टमाटर खाता है, छिलके फेंके जाते हैं, गाली-गलौज झेलता है। जगह-जगह काले झंडे, और लोग मुर्दाबाद कर रहे हैं; वह सब झेल कर जाता है-- झोपड़े में रहने के लिए? तो जाएगा ही काहे के लिए? इतनी सीधी सी बात है। वह जाता इसीलिए है कि महल में रह सके थोड़ी देर। यह आदमी का सामान्य मन है। फिर जब वह महल में रहता है तो भ्रष्टाचारी है। वह साइकिल पर चलना चाहिए तो तुम्हें ठीक लगता है। साइकिल पर ही चलना था तो यहां कौन सी दिक्कत थी? वहां अगर वह बड़ी कार में चलता है तो मुसीबत। वह जाता इसीलिए है।
जीवन को सामान्य की तरह सोचो। तब तुम्हें तुम्हारे राजनेता इतने भ्रष्टाचारी न दिखेंगे जितने दिखाई पड़ते हैं। और तब तुम्हें मुल्क भी इतना भ्रष्टाचारी नहीं मालूम पड़ेगा जितना मालूम पड़ता है। इतना है भी नहीं। क्योंकि इतना भ्रष्टाचारी हो तो कोई समाज टिक ही नहीं सकता; वह नष्ट ही जो जाए। सम्हल ही नहीं सकता।
लेकिन भ्रष्टाचार तुम बड़ा करके देखते हो; क्योंकि तुम्हारे आदर्श बड़े असामान्य हैं। झूठे तुम्हारे आदर्श हैं, उनके आधार पर तुम नियम बनाते हो। और वही आदर्श तुम्हारा नेता भी मानता है। उसी के आधार से वह तुमको कहता है कि जनता भ्रष्ट है। और जनता कहती है, नेता भ्रष्ट है।
सामान्य को देखो। मनुष्य की सामान्य आकांक्षा पर दया करो। सामान्य को समझने की कोशिश करो। उससे ही असामान्य को पैदा करना है। असामान्य को ऊपर से नहीं थोपना है।

कहता है लाओत्से, "राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो। रूल ए किंगडम बाइ दि नार्मल।"
तब जीवन व्यवस्थित हो पाता है। क्या है नार्मल? आदमी को समझो, आदर्शों
को मत। वहीं से सूत्र खोजो। सामान्य आदमी क्या चाहता है? चाहता हैः छप्पर हो, रोटी हो, कपड़ा हो, प्रेम हो जीवन में, सुरक्षा हो। यह सामान्य आदमी की आकांक्षा है। न तो सामान्य आदमी चाहता है कि कोई परमात्मा मिल जाए आज, न कोई मोक्ष, न कोई ब्रह्मचर्य। तुम जो सामान्य आदमी चाहता है उसको देख कर व्यवस्था दो। उसी व्यवस्था में जब वह शांत होने लगेगा तभी उस शांति की समृद्धि से ये नई अभीप्साएं पैदा होंगी।
छोटे-छोटे बच्चों को हम ब्रह्मचर्य का पाठ सिखा रहे हैं। छोटे बच्चों
को पहले कामवासना का पाठ सिखाओ, ताकि वे कामवासना में गलत न चले जाएं। अभी ब्रह्मचर्य का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन स्कूलों में लिखा है कि ब्रह्मचर्य परम धर्म है। छोटे-छोटे प्राइमरी स्कूलों में मैंने तख्तियां लगी देखी हैं कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। यह प्राइमरी के बच्चे को, ब्रह्मचर्य ही जीवन है, इससे क्या मतलब है? यहां कोई बूढ़े पढ़ने आते हैं? अभी इस बच्चे को पता ही नहीं कि ब्रह्मचर्य क्या है। अभी तुम इसे क्षमा करो। अभी तुम इसे समझाओ कि जीवन में कामवासना आएगी, उसे कैसे सम्यकरूपेण जीया जाए, कैसे तू कामवासना में ठीक-ठीक कुशलता से प्रवेश करे, ताकि तू भटके न। अगर कोई व्यक्ति कामवासना में ठीक से प्रवेश कर गया तो दूसरा कदम ब्रह्मचर्य का स्वाभाविक है। बिना कामवासना में गए हुए बच्चे को अगर तुमने ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ा दिया तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
मेरे पास लोग आते हैं, युवक, वे कहते हैं कि विवाह करें या नहीं, क्योंकि है तो ब्रह्मचर्य ऊंची बात। युवकों के मन में भी विवाह की निंदा हो जाती है। है तो ब्रह्मचर्य ऊंची बात। मैं उनसे पूछता हूं, ब्रह्मचर्य की तुम बात ही मत करो, तुम अपने हृदय की कहो। कहते हैं, हृदय तो वासना से भरा है। लेकिन आप कोई तरकीब बताएं लड़ने की, ताकि वासना को काट कर अलग कर दें। वासना को कभी किसी ने काट कर अलग किया है? और अगर वासना को ही काट दिया
तो फिर ब्रह्मचर्य कैसे लाओगे? जो पैर वेश्याघर की तरफ जाते हैं उनको तुमने काट दिया तो वे ही पैर तो मंदिर की तरफ भी ले जाते थे। पैर तो वही हैं, चाहे वेश्याघर जाओ, चाहे मंदिर जाओ। दिशा बदलनी है; पैर थोड़े ही काट देने हैं। ऊर्जा तो वही है, शक्ति तो वही है; चाहे व्यर्थता में खोओ, चाहे सार्थकता में उठाओ; चाहे अधोगामी बनाओ और चले जाओ नरक में और चाहे ऊर्ध्वगमन करो और पहुंच जाओ परम उत्कृष्ट जीवन की अवस्था में, ब्रह्मचर्य को। काटना थोड़े ही है; जानना है, पहचानना है, ठीक से जमाना है; सीढ़ियां बनानी हैं पत्थरों की। होशियार कारीगर तिरस्कृत पत्थर को भी उपयोग में ले आता है, नासमझ उस बहुमूल्य पत्थर को भी फेंक देता है जिसमें कोई महान प्रतिमा छिपी थी। जरा छेनी लेकर साफ करने की बात थी और प्रतिमा उघड़ आती। अगर तुम बड़े मूर्तिकारों से पूछो तो वे यह नहीं कहते कि हम मूर्ति बनाते हैं, वे कहते हैं, मूर्ति तो छिपी ही होती है, किसी-किसी पत्थर में हमें दिखाई पड़ जाती है कि इसमें छिपी है। बस, फिर हम जो उसमें व्यर्थ है उसको छांट देते हैं, जो आवरण है उसको हटा देते हैं। मूर्ति तो थी ही। सिर्फ आवरण को हटाने की कुशलता है। कूड़े-कर्कट को अलग कर देते हैं, मूर्ति प्रकट हो जाती है। हम मूर्ति बनाते थोड़े ही हैं। कभी किसी ने कोई मूर्ति बनाई है!
इसलिए मूर्तिकार जाता है पहाड़ों में, पत्थरों को देखता है--किस पत्थर में छिपी है?
जब तुम मेरे पास आते हो तो मैं भी तुम्हें ऐसे ही देखता हूं। क्योंकि तुम अनगढ़ पत्थर हो। देखता हूं, मूर्ति छिपी है, थोड़ा सा अनगढ़पन है। थोड़ा यहां-वहां छेनी के लगाने की जरूरत है; जल्दी ही रूप उघड़ आएगा। मिटाना कुछ भी नहीं है; संवारना है, सजाना है, ठीक दिशा देनी है।
और ठीक दिशा सामान्य से मिलती है। तुम सामान्य होने की आकांक्षा करो। असामान्य होने से तुम रुग्ण हो।
कहता है लाओत्से, "युद्ध हो तो ठीक, चलो, असामान्य अचरज भरी युक्तियों
से लड़ो।"

क्योंकि युद्ध तो गलत है ही। तो उसमें अगर गलत चलता हो तो चले, लेकिन कम
से कम जीवन के शांत क्षणों में तो गलत को मत चलाओ। युद्ध तो गलत है, इसलिए गलत से ही चलता है।
रोमन सम्राट एक तरकीब करते थे। उनका सिंहासन दीवार के पीछे एक यंत्र
से जुड़ा हुआ था। जब सम्राट उस पर बैठता था, सिंहासन ऊपर उठ जाता था। चमत्कृत हो जाते थे लोग कि सम्राट कोई साधारण पृथ्वी का आदमी नहीं है। गुरुत्वाकर्षण का भी कोई प्रभाव नहीं सम्राट पर, बैठते ही सिंहासन ऊपर उठ जाता है। यह तो बहुत बाद में पता चला लोगों को, जब सम्राट खो गए, कि दीवार के पीछे यंत्र लगा रखा था जिसको एक आदमी चलाता था। मगर इसका बड़ा प्रभाव था। रोमन सम्राट जब वर्ष के प्रथम दिन पर अपनी परेड का निरीक्षण करता था तो
इस तरह का इंतजाम किया था कि दस हजार सैनिक लाखों सैनिकों जैसे मालूम पड़ें। क्योंकि सैनिक सामने से गुजरते और वे ही लौट कर फिर पीछे से पंक्ति में जुड़ जाते। तो जो दूसरे राजाओं के राजदूत थे या मित्र राजा थे वे खड़े होकर जब देखते परेड तो उनकी छाती बैठ जाती कि इस सम्राट से झगड़ना खतरे से खाली नहीं है। इतनी भयंकर फौज-फांटा! इतनी तोपें! बस उनको देख कर ही उनके प्राण ठंडे हो जाते थे। था कुछ भी नहीं। थोड़े से सैनिक थे, थोड़ी सी तोपें थीं, लेकिन उस्तादी यह थी कि उनको फिर वापस--एक गोल वर्तुल में घूमता था पूरा का पूरा मामला। और सैनिकों की शक्लें तो होती नहीं, इसलिए तुम पहचान भी नहीं सकते कि ये सैनिक। वर्दी होती है। सैनिक यानी वर्दी। शक्ल तो होती नहीं। पहचानना बिल्कुल मुश्किल है कि ये वे ही आदमी आ रहे हैं। दूसरे राजा हतप्रभ हो जाते थे।
लाओत्से कहता है, युद्ध में तुम चालाकियों का उपयोग करो, अचरज भरी बातों का, असामान्य का, समझ में आता है। क्योंकि युद्ध तो बीमारी ही है। वहां और बीमारियां भी चलेंगी। लेकिन कम से कम जीवन के शांत क्षणों में, सामान्य जीवन में तो अचरज को, विशिष्ट को, असामान्य को मत लाओ।
"संसार को बिना कुछ किए जीतो।"
करके जीता तो क्या जीता? क्योंकि करके जो जीत मिलती है वह जीत होती ही नहीं। तुम जबरदस्ती किसी को भी हरा नहीं सकते। हरा सकते हो, उसकी छाती पर बैठ सकते हो, लेकिन बस ऊपर ही ऊपर रहोगे। भीतर वह आदमी बिना हारा है, उसका हृदय नहीं हारता। तुम गर्दन काट सकते हो, लेकिन वह आदमी बिना हारा मरेगा। करके कभी किसी ने किसी को जीता है? सिर्फ प्रेम जीतता है। और प्रेम कोई कृत्य नहीं है, भाव की दशा है। प्रेम कुछ करना नहीं है, प्रेम तो एक मनोदशा है, ए स्टेट ऑफ बीइंग है, एक होने का ढंग है।
लाओत्से कहता है, संसार को बिना कुछ किए जीतो, प्रेम से जीतो।
"मैं कैसे जानता हूं कि ऐसा है? इसके द्वारा।"
और तब वह कहता है, ये मेरे अनुभव हैं।
"जितने अधिक निषेध होते हैं, लोग उतने ही अधिक गरीब होते हैं।"
निषेध का बड़ा आकर्षण है। जिन मुल्कों में कानून बन जाता है कि शराब बंद, प्रोहिबीशन लागू, उन मुल्कों में लोग दुगुनी शराब पीने लगते हैं। यह सारी दुनिया जानती है। फिर भी मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। फिर भी पागल लोग पीछे पड़े हैं कि शराब बंद करो। सारी दुनिया का अनुभव यह है कि जिस मुल्क में शराब बंद होती है उस मुल्क में लोग दुगुनी-तिगुनी शराब पीने लगते हैं। चोरी से शराब बनने लगती है। चोरों के लिए रास्ता खुल जाता है।
सब निषेध चोरी को बढ़ाते हैं। और सब निषेध लोगों को गरीब करते हैं। क्योंकि जितना तुम कहते हो कि मत करो! उतना लोगों के अहंकार को चोट लगती है; वे करने को तत्पर हो जाते हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि क्या जरूरी था, क्या गैर-जरूरी था। ऐसे ही जैसे इस दरवाजे पर हम एक तख्ती लगा दें कि भीतर झांकना मना है। फिर तुम बिना झांके निकल सकोगे? तख्ती पढ़ना न आता हो तो बात और, लेकिन तख्ती लगी है कि झांकना मना है तो तुम बिना झांके नहीं निकल सकते। क्योंकि तख्ती खबर देती है कि कुछ झांकने योग्य भीतर होना ही चाहिए। कोई सुंदरी बैठी हो। कुछ न कुछ मामला है, नहीं तो तख्ती क्यों है? तुम झांकोगे। अगर दुर्जन हुए तो वहीं अड़ कर खड़े हो जाओगे। अगर सज्जन हुए तो जरा चोरी-छिपे से झांकोगे। चलोगे इधर को, देखोगे उधर को। अगर बहुत ही सज्जन हुए, कमजोर,

बिल्कुल लचर, तो रात को लौटोगे जब भीड़-भाड़ न रहे, कोई न रहे, तब झांक कर देखोगे। अगर बिल्कुल ही कमजोर रहे, बिल्कुल नपुंसक, सपने में झांकोगे, मगर झांकोगे। बिल्कुल असंभव है।
तुमने देखा, दीवारों पर जहां लगा रहता है कि यहां पेशाब करना मना है, वहां पहुंचते ही से पेशाब लग आती है। पढ़ा नहीं कि बस एकदम ख्याल... अभी तक ख्याल भी नहीं था। तो जिस दीवार पर लिखा हो वहां तुम देख लो, हजार निशान पेशाब के बने होंगे। सामान्य आदमी है। अगर दीवार बचानी हो तो भूल कर लिखना मत। अगर बिल्कुल ही बचानी हो तो लिखना कि यहां करना सख्त अनिवार्य है। अगर यहां पेशाब न की तो पकड़े जाओगे, मारे जाओगे। फिर तुम देखना, जिसको लगी भी है वह भी सम्हाल कर निकल जाएगा कि यह क्या मामला है। कोई परतंत्र हैं! कोई हम किसी के गुलाम हैं कि तुम हमको आज्ञा दो कि कहां हम करें और कहां हम न करें! निषेध लोगों को दीन और दरिद्र बना रहा है। क्योंकि निषेध के कारण लोग व्यर्थ चीजों की तरफ आकर्षित होते हैं। शराब बंद है तो लोग शराब की तरफ आकर्षित होते हैं। खाना छोड़ देंगे, लेकिन शराब पीएंगे। क्योंकि जब बंद है तो जरूर कोई मामला होगा। शराब में कुछ न कुछ होगा रहस्य। मिलता होगा कोई न कोई आनंद। कोई न कोई हर्षोन्माद आता होगा। नहीं तो क्यों इतने लोग पीछे पड़े हैं? कानून इतने पीछे क्यों पड़ा है? सरकारें इतने पीछे क्यों पड़ी हैं? नेतागण इतने पीछे क्यों पड़े हैं? और लोग जानते हैं कि नेतागण खुद पी रहे हैं; दूसरों को रोक रहे हैं। जरूर कुछ रहस्य है। जरूर कोई बात है। और एक दफा आदमी पड़ जाए जाल में तो उस जाल के बाहर आना मुश्किल होता जाता है।
अगर दुनिया को कम शराबी बनाना हो, शराब को खुला छोड़ दो। तुम्हारे रोकने
से कोई रुकता नहीं, तुम्हारे रोकने से सिर्फ और गलत शराब पीयी जाती है। कोई स्पिरिट पी लेता है, कोई पेंट पी जाता है। सैकड़ों लोग मर जाते हैं। अगर शराब खुली हो तो कम से कम कोई स्पिरिट तो न पीएगा, पेट्रोल तो न पीएगा। अगर शराब खुली हो तो कम से कम ठीक शराब तो पीएगा। बंद होते ही से अंधेरे में चला जाता है सब काम। और अंधेरे के व्यवसायी हैं, वे तत्क्षण हाथ में ले लेते हैं। अगर तुम ठीक से समझो तो जो लोग शराब बेचते हैं, उनके पक्ष में है कि कानून हो शराब-बंदी का। मोरारजी भाई सोचते हों कि वे शराब-बंदी के पीछे पड़े हैं तो उन लोगों के साथ शराब-बंदी वाले लोग खड़े हैं; वे गलती में हैं। उनसे लाभ तो होने वाला है उन्हीं का जो शराब बेचते हैं। क्योंकि शराब बढ़ जाती है एकदम से, जैसे ही निषेध हो जाता है।
जिस फिल्म पर लिख दिया गया कि यह सिर्फ, केवल वयस्कों के लिए है, ओनली फॉर एडल्ट्स, उसको छोटे-छोटे बच्चे भी देखने पहुंच जाते हैं। वह ज्यादा चलती है। उसमें वयस्क तो पहुंचते ही हैं, जो वैसे न गए होते, कि कुछ मामला है, उसमें छोटे-छोटे बच्चे भी पहुंच जाते हैं।
जितने होंगे निषेध उतना ही लोगों का आकर्षण बढ़ता है और गलत दिशाओं में यात्रा शुरू हो जाती है। गलत को इतना महत्वपूर्ण मत बनाओ। निषेध महत्व दे देता है। गलत की उपेक्षा करो; इतना आकर्षक मत बनाओ। गलत की बात ही मत उठाओ। बच्चे से भूल कर मत कहो कि झूठ बोलना मना है, झूठ मत बोलना। क्योंकि इससे बच्चे को रस आता है। और बच्चे को लगता है, झूठ में जरूर कोई मजा है।
है तो मजा, क्योंकि दूसरे को धोखा देने में अहंकार की एक तृप्ति है। और बच्चा ऐसे कमजोर है; जब उसे पता चल जाता है कि झूठ बोल कर भी हम हरा सकते हैं लोगों को तो वह झूठ बोलने लगता है। फिर वह कुशल होने लगता है धीरे-धीरे। फिर झूठ एक कला बन जाती है। वह इस तरकीब से बोलता है कि तुम पहचान ही न पाओ। छोटे-छोटे बच्चे बड़े कुशल कारीगर हो जाते हैं। उन्होंने अभी कोई शैतानी की; और तुम पहुंच जाओ, देखोगे कि बिल्कुल ऐसे शांत बैठे हैं। तुम उनसे कहो, तो वे कहेंगेः क्या? जैसे उन्हें कुछ पता ही नहीं है। किसने किया? यह वे एक खेल खेल रहे हैं। वे यह दिखा रहे हैं कि तुम बड़े समझदार होओगे, ऊंचाई तुम्हारी छह फीट होगी, होगी! लेकिन हम भी तुम्हें मात दे सकते हैं।
बच्चे से भूल कर मत कहना कि झूठ बोलना मना है। क्योंकि जो मना है वह किया जाएगा। और बच्चे ही हैं सब तरफ। उनकी उम्र ज्यादा हो जाए, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई पांच साल का बच्चा है, कोई पचास साल का बच्चा है। बस बच्चे ही हैं सब तरफ।

और इसलिए लाओत्से कहता है, कैसे मैंने जाना यह? मैंने जाना यह देख कर कि जितने अधिक निषेध, उतने लोग दरिद्र। जितने तेज शस्त्र, उतनी अराजकता। जितना राज्य कोशिश करता है दबाने की, उतने ही लोग दबंग होते जाते हैं, दबते नहीं।
पच्चीस सालों से भारत में हम कोशिश कर रहे हैं लोगों को दबाने की, वे और दबंग होते जाते हैं। जितनी तुम व्यवस्था जमाते हो, पुलिस के हाथ में बम हैं, बंदूक हैं; क्या फर्क पड़ता है? तुम रोज लोगों को मार रहे हो; इससे कुछ हल नहीं होता। लोगों का उपद्रव बढ़ता जाता है। लोगों का उपद्रव दबाने से नहीं दबता। उपद्रव को समझो; उपद्रव के पीछे के कारण को समझो। कारण को बदलो। दबाने से कुछ भी न होगा। कारण को कोई बदलने की नहीं सोचता। लोग सोचते हैं कि बस दबाने में। हर सत्ता यही सोचती है कि शक्ति काफी है।
लोग भूखे हैं; शक्ति से कोई पेट भरता है? कि तलवार से कोई पेट भरता है? लोग अगर भूखे हैं तो रोटी का इंतजाम करो। दबाने से न होगा। और भूखे आदमी को जब तुम दबाते हो तो एक ऐसी घड़ी आ जाती है जब वह देखता है कि भूख तो मिटती ही नहीं, जीवन में कोई सार है नहीं, कुछ खोने को बचता नहीं, वह पागल हो जाता है। फिर तुम उसे नहीं दबा सकते। और व्यवस्था चलती है सिर्फ धारणा से। नहीं तो क्या कीमत है पुलिसवाले की? अब इस गांव में दस लाख लोग हैं। दस लाख आदमियों को कंट्रोल में अगर रखना हो तो कितने पुलिसवाले चाहिए? कम से कम दस लाख तो चाहिए ही। लेकिन दस पुलिसवालों से काम चलता है। क्योंकि मान्यता है। पुलिसवाले को देख कर लोग रुक जाते हैं।
लेकिन अगर तुमने ज्यादा जबरदस्ती की तो पुलिसवाले की स्थिति खुल जाती है। तब लोग देख लेते हैं कि इस वर्दी के पीछे भी छिपा तो साधारण आदमी ही है। मारो पत्थर, यह भी भागता है। उठाओ लट्ठ, यह भी छिपता है। एक बार लोगों को पता चल गया कि पुलिसवाले के पीछे भी साधारण आदमी है और राष्ट्रपति के पीछे भी साधारण आदमी है, और बाकी सब ऊपरी चाकचिक्य है, भीतर कुछ खास नहीं है; यह भी वैसे ही डरा हुआ है जैसे कि हम डरे हुए हैं; यह भी वैसे ही घबड़ाया हुआ है जैसे हम घबड़ाए हुए हैं; एक बार आस्था उठ गई, फिर जमानी बहुत-बहुत मुश्किल है।
वही हो जाता है जब तुम ज्यादा उपाय करने लगते हो। पुलिस सब उपाय कर रही है। अब उसके पास कुछ सुरक्षित उपाय बचा भी नहीं है। व्यवस्था तुम्हारी बड़ी तलवारों से नहीं चलती। तुम्हारा तलवार उठाना यह बताता है कि तुम घबड़ा गए हो। पुलिस का गोली चलाना यह बताता है कि पुलिस घबड़ा गई है और जनता ने पुलिस की हिम्मत तोड़ दी है।
इंग्लैंड की पुलिस को सूचना है कि बिल्कुल असंभव स्थिति में ही चोट की जाए, क्योंकि चोट खतरनाक है। क्योंकि चोट करके तुम यह बता रहे हो कि तुम्हारा होना काफी नहीं है, तुम्हारी मौजूदगी काफी नहीं है। इंग्लैंड भर अकेला मुल्क है जो इस पूरी सदी में सबसे ज्यादा व्यवस्थित है। और कारण है कि व्यवस्था करने की बहुत चेष्टा नहीं है। क्योंकि चेष्टा जितनी ज्यादा की जाए उतना ही साफ होता जाता है कि चेष्टा करने वालों की भी कोई ताकत नहीं है। क्या करोगे तुम? भीड़ बड़ी है, अराजकता फैल जाएगी।
लाओत्से कहता है, कैसे मैंने जाना? कहता है, मैंने जाना यह देख कर कि जितने तेज शस्त्र होते हैं, उतनी ही अराजकता बढ़ती है।
शस्त्रों पर भरोसा मत करो। व्यवस्था एक मनोदशा है, व्यवस्था कोई तलवार नहीं है। और ध्यान रखो, मरता क्या न करता! क्योंकि अगर तुम मारने पर उतारू हो गए तो जो मर रहा है वह भी मारने पर उतारू हो जाता है। और एक बार जनता मारने पर उतारू हो जाए, फिर कोई उपाय नहीं है; फिर तुम कुछ भी नहीं कर सकते। बड़े से बड़े सम्राट धूल में गिरते देखे जाते हैं। हेलसिलासी अभी-अभी गिरा धूल में। वह शक्तिशाली आदमी था। चालीस साल तक सख्ती से उसने हुकूमत की। और ऐसे गिर गया जैसे कि घास का पुतला हो। क्या हो गया?
सख्ती ही यहां ले आई। जनता उस सीमा पर आ गई जहां अब कुछ खोने का डर न रहा। उलटा दिया। हेलसिलासी को उलटाना बड़ी अनूठी घटना है; कोई सोच भी नहीं सकता था। क्योंकि वह कहता था किंग ऑफ किंग्स अपने को, कि वह राजाओं का राजा है। और था भी वह शक्तिशाली आदमी। और चालीस साल तलवार के बल पर उसने हुकूमत

की। लेकिन ऐसे गिर गया जैसे खेत में खड़ा हुआ धोखे का आदमी गिर जाता है, आवाज भी न हुई। जिस दिन उसको उतारा राज-सिंहासन से उस दिन सिर्फ दो आदमी अंदर गए और उन्होंने उससे कहा कि आप बाहर चल कर कार में बैठ जाएं। स्थिति को भांप कर... । क्योंकि जनता पूरे विरोध में है, और पूरा सैनिक धीरे-धीरे जनता के साथ हो गया। क्योंकि आखिर सैनिक जनता का हिस्सा है। कब तक तुम सैनिक से जनता को पिटवाओगे?
अगर जनता को तुम सैनिक से पिटवाओगे तो आज नहीं कल सैनिक भी समझ जाएगा
कि मैं अपने को ही पीट रहा हूं। ये मेरी मां है, मेरे पिता हैं, मेरे भाई हैं, मेरे बेटे हैं। यह कितनी देर चल सकता है? तुम सैनिक और जनता के बीच कितनी देर फासला रख सकते हो? क्योंकि सैनिक आता तो जनता से है। वर्दी उतारी कि वह भी जनता का हिस्सा हो जाता है। यह वर्दी का धोखा कितनी देर?
सैनिक भी विरोध में हो गया। सिर्फ दो सैनिक भीतर गए और हेलसिलासी से कहा कि आप उठें, बिना कुछ ना-नुच किए, बाहर खड़ी गाड़ी में बैठ जाएं। हेलसिलासी ने चारों तरफ देखा और चुपचाप उठ कर बाहर आया। सिर्फ उसने एक बात कही, क्योंकि वह इतनी छोटी गाड़ी में कभी नहीं बैठा था। एक फिएट! वह बैठता था बड़ी गाड़ियों में, लंबी से लंबी गाड़ियों में। उसने कहा, इस छोटी गाड़ी में? उस सैनिक ने कहा, चुपचाप बैठ जाएं। हेलसिलासी चुपचाप सरक कर भीतर बैठ गया।
गाड़ी चली गई। उसे ले जाकर उन्होंने गांव के एक छोटे से मकान में रख दिया। जैसे कि कोई खेत में खड़ा हुआ पुतला गिर जाए।
व्यवस्था एक भाव-दशा है; तलवारों से नहीं चलती। और जब कोई राज्य तलवार
का भरोसा करने लगता है, समझो कि उसके गिरने के दिन आ गए; आखिरी वक्त आ गया।
यह मौत की घड़ी है। जैसे मौत के क्षण में एक भभक आती है जीवन की, और लपट बुझने के पहले जोर से भभकती है, ऐसे ही जिस दिन बड़ी तलवार राज्य के हाथ में उठी देखो, समझो कि मौत करीब आ गई। यह आखिरी भभक है। अब आखिरी उपाय किया जा रहा है।
लाओत्से कहता है, "जितने तकनीकी कौशल होते हैं, उतने ही लोग ज्यादा चालाक हो जाते हैं।"
लाओत्से यंत्रों के विरोध में था। और उसकी बात सच है। क्योंकि यंत्र
एक तरह की चालाकी है, प्रकृति के साथ एक तरह की कनिंगनेस। तुम प्रकृति से वह निकाल लेने की कोशिश कर रहे हो जो प्रकृति देने को तैयार न थी। यंत्र का मतलब यही है। तो जितने तकनीकी कौशल बढ़ते जाते हैं उतने लोग चालाक होते जाते हैं। जब तुम प्रकृति के साथ चालाक हो तो क्या वजह है कि मनुष्य के साथ चालाकी न की जाए? कोई कारण नहीं है। चालाकी चालाकी है। तुम जब चीजों को धोखा दे रहो हो... ।
अब अमरीका में हर चीज को धोखा दिया जा रहा है। फलों में इंजेक्शन लगाए जाते हैं, ताकि फल खूब बड़ा हो जाए। अब फल को इंजेक्शन देकर तुम वृक्ष के प्राण सोख रहे हो। मुर्गियां, भैंसें, सब इंजेक्शन देकर उनसे ज्यादा दूध लिया जा रहा है। कोई फर्क नहीं पड़ता, बेहूदे ढंग से या सुसभ्य ढंग से। कलकत्ते में एक पाप चलता है कि गाय या भैंस की योनि में एक डंडा डाल देते हैं दूध लगाते वक्त। उससे उसे इतनी बेचैनी होती है, लेकिन उस बेचैनी के कारण वह ज्यादा दूध दे देती है घबड़ाहट में। उसे पीड़ा होती है, लेकिन ज्यादा दूध दे देती है। अब यह बहुत अभद्र ढंग हुआ। एक इंजेक्शन लगा दिया, उस इंजेक्शन के कारण, हार्मोन्स के कारण ज्यादा दूध निकल आता है। लेकिन अब तुम गाय को धोखा दे रहो हो।
जो गाएं मांसाहार के लिए काटी जाती हैं, उनको तो वे बिल्कुल इंजेक्शन देकर कोमा में रखते हैं। उनको बाहर भी नहीं लाते, रोशनी में भी नहीं लाते। उनको तो बिल्कुल वातानुकूलित गृहों में इंजेक्शन देकर ही रखते हैं। वे कोमा में पड़ी रहती हैं बेहोश, लेकिन उनका मांस बढ़ता जाता है इंजेक्शन दे- देकर। इतना मांस बाहर नहीं बढ़ सकता। क्योंकि वे चलेंगी-फिरेंगी तो मांस पचता है। तो उतना नुकसान होता है धंधे वाले को। तो उनको चलने-फिरने ही नहीं दिया जाता। उनका जीवन बिल्कुल पौधों की तरह कर दिया जाता है। पड़ी है गाय, उसको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं। उसका मांस बढ़ता ही जाता है। वह मांस का लोथड़ा है सिर्फ। वह बेहोश है। बस उसको काट देंगे। वह जीयी, इसका भी उसको कभी

पता नहीं चलेगा। उसने कभी सांस भी जीवन की ली, इसका उसे कोई पता नहीं चलेगा।
अब यह सब चालाकी है।
लाओत्से कहता है कि जितना तकनीकी कौशल बढ़ता है, उतनी ही चालाकी बढ़ती जाती है।
एक घटना घटी। एक आदमी ने किसी को गोली मारी अमरीका के एक नगर में। जिस आदमी ने गोली मारी वह तो भाग गया; और यह आदमी मर गया, और तत्क्षण उसका हृदय निकाल लिया गया। क्योंकि आदमी मर ही रहा था तो उसका हृदय निकाल लिया ताजा। और वह हृदय दूसरे आदमी को लगा दिया गया। कोई हजार मील दूर तत्क्षण एरोप्लेन से ले जाकर वह, किसी मरते हुए मरीज को हृदय के, लगा दिया गया। फिर एक बड़ी कानूनी दिक्कत आई। वह आदमी पकड़ लिया गया जिसने गोली मारी थी। उसके वकील ने अदालत में कहा कि जब तक हृदय बंद न हो जाए तब तक किसी को मरा हुआ नहीं माना जा सकता। और उस आदमी का हृदय अब भी चल रहा है--दूसरे आदमी के भीतर। इसलिए पहले तो यह प्रमाणित करना जरूरी है कि वह आदमी मर गया। अब ऐसी कोई घटना पहले कानून के इतिहास में घटी नहीं थी। यह बड़ी मुसीबत हो गई अदालत को कि करना क्या! क्योंकि जब तक हृदय बंद न हो जाए तब तक आदमी मरा नहीं है। तो वकील का कहना यह था कि आप उसको दंड दे सकते हैं हमला करने का, लेकिन हत्या का नहीं। हमला करने का दंड तो साधारण है, हत्या का दंड भयंकर है।
संयोग की बात थी, इसलिए निबटारा हो गया। लेकिन अब कानूनविद बड़ी चिंता में पड़े हैं। क्योंकि यह तो रोज मामला बढ़ेगा। संयोग की बात थी कि जिसको हृदय का आरोपण किया था वह मर गया। इसलिए कानून का मामला सुलझ गया कि ठीक है, अब हृदय भी बंद हो गया, वह आदमी मर गया पूरा। इसको अब हम फांसी की सजा दे सकते हैं, अपराधी को। लेकिन अगर वह न मरता?
जैसे-जैसे तकनीकी कौशल बढ़ता है वैसे-वैसे लोग सब तरफ से चालाक भी होते जाते हैं। विज्ञान चालाकी है, कनिंगनेस है। वह प्रकृति के छिपे हुए रहस्यों को जबरदस्ती उघाड़ना है। प्रकृति देना भी नहीं चाहती तो भी ले लेना है। वह बलात्कार है। और उस बलात्कार की जितनी ज्यादा व्यवस्था हो जाती है उतना आदमी फिर सब तरफ से चालाक हो जाता है। फिर आदमी से भी क्या फर्क है? आदमी को भी धोखा देने में क्या अड़चन है? निकालना ही ज्यादा है तो आदमी से भी ज्यादा निकाला जा सकता है।
"जितने ही अधिक कानून होते हैं, उतने ही अधिक चोर और लुटेरे होते हैं।" कानून से चोर-लुटेरे मिटते नहीं, कानून से ही बनते हैं। अगर तुम चाहते
हो कि दुनिया में कम चोर-लुटेरे हों तो कम से कम, न्यूनतम कानून चाहिए। जितने कम कानून होंगे उतने कम चोर-लुटेरे होंगे। क्योंकि कानून परिभाषा देता है--कौन चोर है, कौन लुटेरा है। कानून पर निर्भर करता है चोर-लुटेरा। जैसे मैंने अभी तस्करों की बात की। अगर दुनिया में कोई कानून न हो कि एक राज्य से दूसरे राज्य में सामान को ले जाने में कोई बाधा नहीं है, कोई पहरेदार नहीं खड़ा है, तस्कर विदा हो जाएगा। तस्कर की कोई जरूरत न रही। अगर दुनिया में संपत्ति समान रूप से विभाजित हो या संपत्ति न हो, चोर विदा हो जाएंगे। चोर की कोई जरूरत न रही।
लेकिन बड़ी कठिनाई है; चोर विदा नहीं किए जा सकते। क्योंकि अगर चोर विदा
हो जाए तो न्यायाधीश कहां रहेगा? वह उसका दूसरा पहलू है। अगर तस्कर विदा हो जाए तो तस्कर को पकड़ने वाले लोग कहां जाएंगे? अगर चोर-लुटेरे चले जाएं तो वकीलों का क्या होगा? न्यायाधीशों का क्या होगा? मजिस्ट्रेटों का क्या होगा? कानूनविद, जिनको तुम पद्म-विभूषण की उपाधियां देते हो, इनका क्या होगा? ये सब एक ही धंधे के साझेदार हैं। चोर और न्यायाधीश एक ही धंधे के हिस्से हैं। उनका संबंध वैसे ही है जैसा ग्राहक का और दुकानदार का। उनमें से एक गया कि दूसरा नहीं बचेगा। पुलिस का क्या होगा अगर लोग चोर न हों? सच तो यह है कि अगर लोग बुरे न हों तो नेता का क्या होगा? राष्ट्रपति को किसलिए सिर पर बिठा कर रखोगे? प्रधानमंत्रियों की क्या जरूरत है? क्योंकि लोग बुरे हैं, उनको सुधारने की उनको जरूरत है।
तुम्हें लगता है ऊपर से, वे सुधारने में लगे हैं। वे सुधार नहीं सकते, क्योंकि यह उनका आत्मघात है। वे खुद मरेंगे, अगर लोग सुधर गए। कोई राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि लोग सुधर जाएं। कहता कितना ही हो, चाह नहीं सकता।

क्योंकि चाहने का तो मतलब होगा कि मैं मरा, मैं गया। कानून चोरों को बना रहा है। और फिर तुम और कानून बनाते हो, क्योंकि चोरों को रोकना है। तब और चोर बनते हैं। तब तुम और कानून बनाते हो। कानून बढ़ते जाते हैं, चोर बढ़ते जाते हैं। अदालत बड़ी होती जाती है। कारागृह बड़े होते जाते हैं। चोर-लुटेरे बढ़ते चले जाते हैं। एक बड़ा जाल है। फिर वकील चाहिए। फिर विशेषज्ञ चाहिए।
अगर तुम गौर से देखो तो सारी बात कहां से पैदा हो रही है? क्योंकि तुमने कानून बनाया। इसका यह मतलब नहीं है कि कानून बिल्कुल न हो तो चोर बिल्कुल न होंगे। न्यून रह जाएंगे। अति न्यून रह जाएंगे। और अगर कानून बिल्कुल ही खो जाए और जिस वजह से हम कानून बनाते हैं वह वजह मिटा दी जाए--जो कि मिट सकती है, जिसमें कोई अड़चन नहीं है।
अभी कोई पानी नहीं चुराता, क्योंकि पानी खुला है, कोई भी ले सकता है। और अभी पानी के चोर नहीं हैं, न पानी के चोरों के वकील हैं, न अदालतें हैं। क्योंकि पानी सुलभ है, सभी को उपलब्ध है। और सबकी जरूरत है। लेकिन मरुस्थल में पानी चोरी होने लगता है। और मरुस्थल में कानून बनाना पड़ता है कि कोई पानी न चुरा ले।
तुम्हारी जिंदगी में जरूर बहुत से मरुस्थल हैं, जिनके कारण चोरी- बेईमानी है। उनको मिटाओ मरुस्थलों को। कानूनों से वे नहीं मिटते। कानूनों से चोर बढ़ते हैं, मरुस्थल बढ़ते हैं। करीब-करीब सारी दुनिया चोर होने की हालत में आ गई है। इस वक्त ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो किसी न किसी तरह की चोरी न कर रहा हो। टैक्स बचा रहा होगा; टिकट न दे रहा होगा ट्रेन में; कोई और तरकीब लगा रहा होगा।
और मैं कहता हूं कि इसमें लोग जिम्मेवार नहीं हैं। लोगों को जीना है; तुमने जीना ही असंभव कर दिया है। तुमने सब तरफ से उपद्रव बांध दिया है। और उपद्रव इतना ज्यादा हो गया है कि उसे बिना तोड़े कोई जी नहीं सकता। और जब कोई तोड़ता है तो वह चोर हो जाता है। और जब तुम एक चोरी कर लेते हो तो तुम दूसरे के लिए तैयार हो जाते हो। फिर धीरे-धीरे चोरी सुलभ हो जाती है। वह जीवन का ढंग हो जाता है। फिर तुम्हें ख्याल भी नहीं रहता कि कुछ गलत कर रहे हैं। कोई गलत का सवाल ही नहीं है। तुम अगर इनकम टैक्स बचा रहे हो तो कोई गलत का सवाल नहीं है। तुम भूल ही गए हो कि इसमें कुछ गलत है। चोरी बढ़ती है, जितने कानून की जकड़ बढ़ती है।
लाओत्से कहता है, "इसलिए संत कहते हैं, मैं कुछ नहीं करता हूं और लोग आप
ही सुधर जाते हैं।"
एक और ढंग है। शासक का ढंग है, उससे संसार भ्रष्ट हुआ। एक संत का ढंग है जिसका उपयोग भी कभी नहीं हुआ। कभी छोटे-छोटे कबीलों में उपयोग हुआ है। बुद्ध के पास कुछ साधु इकट्ठे हो गए, उनके जीवन में एक उपयोग हुआ। लाओत्से के पास कुछ लोग इकट्ठे हो गए। छोटे-छोटे समुदायों में प्रयोग हुआ है। लेकिन जहां भी प्रयोग हुआ है, अनूठा है। संत कुछ कहता नहीं... ।
"मैं कुछ नहीं करता, लोग आप ही सुधर जाते हैं।"
संत के होने में, संत के होने मात्र में, मौजूदगी में कोई बात है जो लोगों को बदलती है।
"मैं मौन पसंद करता हूं, लोग अपने आप पुण्यवान हो जाते हैं। मैं कोई व्यवसाय नहीं करता और लोग आप ही समृद्ध होते हैं। मेरी कोई कामना नहीं है, लोग आप ही सरल और ईमानदार हैं।"
संत के होने का ढंग संक्रामक है। वह तुम्हें नियम नहीं देता, न तुम्हें कोई अनुशासन देता है। वह तुम्हें सिर्फ अपनी मौजूदगी देता है। उसकी मौजूदगी से तुम्हारे जीवन में नियम आने शुरू होते हैं। उन नियम के निर्धाता तुम होते हो। एक अनुशासन पैदा होता है जो भीतरी है, जो तुम्हारा बनाया हुआ है, जो किसी और के निषेध पर खड़ा नहीं है। वह तुम्हें कोई आज्ञा नहीं देता, वह तुम्हें कोई आदेश नहीं देता। उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर एक आज्ञा बन जाती है। उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर एक आग बन जाती है। उसकी मौजूदगी तुम्हें एक नई दिशा में इंगित देने लगती है, और तुम चल पड़ते हो। वह तुम्हें चलाता नहीं। उसकी कोई कामना नहीं है। और तुम रूपांतरित हो जाते हो।

संसार तब तक भ्रष्ट रहेगा जब तक शासक संसार का केंद्र है। जब संत संसार
का केंद्र होंगे, और संत शासक नहीं हैं, क्योंकि वे अनुशासन देते ही नहीं। संत का होना ही, उसके होने का स्वाद ऐसा है कि तुम्हें उसका स्वाद एक बार लग जाए कि फिर तुम वही न रह सकोगे जो तुम थे। उसकी सुगंध ऐसी है कि तुम्हारे नासापुट एक बार पहचान लें तो सभी सुगंधें दुर्गंध हो जाएंगी। उसके होने का ढंग, उसकी ऊर्जा, उसका वायुमंडल ऐसा है कि तुम पहली बार उसकी मौजूदगी में स्वस्थ, शांत और आनंदित अनुभव करोगे। उसकी मौजूदगी समाधि बन जाएगी। और जब स्वाद लग जाता है तब फिर तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तब तुम जीवन के अंतिम शिखर तक पहुंचे बिना न रुकोगे। स्वाद खींचेगा। स्वाद एक चुंबक हो जाएगा। तो दो ढंग हैं दुनिया को चलाने के। एक शासक का ढंग है। अतीत पूरा कह रहा
है कि वह हार गया ढंग, असफल हुआ। उससे दुनिया ठीक न हुई; बिगड़ी, बुरी हुई। एक संत का ढंग है। दुनिया को चलाने के दो ढंग हैं--एक राजनीति का, एक धर्म का। राजनीति का ढंग असफल हो गया है। लेकिन चलता क्यों जाता है?
चलता इसलिए जाता है कि तुम सदा सोचते हो कि एक राजनीतिज्ञ असफल हो गया
तो दूसरा सफल होगा। इंदिरा असफल हुई तो जयप्रकाश सफल हो सकते हैं। इस तरकीब से राजनीतिज्ञ जीते हैं। जब इंदिरा की हवा आती है तो लोग कहते हैं, बस अब बड़ी आशा आ गई, अब इंदिरा कुछ करके दिखाएगी। लोग पूछते नहीं कि राजनीतिज्ञों ने कभी कुछ करके दिखाया--कभी? पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में उनसे कुछ हुआ है? वे सिर्फ आश्वासन देते हैं, कभी पूरा नहीं करते। लेकिन तरकीब कहां है? तरकीब यह है कि जब एक राजनीतिज्ञ हारता है, दूसरा खड़ा हो जाता है। और वह कहता है कि यह हार गया, यह गलत सिद्ध हुआ; इसकी नीति गलत थी, इसकी व्यवस्था गलत थी। हम नई व्यवस्था देते हैं, हम नई नीति देते हैं; इससे सब ठीक हो जाएगा। तुम्हारी आशा फिर जग जाती है। तुम इसके पीछे हो लेते हो। तुम जैसा पागल आदमी खोजना मुश्किल है। तुम कितनों के पीछे हो लिए! इसकी बात तुम्हें भरोसे की लगती है। क्योंकि इसके हाथ में सत्ता नहीं है। यह सेवक मालूम पड़ता है। फिर तुम इसे सत्ता पर बिठा दोगे। चार-पांच साल लगेंगे तुम्हें फिर आशा को खोने में, फिर तुम निराश होओगे। तब तक कोई दूसरा राजनीतिज्ञ खड़ा हो जाएगा।
राजनीतिज्ञ एक-दूसरे के विरोधी हैं, यह तुम समझते हो। तुम्हें यह पता नहीं है कि नीचे दोनों मिले हैं; शड्यंत्र सम्मिलित है। एक हारता है तो दूसरा खड़ा हो जाता है। राजनीति को वे नहीं हारने देते।
और जिस दिन राजनीतिज्ञ नहीं, राजनीति हारेगी, उस दिन भाग्य उदय होगा। जिस दिन तुम यह सारा उपद्रव देख पाओगे कि ये सब हार जाते हैं और ये एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इनमें जरा भी कोई फर्क नहीं है। हां, एक सत्ता में है, एक सत्ता के बाहर। सत्ता में जो है वह हार गया तो सत्ता के बाहर वाला खड़ा हो जाता है कि मुझसे आएगा, अब पूर्ण क्रांति मुझसे होने वाली है।
पूर्ण क्रांति कभी हुई नहीं; क्रांति ही कभी नहीं हुई। सिर्फ वे बदल जाते हैं। एक राजनीतिज्ञ दूसरे को बदल देता है। तुम्हारी आशा थोड़ी देर के लिए फिर लग जाती है। तुम्हारी आशा वैसी ही है जैसे लोग मरघट ले जाते हैं किसी को, अरथी को, तो एक कंधा थक जाता है तो अरथी को दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर दूसरा थक जाता है, तब तक पहला आराम कर लेता है; फिर अरथी बदल लेते हैं। राजनीतिज्ञ तुम्हारे एक-दूसरे को राहत दे रहे हैं।
राजनीति असफल हो जाए तो तुम्हारे जीवन में पहली दफा धर्म का बोध आएगा।
तब तुम समझोगे कि सफलता सिर्फ एक मार्ग से मिल सकती है, और वह है ऐसे लोगों का प्रादुर्भाव जो बिना कुछ किए करने की कला जानते हैं।
आज इतना ही।

सत्तानबेवां प्रवचन

शासन जितना कम हो उतना ही शुभ

Chapter 58

Lazy Government

When the government is lazy and dull,
Its people are unspoiled;
When the government is efficient and smart,
Its people are discontented.
Disaster is the avenue of fortune,
(And) fortune is the concealment for disaster,
Who would be able to know its ultimate results?
(As it is), there would never be the normal,
But the normal would (immediately) revert to the deceitful,
And the good revert to the sinister.
Thus long has mankind gone astray!
Therefore the Sage is square (has firm principles),
But not cutting (sharp-cornered),
Has integrity, but does not hurt (others),
Is straight, but not high-handed,
Bright, but not dazzling.

अध्याय 58

आलसी शासन

शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।
जब शासन दक्ष और साफ-सुथरा होता है, तब प्रजा असंतुष्ट रहती है।
विपत्ति भाग्य के लिए छांहदार रास्ता है, और भाग्य विपत्ति के लिए ओट है।
इसके अंतिम नतीजों को जानने योग्य कौन है?
जैसा यह है, सामान्य कभी भी अस्तित्व में नहीं होगा,
लेकिन सामान्य शीघ्र ही पलट कर छलावा बन जाएगा,
और मंगल पलट कर अमंगल।
इस हद तक मनुष्य-जाति भटक गई है!
इसलिए संत ईमानदार या दृढ़ सिद्धांत वाले होते हैं,
लेकिन काट करने वाले या तीखे नोकों वाले नहीं;
उनमें अखंडता, निष्ठा होती है, लेकिन वे दूसरों की हानि नहीं करते;
वे सीधे होते हैं, पर निरंकुश नहीं;
दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।

शासन एक अपरिहार्य बुराई है, ए नेसेसरी ईविल; उससे बचना मुश्किल है। लेकिन जितना बचा जा सके उतना शुभ।

शासन का मूलभूत हिंसा है; शासन अहिंसक नहीं हो सकता। इसलिए शासन है तो बीमारी। शासन औषधि नहीं है; उपचार का धोखा है।

शासन भी वही करता है जिस बुराई को कि शासन मिटाना चाहता है। एक आदमी हत्या करता है तो शासन उसे फांसी देता है। हत्या मिटती नहीं, हत्या दो गुनी हो जाती है। आदमी की भूल थी कि उसने किसी की हत्या की; अब शासन उसकी हत्या करता है। हत्या बुरी है, ऐसा मालूम नहीं होता। कौन हत्या करता है, इस पर सब

कुछ निर्भर है। अगर शासन करे तो शुभ, अगर लोग करें तो अशुभ। यह कैसा शुभ है और कैसा अशुभ है?
शासन जब अदालतों के द्वारा हत्याएं करवाता है तो न्यायाधीश जरा भी अपने को अपराधी नहीं समझते, बल्कि समाज के सेवक समझते हैं। न्यायाधीश कभी एहसास नहीं करता अपने अंतःकरण में कि उसने कुछ बुरा किया है। क्योंकि शासन की स्वीकृति है। न्यायाधीश तो राज्य में व्यवस्था ला रहा है; बुरों को मिटा रहा है। लेकिन मिटाना ही बुराई है, यह उसके ख्याल में नहीं है।
दूसरे महायुद्ध के बाद जब जर्मन अपराधियों पर मुकदमे चले तो यह बात बड़ी प्रगाढ़ रूप से सामने आई। क्योंकि जिन्होंने लाखों हत्याएं की थीं हिटलर की आज्ञा से उन्होंने अदालत से कहा कि हमारा कोई कसूर नहीं है, हम तो सिर्फ आज्ञा का पालन कर रहे थे। और इस बात में सचाई है। ऊपर से आज्ञा मिली थी, हम वही कर रहे थे। और सारी दुनिया चकित होकर यह बात अनुभव की कि जो लोग अपने सामान्य जीवन में भले थे, जो किसी को कांटा भी न चुभाएंगे, जो किसी का बुरा और अहित भी न चाहेंगे, उन लोगों ने लाखों लोग इस तरह जला दिए जैसे घास-पात हों।
जो आदमी हिटलर के सबसे बड़े कारागृह का प्रधान था, कहते हैं, अंदाजन उसने दस लाख लोगों को जलाया। हिटलर ने ऐसी भट्टियां बनाई थीं जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ एक सेकेंड में जलाए जा सकें। उन भट्टियों का वह आदमी मालिक था। लेकिन वह रोज बाइबिल पढ़ता था, चर्च नियमित जाता था; जो भी थोड़ा दान कर सकता था, दान भी करता था। और कभी किसी ने नहीं जाना कि वह आदमी बुरा हो या किसी का उसने कोई अहित किया हो। रात प्रार्थना करके ही सोता था। उसके कमरे में जीसस का चित्र सूली पर लटका हुआ टंगा था। और यह आदमी दस लाख आदमियों की हत्या के लिए जिम्मेवार था। उसने अदालत से कहा, मेरा कोई कसूर नहीं, मैं सीधा-सादा आदमी हूं। मैंने सिर्फ आज्ञा का पालन किया है। और आज्ञा का पालन बुराई नहीं है।
जिस अदालत के सामने इस आदमी ने यह कहा उस अदालत ने भी इसे फांसी की सजा दी। अगर कल कहीं कोई और ऊपर बड़ी अदालत हो और वह इस अदालत के न्यायाधीशों से पूछे कि तुमने यह क्या किया? तो वे भी कहेंगे कि हमने तो न्याय का पालन किया, जो न्याययुक्त था वही किया।
अपराधी में और न्यायाधीश में फर्क क्या है?
अपराधी और न्यायाधीश में इतना ही फर्क हैः अपराध तो दोनों करते हैं, एक समाज की सहमति से करता है और एक समाज की असहमति से करता है। बस इतना ही फर्क है।
शासन से बड़ा अपराधी संसार में कोई भी नहीं। क्योंकि जब तुम अपराध को न्याय के नाम पर करते हो तब करने का मजा ही और हो जाता है। बड़े से बड़े अपराधी को भी पीड़ा अनुभव होती है। उसका भी अंतःकरण कभी उसे कहता है, चोट करता है; उसके अंतःकरण में भी कभी आवाज उठती है कि तू जो कर रहा है वह गलत है। लेकिन अदालतों के न्यायाधीशों के मन में यह कभी सवाल नहीं उठता। उनका गलत भी सही है; वे जो बुरा कर रहे हैं वह भी ठीक है। क्योंकि वे न्याय के नाम पर कर रहे हैं; सत्य, शासन, सुव्यवस्था के नाम पर कर रहे हैं।
एक बात ठीक से समझ लेना कि बुराई कभी इससे ज्यादा बुराई नहीं होती जब तुम उसे भलाई के नाम में करते हो। क्योंकि भलाई का आवरण उसे छिपा लेता है। भलाई के आवरण में बुराई जितनी जहरीली हो जाती है उतनी जहरीली कभी भी नहीं होती। क्योंकि तुम जहर के ऊपर शक्कर चढ़ा लेते हो। कंठ में उतर जाना बड़ा आसान हो जाता है। लेकिन जहर पर तुम शक्कर भी चढ़ा लो, इससे जहर अमृत नहीं हो जाता।
दुनिया का इतिहास दो तरह के लुटेरों से भरा है। एक तो वे लुटेरे हैं जो समाज के विपरीत हैं; वे डाकू हैं जो समाज के विपरीत हैं। और एक वे लुटेरे हैं जो समाज के अनुकूल हैं। वे लुटेरे शासन की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं। वे अपराध भी करते हैं गहन, तो भी धर्म के नाम पर करते हैं। वे तुम्हें मारते भी हैं, तो तुम्हारे हित में और तुम्हारे मंगल में। वे तुम पर गोली भी चलाते हैं, तुम्हारी छाती भी बेध देते हैं, वे तुम्हारी आत्मा को भी कुचल डालते हैं जूतों के तले, तो भी तुम्हारे उत्कर्ष के लिए।

इसलिए लाओत्से जो कहता है वह तुम्हें बहुत हैरानी का मालूम पड़ेगा। लेकिन वह सत्य है।
लाओत्से कहता है, "शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"
यह तुम भरोसा ही न करोगे कि कोई संत ऐसी बात कहेगा!
"व्हेन दि गवर्नमेंट इ.ज लेजी एंड डल, इट्स पीपुल आर अनस्पॉइल्ड।"
क्या मतलब है? शासन सुस्त, आलसी? तुम तो सभी चाहते हो कि शासन आलसी है, सुस्त है, उसे सजग होना चाहिए, चुस्त होना चाहिए, कर्मठ होना चाहिए। तुम तो सोचते हो कि समाज में इतनी बुराई है, क्योंकि शासन आलसी है। और लाओत्से तुमसे ठीक उलटा देखता है। और लाओत्से के पास तुमसे बहुत दूर देखने वाली आंखें हैं। वह तुमसे बहुत गहरे देखता है। लाओत्से कहता है, शासन जब आलसी और सुस्त होता है तब लोग निर्दोष होते हैं। क्या मतलब है? इसे बहुत गहरे में जाकर समझना पड़े।
आलस्य भी कभी-कभी बड़ा गरिमावान होता है, और सुस्ती में भी गुण है। एक बात तो तुम ध्यान रख लो कि दुनिया में आलसी लोगों ने कभी भी कुछ बहुत बुरा नहीं किया है। तुम कितने ही आलसियों को गाली दो, लेकिन आलसियों के ऊपर कोई बड़ा अपराध नहीं है। क्योंकि अपराध करने के लिए भी आलस्य तो तोड़ना ही पड़ेगा। दुनिया में जितना उत्पात-उपद्रव है वह कर्मठ, जिनमें से कुछ को तुम कर्मयोगी भी कहते हो, उन्हीं के कारण है। आलसी तो उपद्रव करने की झंझट भी नहीं लेगा। उपद्रव करने में भी तो समृद्ध होना पड़ेगा, कुछ करना पड़ेगा। कौन आलसी तैमूरलंग हुआ है? कौन आलसी सिकंदर हुआ है कभी? कौन आलसी कभी हिटलर हुआ है?
नहीं, आलसी राजनीतिज्ञ हो ही नहीं सकता। आलसी बुराई करने जाएगा कैसे? उसे जाने और उठने की भी फुरसत नहीं है। आलसियों ने भला न किया हो, बुरा भी नहीं किया है। आलसी यहां इस समाज से निर्दोष गुजर गए हैं, बुरे-भले की कोई लकीर उनके ऊपर नहीं है।
नादिरशाह ने किसी ज्योतिषी को पूछा; नादिरशाह को नींद बहुत आती थी तो उसने ज्योतिषी को पूछा कि मुझे नींद बहुत आती है; और सभी धर्मग्रंथ कहते हैं कि आलस्य बुरा है, और मैं ज्यादा सोता हूं; इससे छूटने का उपाय क्या है? उस ज्योतिषी ने कहा कि धर्मग्रंथ की आप मत सुनें, वे किसी और के लिए कहते होंगे, आप तो चौबीस घंटे सोए रहें; यही आपके लिए सदगुण है।
नादिरशाह समझा नहीं। क्योंकि राजनीतिज्ञ आमतौर से प्रतिभा के धनी नहीं होते, आमतौर से उनकी बुद्धि में जंग लगा होता है। नहीं तो वे राजनीतिज्ञ ही क्यों हों?
नादिरशाह ने कहा, मैं समझा नहीं। तुम्हारा मतलब? उसने कहा, ज्यादा खोल
कर मैं कहूंगा तो मुश्किल में पडूंगा। नादिरशाह जिद्द पकड़ गया कि मैं तुम्हें किसी मुश्किल में न डालूंगा, तुम बात पूरी खोल कर कहो। तो ज्योतिषी ने कहा कि बात सीधी-साफ है। आप जितनी देर जगेंगे उतनी ही बुराई होती है। जितना आप जागते हैं उतना ही उपद्रव होता है। आप चौबीस घंटे के लिए सो जाएं, आप सोए ही रहें, ताकि संसार में शांति रहे। आपका आलस्य बड़ा हितकर है। धर्मग्रंथ किसी और के लिए कहते होंगे; वे आपके लिए नहीं लिखे गए हैं।
वह ज्योतिषी यह कह रहा है कि सबसे बड़ी बात तो यह होती कि आप पैदा ही न होते। फिर दूसरी बड़ी बात यह होती कि आप पैदा ही हो गए हैं तो सोए रहें। और तीसरी बड़ी घटना जो आपके जीवन से घट सकती है वह यह कि आप जितने जल्दी मर जाएं उतना अच्छा।
इसलिए लाओत्से कहता है, शासन सुस्त हो, आलसी हो।
सुस्त का अर्थ ही यह है कि शासन प्रत्यक्ष न हो, परोक्ष हो। सुस्त का मतलब यह है कि शासन हर जगह तुम्हारे बीच में न आ जाए, कि तुम उठो तो शासन खड़ा है तुम्हारे साथ, तुम चलो तो शासन खड़ा है, तुम हिलो तो शासन में बंधे हो। कानून इतना न हो कि तुम कारागृह में बंध जाओ।
आज कारागृह में जो लोग हैं वे तुमसे ज्यादा स्वतंत्र हैं। दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि उनकी दीवारें बहुत स्थूल हैं। तुम्हारे पास पारदर्शी दीवारें हैं कानून की, इसलिए तुम सोचते हो तुम स्वतंत्र हो। हो तुम नहीं

स्वतंत्र। तुम्हारे चारों तरफ कानून है। और सब तरफ से कानून तुम्हें घेरे हुए है। तुम जरा भी हिलने के लिए तुम्हें आजादी नहीं है। तुम बंधे हो। तुम्हारा कंठ घुट रहा है।
शासन के सुस्त होने का अर्थ है कि शासन तुम्हें थोड़ी सुविधा दे, स्वतंत्रता दे, और बीच में न आए। जब तक कि तुम किसी के लिए विधायक रूप से हानिकर न हो जाओ तब तक शासन को बीच में नहीं आना चाहिए। जब कि तुम किसी की दूसरे की स्वतंत्रता छीनने जा रहे हो तब शासन को बीच में आना चाहिए, लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता के बीच में नहीं आना चाहिए। जब तक तुम अपने में जी रहे हो तब तक शासन को ऐसा होना चाहिए जैसे वह है ही नहीं।
लेकिन तुम अगर रात रास्ते पर शांत भी खड़े हो आंख बंद करके तो पुलिसवाला
आ जाएगा कि यहां क्यों खड़े हो? आंख क्यों बंद की? मतलब क्या है? क्या कर रहे हो यहां? तुम किसी का कोई नुकसान नहीं कर रहे हो, तुम आंखें बंद किए रास्ते के किनारे खड़े हो। इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है; होने के लिए इतनी भी जगह नहीं बची है। कानून सब तरफ खड़ा है; कोने-कोने में, जगह-जगह, छिपा हुआ, गैर छिपा हुआ तुम्हारा पीछा कर रहा है।
लाओत्से कहता है, शासन सुस्त हो। उसका अर्थ है कि शासन कम से कम हो। दि लीस्ट गवर्नमेंट इ.ज दि बेस्ट। जितना कम हो, न के बराबर हो, उतना ही शुभ है। क्योंकि उतने ही तुम स्वतंत्र होओगे। और उतने ही तुम स्वयं होने के लिए मुक्त होओगे। उतनी ही तुम्हारे व्यक्तित्व की गरिमा अक्षुण्ण रहेगी। शासन कोई सौभाग्य नहीं है कि उसे बढ़ाए चले जाओ। शासन एक दुर्भाग्य है जिसे कम करना है। शासन का अर्थ है, परतंत्रता। शासन का अर्थ है, व्यक्ति का मूल्य कम है, समाज का मूल्य ज्यादा है। शासन का अर्थ है कि व्यक्ति को समाज का अनुसरण करना चाहिए हर कीमत पर। और अगर कोई झंझट हो तो व्यक्ति की कुर्बानी दी जाएगी समाज के लिए। यह तो बिल्कुल उलटा है धर्म के।
धर्म का सूत्र है कि व्यक्ति की गरिमा अंतिम है; व्यक्ति के ऊपर कुछ भी नहीं। और व्यक्ति की आत्मा का मूल्य चरम है; उसे किसी भी बलिवेदी पर चढ़ाया नहीं जा सकता। समाज सिर्फ शब्द है, राज्य केवल शब्द है। न तो समाज के पास कोई आत्मा है और न राज्य के पास कोई आत्मा है। ये मुर्दा संस्थाएं हैं। इनके लिए जीवंत व्यक्ति को चढ़ाया नहीं जा सकता। जीवित व्यक्ति आखिरी मूल्य है। और व्यक्तित्व की गरिमा को अक्षुण्ण रखना हो तो शासन जितना कम हो उतना ही शुभ है।
शासन जितना ज्यादा होगा उतना व्यक्ति कम हो जाता है। अगर शासन परिपूर्ण हो तो व्यक्ति बिल्कुल खो जाता है। व्यक्ति का फिर कोई पता नहीं रह जाता। नाजी जर्मनी में या फासिस्ट इटली में व्यक्ति की कोई गरिमा नहीं है। व्यक्ति जैसी कोई चीज ही नहीं है। राष्ट्र के नाम पर सब कुर्बान है। व्यक्ति को पोंछ कर मिटा दिया गया। एक भीड़ है अब--आत्मारहित। क्योंकि स्वतंत्रता के बिना आत्मा होती ही नहीं। इसीलिए तो हम आत्मा की परम दशा को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का अर्थ है, आत्मा इतनी मुक्त होती जाती है, इतनी मुक्त होती जाती है कि आत्मा के होने में और मुक्ति में कोई फासला नहीं रह जाता; दोनों एक ही चीज के नाम हो जाते हैं। तुम स्वतंत्रता हो। और व्यक्ति की गहनतम प्रतीति स्वतंत्रता की है। वही उसकी आकांक्षा है, मोक्ष की खोज है।
लेकिन अगर शासन बहुत हो तो तुम बंधे हो जाओगे; तुम मुक्त नहीं हो सकते। इसीलिए तो संन्यासी को जंगलों में भागना पड़ा। जंगलों की किसी खूबी के कारण नहीं; जंगल में क्या रखा है? समाज की बेहूदगी की वजह से एकांत में जाना पड़ा। क्योंकि समाज इतना अतिशय है कि वह तुम्हें होने ही नहीं देता।
बर्ट्रेंड रसेल ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में लिखा है कि एक आदिवासी कबीले में जाकर मुझे प्रतीति हुई कि काश, मैं भी इतना ही स्वतंत्र होता कि जब मौज होती तब गीत गाते! चाहे रास्ते पर नाचना होता तो नाचते, कोई बाधा न देता!
लेकिन लंदन के रास्ते पर तो नहीं नाच सकते। फौरन जेलखाने पहुंचा दिए जाओगे। जोर से गीत भी नहीं गाकर निकल सकते रास्ते पर, क्योंकि दूसरों को अड़चन आ जाएगी। गीत गाना दूर, तुम बिल्कुल चुप भी खड़े हो जाओ लंदन या दिल्ली

या बंबई के रास्ते पर, तुम किसी का कुछ भी नहीं कर रहे हो, तुम सिर्फ चुप्पी साधे हो, कठिनाई शुरू हो जाएगी।
अभी तीन दिन पहले ही पूना के अखबार में किसी का पत्र छपा है मेरे किसी संन्यासी के विरोध में कि वह रास्ते पर चुपचाप खड़ा था। और भीड़ लग गई और लोगों को इससे बाधा हुई। वह कुछ भी नहीं कर रहा था। जिसने लिखा है उसने भी लिखा है कि वह आंख बंद किए शांत खड़ा था, किसी का कुछ नहीं कर रहा था। लेकिन ट्रैफिक में उससे उपद्रव हुआ, लोगों को उससे बच कर निकलना पड़ा और वहां भीड़ लग गई। और उसके कारण अड़चन हुई। इस तरह की घटनाएं रोकी जानी चाहिए।
तुम किसी को चुपचाप खड़े होने का मौका भी नहीं देते। तुम्हें इतना भय है व्यक्ति की स्वतंत्रता से। तुम करीब-करीब भीड़ के हिस्से हो गए। तुम्हारा अपना कोई होना नहीं है।
लाओत्से संन्यास का पक्षपाती है, इसलिए शासन का विरोधी। जो भी इस संसार में संन्यास का पक्षपाती है वह शासन का विरोधी होगा। क्योंकि संन्यास का मतलब है, आखिरी मूल्य है व्यक्ति का, समाज का कोई मूल्य नहीं है। समाज तो केवल एक व्यवस्था मात्र है। समाज व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति समाज के लिए नहीं। ऐसी चरम उदघोषणा संन्यास है।
जीसस पर यहूदियों का सबसे बड़ा जो विरोध था, वह यही था कि उन्होंने कानून तोड़े। कानून ऐसे जिन्हें तोड़ कर उन्होंने किसी को नुकसान नहीं पहुंचाया, कानून तोड़ कर लाभ पहुंचाए। लेकिन यह सवाल नहीं है; कानून तोड़े। यहूदी मानते हैं कि सप्ताह के एक दिन, जिसको वे सबथ का दिन कहते हैं, उस दिन कोई काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस दिन परमात्मा ने भी विश्राम किया। और जो सबथ के दिन काम करे वह आदमी बड़ा अपराधी है, क्योंकि वह नियम तोड़ रहा है।
जीसस जेरूसलम के मंदिर में जा रहे थे और एक अंधे आदमी ने आवाज दी और कहा
कि सुनो मेरी आवाज, मेरी पुकार, मैं अंधा हूं। और मैंने सुना है कि तुम्हारे छूने से आंखें ठीक हो जाती हैं! तो जीसस लौटे। प्रार्थना करने जा रहे थे; वह उन्होंने एक तरफ सरका दी बात। लौटे; उसकी आंखें छुईं। कहानी कहती है, उसकी आंखें ठीक हो गईं। मंदिर के पुरोहित बड़े नाराज हुए। भीड़ लगा ली। और उन्होंने कहा, यह तुमने कैसे किया? सबथ के दिन कोई कृत्य नहीं किया जा सकता।
तो जीसस ने कहा कि मैंने किसी का नुकसान नहीं किया, किसी की आंखें नहीं फोड़ दीं। यह अंधा आदमी चिल्लाया और मैं इस प्रार्थना के क्षण में था कि यह चमत्कार हो सकता था। तो मैं प्रार्थना करने जाता या इस आदमी की आंखें ठीक करता! उन्होंने कहा कि यह प्रार्थना का दिन है। तो जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है; जीसस ने कहा, दि सबथ इ.ज फॉर मैन, दि मैन इ.ज नाट फॉर सबथ। कानून मनुष्य के लिए है, मनुष्य कानून के लिए नहीं।
यह सबसे बड़ा अपराध था जिसके लिए यहूदी जीसस को माफ न कर पाए। क्योंकि कानून तोड़ा गया।
समाज, मनुष्यता नियमों के लिए है या नियम तुम्हारे लिए?
वही प्रयोजन है लाओत्से का जब वह कहता है, राज्य आलसी और सुस्त हो। सोया हुआ हो, खड़ा हुआ नहीं। इतनी कर्मठता की जरूरत नहीं है, विश्राम करता हुआ हो। जब बहुत ही जरूरत पड़े तभी बीच में आए उठ कर। आलसी का यह अर्थ है। जैसे घर में आग लगी हो तो आलसी चलता हुआ दिखाई पड़ेगा। ऐसे बाहर से कोई बारात निकल रही हो तो आलसी कोई देखने नहीं आने वाला, कि बाहर कोई झगड़ा हो गया है तो आलसी कोई बाहर उठ कर आने वाला नहीं। लेकिन घर में आग लग गई हो तो शायद उठ कर आए, तो शायद कुछ करे।
आलस्य प्रतीक है। वह प्रतीक है इस बात का कि जब तुम्हारी अनिवार्य जरूरत हो तभी कृपा करके तुम प्रकट होओ, अन्यथा तुम्हारे प्रकट होने की कोई आवश्यकता नहीं है। राजधानियां मरघटों जैसी होनी चाहिए--गांव के बाहर। जब बहुत जरूरत हो तभी पता चलना चाहिए कि राजधानी है। राजनेता को छिपा कर रखना चाहिए, जैसे पहले लोग कोढ़ के बीमारों को गांव के बाहर कर देते थे--अंत्यज, छूने योग्य नहीं, अछूत। जब बहुत ही जरूरत हो तब उनको भीतर लाना चाहिए, अन्यथा गांव के बाहर। उनकी कोई आवश्यकता जब पड़े तभी।

लेकिन वे अतिशय हैं; जरूरत, गैर-जरूरत वे हमेशा खड़े हैं, हमेशा आगे खड़े हैं। जहां उनकी कोई भी आवश्यकता नहीं है वहां भी वे मौजूद हैं। अतिशय, उन्होंने सब तरफ से तुम्हें घेर लिया है। इतनी अतिशय कर्मठता नहीं चाहिए। उनके कर्म से शुभ नहीं हो सकता। स्वभाव शासन का शुभ नहीं है।
शासन का मतलब हैः किसी को दबाओ, परतंत्र करो; वह जो करना चाहता हो वह न करने दो; जो तुम करवाना चाहते हो वह करवाओ। ठीक है, एक जगह जरूरत मालूम पड़ती है, इसलिए अपरिहार्य बीमारी है। जब तक कि मनुष्य--सभी मनुष्य--संतत्व को उपलब्ध न हो जाएं तब तक शासन रहेगा। लेकिन कोई गुण-गरिमा नहीं है शासन की। तुम चिकित्सक के पास जाते हो जब तुम बीमार हो। राजनीतिज्ञ, शासन, राज्य तभी तुम्हारे पास आने चाहिए जब तुम कुछ ऐसा उपद्रव कर रहे हो जिससे दूसरों को हानि हो; अन्यथा नहीं। बस एक ही जगह उनकी जरूरत होनी चाहिएः जब तुम अपनी सीमा के बाहर जाकर दूसरे की स्वतंत्रता को नुकसान पहुंचा रहे हो। जब तक तुम अपनी सीमा के भीतर हो, जब तक तुम किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहे, जब तक तुम अपने भीतर अपने सुख में लीन हो, तब तक शासन को आलसी होना चाहिए।
लाओत्से कहता है, "जब शासन आलसी और सुस्त होता है तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"
यह जरा हैरानी का है। क्योंकि तुम इससे उलटी बात के लिए तो राजी हो जाओगे कि जब प्रजा निष्कलुष होती है तब शासन सुस्त और आलसी होता है। यह तो तुम्हें समझ में आ जाएगा, गणित साफ है कि जब प्रज्ञा निष्कलुष है तो अपने आप शासन सुस्त होता है, कोई प्रयोजन नहीं होता शासन को बीच में आने का। लेकिन लाओत्से उससे उलटी बात कह रहा है। और उलटी बात भी उतनी ही सही है। यह बात वैसी ही है जैसे मुर्गी पहले या अंडा पहले; तय करना मुश्किल है। मुर्गी से अंडा पैदा होता है, अंडे से मुर्गी पैदा होती है। वे अन्योन्याश्रित हैं, इंटरडिपेंडेंट हैं।
लाओत्से कहता है, प्रजा को निष्कलुष करो और शासन को सुस्त। क्योंकि वे दोनों अन्योन्याश्रित हैं। प्रजा को निर्दोष बनाओ और शासन को अकर्मठ। क्योंकि वे दोनों मुर्गे-अंडे की तरह जुड़े हैं। जब प्रजा निर्दोष होती है तो शासन की कोई जरूरत नहीं होती। जब शासन जरूरत से पीछे हट जाता है, अपनी जरूरत नहीं बनाता, तब प्रजा अपने आप निर्दोष होने लगती है।
अब यहां यह भी समझ लेना जरूरी है कि शासन प्रजा को निर्दोष होने नहीं देगा। क्योंकि अगर शासन प्रजा को निर्दोष होने दे तो शासन की जरूरत कम होती है। इसलिए शासन की पूरी चेष्टा होती है कि प्रजा कभी भी निष्कलुष न हो जाए। इसलिए शासन नए कानून बनाता है ताकि नए कानून तोड़े जा सकें। और शासन करीब-करीब ऐसी स्थिति पैदा कर देता है कि तुम बिना कानून तोड़े जी नहीं सकते। जब तुम जी नहीं सकते तब शासन की जरूरत आ जाती है। तब शासन कहता है, हम कैसे शिथिल हो सकते हैं, क्योंकि लोग अनाचारी हैं। और शासन इतने कानून बना देता है कि या तो अनाचार करें लोग या मर जाएं, आत्मघात कर लें। दो के बिना कोई उपाय नहीं रह जाता।
अब इतने कानून हैं, इतने कर हैं, इतना टैक्सेशन है कि अगर कोई आदमी ईमानदार हो तो जितना वह कमाए उससे ज्यादा उसे कर देना पड़े। तो वह कमाए किसलिए? वह जीए कैसे? अगर वह निर्दोष हो तो वह लुट जाए। और फिर भी कोई उसका भरोसा न करेगा।
अगर तुम इनकम टैक्स आफिसर के पास जाओगे, और तुमने दस हजार रुपए ही कमाए हैं और तुम पूरे ही बता दो कि मैंने दस हजार कमाए हैं, तो भी वह कहेगा, कम से कम पचास हजार कमाए होंगे। क्योंकि कौन सच बोलता है? तुम्हारा कोई भरोसा करने वाला नहीं है। इस समय सच्चा आदमी जितना झूठा मालूम होगा उतना कोई झूठा नहीं मालूम होता। क्योंकि कोई सच्चा है ही नहीं। तो तुम्हें भी दो हजार से शुरू करना पड़ता है। तुम दो हजार कहते हो, वह पांच हजार कहता है। ऐसा खींचतान करके कहीं तीन-चार हजार पर राजी हो जाते हो। तुम भी जानते हो, वह राजी नहीं होगा, अगर तुम सच बोल दो। वह भी जानता है कि तुम सच बोलोगे नहीं, इसलिए राजी हो जाना जल्दी आसान नहीं है। खींचतान चलेगी।
कानून अगर अतिशय हो तो लोगों को अपराधी बनाता है। क्योंकि इतना कानून कोई भी बरदाश्त नहीं कर सकता कि जीना मुश्किल हो जाए। कानून जीने में

सहायता देने को है, जीने को मिटा देने को नहीं। इसलिए कम से कम कर होने चाहिए और कम से कम कानून होने चाहिए। न्यूनतम कानून से काम चलेगा तो कम से कम अपराधी होंगे। जब तक कि अपरिहार्य न हो जाए तब तक कानून मत बनाओ। यह अर्थ है लाओत्से का कि शासन सुस्त हो, आलसी हो। अति आवश्यक घड़ी में ही आए। अनावश्यक घड़ियों में बीच से हट जाए; लोगों को मुक्ति की श्वास दे। तो लोग निष्कलुष होंगे।
आखिर कलुषता क्या है? तुमने कभी ख्याल किया कि तुम जितने कानून बनाओ उतनी ही कलुषता बढ़ती जाती है, क्योंकि उतने ही कानून के टूटने की संभावना बढ़ती जाती है।
मैं घरों में देखता हूं। बच्चा कहता है, मुझे बाहर खेलने जाना है; मां कहती है, नहीं। बच्चा कहता है, आइसक्रीम चाहिए; मां कहती है, गला खराब हो जाएगा। बच्चा कहता है, चलो तो मिठाई ही ले लें; मां कहती है, ज्यादा मिठाई खाने से ये-ये नुकसान हो जाएंगे। तुम खड़े करते जाते हो कानून चारों तरफ से, बच्चे को कुछ होने का उपाय छोड़ते हो? कुछ भी सुविधा है उसको बच्चा होने की या नहीं है? रेत में खेले तो कपड़े खराब होते हैं, मिट्टी में खेले तो गंदगी हो जाती है। पड़ोस के बच्चों के साथ खेले तो वे बच्चे भ्रष्ट हैं, उनके साथ बिगड़ जाएगा। एक छोटे बच्चे से एक औरत ने पूछा कि तू तो अच्छा बच्चा है न? उसने कहा कि अगर सच पूछो तो मैं उस भांति का बच्चा हूं जिसके साथ मेरी मां मुझको खेलने न देगी।
कोई सुविधा नहीं है। तब बच्चा अपराधी मालूम होने लगता है। उसे बाहर जाना जरूरी है। बच्चा है, बाहर जाएगा। खुले आकाश के नीचे सांस लेनी जरूरी है। अब अगर जाता है तो अपराधी हो जाता है; नहीं जाता है तो अभी से बूढ़ा होने लगता है। तुम ऐसी असुविधा खड़ी कर देते हो। रोको, आग में जाने की आज्ञा मांग रहा हो, मत जाने दो; समझ में आता है। लेकिन बाहर खुले आकाश में खेलने दो। कपड़े इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना रेत के साथ खेलना। फिर यह उम्र दुबारा न आएगी। कपड़े धोए जा सकते हैं, लेकिन जो बच्चा खेलने से वंचित रह गया वह सदा कुछ न कुछ कमी अनुभव करेगा। उसका जीवन कभी पूरा न होगा। जो बच्चा मिट्टी में न लोट पाया, खेल न पाया, उसके जीवन में उत्सव की क्षमता कम हो जाएगी। वह कभी नाच न सकेगा, गीत न गा सकेगा। तुम उसे मारे डाल रहे हो। अब अगर बच्चा अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करे तो बगावती है। अगर स्वतंत्रता की घोषणा न करे, आज्ञा मान ले, तो जीवन का घात कर रहा है अपने। क्या करे?
और जो तुम बच्चे की हालत घर में कर देते हो वही शासन तुम्हारी हालत किए हुए है। कहीं कोई सुविधा नहीं है। कहीं कोई जगह नहीं है, जहां तुम खुल सको और मुक्त हो सको। तुम किसी का कोई नुकसान नहीं पहुंचा रहे हो। तुम किसी की हानि नहीं कर रहे हो।
मेरे कैंपों में मैंने लोगों को आज्ञा दी थी कि अगर उन्हें उचित लगे और
वे आनंदपूर्ण समझें, तो वस्त्र निकाल दें। तो राजनीतिज्ञ बड़े बेचैन हो गए। विधान सभाओं में चर्चा हो गई। कानून सख्त हो गया।
अब जब तुम नग्न हो रहे हो तो तुम किसी दूसरे को नग्न नहीं कर रहे हो।
तुम खुद नग्न हो रहे हो। तुम्हारे शरीर को खुले सूरज के नीचे खड़े करने की तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है! तुम किसी के भी तो जीवन में कोई बाधा नहीं डाल रहे। तुम किसी से यह भी नहीं कह रहे कि आओ और हमें देखो। अगर वे देखते हैं तो उनकी मर्जी। अगर वे नहीं देखना चाहते, वे अपनी आंख बचा कर जा सकते हैं। तुम्हारी कोई जबरदस्ती भी नहीं है।
लेकिन राजनीति बहुत जरूरत से ज्यादा है। अब इस छोटी सी स्वतंत्रता में, जो कि व्यक्ति का निजी अधिकार है। अगर मुझे ठीक लगता है कि मैं नग्न चलूं तो किसी को भी अधिकार नहीं होना चाहिए कि मुझे रोके। हां, मैं किसी को दबाव डालूं कि तुम नग्न चलो, तब राज्य को बीच में आ जाना चाहिए कि भई गलत बात हो रही है; दूसरे पर दबाव मत डालो! तुम्हारी मौज है, तुम्हें नग्न चलना है, तुम नग्न चलो। मेरी नग्नता से किसी दूसरे का क्या लेना-देना है?
तुम तो महावीर को भी नग्न न होने दोगे। महावीर अच्छा हुआ पहले हो गए; तब शासन थोड़ा सुस्त था। खुला आकाश था, स्वतंत्रता थी। लोगों ने महावीर की

महिमा में कोई बाधा न डाली; कोई कानून बीच में न आया। आज बड़ी मुश्किल में पड़ते। आज बड़ी अड़चन हो जाती।
छोटे से, थोड़ी सी संख्या है दिगंबर जैन मुनियों की, बीस-बाईस। इस समय भारत में बीस-बाईस दिगंबर जैन मुनि हैं, जो नग्न हैं। बड़े-बड़े नगरों में उन पर रुकावट है। बंबई में, दिल्ली में वे ऐसे ही नहीं जा सकते, पुलिस को खबर करनी पड़ती है। तो उनके अनुयायी पुलिस को खबर करते हैं कि हमारे गुरु इस-इस रास्ते से, इस-इस जगह से निकलेंगे। और तब भी वे ऐसा नहीं जा सकते खुले, उनके शिष्य उनके चारों तरफ घेरा बांध कर चलते हैं, ताकि वे किसी को दिखाई न पड़ें। तुमने कभी जैन मुनि की सीधी खड़ी हुई फोटो किसी अखबार में कभी छपते देखी? नहीं। जैन मुनि की तुम जितनी फोटो देखोगे उन सब में वह इस भांति बैठता है पालथी लगा कर कि उसकी नग्नता दिखाई न पड़े। क्योंकि वह सीधी फोटो खतरनाक होगी। कानून उसके खिलाफ है।
समझ में आता है कि कानून बीच में आए जब तुम किसी का अहित करो, अकल्याण करो, लेकिन जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो तब कानून को बीच में आने का क्या प्रयोजन है? पार्लियामेंट-असेंबलियों में चर्चा करने की कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई ध्यान में नग्न खड़े होकर ध्यान करना चाहता है तो किसी का भी इसमें कोई लेना-देना नहीं है। और अगर किसी का लेना-देना है तो यह उसका रोग है; उसको अपने रोग की चिकित्सा करवानी चाहिए। अगर उसको लगता है कि किसी की नग्नता से उसके मन में वासना उठती है तो यह उसका रोग है; इससे नग्न होने वाले का कोई लेना-देना नहीं है। और जिसको नग्न देख कर वासना उठती है क्या तुम सोचते हो कपड़ों में छिपे शरीर को देख कर उसे वासना न उठेगी? थोड़ी ज्यादा उठेगी। क्योंकि जो छिपा हो उसे उघाड़ने का मन होता है; जो उघड़ा हो उसे उघाड़ने का मन नहीं होता।
सच तो यह है कि नग्न आदमी या नग्न स्त्री कम से कम वासना उठाती है। छिपा हुआ शरीर निषेध बन जाता है, ज्यादा वासना उठाता है। स्त्रियां इतनी सुंदर नहीं हैं जितनी कपड़ों में ढंकी हुई मालूम पड़ती हैं। अगर स्त्रियों की नग्न कतार खड़ी हो, तो तुम बड़े चकित हो जाओगे, उसमें शायद ही कोई एकाध स्त्री सुंदर मालूम पड़े। लेकिन कपड़ों में ढंकी हैं; कुछ भी पता नहीं चलता। कपड़ों में ढंकी सभी स्त्रियां सुंदर मालूम पड़ती हैं। और अगर बुरका ओढ़ा हो, तब तो कहना ही क्या! तो कुरूप से कुरूप स्त्री भी बुरका पहने सड़क से निकल जाए तो हर आदमी सचेत हो जाता है। और सभी झांक कर देखने की कोशिश करते हैं मामला क्या है। यही स्त्री बिना बुरके के निकले, कोई देखने की फिक्र नहीं करता। जीवन के सीधे-सीधे सत्य हैं कि जो छिपा हो वह आकर्षक हो जाता है, जो प्रकट हो वह आकर्षक नहीं रह जाता। आदिवासियों को जाकर देखो, नग्न हैं। तुम्हें भी कुछ न लगेगा कि उनके नग्न होने में कुछ अपराध हो रहा है। तुम भी थोड़े दिन में राजी हो जाओगे। तुम्हें लगेगा कि अगर तुम्हें कुछ लग रहा है तो वह तुम्हारी अपनी बेचैनी है, जिसका इलाज चाहिए।
पार्लियामेंट में जो लोग बैठे हैं, जिनको चिंता होती है कि कोई ध्यानी नग्न खड़ा न हो, इनको अपनी मनोचिकित्सा करवानी चाहिए। लेकिन नहीं, उनके ऊपर पूरे देश का भार है। यह किसी ने दिया भी नहीं है भार, यह अपने हाथ से ले लिया है। सारे देश के कल्याण का उन्हें विचार करना है।
लाओत्से कहता है, कृपा करो, तुम अपना ही कल्याण कर लो तो काफी है। तुम सबका कल्याण मत करो; क्योंकि तुमसे अकल्याण होगा।
"शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"
कानून कम से कम, शासन कम से कम, स्वतंत्रता ज्यादा से ज्यादा। क्योंकि स्वतंत्रता के बिना निष्कलुषता का फूल खिलता नहीं। स्वतंत्रता की भूमि चाहिए।
"जब शासन दक्ष और साफ-सुथरा होता है, तब प्रजा असंतुष्ट होती है। व्हेन
दि गवर्नमेंट इ.ज एफीशिएंट एंड स्मार्ट, इट्स पीपुल आर डिसकंटेंटेड।" क्यों ऐसा हो जाता है? क्योंकि जब शासन बहुत दक्ष होता है, उतनी ही परतंत्रता बढ़ जाती है। जितना शासन कुशल होता है, उतनी ही गर्दन का फंदा कस जाता है। शासन की कुशलता का अर्थ ही यह है कि परतंत्रता बहुत कुशल हो गई और तुम्हें सब तरफ से बांध लेगी। तुम्हें पता भी न चले, इस तरह बांध लेगी;

तुम्हारे होश में भी न आए, इस तरह बांध लेगी। तुम लगोगे स्वतंत्र, और तुम स्वतंत्र बिल्कुल भी नहीं रहोगे।
तुम्हारी स्वतंत्रता करीब-करीब धोखा है। शासन ने तुम्हें सब तरफ से कस लिया है। और शासन ने सब इंतजाम कर रखा है कि अगर तुम जरा भी स्वतंत्रता की घोषणा करो तो शासन और कसता जाता है। तत्क्षण इमरजेंसी घोषित हो जाती है। अगर जनता जरा स्वतंत्रता की घोषणा करे तो तत्क्षण इमरजेंसी हो जाती है। सारा शासन लोकतंत्र को भूल जाता है और तानाशाही हो जाता है।
जितना दक्ष होगा शासन, उतने ही तुम्हारी आत्मा को बंधन होंगे। शासन की दक्षता नहीं चाहिए। शासन ऐसा होना चाहिए जैसा परमात्मा है--अदृश्य। न दिखाई पड़ता, न बीच में आता, न नियम और अनुशासन की घोषणा करता। पता ही नहीं चलता है। जिस दिन शासन ऐसा हो कि उसका कोई बोध न हो, दंश मालूम न पड़े, उसी दिन ठीक शासन उपलब्ध हुआ। और न केवल यह बाहरी शासन के संबंध में सही है, यह अनुशासन के संबंध में भी सही है।
तुम मेरे पास हो। मेरे पास बहुत से लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप अपने संन्यासी को ठीक-ठीक डिसिप्लिन, अनुशासन क्यों नहीं देते?
मैं कौन हूं किसी को अनुशासन देने वाला? और जो अनुशासन दूसरे के द्वारा दिया जाए वह तुम्हें कैसे मोक्ष की तरफ ले जाएगा? अनुशासन तो कम करना है, आत्मानुशासन बढ़ाना है। बाहर से थोपा गया शासन तो हटा लेना है; भीतर की प्रज्ञा ही एकमात्र अनुशासन बने, ऐसी स्थिति लानी है। मैं तुमसे न कहूंगा, कब तुम उठो, कब तुम बैठो, कब तुम सोओ, क्या तुम खाओ। ये मूढ़ता की बातें मैं तुमसे न करूंगा। मैं तो सिर्फ तुम्हारे परिशुद्ध चैतन्य को तुम कैसे खोज लो, उसकी विधि तुम्हें दूंगा। तुम्हारी चेतना फिर तुम्हारे अनुशासन को बनाएगी।
लेकिन गुरु भी शासकों की भांति हैं। वे भी बांध लेते हैं। वे रत्ती- रत्ती तुम्हारी फिक्र रखते हैं कि तुम क्या खाते, क्या पीते, कब सोते, कब उठते। गुरु जैसे पुलिसवाले हैं। और पुलिसवाला तो उतना गहरा नहीं जाता जितने गुरु जाते हैं। क्योंकि पुलिसवाले की उतनी समझ भी नहीं है गहरे जाने की। गुरु तो बिल्कुल भीतर तुम्हें हर चीज में बांध लेता है। तुम्हारी मुक्ति के नाम पर गुरुओं ने तुम्हारे लिए कारागृह खड़े कर रखे हैं। तुम मुक्त नहीं होते, गुलाम हो जाते हो। तुम आत्मवान नहीं होते, आत्मा को खो देते हो। आशा तुम यह रखते हो कि शायद इस अनुशासन से आत्मा मिलेगी। लेकिन जो पहले ही कदम पर परतंत्रता है वह अंतिम समय में कैसे स्वतंत्रता हो जाएगी? स्वतंत्रता पहले कदम पर भी स्वतंत्रता है, और अंतिम कदम पर भी। जो काटनी है फसल, उसके ही बीज बोने होंगे।
तो मैं स्वतंत्रता के बीज बोता हूं। मैं तुम्हें पूरा स्वतंत्र करता हूं; तुम्हारे बोध पर ही तुम्हें छोड़ता हूं। तुम्हारा बोध भर जगे। और तुम अपने बोध से ही अपने जीवन को अनुशासन देना। तो ही किसी दिन संभव है कि तुम्हें मुक्ति की झलक आ सके।
"विपत्ति भाग्य के लिए छायादार रास्ता है, और भाग्य विपत्ति के लिए ओट है।"
लाओत्से कहता है कि सदा विपरीत जुड़े हुए हैं। इसे जिसने देख लिया उसने जीवन की कुंजी पा ली।
जब विपत्ति आए तो तुम घबड़ाना मत, क्योंकि विपत्ति के ही छाएदार रास्ते
से भाग्य भी यात्रा करता है। विपत्ति के पीछे ही भाग्य आता है। विपत्ति के पीछे ही सुख, महासुख की संभावना छिपी है। जब विपत्ति आए तो तुम घबड़ा मत जाना, उद्विग्न मत हो जाना, जल्दी ही भाग्य तुम्हारे द्वार पर दस्तक देगा। विपत्ति तो उसकी आने की खबर है। वह पूर्व-सूचक है, संदेशवाहक है; पत्र है कि मैं आ रहा हूं।
तो जब विपत्ति आए तुम उत्तेजित मत होना, परेशान मत होना, क्योंकि जल्दी
ही भाग्य आ रहा है। और जब भाग्य के फूल खिलें तब तुम सुख के कारण हर्षोन्मत्त मत हो जाना। क्योंकि भाग्य के पीछे ही फिर विपत्ति छिपी है। जैसे दिन के पीछे रात है और रात के पीछे दिन है, ऐसा सुख के पीछे दुख है, दुख

के पीछे सुख है, सफलता के पीछे असफलता है, असफलता के पीछे सफलता है। सब विरोधी जुड़े हैं।
तो न तो दुख तुम्हें उद्विग्न करे, और न सुख तुम्हें उत्तेजित करे। तुम दोनों ही स्थिति में साक्षी बने रहना। क्योंकि दोनों में से कोई भी ठहरने वाला नहीं है। जो भी आया है, चला जाएगा। जो भी आया है, जल्दी ही उसका विपरीत आएगा। तो यहां पकड़ने को कुछ भी नहीं। यहां किसी भी चीज के साथ मोह बना लेने की कोई सुविधा नहीं है। न तो तुम विपत्ति को हटाने की कोशिश करना; क्योंकि विपत्ति को हटाओगे तो भाग्य भी हट जाएगा जो उसके पीछे आ रहा था। न तुम भाग्य को पकड़ने की कोशिश करना; क्योंकि भाग्य को पकड़ोगे तो विपत्ति भी पकड़ में आ जाएगी जो कि उसके पीछे ही छिपी है। तो तुम करोगे क्या?
तुम साक्षी रहना। तुम देखते रहना। तुम सिर्फ हंसना। क्योंकि तुम्हें दोनों दिखाई पड़ जाएं तो तुम हंसने लगोगे। किसी ने दी गाली तो तुम दुखी न होओगे, क्योंकि तुम जानते हो कि कहीं से कोई प्रशंसा शीघ्र ही मिलने वाली है। तुम गिर पड़े, घबड़ाना मत। क्योंकि जो ऊर्जा गिराती है वही उठा भी लेती है। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम बीमार पड़े, तो जिस ऊर्जा से बीमारी आती है उसी ऊर्जा से स्वास्थ्य भी आता है। तुम एक ही काम कर सकते हो कि तुम देखते रहना। आने देना, जाने देना, और तुम देखते रहना।
धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम्हारे देखने की क्षमता सघन हो जाएगी, जैसे- जैसे तुम्हारा द्रष्टा जड़ें जमा लेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कुछ भी नहीं छूता; तुम कमलवत हो गए। वर्षा भी हो जाती है, पानी गिरता भी है, तो भी छूता नहीं; अनछुआ गुजर जाता है। तुम अस्पर्शित रह जाते हो।
और अगर तुम यह न कर पाए तो तुम कभी भी सामान्य न हो पाओगे।
"जैसी स्थिति है, सामान्य कभी भी अस्तित्व में नहीं आएगा।"
तुम एक अति से दूसरी अति पर भटकते रहोगे। कभी दुख, कभी सुख; कभी छांव, कभी धूप; कभी दिन, कभी रात; कभी जन्म, कभी मृत्यु; बस तुम एक से दूसरे पर भटकते रहोगे। दोनों के बीच में छिपा है जीवन का राज।
"जैसी स्थिति है, सामान्य कभी अस्तित्व में नहीं होगा। लेकिन सामान्य शीघ्र ही पलट कर छलावा बन जाएगा, और मंगल पलट कर अमंगल हो जाएगा। इस हद तक मनुष्य-जाति भटक गई है।"
उसे यह भी पता नहीं है कि हम जो भी करते हैं वह हमेशा विपरीत में पलट जाता है। तुम सोचते हो, यह बड़ी मंगल घड़ी है और पकड़ लेते हो। जल्दी ही तुम पाते हो कि मंगल घड़ी तो कहीं खो गई, उसकी जगह सिर्फ अमंगल रह गया है। देखते हो प्रेम, पकड़ लेते हो; मुट्ठी खोल भी नहीं पाते कि पता चलता है, प्रेम तो कहीं तिरोहित हो गया, घृणा हाथ में रह गई है। आकर्षण खो जाता है, विकर्षण रह जाता है। पकड़ने गए थे सुबह को, सांझ हाथ में आती है।
लाओत्से कहता है, यह आखिरी भटकाव है। इससे ज्यादा और क्या भटकना होगा? लौटो पीछे, थोड़ा सम्हलो। और सम्हलने का एक ही मतलब हैः द्वंद्व से बच जाओ। एक ही सम्हलना है कि जहां-जहां तुम्हें दो दिखाई पड़ें, तुम उनमें से चुनाव मत करना; तुम चुनावरहित साक्षी हो जाना। मन तो कहेगा, सुख को पकड़ लो; इतने दिन तो प्रतीक्षा की, अब द्वार पर आया है, अब जाने मत दो। मन तो कहेगा, दुख को हटाओ। हटाओगे तो जल्दी हट जाएगा, अन्यथा न मालूम कितनी देर टिक जाए।
न तुम्हारे टिकाए कुछ टिकता है, और न तुम्हारे हटाए कुछ हटता है। इसे अगर तुमने जान लिया तो तुम समझदार हो। क्या हटता है तुम्हारे हटाए? किस दुख को तुम हटा पाते हो? चित्त जब उदास होता है, तुम कोई उपाय करके उदासी से बाहर हो सकते हो? चित्त जब प्रसन्न होता है, कोई उपाय है जिससे तुम प्रसन्नता को पकड़ लो और तिजोड़ी में कैद कर लो कि जब चाहो तब निकाल लिया तिजोड़ी से, थोड़ी देर खेले, प्रसन्न हुए, बंद कर दिया। इतना लंबा जीकर भी तुम्हें यह समझ में नहीं आया कि न तुम्हारे पकड़े कुछ बचता है, न तुम्हारे हटाए कुछ हटता है। आती है प्रसन्नता और चली जाती है, जैसे तुमसे अलग ही उसकी यात्रा का पथ है। छाया आती है, धूप आती है; तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। जैसे उसके आने-जाने का अलग ही वर्तुल है। तुम तो सिर्फ दर्शक हो। तुम्हारी भ्रांति एक ही है कि तुमने अपने को कर्ता मान लिया।

अगर तुम कर्ता न मानो तो तुम बड़े हैरान होओगे, जैसे उदासी आती है वैसे
ही चली जाती है; तुम अनछुए, अस्पर्शित पीछे खड़े रहते हो। तब खुशी-हंसी भी आती है, वह भी चली जाती है। जैसे-जैसे यह भाव प्रगाढ़ होता है वैसे-वैसे तुम मुक्त होने लगते हो। तब तुम अपने जीवन को भी अनुशासन नहीं देते।
लाओत्से कह रहा है, अनुशासन के बहुत तल हैं। दूसरे तुम्हें अनुशासन दे रहे हैं--वह राज्य। फिर तुम अपने को अनुशासन देने की कोशिश करते हो--वह नीति। इसलिए तो हम राजनीति और नीति शब्द का उपयोग करते हैं। क्योंकि दोनों का मतलब एक ही है गहरे में। राजनीति का अर्थ है, दूसरे तुम्हें नैतिक बनाने की कोशिश कर रहे हैं। और नीति का अर्थ है, तुम खुद ही अपने को नैतिक बनाने की कोशिश कर रहे हो।
न दूसरे तुम्हें बना सकते हैं, न तुम खुद अपने को बना सकते हो। दूसरे भ्रांति में हैं कि उनके ऊपर दुनिया का भार है सुधारने का। तुम भी इस भ्रांति में हो कि यह कर्तृत्व तुम्हारा है कि तुम अपने को शुद्ध, चरित्रवान, शीलवान बना कर रहोगे। राजधानियों का अहंकार भी झूठा है, और तुम्हारा अहंकार भी झूठा है। इस जगत में चेतना साक्षी की भांति है, कर्ता की भांति नहीं। कर तो तुम कुछ भी न पाओगे। करने की भ्रांति के कारण ही तो इतना भटके हो जन्मों-जन्मों तक। कब तक भटकते रहोगे? क्यों नहीं छोड़ देते उस भ्रांति को और एक बार साक्षी होकर देखते?
और तब साक्षी के पीछे एक अनुशासन आता है जो लाया गया नहीं है, जो प्रयास
से नहीं आया है, जो निष्प्रयत्न फला है। तब एक वर्षा हो जाती है आशीर्वादों की, तब सब तरफ से आनंद सघन होकर तुम्हारे ऊपर गिरने लगता है। बिन घन परत फुहार। कोई बादल भी दिखाई नहीं पड़ता और वर्षा होती है। कोई कारण समझ में नहीं आता, कोई कर्ता नहीं है, कोई लाने वाला नहीं है, और आनंद बरसता चला जाता है। जब तक यह घड़ी न आ जाए, बिन घन परत फुहार, तब तक समझना कि भटक रहे हो। लाओत्से कहता है, मनुष्य-जाति इस सीमा तक भटक गई है कि जो आनंद बिना किए मिल सकता है, उसको भी वह उपलब्ध नहीं कर पाती। इससे ज्यादा भटकाव और क्या होगा? जो संपदा बिना कुछ किए मिल सकती है, तुम उसको भी नहीं खोज पा रहे! नहीं खोज पा रहे हो, क्योंकि तुम उस संपदा को खोजने में लगे हो जो कि मिल ही नहीं सकती। तो सारी ऊर्जा गलत दिशा में प्रवाहित है।
"इसलिए संत ईमानदार, दृढ़ सिद्धांत वाले होते हैं, लेकिन काट करने वाले
या तीखे नोकों वाले नहीं।"
यह संत के स्वभाव को समझने की कोशिश करो।
"देयरफोर दि सेज इ.ज स्क्वायर, हैज फर्म प्रिंसिपल्स, बट नाट कटिंग, शार्प कार्नर्ड।"
चौकोन आकार का है संत, क्योंकि चौकोन आकृति की कोई भी चीज दृढ़ होती है। उसे तुम जमीन पर रख दो, वह जम जाती है, वह थिर होती है। उसे हटाना आसान नहीं होता। उसे कंपन नहीं आता, वह निष्कंप होती है।
तो लाओत्से कहता है, "दि सेज इ.ज स्क्वायर।"
एक दृढ़ता है संत की जो बड़ी अनूठी है, जो उसके होने के ढंग से आती है। इसलिए स्क्वायर, इसलिए चौकोन आकृति वाला है संत।
तुमने अगर एक जापानी गुड़िया दारुमा देखी हो--दारुमा डॉल। उस गुड़िया को तुम कैसा ही फेंको, वह सदा पालथी मार कर बैठ जाती है। दारुमा जापानी में भारतीय अनूठे पुरुष बोधिधर्म का नाम है। जापानी भाषा में बोधिधर्म का नाम दारुमा है। और वह जो पुतली है वह बोधिधर्म की है, जिसने भारत से चीन में बौद्ध-धर्म की शाखाएं आरोपित कीं। स्क्वायर का वह अर्थ है कि तुम संत को कैसा ही घुमाओ-फिराओ, उलटा-सीधा पटको, कुछ भी करो, हमेशा तुम सिद्धासन में बैठा हुआ पाओगे। वह दारुमा डॉल घर में रखनी चाहिए, उसे फेंक-फेंक कर देखना चाहिए कि वह संत का स्वभाव है। तुम उसे उलटा सिर के बल फेंको, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि वह वजनी है पैरों में, वह तत्क्षण बैठ जाती है।
संत को हिलाने का उपाय नहीं; वह दारुमा डॉल है। वह कंपित नहीं होता। तूफान आएं, सुख आएं, दुख आएं, कुछ उसे उत्तेजित नहीं करता। वह हर घड़ी अपने सिद्धासन में बैठा रहता है। उसके भीतर सिद्धासन लगा है।

यह सिद्धासन शरीर का नहीं है। हमने जो तीर्थंकरों, बुद्धों की, सबकी प्रतिमाएं सिद्धासन में बनाई हैं, इससे तुम यह मत समझना कि वे इसी तरह बैठे रहते थे चौबीस घंटे। ये तो भीतर के प्रतीक हैं; इस भांति भीतर हो गए थे, दारुमा डॉल की भांति। इनकी पालथी ऐसी लग गई थी कि अब उसे हिलाने का कोई उपाय न था। ये ऐसे दृढ़ हो गए थे।
तो एक तो दृढ़ता मन की भी होती है। वह दृढ़ता झूठी होती है। उसके भीतर डर छिपा होता है।
मैं जहां पढ़ता था, मेरे स्कूल में एक शिक्षक थे जो हमेशा कहते कि अंधेरे से मुझे बिल्कुल डर नहीं लगता; अंधेरी रात में मैं मरघट भी चला जाता हूं।
तो मैंने उनसे कहा कि आप इतनी बार यह बात कहते हैं कि शक होता है। इस बात को बार-बार कहने की क्या जरूरत हम छोटे बच्चों के सामने कि मैं बिल्कुल नहीं डरता? यह कोई बात है! नहीं डरते तो अच्छा। मगर आप किस पर रोब गांठ रहे हैं कि मरघट अकेला चला जाता हूं? जरूर इसमें कहीं आपके भीतर डर है। डर को आप अपने मन की बातों से भुलाने की कोशिश कर रहे हैं कि मैं बिल्कुल सुदृढ़ आदमी हूं, मैं भयभीत नहीं होता।
अक्सर तुम ऐसी दृढ़ता करते हो। तुम कहते हो कि मैं जो कसम खा रहा हूं, सदा इसका पालन करूंगा। लेकिन अगर तुम उसी वक्त भी भीतर झांक कर देखो तो तुम पाते हो तुम जानते हो कि यह पूरा होने वाला है नहीं। अपने को भुला रहे हो। और जितना तुम अपने को भुलाना चाहते हो उतने ही जोर से बोलते हो। खुद की आवाज सुन कर भरोसा लाने की कोशिश कर रहे हो।
तुम्हारी दृढ़ता का कोई मतलब नहीं, तुम्हारी दृढ़ता के पीछे जब तक कि तुम्हारी चेतना न हो। मन के संकल्प कोई संकल्प नहीं, पानी पर खींची लकीरें हैं। वे टिकने वाली नहीं, तुम कितने ही जोर से खींचो। कुछ टिकेगा नहीं मन पर; मन कभी दृढ़ होता ही नहीं। मन का स्वभाव दृढ़ता नहीं है, चंचलता है। वह कभी चौकोर नहीं है। तुम मन की दारुमा पुतली नहीं बना सकते, तुम लाख उपाय करो। वह पालथी तो चेतना की ही लगती है। वह सिद्धासन तो आत्मा का ही है। उसके पहले नहीं हो सकती वह दृढ़ता।
संत दृढ़ होता है। उसे खुद पता भी नहीं होता कि वह दृढ़ है। क्योंकि पता अगर हो तो विपरीत का भी पता होगा। वह दृढ़ होता है। उसकी दृढ़ता स्वाभाविक है। संत दृढ़ होते हैं और उनकी दृढ़ता से ही उनका ईमान प्रकट होता है। उनकी दृढ़ता से ही उनकी प्रामाणिकता आती है, उनके संकल्प से नहीं। वह उनके स्वभाव से आविर्भूत होती है।
एक तो ईमान है जो तुम सोच-विचार कर लाते हो। और एक ईमान है जो तुम्हारे स्वभाव की अनुभूति से प्रकट होता है।
ऐसा हुआ कि मोहम्मद का एक शिष्य यहूदियों की किताब तालमुद पढ़ रहा था। मोहम्मद ने उसे तालमुद पढ़ते देखा तो उससे कहा, देख, अगर तालमुद पढ़नी हो तो यहूदी हो जा! क्योंकि बिना यहूदी हुए तू कैसे तालमुद समझ पाएगा? मुसलमान रहते हुए तू तालमुद समझ न पाएगा, क्योंकि तेरा पूरापन तालमुद से नहीं जुड़ेगा। अगर मुसलमान रहना है तो कुरान पढ़। अगर तालमुद पढ़नी है तो यहूदी हो जा। कुछ भी बुराई नहीं है यहूदी होने में, लेकिन जो भी करना है पूरे मन से कर।
और जहां तुम पूरे मन से कुछ करते हो वहीं मन विदा हो जाता है। क्योंकि
मन पूरा हो ही नहीं सकता; वह उसका स्वभाव नहीं है। वह आधा-आधा ही हो सकता है। जब भी तुम पूरे मन से कोई भी चीज करते हो--अगर तुम गड्ढा भी खोद रहे हो जमीन में और पूरे मन से खोद रहे हो--तत्क्षण तुम पाते हो ध्यान लग गया। तुम खाना बना रहे हो, पूरे मन से बना रहे हो, तत्क्षण तुम पाते हो ध्यान लग गया। जहां- जहां मन को तुम पूरा कर लोगे वहीं तुम पाओगे, मन विसर्जित हो गया और ध्यान लग गया। और वह ध्यान दृढ़ स्वभाव वाला है। वह ध्यान सिद्धासन है।
अब तुम इसे ठीक से समझ लो। लोग सोचते हैं, सिद्धासन में बैठने से ध्यान लगेगा। वे गलत सोचते हैं। ध्यान लगने से सिद्धासन उपलब्ध होता है। सिद्धासन तो कोई भी मदारी लगा लेगा। सिद्धासन में क्या है लगाने में? थोड़े दिन का अभ्यास किया जाए, एकदम सिद्धासन लग जाएगा। पैर थोड़े दिन बाद मुड़ने

लगेंगे। थोड़े दिन तकलीफ हुई तो मसाज करवा लेना। सिद्धासन तो कोई भी लगा लेगा। सिद्धासन से अगर ध्यान लगता होता तो बड़ी सरल बात थी। ध्यान से सिद्धासन लगता है। जिसका भी ध्यान लग गया... । मोहम्मद की कोई प्रतिमा नहीं है, जीसस की कोई प्रतिमा नहीं है सिद्धासन लगाए हुए। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि जीसस का सिद्धासन लग गया। कभी बैठे नहीं वे बुद्ध जैसे, महावीर जैसे। लेकिन भीतर वह बैठक लग गई। वह बात भीतर की है। बाहर से सहारा मिल जाए, लेकिन बाहर को तुम पर्याप्त मत समझ लेना।
संत ईमानदार हैं। उनका ईमान भीतरी है। वह उनके होने का ढंग है। और इसीलिए वे काट करने वाले और तीखे नोकों वाले नहीं हैं। इस फर्क को ख्याल में ले लो। अगर तुम्हारा ईमान ऊपर-ऊपर है, चेष्टित है, तो तुम बेईमान की निंदा करोगे, बेईमान को काटोगे। तुम घोषणा करोगे कि मैं ईमानदार, तुम बेईमान! तुम जहां जरा सा भी कुछ गलत होते देखोगे, तुम टूट पड़ोगे। तुम इस मौके को न छोड़ोगे अपनी घोषणा किए कि मैं श्रेष्ठ और तुम अश्रेष्ठ! तुम सारी दुनिया को ऐसे देखोगे कि सारी दुनिया नरक की तरफ जा रही है एक तुमको छोड़ कर-- तुम स्वर्ग की तरफ जा रहे हो।
अगर तुम्हारी गुणवत्ता दूसरे की निंदा बन जाए तो समझ लेना कि यह आत्मा
से नहीं आ रही, यह मन का ही धोखा है। संत दृढ़ होते हैं, लेकिन तीखे नोकों वाले नहीं। उनमें कोने नहीं होते। वे किसी को चोट पहुंचाने में रस नहीं लेते। निंदा उनसे नहीं हो सकती; बुरे को भी बुरा कहने में वे संकोच करेंगे। बुरे में भी भले को देखने का उनका स्वभाव होगा। बुरे से बुरे में भी, कितने ही गहरी छिपी हो ज्योति, कितने ही अंधेरे में दबी हो, उसे वे देख लेंगे। तीखी नोक वाला तुम संत को न पाओगे। मृदु होगा। उसके व्यक्तित्व में एक गोलाई होगी, स्त्रैण गोलाई। उसमें नोक नहीं होगी।
"उनमें अखंडता, निष्ठा होती है, लेकिन वे दूसरों की हानि नहीं करते।"
वे अखंड होंगे, लेकिन तुम्हारे खंडित व्यक्तित्व को वे अपनी अखंडता से दबाएंगे नहीं, परतंत्र नहीं करेंगे। वे तुम पर शासन करने के काम में अपनी अखंडता का उपयोग न करेंगे। वे अखंड होंगे, गहन निष्ठा से भरे होंगे, लेकिन उनके कारण वे तुम्हें हीन दर्शित न करेंगे। ध्यान रखना, जब भी तुम अपने चरित्र का उपयोग किसी की हीनता के लिए करने लगो, तब तक समझ लेना कि तुम चरित्र का उपयोग भी दुश्चरित्रता की तरह कर रहे हो।
वे सीधे होते हैं, लेकिन यह सीधे होने का कोई दंभ उनमें नहीं होता। इसलिए उनमें कोई निरंकुशता नहीं होती।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक डाक्टर के पास गया। सिर में उसे दर्द था। और बहुत तेज दर्द था, जैसे कोई स्क्रू भीतर घुमा रहा हो, या कि कोई छुरी से भीतर काट रहा हो। तो वह बड़ा बेचैन था, सिर पकड़े हुए प्रवेश किया। डाक्टर ने उससे पूछा, बीमारी की जांच-पड़ताल की, तो पूछा कि सिगरेट, सिगार, ऐसी कोई चीज तो नहीं पीते? धूम्रपान तो नहीं करते? नसरुद्दीन ने कहा, नहीं, कभी नहीं। चाय-काफी, पूछा डाक्टर ने, इस तरह की कोई चीज तो नहीं लेते जिसमें निकोटिन हो? नसरुद्दीन ने और भी जोर से कहा कि कभी नहीं! उस आदमी ने पूछा, और शराब इत्यादि का तो उपयोग नहीं करते? नसरुद्दीन क्रोध से खड़ा हो गया। उसने कहा, तुमने समझा क्या है? डाक्टर ने कहा, और आखिरी बात और कि कोई परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, कोई इस तरह की लत में तो नहीं पड़े हैं? नसरुद्दीन तो झपट्टा मार दिया उस डाक्टर पर। नसें खिंच गईं। उसने कहा, तुमने समझा क्या है? कोई चोर-लफंगा? कोई ऐरा गैरा नत्थू खैरा? तुम्हें पता नहीं मैं कौन हूं? मैं अखंड ब्रह्मचारी हूं, बाल ब्रह्मचारी। और इतना ही नहीं कि मैं ब्रह्मचारी हूं, मेरे पिता भी अखंड बाल ब्रह्मचारी थे। यह हमारे वंश में सदा से ही चला आया है। उस डाक्टर ने कहा, इलाज हो जाएगा; बीमारी पकड़ ली गई। तुम शांति से बैठो। तुम्हारा चरित्र तुम्हारे सिर में जरूरत से ज्यादा घुस गया है; उससे दर्द हो रहा है।
जब चरित्र तुम्हें सिरदर्द देने लगे तो थोड़ा सावधान हो जाना। जब चरित्र तुम्हारा दंभ बन जाए और अकड़ बन जाए और तुम्हारी चाल बदल जाए तो तुम सावधान हो जाना। यह चरित्र न हुआ, दुश्चरित्रता हो गई। इससे तो दुश्चरित्र

बेहतर, कम से कम विनम्र तो है। दुश्चरित्रता इतनी बुरी नहीं जितना दंभ बुरा है।
संत में चरित्र होगा और चरित्र का कोई एहसास नहीं होगा, सेल्फ-कांशसनेस नहीं होगी। चरित्र ऐसे होगा जैसे कि हाथ हैं, कान हैं, नाक है; इनके लिए कोई अलग से घोषणा नहीं करनी पड़ती, हैं। चरित्र ऐसे होगा जैसे श्वास चलती है। अब इसकी कोई घोषणा तो नहीं करनी पड़ती कि हम श्वास ले रहे हैं, देखो। इसके लिए कोई यश-गौरव करे, ऐसी तो आकांक्षा नहीं होती कि हम श्वास ले रहे हैं। उसमें कोई खास बात ही नहीं है। चरित्र श्वास जैसा होगा संत का। और अगर चरित्र ऐसा न हो तो समझ लेना कि वह चरित्र असाधु का है, साधु का नहीं।
"वे सीधे होते हैं।"
उनकी सादगी इतनी सादी होती है कि उन्हें उसका पता भी नहीं होता। क्योंकि जिस सादगी का पता चल जाए वह सादी न रही। जिस सीधेपन का पता चल जाए वह सीधापन तिरछापन हो गया। उसमें नोक आ गई। उसमें अकड़ पैदा हो गई।
"वे दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।"
बड़ा कीमती वचन है!
"ब्राइट, बट नाट डैजलिंग।"
उनमें एक माधुर्य और माधुर्य से भरी ज्योति होती है, लेकिन शीतल। तुम उससे जल न सकोगे। उसमें कोई उत्ताप नहीं होता, कोई बुखार नहीं होता, कोई ज्वर नहीं होता। संत के पास तुम जल न सकोगे। तुम उसके प्रकाश को कितना ही पी लो तो भी वह शीतल ही अनुभव होगा। वह तुम्हारे रोएं-रोएं को पुलकित करेगा, लेकिन पसीने से न भर देगा।
इस फर्क को ठीक से समझ लो। क्योंकि संत ठंडी आग है। आग होना भी बहुत आसान है, ठंडा होना भी बहुत आसान है। ठंडी आग होना बहुत कठिन है। वह परम ज्ञान का लक्षण है। जब दीप्ति तो होती है, लेकिन दीप्ति में कोई ज्वर, त्वरा, चोट नहीं होती। आंखें चकाचौंध से नहीं भर जातीं संत के पास। वैसा चाकचिक्य देखना हो तो सिंहासन के पास होगा, राजधानी में होगा, सम्राटों के पास होगा। वहां तुम्हारी आंखें चकाचौंध से भर जाएंगी। वहां तुम्हारी आंखें थक जाएंगी। वहां से तुम ताजे होकर न लौटोगे। वहां से तुम कितने ही अभिभूत हो जाओ, प्रभावित हो जाओ, लेकिन वह प्रभाव बीमारी की भांति होगा, भारी होगा। सम्राट भी लोगों को प्रभावित करते हैं, लेकिन उनके प्रभाव में बड़ा दंश है। फफोले उठ आएंगे उनके प्रभाव से तुम्हारे ऊपर। तुम्हारे व्यक्तित्व में घाव की तरह उनका प्रभाव पड़ेगा। तुम वहां से दीन होकर लौटोगे। तुम उस चाकचिक्य से, चकाचौंध से भर कर तुम्हारी आंखें अंधेरे में होकर लौटेंगी, तुम अंधे होकर लौटोगे। एक प्रभाव सम्राटों का है।
इसलिए तो हमने इस देश में कहा है कि चक्रवर्ती भी कुछ नहीं है एक संत के सामने। चक्रवर्ती हम उसको कहते हैं जो सारी पृथ्वी का सम्राट हो। तलवार की धार की तरह वह तुम्हें काट देगा। लेकिन तुम कट कर लौटोगे। तुम खंड-खंड होकर आओगे। तुम जल कर आओगे। उतनी आग तुम्हें केवल बीमारी दे सकती है। संत भी अनूठी महिमा को उपलब्ध होता है। सब सिंहासन फीके हैं, चक्रवर्ती भी चरण छुएं।
क्या होगा? संत की क्या खूबी है?
उसकी खूबी है कि उसके पास एक और तरह की आग है। तुम उसकी आग को पी सकते हो, तुम उसकी आग को भोजन बना सकते हो, तुम जलोगे न। उसकी आग में कहीं भी चोट नहीं है।
दीप्ति बड़ा कीमती शब्द है। जैसे सुबह जब सूरज नहीं उगा होता, रात जा चुकी, सूरज अभी नहीं उगा, तब जैसा प्रकाश होता है वह दीप्ति है। रात गई, अंधेरा अब नहीं है, सूरज अभी आया नहीं। क्योंकि सूरज चक्रवर्तियों जैसा है, वह जला देगा। तुम उसकी तरफ आंख उठा कर न देख सकोगे, तुम्हारी आंखें अंधेरे से भर जाएंगी। अगर ज्यादा देखा तो अंधे हो जाओगे। सुबह का आलोक दीप्ति है। या सांझ को जब सूरज जा चुका और अभी रात नहीं आई, वह बीच का जो संध्या काल है, वह दीप्ति है।

इसलिए हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या कहते हैं। वह दीप्ति जैसी होनी चाहिए प्रार्थना। आग तो हो विरह की, पर बड़ी ठंडी और शीतल हो। तृप्त करे, भरे; जलाए न, जिलाए; राख न कर दे तुम्हें, तुम्हारी राख को अंकुरित करे, तुम्हें नया जन्म दे।
"संत दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।"
लाओत्से क्या कहना चाहता है? लाओत्से यह कहना चाहता है कि शासन संतों जैसा होना चाहिए। दीप्ति तो हो, कौंध न हो। लाओत्से यह कह रहा है कि वस्तुतः शासन संत का होना चाहिए, जो कि जला नहीं सकता, जो कि मिटा नहीं सकता, जो कि तुम्हें लूट नहीं सकता। क्योंकि जो भी पाने योग्य है उसने पा लिया है। जिसे तुम कुछ भी नहीं दे सकते, जिसके पास सब कुछ है, जो भरपूर है, जो आकंठ डूबा है आनंद में, जिसे तुमसे लेने को कुछ भी नहीं बचा है, उसका ही शासन होना चाहिए। उसका शासन अदृश्य होगा।
जैनों ने महावीर के वचनों को महावीर का शासन कहा है। बौद्धों ने भी बुद्ध के वचनों को बुद्ध का शासन कहा है। बौद्धों और जैनों ने, दोनों ने महावीर और बुद्ध को शास्ता कहा है--जो शासन दें, जिनसे शासन मिले। शासन उससे मिलना चाहिए जो स्वयं स्वतंत्र हो गया है। जो स्वयं स्वतंत्र हो गया है वह किसी को परतंत्र नहीं करता। उसकी स्वतंत्रता दूसरों के भी बंधन खोलती है, निर्ग्रंथ करती है। उसकी स्वतंत्रता दूसरों को भी स्वतंत्र करती है। वह वही दूसरों के लिए करता है जो उसके लिए हो गया है।
संत का शासन लाओत्से की अभीप्सा है, कि कभी ऐसी घड़ी आएगी जब संत से हम शासन लेंगे। दीप्ति की तरह फैल जाएगा उसका शासन। कुछ सौभाग्यशाली लोग संतों से शासन ले लेते हैं। पूरी पृथ्वी कब लेगी, न लेगी, कुछ कहना कठिन है। कुछ सौभाग्यशाली ले लेते हैं।
बौद्धों ने अपने भिक्षुओं का जो समूह है उसको संघ कहा है; बुद्ध को शास्ता कहा है। शास्ता वह है जिससे शासन मिले, और संघ वह है जो शासन ले। थोड़े से लोगों ने बुद्ध से शासन लिया, और उनके जीवन रूपांतरित हो गए। जिसने भी कभी किसी संत से शासन लिया उसका जीवन रूपांतरित हो जाता है। वही तो दीक्षा है। इनीशिएशन का वही अर्थ हैः संत से शासन लेने की कामना कि अब मैं तुमसे शासित होऊंगा। तुम मुझे चलाना, जिनकी अब किसी को चलाने की कोई आकांक्षा न रही।
इसे बहुत गौर से सोचना। क्योंकि लाओत्से जो भी कह रहा है एक-एक शब्द बहुमूल्य है। जिस दिन तुम तैयार हो जाते हो संत से शासन लेने को, उसी दिन संन्यास फलित होता है। उस दिन तुम इस पृथ्वी के हिस्से न रहे, उस दिन तुम राजनीति के बाहर हुए। उस दिन इस पार्थिव में जो उपद्रव चल रहा है उससे तुम्हारा कोई लेना-देना न रहा। तुमने एक और ही राह पकड़ ली। तुम्हें अब इस जगत में अंधे शासन नहीं देंगे।
कबीर कहते हैं, अंधे अंधे ठेलिया दोऊ कूप पड़ंत। अंधे अंधों को चलाते हैं, फिर दोनों कुएं में गिर जाते हैं।
एक तो है अंधों का शासन जो तुम्हें परतंत्र करेगा, जो तुम्हें जकड़ेगा,
जो तुम्हें जंजीरें पहना देगा। और एक है संतों का शासन जो तुम्हें मुक्त करेगा। जो तुम्हें परतंत्र करते हैं उनसे तुम्हें शासन मांगना नहीं पड़ता, वे बिना मांगे देते हैं। तुम भागो भी तो तुम्हारा पीछा करेंगे। तुम न भी चाहो तो भी तुम्हें शासित करेंगे। संत तुम्हें पीछा नहीं करेंगे और न तुम्हें शासित करने की कोई चेष्टा करेंगे। तुम्हें मांगना पड़ेगा, तुम्हें अपनी झोली फैलानी पड़ेगी। और जिस दिन तुम्हारी झोली में किसी संत का शासन पड़ जाए, तुम्हें एक गर्भ मिला। अब तुम दूसरे ही हो गए। अब तुम्हारा पुनर्जन्म बहुत करीब है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
अट्ठानबेवां प्रवचन

नियमों का नियम प्रेम व स्वतंत्रता है

Chapter 59

Be Sparing

In managing human affairs, there is no better rule than
to be sparing.
To be sparing is to forestall;
To forestall is to be prepared and strengthened;
To be prepared and strengthened is to be ever-victorious;
To be ever-victorious is to have infinite capacity;
He who has infinite capacity is fit to rule a country,
And the Mother (Principle) of a ruling country can long endure.
This is to be firmly rooted, to have deep strength,
The road to immortality and enduring vision.

अध्याय 59

मिताचारी बनो

मानवीय कारबार की व्यवस्था में मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।
मिताचार पूर्व-निवारण करना है;
पूर्व-निवारण करना तैयार रहने और सुदृढ़ होने जैसा है;
तैयार रहना और सुदृढ़ होना सदाजयी होना है;
सदाजयी होना अशेष क्षमता प्राप्त करना है;
जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने योग्य है;
और शासक देश की माता (सिद्धांत) दीर्घजीवी हो सकती है।
यही है ठोस आधार प्राप्त करना, यही है गहरा बल पाना;
और यही अमरता और चिर-दृष्टि का मार्ग है।

सूत्र के पूर्व कुछ बातें समझ लें।
मनुष्य के व्यवहार में और मनुष्य की व्यवस्था में स्वतंत्रता सूत्र है। जितने कम होंगे नियम, जितनी कम व्यवस्था करने की चेष्टा होगी, उतनी ही व्यवस्था आती है। जितने ज्यादा होंगे नियम, जितनी चेष्टा होगी व्यवस्था को आरोपित करने की, उतनी ही अराजकता पैदा होती है। इसे हम ऐसा कहें, मनुष्य और मनुष्य के बीच जितनी अराजकता हो उतनी व्यवस्था होगी, और जितनी व्यवस्था हो उतनी अराजकता हो जाएगी।
इसका कारण है। क्योंकि जब भी कोई एक व्यक्ति दूसरे को व्यवस्था देता
है तब उसके अहंकार को चोट पहुंचती है। छोटे से बच्चे तक को व्यवस्था देने में अहंकार को चोट पहुंचती है तो बड़े बच्चों की तो कहना ही क्या! छोटे से बच्चे को भी तुम कहो कि बैठ जाओ शांत होकर! तो तुम जो कहते हो वह महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ता, छोटे बच्चे को पीड़ा मालूम पड़ती है। वह पीड़ा यह है कि उसे बिठाया जा रहा है। उसे अपनी असहाय अवस्था मालूम पड़ती है कि मेरे ऊपर अन्याय किया जा रहा है। आज मैं छोटा हूं तो मुझे दबाया जा रहा है। यह बच्चा बैठ भी जाए तो भी बड़े प्रतिशोध से भरा हुआ बैठेगा। और बैठने का तो कुछ भी मूल्य न था, प्रतिशोध का जहर जीवन भर पीछा करेगा।
इसलिए बच्चे अपने माता-पिता को कभी माफ नहीं कर पाते। असंभव है। नहीं माफ करने का कारण यह है कि इतनी व्यवस्था दी जाती है कि बच्चे के अहंकार को

प्रतिपल चोट पहुंचती है। उसे लगता है, जैसे उसका अपना कोई होना ही नहीं; दूसरों के इशारे सब कुछ हैं--जहां वे चलाएं, चलो; जो वे बताएं, देखो; जो वे करने को कहें, करो। तुम्हारे भीतर स्वतंत्रता का कोई सूत्र वे बचने नहीं देते हैं। एक बोझ की भांति मालूम होता है यह व्यवस्था आरोपित किया जाना। यह बोझ इतना हो जा सकता है कि फिर बच्चा सारे ही बोझ को तोड़ दे और ठीक और गलत का हिसाब भी भूल जाए, और हर चीज के विरोध में खड़े होने की प्रवृत्ति से भर जाए। इसीलिए तो अक्सर सज्जन माता-पिता के घर में सज्जन बच्चे पैदा नहीं हो पाते। क्योंकि सज्जन माता-पिता बच्चे को सज्जन बनाने में इतनी शीघ्रता से लग जाते हैं, उनकी चेष्टा का परिणाम दुर्जन का जन्म होता है। तो कभी-कभी जुआरी-शराबी के घर में अच्छा बच्चा पैदा हो जाए, लेकिन सज्जनों के घर में अच्छा बच्चा पैदा नहीं होता। जुआरी और शराबी के घर में कोई नियम तो है नहीं। जुआरी-शराबी नियम बनाएगा भी कैसे? जुआरी-शराबी खुद ही अपने को व्यवस्थित नहीं कर पा रहा है, बच्चे को क्या व्यवस्था देगा?
और एक अनूठी घटना घटती है--और मनसविद बड़ी चिंता में रहे हैं कि ऐसा क्यों होता है--कि बच्चा खुद अपनी व्यवस्था अपने हाथ में ले लेता है। यह देख कर कि कोई व्यवस्था करने वाला नहीं है, यह अनुभव करके कि मैं अंधेरे में खड़ा हूं, खुद ही सम्हलने लगता है। यह देख कर कि माता-पिता, परिवार गलत रास्ते पर जा रहा है... । इसे देखने में किसी बच्चे को अड़चन नहीं होती कि गलत क्या है। क्योंकि जहां से जीवन में दुख आता है वह गलत है; इसके लिए कोई अनुभव की जरूरत नहीं है। इस जांच को तो हम लेकर ही पैदा होते हैं कि जिससे दुख मिलता है वह गलत है। बच्चा रोज देखता है, शराब दुख दे रही है, जुआ दुख दे रहा है; परिवार पीड़ा में जी रहा है, नरक में जी रहा है; सचेत हो जाता है, अपने को सम्हालने लगता है। जब कोई सम्हालने वाला नहीं होता तो बच्चा अपने को सम्हालता है।
तुमने कभी देखा हो, छोटा बच्चा गिर जाए तो पहले वह चारों तरफ देखता है गिरने के बाद, रोना एकदम शुरू नहीं कर देता। पहले वह देखता है कि कोई है भी? मां है पास? तो ही रोने में कोई सार है। अगर मां पास नहीं है, चारों तरफ देख कर, कपड़े झाड़ कर अपने रास्ते पर चल देता है। गिरने के कारण नहीं रोता, मां की मौजूदगी के कारण रोता है। जब देखता है, कोई सम्हालने वाला नहीं, उठाने वाला नहीं, कोई संवेदना प्रकट करने वाला नहीं, अपने पैरों पर चुपचाप खड़ा हो जाता है। रोना किसके आगे? किसकी प्रतीक्षा करनी? कोई है नहीं उठाने वाला। खुद झाड़ देता है धूल को, उठ कर खड़ा हो जाता है।
यह बच्चा प्रौढ़ हो गया। अकेला पाकर एक प्रौढ़ता इसमें आई कि रोना व्यर्थ है। लेकिन मां पास हो तो यह रोएगा, चीखेगा, चिल्लाएगा। क्योंकि संवेदना किसी से मिल सकती है, कोई फिक्र करेगा, कोई ध्यान देगा।
इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिन बच्चों को बहुत ध्यान दिया जाएगा, बहुत फिक्र की जाएगी, वे हमेशा निर्बल रह जाएंगे। वे ऐसे पौधे होंगे जो अपने तईं जी ही न सकेंगे। हॉट हाऊस प्लांट! उनके लिए कांच की दीवार चाहिए। सूरज की रोशनी भी उन्हें मुर्झाएगी; हवा का झोंका भी उन्हें मार डालेगा; जरा सी ज्यादा वर्षा और उनकी जड़ें उखड़ जाएंगी। उनके पास कोई जड़ें नहीं हैं। और कारण क्या है? कारण इतना ही है कि उनकी अतिशय सुरक्षा की गई। अतिशय सुरक्षा स्वयं को सुरक्षित करने की सारी क्षमता का नाश कर देती है।
तुम बच्चों को बचाना, लेकिन अति सुरक्षा मत देना। बचाना तो भी परोक्ष; सीधी व्यवस्था मत देना। तुम बच्चों के आस-पास एक वातावरण की तरह होना, जंजीरों की तरह नहीं। एक हवा हो तुम्हारी उनके आस-पास जो दीवार नहीं बनती। लेकिन कारागृह न हो। अगर बच्चे को तुम यह भी कहना चाहो कि मत करो इसे, तो भी इस ढंग से कहना कि उसके अहंकार को चोट न पहुंचे। रास्ते हैं, निषेध को कहने के भी विधायक रास्ते हैं। विधेय को भी कहने के निषेधात्मक रास्ते हैं। अगर बच्चा आग के पास जा रहा हो तो बजाय यह कहने के कि वहां मत जाओ, उसका ध्यान आकर्षित करना कि देखो, बगीचे में कैसा सुंदर फूल खिला है! तुम यहां क्या कर रहे हो? तुम उसे विधेय देना कि वह फूल की तरफ चला जाए। आग की तरफ मत जाओ, यह बात ही खतरनाक है; क्योंकि यह निमंत्रण बन जाएगी। तुम जब मौजूद न होओगे तब

बच्चा आग के पास जाना चाहेगा। क्योंकि निषेध किया गया है, और निषेध को तोड़ना जरूरी है। नहीं तो बच्चे का अपना अहंकार कैसे निर्मित होगा?
इसे तुम ठीक से समझ लो। अहंकार निर्मित होने के लिए निषेध को तोड़ना जरूरी है; जो-जो कहा जाए, मत करो, वह करना जरूरी है। नहीं तो बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होना नहीं सीख पाएगा। इसीलिए तो तुम जो-जो कहते हो मत करो, वही- वही बच्चे करते हैं। और तुम परेशान होते हो, सिर पीटते हो कि क्या मामला है! इतना समझा रहे हैं, इतना रोक रहे हैं।
समझाने-रोकने के कारण ही किया जा रहा है। निषेध की दीवार बनाई तुमने कि बगावत पैदा होती है। तुमने कहा, धूम्रपान मत करना। शायद अभी बच्चे ने इसके पहले सोचा भी न हो कि धूम्रपान करना है। कौन बच्चा सोचता है? या कभी किसी को देखता भी करते हुए और अनुकरण कर लेता--कोई निषेध न होता--तो एक ही बार बच्चा धूम्रपान करेगा, दुबारा नहीं। खुद ही अनुभव से छूट जाएगा। क्योंकि सिवाय आंसू आने के, खांसी आने के और परेशानी के कुछ होगा नहीं। बुद्धिमान पिता तो बच्चे को सिगरेट लाकर दे देगा। क्योंकि आज नहीं कल किसी न किसी का अनुकरण तुम करोगे ही, तुम खुद ही अनुभव से जान लो। मैं कुछ कहता नहीं, तुम अनुभव से जान लो। अगर प्रीतिकर लगे तो आगे बढ़ना, अगर अप्रीतिकर लगे तो रुक जाना। लेकिन तुम्हीं निर्णायक हो, मैं निर्णायक नहीं हूं। और अगर पिता यह कर सके तो बच्चे के जीवन में धूम्रपान का जो पहला आकर्षण था वह नष्ट कर दिया। और तब बच्चा दूसरों को धूम्रपान करते देख कर सिर्फ हंसेगा कि कैसे मूढ़ हैं! लेकिन तुमने कहा, मत करना! रस पैदा हुआ। इनकार में बड़ा रस है। अब बच्चे
के मन में एक ही बात घूमेगी, उसके सपनों में एक ही बात घूमेगी कि कब मौका पा जाए, कोई एकांत क्षण में धूम्रपान करके देख ले। और तुम्हारा जितना निषेध होगा उतना ही बच्चा धूम्रपान की पीड़ा भी झेल लेगा, लेकिन तुम्हारे निषेध को तोड़ कर रहेगा। तोड़ कर ही तो उसको बल मिलेगा। तोड़ कर ही तो वह भी अनुभव करेगा कि मैं भी कुछ हूं, तुम्हीं सब कुछ नहीं हो।
एक संघर्ष है जो पिता और बेटे में चलता है। एक संघर्ष है जो मां और बेटी में चलता है। वह संघर्ष बिल्कुल स्वाभाविक है। उस संघर्ष से ही तो बच्चा बड़ा होता है। इसे तुम ऐसा समझो। संघर्ष बड़े प्राथमिक क्षण से शुरू हो जाता है; मां के गर्भ में शुरू हो जाता है। इसीलिए तो बच्चे के जन्म के समय इतनी पीड़ा होती है। क्योंकि बच्चा इनकार करता है बाहर आने से। वह जहां है सुख में है। वह जकड़ता है अपने को, रोकता है अपने को। एक संघर्ष शुरू हो गया। एक कलह शुरू हो गई। यह कलह फिर जीवन भर जारी रहेगी।
पिता और मां और उनके बच्चों के बीच या तो समझदारी का संगीत हो तो कलह को सृजनात्मक रूप दिया जा सकता है। अगर यह संगीत न हो, और ध्यान रखना, इसका जिम्मा बच्चे पर नहीं हो सकता, क्योंकि बच्चा तो अभी कुछ भी नहीं जानता है। इसका जिम्मा तो बड़ों पर होगा। और बड़ों ने अगर छोटी, क्षुद्र बातों के ऊपर बड़ी सख्ती की, तो यह बच्चा उनके हाथ से छूट जाएगा। फिर वे रोएं, चीखें- चिल्लाएं, इससे कुछ भी होने वाला नहीं है। बच्चा इसमें आनंदित होगा कि तुम पीड़ित हो; क्योंकि इसका मतलब होता है, बच्चा शक्तिशाली हो रहा है; तुम्हें पीड़ित कर सकता है। तुम ही उसे पीड़ित नहीं कर सकते, वह भी पीड़ित कर सकता है। अब एक राजनीतिक दांव-पेंच बाप और बेटे के बीच चलेगा।
जो बाप और बेटे के लिए सही है वही बहुत से आयामों में सही है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच भी वही सही है। शासक और शासित के बीच भी वही सही है।
जहां-जहां किसी को चलाना है, कोई दिशा देनी है, किसी मार्ग को पकड़ाना है, वहां-वहां वही कठिनाई आएगी।
लाओत्से कहता है, कम से कम नियम, न्यूनतम नियम, बस उतने ही नियम चाहिए जिनके बिना चल ही न सके। जिनके बिना चल सके वे नियम काट देना।
दो व्यक्तियों के बीच का संबंध स्वतंत्रता पर आधारित हो, शासन पर नहीं। और मजा यही है कि तुम जितना किसी दूसरे को स्वतंत्र करोगे उतना ही वह तुमसे शासित होने को तत्पर और राजी हो जाता है। क्योंकि अब तुम्हारा शासन उसके अहंकार को चोट नहीं पहुंचाता। अब तुम्हारा शासन मित्र है, अब तुम्हारा शासन शत्रु की भांति नहीं है। इसलिए जो भी तुम किसी को कहो वह इस भांति कहना कि वह सुझाव से ज्यादा न हो; आदेश कभी न बने। वही मिताचार है।

लेकिन बाप की अपनी अकड़ है। वह सोचता है, बेटे को सुझाव क्या देना, सीधा आदेश, आज्ञा। वहां भूल है। सुझाव से ज्यादा कुछ भी नहीं किया जा सकता। और सुझाव भी ऐसा होना चाहिए कि अगर तुम ठीक कुशल होओ तो दूसरे को ऐसा लगेगा कि उसके भीतर से ही आया है।
किसी ने अमरीका के बहुत बड़े करोड़पति-अरबपति एंड्रू कारनेगी से पूछा कि तुम्हारे जीवन की सफलता का राज क्या है? तो एंड्रू कारनेगी ने कहा, मेरी सफलता का राज एक ही है--और अब मैं बता सकता हूं, क्योंकि अब मेरी मौत करीब है और मेरी यात्रा पूरी हो गई--और वह राज यह है कि मैं अपने से भी बुद्धिमान लोगों से काम लेता हूं और इस ढंग से काम लेता हूं कि उन सबको यह प्रतीति होती है कि उनके सुझाव मैं मान रहा हूं, हालांकि वे सुझाव मेरे ही होते हैं। तो एंड्रू कारनेगी अपने साथियों को, सहयोगियों को बुला लेता था। उन सबसे कहता था, कोई समस्या है, हल करनी है, तो सब सुझाव दें। उसका सुझाव तो पक्का ही है; वह पहले अपना तय कर चुका है कि क्या करना है, वह उसे रखे बैठा है भीतर। लेकिन सबसे सुझाव मांगेगा। फिर मौका देख कर कोई सुझाव, जो उसके भीतर के सुझाव के करीब पड़ता होगा, वह उस सुझाव की चर्चा के बहाने चर्चा शुरू करेगा और वह ऐसा प्रतीत करवाएगा कि तुम्हारे में से ही किसी का सुझाव उसने स्वीकार कर लिया है। लेकिन वह कभी यह एहसास न होने देगा कि मैंने कोई सुझाव दिया जिसे तुम्हें मानना पड़ा है। एंड्रू कारनेगी के पास जिन लोगों ने भी काम किया उन सबका भी वही एहसास है कि उसने कभी कोई सुझाव नहीं दिया। बहुत कुशल आदमी होगा। और ऐसा ही आदमी मानवीय जीवन को व्यवस्था देने में सफल हो पाता है।
तुम दूसरे को आदेश भी दो तो ऐसे देना जैसे वह सुझाव है। और इस भांति देना कि मानने की कोई मजबूरी नहीं है। वह मानना चाहे तो माने, न मानना चाहे तो न माने। वह नहीं मानेगा तो तुम्हें कोई दुख होने वाला नहीं है, यह तुम साफ कर देना। क्योंकि न मान कर तुम्हें दुख देने की जो वृत्ति होती है वह तुम खुद ही काट देना। छोटा बच्चा नहीं मानना चाहता, क्योंकि वह जानता है, नहीं मानेगा तो तुम परेशान-पीड़ित होओगे। तो वह भी तुमको पीड़ित कर सकता है, यह शक्ति अनुभव होगी। तुम यह पहले ही जाहिर कर देना कि तू नहीं मानेगा तो कोई अड़चन नहीं है; मैं दोनों तरह से राजी हूं, दोनों में मेरी खुशी है--माने तो, न माने तो। तो तुमने दंश काट दिया। तुमने निषेध का जो रस था वह तोड़ दिया। तुमने जीवन-व्यवस्था को विधायक बना दिया।
सारी जीवन-व्यवस्था निषेधात्मक है। यहूदियों के, ईसाइयों के पास दस आज्ञाएं हैं। तुम अगर पश्चिम को समझने की कोशिश करो तो लाओत्से का सूत्र समझना बहुत आसान हो जाएगा। पश्चिम में बड़ी बगावत है। हर बाप के खिलाफ बगावत है। नई पीढ़ी कुछ भी मानने को राजी नहीं है। कुछ भी! जीवन के छोटे-छोटे नियम भी मानने को राजी नहीं है। स्नान भी करने को राजी नहीं है। गंदगी को आचरण बना लिया है। साफ-सुथरा दिखना बुर्जुआ, गए-गुजरे लोगों की आदत है। तो हिप्पी हैं और हिप्पियों जैसा सारा वर्ग है पश्चिम में, जो स्नान नहीं करेगा, गंदा रहेगा, गंदे कपड़े पहनेगा, धोएगा नहीं। कारण हैः ईसाइयत ने बड़ा आग्रह किया पिछले दो हजार साल में, ईसाइयत ने कहा कि क्लीनलीनेस इ.ज नेक्स्ट टु गॉड; स्वच्छता बस परमात्मा से नीचे है, स्वच्छता के ऊपर बस केवल परमात्मा है। इसका आग्रह इतना प्रगाढ़ हो गया कि हिप्पी पैदा हो गया। तो नई पीढ़ी ने कहा कि हमारे लिए तो दुर्गंध और अस्वच्छता ही दिव्यता है। ईसाइयत ने दस आज्ञाएं निर्धारित की हैंः चोरी मत करो, पर-स्त्री को मत देखो, धोखा मत दो... । लेकिन सभी नकारात्मक हैं।
एक ईसाई पादरी क्रिसमस के पहले पोस्ट आफिस गया था। वह कोई पार्सल किसी
को भेंट भेज रहा था, और उस पर लिखा ऊपरः हैंडल विद केयर। तो पोस्ट मास्टर ने पूछा कि कुछ कांच इत्यादि का सामान है? उसने कहा कि नहीं, बाइबिल भेज रहा हूं। तो उसने कहा कि बाइबिल में क्या टूटने जैसा है? उसने कहा, दस आज्ञाएं! वे कांच से भी ज्यादा नाजुक हैं।
असल में, नहीं और निषेध से ज्यादा नाजुक चीज जगत में दूसरी नहीं है। तुमने नहीं कहा कि तुमने आधार बना दिया तोड़ने का। तुमने किसी को भी कहा कि नहीं कि तुमने उसको निमंत्रण दे दिया कि तोड़ो।

उपनिषद में ऐसी एक भी आज्ञा नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं, उपनिषद जिन्होंने रचा वे बहुत बुद्धिमान लोग थे। उपनिषद में एक भी निषेधात्मक आज्ञा नहीं है। उपनिषद यह नहीं कहता कि चोरी मत करो। उपनिषद कहता है, दान दो, बांटो। उपनिषद यह नहीं कहता कि व्यभिचार मत करो। उपनिषद कहता है, ब्रह्मचर्य को उपलब्ध करो। उपनिषद यह नहीं कहता, यह संसार बुरा है, छोड़ो। उपनिषद कहता है, परमात्मा परम भोग है, खोजो।
बात वही है। लेकिन जहां विधेय होता है वहां तोड़ने का सवाल नहीं उठता। जहां विधेय है, जहां कोई चीज पाजिटिव है--परमात्मा को खोजो; इसमें क्या तोड़ना है? तोड़ने का कोई मजा ही नहीं है इसमें। तोड़ने का तो मजा ही तब आता है जब कोई कहे, नहीं। वहीं तुम्हारे भीतर भी अहंकार मजबूत हो जाता है। वहीं तुम तोड़ने को तत्पर हो जाते हो। वहीं तुम्हारे अहंकार पर कोई आक्रमण कर रहा है। "नहीं" आक्रामक है अहंकार के लिए, और अहंकार उसे बरदाश्त नहीं करेगा; उसे तोड़ कर दिखलाएगा।
इसे स्मरण रखना। मानवीय व्यवस्था में नहीं जितना कम बीच में आए उतना अच्छा। हां को बीच में आने दो, क्योंकि हां जोड़ता है। नहीं तोड़ता है। और तुम्हारे सब नियम नहीं पर आधारित होते हैं। हां पर करो उन्हें आधारित, और तब तुम पाओगे कि पचास नहीं पर आधारित नियम एक हां पर आधारित नियम में समाविष्ट हो जाते हैं। इतने नियमों की जरूरत नहीं है।
संत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि मुझे जीवन अपना सुधारना है तो मैं कौन-कौन से नियमों का पालन करूं? तो संत अगस्तीन ने कहा, अगर नियमों का पालन करने गया और यह पूछा कि कौन-कौन से, तो नियम हजार हैं, जिंदगी बहुत थोड़ी है। तो तुझे मैं एक ही नियम बता देता हूं कि तू प्रेम कर। तो उस आदमी ने कहा, इससे सब हो जाएगा? अगस्तीन ने कहा, सब हो जाएगा। क्योंकि जो प्रेम करेगा वह चोरी कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा वह हिंसा कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा वह किसी का अपमान कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा उसके जीवन में जो- जो कांटे हैं वे अपने से झर जाएंगे। क्योंकि प्रेम केवल फूल को ही खिला सकता है; प्रेम में कोई कांटे नहीं हैं। जो प्रेम करता है, वह क्रोध और घृणा और वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा कैसे कर सकेगा? जो प्रेम करता है उसे तुमने कभी लोभ करते देखा? उनका कोई मेल ही नहीं होता।
अगर लोभ करना हो तो प्रेम भूल कर मत करना। अगर लोभ करना हो तो प्रेम की बात में ही मत पड़ना। इसीलिए तो कृपण आदमी कभी प्रेम नहीं करता; कर ही नहीं सकता। कृपणता का प्रेम से कोई संबंध नहीं है। लोभी धन इकट्ठा करता है। और प्रेम खतरनाक है उसके लिए। प्रेम से ज्यादा खतरनाक कुछ भी नहीं है। क्योंकि प्रेम का मतलब है--बांटो। इसलिए लोभी प्रेम की झंझट में कभी नहीं पड़ता, हालांकि वह भी सिद्धांत खोज लेता है। लोग बड़े कुशल हैं। वह कहता है, राग से मैं दूर ही रहता हूं। कृपण अपने को वीतराग समझता है। कृपण कहता है, क्या रखा है संबंधों में? यह तो वह कहता है, लेकिन तिजोड़ी में रखता चला जाता है। धन ही उसका एकमात्र संबंध है।
और जिसका धन से संबंध है उसका जीवन से कोई संबंध नहीं रह जाता। प्रेम
तो जीवंत संबंध है। धन तो मृत वस्तु से संबंध है। धन से ज्यादा मरी हुई कोई चीज है? रुपये से ज्यादा मुर्दा कोई चीज तुम दुनिया में खोज सकते हो? पत्थर भी पड़ा-पड़ा बढ़ता है, पत्थर भी फैलता है। सारा अस्तित्व जीवंत है। लेकिन रुपया तुम बिल्कुल मरा हुआ पाओगे। रुपये में कोई जीवन नहीं है। और जो आदमी रुपये को इकट्ठा करने में लग जाता है उसकी आत्मा भी मर जाती है। और प्रेम तो वहां खिलता है जहां आत्मा जीवंत होती है।
तो जो प्रेम करता है वह लोभ नहीं कर सकता। जो प्रेम करता है वह कृपण नहीं हो सकता, परिग्रही नहीं हो सकता। एक प्रेम हजार नहीं वाले नियमों को अकेला सम्हाल लेता है। एक हां इतना बड़ा आकाश है कि हजारों नियमों के छोटे- छोटे पौधे उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। और बिना दंश के, बिना कांटे के।
तो अगस्तीन कहता है, प्रेम कर सको तो काफी है। प्रेम न कर सको तो फिर तुम्हें लंबी फेहरिस्त नियमों की मैं बताऊं। वे उनके लिए हैं जो प्रेम नहीं कर सकते हैं।

सब धर्मशास्त्र, सब आज्ञाएं उनके लिए हैं जो प्रेम नहीं कर सकते हैं।
जो प्रेम कर सकता है उसके लिए बड़े से बड़ा शास्त्र मिल गया। अब किसी और शास्त्र की कोई जरूरत नहीं।
इसलिए तो जीसस कहते हैं कि प्रेम परमात्मा है। तुम कुछ मत करो, सिर्फ प्रेम कर लो। प्रेम का सार सूत्र क्या है--कि जो तुम अपने लिए चाहते हो वही तुम दूसरे के लिए करने लगो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह तुम दूसरे के साथ मत करो। प्रेम का अर्थ यह है कि दूसरे को तुम अपने जैसा देखो, आत्मवत। एक व्यक्ति भी तुम्हें अपने जैसा दिखाई पड़ने लगे तो तुम्हारे जीवन में झरोखा खुल गया। फिर यह झरोखा बड़ा होता जाता है। एक ऐसी घड़ी आती है कि सारे अस्तित्व के साथ तुम ऐसे ही व्यवहार करते हो जैसे तुम अपने साथ करना चाहोगे। और जब तुम सारे अस्तित्व के साथ ऐसा व्यवहार करते हो जैसे अस्तित्व तुम्हारा ही फैलाव है तो सारा अस्तित्व भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करता है। तुम जो देते हो वही तुम पर लौट आता है। तुम थोड़ा सा प्रेम देते हो, हजार गुना होकर तुम पर बरस जाता है। तुम थोड़ा सा मुस्कुराते हो, सारा जगत तुम्हारे साथ मुस्कुराता है। कहावत है कि रोओ तो अकेले रोओगे, हंसो तो सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ हंसता है। बड़ी ठीक कहावत है। रोने में कोई साथी नहीं है। क्योंकि अस्तित्व रोना जानता ही नहीं। अस्तित्व केवल उत्सव जानता है। उसका कसूर भी नहीं है। रोओ--अकेले रोओगे। हंसो--फूल, पहाड़, पत्थर, चांद-तारे, सभी तुम्हारे साथ तुम हंसते हुए पाओगे। रोने वाला अकेला रह जाता है। हंसने वाले के लिए सभी साथी हो जाते हैं, सारा अस्तित्व सम्मिलित हो जाता है।
प्रेम तुम्हें हंसा देगा। प्रेम तुम्हें एक ऐसी मुस्कुराहट देगा जो बनी ही रहती है, जो एक गहरी मिठास की तरह तुम्हारे रोएं-रोएं में फैल जाती है। प्रेम काफी नियम है। और प्रेम नियम जैसा लगता ही नहीं।
तुम बच्चों को प्रेम दो, नियम नहीं। तुम्हारा प्रेम उनके जीवन में सारे नियमों की आधारशिला रख देगा। तुम उन्हें सिद्धांत मत दो। सिद्धांत तो कूड़ा-कर्कट है। तुम तो उन्हें हृदय की छांव दो। तुम तो उन्हें प्रेम का भाव दो। तुम इतना ही बच्चों को सिखा दो कि वे भी तुम जैसा प्रेम करने लगें; तुमने सब सिखा दिया। फिर तुम उन्हें छोड़ दे सकते हो इस विराट संसार में; उनसे कोई भूल न होगी।
और तुम सब तरह के सिद्धांत उन्हें दे दो, और सब शास्त्र उनके सिर पर रख दो--और उन्हें प्रेम मत दो--तुम्हारी आंख बचते ही तुम्हारे शास्त्रों को एक तरफ फेंक कर लात मार कर वे वहीं चले जाएंगे जहां जाने से तुमने उन्हें रोका था। तुम्हारे निषेध उनके चरित्र को रूपांतरित न करेंगे। तुम्हारा विधायक भाव!
और जो दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है वही समाज और शासन का संबंध है। शासन ऐसे है जैसे माता-पिता, प्रजा ऐसे है जैसे बच्चे। इसीलिए तो हम राजा को पिता कहते थे पुराने दिनों में। चाहे राजा की उम्र कम भी हो तो भी वह पिता था। और प्रजा उसकी संतान थी। इसके पीछे कारण है कहने का। कारण यही है कि जिसको भी शासन देना है उसे एक गहरे प्रेम के आत्मीय संबंध में बंध जाना जरूरी है। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए तो लाओत्से का सूत्र बड़ा आसान हो जाएगा। एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें।
"मानवीय कारबार की व्यवस्था में, मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।"
मिताचार का अर्थ है बहुत गहन, अनेक आयामी। एक आयाम है मिताचार का कि आचरण के नियम जितने कम हों--कम से कम हों--उतना अच्छा। अंगुलियों पर गिने जा सकें; बहुत ज्यादा नियमों का जाल न हो। अक्सर अधिक नियमों के जाल में ही भटकाव पैदा हो जाता है। बहुत नियम चाहिए भी नहीं। एक ऐसा नियम चाहिए जो सभी नियमों को समाविष्ट कर लेता हो। और जीवन की व्यवस्था बड़ी सरल चाहिए। अतिशय नियम में जीवन भी जटिल हो जाता है; और तुम ऐसे जीने लगते हो जैसे कोई सैनिक हो। सैनिक से आदमियत खो जाती है, उसका मानवीयपन खो जाता है। वह यंत्रवत हो जाता है--रोबोट। कब उठना, नियम से उठता है; कब बैठना, नियम से बैठता है; कब खाना, नियम से खाता है। सब व्यवस्थित हो जाता है। सैनिक आज्ञा

में जीता है और नियम में बंध कर जीता है। सैनिक मनुष्यता का आखिरी पतन है। क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है। वह अपने सपने में भी स्वतंत्र नहीं होता। सपने तक में नियम घुस जाते हैं; उसकी नींद तक नियमों से आविष्ट हो जाती है। किसी पक्के सैनिक के पास अगर नींद में भी तुम खड़े होकर कह दो, लेफ्ट टर्न! वह नींद में भी करवट ले लेगा उसी वक्त। नियम अचेतन तक चले जाते हैं।
विलियम जेम्स ने अपना एक संस्मरण लिखा है कि एक होटल में बैठ कर वह बातचीत कर रहा है। एक रिटायर्ड सैनिक रास्ते से गुजर रहा है अंडों की एक टोकरी लिए। उसने सिर्फ मजाक में, अपने मित्रों को दिखाने के लिए कि नियम कितने गहन घुस जाते हैं, जोर से चिल्ला कर कहा, अटेंशन! उस सैनिक को रिटायर हुए बीस साल हो गए। वह अटेंशन खड़ा हो गया। टोकरी नीचे गिर गई। अंडे सब जमीन पर फूट गए। वह सैनिक बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, यह क्या मजाक है? विलियम जेम्स ने कहा कि हमें अटेंशन कहने का हक नहीं? तुम मत मानो। उसने कहा, यह कोई अपने बस में है मानना न मानना? आज्ञा आज्ञा है!
रोबोट का मतलब है यंत्रवत। यहां तुमने बटन दबाई वहां प्रकाश जल गया। प्रकाश कोई रुक कर प्रतीक्षा थोड़े ही करता है, सोचता थोड़े ही है कि जलूं, न जलूं। सैनिक भी वही है जो सोचने से बाहर हो गया।
सोचने से दुनिया में दो लोग बाहर होते हैं, एक संत और एक सैनिक। संत सोचने के पार हो जाता है और सैनिक सोचने के नीचे गिर जाता है। दोनों पार हो जाते हैं। सैनिक पतित हो जाता है सोचने के स्थान से। उसको सोचने की जगह से पदच्युत करने के लिए ही सारी सैनिक व्यवस्था है। युद्ध चले या न चले, सैनिक के लिए जैसे युद्ध चलता ही रहता है। उसके क्रम में कोई भेद नहीं पड़ता। सुबह-शाम उसे घंटों लेफ्ट-राइट और कवायद करनी ही पड़ती है। उसे जरा भी शिथिल नहीं छोड़ा जा सकता।
और क्यों इतनी कवायद करवाते हैं? लेफ्ट-राइट का क्या संबंध है?
कोई संबंध नहीं है, लेकिन बहुत गहरी कंडीशनिंग की व्यवस्था है। सैनिक
को हम कहते हैं, बाएं घूमो, वह बाएं घूमता है। हम कहते हैं, दाएं घूमो, वह दाएं घूमता है। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे यह बात इतनी प्रगाढ़ हो जाती है, उसकी चेतन पर्तों से उतरते-उतरते अचेतन में चली जाती है। तब तुम्हारा कहना बाएं घूमो बटन दबाने की तरह काम करता है। सैनिक के बस के बाहर है कि न घूमे। घूमना ही पड़ेगा। यह घूमना अब यंत्रवत है।
और जब एक सैनिक यंत्रवत घूमने लगा तब उसका भरोसा किया जा सकता है। तब उससे कहो, चलाओ गोली! तो वह गोली चलाएगा, चाहे सामने उसकी मां ही क्यों न खड़ी हो। तब वह अजनबी आदमी पर गोली चला देगा जिससे उसको कुछ लेना-देना नहीं है, जिससे कोई झगड़ा-झांसा नहीं है; जो उसी जैसा आदमी है, जिसके घर मां होगी, पत्नी होगी, बच्चे प्रतीक्षा कर रहे होंगे, प्रार्थना करते होंगे कि कब वापस लौट आए; और जिसने कुछ बिगाड़ा नहीं है। लेकिन सोच-विचार के सैनिक नीचे गिर जाता है। उसे यंत्रवत गोली चलानी है। उसे बंदूक का ही हिस्सा हो जाना है।
सोचे-विचारे, यह मौका राज्य उसे नहीं दे सकता। क्योंकि सैनिक अगर खुद सोचने लगे तो हिरोशिमा पर बम गिराना मुश्किल है। क्योंकि वह सैनिक कहेगा, यह मैं न करूंगा; एक लाख आदमी राख हो जाएंगे क्षण भर में! इससे तो बेहतर तुम मुझे मार डालो। अगर मैं अपराध कर रहा हूं आज्ञा के उल्लंघन का, तुम मुझे गोली मार दो। लेकिन एक लाख लोगों को अकारण मारने मैं नहीं जा रहा हूं।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम डाला, वह बम फेंक कर वापस सो गया आकर। आठ बज
कर दस मिनट पर उसने बम फेंका; नौ बजे वापस आकर वह गहरी नींद में सो गया। उधर एक लाख लोग आग में भुन गए। छोटे-छोटे बच्चे थे; अभी गर्भ से बाहर भी न आए थे, वे भी बच्चे थे। स्त्रियां थीं, बूढ़े थे, जिनका कोई युद्ध से लेना-देना न था; नागरिक, जो न युद्ध कर रहे थे, न जो युद्ध चला रहे थे; बिल्कुल निहत्थे, जिनके पास कोई बचाव भी नहीं था। वे आग में भुन गए। हिरोशिमा में एक बैंक है जो जल गया। उसकी घड़ी किसी तरह बच गई है। वह ठीक आठ बज कर दस मिनट पर रुक गई। उस घड़ी को बचा लिया गया है। वह हिरोशिमा की याददाश्त है। उस दिन समय जैसे रुक गया। और आदमी ने गैर-आदमी होने की, अमानवीय होने की आखिरी छलांग ले ली।

यह आदमी सो गया। सुबह जब उठा तो पत्रकारों ने उससे पूछा कि तुम रात ठीक
से सो सके? उसने कहा कि बहुत मजे से! ऐसी गहरी नींद कभी नहीं आई। क्योंकि काम पूरा कर दिया; जो मुझे आज्ञा मिली थी वह पूरा कर दिया। आज्ञा पूरी हो गई; मैं विश्राम में चला गया।
इस आदमी के मन पर जरा सा दंश भी नहीं है। तुम्हारे पैर से चींटी भी कुचल जाए तो भी थोड़ा सा लगता है कि अकारण, थोड़े होश से चल सकता था। एक लाख लोग! थोड़ी संख्या नहीं है। और मैं एक लाख लोगों को मार आऊं और रात आराम से नींद आ जाए, यह सिर्फ सैनिक को हो सकता है। वह विचार से नीचे गिर गया। इसके पास अब कोई विचार-विमर्श की क्षमता न रही। इसका अपना विवेक न रहा। इसका अब कोई होश नहीं है। यह मशीन है।
नियम व्यक्ति को मशीन बनाते हैं। नियम मनुष्यता की हत्या है। इसलिए पहला तो ख्याल ले लेना कि जितने कम नियम तुम्हारे अंतर्संबंधों में हों उतना अच्छा। न हों तो वह परम दशा है।
संत तुम्हारे साथ बिना नियम के जीता है। प्रेम उसका नियम कह सकते हो। लेकिन वह कोई नियम नहीं है, वह उसका स्वभाव है। संत तुम्हारे साथ ऐसे जीता है जैसे तुम्हारे-उसके बीच कोई भी नियम नहीं है। क्षण-क्षण, क्षण की संवेदना, क्षण का प्रतिसंवेदन जो ले आता है, उसी को जीता है।
नियम अतीत से आते हैं। एक ढांचा भीतर होता है। अगर तुम मेरे पास आओ और इसलिए मेरे पैर छुओ कि परंपरागत है कि गुरु के पास जाओ तो पैर छूने चाहिए-- इसलिए अगर पैर छुओ--तो छूना ही मत। क्योंकि यह नियम से आ रहा है।
न, अचानक तुम मेरे पास झुकने के भाव से भर जाओ, वह भाव किसी नियम से न आए,
वह तुम्हारे अंतस से आए, वह तुम्हारे प्रेम का हिस्सा हो। तब बात और है। तब गुण और है। तब उस झुकने का रस और है। तब तुम उस झुकने में कुछ पाओगे। तब तुम उस झुकने में भर जाओगे, तब तुम उस झुकने में पाओगे कि तुम्हारा घड़ा झुका और नदी से भर गया। लेकिन अगर नियम से तुम झुके तो तुम व्यर्थ ही झुकोगे। वह कवायद हो सकती है, उससे तुम्हारे शरीर को शायद थोड़ा लाभ हो, लेकिन आत्मा को कोई लाभ न होगा। नियम से आत्मा को कभी कोई लाभ नहीं होता, हानि भला हो जाए। तुम घर जा रहे हो। तुम पत्नी के लिए बाजार से एक फूल खरीद लेते हो। यह तुम नियम की तरह खरीद रहे हो? तो मत खरीदो। ये पैसे व्यर्थ जा रहे हैं। या कि तुम एक प्रेम, एक अनुग्रह के भाव से खरीदते हो--कि पत्नी दिन भर प्रतीक्षा करती रही होगी, कि न मालूम कितना काम उसने किया होगा, खाना बनाया होगा, सब्जी तैयार की होगी, वह राह देखती होगी, और ऐसे ही मैं खाली हाथ चला जाऊं! और फूल तुम्हें दिख जाता है, तो तुम फूल ले लेते हो एक भाव-प्रवण दशा में--पत्नी तुम्हें इतना दे रही है, तुम उसे कुछ भी नहीं दे पा रहे! तब तुम्हारा फूल एक मूल्य रखता है। वह मूल्य बाजार का मूल्य नहीं है। तब चाहे तुमने यह फूल दो पैसे में खरीदा हो, यह बहुमूल्य हो गया। और कोहिनूर भी फीका है इसके सामने, क्योंकि अब तुम्हारे हृदय का संवेग लेकर जा रहा है। अब इस फूल का काव्य ही अनूठा है। अब यह फूल साधारण इस पृथ्वी का फूल न रहा। तुमने इसमें कुछ डाल दिया, यह पारलौकिक हो गया।
लेकिन तुम नियम से खरीद सकते हो। तुमने किताब पढ़ी हो, मैरिज मैनुअल्स में लिखा हुआ है कि जब घर जाओ तो आइसक्रीम, फूल या कुछ खरीद कर ले जाओ। क्योंकि पत्नी वहां बैठी है खतरनाक, उसे थोड़ा संतुष्ट करना है। जैसे देवी पर कोई चढ़ोत्तरी चढ़ाते हैं, ऐसा वह देवी घर में बैठी है, पता नहीं क्रुद्ध हो, नाराज हो, तुम्हारे फूल के ले जाने से थोड़ा सा समझौता होगा--एक रिश्वत की भांति। तब यह फूल कुरूप हो गया। यह दो पैसे का भी न रहा। तब यह फूल गंदा हो गया। क्योंकि फूल तो वही है जो तुम्हारे भीतर से तुम उसमें डालते हो।
पति लाते हैं। जिस दिन वे अपराधी अनुभव करते हैं उस दिन जरूर कुछ खरीद
कर लाते हैं। आइसक्रीम खरीद लाते हैं। और पत्नियां भी जानती हैं कि आज जरूर किसी और स्त्री की तरफ गौर से देखा है। नहीं तो आइसक्रीम की क्या जरूरत है? आज पति कुछ गिल्टी है, कुछ अपराधी है, कहीं भीतर कोई दंश है। तो आइसक्रीम खरीद कर लाया है। नहीं तो नहीं। अगर हार ही खरीद लाया हो तो पक्का ही है यह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ गया है। वह जितनी बड़ी भेंट लाता है उतने ही बड़े अपराध की खबर लाता है।

दो व्यक्तियों के बीच जब नियम होता है तो प्रेम नहीं होता। नियम का अर्थ ही यह होता है कि तुम बाजार में चल रहो हो, बुद्धि से चल रहे हो। हृदय के कोई नियम हैं, कोई अनुशासन हैं? न कोई नियम है, न कोई अनुशासन है। फिर भी हृदय का एक अनुशासन है जो बड़ा अनूठा है; जो बिना लाए आता है, जो बिना आरोपित किए मौजूद हो जाता है। जो खिलता है क्षण-क्षण, जो अतीत से नहीं आता, जो वर्तमान में जन्मता है।
तुमने पत्नी को देखा घर जाकर और तुमने उसे हृदय से लगा लिया। यह तुम नियम से भी कर सकते हो। करना चाहिए। डेल कारनेगी जैसे लोग किताबें लिखते हैं, और वे किताबें लाखों में बिकती हैं। बाइबिल के बाद डेल कारनेगी की किताबें बिकी हैं दुनिया में। और सब कचरा हैं। और सब आदमी को झूठा और पाखंडी बनाती हैं। तो डेल कारनेगी कहता है, चाहे तुम्हें लगता हो चाहे न लगता हो, लेकिन पत्नी से दिन में कम से कम दो-चार बार कहना जरूरी है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तेरी जैसी सुंदर कोई स्त्री नहीं है। लगे चाहे न लगे, यह सवाल नहीं है, यह कहना जरूरी है। इसको तोते की तरह दोहरा देना जरूरी है। डेल कारनेगी कहता है, इससे संबंध सुमधुर बने रहते हैं। कैसी झूठी दुनिया है! जहां न लगता हो तब दोहराना, तो जिंदगी एक पाखंड हो जाती है।
जीवन एक कला है, पाखंड नहीं। और कला का यह अर्थ नहीं है कि तुम किसी स्कूल में उस कला को सीख सकते हो। जीकर ही तुम सीखते हो। जैसे कोई पानी में उतर कर तैरना सीखता है, ऐसे ही जी-जीकर तुम जीवन की कला सीखते हो। एक ही सूत्र ख्याल में रखना जरूरी है कि तुम होशपूर्वक जीओ और देखो कि जीवन कैसा है। और पाखंड से बचो। पाखंड धोखा ही बनाएगा। यह भी हो सकता है कि दो व्यक्तियों के संबंध पाखंड के कारण थोड़े से सुविधापूर्ण हों। लेकिन कभी भी आनंदपूर्ण न होंगे। सुविधा सस्ती चीज है। सुविधा को ले लेना और आनंद को गंवा देना मंहगा सौदा है।
लाओत्से कहता है, मिताचारी। मिताचारी का पहला आयाम हैः कम से कम आचरण
के नियम हों।
"इन मैनेजिंग ह्यूमन अफेयर्स, देयर इ.ज नो बेटर रूल दैन टु बी स्पेयरिंग।"
जब नियम कम होते हैं तो तुम दूसरे व्यक्ति को मौका देते हो उसके स्वयं होने का। यह बड़े से बड़ा प्रेम है इस जगत में कि तुम दूसरे को वही होने दो जो वह होना चाहता है; तुम दूसरे को वही होने दो जो वह होने को पैदा हुआ है। तुम दूसरे की नियति में बाधा मत बनो।
प्रेम सहारा देता है; तुम जो भी होने को बने हो वही होने में सहयोगी होता है। प्रेम तुम्हें काट-छांट कर अपनी मर्जी के अनुसार नहीं बनाना चाहता। क्योंकि मैं कौन हूं जो तुम्हें काटूं-छांटूं? मैं कौन हूं जो तुम्हें तुम्हारे रास्ते से च्युत करूं और कहीं और ले जाऊं? मैं कौन हूं जो तुम्हारा नियंता बनूं? प्रेम नियंता नहीं है। प्रेम की कोई मालकियत नहीं है। प्रेम तुम्हें स्वतंत्रता देता है वही होने की जो तुम होना चाहते हो। प्रेम तुम्हें खुला आकाश देता है। प्रेम तुम्हें छोटे से आंगन में बंद नहीं करता। और प्रेमी प्रसन्न होता है, तुम जितने मुक्त आकाश में विचरण करते हो। तुम जितने दूर निकल जाते हो बादलों के पार उड़ते हुए कि प्रेमी को दिखाई भी नहीं पड़ता कि तुम कहां चले गए हो, उतना ही प्रसन्न होता है। क्योंकि तुम जितने स्वतंत्र हो उतनी ही तुम्हारी गरिमा प्रकट होगी। तुम जितने स्वतंत्र हो उतनी ही तुम्हारी आत्मा सुदृढ़ होगी। तुम जितने स्वतंत्र हो उतने ही तुम्हारे जीवन में प्रेम का झरना बढ़ेगा और बहेगा। परतंत्र व्यक्ति प्रेम नहीं दे सकता। इसलिए जब तक स्त्रियां परतंत्र हैं, मैं निरंतर कहूंगा, कहे जाऊंगा कि दुनिया में प्रेम नहीं हो सकता। स्त्रियां परतंत्र हैं तो प्रेम असंभव है। क्योंकि दो स्वतंत्र व्यक्ति ही प्रेम का आदान-प्रदान कर सकते हैं। जिस स्त्री को तुम दहेज देकर ले आए हो, जिस स्त्री को तुमने कभी देखा भी नहीं था और तुम्हारे मां-बाप ने तय कर दिया है और कोई पंडे-पुरोहितों ने जन्मकुंडली देख कर निर्णय लिया है; जिसका निर्णय तुम्हारे हृदय से नहीं आया; जिसका निर्णय उधार, बासा, दूसरों का है, ऐसी स्त्री को तुम घर ले आए हो। इसमें सुविधा तो बहुत है, इसमें झंझट कम है;

इसमें घर-गृहस्थी ठीक से चलेगी। लेकिन एक बात ख्याल रखना, तुम्हारे जीवन में नृत्य का क्षण कभी भी न आ पाएगा; तुम्हारा प्रेम कभी समाधिस्थ न हो सकेगा। तुम इस प्रेम के मार्ग से परमात्मा को न जान सकोगे।
एक स्वतंत्र व्यक्ति ही प्रेम दे सकता है। गुलाम सेवा कर सकता है, प्रेम नहीं दे सकता। मालिक सहानुभूति दे सकता है, प्रेम नहीं दे सकता। पति अगर मालिक है तो ज्यादा से ज्यादा दया कर सकता है। दया प्रेम है? कोई स्त्री दया नहीं चाहती। तुम जरा थोड़े हैरान होओगे, जहां प्रेम का सवाल हो वहां दया बड़ी बेहूदी और कुरूप है। कौन दया चाहता है? क्योंकि दया का अर्थ ही होता है कि मैं कीड़ा-मकोड़ा हूं और तुम आकाश के देवदूत हो। दया का अर्थ ही यह होता है कि मैं दयनीय हूं; तुम देने वाले हो, दाता हो, मैं भिखारी हूं। प्रेमी कभी दया से तृप्त नहीं होता। लेकिन मालिक दया दे सकता है, प्रेम कैसे देगा? और गुलाम सेवा कर सकता है, लेकिन सेवा प्रेम नहीं है। सेवा कर्तव्य है; करना चाहिए इसलिए करते हैं। पत्नी पति के पैर दबा रही है, क्योंकि पति परमात्मा है, पैर दबाने चाहिए; ऐसा शास्त्रों में कहा है। वह पैर दबा रही है शास्त्रों के कारण, अपने कारण नहीं। और जो पैर शास्त्रों के कारण दबाए जा रहे हैं वे न दबाए जाएं तो बेहतर। क्योंकि इन पैरों से कोई लगाव नहीं है, इन पैरों में कोई आस्था नहीं है, कोई श्रद्धा नहीं है, कोई प्रेम नहीं है। यह एक गुलामी का संबंध है। इन पैरों के साथ जंजीरें बंधी हैं। ये आकाश में उड़ते दो मुक्त पक्षी नहीं हैं; एक कारागृह में बंद हैं। यहूदियों में कहावत है कि शैतान एक बूढ़ा और मूर्ख सम्राट है। एक यहूदी फकीर हुआ झुसिया। वह बड़ा चिंतित था कि यह समझ में नहीं आता, यह कहावत समझ में नहीं आती। बूढ़ा समझ में आता है, क्योंकि आदमी से पुराना शैतान है; आदमियत नहीं थी तब भी शैतान था। अदम को भड़काया। तो बूढ़ा तो समझ में आता है। सम्राट भी समझ में आता है, क्योंकि सारी दुनिया का मालिक वही मालूम पड़ता है। लोग भला चर्चों में प्रार्थना करते हों परमात्मा की, लेकिन हृदय में प्रार्थना शैतान की करते हैं। शैतान की ही चीजों की तो मांग करते हैं परमात्मा से भी। तो असली मालिक तो वही है। तो सम्राट भी समझ में आता है। लेकिन मूर्ख, मूढ़ क्यों? यह समझ में नहीं आता।
फिर झुसिया ने कहा कि मुझे सजा हो गई, जेल में डाल दिया गया; वहां मेरी समझ में रहस्य आ गया। जेल में हथकड़ी बंधी हैं और झुसिया ने देखा कि शैतान पास में बैठा है। तो उसने शैतान से कहा, अब समझ गए कहावत का अर्थ। बूढ़े तो तुम हो, यह पहले से ही हम समझ गए थे, क्योंकि आदमी से पुराने हो। सम्राट भी तुम हो, क्योंकि सारे आदमी तुम्हारी ही प्रार्थना कर रहे हैं और तुम जो दे सकते हो वही मांग रहे हैं, यह भी हम समझते थे। लेकिन मूर्ख हो, यह हम पहली दफा समझे। शैतान ने पूछा, क्या मतलब? तो उसने कहा, यहां कारागृह में, जहां मेरे हाथ में हथकड़ियां बंधी हैं, जहां मैं भला तो कर ही नहीं सकता, वहां तुम मेरे पास बैठे क्या कर रहे हो? यहां तो कुछ करने का उपाय ही नहीं है। कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है तुम्हारे सिवाय; तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो? यहां तो प्रार्थना भी नहीं कर सकता हूं। शुभ का तो कोई उपाय ही नहीं है। इसलिए समझ गया कि तुम महामूढ़ हो। कहावत ठीक है। तुम अकारण यहां बैठे हो, क्योंकि यहां तो तुम्हारे राज्य में बिल्कुल बंधा हूं। इसके बाहर जाने का कोई उपाय ही नहीं है। इसकी दीवारें बड़ी हैं; हाथ में जंजीरें पड़ी हैं।
जब मैं झुसिया की आत्मकथा पढ़ रहा था तब मुझे लगा कि जंजीरों में तुम्हारे पास तुम जिसे पाओगे वह परमात्मा नहीं हो सकता, वह शैतान ही होगा। क्योंकि परमात्मा की संभावना ही स्वतंत्रता में है। इसीलिए तो हम परमात्मा को मोक्ष कहते हैं।
और हमने ऐसे लोग भी पैदा किए इस मुल्क में जिन्होंने परमात्मा की भी फिक्र नहीं की, मोक्ष की ही फिक्र की। क्योंकि उन्होंने कहा, जहां मोक्ष मिल गया, परमात्मा मिल ही गया। महावीर परमात्मा की बात नहीं करते। बुद्ध परमात्मा की बात नहीं करते। वे कहते हैं, मुक्ति काफी है। जिस दिन तुम परम स्वतंत्र हो गए उस दिन परमात्मा मिल ही गया। उसकी बात क्या करनी है!
परम स्वतंत्रता में तुम्हारे जो साथ है वह परमात्मा हो जाता है। और परम परतंत्रता में तुम्हारे साथ जो रह जाता है वह केवल शैतान है। तुम जिसको

गुलाम बनाते हो उसको शैतान बनाते हो। और तुम जिसके मालिक बनते हो, तुम मालिक बनने में भी शैतान बनते हो। क्योंकि गुलामी में सिर्फ शैतानी का ही फूल खिल सकता है। गुलामी की भूमि में शैतानी के अतिरिक्त और कोई पौधा नहीं पनप सकता।
मिताचार का अर्थ है, नियम को कम करते जाओ--यह पहला आयाम--और धीरे-धीरे हार्दिकता को बढ़ाते जाओ। एक ऐसी घड़ी आ जाए कि कोई नियम न रह जाए, सिर्फ हृदय ही नियम हो। और ध्यान रखना, एक को जो साध लेता है अनेक सध जाते हैं। और जो अनेक को साधने में लगता है वह एक से भी वंचित रह जाता है। वह एक है प्रेम। अनेक नियमों को साधने की जरूरत नहीं है। प्रेम मिताचार है।
दूसरा आयाम है मिताचार काः कि तुम्हारे जीवन में न्यून से राजी होने
की क्षमता बढ़नी चाहिए। ज्यादा की मांग अंततः विक्षिप्तता लाती है। तुम्हें न्यून से राजी होना चाहिए। तुम जितने न्यून से राजी हो जाओगे उतने ही तुम विराट होने लगोगे। और यह न्यून से राजी होना सभी दिशाओं में लागू है। चाहे धन हो, चाहे पद हो, चाहे यश हो, चाहे त्याग हो, चाहे व्रत हो, न्यून से राजी हो जाना।
यहां थोड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर कोई आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता
है तो हम कहते हैं यह पागल है। हमारे सब साधु-संन्यासी कहते हैं, यह पागल है। और-और-और की मांग किए चला जा रहा है। रुको! यह दौड़ का कहां अंत होगा? हमें भी दिखता है। लेकिन त्यागी? वह भी और की मांग किए चला जाता है। वह हमें नहीं दिखाई पड़ता। पिछले साल उसने बीस दिन का उपवास किया था, इस साल वह पच्चीस दिन का करने वाला है। अगले साल वह तीस दिन का करेगा। यह भी और की मांग है। बीस लाख रुपये थे, पच्चीस लाख रुपये चाहिए। बीस दिन का उपवास कर सकते थे, अब पच्चीस दिन का कर सकते हैं, तीस की आकांक्षा है। फर्क क्या है? अनुपात वही है। बीस की जगह पच्चीस चाहिए, पच्चीस की जगह तीस चाहिए। धन के ही सिक्के लोग इकट्ठे नहीं करते, त्याग के भी सिक्के इकट्ठे करते हैं। और दौड़ वही की वही जारी रहती है।
तो मिताचार का दूसरा आयाम है कि तुम व्रत, त्याग, उसमें भी थोड़े से राजी
हो जाना; आचरण में भी थोड़े से राजी हो जाना। आचरण में भी तुमको बहुत बड़ा महात्मा होना चाहिए, इस पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि वह पागलपन तो एक ही जैसा है। क्योंकि उसका सूत्र एक ही हैः और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए। जब तक सारी दुनिया तुमको महात्मा न कहे तब तक तुम कैसे राजी हो सकते हो? वहां भी तुम थोड़े से राजी हो जाना।
असल में, थोड़े से राजी हो जाना ही महात्मापन है। इसलिए तुम महात्मापन
की अगर तलाश करते रहे तो मुश्किल में पड़ोगे। तब दौड़ वही की वही रहेगी। दिशा बदल गई, लेकिन दिशा का स्वभाव नहीं बदला। गुण वही का वही है। तुम त्याग की भी ज्यादा आकांक्षा मत करना। जो सुखपूर्वक तुम कर सको, जो तुम सहजता से कर सको, बस उतने पर राजी हो जाना। असहजता की तरफ मत जाना।
एक साधु मेरे पास आए; कहने लगे, बहुत अड़चन है। एक ही अड़चन है, उसकी वजह
से आया हूं। वह अड़चन यह है कि नींद बहुत सताती है। और शास्त्रों में कहा है कि जो नींद में ज्यादा लिप्त है वह तामसी है। तो मैंने पूछा कि कितना सोते हो? तो उन्होंने कहा कि रात तीन बजे उठता हूं और कोई ग्यारह बजे सोने जाता हूं। तो चार ही घंटे सोते हैं। और उन्होंने कहा, शास्त्रों में कहा है कि योगी को दो घंटा काफी है। मैंने कहा, शास्त्रों में तो यह भी कहा है कि जब सब सोते हैं तब भी योगी जागता है। तुम बड़ी मुश्किल में हो।
वे कहते हैं, दिन भर नींद आती है। आएगी ही। तीन बजे उठोगे तो इसमें कसूर किसका है? तो वे कहते हैं, प्रार्थना भी करता हूं तो झपकी आती है। आएगी ही। ध्यान लगता ही नहीं; क्योंकि ध्यान के पहले नींद लग जाती है। आएगी ही। बिल्कुल सीधा-साफ है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। शरीर की जरूरत है। अतिशय मत खींचो। पागल हो जाओगे। और अगर नींद जैसी सरल चीज के प्रति भी अपराध का भाव आ गया--नींद जैसी सरल चीज, इससे ज्यादा सरल और क्या होगा? कुछ भी तो नहीं करना है, सिर्फ सो जाना है। और नींद में कम से कम तुम महात्मा होते हो। कुछ उपद्रव नहीं करते, कोई की हत्या नहीं करते, कोई की चोरी नहीं, कोई जेब नहीं काटते। इतनी सरल सी चीज से ऐसा क्या विरोध बना रखा है?

वे थोड़े चौंके। उन्होंने कहा, क्या आपका मतलब है ज्यादा सोना शुरू करूं? तो वह तो तामस हो जाएगा।
क्या होगा कि नहीं होगा, यह मुझे मतलब नहीं है। जो जरूरत है! तो उसका अर्थ हुआ कि तामस की जरूरत है। क्योंकि शरीर तामस का हिस्सा है। जब तक तुम शरीर में हो तब तक शरीर थकता है; थकता है तो विश्राम चाहिए। और अगर तामस की जरूरत ही न होती तो परमात्मा तामस को बनाता ही क्यों? दो ही गुणों से काम चला लेता। तीन गुण की क्या जरूरत है? परमात्मा भी बिना तामस के नहीं बना सकता अस्तित्व को। तुम कोशिश में लगे हो परमात्मा से आगे जाने की। प्रतिस्पर्धा बड़ी है।
परमात्मा भी सत्व और रज से अस्तित्व को नहीं बना सकता। क्योंकि तमस की बड़ी खूबी है। उसका अपना रहस्य है। तमस के बिना कोई चीज थिर ही नहीं होती। रज में बड़ी गति है। लेकिन अकेली गति से थोड़े ही संसार बनता है! कोई चीज ठहराने वाली चाहिए। तुम दौड़ते ही रहोगे, दौड़ते ही रहोगे, तो मुश्किल में पड़ोगे। कहीं तो रुकना पड़ेगा। रुकोगे, वहीं तमस शुरू होगा। तमस तो एक सिद्धांत है। लेकिन लोगों ने तमस शब्द का बड़ा अपमानजनक उपयोग शुरू कर दिया। तमस का तो इतना ही मतलब हैः रुकने का सिद्धांत, विश्राम का सिद्धांत।
परमात्मा को भी विश्राम करना पड़ता है। इसलिए तो हम कहते हैं कि ब्रह्मा का दिन सृष्टि है। फिर ब्रह्मा की रात आती है तो प्रलय हो जाता है। सारा अस्तित्व सिकुड़ कर शांत हो जाता है, नींद में चला जाता है। तो अगर हम पूरे अस्तित्व को बारह घंटा मान लें, दिन, तो फिर बारह घंटा, इतनी ही बड़ी रात है जब सब सो जाता है। खुद परमात्मा सो जाता है। तो तुम परमात्मा से किसलिए होड़ में लगे हो? तुम शांति से सो जाओ।
और तब तुमने क्या अड़चन कर ली! अब तुमसे ध्यान भी नहीं हो सकता। ध्यान नहीं हो सकता तो वे समझते क्या हैं? ये मन के गणित बड़े अजीब हैं। वे समझते हैं कि तमस की वजह से ध्यान नहीं लग रहा। और कम सोओ, तमस को काटो। जितना तमस काटोगे उतनी तमस की जरूरत बढ़ती जाएगी। क्योंकि कहीं न कहीं से जरूरत पूरी होगी। इसलिए तुम मंदिरों में जाओ, वहां लोगों को तुम झपकी लेते पाओगे। मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद जाता है तो सोने के लिए ही। जो पुरोहित वहां व्याख्यान करता है, वह थोड़ा परेशान हुआ, क्योंकि वह सिर्फ सोता ही नहीं, वह घुर्राता भी है। और बुजुर्ग आदमी है, पंचायत का प्रमुख है, तो आगे ही बैठता है। और आगे ही घुर्राता है। उससे पुरोहित को बड़ी अड़चन होती है; बोलने में भी अड़चन होती है। और अभद्र भी मालूम पड़ता है, इससे वह कुछ कह भी नहीं सकता। उसके लड़के का लड़का, नाती भी साथ आता है। तो पुरोहित ने तरकीब निकाली। और पुरोहित तो तरकीब निकालने वाले लोग हैं, उनसे ज्यादा चालाक आदमी नहीं। क्योंकि उनका धंधा ही चालाकी का है। बड़ा सूक्ष्म धंधा है, उसमें चालाकी होगी ही। तो उसने बगल में, सभा के बाद, लड़के को बुलाया और कहा, देख, तुझे मैं चार आने दूंगा; जब भी तेरे दादा को नींद लग जाए तो तू जरा हिला कर जगा दिया कर। लड़के ने कहा, ठीक।
दो-तीन सप्ताह तो सब ठीक चला। चौथे सप्ताह लड़का बिल्कुल शांत बैठा रहा
और बूढ़ा घुर्राने लगा। फिर पुरोहित ने उसे बुलाया कि क्यों भाई, तुझे मैं चार आने देता हूं! उसने कहा, वह आप देते हैं, लेकिन मेरे दादा मुझे आठ आने देने का कहे हैं; कि अगर बीच में बाधा नहीं देगा तो आठ आने दूंगा, वे कहते हैं। अब मैं क्या कर सकता हूं?
मंदिरों में, मस्जिदों में, चर्चों में लोग सो रहे हैं।
ध्यान रखना कि अगर नींद पूरी न होगी तो ध्यान तुम कर ही न सकोगे। नींद
एक जरूरत है। नींद कोई पाप नहीं है। नींद कुछ बुराई नहीं है, कोई अपराध नहीं है। पूरी नींद कर लोगे, तभी तुम ध्यान कर पाओगे। क्योंकि ध्यान भी बड़ी विश्राम की अवस्था है। अगर तुम नींद ही में पूरे न गए तो जैसे ही तुम शांत बैठोगे वैसे ही नींद लग जाएगी। क्योंकि जरूरत शरीर की पहले पूरी होती है। इसे ध्यान रखनाः शरीर की जरूरत पहले है, आत्मा की जरूरत बाद में है। और शरीर की जरूरत जिसने पूरी नहीं की उसकी आत्मा की जरूरत कभी भी वह पूरी नहीं कर पाएगा। इसलिए तो हम कहते हैं, भूखे भजन न होंहि गुपाला। भूख लगी हो तो भजन कैसे करोगे? भूख ही भजन में गूंजती रहेगी। पेट भरा हो तो ही भजन हो सकता है।

इसका यह मतलब भी नहीं है कि पेट बहुत भरा हो। बहुत भरा हो तो भी भजन नहीं हो सकता। एक सम्यक अवस्था चाहिए शरीर की। न तो बहुत भोजन, न बहुत कम। न बहुत ज्यादा नींद, न बहुत कम। न बहुत ज्यादा श्रम, न बहुत कम। और हर व्यक्ति को अपना सूत्र खुद ही खोजना पड़ता है। क्योंकि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अलग है। इसलिए दुनिया में कोई तुम्हारे लिए नियम नहीं बना सकता। लेकिन अक्सर यह भ्रांति होती है। यह भी तुम समझ लेना कि मिताचारी होने का यह भी अर्थ है कि तुम दूसरे के लिए नियम बनाने की कोशिश मत करना। क्योंकि जो तुम्हारे लिए नियम है वह दूसरे के लिए घातक फंदा हो सकता है।
शास्त्र अक्सर, हिंदू शास्त्र, बूढ़ों ने लिखे हैं। बूढ़ों की नींद कम हो जाती है। शरीर की जरूरत खतम हो जाती है। तो बूढ़े अक्सर, चाहे वे ज्ञानी न भी हों, तो भी तीन बजे के करीब जग जाते हैं। पड़े रहें, बात अलग। जब बूढ़े शास्त्र बनाएंगे तो वे लिखेंगे कि तीन बजे उठना नियम है। लेकिन यह शास्त्र बच्चों के काम में नहीं लाया जा सकता। क्योंकि मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है। उसकी जरूरत उतनी है। जब शरीर में इतना काम हो रहा है, सृजन हो रहा है, हर चीज बन रही है, तो बच्चे के जागने से बाधा पड़ जाएगी। वह सोया रहता है; शरीर में सृजन का काम चल रहा है। बच्चे को बीच में आने की जरूरत नहीं है। वह चौबीस घंटे सोता है मां के पेट में। फिर पैदा होने के बाद अठारह घंटे सोता है। फिर सोलह घंटे सोता है। फिर धीरे-धीरे जरूरत कम होती जाती है। जैसे- जैसे बच्चे का शरीर पूरा हो जाता है, सृजन का काम बंद हो जाता है, आठ घंटे के करीब, सात-आठ घंटे के करीब ठहर जाती है बात। फिर पैंतीस साल के बाद शरीर में दूसरी क्रिया शुरू होती है, टूटने की। जब टूटने की क्रिया शुरू होती है तो नींद कम होने लगती है। क्योंकि जब नींद कम होगी तभी शरीर टूट सकता है, नहीं तो टूट नहीं सकता। जैसे कि बच्चे के शरीर के बनने में नींद की जरूरत है बूढ़े के शरीर के टूटने में नींद की बिल्कुल जरूरत नहीं है। नहीं तो बूढ़ा मरेगा ही नहीं। तो नींद कम होने लगेगी। नींद के कम होने का मतलब यह है कि शरीर में अब बनने का काम बंद हो गया।
हिंदुओं के शास्त्र बूढ़ों ने लिखे। तो बूढ़े अपने हिसाब से लिखते हैं। अगर दो माह का बच्चा शास्त्र लिख सके तो वह लिखेगा कि बीस घंटे सोना नियम है। जवान अगर लिखेगा तो सात-आठ घंटे सोना नियम है। बूढ़ा अगर लिखेगा तो तीन-चार घंटे काफी हैं।
फिर एक-एक व्यक्ति में भेद है। तुम भोजन अलग-अलग ढंग का करते हो। अब जो मांसाहारी है वह थोड़ा ज्यादा सोएगा। जो शाकाहारी है वह थोड़ा कम सोएगा। क्योंकि मांस को पचाने के लिए शरीर को ज्यादा श्रम करना पड़ता है। शाक-सब्जी को पचाने के लिए उस तरह का श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए शाकाहारी कम सोएगा। जो मजदूर है वह ज्यादा सोएगा। क्योंकि दिन में इतना श्रम किया है कि शरीर के बहुत से सेल टूट गए; उनको पूरा करने के लिए उसे गहरी नींद जरूरी है। जो करोड़पति है उसको सोने के लिए ट्रैंक्वेलाइजर लेना पड़ेगा। क्योंकि उसने कोई श्रम किया नहीं, कुछ टूटा नहीं। जब कुछ टूटा नहीं तो बनने का सवाल नहीं है। इसलिए नींद की कोई जरूरत नहीं है उसकी। तो रात करवटें बदलेगा। करवटें बदलना, असल में, शरीर की तरकीब है नींद में श्रम करने की। करवट बदलने का इतना ही मतलब है कि कुछ भी नहीं किया तो कम से कम करवट तो बदलो, तो थोड़ा श्रम हो जाए। थोड़ा श्रम हो जाए तो थोड़ी नींद लग जाए। अगर तुमने बौद्धिक श्रम किया है दिन में तो नींद कठिन हो जाएगी; अगर शारीरिक श्रम किया है तो नींद बड़ी सुगम होगी।
फिर हर आदमी पर अपनी-अपनी... । इसलिए किसी शास्त्र के नियम में मत पड़ना। क्योंकि जिसने नियम बनाया था वह तुम नहीं हो। जिसने नियम बनाया था वह अपने लिए होगा; उसके लिए ठीक रहा होगा। दुनिया में हजारों अड़चनें कम हो जाएं अगर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की सहजता को खोज कर नियम बनाने लगे। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष अगर पांच बजे उठ जाएं तो कोई हर्जा नहीं है। उनकी नींद पांच बजे पूरी हो जाती है। लेकिन स्त्रियों की नींद कोई साढ़े छह बजे पूरी होती है, या सात बजे पूरी होती है। लेकिन नियम यह है कि पत्नी को पहले उठना चाहिए, नहीं तो पति नाराज होगा।

वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है नींद पर। चौबीस घंटे में दो घंटे शरीर
का तापमान नीचे गिरता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। पुरुषों का तापमान गिरता है कोई तीन और पांच के बीच में; स्त्रियों का तापमान गिरता है कोई छह और आठ के बीच में। वे गहरे से गहरे नींद के क्षण हैं। अगर वे दो घंटे तुमने सो लिए तो तुम ताजा अनुभव करोगे। अगर उन दो घंटों में व्याघात पड़ गया तो तुम दिन भर परेशान अनुभव करोगे।
तो अगर हम वैज्ञानिक की सलाह मानें तो सुबह की चाय पति को बनानी चाहिए, पत्नी को बिल्कुल नहीं। उसे सोए रहना चाहिए बिस्तर पर; पति को लाना चाहिए चाय बना कर; अगर वैज्ञानिक की हम बात सुनें। क्योंकि स्त्रियों के शरीर का ढंग और है, पुरुष के शरीर का ढंग और है। उनके हारमोन अलग हैं। उनके शरीर की भीतरी बनावट और है। और उसके अनुसार सारी जीवन-व्यवस्था होनी चाहिए। मिताचार का अर्थ है कि तुम थोड़े से नियम बनाना, और नियम भी उधार मत लेना। और कठिन नहीं है, अगर तुम थोड़े से प्रयोग करो। कितना कठिन है? अगर तुम एक तीन सप्ताह प्रयोग करके देख लो, सब तरह से उठ कर--तीन बजे उठ कर देख लो दो दिन, चार बजे उठ कर देख लो दो दिन, पांच बजे उठ कर देख लो, छह बजे, सात बजे, आठ बजे--एक तीन सप्ताह प्रयोग करके देख लो। जो घड़ी तुम्हें सबसे ज्यादा जम जाए, जिसमें तुम रम जाओ, जिसमें चौबीस घंटे तुम ताजा मालूम पड़ो, वही तुम्हारे लिए नियम है।
कुछ लोग हैं जो रात में बारह बजे सोएं तो ही सुबह उनको ताजगी रहेगी। कुछ हैं जो नौ बजे सोएं तो ही सुबह ताजगी रहेगी। और कोई किसी के लिए नियम नहीं बना सकता। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा और अलग-अलग है। अपना नियम खोजना। और अपने नियम को ठीक से, समझ के अनुसार चलने पर तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में बड़ी सहजता और स्वाभाविकता आ जाती है। अड़चन कम हो जाती है। दूसरे का नियम हमेशा अड़चन देगा।
जैसे विनोबा के आश्रम में, विनोबा तीन बजे उठते हैं, तो सबको तीन बजे उठना चाहिए। अब यह अड़चन की बात है। विनोबा बूढ़े आदमी हैं। उनकी जरूरत होगी तो वे नौ बजे सो जाते हैं। लेकिन नौ बजे दूसरों को नींद ही नहीं आती, वे पड़े हैं। लेकिन नौ बजे नियम है आश्रम का तो नौ बजे सो जाना है, तीन बजे उठ आना है। फिर दिन भर बेचैनी है; फिर बेचैनी से इररिटेशन है; फिर बेचैनी से हर छोटी-छोटी बात में क्रोध है।
इसलिए तुम साधु-संतों को बड़ा क्रोधी पाओगे। उनके भीतर जीवन-ऊर्जा सम्यक नहीं है। इसलिए हर छोटी चीज परेशान करेगी, हर छोटी चीज पर नाराजगी आएगी। नाराजगी का कारण भीतर है कि तुम बेचैन हो। न ठीक भोजन कर रहे हो, न ठीक सो रहे हो; न ठीक श्रम कर रहे हो। तुम्हारी अड़चन स्वाभाविक है।
अपना नियम खोज लेना। आने देना अनुशासन को भीतर से। इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ विवेक सिखाता हूं कि तुम होशपूर्वक अपने को समझने की कोशिश करो। दुनिया में कोई तुम्हारा मालिक नहीं है। और किसी ने तुम्हारे लिए आखिरी नियम नहीं लिख दिए हैं। तुम्हारा धर्मशास्त्र तुम्हारे शरीर और तुम्हारे मन में छिपा है। तुम उसे पढ़ना सीखो। और वहीं से अगर तुमने आदेश लिया तो तुम पाओगे कि तुम शांत होते चले जाते हो। जितने तुम शांत होते हो उतने आनंद की क्षमता बढ़ती है। और तब तुम यह भी पाओगे कि बहुत नियम की जरूरत नहीं है। बड़े छोटे से नियम, जिनको नियम कहना भी ठीक नहीं है, तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर देंगे।
"मानवीय कारबार की व्यवस्था में, मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।"
अगर लाओत्से से तुम पूछो कि तुम्हारे जीवन का नियम क्या है? तो लाओत्से कहता है, जब मुझे नींद आती है मैं सो जाता हूं; जब मुझे भूख लगती है तब मैं भोजन कर लेता हूं; जब नींद खुल जाती है तब जाग जाता हूं। बस ऐसे नियम हैं, और कोई नियम नहीं है। और लाओत्से परम अवस्था को उपलब्ध हुआ।
फिर नियम भी सख्त नहीं हो सकते, लोचपूर्ण होंगे। क्योंकि तुम्हारी जरूरत रोज बदलेगी। जो नियम तुमने जवानी में बनाया, वह बुढ़ापे में काम न आएगा। जो आज बनाया, कल काम न आएगा। इसलिए तुम नियम को भी सख्त मत बना लेना। अपना भी बनाया हुआ नियम सख्त नहीं होना चाहिए। अगर सख्त हुआ तो तुम जाल में

पड़ जाओगे। क्योंकि तुम्हारी शरीर की जरूरत रोज बदलेगी। आवश्यकता के अनुसार तुम जागते हुए बदलते जाना। नियम लोचपूर्ण चाहिए। तुम नियम के लिए नहीं हो, नियम तुम्हारे लिए हैं। नियम तुम्हें व्यवस्था देने के लिए हैं। तुम यहां इसलिए नहीं हो कि कुछ नियमों को तुम अपने में व्यवस्था दो। "मिताचार पूर्व-निवारण करना है।"
और जिस व्यक्ति के जीवन में लोचपूर्ण, कम से कम, अपरिहार्य नियम होंगे, अपने ही खोजे हुए, वह व्यक्ति पूर्व-निवारण कर लेता है। उसकी हजारों मुसीबतें आती ही नहीं। पहले तो मुसीबत को बुलाना और फिर निवारण करना नासमझी है। मुसीबत तो पहले ही रोकी जा सकती है। मुसीबत का तो पूर्व-निवारण हो सकता है। लेकिन बड़ा होश चाहिए तब। बड़ी सजगता चाहिए।
तुमने भी कई बार अनुभव किया है कि क्रोध तुम करते हो, पीछे पछताते हो, दुखी होते हो, निर्णय लेते हो--नहीं करूंगा क्रोध। लेकिन फिर क्रोध हो जाता है। क्या कारण होगा? तुम पूर्व-निवारण नहीं कर पा रहे हो। बीमारी जब आ जाती है तब तुम उसे हटाते हो। तब तक तो बीमारी ने जड़ें जमा लीं। क्रोध कोई अकेली घटना नहीं है, मल्टी कॉजल है; उसके बहुत कारण हैं।
एक आदमी ने तुम्हें गाली दी। तुम यह मत समझना कि बस यही कारण है क्रोध का। तुम अगर ठीक से न सोए तो वह भी कारण बनेगा क्रोध का। तुम्हें अगर ठीक से भोजन न मिला तो वह भी कारण बनेगा क्रोध का। तुम्हारे जीवन में अगर प्रेम की धारा न बही तो तुम हर घड़ी राजी हो क्रोधित होने के लिए। यह आदमी का गाली देना तो सिर्फ बहाना है। ये सब चीजें तुम्हारे भीतर तैयार हैं। बारूद तैयार है, यह आदमी तो सिर्फ एक अधजली सिगरेट फेंक देता है; विस्फोट हो जाता है। तुम समझते हो, यह आदमी बम फेंक दिया। इस आदमी ने कुछ भी नहीं किया है। इस आदमी का कोई संबंध ही नहीं है। तुम अगर भीतर शांत हो तो यह सिगरेट उस शांति के जल में जाकर बुझ जाती, पता भी न चलता। तुम भीतर अशांत थे, बारूद मौजूद थी। सूखी बारूद लिए घूम रहे हो, और तुम सोचते हो कोई दूसरा तुम्हें क्रोधित करवा रहा है।
फिर तुम कसमें खाते हो, व्रत-नियम लेते हो कि मैं क्रोध न करूंगा। तुम
और दूसरा पागलपन कर रहे हो। क्योंकि जब बारूद भीतर मौजूद है, तुम कैसे क्रोध न करोगे? वैसे ही झंझट थी, अब दुगुनी हो गई। अब तुम इस बारूद को दबाए फिर रहे हो। अब यह विस्फोट भयंकर होगा। जिस दिन फूटेगा उस दिन तुम बचोगे ही नहीं। तुम किसी की हत्या करोगे या आत्महत्या करोगे।
पुरुष ज्यादा आत्महत्याएं करते हैं। इसे तुम्हें जान कर हैरानी होगी। स्त्रियां कोशिश करती हैं ज्यादा, लेकिन सफल नहीं होतीं। स्त्रियों का काम-धंधा ही ऐसा है। सौ स्त्रियां आत्महत्या की कोशिश करती हैं तो मुश्किल से बीस सफल होती हैं। उनकी कोशिश भी अधूरी-अधूरी है। उस कोशिश के कारण दूसरे हैं। वे ठीक मरना नहीं चाहतीं। अगर सौ पुरुष आत्महत्या की कोशिश करते हैं तो पचास सफल होते हैं। स्त्रियां कोशिश ज्यादा करती हैं, इसलिए तुम्हें यह भ्रांति होगी कि स्त्रियां बहुत आत्महत्या करती हैं। नहीं, आत्महत्या पुरुष ज्यादा करते हैं--दो गुनी ज्यादा। स्त्रियों से दुगुनी आत्महत्या करते हैं। और कारण क्या है?
कारण यह है कि स्त्रियां अपने क्रोध को निकाल लेती हैं। बर्तन तोड़ देंगी, प्लेट पटक देंगी, बच्चे की पिटाई कर देंगी। निकाल लेती हैं। रो लेंगी, चीख-चिल्ला लेंगी, कपड़े फाड़ लेंगी, सिर के बाल खींच लेंगी। आत्महत्या के लायक क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता। और पुरुष अकड़ा हुआ रहता है। रो कैसे सकता है! मर्द कहीं रोता है?
अब मर्द नहीं रोता तो भगवान ने मर्द की आंखों में आंसू की ग्रंथि क्यों बनाई? तो भगवान ने कुछ गलती की। उतनी ही बड़ी ग्रंथि आदमी की आंखों में है जितनी स्त्री की। उसमें उतने ही आंसू भरे हैं। वे निकलने चाहिए। लेकिन मर्द रो नहीं सकता। छोटे-छोटे बच्चों को हम सिखलाते हैं कि क्या रो रहा है! लड़कियों जैसा व्यवहार कर रहा है!
आंख में लड़के और लड़की के कोई फर्क नहीं है। और रोना एक निकास है। और जो
रो नहीं सकता वह ठीक से हंस भी नहीं सकता। क्योंकि हंसी में भी आंसू निकल आते हैं। रोना और हंसी दोनों तरफ से एक ही दिशा में यात्रा करते हैं।

तो पुरुष न तो हंसता है ठीक से, न रोता है ठीक से, न क्रोध करता है। अकड़ में बना रहता है। तो इतना इकट्ठा हो जाता है मवाद कि जब फूटता है तो या तो हत्या करता है या आत्महत्या करता है। अगर दुर्जन हुआ तो हत्या करता है, सज्जन हुआ तो आत्महत्या करता है। बस इतना ही फर्क है। दोनों ही हत्या करते हैं। दुर्जन दूसरे को मिटाता है, सज्जन अपने को मिटाता है। लेकिन मिटाने में दोनों एक जैसे हैं।
जो व्यक्ति क्रोध से पीड़ित हो उसको पूर्व-निवारण करना चाहिए। और अपनी पूरी जीवन-स्थिति को समझना चाहिए कि यह मैं बारूद कैसे इकट्ठी कर रहा हूं! और बारूद को सूखा रखा हुआ हूं। मैं खतरा लेकर घूम रहा हूं। जैसे पेट्रोल की टंकी पर लिखा रहता हैः एनफ्लेमेबल। ऐसे ही सबकी खोपड़ी पर लिखा रहना चाहिएः एनफ्लेमेबल। जरा कोई ने माचिस जलाई कि झंझट खड़ी हो जाएगी।
लाओत्से कहता है, जिसने जीवन को समझने की कोशिश की और जीवन के छोटे- छोटे नियम, जो सहजता से आने चाहिए, शास्त्रों से नहीं, वह पूर्व-निवारण कर लेता है।
"मिताचार पूर्व-निवारण करना है। टु बी स्पेयरिंग इ.ज टु फोरस्टाल।"
पहले से ही तुम काट देते हो वे जड़ें। ठीक से सोओ; सम्यक निद्रा जरूरी है। ठीक से भोजन करो; सम्यक भोजन जरूरी है। होशपूर्वक उठो, बैठो, चलो; होश जरूरी है। स्वाभाविक बनो; अस्वाभाविक की आकांक्षा मत करो। जरूरतों को पूरा करो; वासनाओं की उपेक्षा करो। व्यर्थ की दौड़ में मत लगो; सार्थक को ही बस पा लेना काफी है। शक्ति को बचाओ; अकारण खर्च मत करो। जितनी शक्ति तुम्हारे पास संगृहीत होगी, जितने तुम शक्तिशाली होओगे, उतना ही कम क्रोध होगा। जितने तुम शक्तिशाली होओगे उतना ही दूसरे लोग तुम्हें कम उत्तेजित कर सकेंगे। तुम्हारी ऊर्जा ही तुम्हारा कवच है।
"पूर्व-निवारण करना तैयार रहने और सुदृढ़ होने जैसा है; तैयार रहना और सुदृढ़ होना सदाजयी होना है।"
और जो आदमी पूर्व-निवारण कर लेता है अपनी बीमारियों का, जो अपने भीतर
एक शांति का स्थल बना लेता है, एक छोटा सा मंदिर बना लेता है जहां सब शांत और मौन है, जहां बड़ी गहन तृप्ति है, परितोष है, उसे तुम उद्वेलित नहीं कर सकते, उसे तुम पराजित नहीं कर सकते। तुम उसे हराओगे कैसे? क्योंकि वह जीत की आकांक्षा ही नहीं करता। तुम उसे मिटाओगे कैसे? क्योंकि उसने खुद ही अपने को मिटा दिया है। उसके जीवन में कोई असफलता नहीं हो सकती, क्योंकि सफलता की कामना और वासना को उसने उपेक्षा कर दी है। सफलता को खाओगे या पीओगे या पहनोगे?
जीवन तो बहुत छोटी-छोटी चीजों से भर जाता है। रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, प्रेम चाहिए, एक छप्पर चाहिए। जीवन किसी बहुत बड़ी-बड़ी आकांक्षा के कारण सुखी नहीं होता। नहीं तो पक्षी कभी सुखी नहीं हो सकते थे, पौधे कभी फूल नहीं दे सकते थे। क्योंकि पौधे राष्ट्रपति कैसे बनेंगे? पक्षी प्रधान मंत्री कैसे बनेंगे?
सारा अस्तित्व प्रसन्न है, क्योंकि थोड़े से राजी है, जरूरत से राजी है। सिर्फ आदमी बेचैन है। अकेला आदमी पागल है। अकेला आदमी भटक गया है। जरूरत की तो फिक्र ही नहीं है, गैर-जरूरत की फिक्र है। पेट भरे न भरे, गले में सोने का हार चाहिए। नींद मिले या न मिले, सिर पर ताज चाहिए। प्यास बुझे न बुझे, वासना! व्यर्थ की दौड़ का नाम वासना है कि जिसको पा भी लोगे तो कुछ पाया नहीं। न पाए तो परेशान हुए, पा लिए तो पाया कि हाथ खाली हैं। वासना दुष्पूर है। उसको कभी कोई नहीं भर पाता। दौड़ना बहुत होता है उसमें, पहुंचना कभी भी नहीं होता।

तो लाओत्से कहता है, जिसने पूर्व-निवारण कर लिया, जो अपनी छोटी-छोटी जरूरतों में राजी हो गया... ।
और तुम सोच भी नहीं सकते, क्योंकि इतनी वासनाएं मन को पकड़े हैं, अन्यथा तुम इतने अनुगृहीत हो जाओगे परमात्मा के! श्वास भी तुम्हारी इतनी शांत और आनंदपूर्ण हो जाएगी। उठने-बैठने में एक नृत्य भीतर चलने लगेगा। बोलने में, चुप रहने में एक संगीत बजने लगेगा।

जो पक्षियों को उपलब्ध है वह तुम्हें उपलब्ध नहीं हो पाता, यह हैरानी
की बात है। तुम पक्षियों से श्रेष्ठ हो, तुम पौधों से बहुत आगे जा चुके हो, तुम शिखर हो इस पूरे अस्तित्व के। और तुमसे ज्यादा दीन कोई नहीं दिखाई पड़ता। तुम्हारे जीवन में कभी फूल लगते ही नहीं; संगीत कभी लगता ही नहीं; कभी तुम नाचने की घड़ी में आ ही नहीं पाते। तुम कभी मदमस्त नहीं हो पाते, जब कि पूरी मधुशाला खुली है अस्तित्व की, कि तुम पी लो पूरी मधुशाला।
कबीर कहते हैं, सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
कबीर कहते हैं कि मैं तो अब बिना तौले सारी मधुशाला ही को पी गया। तौलना भी क्या? अनंत उपलब्ध है। तौल कर भी क्या करोगे? बिना तौले पी जाओ।
लेकिन नहीं पी पाओगे। क्योंकि तुम जरूरत को तो काट रहे हो और गैर-जरूरत
को सिर पर रखे ढो रहे हो। हम अपनी जरूरतों को महत्वाकांक्षा के लिए काटते चले जाते हैं। हम कहते हैं, कल महत्वाकांक्षा पूरी हो जाएगी तब सब ठीक हो जाएगा। तुमने एक दुकानदार को भोजन करते देखा है? भागा-भागा भोजन करता है। उसकी हालत देखो तुम, भागा-भागा किसी तरह भोजन कर रहा है। दुकान पर पहुंच ही चुका है असली में; शरीर ही यहां है, आत्मा तो दुकान पर है। स्वाद का रहस्य इसे पता ही न चल पाएगा।
हिंदुओं ने अन्न को ब्रह्म कहा है। जिन्होंने अन्न को ब्रह्म कहा है उन्होंने जरूर स्वाद लिया होगा। उन्होंने तुम जैसे ही भोजन न किया होगा। वे बड़े होशियार लोग रहे होंगे, बड़े कुशल रहे होंगे। कोई गहरी कला उन्हें आती थी कि रोटी में उन्होंने ब्रह्म को देख लिया। दुनिया में किसी ने भी नहीं कहा है अन्नं ब्रह्म। कैसे लोग थे! रोटी में ब्रह्म! जरूर उन्होंने रोटी कुछ और ढंग से खाई होगी। उन्होंने भोजन को ध्यान बना लिया होगा। वे भागे-भागे नहीं थे। वे जब भोजन कर रहे थे तो भोजन ही कर रहे थे। उनकी पूरी प्राण-ऊर्जा भोजन में लीन थी। और तब जरूर रूखी रोटी में भी वह रस है जिसको ब्रह्म कहा है। तुम्हें भोजन करना आना चाहिए।
इसलिए मैं कहता हूं कि जब अन्न में ब्रह्म है तो निद्रा में भी है। उसे लेना आना चाहिए। तुम अगर ठीक से सोना जान जाओ, जहां सपने खो जाएं। क्योंकि सपने का अर्थ है, तुम्हें सोना नहीं आता। तुम आधे-आधे सो रहे हो। सपने का अर्थ है, कुछ जागे हो, कुछ सोए हो। इसीलिए तो बेचैनी है। जब सपना रहित नींद हो जाती है तब नींद में भी ब्रह्म है। तब तुम पाओगे कि श्वास-श्वास में उसी का वास है। तब तुम पाओगे, वही श्वास से भीतर आता, वही श्वास से बाहर जाता। तब हर तरफ तुम्हें उसकी ही झलक मिलेगी।
घट-घट मेरा साईयां, सब सांसों की सांस में।
कोई परमात्मा दूर नहीं है; तुम जरा पास आ जाओ अपने। तुम बहुत दूर भागे हुए फिर रहे हो। इसको लाओत्से कहता है कि जैसे ही कोई मिताचार को उपलब्ध होता, पूर्व-निवारण करता, तैयार हो जाता, सुदृढ़ हो जाता, सदाजयी हो जाता। उसकी विजय शाश्वत है। फिर उसे कोई हरा नहीं सकता। उसने ब्रह्म को पा लिया, अब उसकी कोई हार संभव नहीं है।
हार तो वहां होती है--तुमने कोई ऐसी चीज पा ली जो संसार की है, तो तुम हारोगे; क्योंकि वह तुमसे छीनी जाएगी। आज नहीं कल तुम उसे खोओगे। कुछ ऐसी चीज खोज लो जिसे चोर चुरा न पाएं, जिसे आग जलाए नहीं, जिसे मृत्यु छीन न सके। फिर तुम सदाजयी हो।
"सदाजयी होना अशेष क्षमता प्राप्त करना है।"
और जो सदाजयी हो जाता है, ऐसे सदाजयियों को हमने जिन कहा है, महावीर कहा है। जीत लिया जिन्होंने। क्या जीत लिया उन्होंने? स्वयं को जीत लिया।
दो तरह की जय है। एक तो दूसरों को जीतना। उसे मैं राजनीति कहता हूं। लाओत्से भी राजनीति कहता है। और एक स्वयं को जीतना। उसे धर्म कहते हैं। जब तक तुम दूसरों को जीतने में लगे हो तब तक तुम विक्षिप्त ही रहोगे। जिस दिन तुम अपने को जीतने में लगोगे उसी दिन तुम यात्रा पर, ठीक यात्रा शुरू हुई, यात्रा-पथ पर आए।
जो व्यक्ति अपने को जीत लेता है वह अशेष क्षमता को प्राप्त होता है। यह समझ लेने जैसा है। उसकी क्षमता कभी भी चुकती नहीं। उसके जीवन की क्षमता अशेष है। कितना ही जीए, क्षमता कायम रहती है। जैसा उपनिषद कहते हैं, निकाल

लो पूर्ण को पूर्ण से, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। ऐसी उसकी क्षमता होती है। वह कितना ही जीए, चुकता नहीं। जितना जीता है उतना ही पाता है कि जीने के लिए और तत्पर हो गया।
तुम चाहते तो हो कि तुम्हें और जीवन मिले, लेकिन तुमने कभी ठीक से सोचा नहीं कि तुम और जीवन लेकर करोगे भी क्या? तुम वैसे ही थक गए हो! कभी विचार करके सोचना कि और जीवन लेकर करोगे क्या? एक ही जीवन काफी थका देता है। क्षमता कुछ बचती ही नहीं। खोखले हो जाते हो दौड़-दौड़ कर वासना के पीछे। जैसे ही व्यक्ति दौड़ बंद कर देता है, अपने में ठहरता है, ऊर्जा नष्ट नहीं होती, सब छिद्र बंद हो जाते हैं, सब द्वार बंद हो जाते हैं, ऊर्जा की एक विराट लपट उसके भीतर उठती है। उसके पास अनंत ऊर्जा होती है। महावीर ने कहा है, वह अनंत वीर्य हो जाता है। उसकी क्षमता अशेष है। वह जीता जाता है, बांटता जाता है, देता जाता है, कभी चुकता नहीं। वह जितना देता है उतना ही और पाता है। वह जितना उलीचता है उतना ही पाता है कि और भर गया है।
और जब तक तुम ऐसी अशेष क्षमता के धनी न हो जाओ तब तक तुम दीन ही रहोगे।
जब तुम ऐसी अशेष क्षमता के धनी हो जाओगे तभी तुम सम्राट हुए। इसीलिए हमने फकीरों को सम्राट कहा है। हमने ऐसे सम्राट जाने जो फकीर थे, भिखारी थे-- बुद्ध, महावीर। और हमारे सम्राट निश्चित ही फकीर हैं, भिखमंगे हैं। सम्राट मांगते चले जाते हैं, मांग का कोई अंत नहीं। फकीर देते चले जाते हैं, देने का कोई अंत नहीं। सम्राट की आत्मा भिखारी की आत्मा है। फकीर की आत्मा सम्राट की आत्मा है। चूंकि जब तुम मांगते हो तब तुम भिखमंगे हो। जब तुम देते हो तभी पहली बार तुम्हारे सुर परमात्मा से बंधे। तुम्हारा झरना उसके अनंत झरने से जुड़ गया। अब कोई चुका न सकेगा।
लाओत्से कहता है, "जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने के योग्य है।"
तो जो लोग शासन करते हैं देशों में उनमें से तो कोई भी योग्य नहीं हो सकता। लाओत्से कहता है कि सिर्फ संत ही शासन करने के योग्य है। वही व्यक्ति शासन करने के योग्य है जो शासन करना ही नहीं चाहता। जिसकी शासन करने की कोई आकांक्षा नहीं है वही योग्य है। जो शासन करना चाहता है उसकी करने की चाह में ही अयोग्यता छिपी है।
मनसविद भी राजी हैं लाओत्से से। वे कहते हैं, जो व्यक्ति शासन करना चाहता है वह हीनता की ग्रंथि से पीड़ित है, उसके भीतर हीन भाव है। पद पर खड़े होकर वह दुनिया को बताना चाहता है कि मैं हीन नहीं हूं, देखो कैसे सिंहासन पर खड़ा हूं। इसलिए लंगड़े-लूले, अंधे-काने सब दिल्ली की तरफ जाते हैं। जाएंगे ही। क्योंकि उनके पास और कोई उपाय नहीं है घोषणा करने का। तुम राजनीतिक को कभी साबित न पाओगे। कहीं न कहीं कानापन, कहीं न कहीं तिरछापन, कहीं न कहीं कोई कमी, कोई भीतरी अभाव होगा, कोई हीनता की ग्रंथि होगी। उस हीनता की ग्रंथि को दिखाने के लिए कि वह नहीं है वह बड़े आयोजन रचता है। लेकिन कितना ही आयोजन करो हीनता की ग्रंथि मिटती नहीं। हीनता की ग्रंथि का मिटने का यह उपाय नहीं है। हीनता की ग्रंथि तो तभी मिटती है जब तुम अशेष क्षमता के धनी हो जाते हो।
"जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने के योग्य है।"
और ऐसा जब कोई शासक उपलब्ध हो जाए किसी देश को तो उस देश की जो मातृत्व
की क्षमता है, उस देश की जो प्रेम की क्षमता है, प्रेम जो कि जीवन का गहरे से गहरा सिद्धांत है, आधार है, उसमें फूल आने शुरू होते हैं। वह विकसित होता है, वह सुरक्षित होता है।
"और शासक देश की माता (सिद्धांत) दीर्घजीवी हो सकती है।"
तभी वस्तुतः एक परिवार बनता है समाज का प्रेम के आधार पर। अन्यथा समाज
एक भीड़ है। और उस भीड़ को किसी तरह व्यवस्थित रखने की ही कोशिश में शासन व्यस्त रहता है--किसी तरह व्यवस्थित करने की कोशिश में--कि भीड़ कोई उपद्रव न करे। बस भीड़ को किसी तरह शांत रखा जा सके, इतनी ही शासन की कुल चेष्टा बनी रहती है। लेकिन जब कभी कोई संत शासक हो जाए... ।
कभी-कभी वैसा हुआ है। और अगर बड़े पैमाने पर नहीं हुआ तो छोटे पैमाने पर
तो बहुत बार हुआ है। बुद्ध या महावीर या लाओत्से एक दूसरा ही छोटा समाज

समाज के भीतर निर्मित कर लेते हैं। बुद्ध के दस हजार भिक्षु हैं। बुद्ध ने एक छोटा सा समाज निर्मित कर लिया इनका। इस समाज की हवा और है।
अजातशत्रु बड़ा शासक था बुद्ध के समय में। उसके आमात्यों ने कहा कि बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी चलें। आमात्यों को, प्रजा को प्रसन्न करने के लिए वह गया। जाने की कोई इच्छा न थी, लेकिन लोग समझेंगे, अच्छा राजा है, साधु का सम्मान किया, तो वह गया।
जब वे करीब पहुंचे उस आम्रवन के जहां बुद्ध ठहरे थे तो वह ठिठक कर खड़ा
हो गया और उसने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली। और उसने अपने मंत्रियों को कहा कि क्या तुम मुझे कुछ शड्यंत्र में डाल रहे हो? तुम कहते थे, दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ हैं। जहां दस हजार आदमी हों वहां बाजार मच जाता है, और यहां तो सन्नाटा है। यहां तो ऐसा नहीं है कि एक भी आदमी हो इस आम्रवन के भीतर। तुम चाहते क्या हो? तुम मुझे कहीं धोखे में ले जाकर कोई खतरा करना चाहते हो? वे आमात्य हंसने लगे। उन्होंने कहा, आप बुद्ध के परिवार को जानते नहीं; आप तलवार भीतर रख लें और निःशंक हो जाएं। जल्दी ही इन झाड़ों के पार आपको खुद ही दिखाई पड़ जाएगा।
जैसे ही उन झाड़ों की पंक्ति को अजातशत्रु पार हुआ, वह चकित हुआ! वहां दस हजार लोग थे। उसने बुद्ध से पूछा कि यह मेरी समझ में नहीं आता, ये किस तरह के लोग हैं? क्योंकि दस हजार आदमी जहां हों वहां तो उपद्रव होना ही है। वहां तो हमें पुलिस का और इसका इंतजाम करना पड़ता है सब कि कैसे लोग शांत रहें। और ये दस हजार लोग बिना किसी व्यवस्था के और बिना किसी शासन के क्यों शांत हैं? इनको क्या हो गया है?
बुद्ध ने कहा, यह और ही तरह का परिवार है; इससे तुम अपरिचित हो।
तो कभी-कभी बुद्धों के करीब छोटे-छोटे समाज निर्मित हुए हैं। वे समाज
इस पृथ्वी पर किसी दूसरे ही लोक के प्रतिनिधि हैं। बुद्ध का शासन है उन पर-- जो शासन नहीं करना चाहता। और वे शासित नहीं हैं जो उनके आस-पास इकट्ठे हैं। क्योंकि उन्होंने खुद ही समर्पण किया है; वे हराए नहीं गए हैं, वे हारे हैं। जब तुम किसी को हराते हो तब घृणा पैदा होती है और जब तुम खुद ही हार जाते हो तो प्रेम का जन्म होता है। वे समर्पित हैं। उन्होंने खुद ही अपने को बुद्ध के चरणों में डाल दिया है। एक दूसरे ही तरह की गंध वहां है--शांति की, आनंद की।
ऐसे छोटे-छोटे परिवार दुनिया में बने हैं। कभी यह भी हो सकता है कि सारी दुनिया का ऐसा पूरा परिवार बने। क्योंकि जो दस हजार के लिए संभव है वह दस लाख के लिए संभव है। जो दस लाख के लिए संभव है वह दस करोड़ के लिए भी संभव हो सकता है। लाओत्से उसी सपने को तुम्हें दे रहा है। लाओत्से कह रहा है, यह पृथ्वी तभी शांत होगी जब हम यहां एक गुणात्मक रूप से भिन्न तरह का परिवार बना सकेंगे; जिसमें कम से कम नियम होगा, अधिक से अधिक प्रेम होगा। जिसमें ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्रता होगी, न के बराबर परतंत्रता होगी। जिसमें निषेध न होंगे, विधेय होंगे। जिसमें लोगों पर कुछ थोपा न जाएगा, लोग अपनी ही अंतःप्रज्ञा से संचालित होंगे। जहां उनकी जीवन-व्यवस्था उनके बोध से आएगी; किसी के दबाव, किसी के आरोपण से नहीं। जहां उनका जीवन उनके अंतस से बहेगा। जहां उनका आचरण उनकी अपनी ही सजगता का हिस्सा होगा।
"यही है ठोस आधार प्राप्त करना, यही है गहरा बल पाना; और यही अमरता और चिर-दृष्टि का मार्ग है। दिस इ.ज टु बी फर्मली रूटेड, टु हैव डीप स्ट्रेंग्थ, दि रोड टु इम्मारटेलटी एंड एंड्योरिंग विजन।"
ऐसे तुम हो जाओ। इसकी फिक्र मत करो, समाज कब होगा। इसकी फिक्र मत करो, क्योंकि समाज तो सदा रहेगा। तुम सदा नहीं रहोगे। तुम आज हो, कल डेरा कूच करना पड़े। कुछ कहना मुश्किल है, कब बांध चलेगा बनजारा। किसी भी घड़ी! तुम फिक्र मत करो इसकी कि यह दुनिया कब बदलेगी। यह कोई क्रांति का चिंतन नहीं है। यह आत्म-रूपांतरण का चिंतन है। तुम अपने को बदल लो। तुम चाहो तो अभी उस परिवार के हिस्से बन सकते हो जो इस पृथ्वी का नहीं है। और तुम चाहो तो उस खुले आकाश में जी सकते हो जिसकी लाओत्से बात कर रहा है।
इधर मैं हूं तुम्हें केवल उतना खुला आकाश देने को। तुम चाहो तो उड़ सकते
हो उस खुले आकाश में। इसलिए मेरे पास न कोई नियम है, न कोई तुमसे व्रत लेता

हूं, न तुम्हें कोई कसमें दिलाता हूं। तुम्हें किसी परतंत्रता में बांधने का कोई आयोजन नहीं है। तुम्हारी सब जंजीरें कैसे गिर जाएं और तुम्हारे पंख फिर कैसे सबल हो जाएं कि उड़ सकें। खुला आकाश ही काफी नहीं है। क्योंकि पिंजड़े में अगर बहुत दिन बंद रह गए तो पंखों की उड़ने की क्षमता चली जाती है। खुला आकाश चाहिए तुम्हें, और तुम्हारे पंखों को फिर से सबल बनाने की जरूरत है। तो तुम्हें कोई नियम नहीं देता, ताकि तुम्हें खुला आकाश मिल जाए। और तुम्हें ध्यान देता हूं, ताकि तुम्हारे पंख सबल हो जाएं और तुम उड़ सको। तुम्हें भरोसा एक बार आ जाए कि तुम उड़ सकते हो दूर आकाश की नीलिमा में,
एक बार उड़ कर तुम्हें स्वाद आ जाए, तो तुम इसी पृथ्वी पर, इन्हीं साधारणजनों के बीच में, अचानक असाधारण हो जाते हो। और मजा यह है कि यह असाधारणता आती है तब जब तुम बिल्कुल साधारण होने को राजी होते हो। साधारण होने को राजी हो जाना इस जगत में अति असाधारण घटना है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
निन्यानबेवां प्रवचन

मेरी बातें छत पर चढ़ कर कहा

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि कुछ होने, बनने या बिकमिंग की चेष्टा मत करो, बस जो हो वही हो रहो--जस्ट बीइंग। विस्तार से बताएं कि यह कैसे साधा जाए?

साधने की बात ही पूछी कि समझने से चूक गए। क्योंकि साधने का अर्थ ही यह होता है कि कुछ होने की चेष्टा शुरू हो गई। जब मैं कहता हूं, जो हैं, जैसे हैं, वैसे ही रहें, तो साधने का सवाल नहीं उठता। साधने का तो मतलब ही यह है कि जो हम नहीं हैं वह होने की कोशिश शुरू हो गई। तो समझे नहीं।
कुछ भी साधने का अर्थ है कि असंतोष है; जैसे हैं वैसे होने में तृप्ति नहीं है। मन कह रहा है, कुछ और हो जाएं। थोड़ा धन है, ज्यादा धन इकट्ठा कर लें। थोड़ा ज्ञान है, ज्यादा ज्ञान इकट्ठा कर लें। थोड़ा त्याग है, और बड़े त्यागी हो जाएं। ध्यान का थोड़ा-थोड़ा रस आ रहा है, समाधि का रस बना लें। सभी एक सा है; कुछ फर्क नहीं। क्योंकि सवाल न धन का है और न ध्यान का, सवाल तो और ज्यादा की मांग का है।
तो चाहे धन मांगो तो भी सांसारिक, चाहे ध्यान मांगो तो भी सांसारिक। जहां और की मांग है वहां संसार है। और जब तुम और नहीं मांगते, तुम जैसे हो परम प्रफुल्लित हो, अनुगृहीत हो; जैसे हो--बुरे-भले, काले-गोरे, छोटे-बड़े-- जैसे हो उस होने में ही तुमने परमात्मा को धन्यवाद दिया है, तत्क्षण क्रांति घटित हो जाएगी। कुछ साधना न पड़ेगा। क्योंकि जब तक तुम साधते हो, तुम्हारा अहंकार खड़ा रहेगा। तुम्हीं तो ध्यान करोगे। अहंकार ही तो तुमसे कहेगा कि देखो कुंडलिनी जाग रही है, कि देखो प्रकाश दिखाई पड़ता है, कि नील-तारा प्रकट होने लगा, कि चक्र जागने लगे। कौन कहेगा तुमसे? कौन अकड़ेगा? कौन रस लेगा इसका? वह सब अहंकार है। वही अहंकार तो बाधा है।
परम संतुष्ट व्यक्ति का कोई अहंकार नहीं हो सकता, क्योंकि वह कुछ कर ही नहीं रहा है जिससे अहंकार भर जाए। वह ध्यान भी नहीं कर रहा है। ध्यान कभी कोई कर सकता है? ध्यान का अर्थ है परितोष, ए डीप कंटेंटमेंट, जहां कोई एक लहर भी असंतोष की नहीं उठती।
फिर तुम कहोगे, बड़ी मुश्किल है; असंतोष की लहर तो उठती है, कुछ और होने
का मन होता है।
मन का स्वभाव यही है कि वह तुमसे कहता है, कुछ और हो जाओ। तुम मोक्ष में
भी चले जाओगे तो मन कहेगा, और खोजो, कुछ और हो जाओ। तुम परमात्मा भी हो जाओगे तो मन कहेगा, इतने से कहीं कुछ होता है, कुछ और हो जाओ। मन और की मांग है। और जहां तक मन है वहां तक ध्यान नहीं। मन असंतोष है। जहां तक असंतोष है वहां तक कोई धन्यवाद नहीं, कोई अनुग्रह का भाव नहीं, वहां तक शिकायत है।
होने की दौड़ को समझ लो कि होने की दौड़ ही भ्रांत है। तुम जो भी हो सकते
हो वह तुम हो। जब तक दौड़ोगे तब तक चूकोगे। जब तक खोजोगे तब तक खोओगे। जिस दिन खोज भी छोड़ दोगे, दौड़ भी छोड़ दोगे, बैठ जाओगे शांत होकर कि न कहीं जाना है, यही जगह मंजिल है; न कुछ होना है, यही होना आखिरी है; उसी क्षण क्रांति घटित हो जाती। तुम्हारे करने से क्रांति घटित नहीं होती। तुम्हारे किए तो जो भी होगा उपद्रव ही होगा, क्रांति नहीं होगी। जब तुम्हारा करने का भाव ही खो जाता है, तत्क्षण क्रांति हो जाती है। क्रांति आती है, अवतरित होती है तुम पर। तुम जिस दिन कुछ भी न करने की अवस्था में होते हो उसी क्षण तालमेल बैठ जाता है, उसी क्षण सब सुर सध जाते हैं। उसी क्षण तुम और विराट के बीच जो विरोध था वह खो जाता है।
विरोध क्या है? विरोध यह है कि परमात्मा तुम्हें कुछ बनाया है, तुम कुछ
और बनने की कोशिश में लगे हो। गुरजिएफ का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है। बहुत मुश्किल है समझना, लेकिन मेरी बात समझते हो तो समझ में आ जाएगा। गुरजिएफ कहता है कि सभी साधक, सभी महात्मा परमात्मा से लड़ रहे हैं। परमात्मा ने तो तुम्हें यह बनाया है जो तुम हो। अब तुम परमात्मा पर भी सुधार करने की कोशिश

में लगे हो। इसलिए गुरजिएफ कहता है, सभी धर्म परमात्मा के खिलाफ हैं। समझना बहुत मुश्किल होगा। बात बिल्कुल ठीक कह रहा है। परमात्मा के जो पक्ष में है उसका क्या धर्म? जब साधने को कुछ न बचा तो धर्म कहां बचेगा? न वह साधता है, न वह दौड़ता है, न वह मांगता है। उसकी कोई आकांक्षा नहीं।
इसलिए तो कबीर कहते हैंः साधो सहज समाधि भली।
सहज समाधि का यह अर्थ है जो मैं कह रहा हूंः कुछ न किए सध जाए वही सहज समाधि। तुम्हारे करने से जो सधे वह तो असहज होगी; वह सहज नहीं होगी। वह चेष्टित होगी। और जो चेष्टा से होगी वह तुमसे बड़ी नहीं होगी। तुम्हारी चेष्टा तुमसे बड़ी कैसे हो सकेगी, थोड़ा सोचो! तुम ही जो करोगे वह तुम्हें तुमसे ऊपर कैसे ले जा सकेगा, जरा विचारो! यह तो ऐसे ही है जैसे कोई जूते के बंद पकड़ कर खुद को उठाने की कोशिश में लगा हो। सभी साधक यही कर रहे हैं। छोड़ो यह नासमझी। साधक कभी नहीं पहुंचता। साधक पहुंच ही नहीं सकता, सिद्ध ही पहुंचता है। और सिद्ध का अर्थ साध-साध कर नहीं सधता। सिद्ध तुम हो। तुम्हें जो भी मिल सकता है मिला ही हुआ है; जरा सी पहचान की कमी है। जिस खजाने की तुम तलाश कर रहे हो वह छिपा ही हुआ है; जरा पर्दे का उठाना है।
दिल के आईने में है तस्वीर-यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली
थोड़ी सी गर्दन झुकने की बात है। वह गर्दन झुकना ही अहंकार का झुकना है।
और जब तक तुम करोगे तब तक गर्दन अकड़ी रहेगी। कर्ता का भाव गर्दन का न झुकना है। अकर्ता का भाव कि मेरे किए क्या होगा। मैं हूं कौन? मेरी सामर्थ्य क्या? असहाय हूं। न कोई सामर्थ्य है, न कुछ कर सकता हूं। श्वास चलती है तो चलती है, नहीं चलेगी तो क्या करोगे? सूरज निकलता है तो निकलता है, नहीं निकलेगा तो क्या करोगे? जीवन है तो है, नहीं हो जाएगा तो क्या करोगे? तुम्हारा बस कितना है? और तुम मोक्ष खोजने चले हो! और तुम परमात्मा की तलाश कर रहे हो! और तुम अमृत-पथ के यात्री बनने की आकांक्षा रखे हो! तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है?
जैसे ही कोई अपनी सामर्थ्य को समझता है, अर्थात अपनी असामर्थ्य को पहचान लेता है, जैसे ही कोई अपनी शक्ति को पहचानता है, वैसे ही अपनी अशक्ति की परिपूर्णता पता चल जाती है। उसी क्षण तुम ठहर जाते हो, दौड़ना रुक जाता है। तुम बैठ जाते हो, खड़े होना विदा हो जाता है। तुम झुक जाते हो, अकड़ खो जाती है। उसी झुकाव में--जब जरा गर्दन झुकाई--वह घड़ी आ जाती है जिसको तुम खोज-खोज कर न खोज सके। जिसे तुम खोज रहे थे वह खुद ही तुम्हारे द्वार पर आ जाता है। वह द्वार पर ही खड़ा था। लेकिन तुम खोज में इतने व्यस्त थे कि फुरसत न थी कि तुम उसे देख लो। वह तुम्हारे भीतर बैठा था, तुम कहीं और तलाश रहे थे। जब तलाश बंद हो जाती है तो तुम अपने भीतर देखोगे। करोगे क्या और? जब सब तलाश खो जाएगी, जब तुम पहली दफा अपने आमने-सामने खड़े होओगे, उस घड़ी में ही सब सध जाता है बिना साधे।
कबीर कहते हैंः अनकिए सब होय।
तुमने किया कि बिगाड़ा। तुमने कर-करके ही तो बिगाड़ा है। इतनी लंबी यात्रा कर रहे हो। तुम न करो। थोड़ी देर भी न करके देखो; सब सुधर जाता है। तुम चुप हुए कि अस्तित्व तुम्हारे आस-पास ठीक होने लगता है। तुम मौन हुए कि विकृतियां अपने आप बैठने लगती हैं। ऐसे ही जैसे नदी बहती है, कूड़ा-कर्कट उठ आता है; तुम किनारे बैठ जाते हो, थोड़ी देर में कूड़ा-कर्कट अपने से बह जाता है, धूल-धवांस नीचे बैठ जाती है।
भूल कर भी नदी में मत उतर जाना सफाई करने के लिए। नहीं तो तुम्हारी सफाई करने की कोशिश, तुम और कीचड़-कबाड़ को उठा दोगे। नदी और गंदी हो जाएगी। अनकिए सब होय। तुम न करना सीख लो। मत पूछो कैसे साधें! क्योंकि तुम फिर वही अपनी नासमझी ले आए। इतना ही पूछो कि कैसे समझें? साधने में कृत्य है; समझ में कोई कृत्य नहीं है। और ध्यान रखना, जितने लोग तुम्हें साधते हुए मिलेंगे, तुम उन्हें नासमझ पाओगे। असल में, बुद्धू ही साधते हैं; ज्ञानी समझते हैं। साधने को यहां कुछ है नहीं। सब सधा ही हुआ है। तुम्हारे लिए रुका था कुछ? तुम नहीं थे तब भी सब सधा था; तुम नहीं हो जाओगे तब भी सब सधा

रहेगा। चांद-तारे चल रहे हैं। सूरज निकल रहा है। इतना विराट विश्व सधा है-- तुम्हारे बिना साधे।
लेकिन तुम उसी भ्रांति में हो। मैंने सुना है, एक छिपकली को उसके मित्रों ने भोज के लिए निमंत्रित किया। कहीं शादी-विवाह था। छिपकली ने कहा, मैं न आ सकूंगी। इस महल को कौन सम्हालेगा? मैं रहती हूं तो छप्पर सम्हला रहता है। मैं गई कि छप्पर गिरा।
तुम उस छिपकली की भांति हो जो नाहक परेशान हो रहे हो। महल का छप्पर छिपकली से नहीं सधा है, छप्पर के कारण छिपकली सधी है। तुम्हारे साधने के लिए बचा क्या है? सब सधा ही हुआ है। तुम अकारण श्रम मत उठाओ। जैसे ही तुम समझोगे, सब साधना व्यर्थ हो जाती है।
तो अगर तुम मुझसे पूछो कि फिर साधना का प्रयोजन क्या है? साधना का कुल प्रयोजन इतना है कि जब तक तुम समझे नहीं हो और समझने को राजी नहीं हो तब तक तुमसे कुछ करवाए रखना जरूरी है। यह करवाना ऐसे है जैसे बच्चों को मिठाई दे दी जाती है; मिठाई के कारण वे रुके रहते हैं। यह करवाना वैसे ही है जैसे दवा के ऊपर हम शक्कर की एक पर्त चढ़ा देते हैं। तुम बिना किए न मानोगे, तुम्हारा मन कहता है, कुछ करना है, इसलिए तुम्हारे मन को करने को कुछ दे देते हैं।
ये जितनी विधियां हैं ध्यान की, सब तुम्हारे मन को कुछ करने के लिए देना है। धीरे-धीरे ताकि तुम्हें खुद ही बोध आए कि किए कहीं कुछ होता है! एक दिन ऐसी घड़ी आएगी कि करते-करते तुम जाग जाओगे और देखोगे कि क्या कर रहे हो, इस करने से कुछ भी नहीं होता। करना हाथ से छूट जाएगा और टूट जाएगा और बिखर जाएगा पारे की तरह। फिर तुम उसे इकट्ठा न कर पाओगे। और उसी घड़ी सब हो जाएगा। सब तैयारी उस घड़ी को लाने की है जब तुम थोड़ी देर के लिए न करने को राजी
हो जाओ। अगर तुम अभी राजी हो तो अभी हो जाएगा। इसी क्षण हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन, आत्मिक जीवन का रूपांतरण, भविष्य की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है; वह इसी क्षण हो सकता है। तुम बिल्कुल पूरे हो। कुछ कमी नहीं है जिसको पूरा करने के लिए समय लगे। सिर्फ आंख झुकानी थोड़ी। अपने को देखना थोड़ा। उसमें तुम जितनी देर लगा दो, तुम्हारी मर्जी। तुम मंदिर के चारों तरफ जितनी देर परिक्रमा करते रहो, तुम्हारी मर्जी। अन्यथा मंदिर का सिंहासन खाली है, आ जाओ और बैठ जाओ। तुम किसकी परिक्रमा लगा रहे हो? तुम मंदिर के सिंहासन पर बैठने को बने हो, परिक्रमा लगाने को नहीं। और जब तक परिक्रमा लगाते रहोगे, साफ है कि सिंहासन पर बैठ न सकोगे।
मत पूछो कैसे साधें! बस समझो। समझे कि तुम पाओगेः गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। कुछ साधने को नहीं है।
यह बड़ा कठिन लगता है। मन कहता है कि पहाड़ पर भी चढ़ना हो, हिमालय पर, तो
भी कोई हर्जा नहीं। कुछ तो करने को कहो, हम कर लेंगे। गौरीशंकर भी चढ़ जाएंगे। कितनी ही मुसीबत होगी, पार कर लेंगे। मन हर तरह की कठिनाई से लड़ने को तैयार है। मन लड़ने की तैयारी है। और जब मैं कहता हूं, कुछ भी नहीं करना, तो मन कहता है, बड़ी मुसीबत हो गई। लड़ने को कुछ नहीं, करने को कुछ नहीं; फिर होगा कैसे? जैसे तुम्हारे करने से सब हो रहा है।
तुमने सुनी है कहानी उस बूढ़ी औरत की जो नाराज हो गई गांव से और अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। क्योंकि गांव वालों से उसने कहा कि मेरा मुर्गा बांग देता है इसलिए सूरज निकलता है। गांव में लोग हंसने लगे। किसी ने उसकी मानी नहीं। उसने कहा, फिर पछताओगे। अगर मैं दूसरे गांव चली गई तो सूरज वहां निकलेगा; जहां मेरा मुर्गा बांग देगा वहां सूरज निकलेगा। फिर रोओगे, छाती पीटोगे अंधेरे में। लोग हंसते रहे; किसी ने उसकी मानी नहीं। बूढ़ी अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। दूसरे दिन सुबह मुर्गे ने बांग दी दूसरे गांव में, सूरज निकला। बूढ़ी ने कहा, अब रोते होंगे।
सूरज के निकलने के कारण मुर्गा बांग देता है; मुर्गे के बांग देने के कारण सूरज नहीं निकलता। परमात्मा के निकट आने के कारण ध्यान लगता है; ध्यान लगने के कारण परमात्मा निकट नहीं आता। तुम्हारे करने का कुछ नहीं है। एक गहन प्रतीक्षा मौन। एक गहन प्रतीक्षा; और जो हो, जैसे हो, उससे राजी हो जाना। इसको लाओत्से तथाता कहता है--टोटल एक्सेप्टबिलिटी। और ख्याल रखना, समग्र, टोटल, उससे कम में न चलेगा।

तब तुम पूछते हो, लेकिन मन में अशांति है, क्या करें? स्वीकार करो कि है; कुछ मत करो। तुम कहते हो, क्रोध होता है। स्वीकार करो कि क्रोध होता है-- है। कुछ मत करो। होने दो क्रोध, राजी रहो। तुम कहते हो, कामवासना है। है। न तुमने बनाई है, न तुम मिटा सकोगे। जो तुमने बनाया ही नहीं उसे तुम मिटाओगे कैसे? कामवासना न होती तो तुम पैदा कर सकते थे? है तो तुम कैसे मिटा सकोगे? जिसने दी है वही ले लेगा। जिसने बनाई है वही मिटाएगा। तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। तुम राजी हो जाओ कि जो तेरी मर्जी।
इसी को मैं प्रार्थना कहता हूं। जिस दिन तुम्हारा हृदय परिपूर्ण रूप
से कह सकेः जो तेरी मर्जी। अगर वासना में भटकाना है, राजी हूं। अगर ब्रह्मचर्य में ले जाना है, राजी हूं। अगर क्रोध करवाना है और जगत का निकृष्टतम आदमी बनाना है, राजी हूं। अगर करुणा से भरना है और जगत में श्रेष्ठतम उठाना है, राजी हूं। मेरी कोई मर्जी नहीं, तेरी मर्जी। तेरी मर्जी का भाव! कोई शिकायत नहीं! और तुम पाओगे, क्षण की देर नहीं लगती। एक पल भी नहीं खोता और द्वार पर मंजिल आ जाती है। बिना चले आती है मंजिल; बिना हिले-डुले मोक्ष मिल जाता है।
यह गहनतम सार है समस्त ज्ञानियों का।
न रुचे, न जंचे, फिर अज्ञानियों से पूछो। वे तुम्हें बहुत रास्ते बताएंगे। जब अज्ञानियों से थक जाओ तब मेरे पास आना। उसके पहले तुम मुझे समझ ही न पाओगे। पहले तुम अज्ञानियों के साथ खूब उलटा-सीधा कर लो, शीर्षासन लगा लो, आड़े-टेढ़े व्यायाम कर लो, तंत्र-मंत्र सब कर आओ। जब तुम थक जाओ कर-करके, न पाओ, तब मेरे पास आ जाना। क्योंकि मैं तो न करना सिखाता हूं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि व्यक्ति में सौ प्रतिशत अच्छा या बुरा हो नहीं सकता। लेकिन क्या आप स्वयं ही सौ प्रतिशत शुभ के प्रतीक नहीं? मैं आपमें कुछ भी बुराई नहीं देख पाता हूं। या यह प्रश्न इसलिए ही उठ रहा है कि मैं कुछ न कुछ बुराई देखने की कामना रखता हूं?

निश्चित ही! मन किसी भी चीज में सौ प्रतिशत नहीं देख सकता। वह मन की क्षमता नहीं है। क्योंकि मन द्वंद्व के बिना सोच नहीं सकता। अगर तुमने कहा कि सौ प्रतिशत भलाई दिखाई पड़ती है तो कहीं न कहीं अचेतन में बुराई का कोई न कोई बादल भटक रहा है। अन्यथा भलाई भी कैसे दिखाई पड़ेगी?
भलाई के लिए भी बुराई की पृष्ठभूमि चाहिए। सफेद खड़िया की लकीर खींचनी
हो तो काला ब्लैकबोर्ड चाहिए। कैसे पहचानोगे कि यह भलाई है? मुझसे लगाव हो, मुझसे प्रेम हो, मुझसे मोह बन गया हो, तो मन सारी बुराई को अचेतन में डाल देगा, सारी भलाई को ऊपर उठा लेगा। सौ प्रतिशत दिखाई पड़ेगी, लेकिन हो नहीं सकती। अचेतन में खोजोगे तो पाओगे, कुछ बुराई दिखाई पड़ती है। शायद वह बुराई दिखाई न पड़े, इसीलिए चेतन मन दोहराए चला जाता है कि नहीं, सौ प्रतिशत ठीक। पर यह स्वाभाविक है। इससे कुछ चिंता लेने जैसी नहीं है। मन द्वंद्व में ही देख सकता है। जिस दिन तुम मन के बाहर होकर मुझे देखोगे, न मैं बुरा दिखाई पडूंगा, न भला; न साधु, न असाधु; न शुभ, न अशुभ। क्योंकि दोनों एक साथ चले जाते हैं, या दोनों साथ-साथ रहते हैं। जैसे सिक्के के दो पहलू साथ ही साथ होंगे, तुम एक पहलू न बचा सकोगे। हां, इतना कर सकते हो, एक पहलू नीचे दबा दो, एक पहलू ऊपर उठा लो; जो ऊपर का है वह दिखाई पड़े, जो नीचा है वह दबा रहे। लेकिन नष्ट नहीं हो गया, वह मौजूद है। सिक्के को या तो पूरा बचाओ तो दोनों पहलू बचते हैं, या पूरा फेंको तो दोनों पहलू जाते हैं। तो जब तक तुम्हें शुभ दिखाई पड़े, जानना कि कहीं न कहीं पृष्ठभूमि में अशुभ छिपा हुआ है। नहीं तो बैकग्राउंड कौन बनेगा? शुभ दिखाई कैसे पड़ेगा?
जब कोई व्यक्ति समर्पित होता है तो पहली घटना यही घटती है कि सौ प्रतिशत अच्छा दिखाई पड़ता है गुरु। यहां रुक मत जाना। क्योंकि यहां अंधेरे में छिपी पृष्ठभूमि मौजूद है। यह घड़ी भी कीमती है। ऐसा अनुभव होना भी कि कोई सौ प्रतिशत ठीक है, श्रद्धा की बड़ी ऊंचाई है। लेकिन यह अंतिम नहीं है। एक कदम और लेना जरूरी है। तब श्रद्धा की अंतिम छलांग लगती है। तब न गुरु भला रह जाता, न बुरा। क्योंकि जब तक मैं भला हूं तब तक मेरे बुरे होने की

संभावना शेष है। कभी भी पांसा पलट सकता है। कभी भी जो पहलू नीचे दबा है ऊपर आ सकता है। हवा का जरा सा झोंका और सब बदल जा सकता है। इस पर बहुत भरोसा मत करना।
एक छलांग और, जब मैं न बुरा रह जाऊं, न भला। फिर तुम मुझसे दूर न जा सकोगे। फिर तुम मेरे विपरीत न हो सकोगे। फिर कोई उपाय ही न रहा। फिर मैं भला भी नहीं हूं, बुरा भी नहीं हूं। तो अश्रद्धा कैसे जगेगी? क्योंकि श्रद्धा भी गई। जब तक श्रद्धा है तब तक अश्रद्धा भी छिपी है। जब तक आदर है तब तक अनादर भी छिपा है। जब तक मान है तब तक अपमान भी छिपा है। जब तक मैं मित्र की भांति लगता हूं तब तक मैं कभी भी शत्रु की भांति लग सकता हूं। क्योंकि दूसरा मिट नहीं गया है, सिर्फ छिपा है।
और ध्यान रखना कि मन का एक नियम हैः जो छिपा है वह धीरे-धीरे शक्तिशाली
हो जाता है, और जो प्रकट है वह धीरे-धीरे धूमिल हो जाता है। क्योंकि जो छिपा है उसकी शक्ति व्यय नहीं होती, और जो प्रकट है उसकी शक्ति व्यय होने लगती है। फिर मन का एक दूसरा नियम भी ख्याल रखना कि जिसको तुम बहुत देर तक देखते रहते हो उससे तुम ऊबने लगते हो; फिर स्वाद के परिवर्तन की आकांक्षा होने लगती है। सो रोज श्रद्धा, रोज श्रद्धा, रोज श्रद्धा; वही भोजन रोज, वही भोजन रोज।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुझसे एक दिन कह रही थी कि आपको कुछ करना पड़े; पति का दिमाग खराब हो गया मालूम होता है। मैंने पूछा कि क्या हुआ? उसने कहा कि शनिवार के दिन भी उन्होंने, जब मैंने भिंडी की सब्जी बनाई, बड़ी प्रशंसा की और कहा, बहुत अदभुत है। रविवार के दिन कहा, अच्छी है। सोमवार के दिन कुछ बोले नहीं। मंगल को बड़े उदास दिखाई पड़े। बुध को बड़े क्रोधित थे। बृहस्पति को उन्होंने थाली फेंक दी; कहने लगे, जीवन नष्ट कर दिया मेरा! भिंडी, भिंडी, भिंडी! इनका दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि शनिवार के दिन कहा था, बहुत अच्छी है। और एक सप्ताह भी पूरा नहीं बीता और थाली फेंकते हैं। कोई भी फेंक देगा। स्वाद मरने लगता है। स्वाद परिवर्तन मांगता है। सुख
भी रोज-रोज मिले तो तुम दुख की आकांक्षा करने लगते हो। फूल ही फूल की शय्या पर लेटे रहो; कांटे की इच्छा पैदा हो जाती है। स्वाद परिवर्तन चाहता है। तुम अगर श्रद्धा ही श्रद्धा मुझ पर रखोगे तो आज नहीं कल श्रद्धा का स्वाद मर जाएगा। फिर तुम अश्रद्धा रखना चाहोगे। तब एक वर्तुल पैदा होता है। श्रद्धा अश्रद्धा में बदल जाती है, अश्रद्धा श्रद्धा में। और तब तुम एक ऐसे चक्र में पड़े जिससे निकलना मुश्किल हो जाएगा।
श्रद्धा पहला कदम है, अंतिम मंजिल नहीं। अश्रद्धा से श्रद्धा बेहतर है। फिर श्रद्धा से भी बेहतर एक घड़ी है; जहां न श्रद्धा है, न अश्रद्धा। उसके बाद फिर कोई टूटने का उपाय नहीं है। सौ प्रतिशत अच्छा देखते हो, शुभ है। क्योंकि इससे तुम्हारे भीतर की श्रद्धा प्रगाढ़ होगी। लेकिन इसको अंतिम मत मान लेना। ऐसी घड़ी लानी है जब शुभ-अशुभ दोनों ही व्यर्थ हो जाएं, फीके हो जाएं, दूर निकल जाएं। तभी तुम आमने-सामने मुझे जान सकोगे। और तब मुझसे टूटने की कोई व्यवस्था न होगी। यह मेरा शरीर भी गिर जाए तो भी मैं जुड़ा रहूंगा। तुम लाखों मील दूर रहो तो भी जुड़े रहोगे। तब टूटने की जगह ही न रही। तब बीच में फासला ही न रहा। एक बात!
दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जो व्यक्ति, जैसा मैंने कहा, कि भले से भले व्यक्ति में भी एक प्रतिशत बुराई रहनी जरूरी है, नहीं तो वह पृथ्वी पर न रह जाएगा। नाव को अगर इस किनारे पर रखना हो तो कम से कम एक खूंटी से तो बंधा रहना जरूरी है। नहीं तो नाव दूसरे किनारे की तरफ यात्रा पर निकल जाएगी। तो अच्छे से अच्छे आदमी में भी एक प्रतिशत बुराई होती है। उसकी बुराई भी बड़ी प्रीतिकर होती है, यह जरूर सच है। और शायद इसीलिए तुम्हें वह बुराई दिखाई न पड़े। बुरे से बुरे आदमी में भी एक प्रतिशत भलाई होती है। लेकिन वह भलाई भी बड़ी बुरी होती है; शायद इसीलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। इसे थोड़ा समझो। बड़े से बड़े सिद्धपुरुष में भी इस पृथ्वी पर होने के लिए एक खूंटी चाहिए। बिना खूंटी के उसकी नाव दूसरे तट पर चली जाएगी। खूंटी बांध कर रखनी पड़ती है, नहीं तो रुक नहीं सकता। वह खूंटी क्या है? उस खूंटी को तुम तो बुराई की तरह देख भी न पाओगे, क्योंकि जिस व्यक्ति में निन्यानबे प्रतिशत

शुभ हो, उसका निन्यानबे प्रतिशत इतना आलोकित होता है कि वह जो एक प्रतिशत बुरा होता है वह भी उसके प्रकाश में स्वर्ण जैसा चमकता है। वह ऐसा ही समझो कि जैसे निन्यानबे बहुमूल्य हीरों के बीच में एक साधारण सा पत्थर जड़ा हो। वह निन्यानबे हीरों की चमक-दमक इतनी होगी कि तुम उस एक पत्थर को भी चमकता हुआ पाओगे। वह एक पत्थर भी पास की चमक से दीप्त होगा। निकट के हीरे उसमें झलकेंगे, वह शायद कांच का टुकड़ा ही हो। और अगर निन्यानबे पत्थर हों रद्दी- सद्दी इकट्ठे और उनके बीच में एक हीरा भी जड़ा हो तो भी यही घटेगाः तुम उस हीरे को न पहचान पाओगे।
इसीलिए तो ऐसा होता है कि अगर गरीब आदमी हीरे की अंगूठी भी पहने हो, कोई नहीं सोचता कि हीरा है। अमीर आदमी नकली पत्थर भी लगाए हो तो लोग समझते हैं करोड़ों का होगा। आदमी पर निर्भर है। गरीब पर तुम अपेक्षा कहां करते हो कि उसके पास हीरे की अंगूठी होगी। इसलिए अमीर अगर नकली हीरे भी पहने रहता है तो भी प्रशंसित होता है, और गरीब अगर असली हीरे भी लिए फिरे तो कोई देखता नहीं; कोई मान ही नहीं सकता।
बुरे से बुरे आदमी में भी एक तो हीरा होता ही है। अगर वह हीरा न हो तो उसकी मनुष्यता ही खो गई। उतना बुरा कोई कभी नहीं है। अंधेरे से अंधेरे में भी प्रकाश की किरण मौजूद होती है। कितना ही गहन अंधकार हो, वह भी प्रकाश का ही एक अभाव है, वह भी प्रकाश का ही एक रूप है। अगर तुम देख सको तो तुम्हें बुरे से बुरे आदमी में भी वह किरण दिखाई पड़ जाएगी। लेकिन उसके लिए बड़ी सधी आंखें चाहिए।
और वही भले से भले आदमी के जीवन में है। उसके जीवन में भी एक बुराई होगी। लेकिन तुम उसे पहचान न पाओगे। इतनी भलाई के बीच, जहां चारों तरफ मिठास हो वहां नमक की एक डली अगर तुम डाल भी दो तो खो जाती है; वह भी मिठास बन जाती है, उसका पता नहीं चलता। लेकिन इस पृथ्वी पर होने का अर्थ ही यह है कि शुद्धि पूर्ण नहीं हो सकती।
इसलिए हम समाधि की दो अवस्थाएं मानते रहे हैं, या निर्वाण की दो अवस्थाएं मानते रहे हैं। बुद्ध को ज्ञान हुआ चालीस वर्ष की उम्र में, उसे हम कहते हैं निर्वाण। फिर बुद्ध अस्सी वर्ष में शरीर को छोड़े, उसे हम कहते हैं महापरिनिर्वाण। वह निर्वाण था, लेकिन उसमें एक प्रतिशत अशुद्धि थी। सोना था, लेकिन ठीक चौबीस कैरेट नहीं। जरा सी भी अशुद्धि तो चाहिए, नहीं तो सोने का कोई गहना न बन सकेगा। उसमें थोड़ा तांबा, कुछ और मिला होना चाहिए। चौबीस कैरेट सोने का कोई गहना नहीं बनता। क्योंकि गहना थोड़ी सी सख्ती चाहता है। चौबीस कैरेट सोना इतना कोमल हो जाता है कि उसका कुछ बन नहीं सकता। चौबीस कैरेट बुद्धत्व इतना पारदर्शी हो जाता है कि वह दिखाई नहीं पड़ सकता। चौबीस कैरेट बुद्धत्व इतना अदृश्य हो जाता है, इतना अरूप हो जाता है कि फिर तुम्हें उसकी छाया भी बनती हुई दिखाई नहीं पड़ सकती। चौबीस कैरेट बुद्धत्व का अर्थ हुआ कि बुद्ध अब शरीर में नहीं रह सकते। शरीर अशुद्धि है। और चेतना जब तक शरीर में है तब तक थोड़ी सी अशुद्धि रहेगी।
वह अशुद्धि क्या है? जैनों और बौद्धों ने इस पर बड़ा गहन विचार किया है। जैनों ने तो इस संबंध में बड़ी गहन खोज की है। क्योंकि यह सवाल उनके सामने रहा है कि तीर्थंकर क्यों शरीर में हैं? तो उन्होंने तीर्थंकर-बंध की खोज की है। वे कहते हैं, तीर्थंकर का भी एक बंधन है। तो तीर्थंकरत्व भी आखिरी जंजीर है। इसलिए वे कहते हैं, तभी कोई व्यक्ति तीर्थंकर होता है जब उसने पिछले जन्मों में कोई कर्मबंध किया हो तीर्थंकर होने का। वह भी आखिरी पाप है। हमें तो तीर्थंकर एकदम पुण्य मालूम होता है। लेकिन तीर्थंकर स्वयं जानता है कि अभी एक कड़ी बाकी है; अन्यथा वह खो जाएगा। वह कड़ी क्या है?
जैन कहते हैं, वह कड़ी करुणा है। बौद्ध भी कहते हैं, वह कड़ी करुणा है। हमें तो क्रोध बुरा लगता है; करुणा से शुभ और क्या? लेकिन बुद्ध को, महावीर को करुणा भी बुरी लगती है। क्योंकि वह भी है तो क्रोध का ही रूपांतरण। क्रोध में हम दूसरे को नष्ट करना चाहते हैं, करुणा में हम दूसरे को फला-फूला देखना चाहते हैं। लेकिन नजर तो दूसरे पर ही है। क्रोध और करुणा दोनों ही दूसरे की तरफ बहते हैं। एक विध्वंसात्मक, एक सृजनात्मक; लेकिन ऊर्जा तो वही है। करुणा की खूंटी से बुद्ध बंधे हैं। उतनी अशुद्धि है।

अगर मैं तुम्हें चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो जाए, रूपांतरण हो जाए, यह करुणा ही वह एक प्रतिशत अशुद्धि है। नहीं तो तुम्हारे लिए मैं क्यों परेशान होऊं? क्या प्रयोजन है? एक खूंटी उखाड़ी जा सकती है, नाव दूसरे किनारे पर यात्रा पर निकल जाएगी। माना कि खूंटी सोने की है, लेकिन खूंटी खूंटी है--सोने की हो कि लोहे की हो। माना कि जंजीर हीरे- जवाहरातों से जड़ी है, लेकिन जंजीर जंजीर है--जंग खाई लोहे की हो कि हीरे- जवाहरातों से चमकती हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। एक प्रतिशत अशुद्धि करुणा है।
बुरे से बुरे आदमी में एक प्रतिशत शुद्धि बोध है। क्योंकि बुरे से बुरे आदमी को यह बोध तो होता ही रहता है कि मैं बुरा कर रहा हूं। यह बोध कभी नहीं जाता। यह एक किरण उस गहन अंधकार में भी बनी रहती है। चोरी कर रहा हो, हत्या कर रहा हो, लेकिन मैं कर रहा हूं, और ठीक नहीं है, यह होश एकमात्र किरण है बुरे से बुरे आदमी में। यही किरण उसे उबारेगी। इसी किरण के सहारे वह ऊपर चढ़ेगा। इसी किरण के पायदानों पर यात्रा होगी। बोध बढ़ेगा, बढ़ेगा, बढ़ेगा, और एक दिन मुक्ति की घड़ी आ जाएगी।
भले से भले आदमी में एक प्रतिशत जो बुराई है वह करुणा है। क्योंकि करुणा ही उसे अंत में बांधे रखती है। जब सब बंधन टूट गया, न कोई मोह है, न कोई आसक्ति है, न कोई लोभ है, न कोई क्रोध है, उस दिन करुणा ही उसे बांधे रखती है। संसार की तरफ से देखने पर करुणा अदभुत है। हम तो कहते हैं, करुणा से बड़ा और कोई गुण नहीं। लेकिन अगर तुम परमात्मा की तरफ से जिस दिन देख पाओगे उस दिन तुम पाओगे, करुणा आखिरी बंधन है। संसार की तरफ से करुणा सबसे ऊपर है, लेकिन आखिरी ऊंचाई की तरफ से करुणा सबसे नीचे है। इस तरफ से, जहां हम हजारों बंधन से बंधे हैं, वहां करुणा मुक्ति मालूम होती है। लेकिन जो करुणा में खड़ा हो गया उसे पता लगता है, अब यह आखिरी बंधन है, यह भी टूट जाना चाहिए।
इसलिए बहुत लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, लेकिन सभी तीर्थंकर नहीं होते, सभी बुद्ध नहीं होते। ज्ञान को तो बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, मोक्ष को भी उपलब्ध हो जाते हैं, लेकिन सभी लोग सदगुरु नहीं हो सकते। सदगुरु वही व्यक्ति हो सकता है जिसने जन्मों-जन्मों में करुणा का बंधन ढाला हो। इसलिए बुद्ध ने तो एक नियम बनाया है कि ध्यान और करुणा का साथ-साथ ही विकास होना चाहिए। अगर ध्यान का अकेला विकास हो और करुणा का विकास न हो तो जिस दिन व्यक्ति ज्ञानी होगा उसी दिन तिरोहित हो जाएगा। व्यर्थ की खूंटियां उखाड़ो, लेकिन बुद्ध कहते हैं, एक सोने की खूंटी को गाड़ते भी रहो। क्योंकि जब सब खूंटियां टूट जाएं तब तुम्हारी नाव अगर एकदम से उस पार चली जाए तो इस तरफ तुम्हारा कोई भी लाभ न ले पाएगा। थोड़ी देर ठहर जाओ। मुक्त होकर थोड़ी देर इस किनारे रुक जाओ। ताकि जो राह पर हैं, जो भटक रहे हैं, जिन्हें कुछ सूझ नहीं रहा है, वे थोड़ी सी तुम्हारी रोशनी पी लें। थोड़ी देर! और जब नाव तैयार हो गई हो और पाल खिंच गया हो और दूसरे किनारे का आमंत्रण आ गया हो, तब रुकना बड़ा मुश्किल हो जाता है। उस दिन कोई पीछे लौट कर देखना भी नहीं चाहता। इतने दिनों से जिस नाव की प्रतीक्षा की थी, जन्मों- जन्मों जिसके लिए यात्रा की थी, वह आज किनारे आ लगी। सब तैयारी हो गई, अब बस बैठना है और नाव खुल जाएगी। उस क्षण कौन किनारे रुकता है?
तो बुद्ध कहते हैं, ध्यान के साथ-साथ करुणा को भी पोषित करो। ताकि जब नाव सामने आ जाए तो तुम तत्क्षण बैठ न जाओ, थोड़ी देर, थोड़ी देर नाव खड़ी रहने दो। कोई जल्दी नहीं है, थोड़ी देर दूसरों को तुम्हारा रस ले लेने दो। थोड़ी देर तुम्हारी प्रभा दूसरों के अंधकार में प्रविष्ट हो जाने दो। थोड़ी देर तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का दान बंटने दो। थोड़ी ही देर सही, ज्यादा देर यह नहीं हो सकता, लेकिन थोड़ी देर संयम रखो। बुद्ध कहते हैं, थोड़ी देर संयम रखो; मत सवार हो जाओ नाव पर। जन्मों-जन्मों की खोज है, इसलिए पूरे प्राण कहेंगे, बैठ जाओ, आ गई मंजिल; अब क्या बाहर रुकना। देखो, पीछे बहुत लोग चल रहे हैं; तुम्हारे कारण शायद उन्हें थोड़ी रोशनी मिल जाए। शायद उस तरफ की थोड़ी झलक तुम्हारे झरोखे से उन्हें मिल जाए। शायद तुम्हारे माध्यम से वे उस अलौकिक का थोड़ा सा स्वाद ले लें। उससे उन्हें वंचित मत करो।

करुणा का इतना ही अर्थ है। लेकिन है यह बुराई। बुराई इसलिए है कि तुम्हारी परम मुक्ति के लिए यह आखिरी बाधा है। दूसरों के लिए हितकर है, लेकिन तुम्हारी परम मुक्ति के लिए आखिरी बंधन है। यह करुणा शुभ ही मालूम पड़ेगी, लेकिन यह शुभ नहीं है। इसे भी छोड़ देना होगा। क्रोध तो छोड़ना ही है, एक दिन करुणा भी छोड़ देनी है। तभी तुम परम शून्य हो सकोगे। अभी तुम क्रोध से भरे हो, कल करुणा से भर जाओगे। बड़ा भेद पड़ गया। लेकिन फिर भी तुम भरे रहोगे, खाली न हो पाए। कल तक तुम दूसरों का अहित करने के लिए चिंतन करते थे और सो न पाते थे; अब तुम दूसरों का हित करने का सोचोगे और सो न पाओगे। आखिरी अर्थों में तो यह भी उपद्रव है।
इसलिए जैन कहते हैं, तीर्थंकर भी बंधन है, और किसी कर्म का फल है; इसे भी भोगना पड़ेगा।
बड़ा सूक्ष्म विवेचन हुआ है इस पृथ्वी के टुकड़े पर और लोग इतनी गहराई में गए हैं कि दुनिया के शेष सारे धर्म बहुत बचकाने मालूम होते हैं। तुमने कभी सोचा भी न होगा कि तीर्थंकरत्व भी एक कर्म का फल है, और इससे भी छुटकारा पाना है। वह बुराई है। वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी। लेकिन उसे ख्याल में रखना। और उससे पार जाना है। तुम्हें शुभ और अशुभ दोनों के पार जाना है।
और अगर तुम मेरी मौजूदगी का इतना उपयोग कर सको कि शुभ और अशुभ को कम से
कम मेरे तरफ छोड़ दो, कम से कम एक आदमी तुम्हारी जिंदगी में ऐसा आ जाए जो न बुरा है और न भला, तो भी बहुत बड़ी घटना घट गई। क्योंकि और तरह के लोग तो तुम्हारी जिंदगी में आएंगे ही, जो भले हैं, बुरे हैं। उनका तुम्हें काफी अनुभव है। अच्छे लोगों का अनुभव है, सज्जन का; बुरे लोगों का अनुभव है, दुर्जन का। संत न तो सज्जन है और न दुर्जन। तुम्हारी जिंदगी में यह स्वाद भी आ जाने दो कि तुम एक ऐसे आदमी से भी जुड़े हो जो अच्छा है न बुरा है, जिसका होना न होने के बराबर है; जिसकी मौजूदगी एक तरह की अनुपस्थिति है; जिसके आकार के भीतर कुछ निराकार घटित हुआ है; जिसके जीवन से तुम्हें कुछ जीवन के पार का सूचन और किरण मिल रही है।

तीसरा प्रश्नः आप जो भी कहते हैं वह पूरा का पूरा इतना सत्य और फलदायी प्रतीत होता है कि वह सब का सब दूसरों को, पूरे जगत को बता देने का एक अतीव भाव घेर लेता है। परिणाम में आपकी बातें अनिवार्यरूपेण मन इकट्ठा करता है; दूसरों तक बातों को कैसे पहुंचाया जाए, इसका भी निरंतर विचार चलता है। साथ ही साथ इसका भी अनुभव होता है कि जब तक मैं खुद कुछ न पा लूं तब तक मैं दूसरों को कैसे कुछ कह सकता हूं। तो हम क्या करें?

उचित है। यही तो मैं अभी कह रहा था कि ध्यान को और करुणा को साथ-साथ बढ़ने दो। अगर ध्यान पूरा हो गया और तुमने पा लिया, और बीच में करुणा के आधार न रखे, तो तुम खो जाओगे। जिस दिन नाव तुम्हारी तैयार होगी उस दिन तुम चले जाओगे। इसलिए यह प्रतीक्षा मत करो कि जब तुम पूरे हो जाओगे तब तुम कुछ कहोगे। क्योंकि तब तुम कह ही न पाओगे। तुम पूरे नहीं हुए हो, तभी तुम करुणा के बीज बोने लगो।
यह जो भाव उठ रहा है निरंतर कि दूसरों को भी कहूं, यह करुणा का भाव है। क्योंकि दूसरों से कुछ लेना नहीं है, सिर्फ देना ही है। दूसरों को कुछ मिल जाए जो तुम्हें मिल रहा है, यह बड़ी प्रेम की भाव-भीनी दशा है। इसे बुरा मत समझो।
ध्यान रखो कि अगर अभी तुमने कहने का अभ्यास जारी रखा तो ही अंतिम घड़ी में, जब आखिरी कड़ी बचेगी, तब भी तुम थोड़ी देर कुछ कह पाओगे। नहीं तो तुम न कह पाओगे। बहुत से ज्ञानी ऐसे ही शून्य में खो जाते हैं; उनके महान अनुभव का कोई लाभ जगत को नहीं हो पाता। वे तैयारी ही नहीं कर पाते। सिर्फ ध्यान में जो लीन है, वह एक दिन पूरा हो जाएगा। उस तक तो बात पूरी हो गई, लेकिन उससे अंधेरे में भटकते लोगों को कुछ भी न मिल पाएगा। इसलिए करुणा को साथ-साथ साधो।
दूसरी बात भी ठीक है कि मन में यह लगेगा कि अभी मेरा तो कुछ पूरा हुआ नहीं, मैं कैसे कहूं!

अधूरे हो, तभी तक कहने का अभ्यास कर लो। पूरे हो जाने के बाद अभ्यास का मौका नहीं मिलता; आदमी खो जाता है, गहन सन्नाटे में डूब जाता है, वाणी नहीं निकलती। सोने की खूंटी तैयार कर लो, इसके पहले कि सब खूंटियां टूट जाएं। तो थोड़ी देर नाव को अटकाने का मौका रहेगा। नहीं तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, तुम कब नाव में सवार हो गए, कब नाव की यात्रा शुरू हो गई, कब तुम दूसरे तट पर पहुंच गए। और एक बार नाव छूट जाए, तो तुमने जो पाया है वह तुम्हारे लिए महा आनंद होगा, लेकिन तुम उसे बांट न पाओगे।
बांटो! अधूरे हो, अभी पूरा हुआ नहीं है, पर बांटना जारी रखो, ताकि बांटने का अभ्यास बना रहे। और जब तुम पूरे हो जाओ तब भी बांटने की क्रिया थोड़ी देर चल जाए। थोड़ी देर ही सही! लेकिन बहुत लोग प्यासे हैं। एक बूंद भी उनके कंठ में पड़ जाए तो महाशुभ है, महामंगलदायी है।
मन में यह भाव उठता है कि अभी मैं पूरा नहीं हुआ, कैसे कहूं!
इस भाव को याद रखो। नहीं तो खतरा है। इसको भी भूलो मत कि मुझे पूरा होना है। कहीं ऐसा न हो कि करुणा महाफंदा बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम यह भूल ही जाओ कि अभी तुम्हें तो हुआ नहीं और तुम लोगों को समझाने में ही निरंतर रत हो जाओ। तब जो हुआ है वह भी खो जाएगा। तब तो तुम एक दिन पाओगे कि प्रज्ञा तो नहीं जगी, तुम एक पंडित होकर रह गए हो।
तो बड़ा बारीक रास्ता है। बड़ा सम्हल कर चलना है। करुणा को बोना है, ताकि अंतिम क्षण में तुम ऐसे ही न लीन हो जाओ बिना कुछ दिए। इस जगत ने तुम्हें बहुत कुछ दिया है। इस जगत को वापस कुछ दे जाना जरूरी है। इस जगत में तुम बहुत दिन रहे हो। इस घर में बहुत दिन बसे हो। इसे आखिरी अनुग्रह के रूप में कुछ दे जाना जरूरी है। तुम ऐसे ही चुपचाप चोरी-छिपे विदा मत हो जाना। जहां इतने दिन रहे हो, जहां तुमने बहुत से दुष्कृत्यों की छापें छोड़ी हैं, जहां तुम्हारे बहुत से सुकृत्यों की भी छापें हैं, वहां तुम्हारे उस कृत्य की छाप भी छोड़ जाना जो न तो शुभ की है और न अशुभ की है, जो पारमार्थिक है, जो आत्यंतिक है। तुम एक झलक उसकी भी छोड़ जाना। इसलिए करुणा को साधना जरूरी है। और बताओ लोगों को, कहो।
जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, खड़े हो जाओ मकानों के छप्परों पर और चिल्ला कर कहो, क्योंकि लोग बहरे हैं। तुम जब बहुत चिल्ला कर कहोगे तभी शायद उनकी नींद में कोई खबर पहुंच पाए।
कहो! लेकिन होश बनाए रखना कि यह कहना ही सब कुछ नहीं है। नहीं तो तुम्हारी प्रज्ञा खो जाए और तुम कहने में ही लीन हो जाओ; तब तुम एक पंडित हो जाओगे, एक उपदेशक, लेकिन ज्ञानी नहीं। इसलिए बारीक और नाजुक है रास्ता। होश रखना है कि मेरी प्रज्ञा बढ़ती रहे, और होश रखना है कि मेरी करुणा भी साथ-साथ आरोपित होती रहे। ध्यान और करुणा दोनों साथ-साथ बढ़ें; एक उनमें संतुलन बना रहे।
यह तुमने अभी से शुरू किया तो ही हो पाएगा। जरा भी देर हो जाने के बाद...
। क्योंकि हर चीज का मौसम है। और हर चीज का वक्त है, जब बीज बोए जा सकते हैं। वक्त के गुजर जाने पर फिर बीज नहीं बोए जा सकते। अगर तुम ध्यान में बहुत गहरे चले गए तो फिर बीज न बो सकोगे करुणा के। क्योंकि ध्यान का अर्थ है अपने में डूबना, और करुणा का अर्थ है दूसरे में थोड़ा रस कायम रखना। ध्यान का आखिरी अर्थ है कि दूसरा बचे ही न, तुम्हीं बचे; कोई न रहा, सब खो गया, तुम्हारा होना ही बचा। तो ध्यान अगर बहुत गहन हो जाए तो करुणा का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि कोई दूसरा बचा ही नहीं। दूसरे का चिंतन भी नहीं उठता; विचार की आखिरी लकीर भी खो जाती है। इसके पहले कि दूसरा बिल्कुल खो जाए, तुम दूसरे से थोड़े से सेतु बना रखना।
वे सेतु माया के न हों। क्योंकि अगर वे माया के हों, मोह के हों, क्रोध
के हों, मैत्री के, शत्रुता के हों, तो फिर तुम भीतर न जा सकोगे। सिर्फ एक ही संबंध है करुणा का जो तुम्हारे भीतर जाने में बाधा न बनेगा। इसलिए उसको हम आखिरी बंधन कहते हैं और स्वर्ण का बंधन कहते हैं। करुणा का एकमात्र सेतु है जो तुम्हें दूसरे से भी जोड़े रखेगा और अपने से तोड़ने का कारण नहीं बनेगा। इसलिए करुणा की महिमा अपार है। उसमें क्रोध का गुण है उतना जितना कि दूसरे से संबंध है और उसमें अक्रोध का गुण है उतना जितना कि दूसरे को शुभ

हो, मंगल हो, ऐसी भावना का संबंध है। करुणा--क्रोध और अक्रोध के मध्य में है। करुणा बड़ा गहरा संतुलन है। करुणा में मोह जैसा भाव है, क्योंकि दूसरे का हित हो जाए। लेकिन करुणा मोह जैसी नहीं है, क्योंकि दूसरे का हित हो ही जाए ऐसा आग्रह नहीं है। हो जाए, ऐसी भावना है। हो ही जाए, ऐसा आग्रह नहीं है। अगर हो जाए तो ठीक, अगर न हो तो कोई पीड़ा न होगी। एक उदासीनता भी है, एक रस भी है। करुणा दोनों के मध्य में है।
तो ध्यान अगर गहरा होता जाए तो तुम उदासीन हो जाओगे; फिर करुणा पैदा करना मुश्किल हो जाएगा। ध्यान के साथ-साथ करुणा को जगाए चलो। ताकि आखिरी घड़ी में तुम्हारा अनुभव सिर्फ तुम्हारा न हो, आखिरी घड़ी में तुम्हारे आनंद का उत्सव तुम्हारा ही न हो, और भी उसमें भागीदार हो सकें, दूसरे लोग भी साझीदार हो सकें।
इसलिए शुरू करो। और कहता हूं मैं भी तुमसे, घरों के छप्परों पर चढ़ कर, क्योंकि लोग बहरे हैं, तुम जब बहुत जोर से चिल्लाओगे तभी शायद वे सुनें। उनकी नींद हिलानी पड़ेगी। वे नाराज भी होंगे, क्योंकि किसी की भी नींद तोड़ो तो स्वाभाविक है नाराजगी। तो तुम उससे--उनकी नाराजगी से, उनकी अवहेलना से, उनकी उपेक्षा से--निराश मत हो जाना, हताश मत हो जाना। तुम कहे ही चले जाना। तो तुम हजार को कहोगे तो शायद दस सुन सकेंगे। दस सुनेंगे तो शायद एक चल सकेगा। इसलिए तुम बीज जितने दूर-दूर तक फेंको, फेंकना। क्योंकि हजार बीज फेंकोगे तो शायद एक बीज फल तक पहुंच सकेगा।
और यह मत सोचो कि जब तुम पूरे हो जाओगे तब यह कर सकोगे। तब तुम न कर सकोगे। और यह भी याद रखो हर वक्त कि जब तुम दूसरे से कह रहे हो तब उस कहने में इतने मत भूल जाना कि तुम्हारा ध्यान, तुम्हारा आत्म-भाव, तुम्हारी आत्म-स्मृति खो जाए। दूसरे की सहायता करना स्वयं को खोए बिना।
अगर ऐसा लगे कि दूसरे की सहायता करने में स्वयं अनिवार्यतः खोता है तो फिर दूसरे की फिकर छोड़ देना। क्योंकि अंतिम बात, महत्वपूर्ण बात, आखिरी चुनने की बात तो तुम्हारे जीवन का ज्योतिर्मय हो जाना है। अगर साथ-साथ, लगे हाथ, किसी दूसरे पर भी रोशनी पड़ जाए तो ठीक, लेकिन उसे लक्ष्य मत बना लेना।

चौथा प्रश्नः कितने वर्षों से मन एक होने की बात सीखता है, पर वह एक देखता नहीं। अच्छी लगती हैं ज्ञान की बातें, पर मन करने को राजी नहीं होता। इतने वर्ष चले गए सुनने में, पर परिवर्तन नहीं आता। वही द्वेष और अलग-अलग रूप दिखाई देते हैं। हमें भी वह दृष्टि दें जैसा आप देखते हैं, जिससे आप देखते हैं।

अड़चन परिवर्तन की आकांक्षा में है। क्या जरूरत है परिवर्तन की? द्वेष
है तो है। उस पर इतना ध्यान क्यों दे रहे हैं? उससे लड़ने की जरूरत क्या है? माना कि गुलाब के पौधे में कांटे हैं। पर उन कांटों पर इतना ध्यान देने की जरूरत क्या है? फूल का ध्यान करें। और कांटे भी फूल की रक्षा के लिए हैं, कोई दुश्मन नहीं हैं। शुभ का फूल खिलाएं; अशुभ के कांटों की बहुत चिंता न करें। हैं तो हैं। राजी हो जाएं।
तो परिवर्तन आएगा। परिवर्तन चाहने से कभी परिवर्तन नहीं आता। परिवर्तन की चाह ही छोड़ दें। वह शिकायत शुभ नहीं, शोभा नहीं देती। प्रार्थना का भाव रखें, परिवर्तन का नहीं। परिवर्तन भी तो स्वयं को सजाने की ही आकांक्षा है--कि द्वेष न हो, कि क्रोध न हो, कि घृणा न हो। चरित्र हो चमकता हुआ, ज्योतिर्मय चरित्र हो। करुणा हो, अहिंसा हो, वीतरागता हो। यह आभूषणों की चाह भी क्यों? यह भी तो सजावट है। यह भी तोशृंगार की ही आकांक्षा है। यही चाह बाधा है। परिवर्तन की चाह ही परिवर्तन में बाधा है। मत चाहें।
तुमसे यह कहने को कोई दूसरा न मिलेगा। तुम जहां भी जाओगे लोग तुम्हें सिखाएंगे परिवर्तित होओ। छोड़ो क्रोध, यह बुरा है। छोड़ो काम, यह बुरा है। तुम जहां भी जाओगे लोग तुम्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित करेंगे। और तुम परिवर्तित न हो सकोगे। और मैं तुम्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित नहीं करता;

क्योंकि मैं जानता हूं कि वही एकमात्र उपाय है परिवर्तन का। तुम सिर्फ राजी हो जाओ।
क्या करोगे वीतरागता का? राग है तो राग सही। जो उसकी मर्जी। परमात्मा तुमसे ज्यादा जानता है, इस भाव को गहन करो। और जो दे उसमें राजी रहो। चोर बनाए तो चोर, और बेईमान बनाए तो बेईमान, उसकी मर्जी। नाटक से ज्यादा मत समझो।
एक आदमी रावण बनता है नाटक में। तो क्या रोता है, चिल्लाता है कि मुझे राम बना दो? कि जाकर हाथ-पैर जोड़ता है कि मैं राम बनूंगा, रावण नहीं बन सकता? नहीं, इसकी कोई चिंता ही नहीं करता। क्योंकि सवाल रावण और राम बनने का नहीं है, सवाल अभिनय की कुशलता का है। रावण भी राम से बेहतर अभिनेता हो सकता है। तो प्रतिस्पर्धा वहां है। राम और रावण से क्या लेना-देना है? दोनों ही नाटक के पात्र हैं। दोनों ही कथानक के हिस्से हैं। बुरा भी कथा का हिस्सा है, भला भी कथा का हिस्सा है।
तुम्हें जो बना दिया, तुम्हें जो पात्र मिल गया पूरा करने को, उसे समग्रता से पूरा कर दो। वहीं से तुम्हारी धन्यता शुरू होगी। तुम कथा को बदलने का आग्रह मत करो। और तुम यह मत कहो कि मुझे यह बनाओ, मुझे वह बनाओ। मैं तो राम होना चाहता था; रावण बना दिया! तुम थोड़ा सोचो कि सभी राम होना चाहें-- रामलीला खत्म। रामलीला चलती इसीलिए है, चल सकती इसीलिए है, कि कोई रावण भी बनने को राजी है।
इस जगत को एक बहुत बड़ा नाट्यघर समझो। इस पृथ्वी को समझो एक बड़ा मंच। जीवन को अभिनय से ज्यादा मत समझो। जो उसने दिया है उसे पूरा कर दो। उसे पूरे मन से पूरा कर दो। और तुम पाओगे, परिवर्तन हो गया। मैं तुमसे कहता हूं कि अगर रावण अपने पात्र को, अपने अभिनय को पूरा का पूरा कर दे तो राम हो गया। क्योंकि परिपूर्ण कुछ भी कर देने में परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है। वह परिपूर्ण है। हम जब भी कुछ जीवन के हिस्से को पूरा का पूरा भाव से कर देते हैं, हम उससे जुड़ जाते हैं। और अगर राम भी बेमन से अभिनय कर रहे हों कि उन्हें कुछ रस न आ रहा हो, या उनकी भी कुछ इच्छा हो कि क्या जरूरत मुझे वनवास भेजने की चौदह वर्ष, यह मेरी सीता क्यों चुराई जाए, या इस तरह की बातें हों, तो राम भी रावण ही रह जाएंगे।
तो मेरी बात को ठीक से समझ लेना। अगर रावण भी पूरा कर दे कृत्य, बिना अपने को बीच में लाए, तो राम हो जाता है। अगर राम भी अपने कृत्य में ना-नुच करें, शिकायत करें, कहें कि थोड़ा यहां बदल दो कहानी को, तो राम भी राम होने से चूक जाते हैं। राम को जो दिया गया है रूप, जो पात्र होने का अभिनय मिला है, उसमें कोई मूल्य नहीं है। कैसे तुम उस पात्रता को निभाते हो, कितनी परिपूर्णता से, कितनी समग्रता से तुम निभाते हो, उस पर ही सब निर्भर है। वही गुणधर्म आना चाहिए।
तो मैं तुमसे कहूंगा, तुम राजी हो जाओ। परिवर्तन की जरूरत क्या है? तुम जैसे हो इतने भले हो, ऐसे सुंदर, तुम्हारी महिमा ऐसी है कि अब और क्या चाहिए? तुम्हें जो मिला है उसे तुम पूरा कर दो। दुकानदार हो, दुकानदार सही; संन्यासी की आकांक्षा मत करो। दुकान पर ही संन्यासी हो जाओगे। नौकर हो, नौकर; मालिक की आकांक्षा मत करो। अगर नौकर का भाव तुमने पूरा का पूरा प्रकट कर दिया तो तुम मालिक हो जाओगे। जंजीरें पड़ी रहें तुम्हारे हाथों पर, गुलामी तुम्हारा अभिनय हो, लेकिन अगर तुमने पूरे भाव से, समग्रता से कर दिया और तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सके बिना किसी शिकायत के, तो तुम्हारी स्वतंत्रता अबाध है। कोई जंजीर तुम्हें रोक नहीं सकती; तुम्हारी मालकियत असीम है।
तो मैं तुम्हें स्क्रिप्ट बदलने को नहीं कहता कि तुम कथानक बदलो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम स्वीकार करो। स्वीकार मेरा सूत्र है। और लाओत्से की भी सारी जीवन-दृष्टि स्वीकार की है।
और तुम चाहते हो, मेरी जीवन-दृष्टि तुम्हारी कैसे हो जाए।
यही रास्ता है। मैंने सब स्वीकार कर लिया है। मैं जैसा हूं, मैंने स्वीकार कर लिया है। फिर कोई कमी न रही। फिर सब भराव-भराव हो गया। फिर कोई रिक्तता न रही, सब पूर्णता हो गई। मैंने अपने में जरा भी फर्क नहीं किया है।

इस राज को तुम ठीक से समझ लो। मैंने इंच भर भी कुछ अपने में कभी बदला नहीं है। जैसा था, मैं उससे राजी रहा हूं। उसी राजीपन से सब कुछ हो गया है।
अगर तुम मेरी जैसी जीवन-दृष्टि चाहते हो तो तुम्हें राजी होना पड़े। जो राजी है उसी को मैं आस्तिक कहता हूं। जो ना-राजी है उसी को मैं नास्तिक कहता हूं। ईश्वर को मानने न मानने का कोई सवाल आस्तिकता-नास्तिकता का नहीं है। आस्तिक वह है जो सारे जीवन को हां कह सकता है। और नास्तिक वह है जो कहता है-- नहीं। नहीं में नास्तिकता है, हां में आस्तिकता है।

आखिरी सवालः लाओत्से कहते हैं कि संत ही किसी देश का शासन करने की योग्यता रखते हैं। लेकिन कथा है कि उनके ज्ञानी शिष्य च्वांग्त्से ने उन्हें देश का प्रधानमंत्री बनाने का चीनी सम्राट का प्रस्ताव ठुकरा दिया था। लाओत्से के वचन की दृष्टि से तो सम्राट का प्रस्ताव सही है और च्वांग्त्से की अस्वीकृति गलत मालूम होती है, जब कि सब संत च्वांग्त्से के कृत्य की सराहना करने से नहीं थकते। संत के वचन और कृत्य के इस विरोधाभास पर प्रकाश डालें।

कथा है कि लाओत्से का शिष्य च्वांग्त्से नदी के किनारे बैठा मछली मार रहा था। उसके ज्ञान की खबर लोक-लोकांतर में पहुंच गई थी। सम्राट ने अपने वजीर भेजे कि वे च्वांग्त्से को पकड़ लाएं; जहां भी हो, खोज लाएं; उसे प्रधानमंत्री बनाना है।
सम्राट निश्चित लाओत्से के वचन पढ़ता रहा होगा। और संत शासक हो, यह बात उसे जंची होगी। अन्यथा च्वांग्त्से की कौन तलाश करता? लाओत्से तो चल बसा था इस संसार से, च्वांग्त्से मौजूद था। और ठीक उसी हैसियत का आदमी था। इंच भर फर्क नहीं। च्वांग्त्से यानी लाओत्से। ठीक वही भाव-दशा थी।
वजीर खोजते हुए आए। पहले तो बड़ी मुश्किल पता लगाने की हुई कि च्वांग्त्से कहां है। क्योंकि च्वांग्त्से तो आवारा फकीर था। आज इस गांव, कल दूसरे गांव। क्योंकि लाओत्से ने उससे कहा था, ज्यादा देर एक जगह मत रुकना। क्योंकि लोग जब जान लेते हैं, प्रसिद्धि फैल जाती है। लोग जब मानने लगते हैं कि तुम कुछ बहुत विशिष्ट हो, उसके पहले वहां से हट जाना। जहां लोग तुम्हें न जानते हों वहीं रहना। क्योंकि वहीं तुम साधारण रह सकोगे। तो वह एक गांव से दूसरे गांव चलता रहता था। बामुश्किल तो वजीर पता लगा पाए। फिर उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि च्वांग्त्से जैसा आदमी और मछली मारता मिलेगा।
लाओत्से के शिष्य बड़े अनूठे हैं, बड़े असाधारण। क्योंकि उन्होंने एक बड़ी अदभुत कला सीखी है, वह है साधारण होने की कला। वे साधारण आदमी से भिन्न कुछ भी नहीं करते। फिर साधारण आदमी मछली मारता तो च्वांग्त्से भी मछली मारता। कहीं अपने को विशिष्ट करके खड़ा नहीं करता। और यह बड़ी गहरी बात है। कभी भी यह नहीं कहता कि यह बुरा है, वह भला है। जैसा साधारण आदमी जीता है, वैसा जीता है। साधारणता ही उसकी साधना है।
वजीर पहुंचे और उन्होंने च्वांग्त्से को कहा कि हम निमंत्रण लाए हैं सम्राट का, प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारे भाग्य कि प्रधानमंत्री बनाने को सम्राट राजी है। चलो राजधानी!
च्वांग्त्से वैसे ही बैठा रहा अपनी बंसी हाथ में लिए। उसने कहा कि मैंने सुना है--उसके चेहरे पर कोई भाव-परिवर्तन न हुआ, मछली के मारने का काम जारी रहा--उसने कहा, मैंने सुना है कि राजमहल में एक कछुआ है तीन हजार साल पुराना। और उस कछुए की पूजा की जाती है, और विशेष पर्वों पर उसे निकाला जाता है स्वर्ण के रथों में। और खुद सम्राट उसके चरणों में झुकता है। और वह सोने के पात्र में रखा गया है। और उसके ऊपर हीरे-जवाहरात जड़े हुए हैं। लेकिन मैं तुमसे यह पूछता हूं कि देखो, वह नदी के किनारे पर एक कछुआ मिट्टी के गड्ढे में कीचड़ में अपनी पूंछ हिला रहा है। अगर तुम इस कछुए से कहो कि तू राजमहल का सोने की पेटी में बंद कछुआ होना चाहेगा या तू मिट्टी में अपनी पूंछ हिलाना ही पसंद करता है, तो यह कछुआ क्या कहेगा?

वजीरों ने कहा कि साफ है कि कछुआ कहेगा कि मैं मिट्टी में ही अपनी पूंछ हिलाऊंगा। क्योंकि जीवित हूं।
तो च्वांग्त्से ने कहा, यही मेरी भी खबर सम्राट से कह देना कि मैं भी मिट्टी में ही पूंछ हिलाना पसंद करता हूं। कम से कम जीवित हूं।
यह कथा है। तो प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि लाओत्से कहता है कि शासक संत को होना चाहिए, और यह मौका सम्राट ने खुद दिया था च्वांग्त्से को, तो अपने गुरु का वचन मान कर उसे शासक हो जाना था। और एक मौका था कि वह दिखाता कि संत का शासन कैसे होता है। तो इसमें तो ऐसा लगता है कि च्वांग्त्से ने अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया इनकार करके। सम्राट ही लाओत्से के ज्यादा अनुकूल मालूम पड़ता है बजाय च्वांग्त्से के।
नहीं! च्वांग्त्से बिल्कुल अनुकूल है। बहुत सी बातें समझनी जरूरी हैं।
पहली बात, सम्राट प्रधानमंत्री बनाना चाहता था, शासक नहीं। अगर सम्राट
ने ठीक से लाओत्से को समझा होता तो वह कहता कि तुम हो जाओ सम्राट, मैं तुम्हारा सेवक। च्वांग्त्से सेवक ही रहता, शासक नहीं होने वाला था। प्रधानमंत्री नौकर है। आज लिया, कल अलग किया। कोई शासक होने वाला नहीं था। वह गुलाम ही रहता। सम्राट ही उसे चलाता। और जैसा सम्राट कहता वैसा उसे करना पड़ता। और कोई भी ज्ञानी पुरुष अज्ञानी पुरुष की आज्ञाएं मान कर चलने को राजी नहीं हो सकता; क्योंकि वह बात ही बेहूदी है। अगर सम्राट बनाने का आमंत्रण होता तो कथा दूसरी होती। निमंत्रण सम्राट होने का नहीं था। वह सम्राट समझ नहीं पाया। लाओत्से को पढ़ता होगा, समझ नहीं पाया। प्रधानमंत्री बनाने के लिए बुलाने की बात ही गलत थी।
फिर दूसरी बात। लाओत्से कहता है, संत वही है जिसके मन में शासक होने की इच्छा नहीं है।
अब जरा हम गहरे जल में उतरते हैं। क्योंकि यह विरोधाभास हो गया।
लाओत्से कहता है, संत वही है जिसकी शासक की कोई इच्छा नहीं है, शासक होने की। दूसरों के ऊपर मालकियत करने की जिसकी कोई आकांक्षा नहीं, वही संत है।
अगर लाओत्से की बात ठीक है तो च्वांग्त्से ने इनकार करके ठीक किया।
इससे उसने जाहिर किया कि उसके मन में शासक होने की कोई इच्छा नहीं है। और शासकों को वह मुर्दे समझता है, मरे हुए, चाहे वे सिंहासनों पर बैठे हों। उनसे बेहतर तो वह समझता है एक कछुए को जो कीचड़ में पूंछ हिला रहा है और मस्त है, जो अपने स्वभाव में जी रहा है और मस्त है। च्वांग्त्से ने खबर दी कि वह पहुंच चुका है संतत्व को; कोई आकांक्षा नहीं है। कोई दूसरा होता तो फेंक कर बंसी उठ कर खड़ा हो जाता कि जल्दी करो, कहां चलना है!
शासक होने की कोई आकांक्षा नहीं है, यह संत का लक्षण है। सम्राट अगर सच में ही लाओत्से को समझता था, तो च्वांग्त्से को इतनी आसानी से छोड़ नहीं देना था। क्योंकि च्वांग्त्से ने तो सिर्फ खबर दी थी अपनी भाव-दशा की। सम्राट को भागा हुआ जाना था इसके चरणों में, गिर पड़ना था चरणों में। तो कथा दूसरी होती। लेकिन च्वांग्त्से ने इतना कहा, फिर कोई पता नहीं कि कहानी का क्या हुआ। फिर दुबारा कभी सम्राट के आदमी न आए। च्वांग्त्से जैसे आदमी को निमंत्रण करना हो तो आदमियों को नहीं भेजना चाहिए निमंत्रण पर। सम्राट की अकड़ है वह। च्वांग्त्से जैसी महाप्रतिभा को लाना हो तो सम्राट को खुद आना था। और यह खबर पाकर तो आना ही था।
अब तुम समझ लो बात को। अगर च्वांग्त्से राजी हो जाता तो वह संत ही न था। सम्राट राजी हो गया उसके इनकार को, वह लाओत्से को समझा ही न था। तब कथा बिल्कुल दूसरी होती। और संत को बुलाने के ये ढंग नहीं हैं। क्योंकि संत का अर्थ है परम स्वतंत्रता। यही वह कह रहा है कि एक कछुआ परम स्वतंत्रता में भी ठीक है; अपना स्वभाव तो है। तुम मुझे वजीर बनाना चाहते हो, बड़ा वजीर सही, लेकिन हो तो जाऊंगा गुलाम। तुम चलाने लगोगे मुझे, तुम बताने लगोगे क्या करना उचित है, क्या करना उचित नहीं है। तुम्हारे रीति-नियम मुझे चलाने लगेंगे। और मेरा उपयोग इतना ही हो सकता है कि मेरी जीवन-चेतना तुम्हें चलाए।

यह नहीं होने वाला था। इसलिए दुबारा सम्राट ने फिकर न की। इनकार हो गया, बात खत्म हो गई। इनकार से तो समझना था कि यह आदमी सच में ही बहुमूल्य है। स्वीकार कर लेता तो बेकार था। अगर लाओत्से की बात मान कर च्वांग्त्से चला जाता तो बेकार था। तुम्हें एक कहानी कहूं, उससे तुम्हें समझ में आ सके। एक झेन फकीर मर रहा था। उसने अपने एक शिष्य को पास बुलाया। उसके हजारों शिष्य थे। और उसने इस शिष्य को कहा कि देखो, मैं मर रहा हूं। और मेरे गुरु ने मरते वक्त मुझे यह शास्त्र दिया था जिसे मैंने जीवन भर सम्हाल कर रखा है। और तुम भी जानते हो कि यह हमेशा मेरे तकिए के पास रखा रहता है। इसे मैंने अपने प्राणों की संपदा समझी। इसमें हमारे प्राचीन गुरुओं के सब अनुभव लिखे हैं। और इसमें मैंने मेरे अनुभव भी संयुक्त कर दिए हैं। इसे तुम सम्हाल कर रखना। यह बहुमूल्य थाती है; खो न जाए!
शिष्य ने कहा, व्यर्थ की बातचीत न करो। जो मुझे पाना था वह मैंने बिना शास्त्र के पा लिया है। इस कचरे को तुम्हीं रखो। शिष्य ने ऐसा कहा!
गुरु ने कहा, यह अभद्रता है। और जब मैं तुम्हें आज्ञा दे रहा हूं, मरता हुआ गुरु, तो तुम्हें इस तरह की बात शोभा नहीं देती। शास्त्र को सम्हालो! क्योंकि मैं मर रहा हूं, अब कौन सम्हालेगा इसको?
शिष्य ने हाथ में शास्त्र ले लिया; पास में जलती थी आग, सर्द रात थी, उस
आग में फेंक दिया।
गुरु प्रसन्न हुआ, आनंदित हुआ। और उसने कहा कि अगर तुम सम्हाल कर रख लेते तो मैं समझता सब खो गया, मेरी मेहनत बेकार गई। और अब मैं तुम्हें बता देता हूं, उस शास्त्र में कुछ भी न था, वह कोरी किताब है। मेरे गुरु ने मुझे धोखा दिया; उनके गुरु ने उन्हें धोखा दिया; मैं तुझे देने की कोशिश कर रहा था। उसमें कुछ है नहीं। किसी ने कुछ लिखा नहीं है। क्योंकि एक ही तो अनुभव हैः आखिरी कोरापन। जिस दिन तुम कोरी किताब हो गए उस दिन तुम शास्त्र हो गए। और तूने आज भला किया कि तूने आग में फेंक दिया। अगर तू जरा भी चूक जाता और सम्हाल कर रख लेता तो मैं बड़ा दुखी मरता। अब मैं तेरे साथ अपना शास्त्र छोड़े जा रहा हूं। तूने ठीक से बचा लिया। जो बचाने योग्य था वह बचा लिया; जो फेंकने योग्य था वह फेंक दिया।
लाओत्से जरूर प्रसन्न हुआ होगा, उसकी आत्मा आनंदित हुई होगी, जब च्वांग्त्से ने कह दिया कि जाओ, भाग जाओ, मैं भी इस कछुए की भांति अपने स्वभाव, अपनी साधारणता में मस्त हूं। तुम्हारे राजमहलों में मरे हुए मुर्दे रहते हैं, जिंदों का वहां वास नहीं। तुम किसी मरे हुए आदमी को खोज लो। मेरी वहां क्या जरूरत है?
नहीं, च्वांग्त्से लाओत्से के विपरीत नहीं जा रहा है, ठीक अनुसरण कर रहा है। अगर चला जाता तो लाओत्से की आत्मा रोती।
संतत्व का शासन साधारण शासन जैसा शासन नहीं है। वह ऊपर से आरोपित नहीं किया जाता। कोई राजा किसी संत को बिठाल दे वजीर बना कर तो कोई संत का शासन नहीं हो जाता। शासन तो राजा का ही रहेगा। वह संत की महिमा का भी उपयोग कर लेगा अपनी राजनीति में।
संत का शासन तो शासित के हृदय से आता है; कोई उसे आरोपित नहीं कर सकता। जिन्हें संत से शासित होना है वे स्वयं ही दूर-दूर की यात्रा करके चले आते हैं। वह शासन अंतर्हृदय का है। वह समर्पण से फलित होता है। तुम खुद ही आकर कह देते हो कि अब मुझे शासन दो। तुम खुद ही अपने को समर्पित कर देते हो। तब च्वांग्त्से इनकार नहीं करता। तब वह तुम्हें स्वीकार कर लेता है।
जिस दिन तुम उसके सामने झुक जाते हो, उसी दिन--उसी दिन उसका होना, उसका अस्तित्व तुम्हारे रूपांतरण में संलग्न हो जाता है। वह कोई कृत्य नहीं है संत के लिए कि वह कुछ करके तुम्हारा रूपांतरण करता है। उसका होना ही पर्याप्त है। तुम झुको भर, गंगा तो बह ही रही है। तुम जरा झुको भर और प्यास को बुझा लो।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
सौवां प्रवचन

कृष्ण में राम-रावण आलिंगन में हैं

Chapter 60

Ruling A Big Country

Rule a big country as you would fry small fish.
Who rules the world in accord with Tao,
shall find that the spirits lose their power.
It is not that the spirits lose their power,
But that they cease to do people harm.
It is not (only) that they cease to do people harm,
The Sage (himself) also does no harm to the people.
When both do not do each other harm,
The original character is restored.

अध्याय 60

बड़े देश की हुकूमत

एक बड़े देश की हुकूमत ऐसे करो जैसे कि तुम छोटी मछली भूंजते हो। जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है,
उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं।
यह नहीं कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो देती हैं,
लेकिन वे लोगों को कष्ट देना बंद कर देती हैं।
इतना ही नहीं कि वे लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती हैं,
संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।
जब दोनों एक-दूसरे की हानि नहीं करते,
तब मौलिक चरित्र पुनःस्थापित होता है।

कुछ बातें सूत्र के पूर्व।
एक ऐसा शुभ है जो अशुभ के विपरीत साधा जाता है। जैसे कोई करुणा को साधे क्रोध के विरोध में, अहिंसा को साधे हिंसा के विरोध में, सत्य को साधे असत्य के विरोध में। जिसका विरोध होगा, वह भी भीतर दबा हुआ सदा मौजूद रहेगा। विरोध से कोई छुटकारा नहीं है। विरोध से बड़ी नासमझी नहीं है। क्योंकि विरोध का अर्थ है, मैं क्रोधी हूं और अक्रोध को मैंने अगर आदर्श बना लिया, तो अक्रोध को अपने आचरण में ऊपर से थोपूंगा, क्रोध को भीतर-भीतर दबाए जाऊंगा। ऐसी घड़ी भी आ जाएगी कि कोई भी दूसरा पहचान न सके कि मैं क्रोधी हूं। लेकिन मैं अपने सामने तो क्रोधी ही रहूंगा। यह भी हो सकता है कि मेरे व्यवहार में क्रोध की झलक भी न आए, लेकिन मेरी अंतरात्मा में क्रोध ही क्रोध उबलेगा।
दमन से कुछ मिटाया नहीं जाता; दमन से तो मन और भर जाता है। इसलिए जो ब्रह्मचर्य को साधेगा कामवासना के विरोध में, जितनी कामवासना उसके मन में होगी उतनी तुम कामी से कामी व्यक्ति के भीतर न पाओगे। तुम्हारे साधु जितने क्रोधी हैं उतने तुम साधारणजनों को क्रोधी न पाओगे। और तुम्हारे साधुओं की आंखों से जैसी हिंसा झलकेगी वैसी तुम सैनिक की आंखों में भी न पाओगे जो कि हिंसा का ही व्यवसाय करता है।
अक्सर तो उलटा देखने में आता है। अगर तुम गौर से देखोगे तो शिकारी को तुम बड़ा सीधा-सादा पाओगे, जो कि खेल में हिंसा कर रहा है, जिसने हिंसा को कोई मूल्य ही नहीं दिया है, जो हिंसा में मजा ले रहा है। शिकारी को तुम सीधा-

सादा पाओगे। शिकारियों के संबंध में सभी लोगों का अनुभव है कि वे बड़े मिलनसार होते हैं। अगर तुम कारागृह में जाओ, अपराधियों को देखो, तो उनकी आंखों में तुम्हें बच्चों जैसी झलक दिखाई पड़ेगी। अपराधी बहुत जटिल नहीं होता, बहुत साफ-सुथरा होता है। शायद इसीलिए अपराधी हो गया कि तुम जैसा चालाक नहीं है। शायद इसीलिए अपराध में पड़ गया कि चालाक समाज की चालाकी न सीख पाया। चालाक भी अपराध करते हैं, लेकिन उनका अपराध व्यवस्थित होता है, उनके अपराध के पीछे कानून का सहारा होता है। सीधा-सादा आदमी अपराध करता है, तत्क्षण फंस जाता है।
अपराधी की आंखों में भी तुम्हें बच्चों जैसी झलक मिलेगी। लेकिन वैसी झलक तुम्हारे मंदिरों में बैठे हुए साधुओं में न मिलेगी। साधु बहुत जटिल होगा।
अपराधी सरल हो सकता है। क्योंकि अपराधी ने कुछ दबाया नहीं है। अपराधी बुरा है, दुर्जन है, लेकिन सरल है। साधु सज्जन है, किसी की बुराई नहीं करता, लेकिन बड़ा कांप्लेक्स और बड़ा जटिल है। उसकी सरलता तो ऊपर से थोपी हुई है। और भीतर ठीक विपरीत, भीतर ठीक उससे उलटा आदमी छिपा है। इसलिए उसका प्रत्येक कृत्य दोहरा है। और जहां दोहराव है वहीं जटिलता खड़ी हो जाती है। साधु चालाक है। सीधे-सादे आदमी को तो साधु होना मुश्किल है। क्योंकि वह हजार दूसरी झंझटों में पड़ जाएगा सीधा-सादा आदमी। और इतनी बड़ी चालाकी नहीं कर सकता, इतना बड़ा पाखंड नहीं कर सकता।
जीसस अपने शिष्यों से बार-बार कहे हैं कि जब तक तुम्हारी नैतिकता तथाकथित सज्जनों से ऊंची न होगी तब तक तुम अपने को नैतिक मत समझना। जब तक तुम्हारा बोध पंडित के बोध से ज्यादा न हो तब तक तुम उसे ज्ञान मत समझना। और अगर तुम्हारी सच्चरित्रता पाखंडियों जैसी ही हो तो उसका दो कौड़ी मूल्य है; तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न पा सकोगे।
क्या फर्क है पाखंडी की नैतिकता में?
पाखंडी की नैतिकता ऊपर-ऊपर है; वह केवल आचरण मात्र है। उसके पीछे अंतस
का हाथ नहीं है। अंतस विपरीत खड़ा है। इसलिए वह कर कुछ रहा है, है कुछ और; होने में और करने में बड़ा फासला है। एक बात।
दूसरी बात ध्यान रखनी चाहिए कि जो व्यक्ति भी जीवन को अपने ही विपरीत साधेगा वह आत्म-हिंसा भी करेगा और पर-हिंसा भी करेगा। वह अपने को भी जबरदस्ती तोड़ेगा-मरोड़ेगा। और जो अपने को तोड़ेगा-मरोड़ेगा वह दूसरे को भी छोड़ नहीं सकता। इसलिए तथाकथित साधु अपने शिष्यों के साथ हजार तरह की हिंसा करेंगे। वह हिंसा तुम्हें दिखाई भी न पड़ेगी, क्योंकि वह शिष्यों के हित में ही करेंगे।
तुम्हें समझ में आ सके इसलिए मैं गांधी का उदाहरण दूं। क्योंकि तुम गांधी से ज्यादा सज्जन आदमी न पा सकोगे इस सदी में। अति सज्जन हैं वे। लेकिन ध्यान रखना, सज्जन और संत का अंतर। उनकी सज्जनता बड़ी ऊंची है, लेकिन उसके भीतर वह सब छिपा है जो उन्होंने आचरण में थोपा है। लाओत्से अगर गांधी को देखता तो हंसता। वह हंसा था कनफ्यूशियस पर, क्योंकि कनफ्यूशियस उस समय गांधी जैसे आदमी थे।
अफ्रीका के फीनिक्स आश्रम में गांधी कस्तूरबा से भी पाखाना साफ करवाना चाहते थे। बात में कुछ बुराई नहीं है। क्योंकि यही तो मजा है, सज्जन की बात तो बिल्कुल तर्कयुक्त और सीधी मालूम पड़ेगी। क्योंकि वे कहते, पाखाना तुम करते हो तो फेंकेगा कोई दूसरा क्यों? तो न केवल अपना, बल्कि पूरे आश्रम के दिन बंटे हुए थे कि एक-एक दिन लोग पाखाने को फेंकें। कस्तूरबा के लिए यह कठिन था। उसकी पूरी दीक्षा, संस्कार इसके अनुकूल न थे। वह इतने तक राजी थी कि मैं अपना पाखाना फेंक दूं। लेकिन मैं किसी दूसरे का फेंकने के लिए राजी नहीं हूं। एक रात यह कलह इतनी बढ़ गई, क्योंकि गांधी कहते कि तुम दूसरे को दूसरा क्यों समझती हो! पाखाना फेंकना ही पड़ेगा। यह कलह इतनी बढ़ गई कि रात दो बजे गांधी ने कस्तूरबा का हाथ खींच कर आश्रम के बाहर निकाल दिया। कस्तूरबा गर्भवती थी, नौ महीने का गर्भ था। अंधेरी रात दो बजे उसे आश्रम के बाहर घसीट कर बाहर कर दिया।

इस सज्जनता में बड़ी हिंसा छिपी हुई मालूम पड़ती है। और तुम अपनी धारणा
को दूसरे पर थोपना क्यों चाहो? तुम्हारी धारणा अच्छी भी हो तो तुम्हारे लिए है। इससे क्रोध क्यों उठे? और जब भी कोई अपनी धारणा दूसरे पर आरोपित करना चाहता है तो वह एक बड़ी सूक्ष्म हिंसा कर रहा है।
तुम दूसरे के सामने निवेदन कर सकते हो, तुम अपना मनोभाव प्रकट कर सकते हो; मानना न मानना दूसरे की मर्जी है--चाहे वह दूसरा पत्नी ही क्यों न हो। पत्नी भी तुम्हारी गुलाम नहीं है। और पत्नी को भी अपने जीने के ढंग की स्वतंत्रता है। अगर वह तुमसे राजी नहीं है तो क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है। और क्रोध इस सीमा तक चला जाए, इस अति तक चला जाए, तो कठिनाई होती है।
लेकिन सज्जन हमेशा अति पर चला आएगा। सज्जन कभी मध्य में नहीं रह सकता। उसको अति पर जाना ही होगा। क्योंकि अगर वह मध्य में रहे तो खुद के भीतर जो दबा है वह बाहर आ जाएगा। यह मन की आंतरिक व्यवस्था है कि अगर तुम्हें किसी चीज को दबाना है तो तुम्हें बिल्कुल मतांध होकर दबाना पड़ेगा। अगर तुमने थोड़ी सी भी उदारता बरती तो तुम अपने को दबा न सकोगे। क्योंकि जब तुम दूसरे के साथ उदारता बरतोगे तो अपने साथ भी उदारता बरतोगे।
इस क्रोध में ऐसा लगता है कि भीतर तो कहीं गांधी को भी पाखाना फेंकने
का मन नहीं है, जबरदस्ती फेंक रहे हैं। और यह कस्तूरबा उपद्रव खड़ा कर रही है। कस्तूरबा के विरोध में गांधी का इतना क्रोधित हो जाना अपने ही भीतर दबे हुए मन के विरोध में क्रोधित होना है। और इसलिए पत्नी पर वे ज्यादा क्रुद्ध हुए होंगे, क्योंकि पत्नी बहुत निकट है। वह तुम्हारा अचेतन जैसा है; तुम्हारे बहुत करीब है।
गांधी के सभी बच्चे मुश्किल में जीए। गांधी का एक बेटा हरिदास तो मुसलमान हो गया, शराबी हो गया, जुआरी हो गया--गांधी के कारण। क्योंकि अतिशय हो गई हर बात। हरिदास चाहता था कि पढ़ने जाए, शिक्षित हो। लेकिन गांधी शिक्षा के विपरीत थे। वे कहते थे, यह शिक्षा तो बिगाड़ती है। तो बस आश्रम में ही पढ़ो-लिखो, जो भी पढ़-लिख सकते हो।
बाप को भी यह हक नहीं है बेटे के ऊपर अपनी धारणा को थोपने का। लेकिन सज्जन बाप दुष्ट होता है। सज्जन बाप यह देखता ही नहीं कि बेटे की भी कोई आकांक्षाएं हैं, अभिलाषाएं हैं। और वह स्वतंत्र है अपनी आकांक्षाओं- अभिलाषाओं में। अगर वह गलत भी है तो भी स्वतंत्र है।
फिर हरिदास को हर छोटी-छोटी चीज पर बाधा थी। आश्रम में खाने-पीने पर नियंत्रण था; मिठाई नहीं लाई जा सकती, शक्कर नहीं लाई जा सकती, चाय नहीं पी जा सकती, आइसक्रीम नहीं खाई जा सकती। कुछ भी नहीं किया जा सकता। छोटे बच्चे छोटे बच्चे हैं। चोरी की शुरुआत हो गई। तो हरिदास बाहर जाकर चोरी से चीजें खाने लगा। फिर यह चोरी पकड़ी जाने लगी। फिर हरिदास को इसके लिए दंड मिलने लगा। यह संघर्ष घना हो गया। एक ऐसी घड़ी आ गई जहां कि बेटे को बाप से बिल्कुल टूट जाना पड़ा। और प्रतिशोध में वह शराब पीने लगा। और आखिरी प्रतिशोध में वह मुसलमान हो गया।
जब गांधी को खबर मिली कि हरिदास मुसलमान हो गया और उसने अपना नाम अब्दुल्ला गांधी कर लिया तो उनको बड़ी चोट लगी। जब हरिदास को वापस खबर मिली कि गांधी को पता चला तो उनको चोट लगी तो वह बहुत हंसा। उसने कहा, चोट का क्या सवाल है? वे तो कहते हैं, हिंदू-मुसलमान सब एक ही हैं। मैं तो उनकी ही बात मान कर चल रहा हूं। इसमें चोट क्यों लगती है? और अगर चोट लगती है तो उनको खुद अपनी बात पर भरोसा नहीं है कि हिंदू-मुसलमान एक ही हैं। अगर सच में ही एक ही हैं तो क्या फर्क पड़ता है हिंदू रहे कि मुसलमान रहे!
गांधी कहते तो हैं कि हिंदू-मुसलमान एक ही हैं, लेकिन गांधी पक्के हिंदू हैं। इसलिए वे किसी और को धोखा दे पाएं, मुसलमान को धोखा नहीं दे पाए। गहरे में हिंदू हैं। गीता को माता कहते हैं, कुरान को तो माता या पिता नहीं कहते। और एक बड़ी चालाकी है बात में। कुरान में उन-उन चीजों की वे प्रशंसा करते हैं जिनका गीता से मेल है; कुरान के वे हिस्से काट डालते हैं जिनका गीता से मेल नहीं है। यह कौन सी प्रशंसा हुई? यह तो कुरान में भी गीता की ही प्रशंसा हुई। जहां कुरान गीता के विपरीत है वहीं सवाल है। ऐसे तो मुसलमान

भी गीता की प्रशंसा कर देता है। लेकिन उन्हीं हिस्सों की प्रशंसा करता है जो कुरान का ही अनुवाद मालूम पड़ते हैं; बाकी हिस्सों को छोड़ देता है। ऐसे तो जैन भी प्रशंसा कर देता है।
यह एक बहुत अनूठा प्रयोग हो। अगर जैनों से कहा जाए कि तुम सभी धर्मों में जो सार-धर्म है उसको संगृहीत करके बताओ; मुसलमानों से कहा जाए, हिंदुओं से, बौद्धों से। तो तुम पाओगे, वे जो सारभूत निकालेंगे वह सबका अलग-अलग होगा। क्योंकि जैन यह तो मानता ही है कि सत्य तो महावीर के पास है। अब यह हो सकता है कि उसकी प्रतिध्वनि कुरान में भी कहीं हो थोड़ी-बहुत। लेकिन प्रतिध्वनि! उतनी दूर तक हम कुरान की भी प्रशंसा करेंगे।
लेकिन पूरे कुरान की प्रशंसा गांधी के बस की बात नहीं है। हिंदू भीतर है। हिंदू को दबाया हुआ है। ऊपर से वे कहते हैं कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, पर गहरे में तो राम ही बैठा है। इसलिए मरते वक्त जब गोली लगी तो अल्लाह नहीं निकला। जब गोली लगी तो राम--हे राम--की आवाज निकली। जो गहरे में दबा था वही तो मरते वक्त निकलेगा। उस वक्त अल्लाह खो गया। उस वक्त बुद्ध-महावीर की कोई याद न आई। उस घड़ी में धोखा भी तो नहीं दिया जा सकता। मौत की घड़ी में, आदमी के भीतर जो छिपा है, वही तो प्रकट होगा। तो राम की आवाज निकली।
व्यक्ति अपने को ऊपर से दबा ले तो अपने साथ तो आत्म-हिंसा करता ही है, उसी अनुपात में, जो उसके पास हों, उनके साथ भी हिंसा करता है। इसलिए तुम गुरुओं को पाओगे कि वे शिष्यों को करीब-करीब मार डालते हैं। उनका काम ही यही है कि शिष्य को बिल्कुल मिटा दें। और जब शिष्य बिल्कुल नकली हो जाए, न के बराबर हो जाए, तभी वे समझते हैं कि आज्ञा का पालन हुआ, दीक्षा पूरी हुई। एक तो शुभ है जो हम अशुभ से लड़ कर निर्मित करते हैं; लाओत्से इसको शुभ नहीं कहता। एक दूसरा शुभ भी है जो हम अशुभ से लड़ कर नहीं, अशुभ से एक गहन सामंजस्य स्थापित करके उपलब्ध करते हैं। रात और दिन को हम लड़ाते नहीं। लड़ाने में भूल है; क्योंकि लड़ाई वहां हो नहीं रही है। रात और दिन एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं। फूल और कांटे को हम लड़ाते नहीं। लड़ाने में भ्रांति है; क्योंकि फूल और कांटे एक ही जीवन-धार से निकले हैं। शुभ और अशुभ को हम लड़ाते नहीं; शुभ और अशुभ को हम एक संगीत और सामंजस्य में बांधते हैं। एक ऐसी व्यवस्था लाते हैं जिसमें शुभ अशुभ को तोड़ता नहीं, बचाता है; जहां शुभ अशुभ के विपरीत नहीं होता, बल्कि अशुभ की ही पूर्णाहुति होता है; जहां अंधेरा और प्रकाश मिल जाते हैं; और जहां शैतान और ईश्वर में कोई विरोध नहीं रह जाता।
लाओत्से कहता है, जब ऐसे शुभ की दशा आ जाए तभी तुम समझना कि मौलिक स्वभाव उपलब्ध हुआ। क्योंकि स्वभाव में कोई संघर्ष नहीं हो सकता। और तभी तुम शांत हो सकोगे, उसके पहले नहीं। तब न तो तुम किसी को दबाओगे, न अपने को दबाओगे। तब तुमने सारे स्वरों को सजा लिया, और सारे स्वरों के बीच जो तनाव था वह विसर्जित कर दिया, और सारे स्वरों को एक लयबद्धता में बांध लिया।
एक पागल आदमी उन्हीं शब्दों को बोलता है जिनको एक संगीतज्ञ भी गीत में बांधता है। शब्दों में कोई भेद नहीं है; वही अल्फाबेट है। लेकिन पागल आदमी के बोलने में और संगीतज्ञ के गीत में क्या फर्क है? शब्द वही हैं; व्यवस्था का भेद है। संयोजन अलग-अलग है।
तुम भी वही शब्द बोलते हो और एक कवि भी वही शब्द बोलता है। भेद क्या है? तुम शब्दों के बीच संगीत को नहीं खोजते; कवि शब्दों के बीच संगीत को खोजता है। शब्दों को इस भांति जमाता है कि शब्द गौण हो जाते हैं, लयबद्धता प्रमुख हो जाती है। शब्द केवल सहारे हो जाते हैं लयबद्धता को प्रकट करने के। शब्द तो तुम्हें भूल भी जाएंगे, लेकिन लयबद्धता तुम्हारे भीतर गूंजती रह जाएगी। जितना बड़ा संगीतज्ञ हो उतनी ही बड़ी उसकी कला होती है--विरोध के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेने की।
विरोध के बीच अविरोध को खोज लेना ही परम ज्ञान है। और जहां-जहां तुम्हें विरोध दिखाई पड़े, अगर तुम लड़ने में पड़ गए तो तुम सदा अधूरे रहोगे। अगर तुम्हारे संतत्व में केवल शुभ ही रहा और अशुभ को तुमने काट डाला तो तुम्हारा संतत्व मुर्दा रहेगा, या बेस्वाद। उसमें नमक न होगा। अगर तुम्हारे संतत्व में तुम्हारे भीतर का शैतान समाविष्ट हो गया हो, अगर

तुम्हारे संतत्व ने शैतान का विरोध न किया हो, बल्कि शैतान को आत्मसात कर लिया हो, तुम्हारा दिन तुम्हारी रात को पी गया हो, और दोनों एक ही नदी के दो कूल-किनारे रह गए हों, जरा भी विरोध न हो, तभी तुम पूरे हो सकोगे। तभी तुम टोटल, समग्र हो सकोगे।
सज्जन अधूरा है; दुर्जन अधूरा है। संत पूरा है। पूरे का मतलब क्या है
कि वहां सज्जन और दुर्जन का जो भी दंश था वह खो गया, सज्जन-दुर्जन का जो विरोध था वह विलीन हो गया। वहां सज्जन और दुर्जन गले लग गए, आलिंगन में आबद्ध हो गए।
इसलिए हिंदुओं ने बड़ी गहरी खोज की है, और वह गहरी खोज यह है कि हमने परमात्मा में सब कुछ समाविष्ट किया है। ईसाई तो भरोसा ही नहीं कर पाते, यहूदी विश्वास नहीं कर पाते, पारसी मान ही नहीं सकते कि यह कैसी हिंदुओं की ईश्वर की धारणा है! हिंदू कहते हैं, ईश्वर के तीन मुख हैं, वह त्रिमूर्ति है। उनमें एक विष्णु है, एक ब्रह्मा है, एक शिव है। उसमें ब्रह्मा तो जन्मदाता है, सृजनात्मक है, वह क्रिएटिव फोर्स है। उसमें विष्णु सम्हालने वाला है, व्यवस्था को बनाए रखने वाला है। और शिव विध्वंस है, वह डिस्ट्रक्टिव फोर्स है। और ये तीनों चेहरे एक के ही हैं। वहां विध्वंस और सृजन दोनों मिल गए हैं। वहां कोई विरोध नहीं रह गया बुरे और भले में। वहां सब समाविष्ट हो गया है। और तब एक अपरिसीम ऊंचाई आती है।
तुम ऐसा ही समझो कि जैसे तुम कपड़ा बुनते हो ताने-बाने से। ताने-बाने एक-दूसरे के विपरीत रखने पड़ते हैं। तो ही तो कपड़ा बनता है। तुम अगर ताने ही ताने से कपड़ा बुन दो तो कपड़ा बनेगा ही नहीं। तुम अगर बाने ही बाने से कपड़ा बुन दो तो भी कपड़ा न बनेगा। दोनों ही अधूरे रहेंगे। दोनों को मिला दो, वह जो विरोध है ताने-बाने का उस विरोध को तुम संयुक्त कर दो--उस विरोध पर ही तो कपड़ा निर्मित होता है।
राजगीर भवन बनाना है तो विपरीत ईंटों को दरवाजे पर जोड़ देता है। उनके विपरीत के तनाव में ही तो दरवाजे की ताकत है; उस पर ही तो भवन खड़ा होगा। तुम्हारा सज्जन एकतरफा जुड़ी हुई ईंटें है। यह भवन गिरेगा। तुम्हारा दुर्जन भी एकतरफा है, यह भवन भी गिरेगा। एक ताना है, एक बाना है; एक काला है, एक सफेद है। लेकिन तुम दोनों को जोड़ दो। और दोनों के विरोध को विरोध में मत खड़ा करो; दोनों के विरोध को एक सामंजस्य बना लो। तब तक भवन बनेगा जो मजबूत है।
संत ऐसा भवन है जहां बुराई और भलाई दोनों एक ही तत्व में लीन हो गई हैं। ऐसे संत से किसी का अहित नहीं होता, क्योंकि ऐसे संत के भीतर कोई घृणा ही नहीं रह जाती, कोई हिंसा नहीं रह जाती, कोई क्रोध नहीं रह जाता, कोई तनाव नहीं रह जाता। ऐसा संत तुम्हें बदलना भी नहीं चाहता। ऐसे संत के पास तुम बदल जाओ, यह तुम्हारी मर्जी। ऐसा संत तुम्हारे पीछे आग्रहपूर्वक नहीं चलता। ऐसा संत तुम्हें तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहता। ऐसा संत तुम्हारे विरोध में नहीं है। और ऐसा संत तुम्हारे ऊपर खड़े होकर तुम्हारी निंदा, तुम्हारा तिरस्कार भी नहीं करता। तुम गलत भी हो तो भी तुम्हें नरक भेजने की आकांक्षा उसके भीतर नहीं उठती, क्योंकि वह जानता है, गलत भी स्वर्ग की सीढ़ी पर उपयोग में आ जाता है। क्योंकि वह जानता है कि इस अस्तित्व में तिरस्कार योग्य कुछ भी नहीं है। क्योंकि वह जानता है, सभी चीजों का उपयोग हो जाता है, और सभी चीजें उस परम संगीत में सहयोगी हैं। इनमें से कुछ भी हट जाए... ।
तुम थोड़ा सोचो; एक बच्चा पैदा हो जो बिना क्रोध का हो। क्योंकि ऐसा बच्चा पैदा किया जा सकता है। क्रोध के हार्मोन हैं, वे काटे जा सकते हैं। जैसे कि सेक्स के हार्मोन हैं। एक नपुंसक बच्चा पैदा होता है। नपुंसक व्यक्ति की तकलीफ क्या है? और नपुंसक का इतना हीन-भाव क्या है?
नपुंसक के भीतर स्त्री-पुरुष के ताने-बाने नहीं हैं। साधारण पुरुष के भीतर स्त्री भी छिपी है। साधारण स्त्री के भीतर पुरुष भी छिपा है। वे ताने- बाने हैं। कोई पुरुष न तो पुरुष है अकेला और न कोई स्त्री अकेली स्त्री है। सभी दोनों का जोड़ हैं। होना ही चाहिए। क्योंकि तुम अपनी मां और बाप के जोड़ से पैदा हुए हो। आधा तुम्हारे बाप का हाथ है, आधा तुम्हारी मां का। तुम्हारे आधे सेल पिता से आए हैं, आधे मां से। आधा तुम्हारे भीतर पुरुष है,

आधा तुम्हारे भीतर स्त्री है। फर्क इतना ही है। जैसे एक सिक्के के दो पहलू होते हैं; एक सिक्के का पहलू ऊपर होता है, एक नीचे दबा होता है। अगर तुम पुरुष हो, तुम्हारी स्त्री पीछे छिपी है। अगर तुम स्त्री हो, तुम्हारा पुरुष पीछे छिपा है। इसलिए तो वैज्ञानिक कहते हैं कि हार्मोन के परिवर्तन से स्त्री को पुरुष बनाया जा सकता है, पुरुष को स्त्री बनाया जा सकता है। जरा सिक्के को पलटने की बात है। कुछ अड़चन नहीं है। और भविष्य में यह घटना बढ़ेगी। बहुत से प्रयोग हो गए हैं। बहुत से पुरुष स्त्रियां हो गए हैं, बहुत सी स्त्रियां पुरुष हो गई हैं। भविष्य में यह अनुपात बढ़ता जाएगा। क्योंकि जब कोई ऊब जाएगा पुरुष होने से तो स्त्री हो जाना पसंद करेगा। जब कोई ऊब जाएगा स्त्री होने से तो पुरुष हो जाना पसंद करेगा। स्वतंत्रता और भी खुल जाएगी। तो तुम दोनों अनुभव कर सकते हो जीवन में।
नपुंसक की तकलीफ क्या है? न तो वह स्त्री है, न वह पुरुष है। उसके भीतर ताना-बाना नहीं है। उसके भीतर तनाव नहीं है। तनाव में शक्ति है। उसके भीतर कोई विरोध नहीं है जिसको जोड़ कर संगीत पैदा किया जा सके। इसलिए वह दीन है। इसलिए वह दया योग्य है। एक अर्थ में वह है ही नहीं; वह सिर्फ दिखाई पड़ता है कि है। उसका व्यक्तित्व एक धोखा है। क्योंकि व्यक्तित्व की गरिमा दो विरोधों के बीच पैदा हुए तनाव और शक्ति और ऊर्जा से आती है।
हम एक बच्चा पैदा कर सकते हैं जिसमें क्रोध न हो। वह बच्चा जी न सकेगा।
और अगर जीएगा भी तो बड़ा दयनीय होगा। जिस बच्चे में क्रोध न हो उसमें गरिमा न होगी। उसमें तेज न होगा। उसमें चमक न होगी। उसमें प्रतिरोध की क्षमता न होगी। वह बिना रीढ़ का होगा। वह सांप की तरह सरकेगा जमीन पर, मनुष्य की तरह खड़ा न हो सकेगा। रेंग सकेगा, चल न सकेगा। दौड़ना तो असंभव है। और अगर उसमें क्रोध न हो तो उसके भीतर अस्मिता पैदा न होगी। मैं हूं, यह भाव पैदा न होगा। अहंकार का जन्म न होगा। और जिसमें अहंकार ही न जन्मा वह अहंकार का समर्पण कैसे करेगा? जो तुम्हारे पास है ही नहीं उसे तुम छोड़ोगे कैसे? उसके जीवन में परमात्मा की कभी कोई अनुभूति न हो सकेगी।
फर्क को ठीक से समझ लेना। एक भिखारी रास्ते पर खड़ा है। बुद्ध भी रास्ते
पर खड़े हैं भिखारी की तरह। लेकिन तुम यह मत समझना कि वे दोनों एक ही हैं। उनमें गुणात्मक भेद है। एक ने साम्राज्य छोड़ा है; एक ने अभी पाया नहीं। और जिसने साम्राज्य छोड़ा है उसके भिखारीपन में भी सम्राट की आभा होगी। जिसने सब जान लिया है, और इसलिए छोड़ दिया है, उसके छोड़ने में एक परम संतोष होगा, एक अनुभव का प्रकाश होगा। वह प्रौढ़ हो गया है; सम्राट पीछे छूट गया है। इसलिए हम उसे भिखारी नहीं कहते हैं।
हमने भिखारी के लिए दो शब्द चुने हैं। उसको हम भिक्षु कहते हैं। भिक्षु और भिखारी बड़े अलग-अलग शब्द हैं। भिखारी वह है जिसकी वासनाएं जीवित हैं; जो चाहता तो सम्राट होना है, लेकिन नहीं हो पा रहा; जिसकी आकांक्षा तो समृद्धि की है, लेकिन असफल है। उसके भीतर एक विषाद है, एक हताशा है। यह भी हो सकता है, वह अपने मन को समझा ले कि क्या रखा है संपत्ति में और क्या रखा है महलों में! ऐसे बहुत से भिखारी भिक्षु बने भी बैठे हुए हैं, जो सोचते हैं, क्या रखा है महलों में! लेकिन जब तक तुम्हारे मन में यह सवाल उठता है कि क्या रखा है महलों में, तब तक तुम अपने को समझा रहे हो और तुमने महल जाने नहीं। तुम कंसोलेशन, सांत्वना कर रहे हो।
एक जैन मुनि अपना गीत पढ़ कर मुझे सुना रहे थे। सुनने वाले बड़ी प्रशंसा
से भर गए। गीत अच्छा था। लेकिन गीत से मुझे प्रयोजन नहीं था; जो उसमें कहा था वह बड़ा बेहूदा था। लेकिन न जैन मुनि को ख्याल था, न उनके सुनने वालों को ख्याल था। गीत था, एक संन्यासी के भाव गीत में प्रकट थे कि मुझे तुम्हारे महलों से कोई सरोकार नहीं। तुम्हारे तख्तोताज मेरे लिए दो कौड़ी के हैं। तुम्हारा स्वर्ण मेरी इस धूल जैसा है।
मैंने उनसे पूछा, इसको गीत में लिखने की जरूरत क्या है? अगर सच में ही तुम्हें ताज और सिंहासन से कोई मतलब नहीं है तो गीत लिख कर समय क्यों खराब किया? और अगर सच में ही सोना धूल जैसा है तो कहने की जरूरत नहीं है। कोई भी तो नहीं कहता कि धूल धूल जैसी है। नहीं, तुम्हें सोना सोना जैसा ही है, और तख्त और ताज का तुम्हें कोई रस है। फिर बड़े मजे की बात यह है कि तुम इसमें

कहते हो कि मुझे तुम्हारे महलों से कुछ भी लेना-देना नहीं, मेरे लिए उनका मूल्य दो कौड़ी का है। लेकिन तुमसे कह कौन रहा है कि तुम महलों में आओ? तुम किससे यह बात कर रहे हो?
और बड़ा आश्चर्य यह है कि साधुओं ने, संन्यासियों ने इस तरह के गीत लिखे हैं, सम्राटों ने कभी नहीं लिखे। सम्राट को लिखना चाहिए कि मुझे तुम्हारी धूल से कोई प्रयोजन नहीं; तुम्हारा झोपड़ा मेरे लिए दो कौड़ी का है; रहे आओ तुम, मेरी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं। सम्राट लिखते नहीं यह बात। संन्यासी क्यों लिखता है? साधु क्यों लिखता है?
न, यह भिखारी है, भिक्षु नहीं है। आकांक्षा तो इसकी भी महल में होने की है। अब यह अपने दंभ को किसी तरह भर रहा है कि नहीं, तुम्हारा महल दो कौड़ी का है। अगर दो कौड़ी का ही है तो दो कौड़ी के महल पर यह गीत क्यों लिख रहे हो? और सुनने वाले जो चारों तरफ बैठे हैं--जो उतने ही अंधे हैं जितने उनको चलाने वाले--वे सब सिर हिला रहे हैं कि बड़ी गजब की बात है। क्योंकि वे भी भिखमंगे हैं, उनको भी इससे राहत मिलती है। उनको भी लगता है कि हां, रखा क्या है महल में!
इसलिए नहीं कि महल में कुछ रखा नहीं है। तुमने कहानी सुनी है लोमड़ी की
जो अंगूरों तक न पहुंच सकी। क्योंकि अंगूर बड़े ऊंचे थे, छलांग बड़ी छोटी थी। लेकिन लोमड़ी का भी अहंकार यह मानने को नहीं होता कि मैं पहुंच नहीं सकी। जब वह वहां से वापस लौटने लगी और एक खरगोश ने उससे पूछा कि क्या हुआ मौसी? तो उसने कहा, अंगूर खट्टे हैं, खाने योग्य नहीं।
जिन अंगूरों तक तुम पहुंच नहीं पाते वे खट्टे हो जाते हैं। उनके खट्टेपन में तुम अपने अहंकार को बचा लेते हो, अपने दंभ को सम्हाल लेते हो। भिखारी कहता है, अंगूर खट्टे हैं; बुद्ध जानते हैं। वह सांत्वना नहीं है, वह अनुभव है। इसलिए बुद्ध के भीतर सम्राट की प्रतिभा है। भिखारी सिर्फ दीन-हीन है। बुद्ध का भिखारीपन बड़ा समृद्ध है। बुद्ध के भिखारीपन में बड़ा साम्राज्य छिपा है। भिखारी के हाथ में सिर्फ खाली पात्र है, उसमें कुछ छिपा नहीं है। उसमें सिर्फ वासना के इंद्रधनुष टूटे पड़े हैं, सपने उजड़े पड़े हैं; एक हताशा है, एक दीनता है। फिर अपनी दीनता को छिपाने की वह कोशिश कर रहा है। अगर तुम एक ऐसा बच्चा पैदा कर सको जिसमें क्रोध न हो तो तुम पाओगे उसमें रीढ़ नहीं है। वह जीवन में खड़ा ही न हो सकेगा। उसमें अस्मिता भी न जगेगी। उसका अहंकार भी निर्मित न होगा। और जिसका अहंकार निर्मित न हो गया हो वह समर्पण नहीं कर सकता। वास्तविक समर्पण तभी आता है जब तुम्हारे भीतर बड़ा प्रगाढ़ अहंकार होता है। जैसे कि वास्तविक भिक्षु तुम तभी बनते हो जब तुम सम्राट रह चुके हो।
इसलिए तुम्हें मेरी बात बड़ी उलटी लगेगी। मैं चाहता हूं कि पहले तुम अपने अहंकार को निर्मित करो, सबल करो, शक्तिशाली करो। लड़ो संसार से, अपने व्यक्तित्व को संगठित करो। एक इंटीग्रेशन, एक क्रिस्टलाइजेशन तुममें आ जाए; तुम एक मजबूत अहंकार के बिंदु हो जाओ। उसके बाद ही समर्पण संभव है। क्योंकि जो तुम्हारे पास है ही नहीं, उसे तुम छोड़ोगे कैसे? जो तुमने कभी पाया ही नहीं, उसका विसर्जन कैसे करोगे?
आधा जीवन आदमी को अहंकार संयोजित करने में लगाना चाहिए, और आधा जीवन विसर्जित करने में। और जब संयोजित करना और विसर्जित करना दोनों संयुक्त हो जाते हैं तब तुम्हारे जीवन में विरोध के बीच सामंजस्य, संगीत का जन्म होता है।
नहीं, क्रोध भी जरूरी है, अहंकार भी जरूरी है। इसलिए दबाना मत, काटना मत। नहीं तो तुम अपंग हो जाओगे। जैसे हाथ को काट दे कोई, आंख को काट दे कोई, तो शरीर अपंग हो जाता है। ऐसे ही क्रोध को कोई काट दे, काम को कोई काट दे, लोभ को कोई काट दे, तो आत्मा अपंग हो जाती है। सभी कुछ अनिवार्य है।
इसका मतलब यह नहीं है कि तुम क्रोध में ही जीते रहना। इसका मतलब यह है
कि तुम क्रोध में खोज करना कि कैसे करुणा का जन्म हो सके, क्रोध में कैसे करुणा का जन्म हो सके, कैसे करुणा क्रोध को समाविष्ट कर ले, कैसे क्रोध की ऊर्जा और शक्ति करुणा में लीन हो जाए, करुणा बन जाए।

महावीर निश्चित ही बहुत क्रोधी रहे होंगे। नहीं तो इतनी बड़ी अहिंसा पैदा नहीं हो सकती थी। और इसमें कारण साफ दिखाई पड़ता है। बुद्ध भी बड़े क्रोधी रहे होंगे। नहीं तो इतनी बड़ी महाकरुणा कहां से पैदा होती? और इसीलिए जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। क्योंकि क्षत्रियों से बड़ा क्रोधी खोजना मुश्किल है। बुद्ध भी क्षत्रिय हैं। एक भी तीर्थंकर ब्राह्मण नहीं हुआ, बनिया नहीं हुआ। कारण है। क्योंकि अगर अहिंसा का जन्म होना हो तो महाक्रोध से ही हो सकता है। और क्षत्रियों से ज्यादा महाक्रोधी तुम नहीं खोज सकते हो।
क्रोध की ऊर्जा को बदलो।
कुछ ही समय पहले, आकाश में बिजली कौंधती थी और आदमी सिर्फ डरता था और कंपता था। अब हम उसी बिजली को घर में बांधे हुए हैं। वही बिजली तुम्हारा पंखा चलाती है। गर्मी हो तो शीतलता देती है; शीतलता हो तो गर्मी देती है। वही बिजली चाकर की तरह, नौकर की तरह काम में संलग्न है चौबीस घंटे। यह वही बिजली है जिससे वेद के ऋषि घबड़ा रहे थे। यह वही बिजली है जिसको वे सोच रहे थे कि इंद्र नाराज होकर भेज रहा है। यह वही बिजली है जो आकाश में कड़कती थी तो छाती कंप जाती थी। वही बिजली नौकर हो गई।
आज तुम सोच भी नहीं सकते, अगर बिजली खो जाए तो सभ्यता कहां होगी? थोड़ी देर सोचो, अगर बिजली अचानक खो जाए तो तुम दस हजार साल पीछे एकदम गिर जाओगे। इससे कम नहीं। तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां आदमी ने सभ्यता की शुरुआत की थी। आज सारी सभ्यता और संस्कृति का आधार बिजली है।
कोई तीन वर्ष पहले अमरीका में कुछ आटोमैटिक यंत्रों की भूल से--अमरीका चार हिस्सों में बंटा है बिजली के हिसाब से, चार केंद्र हैं--एक केंद्र की बिजली गड़बड़ हो गई तो सैकड़ों नगरों की बिजली चली गई तीन दिन तक। और जो अनुभव वहां हुए, किसी ने सोचे भी न थे। क्योंकि बिजली क्या चली गई सारा जीवन चला गया। बिजली नहीं तो पानी मिलना बंद हो गया। बिजली नहीं तो लोग पचास-पचास ऊपर की मंजिल में कैद हो गए; नीचे आना मुश्किल हो गया। बिजली नहीं तो ट्रेनें बंद हो गईं। बिजली नहीं तो सब ठप्प हो गया। दस हजार साल पीछे तीन दिन के लिए पूरी व्यवस्था गिर गई। गांव उजाड़ मालूम पड़ने लगे। सब तरफ सन्नाटा हो गया। सब शोरगुल, सब चहल-पहल सब विदा हो गई। सब दफ्तर बंद हो गए। सब दुकानें बंद हो गईं। उन तीन दिनों में अमरीका के उस हिस्से में जो अनुभव हुआ वह अनुभव ऐसा हुआ कि जैसे कि अब बिजली हमारा प्राण है।
कभी यह बिजली हमारी दुश्मन थी, शत्रु की तरह कौंधती थी। और वेद के ऋषि प्रार्थना करते हैं, हे इंद्र, कृपा कर! यज्ञ करते हैं, आहुति चढ़ाते हैं, ताकि तू नाराज न हो जाना, बिजली मत भेज देना। जिस बिजली से मौत आती थी वह अब जीवन का आधार हो गई।
ठीक ऐसी ही घटना मनुष्य के भीतर भी घटती है। जिस क्रोध से तुम्हें लगता
है जीवन दुखपूर्ण है, वही क्रोध करुणा बन जाता है। जिस कामवासना से तुम्हें लगता है कि जीवन नरक हो गया है, वही कामवासना ब्रह्मचर्य की परम अनुभूति बन जाती है। एक बात ध्यान रख लेना तो लाओत्से का सूत्र तुम्हें सहज ही समझ में आ जाएगा कि जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। अगर तुम्हें पता न चल रहा हो तो जल्दी मत करना।
बीस साल पहले तक शरीरशास्त्री, फिजियोलाजिस्ट कहते थे कि मनुष्य के मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल बेकार है, किसी काम का नहीं। क्योंकि कुछ काम समझ में नहीं आता था। बहुत से शरीर के हिस्से शरीरशास्त्री यों ही काट देते हैं, सर्जन ऐसे ही अलग कर देता है, कि यह बेकार है। टांसिल का कोई उपयोग नहीं, निकालो, जितनी जल्दी बने निकाल डालो। जरा सी गड़बड़ हुई कि टांसिल अलग कर दो। एपेंडिक्स का कोई उपयोग ही नहीं है; काट कर फेंक दो।
लेकिन यह हो कैसे सकता है कि एपेंडिक्स है और बिना उपयोग के हो? नहीं तो होगी क्यों? अस्तित्व किसी चीज को किस लिए पैदा कर लेगा? जहां इतनी व्यवस्था है, जहां अस्तित्व इंच-इंच किसी बड़े गहन नियम के अनुसार चल रहा है, अस्तित्व कोई अराजकता नहीं है, जहां इतना सूक्ष्म तत्व मनुष्य का मन पैदा हो गया है, वहां कोई चीज अकारण होगी, व्यर्थ होगी?

हां, अगर अस्तित्व एक्सीडेंटल होता, सिर्फ एक संयोग मात्र होता, तो ठीक था।
लेकिन विज्ञान भी मानता है कि अस्तित्व संयोग मात्र नहीं है। अगर संयोग मात्र हो तब तो विज्ञान को बनाने का उपाय ही नहीं है फिर! कि संयोग का क्या भरोसा? विज्ञान तो जीता ही इस भरोसे पर है कि अस्तित्व एक गहन नियम से चल रहा है। उस नियम की खोज पर तो सारे विज्ञान का आधार है, कि हम उसको खोज लेंगे। तो बस सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, यह नियम है। अगर यह संयोग हो तो पूना में हो जाए सौ डिग्री पर, बंबई में न हो। हिंदुस्तान में हो जाए कि चलो, यह धार्मिकों का देश है, सौ डिग्री पर हो जाओ; रूस में न हो, कि नास्तिकों के देश में तीन सौ डिग्री पर होंगे गरम। संयोग नहीं है। सौ डिग्री पर गरम होता है; नियम है। नियम की आस्था तो सारे विज्ञान का आधार है। और तुम विज्ञान से ज्यादा आस्थावान दूसरी कोई चीज न पाओगे। क्योंकि सारी आस्था इस पर है कि जगत दुर्घटना नहीं है, संयोग नहीं है, एक्सीडेंट नहीं है।
जब पूरा अस्तित्व एक किसी गहन नियम से चलता है तो मनुष्य के भीतर भी कुछ भी अकारण नहीं हो सकता। यह हो सकता है, हमें पता न हो। आज नहीं कल एपेंडिक्स का प्रयोजन पता चलेगा। आज नहीं कल टांसिल्स का प्रयोजन पता चलेगा।
मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा है। तो वैज्ञानिक बीस साल पहले तक कहता था, इसका कोई प्रयोजन नहीं है, एक्सीडेंटल है। लेकिन अब उसका प्रयोजन पता चलना शुरू हुआ है। इधर बीस वर्षों में जो खोज-बीन हुई है मस्तिष्क पर उससे पता चलता है कि जीवन में जितनी चमत्कारी बातें दिखाई पड़ती हैं उन सबमें उस मस्तिष्क के हिस्से का काम है जिसका हमें कोई अर्थ पता नहीं चलता। कोई आदमी दूसरे के विचार पढ़ लेता है, तब वह हिस्सा सक्रिय हो जाता है जो साधारणतया निष्क्रिय पड़ा है। या कोई आदमी, जैसे रूस में एक महिला है मिखालोवा, वह बीस फीट दूर की चीजों को भी प्रभावित कर देती है। बीस फीट दूर से खड़े होकर किसी चीज को हाथ से खींचना चाहे तो वह चीज सरकती हुई चली आती है। उस पर बड़े प्रयोग हुए हैं रूस में कि वह कैसे कर रही है! बहुत सी बातें जाहिर हुईं। एक बात खास जाहिर हुई कि जब वह यह करती है तब उसका वह मस्तिष्क का हिस्सा काम करता है जो साधारणतः काम नहीं करता।
तो इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन में जो भी परा-मनोवैज्ञानिक, पैरा- साइकोलाजिकल घटनाएं हैं--वे सामान्य नहीं हैं, कभी-कभी कोई आदमी कर पाता है--वे सदा उस मस्तिष्क के हिस्से से होती हैं जो साधारणतः बेकार पड़ा है। उसको काट मत देना। क्योंकि उसमें ही तुम्हारी सारी परा-मनोवैज्ञानिक क्षमताएं छिपी पड़ी हैं। और आज नहीं कल हम उपाय खोज लेंगे कि ये परा- मनोवैज्ञानिक क्षमताएं भी सिखाई जा सकें और तुम्हारे मस्तिष्क का वह हिस्सा काम करने लगे।
कुछ आदिवासी जातियों में वह हिस्सा काम करता हुआ मालूम पड़ता है। तो आस्ट्रेलिया में एक छोटा सा कबीला है। वैज्ञानिक बड़े चकित हुए हैं कि उसका वह हिस्सा काम करता है। और जो हमारा हिस्सा काम कर रहा है वह उसका काम नहीं करता। मगर वह बड़ा चमत्कारी कबीला है। उसके बड़े गहरे अनुभव हैं जो कि समझ के बाहर हैं। उस कबीले के पास कोई भाषा नहीं है, कोई लिखने की लिपि नहीं है। लेकिन उस कबीले के गांव में बीच में वे एक वृक्ष लगाते हैं। उस वृक्ष का उपयोग वे मंदिर की तरह करते हैं। समझो कि किसी का बेटा शहर गया है कुछ खरीदने और बाप को बाद में याद आया कि मैं यह तो कहना भूल ही गया कि तुम फलां चीज खरीद लाना। तो वह उस वृक्ष के पास जाता है। उस वृक्ष के पास आंख बंद करके खड़ा हो जाता है। और बेटे को संदेश देता है बोल कर कि बेटा, यह चीज मैं भूल गया, तू यह और ले आना।
इस पर कोई दस साल से अध्ययन चल रहा है। और हर मौके पर बेटे को संदेश पहुंच जाता है। लेकिन उस वक्त यह भीतर का मस्तिष्क काम कर रहा है जो साधारणतः काम नहीं करता। उस जाति का वह मस्तिष्क बड़ी तीव्रता से काम कर रहा है।
इजरायल में एक आदमी है, ऊरी। वह दस फीट की दूरी से सिर्फ हाथ के इशारे
से किसी भी चीज को तोड़-मरोड़ देता है। चम्मच रखी है दस फीट की दूरी पर, वह

सिर्फ हाथ का इशारा करता है, चम्मच मुड़ कर गोल हो जाती है। ऐसे उसने हजारों प्रयोग किए। बड़ा, सबसे बड़ा चमत्कारी प्रयोग तो हुआ, लंदन में पिछले वर्ष टेलीविजन पर उसने यह दिखाया। टेलीविजन पर उसने दस-पचास चीजें टेबल पर रखी हुई दूर से खड़े होकर हाथ के इशारों से मरोड़ दीं, तोड़ दीं। जैसे कि साधारणतः तुम जिस चम्मच को हाथ से भी नहीं घुमा सकते उसे वह दूर से खड़े होकर घुमा देता। पर यह तो ठीक ही था, संयोगवशात एक और बड़ी घटना घटी कि जो लोग टेलीविजन देख रहे थे, उनके घर में कई चीजें तोड़ी-मरोड़ी हो गईं--हजारों। टेलीविजन देख रहे थे लाखों लोग, उनके घरों में, जैसे कि टेलीविजन बैठे देख रहे हैं और टेबल पर कोई गमला रखा है, वह एकदम बिना किसी कारण के आड़ा-तिरछा हो गया।
इस आदमी का वह मस्तिष्क काम कर रहा है जो साधारणतः काम नहीं करता। जिस दिन विज्ञान इसको ठीक से समझ लेगा उस दिन यह हमारा सबसे महत्वपूर्ण मस्तिष्क सिद्ध होने वाला है। संभवतः इसी मस्तिष्क में योग की, पतंजलि की सारी सिद्धियां छिपी हैं। शायद इसी मस्तिष्क को सक्रिय करने के सारे योग के साधन हैं, प्रक्रियाएं हैं। शायद ध्यान की गहनता में यही मस्तिष्क सबसे पहले सक्रिय हो जाता है, और चमत्कार शुरू हो जाते हैं।
मैं यह इसलिए कह रहा हूं, ताकि तुम्हें समझ में आ सके कि जीवन में कुछ
भी अकारण नहीं है। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा लोभ, तुम्हारा मोह, कुछ भी अकारण नहीं है। उसका उपयोग करना है। अशुभ का भी उपयोग कर लेना है। तब अशुभ भी शुभ हो जाता है। और अगर तुमने शुभ का भी उपयोग न किया तो वह भी सड़ जाता है और अशुभ हो जाता है। जीवन की सारी कला एक बात में है कि कैसे जो तुम्हें मिला है उस सबको तुम एक लयबद्धता में बांध लो।
अब हम इस सूत्र को समझें।
"एक बड़े देश की हुकूमत ऐसे करो जैसे कि एक छोटी मछली भूंजते हो। रूल ए बिग कंट्री एज यू वुड फ्राय ए स्माल फिश।"
छोटी मछली भूंजना एक कला है। बड़ा सावधान होना जरूरी है। क्योंकि मछली इतनी छोटी है कि अगर तुम जरा ही ज्यादा भूंज दो तो जल जाएगी। अगर जरा ही कम भूंजो तो कच्ची रह जाएगी। लाओत्से यह कह रहा है कि जीवन को शासित करना, अनुशासित करना, अपने या दूसरे के, बड़ा नाजुक मामला है--छोटी मछली भूंजने जैसा नाजुक। जरा अति हो गई कि भूल हो जाएगी। अतिशय से बचना।
एक ही चीज बचने जैसी है और वह है अति। और मन की पूरी वृत्ति ऐसी है कि वह अति पर जाना पसंद करता है। या तो तुम ज्यादा खाओगे या उपवास करोगे। या तो दिन भर होटल में बैठे हुए पाओगे या उरली कांचन चले जाओगे। बीच में न रुकोगे। या तो भोग में पागल रहोगे या त्याग में पागल हो जाओगे। बीच में न रुकोगे। घड़ी के पेंडुलम की तरह हो; या तो बाएं जाओगे या दाएं जाओगे; बीच में न ठहरोगे।
और लाओत्से कहता है, बीच में ठहर जाना ही वह नाजुक कला है। कभी अति पर
मत जाओ। सभी अतियां गलत हैं। क्योंकि अति पर जाने का अर्थ ही यह हुआ कि तुम किसी चीज के विपरीत जा रहे हो।
अगर तुम्हारे मन में क्रोध है तो अति है कि तुम कसम खा लो कि मैं कभी क्रोध न करूंगा। अब यह अति हो गई। अब तुम क्रोध के दुश्मन होकर बैठ गए। जिसके तुम दुश्मन हो गए उसका उपयोग कैसे करोगे? जिससे झगड़ा मोल ले लिया अब तुम उसे संजोओगे कैसे? संगीत कैसे बनाओगे उसका? अब तो तुमने पीठ कर ली। अब तुमने एक अंग काटने की कसम खा ली। तुम पंगु हो जाओगे।
इसलिए धर्म के नाम पर कुछ लोग अंधे हो गए हैं, कुछ लोग लंगड़े होकर बैठे हैं, कोई लूला हो गया है, कोई बहरा हो गया है। धर्म के नाम पर लोग अंगों को काट रहे हैं; उनका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं।
अति पर तुम गए कि विरोध शुरू हुआ। कामवासना जीवन में है; तुम ब्रह्मचर्य की कसम ले लो। फिर तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि यह अति हो गई। और अति पर कोई भी ज्यादा देर तक नहीं रह सकता। घड़ी का पेंडुलम भी अति तक जाता है कि फिर लौटता है। मध्य में ही कोई सदा रह सकता है, लेकिन अति पर कोई सदा नहीं रह सकता। तुम कोशिश करो घड़ी के पेंडुलम पर कि एक कोने पर, अति पर वह रुक जाए। कैसे रुकेगा? हां, बीच में अगर रोक दो तो रुक सकता है। वहां शाश्वत विश्राम हो सकता है।

मध्य शाश्वत विश्राम है। अति, छोर तो परिवर्तन है। वहां से तो जाना पड़ेगा। सुख एक अति है; दुख एक अति है। इसीलिए तो ज्यादा देर तुम दुखी भी नहीं रह सकते, ज्यादा देर सुखी भी नहीं रह सकते। सुख भी आएगा और जाएगा। दुख भी आएगा और जाएगा। लेकिन अगर तुम दोनों के मध्य ठहर जाओ। उस मध्य के ठहरने को हमने शांति कहा है, संतोष कहा है। वह न सुख है, न दुख। वह दोनों के ठीक बीच में रुक जाना है। बड़ी नाजुक कला है। और जरा सा ही तुम मध्य से इधर-उधर हुए कि अड़चन शुरू हो जाएगी। इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं, खड्ग की धार है, रेजर्स एज; इधर गिरे तो कुआं है, उधर गिरे तो खाई है। मध्य में मार्ग है।
बुद्ध ने अपने मार्ग को नाम दिया हैः मज्झिम निकाय, दि मिडल वे। और लाओत्से की सारी शिक्षा गोल्डन मीन, मध्य में रुक जाने की है। इसको वह कहता है, छोटी मछली को भूंजने की कला। जरा इधर-उधर हुए कि भटके। ठीक मध्य में रहे तो ही मछली बचेगी। तो ही ज्यादा न भुंजेगी, कम भुंजी न रहेगी।
"जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है, उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं। यह नहीं कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो देती हैं, लेकिन वे लोगों को कष्ट देना बंद कर देती हैं। इतना ही नहीं कि वे लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती हैं, संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।"
इस वचन को याद रख लेना। क्योंकि साधारणतः तुम्हें लगेगा, संत तो वही है
जो किसी की हानि नहीं करता। और लाओत्से कह रहा है कि संत भी स्वयं लोगों की हानि नहीं करते। इसका मतलब है, संत से भी हानि की संभावना है।
अगर संत सज्जन हो तो हानि होगी। और सज्जन और संत में फासला करना बहुत
ही मुश्किल है। छोटी मछली भूंजना भी आसान, संत और सज्जन में फासला करना बहुत मुश्किल है। अक्सर तो यह होगा कि सज्जन तुम्हें संत मालूम पड़ेगा और संत को तुम चूक जाओगे। क्योंकि अति दिखाई पड़ती है, मध्य दिखाई नहीं पड़ता। अति की उत्तेजना होती है, मध्य तो शांत होता है। मध्य तो ऐसे होता है जैसे है ही नहीं। अति में तो बड़ा शोरगुल होता है; मध्य में तो सब शांत हो गया होता है। सिर्फ मौन संगीत होता है। तुम संत को चूक जाते हो अक्सर, सज्जन को कभी नहीं चूकते। सज्जन को तुम महात्मा बना लेते हो; संत तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ेगा।
इसे थोड़ा ठीक से समझो। अपराधी भी दिखाई पड़ जाएगा। जो आदमी किसी की हत्या करेगा, बराबर दिखाई पड़ जाएगा। सज्जन भी दिखाई पड़ जाएगा। जो किसी को बचाने में अपनी हत्या करेगा, वह भी दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन जो न किसी की हत्या करेगा न अपनी हत्या करेगा, वह तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा? संत कोई ईवेंट नहीं है, वह कोई घटना ही नहीं है। इसलिए अखबार में उसकी खबर ही न छपेगी। दुर्जन की खबर छपेगी; सज्जन की छपेगी। कोई किसी की हत्या कर देगा तो छपेगी; कोई अस्पताल को दान दे देगा तो छपेगी। संत न किसी की हत्या करता है और न जाकर कोढ़ियों के पैर दबाता है। अखबार के बाहर रह जाता है। संत जैसे इतिहास के बाहर पड़ जाता है।
घटनाओं का जहां जाल है वहां तो अतियां हैं। हिटलर की खबर छपती है, गांधी की खबर छपती है। लाओत्से की क्या खबर छपनी है? लाओत्से होता भी है कि नहीं, इसका भी पक्का पता नहीं है। संत सदा संदिग्ध बने रहते हैं। बाद में भी लोग पूछते हैं, ऐसा आदमी हुआ? जब वह मौजूद होता है तब लोग उसे देख नहीं पाते, पहचान नहीं पाते। बाद में संदेह उठता है, क्योंकि इतिहास में कहीं उसकी कोई लकीर नहीं छूट जाती। दुर्जन भी बड़ी लकीर छोड़ता है।
एक आदमी ने कैलिफोर्निया में पिछले कुछ दिनों पहले नौ आदमियों की हत्या की। सारे अखबार अमरीका के उसकी हत्या की चर्चा से भर गए। सुर्खियां बड़े अक्षरों में। अदालत में जब उससे पूछा गया कि तुमने क्यों ये हत्याएं कीं? उसने कहा कि जिंदगी हो गई, मैंने कभी अपना नाम अखबार में नहीं देखा। ऐसे ही गुजर जाएं? इन आदमियों से मुझे कोई विरोध न था। इनमें से कुछ को तो मैं जानता ही नहीं कि वे कौन हैं, क्योंकि मैंने पीठ के पीछे से गोली मारी है। तो मुझे चेहरे का भी कोई पता नहीं है। लेकिन अखबार में बिना छपे नहीं मरना चाहता था।

जैसे पानी की प्यास लगती है, ऐसे अखबार में छपने की छपास लगती है। बुरा आदमी छपता है। इसीलिए तो राजनीतिज्ञों से भरा रहता है अखबार। क्योंकि इनसे ज्यादा दुर्जन तुम खोज न सकोगे। सज्जनों की भी खबर छपती है। कोई दान करता, कोई बड़ा मंदिर बनाता, कोई अस्पताल खड़ा करता, कोई कालेज-स्कूल खोलता, उसकी भी खबर छपती है। लेकिन संत की खबर छपने का कोई कारण नहीं है।
संत बिल्कुल अकारण है। वह पानी पर खींची लकीर जैसा है; कुछ पीछे बनता नहीं। लाओत्से ने कहा है, संत ऐसा है जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, चिह्न नहीं छूट जाते। पक्षी उड़ गया; आकाश खाली का खाली रह जाता है। पीछे लोग खोज-बीन करते हैं कि यह आदमी हुआ भी!
लाओत्से अभी तक संदिग्ध है। अभी तक इतिहासज्ञ राजी नहीं हैं कि यह आदमी हुआ। और संत के पास लोगों पर जो प्रभाव भी पड़ता है वह प्रभाव इतना काव्यात्मक होने वाला है--क्योंकि संत एक संगीत है, उसका प्रभाव भी एक काव्य है--उस काव्य के कारण वह पुराण जैसा लगेगा, इतिहास जैसा कभी नहीं लगेगा।
समझने की कोशिश करो। लाओत्से को प्रेम करने वाले लोगों ने लिखा है कि लाओत्से बूढ़ा ही पैदा हुआ। अब यह कहीं होता है? यह तो बात पागलपन की हो गई। अस्सी साल का पैदा हुआ। अस्सी साल मां के गर्भ में रहा। और जब पैदा हुआ तो उसके बाल सफेद थे--हिमश्वेत। एक भी बाल काला नहीं था। अब यह तो अपने हाथ से लाओत्से को बाहर फेंकना है इतिहास के। ऐसा तो कहीं होता नहीं। लेकिन यह काव्य है, यह मिथ है, पुराण है। और लाओत्से जैसे व्यक्ति के जीवन में इतना अंतर-संगीत है कि उसका प्रभाव भी काव्य में ही पड़ता है। मानने वाले यह कह रहे हैं कि लाओत्से जन्म के साथ ही बोधपूर्वक जीया। इसलिए बूढ़ा है। अधिक लोग तो बचकाने ही मर जाते हैं। इसमें हमें कोई अड़चन नहीं है। अस्सी साल का आदमी भी बचकाना ही मरता है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोचिकित्सक के पास जाकर कह रहा था कि अब आपको कुछ करना पड़े। यह जरा जरूरत से ज्यादा हुआ जा रहा है। मेरी पत्नी टब में बैठ कर रबर की बतख से घंटों खेलती रहती है। रोकिए! मनोचिकित्सक ने कहा कि इसमें कुछ ऐसा चिंतित होने का कारण नहीं है। अगर खेलती भी रहे तो बतख से ही खेलती है; किसी का कुछ नुकसान भी नहीं कर रही, कोई हानि भी नहीं कर रही। और पत्नी अगर बतख से खेल रही है तो घर में भी शांति रहेगी, तुम भी चैन में रहोगे। इसमें हर्ज क्या है? यह तो बहुत बेहतर ही है। जिनकी पत्नियां नहीं खेलती हैं, उनको भी खेलना सिखाना चाहिए। इससे तुम चिंतित मत होओ। यह तो बिल्कुल इनोसेंट है, निर्दोष बात है। खेलने दो। नसरुद्दीन ने कहा, कैसे खेलने दो? मुझे खेलने का वक्त ही नहीं मिलता। चौबीस घंटे बतख लिए बैठी है। तो हम कब खेलें?
अस्सी साल के भी हो जाओ तो भी खिलौनों का ही तो खेल चलता है। खिलौनों के बाहर कहां हो पाते हो? धन-संपत्ति खिलौना है। यश-पद-प्रतिष्ठा खिलौना है। खिलौने का मतलब समझते हो? खिलौने का मतलब जो खेल में उलझाए रहे, उलझाए रखे। खिलौने का मतलब है जो खेल में लगाए रखे। तो जिन-जिन खेलों में तुम्हें जो-जो चीजें लगाए रखी हैं वे सब खिलौना हैं। कोई राजनीति के खेल में लगा है तो राजनीति खिलौना है। तो जिंदगी भर दिल्ली जाने में लगी है बिना इस बात की फिक्र किए कि दिल्ली पहुंच कर करना क्या है। यह पहुंच कर ही सोचेंगे, क्योंकि फुरसत भी नहीं है सोचने की। पहुंच कर ही पता चलता है, पहुंच गए, अब करने को क्या है? अब पीछे लौटते जाते भी नहीं बनता, क्योंकि नाहक बदनामी होगी। अब पूंछ कट गई। अब पीछे जाकर भी लोगों को क्या बताएंगे? तो पहले लोग दिल्ली जाने की कोशिश में लगे रहते हैं, फिर दिल्ली में अड़े रहने की कोशिश में लगे रहते हैं कि अब यहां से जाना कैसे! अब कट गई पूंछ तो अब यहां टिके रहो, बताए रहो कि सब ठीक है, बड़ा आनंद आ रहा है। खेल चल रहे हैं बुढ़ापे तक। तो इसको तो मानने में हमें कोई अड़चन नहीं है कि आदमी बचकाना ही मर गया। इससे उलटी घटना घटी है लाओत्से के जीवन में कि वह बचकाना कभी था ही नहीं; चाइल्डिश, बचकाना कभी भी न था। बूढ़ा ही पैदा हुआ। बड़ा काव्यपूर्ण वक्तव्य है। लेकिन इतिहास में कैसे इसे जमाओगे? इसको जमाना मुश्किल है। इसको इतिहास में बिठाना मुश्किल है।

जो मध्य में जीता है वह संगीत में जीता है। उसका प्रभाव भी पड़ता है तो प्रभाव भी बड़ा सपनीला, बड़ा काव्यात्मक, जैसे एक झोंका आया, फूल की एक सुगंध आई और चली गई, और फिर तुम याद करते रह गए। लेकिन फूल की सुगंध किसी को बताओ भी तो कैसे बताओ? और लाओत्से जैसे फूल कभी-कभी खिलते हैं, आकाश-कुसुम की भांति, पृथ्वी के फूल नहीं हैं। इसलिए उनकी सुगंध की याद जिन पर छूट जाती है वे गीत गाते हैं, नाचते हैं, उत्सव मनाते हैं, लेकिन बता नहीं पाते कि हुआ क्या है। मदमस्त हो जाते हैं।
इस सारी बात के पीछे कारण है कि संत मध्य में जीता है। नहीं तो इतिहास में कोई परिणाम छोड़ जाएगा।
"जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है, उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं।"
जो अशुभ है, जो हमारे भीतर बुराई है, जिसको शैतान कहें, जिसको लाओत्से अशुभ आत्मा कह रहा है, इसका बल खो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इसकी ऊर्जा खो जाती है। इसका इतना ही अर्थ है कि इसका बल रूपांतरित हो जाता है। ऊर्जा तो शेष रहती है, क्योंकि ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। संसार में कुछ भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ बदलता है, रूपांतरित होता है। रूप बदलते हैं, ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। ऊर्जा तो बनी रहती है, लेकिन लोगों को कष्ट देना बंद कर देती है।
"इतना ही नहीं कि लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती है... ।"
वह जो अशुभ चेतना के प्रभाव में या अशुभ के प्रभाव में पड़ी हुई आत्मा
है वह लोगों को नुकसान करना बंद कर देती है, इतना ही नहीं।
"संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।"
संत ऐसे जीता है जैसे नहीं है; हवा के झोंके की तरह जीता है। तुम्हारे पास से भी गुजर जाता है, तुम्हें याद भी आती है, स्पर्श भी होता है, अनुभव भी होता है, लेकिन अदृश्य। तुम पर आक्रामक नहीं, तुम्हें बदलने को आतुर नहीं। तुम्हें अच्छा बनाने की भी चेष्टा नहीं है संत की, क्योंकि अक्सर होता है तुम्हें अच्छा बनाने की चेष्टा में ही तुम बुरे हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारे अहंकार को वह चेष्टा भी बाधा डालती है।
किसी को भूल कर अच्छा बनाने की कोशिश मत करना। और अगर कोशिश की और वह बुरा हो जाए तो अपने को जिम्मेवार समझना। लोग सोचते हैं, हमने इतनी कोशिश की, फिर यह आदमी अच्छा न हो पाया! असलियत उलटी है। तुम्हारी इतनी कोशिश के कारण ही हो गया।
अच्छे बाप के घर बुरे बेटे पैदा होते हैं, क्योंकि अच्छा बाप बड़ी कोशिश करता है बेटे को अच्छा बनाने की। अपने से ऊंचा न जा सके तो कम से कम अपने तक तो हो जाए। यह कोशिश इतनी ज्यादा हो जाती है कि बेटे के लिए फंदे जैसी लगने लगती है। बेटे की अस्मिता को चोट पहुंचती है। बेटा इस बाप की अगर माने तो मुर्दा हो जाएगा। आज्ञा तोड़नी जरूरी है। बाप से विपरीत जाना जरूरी है। क्योंकि विपरीत जाकर ही बेटे अपने अस्तित्व को अनुभव करेंगे। यह अनिवार्य है।
जैसे मां के पेट के बाहर बच्चा जाएगा, यह जरूरी है नौ महीने के बाद। जाना ही चाहिए। जिस दिन मां के पेट के बाहर बच्चा जाता है उस दिन दूर जाने की प्रक्रिया शुरू हुई। यह चलती रहेगी। फिर जिस दिन बेटा पड़ोस के बच्चों के साथ खेलने लगेगा, वह मां से और दूर गया। मां बड़ी कोशिश करेगी कि किसी के साथ खेलने न जाने दे, घर में ही बंद रख ले। लेकिन फिर बेटा बड़ा कैसे होगा? उसका अहंकार कैसे निर्मित होगा? फिर बेटा स्कूल जाएगा, और दूर गया। फिर हॉस्टल में रहने लगेगा, और दूर गया। फिर किसी एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाएगा। उस दिन, उस दिन गर्भ से जो काम शुरू हुआ था, पूरा हुआ। अब वह खुद ही गर्भ देने के योग्य हो गया, प्रक्रिया पूरी हो गई।
और जिस दिन बेटा किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, मां कितना ही उत्सव मनाए, भीतर दुखी और पीड़ित होती है। इसीलिए तो मां-बाप प्रेम को बिल्कुल बरदाश्त नहीं करते। विवाह को बरदाश्त कर लेते हैं, प्रेम को बरदाश्त नहीं करते। क्योंकि विवाह के आयोजक वे ही होते हैं, प्रेम का आयोजन बेटा खुद कर लेता है। उसका मतलब वह बिल्कुल इतनी दूर चला गया कि जीवन की इतनी गहनतम बात

का भी निर्णय खुद ले रहा है। उस संबंध में भी बाप से पूछने नहीं आया। प्रेम को स्वीकार करना बाप को कठिन पड़ता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की एक अभिनेता के प्रेम में पड़ गई। जैसा कि अक्सर लड़कियां पड़ जाती हैं; फिर पछताती हैं, क्योंकि अभिनेता यानी अभिनेता। बाप को आकर कहा, डरते हुए कहा। मुल्ला नसरुद्दीन ने सुन कर कहा कि बकवास बंद! अभिनेता? ये लुच्चे-लफंगे? इनके साथ प्रेम? जिंदगी खराब करनी है? पर उस लड़की ने कहा, पापा, मेरा प्रेम हो गया है। उसने कहा, छोड़, प्रेम-व्रेम से क्या लेना-देना? जिंदगी भर का सवाल है। यह मैं कभी बरदाश्त न करूंगा। तू कोई भी खोज ले अभिनेता को छोड़ कर।
लेकिन बेटी पीछे ही लगी रही। आखिर धीरे-धीरे बाप को उसने फुसलाना शुरू
कर लिया। गांव में नाटक कंपनी आई जिसमें वह लड़का अभिनेता था। तो बेटी ने नसरुद्दीन को राजी कर लिया कि आप एक दफा देख तो लें उसको चल कर। नसरुद्दीन ने अभिनय देखा। अभिनय के पूरे होने पर लड़की से कहा कि नहीं, लड़का अच्छा है, देख-दिखाव भी अच्छा, व्यक्तित्व शानदार, प्रभावशाली। तू शादी कर सकती है; लड़का मुझे पसंद आ गया। और जिस बात से मुझे अड़चन थी वह अब न रही। क्योंकि उसके अभिनय से पक्का मुझे भरोसा आ गया कि यह कोई अभिनेता नहीं है। उसके अभिनय से मुझे पक्का भरोसा आ गया कि यह कोई अभिनेता नहीं है। तू कर सकती है शादी।
मैंने नसरुद्दीन को पूछा कि यह तुमने क्या किया? उसने कहा, बाप की इज्जत भी तो बचानी पड़ती है। अब जब बात इस सीमा तक चली गई कि लौटने का उपाय ही नहीं दिखता तो आज्ञा देना ही उचित है।
प्रेम की आज्ञा भी बाप तभी देता है, मां तभी देती है, जब बात इस सीमा तक पहुंच गई कि लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। बेमर्जी से ही देता है। क्योंकि यह आखिरी टूट है। अब यह बेटी, यह बेटा किसी और का हो गया। मगर यह जरूरी है। मां तो चाहेगी कि बेटा कभी किसी के प्रेम में न पड़े। ऐसी भी मां हैं जो इतना दबा देती हैं गर्दन को कि बेटा किसी के प्रेम में पड़ ही नहीं सकता। पर उन्होंने मार डाला। उन्होंने हत्या कर दी। उन्होंने जन्म न दिया, मौत दे दी।
इसीलिए तो सास और बहू की कलह शाश्वत है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं दिखता। क्योंकि मां अकेली अधिकारिणी थी प्रेम की। फिर अचानक एक अजनबी औरत को यह लड़का घर ले आया, जिसका न कोई पता-ठिकाना, न कोई हिसाब। कल की अजनबी और अचानक पूरे हृदय पर काबू कर लिया उसने! और जिस बेटे को मैंने जन्म दिया--मां सोचती है--वह मेरा न रहा, और एक दूसरी औरत का हो गया! यह कलह बड़ी गहरी है। भला करने की भी अतिशय कोशिश बुरे में ले जाएगी। क्योंकि बेटे को अहंकार, बेटी को अपना अहंकार निर्मित करना जरूरी है। प्रकृति चाहती है कि वे व्यक्ति बनें। और व्यक्ति बनने का उनके पास एक ही उपाय है कि वे आज्ञा तोड़ें। इसलिए बेटों को इस तरह की आज्ञा देना जिनको वे तोड़ भी सकें और उनका कोई नुकसान भी न हो। यह बड़ी नाजुक कला है। बेटे को ऐसी कुछ आज्ञाएं जरूर देना जिनको वह तोड़ सके, और तोड़ कर उसका अहंकार निर्मित हो सके, लेकिन उनको तोड़ने में वह बर्बाद न हो जाए।
बच्चों को जन्म देना बहुत आसान, मां-बाप बनना बहुत कठिन है।
लाओत्से कहता है, "संत भी लोगों की हानि नहीं करते।"
वह तभी होता है जब शुभ-अशुभ दोनों संगीत को उपलब्ध हो जाते हैं। तब संत चेष्टा नहीं करता किसी को बदलने की, पर उसकी निश्चेष्टा में ही दूसरे बदलते हैं। वह किसी की गर्दन को नहीं जकड़ लेता, लेकिन उसकी मौजूदगी में, उसकी हवा में लोग बदलते हैं। वह किसी को बदलने नहीं जाता, लेकिन परोक्ष, उसका होना ही, लोगों के लिए परिवर्तन का कारण हो जाता है।
इसी को तो लाओत्से कहता है, बिना किए करने की कला। संत तो सिर्फ एक दीए
की भांति है, जिसकी रोशनी में तुम्हें चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। और तुम खुद ही अपने को बदलने में लग जाते हो। क्योंकि जब तुम्हें दिखाई पड़ता है मार्ग तो तुम कब तक भटकोगे?
मगर दो तरह के लोग हैं दुनिया में। बड़ी पुरानी सूफी कथा है कि एक मूढ़ और
एक ज्ञानी एक जंगल से गुजरते थे। दोनों रास्ता भूल गए थे। बिजली चमकी। बड़ी

प्रगाढ़ बिजली थी। अंधकार क्षण भर को कट गया। मूढ़ ने आकाश में बिजली को देखा। ज्ञानी ने नीचे रास्ते को देखा। मूढ़ ने जब बिजली चमकी तो ऊपर देखा।
जब बिजली चमकी तो ज्ञानी ने नीचे देखा। उस नीचे देखने में रास्ता साफ हो गया।
जब कभी तुम किसी संत के पास रहो, नीचे देखना, अपने पैरों के पास देखना। क्योंकि उसकी रोशनी वहां पड़ रही है। संत के चेहरे को देखने से कुछ भी न होगा; उसका चेहरा कितना ही मनमोहक हो। संत के शब्दों से प्रभावित होने से कुछ भी न होगा; उसके शब्द कितने ही गहरे हों। संत की महिमा को गाने से कुछ भी न होगा; उसकी महिमा कितनी ही ऊंची हो। जब तुम संत के करीब जाओ तो अपने पैरों के पास नीचे देखना। क्योंकि संत एक चमकती हुई कौंध है। अगर तुम समझदार हो तो तुम अपने रास्ते को खोज लोगे। और अगर नासमझ हो तो या तो तुम संत के पक्ष में हो जाओगे उसके चेहरे को देख कर, शब्दों को सुन कर, उसके व्यक्तित्व के प्रभाव में या विपक्ष में हो जाओगे। दोनों मूढ़ताएं हैं। ज्ञानी नीचे देख कर अपने रास्ते को समझ लेता है। संत के पास एक रोशनी है। और अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाए रास्ता तो तुम कब तक उससे भटकोगे? भटकते हो, क्योंकि दिखाई नहीं पड़ता है। भटकते हो, क्योंकि आंखें अंधेरे से भरी हैं।
और ध्यान रखना अपने जीवन में भी कि कभी किसी दूसरे को बदलने की चेष्टा
मत करना। उलटे परिणाम आएंगे। तुम जो चाहोगे उससे उलटा हो जाएगा। अगर किसी को बदलना चाहते हो तो बदलने की कोशिश ही मत करना। सिर्फ अपने को वैसा बना लेना जैसा तुम चाहते हो कि दूसरा बने; बस। फिर अगर तुम्हारे माधुर्य से ही, तुम्हारी मौजूदगी से कुछ हो जाए हो जाए, न हो न हो। प्रत्यक्ष चेष्टा घातक है, हिंसात्मक है। परोक्ष इशारा बहुमूल्य है।
"और जब दोनों एक-दूसरे की हानि नहीं करते--न शुभ अशुभ की हानि करता है, न अशुभ शुभ की--तब मौलिक चरित्र स्थापित होता है। व्हेन बोथ डू नाट डू ईच अदर हार्म दि ओरिजिनल कैरेक्टर इ.ज रिस्टोर्ड।"
वही चरित्र वास्तविक चरित्र है, जब तुम्हारे भीतर न शुभ को अशुभ हानि पहुंचाता है, न शुभ अशुभ को हानि पहुंचाता है। जब तुम्हारे भीतर क्रोध और करुणा में कोई संघर्ष नहीं, काम और ब्रह्मचर्य में कोई विरोध नहीं, बुरे और भले का संघर्ष बंद हो जाता है, जब तुम्हारे भीतर राम और रावण गले में हाथ डाल कर आलिंगनबद्ध खड़े होते हैं, तभी तुम्हारा मौलिक चरित्र, तुम्हारा स्वभाव जो द्वंद्व के अतीत है, जो दुई के बाहर है, जो द्वैत के पार है, जो अद्वैत है, उसकी पहली झलक, उसकी कली खिलनी शुरू होती है, उसका फूल बनना शुरू होता है। अकेले राम तुम अधूरे हो, अकेले रावण तुम अधूरे हो; कथा चलेगी, लेकिन तुम पूरे न हो पाओगे।
हिंदू बहुत ही इस गणित में कुशल हैं। इसलिए राम को उन्होंने पूर्णावतार नहीं कहा; कृष्ण को कहा। क्योंकि कृष्ण में राम और रावण दोनों संयुक्त हो गए हैं। कृष्ण में बुराई भी है, भलाई भी है, और दोनों के बीच एक तालमेल है। कृष्ण से ज्यादा बेईमान आदमी न खोज सकोगे। ईमानदार भी खोजना मुश्किल है। वचन दे और तोड़ दे। कहा युद्ध में अस्त्र न उठाऊंगा और उठा लिया। यह कोई भरोसे का आदमी नहीं है। अगर तुम न समझो तो कृष्ण तुम्हें अवसरवादी मालूम पड़ेंगे। और अगर तुम समझो तो तुम्हें परम संत का दर्शन कृष्ण में हो जाएगा। क्योंकि कृष्ण क्षण-क्षण जीते हैं, और समग्रता से जीते हैं। क्षण का यथार्थ जो पैदा करवा देता है उसी को जी लेते हैं। कृष्ण में राम और रावण का मेल हो गया है। और इसीलिए कृष्ण को हिंदुओं ने पूर्णावतार कहा है। राम अधूरे हैं।
दो दिन पहले ही कोई मुझसे पूछता था। जो पूछता था व्यक्ति वे रामचरित मानस के कथा-वाचक हैं। तो वे मुझसे पूछते थे कि आप राम पर क्यों नहीं बोलते? तो मैंने कहा कि मुझे राम में ज्यादा रस नहीं है। उनको बड़ी चोट लगी होगी। पूछने लगे, क्यों रस नहीं है? मैंने कहा, यह जरा लंबी बात है। रस इसीलिए नहीं है कि राम अधूरे हैं। और कृष्ण में मुझे रस है, क्योंकि कृष्ण पूरे हैं।

और पूरा आदमी बेबूझ होगा। क्योंकि उसमें बुराई-भलाई दोनों का ऐसा सम्मिलन होगा कि तुम पहचान ही न पाओगे कि क्या बुरा है और क्या भला। पूरा आदमी अनूठा होगा; पकड़ मुश्किल हो जाएगी।
राम को पकड़ना आसान है। इसलिए लोग राम के भक्त हैं। इसलिए राम का बड़ा व्यापी प्रभाव पड़ा। कृष्ण का अगर कोई भक्त भी है तो वह भी चुनाव करता है; पूरे कृष्ण को नहीं मानता वह। कुछ हैं जो गीता के कृष्ण को मानते हैं; उनको भागवत का कृष्ण पसंद नहीं पड़ता। कुछ हैं जो कृष्ण के बाल-चरित्र को मानते हैं; उनका युवा चरित्र पसंद नहीं पड़ता।
सूरदास को युवा चरित्र पसंद नहीं है। बच्चा लड़कियों के साथ छेड़खानी करे, चल सकता है; जवान आदमी छेड़खानी करे, बरदाश्त के बाहर है। तो सूरदास के कृष्ण बालक ही बने रहते हैं। वे पैरों में घुंघरू बांध कर ही चलते रहते हैं। उनके पांव की पैजनियां बजती रहती है। उससे बड़ा नहीं होने देते वे उनको। क्योंकि उससे बड़ा हुआ तो यह आदमी खतरनाक है। बालक को हम पसंद कर लेते हैं। छोटा बच्चा अगर कपड़े चुरा कर चढ़ जाए स्त्रियों के वृक्ष पर तो कोई ऐसी बड़ी एतराज की बात नहीं है। लेकिन जवान? तो फिर जरा अड़चन शुरू होती है। हमारी नीति को बाधा आनी शुरू होती है। तो यह हम रावण में तो बरदाश्त कर सकते हैं, लेकिन कृष्ण में कैसे बरदाश्त करेंगे?
इसलिए हमने अशुभ को और शुभ को बिल्कुल अलग-अलग कर रखा है। और ध्यान रखना, जिंदगी में दोनों इकट्ठे हैं। और जिंदगी का पूरा राज उसी ने जाना जिसने दोनों को साथ जी लिया। जिंदगी की आखिरी ऊंचाई उसी की है जिसने पूरे जीवन को जीया--बिना चुनाव किए, बिना काटे। कठिन तो जरूर है।
राम का जीवन आसान है, क्योंकि एकंगा है, साफ-सुथरा है, गणित पक्का है। जो-जो ठीक-ठीक है वह-वह करना है। जो गैर-ठीक है, बिल्कुल नहीं करना है। रावण का जीवन भी साफ-सुथरा है। दोनों के गणित सीधे हैं। उलझन है कृष्ण के जीवन में। वहां गणित खो जाता है और पहेली निर्मित होती है। वहां साफ-सुथरापन विलीन हो जाता है और रहस्य का जन्म होता है। क्योंकि वहां सभी द्वंद्व एक साथ हो गए; सभी द्वैत मिल गए। कृष्ण अद्वैत हैं।
लाओत्से को अगर तुम्हें समझना हो तो लाओत्से उस परम बिंदु की तरफ इशारा कर रहा है। उसको वह कहता है मौलिक चरित्र। तुम्हारा स्वभाव उसी दिन प्रकट होगा जिस दिन राम और रावण तुम्हारे भीतर आलिंगनबद्ध हो जाएं। यह बहुत कठिन है। इससे कठिन और कुछ भी नहीं। लेकिन इसे बिना किए जीवन की निष्पत्ति नहीं होती। जब तक यह घटित न हो जाए तब तक तुम अधूरे रहोगे और बेचैन रहोगे। पूरे होने की बेचैनी है। अधूरा कभी भी चैन को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह तुम्हारा वर्तुल आधा न रहे, पूरा हो जाए, कि फिर परम चैन शुरू हो जाता है।
आज इतना ही।

एक सौ एकवां प्रवचन

स्त्रैण गुण से बड़ी कोई शक्ति नहीं

Chapter 61

Big And Small Countries

A big country (should be like) the delta low-regions,
Being the concourse of the world, (and) the Female of the world.
The Female overcome the Male by quietude,
And achieves the lowly position by quietude.
Therefore if a big country places itself below a small country,
It absorbs the small country;
(And) if a small country places itself below a big country,
It absorbs the big country.
Therefore some place themselves low to absorb (others),
Some are (naturally) low and absorb (others).
What a big country wants is but to shelter others,
And what a small country wants is but to be able to come in
And be sheltered.
Thus (considering) that both may have what they want,
A big country ought to place itself low.

अध्याय 61

बड़े और छोटे देश

बड़े देश को नदीमुख नीची भूमि की तरह होना चाहिए ,
क्योंकि वह संसार का संगम है , और संसार का स्त्रैण गुण है।
स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है , और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।
इसलिए यदि एक बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रखता है ,
तो वह छोटे देश को आत्मसात कर लेता है।
और यदि छोटा देश अपने को बड़े देश के नीचे रखता है ,
तो वह बड़े देश को आत्मसात कर लेता है।
इसलिए कुछ दूसरों को आत्मसात करने के लिए अपने को नीचे रखते हैं ;
कुछ स्वभावतः ही नीचे होते हैं और दूसरों को आत्मसात करते हैं।
बड़ा देश यही तो चाहता है कि दूसरों को शरण दे ,
और छोटा देश चाहता है कि वह प्रवेश पा सके और शरण पाए।
इस प्रकार यह विचार कर कि वे दोनों वह पा सकें जो वे चाहते हैं ,
बड़े देश को अपने को नीचे रखना चाहिए।

वर्षा होती है तो बड़े -बड़े पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं ; झील, गड्ढे , घाटियां पानी से भर जाती हैं , भरपूर हो जाती हैं। पहाड़ खाली रह जाते हैं , क्योंकि पहले से ही भरे हुए हैं , अपने से ही भरे हुए हैं ; गड्ढे , घाटियां , झीलें भर जाती हैं , क्योंकि वे खाली हैं। वहां जगह है , अवकाश है , दूसरे को आत्मसात कर लेने की सुविधा है।

परमात्मा भी प्रतिपल बरस रहा है। अगर तुम पहाड़ों की तरह हो --अपने ही अहंकार से भरे हुए --तो खाली रह जाओगे। अगर तुम झील , घाटियों की तरह हो --शून्य , रिक्त --तो तुम भर जाओगे। खाली रहना हो अगर तो अहंकार से भरे रहना। भरना हो अगर तो अहंकार से खाली हो जाना। जो शून्य की भांति हो जाता है वह

पूर्ण से भर जाता है। और जो अपने को सोचता है कि मैं पूर्ण ही हूं वह खाली ही मर जाता है। यह बड़ा विरोधाभास है। लेकिन समझो तो सीधा-साफ है।
जीसस ने कहा है, अपने को बचाना चाहो तो मिट जाना, और अपने को मिटाने पर
ही तुले हो तो फिर अपने को बचाए रखना। जो मिटेगा वह पा लेगा; और जो अपने को बचाएगा वह अपने बचाने की कोशिश में ही खो देता है।
इस राज को ठीक से समझ लो। यह व्यक्ति के संबंध में भी लागू है, समाज के संबंध में भी, राज्य के संबंध में भी, देशों-राष्ट्रों के संबंध में भी। नियम तो एक ही है। फिर उस नियम की अनेक अभिव्यक्तियां हैं। नियम यह है कि तुम खाली होना सीखो। पहली बात, इस सूत्र को समझने के पहले, खाली होने की कला।
गुरु के पास शिष्य बैठता है। अगर वह भरा हो, कुछ भी न सीख पाएगा। तुम अगर मेरे पास भरे हुए आए हो, अपने ही ज्ञान, अपने ही शास्त्र से, तो तुम खाली ही लौट जाओगे। मैं लाख उपाय करूं, मैं लाख तुम्हारे चारों तरफ हवा निर्मित करूं, कुछ भी न होगा। तुम अगर खाली ही नहीं हो तो तुममें द्वार कहां? जगह कहां है जहां से मैं प्रवेश कर सकूं? तुम्हारे सिंहासन पर तुम स्वयं ही बैठे हो; वहां और किसी को बिठाने का अब कोई उपाय नहीं।
गुरु के पास शिष्य अगर ज्ञान से भरा हुआ आए तो व्यर्थ ही समय गंवाता है। गुरु के पास शिष्य खाली होकर आए तो भरा हुआ लौटता है।
इसीलिए तो बहुत प्राचीन समय से शिष्य को गुरु के पास आने की कला सीखनी होती थी। कला का पहला सूत्र है कि तुम जो भी जानते हो वह द्वार के बाहर ही छोड़ आना। तुम ऐसे आना जैसे तुम अज्ञानी हो, जैसे तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। क्योंकि अगर तुम्हें कुछ भी पता है तो वह पता ही तो दीवार बन जाएगा। अगर तुम कुछ भी जानते हो तो वह जानने की अकड़ रुकावट हो जाएगी। तुम्हारी लोच समाप्त हो जाएगी। तुम्हारे द्वार बंद हो जाएंगे। फिर तुम्हारे भीतर, मैं लाख उपाय करूं, तुम मुझे घुसने ही न दोगे। तुम अपनी रक्षा करते रहोगे। गुरु से शिष्य रक्षा करता रहे तो क्या सीख पाएगा? या कि तुम गुरु से तर्क करते रहोगे। तर्क भी रक्षा है। तर्क भी तलवार की तरह है जिससे तुम अपना बचाव करते रहते हो। ताकि वही प्रवेश पा सके तुममें जिसे तुमने पहले से ही जान रखा है। ताकि तुम्हारी ही बढ़ती हो, तुम मिटो न, बढ़ो, तुममें से कुछ बाहर न निकल जाए, भीतर ही आए! तर्क कंजूस की तरह है जो अपनी तिजोरी के सामने रक्षा करता है। कहानियां कहती हैं कि कंजूस मर भी जाए तो सर्प होकर तिजोरी पर कुंडल मार कर बैठ जाता है। वह रक्षा करता है कि जो भीतर है वह बाहर न चला जाए।
पंडित भी अपने ज्ञान की रक्षा करता है। इसलिए पंडित अज्ञानी ही मरता है। अगर तुम्हें पंडित होकर मरना हो--सही-सही अर्थों में पंडित होकर मरना हो--तो तुम अज्ञानी होने को राजी हो जाना। अज्ञान यानी खाली।
कबीर कहते हैं, पढ़-पढ़ जग मुवा पंडित भया न कोय।
पढ़-पढ़ कर लोग मर गए और पंडित न हुए।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ा सो पंडित होए।
लेकिन जिसने छोटा सा प्रेम का शब्द सीख लिया, वह पंडित हो गया।
क्या है प्रेम का राज? प्रेम का राज हैः निरहंकारिता, खाली होना। जिस दिन तुम खाली हो उसी दिन सारे जगत की ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहनी शुरू हो जाती है। गड्ढा बन कर देखो; तुम पाओगे, सब तरफ से दौड़ने लगा परमात्मा तुम्हें भरने को। गड्ढा बनना हो तो दूसरी बात ख्याल रखनी जरूरी हैः नीचे होना सीखो! नदी गिरती है समुद्र में, क्योंकि समुद्र नदी से नीचा है। समुद्र इतना विराट है कि नदी से ऊपर होता अगर जरा सी भी अकड़ होती। विराट सागर नीचे है, छोटी-छोटी नदियां ऊपर हैं। लेकिन सभी नदियों को सागर में पहुंच जाना पड़ता है। सागर की कला क्या है? क्योंकि उसने अपने को नीचा बना कर बिठा लिया है। जितना नीचा सागर, उतना बड़ा सागर। प्रशांत महासागर बड़े से बड़ा सागर है, क्योंकि पांच मील गहरा खड्डा है। कोई बच कैसे सकेगा इस गड्ढे से? सारे जल को इसी तरफ भाग जाना पड़ेगा। सारी दुनिया की नदियां इसी तरफ दौड़ती रहेंगी। इसीलिए तो इस सागर को प्रशांत महासागर कहते हैं। बड़ा शांत है! इतना नीचा जो है, वह अशांत कैसे होगा?

अशांति तो तुम्हारे ऊपर होने की आकांक्षा से आती है। अशांति तो तुम जितने सिंहासन पर चढ़ने की कोशिश करते हो उतनी ही बढ़ती जाती है। जब तुम नीचे से नीचे हो जाते हो तब कैसी अशांति? वहां से तो तुम्हें कोई भी हटा न सकेगा। और नीचे जाने का तो कोई उपाय न रहा। वहां से तो तुम्हारा कभी कोई अपमान न कर सकेगा। तुमने आखिरी से आखिरी जगह चुन ली। अब पीछे हटने की जगह ही नहीं है। अब तुम हारोगे कैसे? अब तुम्हें कोई हराएगा कैसे? अब तुम परम विजय में सुदृढ़ हो गए। अब तुमने जिनत्व पा लिया। अब तुम्हारी जीत आखिरी है। अब तुम अपराजेय हो। अब तुम्हें कोई भी नहीं हरा सकता। तुम उस जगह खुद ही पहुंच गए जहां हराने वाले तुम्हें पहुंचाना चाहते हैं। और मजा यह है कि उस जगह पहुंचते ही सारी दुनिया की सभी नदियां तुम्हारी तरफ दौड़नी शुरू हो जाती हैं; ज्ञान की, प्रेम की, प्रकाश की, परमात्मा की सभी नदियां तुम्हारी तरफ दौड़नी शुरू हो जाती हैं।
यह स्वाभाविक है कि जो जितना नीचा है, उतना धनी हो जाता है। जो जितना अकड़ता है, ऊपर चढ़ता है, उतना निर्धन हो जाता है।
इसीलिए तो महावीर और बुद्ध राज-सिंहासन से उतर आए; सड़क पर भिखारी बन कर खड़े हो गए। क्या पागल थे? कुछ बात समझ में आ गई--कि जितने तुम ऊपर चढ़ोगे उतनी ही तुम्हारी तरफ जीवन की धाराएं बहनी बंद हो जाती हैं, जितने तुम नीचे उतरते हो उतने ही तुम पात्र होते चले जाते हो। जिस दिन तुम गड्ढे की भांति हो जाते हो, सबसे नीचे, उस दिन तुम्हारी पात्रता विराट है। उस दिन परमात्मा तुम्हें भरेगा--सब द्वारों से, सब दिशाओं से, सब आयामों से।
तो अगर गड्ढा बनना हो तो नीचे से नीचे हो रहना। मगर मन उलटा ही समझता है। मन उलटा ही मार्ग दिखाता है। और मन तुमसे जो-जो करने को कहता है वह इतना तर्कयुक्त है कि उसमें छिपा हुआ भ्रांति का, भूल का, अज्ञान का मूल स्वर दिखाई नहीं पड़ता। और मन का गणित विरोधाभासी नहीं है। मन कहता है, ऊपर होना हो तो ऊपर चढ़ो। ऊपर होना हो तो नीचे जाना, यह कौन सी बुद्धिमानी है? ऊपर जाना हो, सीढ़ी लगाओ। धन पाना हो; राजमहलों में है। यश-कीर्ति पानी हो; पदों में, प्रतिष्ठा में है।
और मन का गणित बिल्कुल सीधा साफ-सुथरा है। बात जंचती है। धन पाना हो तो
धन पाओ, यश पाना हो तो यश पाओ, बचना हो तो बचाओ। ये जीसस, ये बुद्ध, ये लाओत्से, इन सबकी खोपड़ी कुछ उलटी मालूम होती है। मन कहता है, इनकी बातों में फंसे कि उलझ जाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। ये क्या समझा रहे हैं? ये तो बिल्कुल अतर्क्य बातें कर रहे हैं। ये कह रहे हैं, ऊपर जाना हो तो नीचे जाओ। ये कह रहे हैं, बड़ा होना हो तो छोटे हो जाओ। ये कहते हैं, धन पाना हो तो भिखारी हो जाओ। ये कहते हैं, भिक्षा-पात्र में छिपा है सिंहासन, और सिंहासनों में सिवा भिक्षा-पात्रों के कुछ भी नहीं।
साफ है कि हम मन की मान लेते हैं, क्योंकि मन का गणित बहुत साफ मालूम पड़ता है। काश, मन का जो गणित है वही जीवन का भी गणित होता तो तुम हारे हुए न होते, तो तुम्हारे जीवन में कोई पराजय न होती, तो तुम्हारी आंखों में हताशा न होती। तो तुम जीत चुके होते।
लेकिन जीवन मन के गणित से बिल्कुल भिन्न है। मन का गणित मनुष्य का गणित है; कितना ही साफ-सुथरा हो, मनुष्य-निर्मित है। जीवन का गणित बिल्कुल उलटा है। और जीसस, बुद्ध और लाओत्से ठीक कहते हैं, क्योंकि वे जीवन के गणित को पहचान लिए हैं। वे कहते हैं कि बड़े होना है, अगर सच में ही बड़े होना है, नीचे हो जाओ। ऐसा उन्होंने जाना है होकर। और हम भी उनकी महिमा को देखते हैं; उनसे महिमावान कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। सम्राट उनके सामने फीके दिखाई पड़ते हैं। बड़े से बड़े साम्राज्य भी उनके चरण की धूल मालूम पड़ते हैं। यह भी समझ में आता है। इसलिए बिगूचन और बढ़ जाती है, उलझन और बढ़ जाती है। क्या करें?
मन भीतर एक गणित सुझाता है; जीवन का गणित बिल्कुल अलग है। मन के गणित को छोड़ देना संन्यास है। जीवन के गणित को पकड़ लेना संन्यास है। मन के गणित से जाग जाना होश है। जीवन के गणित को पहचान लेना बुद्धत्व है। और जीवन का गणित बिल्कुल विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। और तुम्हें भी अपने जीवन में कभी-कभी उसकी झलक मिलती है, क्योंकि तुम भी जीवन से जुड़े हो। मन कुछ भी कहे,

तुम भी जीवन में कभी-कभी झलक पाते हो। लेकिन चूंकि मन के गणित को तुमने इतने जोर से पकड़ लिया है, उन झलकों को तुम हटा देते हो; कभी तुम उन पर सोचते नहीं। कभी तुमने ख्याल किया कि जब तुम दूसरे के सामने झुकते हो तो अचानक दूसरा तुम्हारे सामने झुक जाता है। ऐसा अनुभव तुम्हें बिल्कुल नहीं आया? जरूर आया होगा। जब तुम किसी के सामने बिल्कुल छोटे हो जाते हो, तभी तुम अचानक पाते हो कि दूसरे के हृदय में तुम्हारे लिए अति सम्मान पैदा हो गया। तुमने जब भी थोड़ी-बहुत अपनी महिमा का स्वर सुना होगा वह विनम्रता में सुना होगा। जब तुम किसी को कुछ देते हो तब तुम्हारे भीतर के धन की कोई सीमा है! और जब भी तुम किसी से कुछ छीन लेते हो तब तुमने ख्याल किया कि भीतर तुम कैसे दरिद्र हो जाते हो! यह तुम्हें अनुभव में भी आता है, लेकिन इस अनुभव को तुम कभी विचार नहीं करते।
कभी कुछ देकर देखो किसी को। चीज तो जाती है हाथ से, धन जाता है; लेकिन कुछ और, जो सभी धनों से बड़ा धन है, अचानक तुम्हें भर देता है। दान का वही तो मजा है। इसलिए तो लोग इतना रस लेते हैं कुछ भेंट देने में। मित्र को, प्रिय को, परिजन को तुम कुछ भेंट देते हो। उस भेंट देने में तुमने जो स्वर सुना है, उसको थोड़ा समझो। वह जीवन का स्वर है। देकर तुम पाते हो; देने में कुछ मिलता है।
और जब तुम किसी चीज को पकड़ लेते हो, तभी तुम खो देते हो। कृपण के पास धन होता ही नहीं, दिखाई पड़ता है। क्योंकि दान तो उसने सीखा नहीं; देना तो उसने जाना नहीं; तो धन को देकर जो मिल सकता था, वह वंचित रह गया है। वह पकड़ना जानता है; वह धन का भोग करना नहीं जानता। धन का एक ही भोग है कि तुम उसे दो। जब तुम देते हो तो तुम किसी परम धन को पाने के अधिकारी हो जाते हो। बांटो, तब तुम पाते हो कि तुम बढ़ते हो। बचाओ, और तुम पाते हो कि तुम सिकुड़ते हो।
यह ऐसे ही है कि अगर तुम्हें गहरी श्वास लेनी हो तो उतनी ही गहरी श्वास बाहर फेंकनी पड़ती है। तुम जितने जोर से बाहर श्वास फेंकते हो उतनी ही तीव्रता से नई हवाएं तुम्हारे अंतःकक्ष को भर देती हैं। तुम अगर भीतर की श्वास को पकड़ लो कृपण की तरह, बाहर न जाने दो--कि श्वास तो जीवन है, इसको बचाएं, भीतर रोकें, सम्हालें। तो तुम जिस श्वास को रोक रहे हो वह मरी हुई श्वास है; उससे आक्सीजन तो विदा हो चुकी, अब तो वह सिर्फ कार्बन डाय आक्साइड है। उससे तुम्हारी मौत होगी। उससे तुम जीवन को न पा सकोगे। और जितनी श्वास तुम भीतर रोके रखोगे उतनी ही नई श्वास को जाने की जगह न रह जाएगी।
और ध्यान रखना कि यही तुम कर रहे हो। फेफड़े में कोई छह हजार छिद्र हैं। लेकिन अच्छी से अच्छी श्वास लेने वाला आदमी भी दो हजार छिद्रों तक ही आक्सीजन को पहुंचा पाता है। चार हजार छिद्र जहर से भरे रह जाते हैं। तुम्हारा पूरा फेफड़ा कभी नई हवा को नहीं ले पाता--तुम ऐसे कृपण हो! यह तुम्हारे पूरे जीवन का ढंग है, इसलिए तुम्हारी हर वृत्ति में छिपा हुआ है। तुम श्वास लेने में भी डर रहे हो। तुम भीतर की श्वास को छोड़ने में भी डरते हो। लेकिन जिस श्वास को तुमने भीतर पकड़ लिया, वह श्वास जहर है। उसे बाहर फेंकना जरूरी था।
इसलिए तो सारे योगी प्राणायाम पर इतना जोर देते हैं। प्राणायाम का अर्थ क्या है?
प्राण धन आयाम, दो शब्द हैं प्राणायाम में। प्राणायाम का अर्थ हैः प्राण को विस्तीर्ण करो, उसके आयाम को बड़ा करो, फैलाओ। श्वास को भीतर मत रोको, बाहर फेंको। जितने जोर से तुम फेंकोगे, भीतर गड्ढा निर्मित होता है, जगह खाली हो जाती है, प्यास पैदा होती है, रोआं-रोआं मांगता है। तत्क्षण नई हवाएं, ताजी हवाएं गंदी हवाओं को बाहर फेंकने के बाद भीतर भर जाती हैं। जीवन आ रहा है। श्वास प्राण है। तुम जितना फेंक सकोगे, उलीच सकोगे श्वास को, उतनी ही ताजी श्वास तुम पा सकोगे।
और यही सूत्र जीवन की सभी प्रक्रियाओं में है--उलीचो बेशर्त। जो तुम्हारे पास है उसे दो। बांट दो। प्रेम को बांटो। हृदय को बांटो। अपने बोध, अपनी समझ को बांटो। जो बांट सको, बांटो। कंजूसी मत करो। जीवन तो तुम्हारे हाथ से ऐसे ही निकल जाएगा। अगर तुमने इसे बांट लिया तो तुम महा जीवन को पा लोगे।

और यह जीवन तो ऐसे ही निकल जाएगा--बांटो या न बांटो। मरते वक्त तुम पाओगे, जिसे बचाया वह जा रहा है। यह जीवन तो ऐसे ही चला जाएगा, तुम बचाते रहो तो भी। और बिना उपयोग किए चला जाएगा। मौत की घड़ी में तुम पाओगे कि तुमने जो- जो बचाया वह सब जा रहा है। काश, तुम इसका उपयोग कर लेते और इसे बांट देते और उसे पा लेते जो कि कभी नहीं जाता है।
जीवन का अवसर बांटने के लिए है, ताकि तुम उसे पा लो जो कभी भी नहीं खोता है, ताकि शाश्वत तुम्हारा हो जाए। लेकिन तुम क्षुद्र को पकड़ लेते हो; शाश्वत से वंचित रह जाते हो। और क्षुद्र तो छीन ही लिया जाएगा।
यह बड़े मजे की बात है। जो छिन ही जाना है उसे देने में क्या कृपणता कर रहे हो? जो चला ही जाएगा अपने आप, जिसका जाना सुनिश्चित है, तुम मालिक क्यों नहीं हो जाते और उसका दान ही क्यों नहीं कर देते हो? तुम मुफ्त में ही कुछ पा लोगे। जो जा ही रहा था, वह जाता ही; तुमने कुछ दिया नहीं। लेकिन देने की भाव-दशा में तुम गड्ढे हो जाते हो; और उस गड्ढे में वह भर जाता है जो कभी नहीं जाता।
अगर अमृत को पाना हो तो मरणधर्मा को बांटो। अगर शाश्वत को पाना हो तो क्षणभंगुर को पकड़ो मत, जाने दो, और जाते क्षण आनंद-उत्सव से जाने दो। क्योंकि अगर तुमने दिया भी और देने में उत्सव न रहा, तो भी देना व्यर्थ हो जाएगा। अगर बेमन से दिया, तो तुम दे भी दोगे, लेकिन तुम जो मिलता देने से वह न मिल पाएगा। बेमन से दिया, दिया ही नहीं। देना ऊपर-ऊपर रहा, भीतर गड्ढा न बना।
लाओत्से कहता है, पहला सूत्र है कि तुम खाली हो जाओ। दूसरा सूत्र है कि खाली होने के लिए तुम समुद्र की तरह नीचे हो जाओ, जहां सारी नदियां आकर गिर जाती हैं।
तुमने समुद्र का कभी विचार किया? सबसे बड़ा, सबसे नीचे! यही बड़े होने का राज है, यही बड़े होने का मार्ग है। और तुमने कभी ख्याल किया? समुद्र में इतनी नदियां गिरती हैं, बाढ़ नहीं आती; इतने बादल जाते हैं, समुद्र सूखता नहीं। क्या राज है? इतनी नदियां गिरती हैं, बाढ़ नहीं आती। गड्ढा बड़ा विराट है। तुम इसमें बाढ़ न ला सकोगे। बाढ़ तो केवल चाय की प्यालियों में आती है। गड्ढा बहुत छोटा है, न के बराबर है; जरा से में भर जाता है। समुद्र में कहीं कोई बाढ़ आती है? गड्ढा इतना विराट है कि डालते जाओ संसार की सारी नदियों को, सागर पीता चला जाता है, कोई बाढ़ नहीं आती। सागर उत्तेजित नहीं होता।
जिस दिन तुम्हारा गड्ढा भी अनंत होगा उस दिन महा सुख की वर्षा होती रहेगी, और तुम उत्तेजित न होओगे।
अभी तो क्षुद्र सुख भी तुम्हें ऐसा उत्तेजित कर देता है, दीवाना कर देता है। तुम चाय की प्याली हो। उसमें बड़े जल्दी तूफान आ जाते हैं। और अभी तो जरा सा भी छलक जाए तो तुम खाली हो जाते हो।
सागर से इतने विराट बादल उठते रहते हैं, कहीं कुछ पता भी नहीं चलता। जिसे लेने का पता न चला उसे देने का पता भी नहीं चलेगा। जो लेते वक्त शांत रहा वह देते वक्त भी शांत रहेगा। सागर अपने में रमा रहता है; जैसा है वैसा बना रहता है। सागर में उतार-चढ़ाव नहीं हैं, बाढ़ नहीं आती, गड्ढा नहीं बनता। सागर करीब-करीब अपने को अपने स्वभाव में लीन रखता है। जिस दिन तुम गड्ढे हो जाओगे, तुम्हारी लीनता भी ऐसी ही होगी। न तो तुम पागल हो जाओगे सुख से और न पागल हो जाओगे दुख से।
अभी दोनों तुम्हें पागल करते हैं। और जब तक सुख-दुख तुम्हें पागल कर सकते हैं, तब तक तुम जानना कि तुम्हें अभी उसका स्वाद नहीं मिला जिसको बुद्धत्व कहते हैं, जिसको लाओत्से ताओ की प्रतीति कहता है। उस स्वाद के मिलते ही सब सुख फीके हैं, सब दुख झूठे हैं, आना-जाना भ्रांति है। तुम उससे जुड़ गए जिसका न कोई आना है, न कोई जाना है। जिसका कोई आवागमन नहीं, जो सदा एकरस है। उसे ही हमने ब्रह्म कहा है।
एक बात और, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।
लाओत्से की अनूठी से अनूठी खोज हैः स्त्रैण का सिद्धांत। लाओत्से कहता
है कि जीवन-सत्य की खोज में तुम स्त्रैण सिद्धांत का अनुसरण करो। तो पहले हम समझ लें कि स्त्रैण सिद्धांत है क्या।

साधारणतः तो तुम समझते हो कि पुरुष शक्तिशाली है। लेकिन तुम बड़ी भ्रांति में हो। अब तो बायोलाजिस्ट्स, जीव-वैज्ञानिक भी राजी हैं कि स्त्री ही ज्यादा शक्तिशाली है। और यह केवल पुरुष का अहंकार है, सदियों से पोसा गया, कि पुरुष यह मानता है कि वह शक्तिशाली है।
थोड़ा सोचो! स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा जीती हैं--पांच साल औसत उम्र ज्यादा। पुरुष पचहत्तर साल जीएगा तो स्त्री अस्सी साल जीएगी। क्यों स्त्रियां पुरुष से ज्यादा जीती हैं अगर पुरुष शक्तिशाली है? स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। और स्त्रियां दुख को सहने में बड़ी क्षमताशाली हैं। पुरुष छोटे-छोटे दुख से उद्विग्न हो जाता है।
तुम थोड़ा सोचो कि पुरुष हो और अगर तुम्हें गर्भ नौ महीने तक खींचना पड़े! तो मैं नहीं सोचता कि एक पुरुष भी नौ महीने तक जिंदा रह सकेगा। एक रात के लिए पत्नी बाहर चली गई हो और बच्चे को तुम्हारे पास छोड़ गई हो, तब तुम्हें पता चल जाता है कि बच्चा कितने उपद्रव मचा रहा है! कि तबीयत होने लगती है कि गर्दन दबा दो! अपनी दबा लो या इसकी दबा दो!
मुल्ला नसरुद्दीन एक बगीचे के पास अपने बच्चे को लेकर टहल रहा था। छोटी सी गाड़ी में बच्चे को बिठाए हुए था और बार-बार कहता जा रहा था, नसरुद्दीन, शांत रहो। नसरुद्दीन, शांत रहो। कोई बात नहीं नसरुद्दीन।
एक बूढ़ी महिला यह सुन रही थी। उसने कहा, बड़ा प्यारा बच्चा है!
और बच्चा चीख रहा है, चिल्ला रहा है, रो रहा है, हाथ-पैर फेंक रहा है। तो
वह बुढ़िया पास आई और उसने बच्चे को कहा कि बेटा नसरुद्दीन, शांत हो जाओ। नसरुद्दीन ने कहा, उसका नाम नहीं है नसरुद्दीन; नसरुद्दीन मेरा नाम है। मैं अपने को शांत रख रहा हूं किसी तरह; नहीं तो या तो इसकी गर्दन दबा दूंगा या अपनी दबा लूंगा।
स्त्री नौ महीने तक पेट में गर्भ को झेलती है, प्रजनन की पीड़ा को झेलती है। फिर बच्चे को बड़ा करना छोटा काम नहीं। पुरुष तो यह समझते हैं कि स्त्रियों के पास काम ही क्या है! क्योंकि वे दुकान चला रहे हैं। स्त्रियां कर ही क्या रही हैं! भ्रांति में हैं। दुकान चलाना जरा भी कठिन नहीं। हजार ग्राहक आसान हैं; यह एक बच्चा उपद्रव ज्यादा है। फिर इसे बड़ा करती हैं। बड़ा करने में इसका लगाव, इसका प्रेम। फिर एक दिन यह विदा हो जाता है; यह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है। उस घाव को भी झेलती हैं।
स्त्रियों की सहनशक्ति पुरुषों से कई गुनी ज्यादा है। पुरुष की सहनशक्ति न के बराबर है। लेकिन पुरुष एक ही शक्ति का हिसाब लगाता रहा है, वह है मसल्स की। क्योंकि वह बड़ा पत्थर उठा लेता है, इसलिए वह सोचता रहा है कि मैं शक्तिशाली हूं। लेकिन बड़ा पत्थर उठाना अकेला आयाम अगर शक्ति का होता तो ठीक है; सहनशीलता भी बड़ी शक्ति है--जीवन के दुखों को झेल जाना। स्त्रियां देर तक जवान रहती हैं, अगर उन्हें दस-पंद्रह बच्चे पैदा न करना पड़ें। तो पुरुष जल्दी बूढ़े हो जाते हैं; स्त्रियां देर तक युवा और ताजी रहती हैं।
जब बच्चे पैदा होते हैं तो प्रकृति को भी, परमात्मा को भी पता है, सौ लड़कियां पैदा करता है, एक सौ पंद्रह लड़के पैदा करता है। क्योंकि चौदह साल के होते-होते पंद्रह लड़के मर जाएंगे; तब संख्या बराबर हो जाएगी। लड़के ज्यादा पैदा होते हैं, लड़कियां कम पैदा होती हैं। क्योंकि विवाह की उम्र आते-आते पंद्रह प्रतिशत लड़के तो समाप्त हो चुके होंगे।
लड़कियां पहले बोलना शुरू करती हैं। बुद्धिमत्ता लड़कियों में पहले प्रकट होती है। लड़कियां ज्यादा सतेज होती हैं, ज्यादा शांत होती हैं। विश्वविद्यालयों में भी प्रतिस्पर्धा में लड़कियां आगे होती हैं।
ऐसा होना भी चाहिए। क्योंकि पुरुष अपरिहार्य नहीं है। पुरुष के बिना काम चल सकता है; स्त्री के बिना काम नहीं चल सकता। स्त्री अपरिहार्य है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। अब तो आर्टिफीशियल इनसेमिनेशन संभव है, पुरुष को बिल्कुल विदा किया जा सकता है। लेकिन स्त्री को विदा नहीं किया जा सकता। इस पर बड़े प्रयोग चलते हैं। पुरुष का उपयोग प्रकृति के सृजन में कितना है?

पुरुष संभोग के क्षण में क्षण भर में तो चुक जाता है; उसका काम पूर्ण हो गया। जो काम पुरुष के लिए क्षण भर में पूरा हो गया है, वह स्त्री के लिए कोई बीस वर्ष लगेंगे। वह उसके पूरे जीवन का ढांचा हो जाएगा। एक बच्चा पैदा होगा; बड़ा होगा; उसका विवाह होगा।
पिता प्राकृतिक नहीं है, सामाजिक है; क्योंकि पशुओं में कोई पिता नहीं है, लेकिन माता है। आदिम युगों में मनुष्यों में भी कोई पिता नहीं था, मां ही थी। पिता तो सामाजिक व्यवस्था है। और इसीलिए तो पुरुष को रोक रखना एक स्त्री के पास बड़ा कठिन काम है। पुलिस लगी है, अदालतें लगी हैं, कानून लगा है, सब भांति कि पुरुष एक स्त्री के पास रुका रहे। लेकिन स्त्री एक पुरुष के पास रुकना चाहती है; कोई कानून को लगाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि पिता बिल्कुल ही अप्राकृतिक है, कृत्रिम है; उसको जोर-जबरदस्ती से रोका गया है। नसरुद्दीन का बेटा अपने बाप से पूछ रहा था कि मैं कानून की किताब पढ़ रहा हूं। आखिर दो शादी करने पर इतनी मनाही क्यों है? यह जुर्म क्यों है? तो नसरुद्दीन ने कहा, बेटा, तुझे पता नहीं; जो अपनी रक्षा नहीं कर सकते, उनकी कानून को रक्षा करनी पड़ती है। अगर कानून रक्षा न करे तो दो पर भी नहीं रुकेगा पुरुष। फिर मुसीबत में पड़ेगा।
पुरुष, पिता, सामाजिक संस्कार है। असली नाता तो बच्चे का मां से है। और पिता का काम बड़ा थोड़ा सा है; वह काम इंजेक्शन भी कर सकता है। लेकिन मां का काम कोई व्यवस्था नहीं कर सकती।
इस पर प्रयोग चले हैं कि क्या मां के गर्भ को भी हम यंत्र में, यांत्रिक गर्भ में भी बच्चे को रख कर बड़ा कर सकते हैं? बच्चा बड़ा हो जाता है--पशुओं के बच्चों पर प्रयोग किए गए हैं--लेकिन वह पागल ही बड़ा होता है। विक्षिप्त हो जाता है पहले ही से। क्योंकि मां का गर्भ सिर्फ यंत्र नहीं है; एक बड़े गहन प्रेम की छाया भी भीतर है जो यंत्र नहीं दे सकता। यंत्र गर्मी दे देगा, प्रेम नहीं दे सकता। गर्मी तो बिजली से भी मिल सकती है। लेकिन मां से जो गर्मी मिलती है, उसमें जो प्रेम का तत्व जुड़ा है, वह बिजली से नहीं मिल सकती।
बंदरों पर एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था हार्वर्ड में। तो उसने दो बंदर-माताएं बनाई थीं। एक बंदर-माता; बिजली का ही सब इंतजाम, उसके स्तन, दूध की सब व्यवस्था, और कंबल से लपेटी हुई थी उसे। और दूसरी माता सिर्फ तारों से बनी थी; उसमें भी सब दूध का सब इंतजाम, गर्मी का इंतजाम। लेकिन बंदर उस मां से दूध पीना पसंद करते थे जिसमें थोड़ा कंबल लिपटा हुआ था। क्योंकि थोड़ा सा मां के शरीर का एहसास, थोड़ा सा मां की चमड़ी का स्पर्श, ऐसी कुछ प्रतीति उसमें थी।
अलग-अलग बंदर पाले गए। जो बंदर मां के पास पाले गए वे, जो कंबल से लिपटी मां के यंत्र से पाले गए वे, और जो तारों से लिपटी मां से पाले गए--उन तीनों में बुनियादी फर्क थे। पहले बच्चे बिल्कुल स्वस्थ थे। दूसरे बच्चे शरीर से बिल्कुल स्वस्थ थे, लेकिन मन से कुछ-कुछ विक्षिप्त थे। और तीसरे बच्चे शरीर से बिल्कुल स्वस्थ थे, लेकिन मन से बिल्कुल विक्षिप्त थे।
मां कुछ और भी दे रही है। पिता तो केवल जीवाणु दे रहा है, जो कि इंजेक्शन से भी दिया जा सकता है; मां कुछ और भी दे रही है। शरीर ही नहीं, उसके जीवन की ऊर्जा, उसके भीतर छिपे हुए प्राण बच्चे को सब तरफ से सम्हाल रहे हैं। यह संभव नहीं है कि यंत्र से किया जा सके। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं, पुरुष को कभी हम विदा भी कर सकते हैं, लेकिन स्त्री को विदा नहीं किया जा सकता। वह ज्यादा मौलिक है, ज्यादा आधारभूत है।
लाओत्से कहता है कि स्त्रैण तत्व सृष्टि का मूल है। पुरुष सहयोगी है, आधार नहीं।
और स्त्रैण तत्व क्या है? स्त्रैण तत्व है, पहली बात समझ लेनी, गड्ढे की भांति। स्त्री क्या है? स्त्री एक गर्भ, एक गड्ढा है। एक रिसेप्टिविटी, एक ग्राहकता है। स्त्री में जगह है, स्पेस है। तभी तो उसमें बच्चा बड़ा हो सकता है। एक दूसरे जीवन को भीतर लेने की संभावना है।
लाओत्से कहता है कि तुम भी स्त्रैण बनो, ताकि तुम भीतर ले सको। परमात्मा भी तुम्हारे भीतर तभी प्रवेश कर सकेगा जब तुम गर्भ की भांति हो

जाओगे। जगह बनाओ, गड्ढा करो, स्थान बनाओ। और परमात्मा को भी तुम तभी सम्हाल सकोगे जब तुम्हारे भीतर स्त्रैण प्रेम--समर्पण होगा। नहीं तो तुम न सम्हाल सकोगे। क्योंकि परमात्मा को सम्हालना एक महानतम गर्भ है, उससे बड़ा कोई गर्भ नहीं। क्योंकि उससे तुम्हारा ही पुनर्जन्म होगा, नया जन्म होगा। तुम अपने ही भीतर को पुनः नए रूप, नए आयाम में उदघाटित करोगे। तुम ही तो जन्मोगे अपने भीतर से।
स्त्रैण का अर्थ हैः भीतर जो खाली है और जिसमें ग्राहकता है। स्त्री लेती है; पुरुष देता है। तुम लेने वाले बनो, गड्ढे की भांति। क्योंकि परमात्मा तो दे ही रहा है; उसकी वर्षा तो हो ही रही है।
पुरुष आक्रामक है। कोई स्त्री इतना भी आक्रमण नहीं करती पुरुष पर कि उससे कहे कि मैं तुझसे प्रेम करती हूं। स्त्री प्रतीक्षा है; पुरुष की प्रतीक्षा करेगी कि वह कहे कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। वह स्वीकार करेगी, अस्वीकार करेगी; लेकिन आक्रमण नहीं करेगी। वह राह देखेगी।
जो सत्य की खोज में चले हैं, उन्हें आक्रामक नहीं होना चाहिए। अन्यथा
वे न पहुंच सकेंगे। पुरुष की तरह परमात्मा तक न पहुंचा जा सकेगा--अकड़ से भरे हुए। विनम्र, प्रतीक्षा से, राह जोहते, जैसे एक प्रेयसी राह देख रही हो बैठे घर के द्वार पर अपने प्रेमी के आने की, सब तरह से आकुल, फिर भी आक्रामक नहीं। अनाक्रामक आकुलता भक्ति है। व्याकुलता पूरी है, लेकिन व्याकुलता में आक्रमण नहीं है कि उठ पड़े, कि हमला कर दे।
जो भी स्त्री आक्रामक होती है वह आकर्षक नहीं होती। अगर कोई स्त्री तुम्हारे पीछे पड़ जाए और प्रेम का निवेदन करने लगे तो तुम घबड़ा जाओगे। तुम भागोगे। क्योंकि वह स्त्री पुरुष जैसा व्यवहार कर रही है, स्त्रैण नहीं है। स्त्री का स्त्रैण होना, उसका माधुर्य इसी में है कि वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है। वह तुम्हें उकसाती है, लेकिन आक्रमण नहीं करती। वह तुम्हें बुलाती है, लेकिन चिल्लाती नहीं। उसका बुलाना भी बड़ा मौन है। वह तुम्हें सब तरफ से घेर लेती है, लेकिन तुम्हें पता भी नहीं चलता। उसकी जंजीरें बड़ी सूक्ष्म हैं; वे दिखाई भी नहीं पड़तीं। वह बड़े पतले धागों से, सूक्ष्म धागों से तुम्हें सब तरफ से बांध लेती है; लेकिन उसका बंधन कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता। पुरुष के बंधन बड़े पार्थिव हैं, दिखाई पड़ने वाले हैं। स्त्री के बंधन बड़े अदृश्य हैं, बड़े आत्मिक हैं, अपार्थिव हैं; दिखाई नहीं पड़ते।

सत्य या परमात्मा की तरफ तुम स्त्री की भांति जाना।
कृष्ण के आस-पास जो परम धारणाओं का जाल रचा गया, वह यही है। कृष्ण यानी परमात्मा। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, जो आकृष्ट करे, जो खींचे। और सारा जगत उस परमात्मा की प्रेयसी है, गोपी है। धारणा यही है कि परमात्मा को पाना हो तो परमात्मा पुरुष और तुम स्त्री बन जाना। और तुम जो ताना-बाना बुनो, वह प्रेम का और प्रार्थना का हो। उसमें अगाध समर्पण हो, अगाध श्रद्धा हो; पर कोई भी चीज आक्रमण का रंग न ले पाए।
स्त्री अपने को नीचे रखती है। लोग गलत सोचते हैं कि पुरुषों ने स्त्रियों को दासी बना लिया। नहीं, स्त्री दासी बनने की कला है। मगर तुम्हें पता नहीं, उसकी कला बड़ी महत्वपूर्ण है। और लाओत्से उसी कला का उदघाटन कर रहा है। कोई पुरुष किसी स्त्री को दासी नहीं बनाता। दुनिया के किसी भी कोने में जब भी कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती है, तत्क्षण अपने को दासी बना लेती है। क्योंकि दासी होना ही गहरी मालकियत है। वह जीवन का राज समझती है।
मालिक बनने का अर्थ अकड़ है। और जो अकड़ा हुआ है वह मालिक न हो पाएगा। वह टूटेगा। स्त्री अपने को नीचे रखती है; चरणों में रखती है। और तुमने देखा है कि जब भी कोई स्त्री अपने को तुम्हारे चरणों में रख देती है तब अचानक तुम्हारे सिर पर ताज की तरह बैठ जाती है। रखती चरणों में है, पहुंच जाती है बहुत गहरे, बहुत ऊपर। तुम चौबीस घंटे उसी का चिंतन करने लगते हो। छोड़ देती है अपने को तुम्हारे चरणों में, तुम्हारी छाया बन जाती है। और तुम्हें पता भी नहीं चलता कि छाया तुम्हें चलाने लगती है; छाया के इशारे से तुम चलने

लगते हो। स्त्री कभी यह भी नहीं कहती सीधा कि यह करो, लेकिन वह जो चाहती है करवा लेती है। वह कभी नहीं कहती कि यह ऐसा ही हो, लेकिन वह जैसा चाहती है वैसा करवा लेती है।
लाओत्से यह कह रहा है कि उसकी शक्ति बड़ी है। और शक्ति उसकी क्या है? क्योंकि वह दासी है। शक्ति उसकी यह है कि वह छाया हो गई है। बड़े से बड़े शक्तिशाली पुरुष किसी के प्रेम में पड़ जाते हैं, और एकदम अशक्त हो जाते हैं। चाहे नेपोलियन हो, तो अपनी प्रेयसी जोसेफाइन के सामने वह बिल्कुल साधारण बच्चा है। लाखों सैनिकों को आज्ञा देता है। आल्प्स पर्वत को कह देता है कि मेरी आज्ञा है, पार होना ही होगा; इससे हम पार होकर ही रहेंगे। इसके पहले कभी पार नहीं किया था किसी सेना ने। आल्प्स को पार कर लेता है। युद्ध के मैदान पर उसका कोई मुकाबला नहीं है। लेकिन जोसेफाइन के सामने वह छोटा बच्चा हो जाता है। भयंकर युद्ध चलता हो तो भी रोज एक पत्र वह रात, आधी रात को भी मौका मिले उसे, रोज एक पत्र जोसेफाइन को जरूर लिखता है। और जोसेफाइन छाया की तरह है। और कभी उसने उसे चलाना नहीं चाहा; कोई आतुरता नहीं है कि नेपोलियन को वह चलाए। लेकिन नेपोलियन चलता है। क्या हो गया है? लाओत्से कहता है, स्त्रैण शक्ति की बड़ी खूबी है। वह खूबी यही है जो कि अस्तित्व की खूबी है। तो अगर तुम्हें अस्तित्व को समझना है तो स्त्रैण चित्त की धारणा को ठीक-ठीक समझ लेना। अस्तित्व भी ऐसे ही चल रहा है। स्त्री अब भी अस्तित्व के पास है। पुरुष अपने विचार में बहुत दूर खो गया है।
नीचे हो जाना; तब तुम ऊंचे हो जाओगे। छाया बन जाना; तब तुम्हीं मार्गदर्शक हो जाओगे। अपने को मिटा देना, रेखा भी मत बचाना; तब तुम्हारी विजय की कोई सीमा नहीं है।
अभी तुम बिल्कुल हारे हुए हो। अभी तुम बिल्कुल खंडहर हो, टूटे हुए हो।
अभी तुम्हारी आंखों में सिवाय पराजय के, हारेपन के, सर्वहारा भाव के, कुछ भी नहीं है। तुमने अपनी अकड़ से जीकर बहुत देख लिया। अगर तुम्हारे पास कान हों और मेरी बात तुम्हें सुनाई पड़े तो तुम अब बिना अकड़ के जीना शुरू कर दो। पुरुष की भांति दंभ से भरे हुए बहुत जी लिए जन्मों-जन्मों।
यहां एक बड़ी मजेदार बात है। महावीर के अनुयायी मानते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति पुरुष की पर्याय में न आ जाए तब तक मुक्त नहीं हो सकता। अगर ठीक उसके सामने तुम्हें लाओत्से को समझना हो तो लाओत्से कहता है, जब तक कोई स्त्री पर्याय में न आ जाए तब तक मुक्त नहीं हो सकता।
महावीर और लाओत्से ठीक विरोधी छोर हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि सौ में निन्यानबे लोग लाओत्से के मार्ग से पहुंच सकेंगे; सौ में से एक ही महावीर के मार्ग से पहुंच सकता है। क्योंकि महावीर का मार्ग संघर्ष का है, समर्पण का नहीं। झगड़े का है; वह प्रकृति से झगड़ा है, संघर्ष है। उसमें कभी कोई एकाध ही सफल हो पाता है। लेकिन लाओत्से के मार्ग से सौ में से निन्यानबे लोग पहुंच सकते हैं। क्योंकि वह संघर्ष का नहीं है, वह समर्पण का है। वह परमात्मा को जीतने की कोशिश नहीं है; वह परमात्मा के सामने हार जाने की कोशिश है। अब जो हारने को राजी है, उसको तुम कैसे हराओगे? जो जीतना ही नहीं चाहा, उसकी जीत को तुम कैसे मिटाओगे?
यही पुरुष और स्त्री का भाव है। पुरुष जब भी स्त्री के संबंध में सोचता
है तो जीत के भाव से सोचता है कि कैसे इस स्त्री को जीतूं! स्त्री जब भी किसी पुरुष के संबंध में अपने गहन भाव में सोचती है तो वह यही सोचती है, कैसे इस पुरुष से हारूं! कब वह महत क्षण आएगा जब मैं इस पुरुष से हार जाऊंगी! लाओत्से कहता है, हारने की कला ही जीतने की कला है--स्त्रैण भाव में। और मैं भी तुमसे कहता हूं कि सौ में निन्यानबे मौके तुम्हारे लिए भी लाओत्से के मार्ग से ही खुलेंगे। नदी की धार के विपरीत तैर कर कोई एकाध आदमी शायद पहुंच जाए; वह भी संदिग्ध मालूम पड़ता है। क्योंकि नदी से लड़ोगे तो टूटोगे। नदी की धार में बह कर सभी पहुंच सकते हैं--कमजोर भी, शक्तिशाली भी। किसी को बाधा नहीं है; क्योंकि बहना ही है धार के साथ।
रामकृष्ण कहते थे, एक ढंग तो है पतवार चलाने का; वह नदी से लड़ना है। उससे थकान आएगी ही। और एक रास्ता है प्रतीक्षा करने का कि जब हवा दूसरे किनारे की तरफ बह रही हो तब पाल तान देना। पतवार की कोई जरूरत नहीं, हवा का

ही उपयोग कर लेना। हवा दूसरे किनारे की तरफ जा रही है, पाल खोल देना। हवा के साथ ही नाव चली जाती है। प्रतीक्षा करना ठीक समय की और समर्पण कर देना। फिर तुम्हें पतवार नहीं चलानी पड़ती।
और पतवार चला कर शायद ही कभी कोई थोड़े से लोग पहुंचे हैं। उनको अंगुलियों पर गिना जा सकता है। इसलिए तो जैन धर्म बहुत प्रभावी नहीं हुआ; जगत में उसकी दूर-दूर तक खबर नहीं पहुंच सकी; करोड़ों-करोड़ों लोग उस मार्ग पर चल नहीं सके। जो थोड़े से इने-गिने अनुयायी हैं, वे भी चलते नहीं, नाम-मात्र को जैन हैं। जैन शब्द आता है जिन शब्द से। जिन का अर्थ हैः जीतने वाला; जिसने जीता, जिसने जीत कर दिखला दिया।
लाओत्से कहता है कि हार जाओ, सर्वहारा हो जाओ, स्त्रैण हो जाओ। तो तुम पहुंच जाओगे। स्त्रैण होने का अर्थ हैः नदी में पतवार मत उठाओ, पाल तान दो। अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।
"बड़े देश को नदीमुख नीची भूमि की तरह होना चाहिए।"
जहां नदी गिरती है सागर में, वैसा होना चाहिए।
"क्योंकि वह संसार का संगम है, और संसार का स्त्रैण गुण है। स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है, और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।" नीचे रखती है स्त्री अपने को, पीछे रखती है स्त्री अपने को, और सदा आगे रहती है। और सदा ऊपर रहती है।
कहानी है, सुनी होगी तुमने, कि अकबर ने बीरबल को कहा कि मेरे इस दरबार में क्या ऐसे लोग भी हैं जो अपनी स्त्री से डरते न हों? बीरबल ने कहा, बड़ा जटिल है पता लगाना। क्योंकि उनके अंतःकक्षों में कौन प्रवेश करे? लेकिन कोई तरकीब निकालेंगे। कुछ लोग जरूर होंगे।
तरकीब निकाली गई। सारे दरबारी बुला लिए गए। और अकबर ने कहा कि ईमान से, धोखा मत देना, यह तुम्हारी सच्चाई की कसौटी है कि जो भी लोग स्त्रियों से डरते हों, अपनी स्त्रियों से, वे एक कतार में खड़े हो जाएं। सारे लोग खड़े हो गए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर। अकबर भी हैरान हुआ, इतने लोग स्त्रियों से डरते हैं! फिर इससे भी हैरान हुआ कि कम से कम एक आदमी तो है, और इस आदमी को वह हमेशा दब्बू समझता था। यह आदमी कोई बड़ी अकड़ का आदमी न था। फिर भी उसने कहा कि धन्य है मेरा भाग्य; कम से कम मेरे दरबार में एक आदमी है। तुम अपनी स्त्री से नहीं डरते?
उसने कहा, आप मुझे गलत मत समझें। घर से जब निकलने लगा, मेरी पत्नी ने कहा, जहां भी भीड़-भाड़ हो वहां खड़े मत होना। अब उधर सब खड़े हैं, तो मैं उधर भीड़-भाड़ में खड़ा नहीं हो सकता।
ऐसा पुरुष खोजना कठिन है जो अपनी स्त्री की नहीं मान कर चलता। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लाओत्से यही समझा रहा है। लाओत्से यही कह रहा है कि यह स्वाभाविक है। अगर प्रेम है पुरुष का स्त्री से तो वह मान कर चलता ही है। जैसे तुम्हारे भीतर मस्तिष्क है और हृदय है; मस्तिष्क पुरुष है और हृदय स्त्री है। अगर तुम प्रेमपूर्ण हो तो तुम हृदय की मान कर चलोगे, मस्तिष्क की मान कर नहीं। वैसे ही दो व्यक्ति जब प्रेम में पड़ जाते हैं तो स्त्री हृदय है और पुरुष मस्तिष्क है। तब भी हृदय की ही मान कर चलोगे जब तुम प्रेम में पड़ जाते हो।
हां, प्रेम न हो तब बात अलग। प्रेम हो तो स्त्री हमेशा जीतती है। नदी ही
न हो तो बात अलग। तो गिरेगा क्या? लेकिन अगर नदी हो प्रेम की तो स्त्री हमेशा जीतती है। क्योंकि वह नीचे रखती है अपने को; तुम्हारी नदी को उसमें गिरना ही पड़ेगा। इसमें कोई उपाय नहीं है।
और स्त्री मौन से जीतती है, वह बोलती नहीं। वह कहती भी नहीं, यद्यपि उसका पूरा व्यक्तित्व कह देता है। अगर स्त्री को कहीं नहीं जाना है और चाहते हो तुम कि जाए तो उसके पूरे व्यक्तित्व से भनक पड़ने लगती है कि वह जाना नहीं चाहती। कहेगी नहीं। जो स्त्री कह दे वह ठीक-ठीक स्त्री नहीं है। क्योंकि जो बिना कहे हो जाए उसे कह कर क्या करवाना? जो मौन से हो जाता हो उसे बोल कर कहलवाना बिल्कुल व्यर्थ है। और बात का रस ही खो जाता है। स्त्री पूरे व्यक्तित्व से कहती है। स्त्री ज्यादा टोटल है, समग्र है।

अक्सर ऐसा होता है--मनोवैज्ञानिक इस खोज पर बड़े हैरान हुए हैं--अक्सर ऐसा होता है कि पति है, पत्नी है, छोटा बच्चा है। पति चाहता है कि क्लब जाना, या कहीं मंदिर जाना, सिनेमा जाना; पत्नी नहीं जाना चाहती। वह कहेगी नहीं; अगर प्रेम है तो वह बिल्कुल नहीं कहेगी। क्योंकि प्रेम का मतलब ही यह है कि वह छाया है; पति जहां जाए वह जाए। वह नहीं कहेगी। लेकिन वह जाना नहीं चाहती। उसके सारे व्यक्तित्व से तरंगें उठती हैं न जाने की। बच्चा फौरन इनकार करने लगेगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा माध्यम हो जाता है तत्क्षण। वह खांसने लगेगा कि मेरी तबीयत खराब है, यह है, वह है। और वह बच्चा बाधा खड़ी करेगा। इस पर बहुत से अध्ययन किए गए हैं कि यह मामला क्या है? यह बच्चा कैसे पहचान लेता है?
बच्चा अभी ज्यादा सरल है। अभी बच्चा हृदय ही हृदय है। अभी बच्चा स्त्री के ज्यादा करीब है, पुरुष के उतने करीब नहीं है। इसलिए मां के भीतर जो भी घटित होता है उसकी तरंगें बच्चे को पहले लग जाती हैं। पति को देर लगेगी तरंगें पहुंचने में; वह काफी फासले पर है। और बच्चा फौरन घोषणा कर देगा कि उसकी तबीयत खराब है, या उसे बुखार मालूम हो रहा है, या वह नहीं जाना चाहता। और मां ने एक शब्द नहीं कहा है बच्चे को। लेकिन उसकी भाव-भंगिमा, उसके होने का ढंग--और बच्चा पकड़ लेता है।
अगर पुरुष बहुत प्रेम करता है तो वह भी पकड़ लेता है। क्योंकि जो पुरुष प्रेम करता है अपनी पत्नी को वह अपनी पत्नी के पास बच्चे जैसा ही हो जाता है। पत्नी का स्वभाव बहुत गहरे में मां का स्वभाव है। स्त्री का स्वभाव मां का स्वभाव है, और पुरुष का स्वभाव बहुत गहरे में बेटे का स्वभाव है।
इसलिए हिंदू ऋषिओं ने तो आशीर्वाद दिया है कि वही विवाह सफल है जिसमें अंत में पति बेटे की तरह हो जाए। हिंदू ऋषि आशीर्वाद देते थे नव वर-वधू को तो वे कहते थे कि दस तुम्हारे बेटे हों और ग्यारहवां पति तुम्हारा बेटा हो जाए।
अंतिम सफलता प्रेम की वहां है जहां पत्नी मां हो गई और पति बेटा हो गया। उसका अर्थ इतना ही हुआ कि अब पति भी इतने करीब आ गया, जैसे कि स्त्री के गर्भ में समा गया। इतनी निकटता आ गई कि अब स्त्री का मौन भी उसे समझ में आता है। स्त्री अपने मुंह से "नहीं" कहे, वह शोभा नहीं देता, लेकिन उसकी तरंगें कह दें और पति समझ ले, वही शोभा देता है।
छाया की तरह स्त्री रहेगी और चलाएगी। मौन रहेगी और उसका मौन भी बड़ा वाचाल है। वह मौन से कह देगी। और जहां प्रेम है वहां यह अंतरंग वार्ता समझ में आ जाती है।
प्रेमी बहुत ज्यादा बोलते नहीं। पति-पत्नी बोलते हैं, क्योंकि वहां प्रेम ज्यादा होता नहीं। प्रेमी ज्यादातर चुप बैठते हैं। क्योंकि मौन इतना सुखद है कि बोलना क्या! पति-पत्नी बोलते हैं कि न बोलें तो न मालूम कोई झगड़ा-कलह न खड़ा हो जाए। तो कुछ न कुछ बातचीत चलाते हैं। पति सोच-सोच कर कुछ बात निकालता है कि ऐसा हो गया दफ्तर में, वैसा हो गया। पत्नी कुछ बात चलाती है। बातचीत से भरते हैं दोनों के बीच की खाली जगह को। क्योंकि वहां खाली है; और बातचीत न रही तो खालीपन एकदम दिखाई पड़ेगा। बातचीत न रही तो फासला साफ हो जाएगा। बातचीत ही जोड़े हुए है।
लेकिन प्रेमी चुपचाप बैठे रहते हैं; एक-दूसरे से सटे बैठे हैं नदी के
तट पर, न कुछ बोलते हैं। बोलने की कोई जरूरत नहीं। जो बिन बोले हो जाए उसे बोल कर क्या कहना? जो ऐसे ही हो जाए मौन में संवाद, उसके लिए शब्द का क्या उपयोग करना?
और यही घटना धीरे-धीरे गुरु और शिष्य के बीच घटनी शुरू होती है। बोलना तभी तक पड़ता है जब तक बिन बोले तुम न समझ सको। जब तुम बिन बोले समझने लगोगे तब बोलने की कोई जरूरत न रह जाएगी। तब तुम आओगे चुपचाप मेरे पास, बैठोगे, समझ लोगे, और चले जाओगे। जैसे-जैसे करीब हम होने लगते हैं वैसे-वैसे बोलना न बोलने जैसा होने लगता है।
अभी भी जो मेरे करीब आ गए हैं, वह मैं जो बोलता हूं उससे उनका बहुत प्रयोजन नहीं है। मेरे दो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है, उससे ही उनका

ज्यादा प्रयोजन है। अब वे लकीरों के बीच पढ़ने लगे हैं और शब्दों के बीच सुनने लगे हैं। अब शब्द तो केवल बहाना है।
लेकिन जो नए होंगे उनके लिए शब्द ही सेतु होंगे।
दूर को जोड़ना हो, शब्द चाहिए। पास को जोड़ना हो, मौन काफी है।
लाओत्से कहता है, बड़े देश को भी स्त्री जैसा होना चाहिए, और छोटे देशों
के नीचे रख लेना चाहिए। यह बड़ी महत्व की बात है। काश, कभी यह हो सके तो दुनिया में युद्ध बंद हो जाएं। लाओत्से की बात सुनी जाए तो ही दुनिया से युद्ध समाप्त हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि लाओत्से यह कह रहा है कि बड़ा देश अपने को नीचे रख ले। तुम इतने बड़े हो कि ऊपर रखने की बात ही बेहूदी मालूम पड़ती है। जो बड़ा है वह विनम्र हो जाता है।
रहीम ने कहा है, जब वृक्ष फलों से लद जाता है तो डालियां झुक जाती हैं।
जो जितना भर जाता है, जितना बड़ा हो जाता है, उतना झुक जाता है। जमीन छूने लगती हैं उसकी डालियां। ये तो बिना फल के वृक्ष हैं जो अकड़े खड़े रहते हैं। छोटा आदमी अकड़ा रहता है, क्योंकि उसे डर है कि अगर झुका तो लोग समझ लेंगे छोटा है। बड़े को क्या डर है? बड़ा झुक सकता है। क्योंकि कितना ही झुके, बड़प्पन तो खोता नहीं, बल्कि झुकने से बढ़ता है। जिसके भीतर हीनता की ग्रंथि छिपी है, वह डरता है।
मेरे पास लोग आते हैं। मैं उनको देखता हूं। उनमें जिनमें भी थोड़ा सा भी बड़प्पन है, वे सरलता से झुक जाते हैं। उनमें जो बहुत क्षुद्र हैं और बहुत हीनता की ग्रंथि से भरे हैं, वे अकड़े खड़े रह जाते हैं। उनका झुकना मुश्किल है। क्योंकि उनको डर है, अगर वे झुके, उन्हें पता है कि वे हीन हैं, दूसरों को भी पता चल जाएगा कि हीन हैं।
जो झुक सकता है सरलता से, जिसे झुकने में जरा भी अड़चन नहीं आती, जिसे झुकना सहज बात है, उसका अर्थ है कि उसके भीतर कोई हीनता का बोध नहीं, कोई इनफीरियारिटी कांप्लेक्स नहीं है।
छोटे डरते हैं झुकने से; बड़े अवसर खोजते हैं झुकने का। क्षुद्र भयभीत रहता है कि कहीं कोई ऐसा मौका न आ जाए कि झुकना पड़े। जो क्षुद्र नहीं है उसका भय क्या? इसलिए जितनी श्रेष्ठता होती है उतनी विनम्र होती है। और जितनी क्षुद्रता होती है उतनी ही अहंकारपूर्ण होती है।
लाओत्से कहता है, बड़े हो--चाहे व्यक्ति, चाहे देश--तो झुक रहो। नदीमुख नीची भूमि की तरह हो जाओ। क्योंकि तुम संसार के संगम हो। झुकोगे तो ही संगम बन पाओगे। संगम की भूमि तो नीची होनी चाहिए, तभी तो नदियां वहां गिरेंगी। अकड़े, ऊपर उठे, तो संगम न बन पाओगे। और संगम संसार का स्त्रैण गुण है। वहीं तो मिलन होता है।
हम इस देश में संगम को तीर्थ मानते रहे हैं। क्यों मानते रहे हैं तीर्थ? तीर्थ बड़ा विनम्र है। वहां बहुत सी नदियां आकर गिरी हैं। तीर्थ गड्ढा है। वह स्त्रैण गुण है। तुम भी तीर्थ में जाकर झुक जाना; स्त्रैण गुण से भर जाना; खाली हो जाना। तो भरे हुए लौटोगे।
लेकिन होता उलटा है। लोग तीर्थ जाते हैं, और अकड़ कर लौटते हैं कि हम तीर्थयात्री हैं, हम हज होकर आए, हाजी हैं। अब उनकी अकड़ ही अलग है। अब उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते।
तीर्थ यानी संगम। संगम यानी झुका हुआ, जहां नदियां गिर रही हैं। वहां जाकर तुम भी देख लेना। इसलिए तीर्थयात्रा उपयोगी है कि वहां देखना, जो झुका हुआ स्थल है, वहां तीन नदियां गिर रही हैं। ऐसे ही तुम झुक जाना, तो तुम भी बहुत सी नदियों के गिरने के स्वाभाविक स्थल बन जाओगे। कुछ करना न पड़ेगा। संगम में कुछ किया थोड़े ही है। नदियों को न बुलावा दिया है, न खींच कर नदियों को लाया गया है। ये नदियां कोई नहरें तो नहीं हैं। ये अपने से आई हैं। कोई इनको ले नहीं आया है। ये क्यों आई हैं? ये किसकी तलाश करती आई हैं? ये एक गड्ढे को खोज रही थीं जहां समा जाएं; कोई गर्भ खोज रही थीं जहां लीन हो जाएं; कोई पात्र की तलाश थी जिसको भर दें।
"स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है, और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।"

कहती है दासी अपने को, हो जाती है मालकिन। कहती है दासी, बन जाती है रानी। अगर परमात्मा के हृदय में भी तुम्हें ऊंचा स्थान पाना हो तो तुम आखिरी से भी आखिरी हो रहना।
"इसलिए यदि एक बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रखता है, तो वह छोटे देश
को आत्मसात कर लेता है।"
कर ही लेगा। यही तो पूरा का पूरा उपाय है गुरु को आत्मसात कर लेने का कि तुम गुरु के नीचे अपने को रख देना। तुम गड्ढा बन कर बैठ जाना वहां; गुरु की नदी तुममें गिर जाएगी, तुम भर जाओगे। जिसे भी आत्मसात करना हो, उसके नीचे गड्ढे बन कर बैठ जाना, उसके चरण पकड़ लेना।

लाओत्से कहता है, अगर बड़ा देश छोटे देश के नीचे अपने को रख दे, तत्क्षण छोटे देश को पी जाएगा। और यह पीना बड़ा प्रेम का होगा। यह कोई युद्ध से दबाया हुआ नहीं होगा, यह कोई तलवार के बल पर नहीं हुआ होगा। यह संगम होगा। यह स्त्रैण गुण से होगा।
इसलिए तो भारत ने कभी किसी पर हमला नहीं किया; कभी चाहा नहीं हमला करना। कारण था। हमला करने की बात ही बेहूदी है। यह देश इतना बड़ा है। और इसने बहुतों को आत्मसात कर लिया। जो भी विदेशी आया, जिसने भी इस पर हमला किया, जो भी इसका मालिक बन कर बैठा, उसको यह पी गया, उसको आत्मसात कर लिया। इसका आत्मसात करना बड़ा सूक्ष्म है! जो कुछ लाओत्से कह रहा है वह भारत का पूरा इतिहास है। इसने इंच भर भी अपने से बाहर जाकर फैलाव नहीं करना चाहा। छोटी- छोटी कौमें आईं; बड़ी छोटी कौमें थीं। इस मुल्क के सामने उनका कोई इतिहास न था, कोई गौरव न था। हूण आए, यवन आए, तुर्क आए, मुगल आए; उनका कोई इतिहास न था। भटकते कबीले थे, खानाबदोश थे; कोई संस्कृति न थी। इस मुल्क में उन्होंने शासन किया। वे इस भ्रांति में रहे कि वे शासन कर रहे हैं। वे अब कहां हैं? उन सबको भारत पी गया। इसने उनके नीचे रख लिया। यह चुपचाप उनको आत्मसात कर गया।
और अब पश्चिम में पता चलना शुरू हो रहा है। और भविष्य बताएगा इस घटना को। क्योंकि ये तो बहुत सूक्ष्म रास्ते हैं। अंग्रेजों ने इतने दिन तक इस मुल्क में हुकूमत की। वह हुकूमत तो क्षणभंगुर थी; आई-गई हो गई। लेकिन उनके माध्यम से भारत का हृदय पश्चिम में प्रविष्ट हो गया। सारी दुनिया भारत की तरफ दौड़ रही है। यह एक दूसरी ही विजय-यात्रा है, जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है।
पश्चिम भारत पर हुकूमत करता रहा दो-तीन सौ वर्ष। भारत ने उसकी बहुत फिक्र न की। शासक ही फिर भारत के उपनिषद, वेद, गीता के अनुवादक बन गए। शासक ही फिर भारत के साधुओं-संन्यासियों के सत्संग में पहुंच गए। पश्चिम की हुकूमत के द्वारा ही भारत ने पश्चिम पर अपनी हुकूमत का जाल फैला दिया। लंबा समय लगेगा, तब जाहिर होगा कि कौन जीता, कौन हारा। भारत को हराना मुश्किल है, एकदम असंभव है। वह नदी को उलटी धार बहाना है। आज पश्चिम के कोने-कोने में भारत का संन्यासी है। पश्चिम के कोने-कोने में भारत के मंदिर उठ रहे हैं। पश्चिम के कोने-कोने में ध्यान करने वाले लोग हैं, प्रार्थना करने वाले लोग हैं।
पर यह बड़ा धीमा है, बड़ा सूक्ष्म है--स्त्रैण है। इसलिए तुम इसकी अखबारों में खबर न पढ़ पाओगे। यह इतने चुपचाप हो रहा है, इतने मौन हो रहा है। मैं यहां बैठा हूं। मैं तो उन गुरुओं को भी थोड़ा आक्रामक मानता हूं जो पश्चिम जाते हैं। क्योंकि उतना भी क्या जाना? उसमें भी थोड़ा पुरुष-गुण हो गया। मैं चुपचाप यहां बैठा रहता हूं। जिसको आना है वह आ ही जाएगा। अगर गड्ढा पूरा है तो कितनी देर तक नदी यहां-वहां भटकेगी? उसे आना ही पड़ेगा। एक गड्ढा होकर बैठ जाओ। तो दूर-दूर देशों से, देश-देशांतर से नदियां बहती चली आती हैं।
लाओत्से कहता है कि बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रख ले तो वह छोटे
को आत्मसात कर लेता है। और यदि छोटा देश भी होशियार और कुशल हो और बड़े देश के नीचे अपने को रख ले तो वह बड़े देश को आत्मसात कर लेता है।
छोटे-बड़े का सवाल नहीं है; जो नीचे रखता है वही अंततः बड़ा हो जाता है।

"इसलिए कुछ दूसरों को आत्मसात करने के लिए अपने को नीचे रखते हैं; कुछ स्वभावतः ही नीचे होते हैं और दूसरों को आत्मसात करते हैं।"
पर सूत्र वही है, नियम वही है। चाहे तुम होशपूर्वक करो, चाहे तुम बिन जाने करो; लेकिन जो नीचे है, आखिर में वही जीत जाता है। बीच में कितना ही शोरगुल मचे, और नदी कितने ही उफान ले और बाढ़ आए, और नदी कितने ही मनसूबे बांधे, लेकिन वे मनसूबे बीच के हैं। आखिर में गड्ढा नदी को आत्मसात कर लेता है।
"फिर बड़ा देश भी यही चाहता है कि दूसरों को शरण दे, और छोटा देश भी यही चाहता है कि प्रवेश पा सके और शरण पाए। इस प्रकार यह विचार कर कि वे दोनों वह पा सकें जो वे चाहते हैं, बड़े देश को अपने आप को नीचे रख लेना चाहिए।" क्योंकि छोटे देश को नीचे रखने में वही अड़चन होगी जो छोटे आदमी को नीचे रखने में होती है। उसका अहंकार, हीनता का बोध कि मैं छोटा हूं, अड़चन देगा। बड़े को तो कोई हीनता नहीं है; वह नीचे रख सकता है।
यह जो सूत्र है, राष्ट्र, समाज, व्यक्ति, सबके लिए लागू है। क्योंकि नियम एक है। जीतना हो, हारने को मार्ग बनाओ। पाना हो, खोने की विधि सीखो। अमृत हो जाना हो, मर जाओ, मिट जाओ अपने हाथ से। अगर सब पाना हो, सब छोड़ दो। और तुम अपराजेय हो जाओगे। मैं इसे ही जिनत्व कहूंगा। और जो बिना लड़े मिलता हो उसको लड़ कर लेने वाला नासमझ है।
कबीर ने कहा है कि जो काम सुई से हो जाता हो, तलवार क्यों उठाते हो? और
सच तो यह है कि यह काम बिना सुई उठाए हो जाता है। फिर तलवार क्यों उठाते हो? इसे अपने जीवन का ढंग बनाओ। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में, धड़कन-धड़कन में समा जाए। जल्दी ही तुम एक महासुख के द्वार पर अपने को खड़ा हुआ पाओगे। जिससे तुम अब तक वंचित रहे हो, लगेगा आ गया क्षण मिलने का। जिसको अब तक तुमने अपनी नासमझी से गंवाया है, सोचते थे कमा रहे हो और गंवाते थे, उसे तुम पहली दफा कमा लोगे।
तुम ही हो कारण अपनी असफलता के, क्योंकि तुम सफल होने की कोशिश कर रहे हो। तुम ही आधार बन जाओगे परम सफलता के। एक बार असफल होकर देखो। एक बार हारो। सीख लो स्त्री का गुण।
स्त्रैण गुण इस जगत में सबसे प्रबल शक्ति है। उससे बड़ी कोई शक्ति नहीं।
आज इतना ही।

एक सौ दोवां प्रवचन

ताओ की भेंट श्रेयस्कर है

Chapter 62

The Good Man's Treasure

Tao is the mysterious secret of the universe,
The good man"s treasure, and the bad man's refuge.
Beautiful sayings can be sold at the market,
Noble conduct can be presented as a gift.
Though there be bad people, why reject them?
Therefore on the crowning of an emperor,
On the appointment of the Three Ministers,
Rather than send tributes of jade and teams of four horses,
Send in the tribute of Tao.
Wherein did the ancients prize this Tao?
Did they not say, "to search for the guilty ones and pardon them?"
Therefore is (Tao) the treasure of the world.

अध्याय 62

सज्जन का खजाना

ताओ संसार का रहस्य भरा मर्म है,
सज्जन का खजाना, और दुर्जन की पनाह।
सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं,
श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।
यद्यपि बुरे लोग हो सकते हैं, तथापि उन्हें अस्वीकृत क्यों किया जाए?
इसलिए सम्राट के राज्याभिषेक पर, तीन मंत्रियों की नियुक्ति पर,
मणि-माणिक्य और चार-चार घोड़ों के दल भेंट में भेजने के बजाय,
ताओ की भेंट भेजना श्रेयस्कर है।
किस बात में पूर्व-पुरुषों ने इस ताओ को मूल्य दिया था?
क्या उन्होंने नहीं कहा था, "अपराधियों को खोजने और उन्हें माफ कर देने को?"
इसलिए ताओ संसार का खजाना है।

लाओत्से के सूत्रों में प्रवेश के पूर्व कुछ प्राथमिक बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, लाओत्से किसे रहस्य कहता है?

इस शब्द से ज्यादा कीमती दूसरा कोई शब्द धर्म की यात्रा में नहीं है। रहस्य को समझ लिया तो सब समझ लिया। वही गहरे से गहरा मर्म है। वही है गुप्त से गुप्त खजाना। रहस्य क्या है?

रहस्य ऐसी समझ है कि तुम उसे समझ भी न कह पाओगे। रहस्य एक ऐसा जानना है कि तुम जान कर ज्ञानी न बन पाओगे, दावा न कर सकोगे कि जान लिया। जान लोगे, लेकिन दावा न कर पाओगे। गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कहेगा, तुम न कह सकोगे कि जान लिया। तुम्हारा रोआं-रोआं कहेगा, लेकिन तुम्हारा अहंकार निर्मित न हो सकेगा कि जान लिया।

जानने वाला मिट जाए जिस ज्ञान में वही रहस्य है।

ज्ञान दो तरह के हैं। एक ज्ञान है जिससे जानने वाला मजबूत होता है। एक ज्ञान है जिससे जानने वाला धीरे-धीरे पिघलता है; अंततः वाष्पीभूत हो जाता है। ज्ञान तो बच रहता है, जानने वाला खो जाता है।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
रहस्य ऐसा ज्ञान है जो ज्ञानी को मार देता है। रहस्य एक ऐसी अनुभूति है जिसमें जानने वाला और जिसे जाना है, दोनों एक हो जाते हैं। फासला नहीं रह जाता, अंतराल नहीं बचता। तो कौन कहे कि जान लिया? किसको कहे कि जान लिया? दावा कौन करे? किसके संबंध में करे? दावेदारी खो जाती है। ऐसा ज्ञान रहस्य है।
रहस्य गणित का साफ-सुथरा रास्ता नहीं है; सुगढ़, साफ, व्यवस्थित राज-मार्ग नहीं है। पहाड़ों में घूमता हुआ, वन-प्रांतों में उलझा हुआ, पगडंडी की तरह है। तुम उस पर चल सकते हो, लेकिन अकेले; भीड़ वहां न हो सकेगी। तुम उसे जान भी सकते हो, लेकिन अपने परम एकांत में। वहां दूसरा गवाह न हो सकेगा। तो अगर तुम कहोगे कि मैंने जान लिया तो तुम गवाही न खोज पाओगे। क्योंकि जब भी तुम जानोगे अकेले जानोगे, वहां दूसरे न होंगे। इसलिए रहस्य ऐसा ज्ञान है जो आत्यंतिक रूप में सब्जेक्टिव है, आत्मिक है; आब्जेक्टिव नहीं है, विषयगत नहीं है। यही तो धर्म और विज्ञान का फासला है।
विज्ञान भी सत्य को खोजता है, लेकिन खोज का ढंग आब्जेक्टिव है, बाहर खोजता है, दूसरे में खोजता है, पर में खोजता है, वस्तु में खोजता है। इसलिए तो विज्ञान सार्वभौम बन जाता है। एक दफा खोज लिया तो सभी को साफ हो जाता है। खोजने वाले को ही नहीं, जिन्होंने खोजने में कोई हिस्सा नहीं बंटाया उनको भी साफ हो जाता है। एडीसन या आइंस्टीन वर्षों मेहनत करके कुछ खोजते हैं; सारी दुनिया जान लेती है। हर एक को अलग-अलग खोजने की कोई जरूरत नहीं। एक ने खोज लिया, सब ने पा लिया। स्कूल में विद्यार्थी पढ़ेगा फिर, और जान लेगा। विज्ञान में खोजता एक है, ज्ञान सबका हो जाता है। धर्म में खोजता एक है, उसका ही ज्ञान रहता है, दूसरे का नहीं हो पाता। इसलिए गवाह नहीं जुटाए जा सकते। तुम कहोगे भी तो कोई तुम्हारी मानेगा न। लोग हंसेंगे। लोग पागल समझेंगे। क्योंकि जिस बात के लिए गवाह न हो और जिसे तुम दूसरे के सामने प्रकट न कर सको उसकी मान्यता कौन करेगा?
तुम कहते हो, मैंने ईश्वर को पा लिया। लोग कहेंगे, दिखाओ कहां है ईश्वर?
जब तुमने पा लिया, हमें भी दिखा दो। तब तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहोगे, जान लिया आत्मा को। लोग कहेंगे, थोड़ा झलक हमें भी दिखा दो। तब तुम कठिनाई में हो जाओगे। क्योंकि तुमने जो झलक पाई है वह नितांत वैयक्तिक है। तुमने जो जाना है वह तुम दूसरे को न जना सकोगे। तुम ज्ञान को ऐसा दे न सकोगे, हस्तांतरित न कर सकोगे। ट्रांसफरेबल नहीं है। तुम्हारे भीतर पैदा होता है; तुम उससे आपूर भर जाते हो, आकंठ भर जाते हो। तुम्हारा रोआं-रोआं उसे ध्वनित करने लगता है; तुम्हारी धड़कन-धड़कन में उसका गीत होता है। उठते हो, बैठते हो, तो उसी में; चलते हो, फिरते हो, तो उसी में; वही सब कुछ हो जाता है तुम्हारे जीवन का। एक अपूर्व वातावरण की तरह तुम्हें घेर कर चलता है तुम्हारा अनुभव। लेकिन तुम किसी को भी भागीदार न बना सकोगे। निकटतम भी, तुम्हारा प्रिय से प्रिय व्यक्ति भी बाहर ही खड़ा रहेगा, तुम्हारे अंतःकक्ष में प्रवेश न पा सकेगा।
इसलिए धर्म हर बार खोजा जाता है, हर बार खो जाता है। बुद्ध खोज लेते हैं, खो जाता है। लाओत्से खोज लेता है, खो जाता है। हजार बार खोजा जाता है, फिर-फिर खो जाता है। और जब भी तुम्हें खोजना होगा तो तुम्हें नए सिरे से ही खोजना होगा। इसलिए धर्म का कोई विज्ञान नहीं बन सकता; उसे पाठशालाओं में पढ़ाया नहीं जा सकता। उसका कोई शास्त्र नहीं बन सकता। कोई दूसरा तुम्हें दे ही नहीं सकता। यह है उसका रहस्य। खजाना इतना रहस्यपूर्ण है कि अकेला अपने अकेलेपन में ही पाता है। वह अंतरतम का स्वाद है। पगडंडी है एकांत की। इसलिए तो महावीर ने उस परम रहस्य को कैवल्य कहा है। महावीर ने बड़ा अनूठा शब्द चुना है। सब शब्द फीके हैं। औरों ने भी शब्द चुने हैं, लेकिन महावीर का शब्द निश्चित अनूठा है। कैवल्य का अर्थ हैः टोटल, एब्सोल्यूट लोनलीनेस। कैवल्य का अर्थ हैः बिल्कुल अकेले; केवल तुम, और कोई भी नहीं।

केवल तुम्हारी चेतना, और कोई भी नहीं। वह ज्ञान कैवल्य है। वह रहस्यपूर्ण है। बंधे हुए रास्तों की तरह नहीं है जहां भीड़ चल सके; बड़ा बारीक और महीन रास्ता है।
जीसस ने कहा है, अगर मेरे मार्ग पर चलना है तो बड़ा संकीर्ण है मार्ग, नैरो इ.ज दि गेट। बड़ा संकीर्ण है द्वार।
कबीर ने कहा है, प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय।
वहां दो भी न बन सकेंगे, तीन का तो सवाल ही नहीं उठता। तुम अकेले ही जाओगे--नग्न, निर्वस्त्र, धारणा-शून्य। तुम एक विचार भी अपने साथ न ले जा सकोगे, व्यक्ति की तो बात और। तुम शास्त्र अपने साथ न ले जा सकोगे। तुम अपना ज्ञान भी अपने साथ न ले जा सकोगे।
इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं, हो जाओ छोटे बच्चे की भांति अज्ञानी। क्योंकि तुम्हारा ज्ञान भी वहां साथ न जा सकेगा। तुमने जो भी कूड़ा-कर्कट सम्हाला है संसार में, बचाया है, कुछ भी तुम वहां न ले जा सकोगे। मंदिर के बाहर ही सब छोड़ देना होगा। जाएगी निर्वस्त्र चेतना, नग्न, नितांत अकेली। केवल तुम्हारा होश जाएगा, और कुछ भी नहीं जाएगा। लौट कर तुम गूंगे हो जाओगे। कहना चाहोगे, शब्द न मिलेंगे। बताना चाहोगे, हाथ न उठेगा। इसलिए है रहस्यः जान लिया जाए और कहा न जा सके।
वैज्ञानिक कहते हैं, जिसको जान लिया उसे कहने में अड़चन क्या? कहते क्यों नहीं? जब जान ही लिया तो कह दो! पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक और बहुत योग्य प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति लुडविग विटगिंस्टीन ने कहा है कि जो तुम न कह सको, फिर यह भी मत कहो कि नहीं कह सकते हैं, फिर बिल्कुल ही चुप रहो। यह इतना और क्यों कहते हो कि कह नहीं सकते हैं? अगर इतना ही कहते हो तो बाकी और भी कह दो।
विटगिंस्टीन भी ठीक कह रहा है, कि क्यों परेशानी में डालते हो? तुम परेशानी में खुद हो और दूसरों को डालते हो। नहीं कह सकते तो चुप ही रहो। दैट व्हिच कैन नाट बी सेड शुड नाट बी सेड। मत कहो जो नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो तुम कहते हो कि नहीं कहा जा सकता, और फिर चुप हो जाते हो।
रहस्य का अर्थ यही है। कहा भी नहीं जा सकता; बिन कहे भी नहीं रहा जा सकता। कहो तो मौत, न कहो तो मौत। कहो तो उलझन, न कहो तो उलझन। पहेली ऐसी कि सुलझाई भी नहीं जा सकती और बिना सुलझाए रहा भी नहीं जा सकता। और मजा तो यह है कि कहीं भीतर गहरे में सुलझ भी जाती है। लेकिन जब तुम बाहर सुलझाने की कोशिश करते हो तो तुम पाते हो, बाहर सुलझाना असंभव है।
रहस्य का यह भी अर्थ है कि तुम पा तो लोगे, लेकिन जान न पाओगे। तुम एक हो जाओगे सत्य के साथ, तुम सत्य हो जाओगे, लेकिन जान न पाओगे। क्योंकि तुम उसके ही हिस्से हो।
एक ऊर्मि उठती है सागर के तट पर, एक लहर उठती है। वह लहर सागर है, लेकिन सागर को जान न पाएगी। सागर से उठी है, सागर में गिरेगी, वापस लीन होगी, सागर ही है, रंच मात्र भी फासला नहीं, फिर भी लहर सागर को जान न पाएगी। क्योंकि सागर बहुत बड़ा, लहर बहुत छोटी।
तुम परमात्मा में हो। लेकिन तुम लहर की भांति हो, परमात्मा सागर की भांति है। तुम रत्ती भर भी उससे दूर नहीं। रंच भर भी फासला नहीं। दूर होने का उपाय ही नहीं है। अभिन्न हो। लेकिन फिर भी तुम जान न पाओगे। जी सकते हो परमात्मा को, जान नहीं सकते। क्योंकि जीने में कोई असुविधा नहीं है, जानने में असुविधा है। क्योंकि जानने का स्वभाव है कि तुम उसे ही जान सकते हो जो तुमसे अलग है, जो तुमसे भिन्न है। जानने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए, फासला चाहिए, थोड़ा अंतराल चाहिए। नहीं तो परिप्रेक्ष्य बनेगा नहीं। पर्सपेक्टिव चाहिए।
परमात्मा को जानने में बड़ी से बड़ी कठिनाई यही है कि उसके और तुम्हारे बीच इंच भर की भी दूरी नहीं है। कहां से खड़े होकर देखो उसे? कौन देखे दूर खड़े होकर? दूर हुआ नहीं जा सकता। तुम उससे ही जुड़े हो। तुम एक हो। दूरी होती तो हम पार कर लेते। हमने जेट ईजाद कर लिया, हम और बड़े महा जेट बना लेते; दूरी होती हम पार कर लेते। चांद पर हम पहुंच गए, कभी परमात्मा पर भी पहुंच जाते।

सोवियत रूस का अंतरिक्ष यान जब पहली बार मंगल के पास पहुंचा और मंगल का परिभ्रमण किया, तो वहां से अंतरिक्ष यात्रियों ने जो सूचना दी वह बड़ी विचारणीय है। उन्होंने सूचना दी कि यहां तक परमात्मा का हमें कोई पता नहीं चला; अभी तक हमें ईश्वर नहीं मिला। इतनी दूर आ गए हैं, अभी तक ईश्वर नहीं मिला। इसलिए निश्चित ही ईश्वर नहीं है।
अगर परमात्मा दूर होता तो हम जरूर पहुंच जाते। परमात्मा को खोजने मंगल जाने की थोड़े ही जरूरत है! बुद्ध को गया के पास एक छोटे से वृक्ष के नीचे बैठ कर मिल गया। लाओत्से को अपने गांव में बैठे-बैठे मिल गया। कोई चांद-मंगल-तारों पर जाने की जरूरत है? दूर है ही नहीं। तुम कहीं गए कि भटके। तुम अपने में ही रहे तो पा लिया। अपने में ही बसे तो मिल गया। जरा भी यहां-वहां सरके, हिले-डुले कि मुश्किल में पड़े।
खोया है खोजने के कारण। खोज रुक जाए तो तुम अभी उसे पा लो। परमात्मा को खोजना नहीं है, अपने को विश्राम में ले आना है। दौड़ शून्य हो जाए। क्योंकि दौड़ उसके लिए जो दूर हो। और जो पास हो उसके लिए दौड़ का क्या प्रयोजन है? दौड़-दौड़ कर और दूर निकल जाओगे। रुक जाओ, ठहर जाओ। वह मिला ही हुआ है। वह प्राप्त ही है। वह सदा से तुम्हारे भीतर रमा ही हुआ है। इसलिए रहस्य!
जीवन के सारे गणित को तोड़ देता है। गणित तो साफ है कि जो नहीं मिल रहा हो, दौड़ो! खोजो! यह गणित से बिल्कुल उलटी बात है--रुको, ठहरो, कहीं मत जाओ। घर में ही छिपा है इसलिए खजाना। तुम जहां खड़े हो वहीं खड़ा है। तुम जहां हो वहीं बैठा है। तुम जो हो वही है। रहस्य इसलिए भी!
एक तो तर्कनिष्ठ वक्तव्य होता है जिसमें सब रेखाएं साफ होती हैं, जिसकी परिभाषा सुनिश्चित होती है। एक काव्य का वक्तव्य होता है जिसकी सब रेखाएं धूमिल होती हैं; परिभाषा सुस्पष्ट नहीं होती। लगता है कुछ कहा जा रहा है, लेकिन जितना ही तुम गौर करो, विचार करो, उतनी ही पकड़ छूटती जाती है। संत अगस्तीन ने कहा है, लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा क्या है? और मेरी दशा वैसी हो जाती है जैसे लोग कभी पूछ लेते हैं कि समय क्या है? व्हाट इ.ज टाइम? जब मुझसे कोई नहीं पूछता, तब मैं भलीभांति जानता हूं कि समय क्या है। जैसे ही किसी ने पूछा कि मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं।
तुम भी जानते हो कि समय क्या है। कहते हो, सुबह छह बजे उठना है। क्या मतलब है? कहते हो कि आठ बजे यहां पहुंचे। क्या मतलब है तुम्हारा? कहते हो, फलां आदमी कल सांझ मर गया। क्या कह रहे हो? कहते हो, तीस साल गुजर गए जिंदगी के। क्या है तुम्हारा अर्थ? समय का तुम चौबीस घंटे उपयोग कर रहे हो। लेकिन अगर कोई पूछ ले कि समय है क्या? तो अब तक कोई भी जवाब नहीं दे पाया है। बड़े- बड़े वैज्ञानिक सिर फोड़ते रहे हैं कि किसी तरह समय की कोई परिभाषा बना लें। कोई परिभाषा बनती नहीं। समय में जीते हो, समय में उठते-बैठते हो।
महावीर ने तो यह देख कर कि समय की परिभाषा नहीं की जा सकती और आत्मा की
भी परिभाषा नहीं की जा सकती, आत्मा का नाम ही समय रख दिया। इसलिए जैन ध्यान को सामायिक कहते हैं। सामायिक का अर्थ है, समय में प्रवेश, आत्मा में प्रवेश। महावीर ने तो कहा कि स्वभाव ही आत्मा का समय जैसा है।
तुम जानते नहीं क्या है, फिर भी जीते तो बड़े मजे से हो। समय का उपयोग भी करते हो। जवान होते हो, बूढ़े होते हो; आते हो, जाते हो; समय का ठीक-ठीक उपयोग करते हो। लेकिन कोई परिभाषा नहीं बनती। जैसे ही परिभाषा बांधते हो वैसे ही, पारे पर जैसे कोई मुट्ठी बांधे, समय बिखर जाता है।
तर्क की परिभाषाएं सुस्पष्ट रेखाएं हैं; विभाजन साफ है। रहस्य का अर्थ
है कि परम सत्य गणित और तर्क जैसा नहीं, काव्यात्मक है, पोएटिक है, धूमिल है। पकी दुपहरी की तरह नहीं, जब सब रोशनी में साफ-साफ होता है, हर चीज अलग-अलग होती है। सुबह की भांति है, धुंध में दबी कुंआरी सुबह की भांति है, जहां कुछ भी साफ नहीं होता। शीतकाल की सुबह, सब धुआं-धुआं, सब रेखाएं धूमिल, एक चीज दूसरे में मिलती, खोती, लीन। सब इकट्ठा-इकट्ठा; खंड-खंड कुछ भी नहीं, सब अखंड। दिन की तरह नहीं है वह रहस्य, अंधेरी रात की तरह है। अमावस की रात। बस--चांद भी नहीं--तारों की टिमटिमाहट। बस इतनी ही रोशनी कि अंधेरा साफ हो, मिटे न। इतनी ही रोशनी कि अंधेरे का पता चले, और अंधेरा गहन होकर मालूम पड़े।

बुद्ध को पूर्णिमा की रात ज्ञान हुआ। पता नहीं, ऐसा हुआ या केवल काव्य
है यह। पूर्णिमा की रात चांद तो होता है, लेकिन चांद की बड़ी से बड़ी खूबी यही है कि वह चीजों को धूमिल करता है। पूरे चांद की रात रोशनी तो होती है, लेकिन रेखाएं साफ नहीं होतीं। रोशनी का एक सागर होता है, लेकिन बड़ा धुआं-धुआं, रहस्यपूर्ण। चांद चीजों को एक रहस्य दे देता है।
इसलिए तो कवि प्रेम करते हैं, प्रेमी प्रेम करते हैं। चांद चीजों को ऐसा सौंदर्य दे देता है जो दिन की दुपहरी में छिन जाता है। वही वृक्ष रात देखो, वही फूल रात चांद की रोशनी में देखो; वही चेहरा रात चांद की रोशनी में देखो, वही चेहरा दिन की दुपहरी में। बड़ा जमीन-आसमान का अंतर है। चांद बहुत कुछ छिपा लेता है, बहुत कुछ प्रकट करता है। उसका संयोजन अलग है।
बुद्ध को ज्ञान हुआ पूर्णिमा की रात; सब आकाश बड़े रहस्य से भरा था। महावीर को ज्ञान हुआ अमावस की रात; सारा अस्तित्व सिर्फ तारों की टिमटिमाहट से भरा था। और यह जान कर मैं हैरान हुआ हूं कि अब तक दिन की दुपहरी में किसी को ज्ञान नहीं हुआ; कोई निर्वाण को उपलब्ध नहीं हुआ। कोई भी, जब भी यह घटना घटी है, रात में घटी है। सांयोगिक नहीं हो सकती, रात से कुछ गहरा संबंध है। रात में कुछ बात है जो दिन में नहीं है। रात में कुछ गीत है जो दिन में नहीं है। दिन बहुत साफ-सुथरा है। और वह परम रहस्य इतना साफ-सुथरा नहीं है। दिन में चीजें अलग-अलग हैं, पृथक-पृथक हैं। और वह सत्य अपृथक है, अभिन्न है। एक चीज से दूसरे से मिला है। रात की निबिड़ता में कुछ बात है जो निर्वाण के, परम मुक्ति के ज्यादा अनुकूल और निकट है।
ध्यान रखना, रहस्य का अर्थ है वह एक काव्य है। कविता को पीना, स्वाद लेना; समझने की भर कोशिश मत करना। किसी ने पिकासो को पूछा कि तुम्हारे इन चित्रों का मतलब क्या है? तो पिकासो ने कहा, चांद-तारों से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? फूलों और वृक्षों से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? पक्षियों से, पशुओं से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? मुझसे ही क्यों पूछते हो?
मेरे बचपन में एक कबाड़ी की दुकान से मैं एक कैमरा खरीद लाया। पांच रुपए में उसने दिया। अब पांच रुपए में कोई कैमरा मिलता है? खाली डिब्बा ही था। किसी ने कूड़े-कबाड़े में फेंक दिया होगा। पर मुझे उसके चित्र बहुत पसंद आए। उससे जो चित्र आते थे वे बड़े रहस्यपूर्ण थे। उनमें पक्का पता लगाना ही कठिन था कि क्या है। वृक्ष उतारो, आदमी की शक्ल है, नदी है, पहाड़ है; कुछ पता न चलता। बारह चित्रों में आठ तो आते ही नहीं; चार ही आते। उनमें भी पक्का लगाना मुश्किल था। मैं ही जानता था कि यह क्या है; क्योंकि मैंने ही लिया था। बाकी दूसरा तो कोई पहचान ही नहीं सकता था।
मेरी नानी थीं, वह मेरे कैमरे पर बहुत नाराज थीं। वह जब भी मुझे कैमरा लटकाए देखतीं, वह कहतीं, फेंको इस ठीकरे को! कभी इससे कुछ आया है? क्यों इसको लटकाए फिरते हो फिजूल? मेरे गांव में एक छोटा सा ही फोटोग्राफर है। वह भी अपना दिमाग ठोंक लेता था, जब मैं उसके पास अपने चित्र डेवलप करवाने ले जाता। वह कहता, क्यों मेहनत करवाते हैं? और क्यों पैसा खराब करते हैं? मेरी समझ में ही नहीं आता कि यह है क्या!
लेंस खराब था। लेकिन चीजें बड़ी रहस्यपूर्ण हो जाती थीं। पक्का पता लगाना ही मुश्किल था कि क्या क्या है। एक धूमिलता आ जाती थी। लो आदमी की तस्वीर, वृक्ष की मालूम पड़े। लो वृक्ष की तस्वीर, आदमी समझ में आए। जैसे कभी-कभी आकाश में बादलों को देख कर होता है कि बादल बनते-बिगड़ते रहते हैं और तुम रूप-आकृतियां बनाते रहते हो। वे आकृतियां भी तुम्हें कल्पित करनी पड़ती हैं।
परमात्मा का अर्थ हैः यह सारा विराट वहां संयुक्त है। वहां चांद-तारे
बन रहे हैं एक कोने पर; एक कोने पर चांद-तारे मिट रहे हैं। एक तरफ पृथ्वियां बस रही हैं, दूसरी तरफ विनष्ट हो रही हैं। एक तरफ सूरज जनम रहा है, दूसरी तरफ सूरज अस्त हो रहा है। एक तरफ प्रकाश है, एक तरफ अंधकार है। सब इकट्ठा है।
उस इकट्ठे को हम झेल न पाएंगे, इसलिए हमने छोटे साफ-सुथरे कोने बना लिए हैं जिंदगी में। अपना आंगन साफ-सुथरा कर लिया है; उसके भीतर हम रहते हैं।
हमारी बुद्धि हमारा आंगन है। उसके बाहर फैला है विराट।

एक बार मैं गांव के बाहर गया। मेरे घर के लोगों ने वह कैमरा कहीं फेंक दिया, और मेरे सब चित्र भी उठा कर फेंक दिए। क्योंकि वे मानने को राजी ही नहीं थे कि ये चित्र हैं, या यह कोई कैमरा है।
जब तुम परमात्मा की तरफ जाओगे तब तुम्हारी ये आंखें, जो साफ-सुथरे को देखने की ही आदी हो गई हैं, काम न आएंगी। तुम्हें जरा धूमिल आंखें चाहिए, जिनमें चांद का प्रकाश हो या अमावस के तारों की टिमटिमाहट हो। इतनी रोशनी जितने में तुम रहने के आदी हो गए हो उचित नहीं है। यह रोशनी चीजों को खंड-खंड कर रही है।
हम यहां बैठे हैं। सांझ हो जाए, सूरज डूब जाए, धीरे-धीरे अंधकार उतरने लगे और तुम्हारे बीच की जो जगह है वह अंधकार से भरने लगे, तो एक सेतु बनता है। फिर गहन अंधकार हो जाए, फिर तुम्हारे पृथक भेद सब समाप्त हो गए। कौन है गरीब, कौन है अमीर; कौन है ज्ञानी, कौन है अज्ञानी; कौन है पापी, कौन है पुण्यात्मा; सब खो गया। अंधकार ने सब को लील लिया। तब जो एक चेतना बच रह जाती है, सब भेदों के पार कंपित होती, सब लहरें जहां सो गईं और केवल सागर रह गया, वही है रहस्य।
रहस्य को गा सकते हो, कह नहीं सकते। इसलिए संत गाते रहे। रहस्य को नाच सकते हो, कह नहीं सकते। इसलिए मीरा और चैतन्य नाचे। रहस्य को कह नहीं सकते, मौन में दर्शा सकते हो। इसलिए बहुत ज्ञानी चुप बैठे रहे; मौन में दर्शाया। सारी बात एक तरफ इशारा करती है कि रहस्य इतना बड़ा है, इतना अपरिसीम है, इतना अनंत-अनादि है कि हमारे शब्द, हमारी परिभाषाएं, हमारी धारणाएं, प्रत्यय, सभी व्यर्थ हो जाते हैं। जी सकते हो सत्य को, कह नहीं सकते।
अंतिम अर्थों में भी रहस्य को समझ लेना चाहिए।
विज्ञान संसार को--संसार के यथार्थ को--दो हिस्सों में बांटता है। एक
को वह कहता है ज्ञात; जो जान लिया। और एक को वह कहता है अज्ञात; जो जाना जाएगा। दि नोन एक को कहता है, जो जान लिया। दि अननोन, जिसे हम कल जानेंगे। धर्म कहता है, एक तीसरी बात तुम छोड़े दे रहे होः दि अननोएबल, अज्ञेय, जिसे तुम कभी भी न जानोगे।
ज्ञात अतीत है हमारा; अज्ञात भविष्य में ज्ञात बन जाएगा। अगर विज्ञान
की बात सच है तो एक दिन ऐसी घड़ी आ जाएगी कि जानने को कुछ न बचेगा। सब अतीत हो जाएगा, सब जान लिया जाएगा। उस दिन एक ही कोटि रहेगीः ज्ञात। अज्ञात की कोटि समाप्त हो जाएगी।
धर्म कहता है, ऐसा कभी नहीं होगा; कुछ जानने को सदा ही शेष रहेगा--तुम कितना ही जानो। और कुछ ऐसा भी है जिसे तुम जान ही न सकोगे। इसलिए नहीं कि तुम्हारी क्षमता कम है, क्योंकि क्षमता कम हो तो बढ़ाई जा सकती है। यंत्र-संयंत्र कम हों, बड़े किए जा सकते हैं। विज्ञान रोज बढ़ता जाता है। नहीं, यह सवाल नहीं है। कुछ ऐसा भी है इस अस्तित्व में जिसका स्वभाव ही उसकी अज्ञेयता है, अननोएबिलिटी है। इसलिए तुम्हारे जानने के यंत्रों, प्रयोगशालाओं, तुम्हारी बुद्धि, प्रतिभा, गणित के विकास से उसका कोई लेना- देना नहीं। उसका होना ही ऐसा है। वह उसका गुण है। जैसे आग ठंडी नहीं हो सकती। ठंडी हो तो आग नहीं है। सूरज बिना रोशनी के नहीं हो सकता। हो तो सूरज नहीं है। वह उसका स्वभाव है।
लाओत्से कहता है, जीवन के आत्यंतिक, गहनतम सत्य का स्वभाव उसकी अज्ञेयता है। इसलिए तुम कुछ भी करो, तुम उसे जान न सकोगे। वह सदा ही दूर क्षितिज पर अज्ञेय की तरह बना रहेगा। उससे अगर नाता जुड़ाना हो, तो ज्ञान का नाता नहीं। उससे वह नाता बनता ही नहीं। वह उसका स्वभाव नहीं है। उससे तो सिर्फ प्रेम का नाता बनता है; जानने का नाता नहीं, बुद्धि का नाता नहीं। उससे तो हृदय का रास्ता जोड़ता है।
हृदय जानने की चिंता ही नहीं करता। हृदय जानने न जानने का विचार ही नहीं करता। हृदय तो आनंदित, प्रफुल्लित होता है उसमें, खिलता है उसमें, तिरता है, तैरता है, नाचता है उसमें; जानने की चिंता ही नहीं करता। हृदय कहता है, जानने का प्रयोजन क्या है? होना वास्तविक बात है। जान कर क्या करेंगे? जब होने का रास्ता खुला हो तो मूढ़ जानने की कोशिश करेंगे।

जब प्यास लगी हो तो तुम जल को जानना चाहते हो या पीना चाहते हो? क्या होगा जान कर कि एच-टू-ओ से जल बना हुआ है, कि इसमें इतने परमाणु आक्सीजन के, इतने हाइड्रोजन के? क्या होगा? एच-टू-ओ के फार्मूला को तुम अगर कंठ में भी ले जाओगे तो प्यास मिटेगी नहीं, कंठ अवरुद्ध हो जाएगा। पानी चाहिए, ज्ञान नहीं। कंठ पर पानी की शीतलता चाहिए, पानी के संबंध में जानकारी नहीं। बुद्धि जानने में लगी है; हृदय जीना चाहता है।
रहस्य का अर्थ हैः जिसे जाना कभी न जा सके, लेकिन जीया जा सके। अगर जानने की कोशिश तुमने की तो तुम दूर होते जाओगे। क्योंकि उसका स्वभाव ही जानने में नहीं आता। अगर तुमने जीने की कोशिश की तो तुम उसमें डूब जाओगे, तुम उसके साथ एक हो जाओगे। वही एकमात्र जानना है।
प्रेम ही एकमात्र जानना है परमात्मा का। और ध्यान ही एकमात्र ज्ञान है परमात्मा का। और समाधि ही एकमात्र शास्त्र है परमात्मा का। इससे नीचे तुमने अगर कुछ भी कोशिश की, इससे भिन्न अगर कोई भी कोशिश की, तो तुम व्यर्थ ही अड़चन में पड़ोगे और भटकोगे।
यह है रहस्य भरा ताओ।
अब हम समझने की कोशिश करें।
"ताओ संसार का रहस्य भरा मर्म है। ताओ इ.ज दि मिस्टीरियस सीक्रेट ऑफ दि यूनिवर्स।"
रहस्य है, छिपा हुआ रहस्य है। उघाड़ो, कितना ही उघाड़ो, तुम उसके घूंघट को
न उठा पाओगे। क्योंकि घूंघट उसके स्वभाव का अंग है। घूंघट ऊपर से डाला हुआ होता तो उठ जाता। घूंघट उसके होने की व्यवस्था है; उसके जीवन की शैली है। एक तो घूंघट है वस्त्रों का; उसे तुम उठा सकते हो। क्योंकि वह बाहर से डाला गया है। एक घूंघट लज्जा का भी होता है; तुम उसे न उठा सकोगे। तुम उसे कैसे उठाओगे? नग्न स्त्री भी तुम कर दो, लेकिन लज्जा का घूंघट तो पड़ा ही रहेगा। और गहन हो जाएगा। कपड़े उतारे जा सकते हैं। और अगर तुमने कपड़ों को ही घूंघट समझा है और तुमने समझा है कि कपड़े उतारने से ही तुम स्त्री के मर्म को समझ लोगे, तो तुम गलती में हो। देह दिखाई पड़ जाएगी, चेतना अपरिचित रह जाएगी। विज्ञान वही तो कर रहा है; घूंघट को उघाड़ रहा है, वस्त्र उघाड़ कर फेंक रहा है। उससे परमात्मा का शरीर तो पता चल रहा है--पदार्थ--लेकिन परमात्मा की कोई खबर नहीं मिल रही। प्रयोगशाला में उसकी पग-ध्वनि सुनी ही नहीं जा रही। इसलिए तो वैज्ञानिक बेचारा कहता है कि हम कहीं नहीं पाते। इतना खोजते हैं, नहीं पाते। और हम कैसे भरोसा करें कि तुम झाड़ के नीचे बैठे-बैठे पा गए? शक होता है। हम इतनी चेष्टा कर रहे हैं और नहीं पा रहे हैं।
उसकी हालत वैसी ही है जैसे कोई एक सुंदर स्त्री राह से गुजरती हो, कुछ गुंडे उस पर हमला कर दें, उसके वस्त्र निकाल कर फेंक दें, बलात्कार कर दें। तो भी वे बाहर ही बाहर रहे, स्त्री के मर्म को न पहचान पाए। क्योंकि यह ढंग ही न था मर्म को पहचानने का।
विज्ञान प्रकृति के साथ एक तरह का बलात्कार है, जबरदस्ती है, हिंसा है, आक्रमण है।
फिर इस स्त्री का प्रेमी हो। समझो कि स्त्री लैला थी, मजनू हो। और मजनू
इस स्त्री के गीत गाए। और ये गुंडे कहें कि हम उस स्त्री का सब कुछ जान चुके हैं, तुम व्यर्थ की बकवास मत करो। यह वहां कुछ है ही नहीं। हमने उस स्त्री को नग्न देख लिया है। न केवल नग्न देख लिया है, हमने उस स्त्री का उपभोग कर लिया है। तुम यह बकवास छोड़ो। ये जो गीत तुम गा रहे हो, ये हमने उसमें कभी पाए नहीं।
तो वे गुंडे भी ठीक ही कह रहे हैं, लेकिन फिर भी गलत हैं। क्योंकि स्त्री का मर्म तो खुला नहीं; वह तो प्रेम में ही खुलता है। उसकी लज्जा का अवगुंठन तो तभी मिटता है जब तुम उसमें इतने डूब जाते हो कि उसे पता ही नहीं रहता कि दूसरा मौजूद है। तभी वह घूंघट उठता है जो उसकी आत्मा पर पड़ा है।
लेकिन तब तुम रहते नहीं। तुम जब मिट जाते हो तभी वह पूर्ण रूप में प्रकट हो पाती है।
परमात्मा ऐसी ही दुलहन है, जिस पर घूंघट आंतरिक है।

लाओत्से कहता है, यह उसका, ताओ का रहस्य भरा मर्म है। इस मर्म को अगर पहचानना हो तो तुम तीन जगह इसे पा सकोगेः सज्जन के खजाने में, दुर्जन की पनाह में, संत के स्वभाव में। इस सूत्र में संत के स्वभाव की बात नहीं की है, क्योंकि उसी की बात लाओत्से पीछे प्रगाढ़ता से कर लिया है।
सज्जन का खजाना है यह स्वभाव। खजाने का अर्थ होता हैः सज्जन ने अभी इसे बाहर-बाहर से ही जाना है, अभी यह सज्जन का स्वभाव नहीं बना। अभी उसने तिजोरी में भर लिए हैं पुण्य, अच्छे कृत्य; सत्कर्म, दान, दया, सब उसने तिजोरी में भर लिए हैं। सज्जन का खजाना है।
लेकिन सज्जन भी अभी पूरी तरह परिचित नहीं है; अभी दूरी कायम है। खजाना लुट सकता है। चोर-डाकू खजाने को ले जा सकते हैं। और सज्जन को हमेशा चोर-डाकुओं का डर बना रहता है। सज्जन शैतान से बहुत डरता है। सज्जन ऐसी जगह जाने से डरता है जहां उसके खजाने पर कोई चोट न पड़ जाए।
विवेकानंद ने लिखा है कि मुझे पता नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूं, लेकिन मैं कलकत्ते में उन गलियों से निकलता ही नहीं था जहां वेश्याओं का निवास था। यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि वह मेरा भय था।
सज्जन डरता है कि कहीं वेश्याओं के निकट से न गुजरना हो जाए। क्योंकि सज्जनता अभी खजाना है, छीनी जा सकती है। वेश्या हमला कर सकती है।
सज्जन धर्म को भी धन की तरह ले रहा है। सज्जन धर्म को भी कृत्य की तरह
ले रहा है। वह सोचता है, धार्मिक कृत्य! मेरे पास कुछ सज्जन आते हैं, तो वे पूछते हैं कि हम क्या करें जिससे हम धार्मिक हो जाएं? उनका जोर करने पर है। वे यह नहीं पूछते कि हम क्या हो जाएं। वे पूछते हैं, व्हाट टु डू, नाट व्हाट टु बी। वही फर्क है। सज्जन पूछता है, क्या करूं? वह सोचता है, करने की बात है। कुछ कृत्य करो, धार्मिक हो जाओगे।
संत पूछता है, मैं क्या हो जाऊं? करने का क्या सवाल है! करना तो होने से निकलता है। अगर मैं हो गया तो करना तो अपने आप ठीक हो जाएगा।
लेकिन उलटा सही नहीं है। तुम अपने सारे कृत्यों को धार्मिक कर लो तो भी जरूरी नहीं है कि तुम धार्मिक हो जाओ। हो सकता है, यह सब ऊपर-ऊपर पाखंड हो। कृत्य आत्मा को नहीं बदलते, आत्मा कृत्यों को बदलती है। बाहर भीतर को नहीं बदलता, भीतर बाहर को बदलता है। आचरण नहीं बदलता अंतस को, अंतस आचरण को बदलता है। अगर बिना अंतस को बदले तुमने आचरण बदला तो ऊपर की सजावट होगी,शृंगार होगा। वह ओंठों पर लगा लिपिस्टिक होगा, भीतर से खून की लाली नहीं। दुनिया तुम्हें पूजेगी, क्योंकि दुनिया खजाने को पूजती है। तुम्हारा धन दिखाई पड़ेगा। तुम्हारे पास बड़ी संपदा मालूम होगी। लेकिन फिर भी यह आखिरी घड़ी नहीं आई है।
लाओत्से कहता है, वह रहस्य है सज्जन का खजाना। रहस्य को सज्जन खजाना बना लेता है। दुर्जन की पनाह है। और वही दुर्जन के लिए शरण-स्थल है।
इसे तुम सोचो। सज्जन हमेशा अकड़ा रहता है कि मैंने यह किया, यह किया, यह किया। इतने दान दिए, इतने भिक्षुओं को भोजन दिया, इतनी धर्मशालाएं बनाईं, इतने मंदिर-मस्जिद खड़े किए। क्या किया, उसको वह जोड़ता है, हिसाब रखता है, खाते-बही में लिखता है।
इन्हीं सज्जनों ने कथाएं गढ़ी हैं कि वहां आकाश में, स्वर्ग के द्वार पर भी, खाते-बही में सब लिखा जा रहा है। तुमने क्या किया, वह सब अंकित किया जा रहा है। एक-एक चीज के लिए चुकतारा होगा, आखिर में जवाब देना पड़ेगा। इसलिए बुरा मत करो। बुरा मत करो, इसलिए नहीं कि बुरे में कोई बुराई है; बुरा मत करो, क्योंकि उसके लिए जवाब देना पड़ेगा। अगर जवाब न देना पड़े तो फिर कोई बुराई नहीं है।
सज्जन बुराई के विपरीत नहीं है, बुराई से डरा हुआ है। सज्जन भलाई के पक्ष में नहीं है, लेकिन भलाई उसके अहंकार को सुरक्षा देती है। तो भलाई का खजाना बनाता है। भलाई यहां भी बचाएगी, आगे भी बचाएगी।
दुर्जन के लिए पनाह है, शरण-स्थल है। बुरा आदमी हमेशा सोचता रहता हैः भला करना है। चोर सोचता है, चोरी छोड़नी है। कामी सोचता है, ब्रह्मचर्य का व्रत लेना है। झूठा सोचता है, सच बोलना है। अभ्यास करना है, यद्यपि कल करना है। आज तो जा ही चुका है; आज चोरी और कर लो, कल अचौर्य का व्रत ले लेना है। यह

पनाह है दुर्जन की। इस तरकीब से वह दुर्जन बना रहता है; कल पर टालता रहता है अच्छे को। वह उसका शरण-स्थल है। उसके सहारे वह बुरा है।
यह बड़े मजे की बात है--लोग भलाई के सहारे बुरे होते हैं। बुरा होना इतना बुरा है कि बिना भलाई के सहारे तुम बुरे भी नहीं हो सकते; तुम किसी भलाई में रास्ता खोजते हो बुरे होने का। तुम यह कहते हो कि अगर मैं झूठ भी बोल रहा हूं तो इसलिए बोल रहा हूं कि उस आदमी को बचाना है; नहीं तो उसकी हत्या हो जाएगी। तुम कहते हो, मैं झूठ बोल रहा हूं इसलिए कि बच्चों को पालना है, नहीं तो मर जाएंगे। तुम झूठ बोलने के लिए भी या तो प्रेम की शरण लेते हो, या दान की शरण लेते हो, या सत्य की शरण लेते हो। पर तुम शरण लेते हो। और तब तुम अपने झूठ में भी प्रफुल्लित हो। तब कोई डर न रहा। क्योंकि तुम झूठ भी सच के लिए बोल रहे हो। तुम बुरा भी भले के लिए कर रहे हो।
स्टैलिन ने लाखों लोगों की हत्या की, लेकिन उसके मन पर जरा भी दंश नहीं पड़ा। क्योंकि ये बुरे लोग हैं, और इनको वह समाज के भविष्य के लिए नष्ट कर रहा है। माओ ने हजारों-लाखों लोगों को गोली मार दी है, जिनका कोई हिसाब भी रखना कठिन है। लेकिन माओ के मन पर कोई दंश नहीं है, नींद में कोई खलल नहीं पड़ती। क्योंकि समाजवाद लाने के लिए, भविष्य का एक उटोपिया है, एक कल्पना है, उसको पूरा करने के लिए, एक महान कार्य के लिए यह सब होगा ही। यह बलिदान जरूरी है।
इसे तुम छोटे से लेकर बड़े तक पहचान लोगे। हिंदू पुरोहित सदियों से जानवरों की बलि देता रहा है। कथाएं तो यह भी हैं कि उसने आदमियों की बलि भी दी है। अश्वमेध यज्ञ तो होते ही थे जिनमें घोड़ों की बलि दी जाती, नरमेध यज्ञ भी होते थे। लेकिन ब्राह्मण को, पुरोहित को कभी इससे पीड़ा नहीं हुई।
क्योंकि बलि तो परमात्मा के लिए दी जा रही है। परमात्मा का सहारा है।
आज भी कलकत्ता के काली के मंदिर में सैकड़ों पशुओं की बलि दी जाती है। लेकिन पुरोहित को कोई कष्ट नहीं है, क्योंकि यह तो परमात्मा के चरणों में चढ़ाया जा रहा है।
ताओ का यह उपयोग शरण-स्थल की तरह हो रहा है। काट रहे हो पशुओं को, हिंसा
कर रहे हो स्पष्ट, पाप सीधा-साफ है। लेकिन पुण्य की आड़ में हो रहा है; प्रार्थना के लिए किया जा रहा है; पूजा का हिस्सा है।
दुनिया में जो बड़े से बड़े बेईमान लोग हैं, वे भी अपनी बेईमानी को किसी प्रार्थना और पूजा का हिस्सा बना लेते हैं। फिर दंश मिट जाता है। फिर दिल खोल कर पाप करो।
सज्जन अहंकार निर्मित करता है अपने कृत्यों से और दुर्जन सत्य के नाम
पर असत्य की प्रक्रियाओं में गुजरता रहता है। करता है बेईमानी, लेकिन बहाना ईमानदारी का लेता है। अपने को धोखा देता है।
"सज्जन का खजाना और दुर्जन की पनाह।"
एक और अर्थ में भी यह सच है। बात तो एक ही है, सत्य तो एक ही है, तुम चाहो
तो उसका खजाना बना लो और तुम चाहो तो उसकी पनाह बना लो। तुम पर सब निर्भर है। और तीसरी बात मैं जोड़ देना चाहता हूं जो इस सूत्र में नहीं है, लेकिन लाओत्से का मूल स्वर है, संत का स्वभाव। संत के लिए न तो यह कृत्य है और न पनाह है। संत तो इसे अपने स्वभाव की तरह पहचान लेता है। और जब यह स्वभाव हो जाता है, तभी कोई तुम्हें लूट नहीं सकता। और जब यह स्वभाव हो जाता है, तभी भय समाप्त हुआ। अब यह कभी तुमसे छीना न जा सकेगा। संत आश्वस्त हो जाता है। इसलिए तो तुम संत को इतना शांत पाते हो, क्योंकि उसे आश्वासन मिल गया, अब उससे कुछ छीना नहीं जा सकता। और उसने जो पा लिया है उसका अब कोई अंत नहीं है। अब वापस लौटने का उपाय न रहा। अब वह मंजिल के साथ एक हो गया।
तब तक मत रुकना। खजाना बना कर मत अपने को समझा लेना। वह काफी नहीं है। अच्छा है, काफी नहीं है। कुछ न कर सको तो ठीक है, लेकिन अंत नहीं है। मार्ग हो सकता है, मंजिल नहीं है। उससे भी आगे जाना है। उसे अगर पड़ाव बनाओ तो चल जाएगा, लेकिन आखिरी विश्राम मत बना लेना। वह घर नहीं है, राह की धर्मशाला हो सकती है। वहां सदा के लिए नहीं रुक जाना है। वहां एक रात विश्राम करके आगे बढ़ जाना है।
"और दुर्जन की पनाह।"

अगर ताओ को पनाह बनाओ, परमात्मा को पनाह बनाओ, तो भी जितने जल्दी हो उतनी जल्दी करना। कहीं यह पनाह बनाना सिर्फ पोस्टपोन करने का, स्थगन करने का उपाय न हो जाए।
लोग मेरे पास आते हैं, वे हमेशा कहते हैं, कल करेंगे, संन्यास कल लेना है। कल बीतते चले जाते हैं। वे जब भी आते हैं, वे फिर कहते हैं, कल लेंगे। कुछ तो ऐसे लोग हैं जो पांच साल से मेरे पास आते होंगे। जब भी आते हैं, वे कहते हैं, बस तैयारी कर रहा हूं; थोड़े दिन की बात है। पांच साल गुजार दिए उन्होंने, वे पचास साल भी गुजार देंगे। उन्हें अपने धोखे का पता नहीं चल रहा है।
जो करना हो उसे कर लेना; उसे तत्क्षण कर लेना। कल का क्या भरोसा है? कल कभी आता है? कल कभी आया है? कभी सुना कि कल आया हो? जो आता ही नहीं, उस पर टालना मत। टालना ही हो तो साफ कह देना कि यह मेरे लिए करना ही नहीं है। बात साफ हो गई। लेकिन टाल कर धोखा मत देना। क्योंकि टालने में एक तरकीब है। तुम अपने को यह भी समझाए रहते हो कि यह करना तो है, कल करना है। इसलिए मन अहंकार से भी भरा रहता है कि करना तो जरूर है, सिर्फ समय की बात है। स्थिति साफ नहीं हो पाती कि तुम कहां खड़े हो।
दुर्जन की पनाह है धर्म। तुम उसे पनाह मत बनाना; बचना। खजाना बनाना। और खजाने को भी पर्याप्त मत समझना। स्वभाव तक ले जाना है यात्रा को। जब तक स्वभाव न हो जाए तब तक भटकने के उपाय कायम हैं। खजाना भी खो जाएगा। पनाह में तो मिला ही नहीं है, खोया ही हुआ है।
"सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं, श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।"
लेकिन होगा यह सब ऊपर-ऊपर। ऐसे ही तो तुम ज्ञानी बने हो कि सुंदर वचन तुमने बाजार से खरीद लिए हैं। लेकिन लाओत्से कहता है, कुछ खरीदना ही हो तो सुंदर वचन ही खरीदना, क्योंकि वहां और कचरा चीजें भी बिक रही हैं। सुंदर वचन भी अंततः कचरा हैं, लेकिन कम से कम उनमें तुम्हारी प्यास की थोड़ी झलक तो मिलती है। खरीदना ही हो तो कुछ और न खरीद कर आचरण खरीदना; हालांकि वह आचरण बहुत गहरा नहीं होगा। लेकिन कम से कम कुछ तो होगा। खजाना ही बनाना हो तो इस संसार के सिक्कों का मत बनाना; जब उस संसार के सिक्कों का खजाना बनने की सुविधा है तो उसको ही बनाना। धन ही इकट्ठा करना हो तो पुण्य का करना। लाओत्से यह नहीं कह रहा है कि यहां रुक जाना।
"सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं।"
बिक रहे हैं। बाइबिल खरीद सकते हो। गीता खरीद सकते हो। वेद खरीद सकते हो। सब खरीदा जा सकता है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, सब के वचन बाजार में बिक रहे हैं। अगर कुछ खरीदना ही हो तो वचन खरीदना। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी क्षण में कोई वचन तुम्हारे भीतर इतना गहरा बैठ जाता है कि उससे क्रांति घटित हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक वचन विस्फोटक है। सिर्फ वचन को इकट्ठा कर लेने से कुछ होने वाला नहीं है, लेकिन कभी किसी क्षण में, किसी नाजुक क्षण में कोई वचन बहुत गहरे बैठ सकता है; किसी ऐसे क्षण में जब तुम्हारे मन के द्वार खुले हैं।
इसलिए तो हिंदुओं ने एक व्यवस्था की है। वे कहते हैं, गीता तुम रोज पढ़ो, उसे पाठ बनाओ। पश्चिम के लोग बड़े हैरान होते हैं कि रोज पढ़ने से क्या होगा? एक दफा किताब पढ़ ली, खतम हो गई बात। अब रोज क्या पढ़ना है? समझ लिया, बात खतम हो गई। न समझे होओ, दुबारा पढ़ लो, तिबारा पढ़ लो। मगर रोज पढ़ रहे हो?
हिंदुओं का कारण है। रोज इसलिए पढ़ने को वे कह रहे हैं कि तुम्हें अपने
मन का कोई पता नहीं। कभी-कभी तुम्हारे मन का झरोखा खुला होता है-- संयोगवशात। किसी रात तुम गहरी नींद सोए, क्योंकि उसके पहले दिन तुमने काफी श्रम किया। किसी रात तुम्हारा मन शांत रहा, बहुत सपने न आए, क्योंकि उसके पहले दिन बहुत वासनाओं की दौड़ न हुई। सुबह तुमने गीता पढ़ी। ये शब्द बहुत गहरे चले जाएंगे। किसी दिन तुम क्रोध से भरे हो; वासनाएं मन को घेरे हुए हैं; उद्विग्न हो, अशांत, बेचैन हो। गीता पढ़ी। ये शब्द भीतर नहीं जाएंगे। तुम पढ़ते रहना। कभी तो संयोग मिलेगा। कभी तो ऐसा होगा कि तुम किसी ठीक क्षण में गीता पढ़ लोगे। तुम रोज ही पढ़ते जाना।

मैं रोज बोले जाता हूं। कारण इतना ही है कि तुम्हारा भरोसा नहीं है। नहीं तो एक दफा बोल दूं, बात खतम। जो मैं कह रहा हूं रोज वह एक दिन में भी कह सकता हूं। जो मैं कह रहा हूं वह एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है। उसके लिए कुछ बहुत इतना कहने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा भरोसा नहीं है। मैं तो पोस्टकार्ड पर लिख दूं, लेकिन तुम वहां मौजूद न हुए! मैं तो एक दिन कह दूं, पांच वचनों में सारी बात खतम हो जाए। लेकिन तुम? सवाल तुम्हारा है। इसलिए रोज कहे जाता हूं। किसी दिन तो तालमेल बैठेगा। किसी दिन तो तुम्हें घर पाऊंगा। किसी दिन तो ऐसा होगा कि तुम घर के भीतर होओगे और मैं दस्तक दूंगा। तो मैं दस्तक देता रहूंगा। किसी दिन यह संयोग बैठ जाएगा। उसी क्षण तालमेल बैठ जाएगा। उसी क्षण अंधेरा टूट जाता है, प्रकाश फैल जाता है। उस क्षण में, उस संधि में तुम देख लेते हो। एक दफा तुमने देख लिया, नाता जुड़ गया। अब तुम्हारे जीवन में एक दूसरी यात्रा शुरू हो गई।
इसलिए सत्संग का इतना महत्व है। वचन ही तो सुनोगे सत्संग में, लेकिन क्या मूल्य है? मूल्य यह है कि कभी यह हो सकता है संयोगवशात कि ऐसी घड़ी हो तुम्हारे भीतर सुख की, शांति की, प्रफुल्लता की, कि तालमेल बैठ जाए। बैठ जाए एक बार तो फिर बार-बार बैठने लगेगा। क्योंकि जो एक बार हो गया उसके बार-बार होने की संभावना हो गई। और जिसका स्वाद तुमने एक बार ले लिया, अब तुम बार-बार उसके स्वाद के लिए आतुर रहोगे। और धीरे-धीरे तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि क्यों इस घड़ी में यह हुआ। तो जिस कारण इस घड़ी में हुआ है उन-उन कारणों को सम्हालने लगो। इतनी ही तो साधना है।
अगर किसी दिन रात गहरी नींद आई, और तुमने सुबह मुझे सुना और तुम्हारे हृदय में झनकार पहुंच गई, उसका मतलब है, गहरी नींद रोज सोना जरूरी है; तो फिर इस तरह जीयो कि गहरी नींद आ सके। तो तुमने पाया कि अगर दिन में तुम ठीक शारीरिक श्रम करते हो तो गहरी नींद हो जाती है। तो इसका अर्थ हुआ कि ठीक शारीरिक श्रम करते ही रहो; उससे बचो मत। कि तुमने पाया कि तुम क्रोध नहीं किए दो दिन तक, इसलिए तुम्हारे मन में एक शांत आभा थी; तुम सुन सके। या तुमने पाया कि तुम कामवासना में नहीं उतरे एक सप्ताह तक, इसलिए तुम्हारे भीतर एक ऊर्जा थी, एक शक्ति थी; उस शक्ति के कारण तालमेल बैठ गया। तो फिर तुम जमाने लगोगे। फिर तुम्हारे जीवन में दृष्टि आ गई। और कोई पतंजलि के शास्त्र से तुम्हें नहीं मिलेगा ज्ञान; अपने ही जीवन के स्वाद से तुम पहचानोगे, क्या करना है। कैसे यह हुआ, इसकी पहचान तुम बढ़ाते जाओगे। तुम्हारे जीवन में साधक का जन्म हो जाएगा।
साधक हो जाओ, सिद्ध होना बहुत दूर नहीं है। गैर-साधक से साधक की दूरी बहुत बड़ी है; साधक और सिद्ध की दूरी बहुत बड़ी नहीं है। जो चल पड़ा वह पहुंच ही जाएगा। जो नहीं चला है, वह कैसे चलेगा, यह कठिनाई है। बैठे हुए और चलने वाले के बीच फासला बहुत बड़ा है। जो चल पड़ा और जो पहुंच गया, उसके बीच फासला बहुत बड़ा नहीं है। जो चल ही पड़ा वह पहुंच ही जाएगा।
महावीर कहते थे, चल गए कि आधे पहुंच गए। आधी यात्रा तो हो ही गई, जिस क्षण पहला कदम उठा।
लेकिन वह पहला कदम बहुत समय लेता है।
लाओत्से कहता है, "सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं, श्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया जा सकता है।"
यह बड़ा कठिन लगेगा कि श्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया जा सकता है। निश्चित ही। हम सब कुछ न कुछ तो भेंट देते ही हैं। अश्रेष्ठ तो हम भेंट देते ही हैं। तुम बैठे हो अपने घर में, उदास बैठे हो। तुम्हारा बच्चा तुम्हें उदास देख रहा है, तुम कुछ भेंट दे रहे हो। तुम उसे उदास बैठना सिखा रहे हो। तुम प्रफुल्लित हो; तुम आनंदित हो। तुम्हारा बच्चा तुम्हारे पास बैठा है। वह तुम्हारी प्रफुल्लता को पी रहा है। तुम उसे श्रेष्ठ चरित्र भेंट दे रहे हो।
और ध्यान रखना, बच्चे तुम्हारे शब्दों की फिक्र नहीं करते; तुम क्या हो, उसकी फिक्र करते हैं। तुम क्या कहते हो, उसको वे बहुत ज्यादा ध्यान नहीं देते। क्योंकि वे जानते हैं, तुम्हारे कहने और तुम्हारे होने में बड़ा फर्क है। तुम कहते कुछ हो, तुम करते कुछ हो। वे तुम्हें देखते हैं। वे तुम्हें

पीते हैं। अगर बच्चा बिगड़ जाए तो तुम समझना कि तुमने उसे अश्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया। तुम ही जिम्मेवार हो। तुम सिर मत ठोंकना कि यह दुर्जन हमारे घर में कैसे पैदा हो गया! यह अकारण नहीं है। यह तुम्हारे घर में ही पैदा हो सकता था, इसीलिए तुम्हारे घर में पैदा हुआ। यह तुम्हारा फूल है। इसे तुमने सींचा-संवारा। यही तुमने इसे दिया। अब जब इसमें फल आने लगे तब तुम घबड़ाते हो। धोखा मत देना बच्चे के सामने, अन्यथा वह धोखे को पी जाता है।
अब वह देखता रहता है। बच्चे बड़े आब्जर्वर्स हैं। क्योंकि अभी सोच-विचार तो ज्यादा नहीं है, निरीक्षण करते हैं। तुम सोच-विचार के कारण निरीक्षण नहीं कर पाते; उनकी सारी ऊर्जा निरीक्षण कर रही है। वे देखते हैं कि मां और बाप लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे, और कोई मेहमान आ गया और वे दोनों मुस्कुराने लगे और ऐसा व्यवहार करने लगे जैसे कि जैसा प्रेम इनके जीवन में है ऐसा तो कहीं है ही नहीं। अब बच्चा देख रहा है। वह देख रहा है कि धोखा चल रहा है। अभी ये लड़ रहे थे, अभी एक-दूसरे की गर्दन दबाने को तैयार थे, अब मुस्कुरा रहे हैं। पाखंड चल रहा है। बच्चा देख रहा है। वह पी रहा है। तुम भेंट दे रहे हो।
उठते-बैठते, जाने-बिनजाने तुम जिनसे भी मिल रहे हो तुम उनको कुछ भेंट
दे रहे हो। यह सारा जीवन एक शेयरिंग है। हम बांट रहे हैं। तुम जिससे भी मिलते हो, कुछ तुम्हें वह दे रहा है, तुम उसे कुछ दे रहे हो। जीवन-ऊर्जा का आदान-प्रदान चल रहा है।
इसलिए उन लोगों से दूर रहना जिनसे गलत मिल सकता है, और उन लोगों के करीब रहना जिनसे शुभ मिल सकता है। बचाव करना अपना। क्योंकि अभी तुम इस योग्य नहीं हो कि गलत कोई दे और तुम न लो। अभी तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है कि तुम कह दो कि नहीं, मैं वैसे ही आकंठ भरा हूं, कृपा करो। वह तुम्हारी हिम्मत नहीं है। कोई देगा तो तुम ले ही लोगे। कचरा इकट्ठा करने की तुम्हें ऐसी सहज सुगमता हो गई है कि तुम्हें इनकार करना आता ही नहीं। तुम्हारे द्वार खुले ही हैं, कोई भी कचरा फेंक जाए।
रास्ते पर एक आदमी मिल जाता है, वह तुम्हें कुछ भी अफवाह सुनाने लगता है। तुम आतुर कानों से सुनने लगते हो। तुम बिना सोचे कि यह अफवाह को भीतर ले जाने का क्या परिणाम होगा? क्यों सुन रहे हो? क्यों नहीं उससे कहते कि माफ करें, इसमें मुझे कोई प्रयोजन नहीं है? कौन आदमी ने चोरी की, किसने हत्या की, कौन किसकी स्त्री को भगा ले गया, इससे मुझे क्या प्रयोजन है? आप क्षमा करें, अपना समय नष्ट न करें। और क्यों कचरा मेरे कान में डाल रहे हैं? तुम्हारे घर में अगर कोई कचरे की टोकरी डाल जाए तो तुम झगड़े को तैयार हो जाते हो। लेकिन तुम्हारी आत्मा में लोग कचरा डालते रहते हैं; तुम इनकार भी नहीं करते।
यह जो तुम सुन रहे हो, परिणाम लाएगा। क्योंकि अगर तुम रोज-रोज सुनते हो--फलां आदमी फलां की स्त्री भगा ले गया, फलां आदमी ने चोरी की, फलां आदमी ने ब्लैक मार्केट किया, फलां आदमी तस्करी कर रहा है, फलाने ने इतना कमा लिया--ये सब बीज हैं। इन सबका एक इकट्ठा परिणाम यह होगा कि तुम पाओगे, जो तुमने इन बीजों में इकट्ठा कर लिया वह तुम्हारे आचरण में आना शुरू हो गया। ये सब आकर्षण हैं, क्योंकि तुम देखते हो कि तस्कर बड़ा मकान बना लिया।
गांव में एक पुरोहित आया। और उसने शराब की बड़ी निंदा की। और निंदा करने
के लिए उसने कहा कि देखो, गांव में सबसे बड़ा भवन, सबसे बड़ा मकान किसके पास है? शराब बेचने वाले के पास! तुम्हारा खून उसकी ईंटों में लगा है। सबसे बड़ी कार किसके पास है? शराब बेचने वाले के पास! तुम बरबाद हो रहे हो; उसकी संपत्ति बन रही है। ऐसा उसने वर्णन किया।
मुल्ला नसरुद्दीन भी सुन रहा था। पीछे वह धन्यवाद देने गया। उसने कहा
कि आपने मेरा जीवन बदल दिया, धन्यवाद। ऐसा प्रवचन मैंने कभी सुना नहीं, मेरी आत्मा बदल गई। अब मैं एक दूसरा ही आदमी हूं। पुरोहित बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि बड़ी सुख की बात है; क्या आपने तय कर लिया शराब नहीं पीएंगे? उसने कहा कि नहीं, मैंने शराब की दुकान खोलने का तय कर लिया। निर्णय ही ले लिया। आपकी बात ने ऐसा प्रभाव किया।

तुम जो भी सुन रहे हो, वे प्रभाव हैं, इम्प्रेशंस हैं। वे संस्कार हैं।
हम एक-दूसरे को दे रहे हैं।
लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।"
भेंट ही देनी हो तो चरित्र की भेंट देना।
"यद्यपि बुरे लोग हो सकते हैं, हैं, तथापि उन्हें अस्वीकृत क्यों किया जाए?"
अस्वीकृत करने की कोई जरूरत नहीं है। उनको भी चरित्र की भेंट दी जा सकती है। बुरों को भला बनाया जा सकता है।
"इसलिए सम्राट के राज्याभिषेक पर, मंत्रियों की नियुक्ति पर, मणि- माणिक्य और चार-चार घोड़ों के दल भेजने की बजाय ताओ की भेंट भेजना श्रेयस्कर है।"
लाओत्से यह कह रहा है, देने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। बांटने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। साझा करने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। जितना बन सके, उसे दो।
लेकिन बड़ी कठिनाई है। तुम वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। तुम कैसे दोगे चरित्र अगर तुम्हारे पास न हो? दुश्चरित्र बाप भी बेटे को सच्चरित्र बनाना चाहता है। पर कैसे देगा? बुरा आदमी भी अपने बच्चों को बुरा नहीं देखना चाहता। चोर भी अपने बच्चों को ईमानदार बनाना चाहता है। मगर कैसे करेगा यह? तुम वही तो दोगे जो तुम्हारे पास है।
अगर तुम्हें देना हो चरित्र दूसरों को तो चरित्र निर्मित करना होगा।
और अगर तुम्हें स्वभाव की तरफ लोगों को ले जाना हो तो तुम्हें स्वभाव में आरूढ़ हो जाना होगा। तुम वही दे सकोगे जो तुम्हारे पास है। और अगर लोग तुम्हारी न सुनते हों, तुम देते कुछ हो, उनके पास कुछ और पहुंचता हो, तो तुम लोगों पर नाराज मत होना। मत कहना कि लोग बुरे हैं। तुम अपना ही विचार करना। तुम जो देने की चेष्टा कर रहे हो, वह जो भाव-भंगिमा है, वह थोथी है। उसमें भीतर कुछ है नहीं। तुम खाली हाथ लोगों के हाथ में उंडेल रहे हो। तुम्हारे हाथ में कुछ है नहीं।
इतने धर्मगुरु हैं, इतने मस्जिद-मंदिर, इतने चर्च, इतने गुरुद्वारे, सारी पृथ्वी पटी पड़ी है। सब तरफ चरित्र दिया जा रहा है। और चरित्र मिल किसी को भी नहीं रहा है। सब तरफ ज्ञान बांटा जा रहा है। और ज्ञान किसी के पल्ले नहीं पड़ रहा है। इतनी वर्षा हो रही है ज्ञान की सब तरफ; किसी को ज्ञान पल्ले नहीं आ रहा। बात क्या है?
शायद देने वालों के पास वह नहीं है जो वे देना चाह रहे हैं। उनकी भाव-भंगिमा थोथी और नपुंसक है--इंपोटेंट गेस्चर। वे कोशिश पूरी कर रहे हैं देने की, मगर देने योग्य कुछ है नहीं। वे सिर्फ भाव-भंगिमा दिखला रहे हैं। किसी के हाथ कुछ पड़ता नहीं। पड़ नहीं सकता।
इसे याद रखना। यह तुम्हारे जीवन में क्रांति बन जाएगी।
लाओत्से यह कह रहा है कि अगर भेंट ही देनी हो तो उन वचनों की देना जिनमें अमृत की थोड़ी झलक है; उस चरित्र की देना जिसमें ताओ के खजाने का धन है; या उस स्वभाव की देना जिसको संतों ने जाना और जीया है।
"किस बात में पूर्व-पुरुषों ने इस ताओ को मूल्य दिया था? क्या उन्होंने नहीं कहा था, अपराधियों को खोजने और उन्हें माफ कर देने को? इसलिए ताओ संसार का खजाना है।"
लोग बुरे हैं, तुम उन्हें माफ कर देना। उनके बुरे होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर उन्हें बहुत लोग माफ करने वाले मिल जाएं, उनका बुरा होना समाप्त हो जाए। लोग बुरे हैं, क्योंकि माफ करने को कोई भी राजी नहीं है। लोग बुरे हैं, क्योंकि चारों तरफ उनकी बुराई को और भी बुराई बना देने के लिए आतुर बैठे हुए लोग हैं। लोग बुरे हैं, क्योंकि जो लोग भले हैं वे उनको बुरे देखना चाहते हैं और उन्हें बुरे रखना चाहते हैं। नहीं तो उनकी भलाई थोथी हो जाएगी। लोग बुरे हैं, क्योंकि सारा समाज उन्हें बुरे की भेंट दे रहा है। कोई उन्हें माफ नहीं करना चाहता।
जीसस ने एक कहानी कही है। जीसस से एक आदमी ने पूछा कि मैंने बहुत पाप किए हैं, और मुझे भरोसा नहीं आता कि परमात्मा मुझे क्षमा कर देगा।

और जीसस की तो सारी प्रक्रिया क्षमा की है। जैसे महावीर की सारी प्रक्रिया अहिंसा की है, और बुद्ध की सारी प्रक्रिया करुणा की है, जीसस की सारी प्रक्रिया क्षमा की है।
जीसस ने कहा कि तुम परमात्मा की फिक्र मत करो, तुम्हारे प्रति जिन लोगों ने अपराध किए हों, तुम उन्हें क्षमा कर दो; बाकी मैं देख लूंगा, मैं गवाह रहूंगा। और जब परमात्मा तुम्हारे पापों की बात उठाएगा तो मैं गवाह रहूंगा कि इस आदमी ने क्षमा किया था हृदयपूर्वक। और जिसने क्षमा किया है वह क्षमा पाने का अधिकारी हो गया।
और जीसस ने उसे एक कहानी कही। कहा कि एक सम्राट ने अपने वजीर को कई करोड़ रुपए उधार दिए थे। उसने सब बरबाद कर दिए, एक कौड़ी वापस न लौटाई। आखिर सम्राट ने उसे बुलाया और कहा कि अब यह बहुत हो गया। तुम धन वापस लौटाते हो? उलटे तुम और मांगे चले जा रहे हो। लौटाते तो नहीं, मांगते हो। वह आदमी सम्राट के चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा, मुझे माफ कर दें। वह सब तो बरबाद हो गया, मेरे पास लौटाने को है भी नहीं; आपकी कृपा का भिखारी हूं। उस सम्राट को दया आई। पुराना सेवक था। हो गई भूल। सम्राट ने कहा, ठीक, मैंने तुझे माफ किया। बात भूल जा, जैसे मैंने तुझे कभी दिए ही नहीं। अपने मन से बोझ हटा दे।
उस वजीर ने उन्हीं रुपयों में से, जो सम्राट के वह पा गया था, कई लोगों
को कर्ज दिया था। और वह बहुत सख्त आदमी था। और दूसरे ही दिन ऐसा हुआ कि उसके ही एक नौकर को जिसे उसने कुछ सौ रुपए दिए थे, उसने कोड़ों से पिटवाया, क्योंकि वह वापस नहीं लौटा पा रहा था। सम्राट को खबर लगी। सम्राट ने वजीर को बुलाया और उसने कहा कि तू क्षमा के योग्य नहीं है। जब मैंने तुझे क्षमा कर दिया तो भी तू क्षमा नहीं कर पा रहा है। और वे वे ही रुपए हैं जिनके लिए मैंने तुझे क्षमा कर दिया है। और तूने नौकर को कोड़े लगवाए!
जीसस कहते हैं, सम्राट ने उस आदमी को कोड़े लगवाए और कहा कि वह क्षमा वापस ले ली गई।
अस्तित्व तुम्हें कितना क्षमा किए चला जाता है। तुम बार-बार वही भूल करते हो तो भी तुम्हारा जीवन वापस नहीं ले लिया जाता। तुम बार-बार वही उपद्रव खड़ा करते हो तो भी अस्तित्व तुम्हें माफ किए चला जाता है। इससे अगर तुम इतना भी न सीख पाए कि तुम दूसरों को माफ कर दो तो तुम कुछ भी न सीख पाए। और अगर तुम दूसरों को माफ कर दो तो तुम पाओगे, जिसको भी तुम माफ करते हो उसके जीवन में तुम सुधरने का मार्ग खोल देते हो। जितना तुम दंड देते हो बुरों को उतने ही वे बुरे होते जाते हैं। जितना दंड देते हो उतने निष्णात बुरे हो जाते हैं। जितना दंड देते हो उतना ही मजबूती से बुरे हो जाते हैं। क्योंकि तुम्हारे दंड का बदला भी वे फिर लेना चाहेंगे।
जब तुम एक बच्चे को मारते हो, या एक अपराधी को, तो कई बातें घट रही हैं।
एक बच्चे ने झूठ बोला, तुमने एक चांटा मारा। बच्चे ने क्रोध किया, तुमने एक छड़ी मारी। और तुम चाहते हो कि बच्चा इससे सीख ले, अब झूठ न बोले। लेकिन अब बच्चा इससे कई बातें सीखेगा। एक बात तो यह कि झूठ बोलने पर दंड मिलता है। लेकिन झूठ बोलने के कई फायदे भी हैं। अगर झूठ सफल हो जाए तो तुम्हें पुरस्कार भी मिलते हैं। झूठ का पता न लगे, पकड़ा न जाए, तो लाभ भी होता है। और ऐसे भी झूठ बोलने का एक मजा है। और वह मजा यह है कि तुम दूसरे को धोखा दे रहे हो; तुम होशियार हो। एक अहंता है झूठ बोलने की कि तुमने बाप को धोखा दे दिया। और बाप बड़े बुद्धिमान बने बैठे हैं और पकड़ न पाए। तो बच्चा यह सीखता है कि अब झूठ तो बोलना, लेकिन इस तरह बोलना कि इतनी आसानी से पकड़े न जाओ।
और बच्चा यह भी सीखता है कि बाप कितना ही कहे कि झूठ मत बोलना, लेकिन बाप खुद झूठ बोलता है। बाप खुद ही बेटे को कहता है कि अगर कोई बाहर आए तो कह देना कि वे घर में नहीं हैं, बाहर गए हैं।
बाप कहता है, क्रोध मत करो, अपने से छोटों को मत मारो। और बाप खुद बेटे
को मारता है। और बेटा सोचता है, यह कैसा हिसाब है? मैं अपने छोटे भाई को न मारूं यह तो मुझे समझाया जाता है, और बाप मुझसे इतना बड़ा है, मैं इतना छोटा हूं, मुझे पीटा जा रहा है। तो बच्चा समझ लेता है कि छोटे पीटे तो जा सकते हैं, लेकिन निरंकुश सत्ता चाहिए। बाप मुझे पीट रहा है; कोई बाप के ऊपर नहीं है, इसलिए पीट रहा है। जिस दिन मेरे ऊपर भी कोई नहीं होगा उस दिन मैं भी पीट

सकूंगा। इसलिए पूरी कोशिश यह है कि मैं सबके ऊपर हो जाऊं, मेरे ऊपर कोई न रहे। अपराध मारने में नहीं है, न पीटने में, न क्रोध करने में; ऊपर होने में कोई अपराध नहीं है। नीचे हो तो अपराधी हो। यह बच्चा सब सीख रहा है। यही अपराधी सीख रहा है।
लाओत्से कहता है, क्षमा कर दो। उन्हें भेंट दो अमृत वचनों की। और उन्हें चरित्र का दान दो। और अगर संभव हो सके तो जैसा स्वभाव तुम्हारे पास है उस स्वभाव की थोड़ी सी झलक और स्वाद दो।
अगर तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि बांटना है, देना है, भेंट करनी है,
तो तुम अपने को बदलने में लग जाओगे। क्योंकि वही दिया जा सकता है जो तुम्हारे पास है। मेरी अपनी समझ यह है और मैं तुमसे कहता हूं, क्योंकि यह तुम्हारे काम पड़ेगी।
बहुत से संन्यासी मुझसे आकर पूछते हैं कि अभी हम तो पूरे नहीं हुए, हम दूसरों को बदलने की क्या कोशिश करें! अभी हमने तो पूरा जाना नहीं, तो हम किसको जनाएं!
उनको मैं कहता हूं कि तुम जाओ और दूसरों को जनाओ, तुम जाओ और दूसरों को बताओ और तुम दूसरों को बदलने की फिक्र करो। क्योंकि उनको बदलने की फिक्र में ही तुम पाओगे कि तुमने अपने को बदलने का और भी तीव्रता से आयोजन शुरू कर दिया है। क्योंकि जब भी तुम किसी दूसरे व्यक्ति को सुधारने में लग जाते हो तो तुम्हें साफ दिखाई पड़ने लगता है कि उसे सुधारने के पहले खुद को सुधार लेना जरूरी है। अगर तुम किसी को सुधारने में नहीं लगते तो खुद को सुधारने की जरूरत का भी एहसास नहीं होता है।
अगर हर व्यक्ति एक बुरे आदमी को सुधारने में लग जाए, भला वह बुरा आदमी सुधरे या न सुधरे, लेकिन आखिर में वह व्यक्ति पाएगा कि उसकी सुधारने की कोशिश में मैं सुधर गया हूं। एक छोटा बच्चा पूरे परिवार को बदल सकता है। क्योंकि बाप को मुश्किल हो जाता है--कैसे सिगरेट पीए इस बच्चे के सामने? अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो सिगरेट फेंक देगा। अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो झूठ बोलना बंद कर देगा। अगर तुम किसी एक आदमी के भी जीवन को रूपांतरित करने के ख्याल से भर जाओ तो अनिवार्य हो जाएगा कि तुम अपने को बदल लो। अन्यथा तुम बदलोगे कैसे? दूसरे को बदलने की कोशिश अपने को बदलने की बड़ी खूबसूरत कीमिया है। दूसरे को बदलने की चेष्टा स्वयं के लिए बड़ी से बड़ी साधना है।
इसलिए इसकी फिक्र मत करो कि कब तुम पूरे होओगे, कब तुम्हारा रूपांतरण पूरा होगा। तुम्हारे पास जो भी छोटा-मोटा है तुम उसी को बांटना शुरू कर दो। अगर कुछ न हो तो जो अमृत वचन तुमने मुझसे सुने हैं, वही तुम लोगों को कहो। अगर तुमने कुछ थोड़ा सा आचरण का खजाना निर्मित किया है, उसमें से बांटो। अगर स्वभाव की तुम्हें कोई झलक मिली है तो उसमें लोगों को भागीदार बनाओ। और तुम पाओगे, जितना तुम बांटते हो उतना बढ़ता है। और जितना तुम दूसरों को बदलने में लगते हो, उतना तुम्हारी क्रांति होती चली जाती है। तुम परोक्ष में बदलते जाते हो।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति अपने को सीधा बदलना बहुत कठिन पाता है। तुम्हारी अपनी सब पहचान दूसरे के द्वारा है। तुम्हें लोग सुंदर कहते हैं तो तुम अपने को सुंदर समझते हो। तुम्हें लोग भला कहते हैं तो तुम भला समझते हो। तुम्हारी पहचान के लिए दूसरे का दर्पण जरूरी है। अकेले में तुम कुछ भी न समझ पाओगे कि तुम कौन हो, क्या हो।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा यहूदी विचारक हुआ, मार्टिन बूवर। वह कहता है कि तुम्हारे संबंधों में ही तुम्हारे जीवन की सारी क्रांति फलित होगी। कृष्णमूर्ति का जोर भी अंतर-संबंधों पर है। वे कहते हैं कि जितना ही तुम अपने संबंधों को समझोगे--पति-पत्नी के संबंध को, मां-बेटे के संबंध को, बेटे-बाप के संबंध को, मित्र-मित्र के संबंध को--और जितने ही तुम प्रेम से भरोगे, और जितना ही तुम दूसरे के जीवन में शुभ का पदार्पण चाहोगे, चाहोगे कि इसके जीवन में मंगल की वर्षा हो जाए, तुम अचानक पाओगे कि तुम तो दूसरे के जीवन में मंगल की वर्षा कर रहे थे, लेकिन तुम्हारे आंगन में वर्षा हो चुकी।

जिसने दूसरों के लिए फूल बरसाने चाहे, उसे पता ही नहीं चलता कि कब आकाश खुल जाता है और उसके जीवन में फूल ही फूल बरस जाते हैं।
आज इतना ही।

एक सौ तीनवां प्रवचन

स्वादहीन का स्वाद लो

Chapter 63

Difficult And Easy

Accomplish do-nothing. Attend to no-affairs. Taste the flavourless.
Whether it is big or small, many or few, requite hatred with virtue.
Deal with the difficult while yet it is easy;
Deal with the big while yet it is small.
The difficult (problems) of the world
Must be dealt with while they are yet easy;
The great (problems) of the world
Must be dealt with while they are yet small.
Therefore the Sage by never dealing with great (problems),
Accomplishes greatness.
He who lightly makes a promise
Will find it often hard to keep his faith.
He who makes light of many things
Will encounter many difficulties.
Hence even the Sage regards things as difficult,
And for that reason never meets with difficulties.

अध्याय 63

कठिन और सरल

निष्क्रियता को साधो। अकर्म पर अवधान दो। स्वादहीन का स्वाद लो।
चाहे वह बड़ी हो या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।
कठिन से तभी निबट लो, जब वह सरल ही हो;
बड़े से तभी निबट लो, जब वह छोटा ही हो;
संसार की कठिन समस्याएं तभी हल की जाएं, जब वे सरल ही हों;
संसार की महान समस्याएं तभी हल की जाएं, जब वे छोटी ही हों।
इसलिए संत सदा बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं।
जो फूहड़पन के साथ वचन देता है,
उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा।
जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा।
इसलिए संत भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं,
और उसी कारण से उन्हें कठिनाइयों का सामना नहीं होता।

निष्क्रियता लाओत्से का मूल स्वर है।

इसे बहुत गहरे से समझ लेना जरूरी है। कठिनाई बढ़ जाती है और भी, क्योंकि निष्क्रियता को हम अक्सर अकर्मण्यता समझ लेते हैं। शब्द निषेधात्मक है, लेकिन स्थिति निषेध की नहीं है। निष्क्रियता शब्द तो नकार का है, लेकिन स्थिति बड़ी अकारात्मक है।

निष्क्रियता का अर्थ आलस्य नहीं है, और न अकर्मण्यता है। निष्क्रियता का अर्थ हैः शक्ति तो पूरी है, ऊर्जा तो भरपूर है; उपयोग नहीं है। भीतर तो ऊर्जा पूरी भरी है, लेकिन वासनाओं की दिशा में उसकी दौड़ रोक दी गई है। आलस्य

में ऊर्जा का अभाव है। सुबह-सुबह तुम पड़े हो अपने बिस्तर में; उठने की ताकत ही नहीं पाते हो। अभाव है, कुछ कम है; शक्ति ही मालूम नहीं पड़ती। एक करवट और लेकर सो जाते हो। इसे तुम निष्क्रियता मत समझना। यह अकर्मण्यता है। करना तो तुम चाहते हो, करने की शक्ति नहीं है।
ठीक इससे उलटी है निष्क्रियता। करना तुम नहीं चाहते; करने की शक्ति बहुत है। चाह चली गई है, शक्ति नहीं गई। आलसी की चाह तो है, शक्ति नहीं है। ज्ञानी की चाह चली गई; चाह के जाते ही बहुत शक्ति बच गई। क्योंकि चाह में जो शक्ति नष्ट होती थी अब उसके नष्ट होने की कोई जगह न रही। सब छिद्र बंद हो गए। सब द्वार बंद हो गए।
तो ज्ञानी में और आलसी में तुम्हें कभी-कभी समानता दिखाई पड़ेगी; क्योंकि ज्ञानी भी कुछ करता नहीं, आलसी भी कुछ करता नहीं। पर दोनों के कारण अलग-अलग हैं।
और ठीक से समझ लेना, अन्यथा लाओत्से को पढ़ कर बहुत से लोग निष्क्रिय न होकर आलसी हो जाते हैं।
मेरे पास मेरे ही संन्यासी आकर कहते हैं कि आप ही तो समझाते हैं कि निष्क्रिय हो रहो। फिर आप ही कहते हैंः ध्यान करो, काम करो। तो आप तो उलटी बातें समझा रहे हैं।
आलसी होने को नहीं समझा रहा हूं। तुम आलसी होना चाहोगे। कौन नहीं होना चाहता? मैं कह रहा हूं, चाह छोड़ो। चाह को तो तुम भलीभांति पकड़े हो; उसे नहीं छोड़ते सुन कर। लेकिन निष्क्रियता जंच जाती है मन को। यह तो बड़ी अच्छी बात हुई, कुछ भी नहीं करना है; ध्यान भी नहीं करना है।
सुबह छह बजे उठ कर ध्यान के लिए आना पड़ता है। तो संन्यासी मुझसे आकर कहते हैं कि एक तरफ आप समझाते हैं कि सहज हो जाओ और सुबह तो उठने का मन होता ही नहीं। इधर समझाते हैं निष्क्रिय हो जाओ, तो निष्क्रिय हम होते हैं तो बिस्तर में ही पड़े रहते हैं। उधर कहते हैं ध्यान करने आ जाओ।
इसको तुम निष्क्रियता मत समझ लेना। यह शुद्ध आलस्य है। आलस्य जहर है,
और निष्क्रियता अमृत है। इतना फासला है उनमें। जमीन-आसमान का अंतर है। और मन बहुत चालाक है। वह हमेशा ठीक को गलत से मिश्रित कर लेता है। वह बड़ा कुशल कलाकार है। वह तुमसे कहता है कि ठीक है, जब परम ज्ञानियों ने कहा है कुछ न करो, तो तुम क्यों करने में लगे हो!
परम ज्ञानियों ने कहा है कि तुम्हारे भीतर करने की जो आकांक्षा है, वह
खो जाए, करने की शक्ति नहीं। करने की आकांक्षा को भी इसलिए छोड़ने को कहा है, ताकि शक्ति बचे।
तो एक तो आलसी आदमी है जो बिस्तर में पड़ा है, कुछ नहीं कर रहा।
फिर तुमने देखा है, दौड़ के लिए तत्पर प्रतियोगी। दौड़ शुरू होने को है। सीटी बजेगी, संकेत मिलेगा, अभी दौड़ शुरू नहीं हुई है। खड़ा है लकीर पर पैर को रखे। अभी कुछ भी नहीं कर रहा है। लेकिन क्या तुम उसको आलसी कहोगे? बड़ी ऊर्जा से भरा है। इधर बजी नहीं सीटी, उधर वह दौड़ा नहीं। तत्पर है, रोआं-रोआं तत्पर है। श्वास-श्वास सजग है। क्योंकि एक-एक क्षण की कीमत है। एक क्षण भी चूक गया, एक क्षण भी पीछे हो गया, तो हार निश्चित है। कुछ भी नहीं कर रहा है; अभी इस क्षण तो खड़ा है मूर्ति की तरह, पत्थर की मूर्ति की तरह। लेकिन तुम उसे आलसी न कह सकोगे। निष्क्रिय है वह अभी। अभी क्रिया नहीं कर रहा है। ऊर्जा इकट्ठी है। ऊर्जा भीतर घनीभूत हो रही है। वह ऊर्जा का एक स्तंभ हो गया है।
मगर यह प्रतियोगी कुछ भी नहीं है। जिसने परमात्मा की तरफ जाना चाहा है उसे तो बहुत-बहुत अनंत ऊर्जा चाहिए। यह दौड़ तो बड़ी छोटी है; मील, आधा मील पर पूरी हो जाएगी। परमात्मा की दौड़ तो विराट है। उससे बड़ी कोई दौड़ नहीं; उससे बड़ी कोई मंजिल नहीं।
लाओत्से कहता है, निष्क्रिय हो रहो, ताकि शक्ति बचे। निष्क्रियता संयम है। व्यर्थ मत खोओ। यहां-वहां अकारण मत दौड़े फिरो। जो-जो दौड़ छोड़ी जा सकती हो, छोड़ दो। जो-जो चाह छोड़ी जा सकती हो, छोड़ दो। न्यूनतम आवश्यकताओं पर ठहर जाओ, ताकि सारी ऊर्जा एक ही दिशा में प्रवाहित होने लगे, उसकी एक ही धारा बन

जाए। निष्क्रियता का अर्थ हैः इस संसार से खींच ली ऊर्जा और उस संसार की तरफ यात्रा शुरू हो गई।
आलस्य का अर्थ हैः न उधर के, न इधर के। इस संसार में जाने योग्य ऊर्जा
ही नहीं है; उस संसार का सवाल ही कहां उठता है। आलस्य अकर्मण्यता है। वासना मन में पूरी दौड़ती है। इच्छाएं बड़े सपने बनती हैं। पाना सब है; लेकिन पाने की मेहनत करने की शक्ति नहीं, संकल्प नहीं, भरोसा नहीं। कमजोरी है। आलस्य नपुंसकता है, अभाव है। आलस्य नकारात्मक स्थिति है।
निष्क्रियता बड़ी भावात्मक स्थिति है, बहुत पाजिटिव। शक्ति है पूरी, वासना कोई न रही। इस दुनिया में कोई दौड़ आकर्षक न रही, कोई दरवाजा बुलाता नहीं; कहीं जाने को न बचा। सब इकट्ठा हुआ जा रहा है। और जब इस दुनिया में कोई भी द्वार नहीं है और सब द्वार बंद हो गए, सब छिद्र बंद हो गए और तुम्हारे घट में शक्ति भरी जा रही है, तभी तुम्हारे घट में शक्ति ऊपर उठती है। और एक ऐसी घड़ी आती है जहां तुम्हारे घट की बढ़ती हुई ऊर्जा ही तुम्हें इस संसार के पार ले जाती है। अगर ठीक से समझो तो वही कुंडलिनी का जागरण है।
मेरे पास आते हैं बिल्कुल मरे, मुर्दा लोग। उन्होंने कहा, हम फलां बाबा
के पास गए और उन्होंने कुंडलिनी जगा दी। उनकी शक्ल देख कर तुम कहोगे कि तुम्हें किसी अस्पताल में होना चाहिए। तुम्हारी कुंडलिनी जग कैसे सकती है? तुमने कोई कल्पना कर ली। तुम किसी भ्रम के शिकार हुए।
कुंडलिनी जगनी कोई आसान घटना नहीं है। वह तो इतनी भरपूर ऊर्जा का परिणाम है कि घट में नीचे कोई छिद्र नहीं है; ऊर्जा इकट्ठी होती है। कहां जाएगी? उठेगी ऊपर और एक घड़ी आएगी कि घट के मुंह से ऊर्जा बहने लगेगी; ओवरफ्लो होगा। तुम्हारी खोपड़ी ही वह मुंह है जहां से ऊर्जा का ओवरफ्लो होगा। इसलिए तो हमने उसको सहस्र-दल कमल का खिलना कहा है; जैसे फूल की पंखुड़ियां खिल जाती हैं।
फूल वृक्ष का ओवरफ्लो है। वहां तक ऊर्जा आ गई है और अब आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। आखिरी क्षण आ गया। शिखर आ गया। वहीं पंखुरियों में ऊर्जा बिखर जाती है। वहीं से सुगंध सारे लोक में फैल जाती है।
कमजोर वृक्ष जिसमें ऊर्जा न हो, उसमें फूल न खिल सकेगा। हां, यह हो सकता
है कि तुम बाजार से एक फूल खरीद लाओ और वृक्ष पर लटका दो। पर उस फूल से वृक्ष का कोई लेना-देना नहीं। ऐसे ही आबा-बाबाओं के पास जो ऊर्जा उठती है, कुंडलिनी जगती है, वह ऊपर से थोपे गए फूल हैं।
तुम्हारी ऊर्जा तभी जगेगी जब इस संसार में तुम पूरे निष्क्रिय हो जाओगे; यहां तुम रत्ती भर न गंवाओगे। यहां गंवाने योग्य है ही नहीं। यहां कुछ पाने योग्य नहीं है। तुम किस खरीददारी में लगे हो? तुम सिर्फ खो रहे हो। यहां सिर्फ मरुस्थल है जो तुम्हारी ऊर्जा को पी जाएगा।
सब छिद्र रोक दो। बंद करो सब छिद्र, कहता लाओत्से। बंद करो सब द्वार, ताकि होती जाए संगठित ऊर्जा। ऊर्जा का संगठन और ऊर्जा की बढ़ती हुई मात्रा एक जगह जाकर गुणात्मक परिवर्तन हो जाती है। क्वांटिटेटिव चेंज एक जगह जाकर क्वालिटेटिव चेंज हो जाता है। मात्रा की एक सीमा है, जहां गुणात्मक रूप बदल जाता है। जैसे तुम पानी को गरम करते हो तो निन्यानबे डिग्री तक तो पानी ही रहता है; सौ डिग्री पर भाप हो जाता है। क्या हो रहा है? सिर्फ एक डिग्री गरमी और बढ़ने से कौन सी क्रांति घट जाती है? एक डिग्री का और गरम होना केवल मात्रा का भेद है, क्वांटिटी का भेद है। निन्यानबे डिग्री गरमी थी, अब सौ डिग्री गरमी है। लेकिन गुणात्मक रूपांतरण हो गया; क्वालिटी बदल गई। पानी का गुण और; पानी बहता नीचे की तरफ। भाप का गुण और; भाप उठती ऊपर की तरफ। पानी जाता गड्ढे की तरफ; भाप जाती आकाश की तरफ। पानी अधोगामी है, भाप ऊर्ध्वगामी है। सारा गुण बदल गया। पानी दिखाई पड़ता है; भाप थोड़ी ही देर में अदृश्य हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती।
मात्रा को नीचे गिराओ--शून्य डिग्री से कहीं जाकर पानी बर्फ हो जाता है। तब फिर गुणात्मक परिवर्तन हो गया। तुमने सिर्फ गरमी कम की। फिर गुण बदल गया। पानी बहता था; बर्फ जमा है। पानी में तरलता थी, बहाव था; बर्फ पत्थर की तरह है। उसमें कोई तरलता नहीं, कोई बहाव नहीं। पानी को फेंक कर तुम किसी का

सिर न खोल सकते थे; बर्फ को फेंक कर तुम किसी की जान ले सकते हो। बर्फ ठहर गया, जड़ हो गया; गत्यात्मकता खो गई। फर्क क्या है? सिर्फ मात्रा का फर्क है। सारे जगत में जितने भी रूपांतरण दिखाई पड़ते हैं, सभी मात्रा के रूपांतरण हैं। तुम्हारी ऊर्जा जब एक मात्रा पर आती है--एक सौ डिग्री है तुम्हारी ऊर्जा का भी--वहीं से तत्क्षण तुम दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो; भाप बन जाते हो। हमने जगत को तीन हिस्सों में तोड़ा हुआ है। बीच में संसार है मनुष्य का, मनुष्य की चेतना का; यह पानी जैसा है--तरल। ऊपर दिव्य लोक है; यह भाप जैसा है--अदृश्य, ऊर्ध्वगामी। नीचे मनुष्य से नीचे की योनियां हैं; वृक्ष हैं, पत्थर हैं, पहाड़ हैं। ये बर्फ जैसे हैं--जमे हुए। ये चेतना के तीन रूप हैं। और इनका सारा भेद ऊर्जा की मात्रा का भेद है।
आलस्य से तो तुम बर्फ बन जाओगे। निष्क्रियता से तुम भाप बनोगे। दोनों
ही स्थिति में पानी तुम न रहोगे। इसलिए एक तरह की समानता है। लेकिन वह समानता बड़ी ऊपर है; भीतर बड़ा भेद है।
संत भी आलसी मालूम होने लगता है; कुछ करता नहीं दिखाई पड़ता। रमण महर्षि क्या कर रहे थे अरुणाचल में? इसलिए बहुतों को गांधी ज्यादा संत मालूम पड़ते हैं, बजाय रमण के। रमण बैठे हैं। तुमने रमण की तस्वीर देखी? सदा अपने बिस्तर पर ही बैठे हैं। बैठे भी कम हैं, लेटे ही हैं। चार-छह तकिए लगा रखे हैं। अब इनको संत कहिएगा? उठो, कुछ करो। किसी की सेवा करो। संसार को जरूरत है; कुछ काम करो। मुल्क गुलाम है; आजाद करो। लोग गरीब हैं; अमीर करो। यहां बैठे क्या कर रहे हो?
रमण बैठे ही रहे अरुणाचल पर। इसे साधारण दृष्टि न समझ पाएगी। यह आलस्य नहीं है। यह निष्क्रियता है। रंच भर भी रमण की ऊर्जा इधर-उधर नहीं फेंकी जा रही है; सब संगृहीत है, सब इकट्ठा है। और जो देख सकते हैं वे देख सकते हैं कि ऊपर की यात्रा हो रही है। और उससे बड़ी कोई सेवा नहीं है इस जगत की। तुम्हारी ऊपर की यात्रा शुरू हो जाए, तुम जगत के लिए बड़ी भारी सेवा का कारण बन गए। तुम स्रोत बन गए एक दूसरे लोक के। तुम्हारे माध्यम से परमात्मा से फिर संसार जुड़ गया। तुम्हारे माध्यम से, तुम्हारे सेतु से पदार्थ और परमात्मा के बीच कड़ी बन गई। तुम्हारे द्वारा बहुत लोग परमात्मा तक जा सकेंगे।
और परमात्मा तक जो पहुंच जाए, वही समृद्ध होता है। उसके पहले कौन समृद्ध है? सभी दरिद्र हैं। और परमात्मा में कोई पहुंच जाए, तभी कोई स्वस्थ होता है। उसके पहले कौन स्वस्थ? सभी रुग्ण हैं। सभी उपाधिग्रस्त हैं। गरीबी-अमीरी, बीमारी-स्वास्थ्य, सफलता-असफलता, सब सपने में देखी गई बातें हैं। सत्य तो उसी दिन शुरू होता है जिस दिन ऊर्जा इतनी अपरिसीम हो जाती है कि घट का मुंह फूल की पंखुड़ियों जैसा खिल जाता है और ऊर्जा तुमसे बरसने लगती है; तुम्हारे पार जब बहने लगती है। अतिक्रमण!
निष्क्रियता में तो अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है। आलस्य में तो सिर्फ पथराव है; तुम पत्थर की तरह हो जाते हो। इसलिए तुम आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति को गौर से देखना। आलसी के पास तुम एक तंद्रा पाओगे, एक मूर्च्छा, एक वजनीपन। तुम उसके पास भी बैठोगे तो तुमको भी नींद आने लगेगी। तुम उसके पास बैठोगे, तुमको भी लगेगा, एक गहन ऊब से मन भर गया है; तुम भी नीचे कहीं सरके जा रहे हो। तुम भी पत्थर की तरह वजनी हुए जा रहे हो। गुरुत्वाकर्षण गहन हो गया है।
जब तुम किसी निष्क्रिय आदमी के पास बैठोगे तो तुम पाओगे तुम्हें पंख
लग गए हैं, तुम किसी आकाश में उड़े जाते हो; जैसे जमीन ने गुरुत्वाकर्षण खो दिया। तुममें कोई वजन नहीं है, तुम हलके हो गए। वही है सत्संग, जहां से तुम हलके होकर लौटो। जहां से तुम भारी होकर आ जाओ वहां से बचना। वहां सत्संग के नाम पर ठीक उलटा ही कुछ चलता होगा। सत्संग करेगा हलका, निर्भार, कि तुम उड़ सको। और परमात्मा का तो अर्थ है आकाश का आखिरी, आखिरी आत्यंतिक छोर। वहां तो तुम जब तक बिल्कुल भार-शून्य न हो जाओगे--एब्सोल्यूटली वेटलेस--तब तक न पहुंच सकोगे।
निष्क्रियता बड़ा अदभुत फूल है। निष्क्रियता है फूल जैसी। आलस्य जड़ों जैसा--कुरूप, जमीन में दबा, सोया हुआ। निष्क्रियता है फूल जैसी--आकाश में

खिली, सुगंध को, सुवास को बिखेरती, बांटती। वृक्ष अपने को लुटा रहा है वहां से, दान कर रहा है। कुछ पाने को नहीं; ज्यादा है, इसलिए दे रहा है। यह तो पहली बात।
दूसरी बात, निष्क्रियता का स्वभाव समझने की कोशिश करो। यह तो मैंने कहा कि निष्क्रियता क्या नहीं है; निष्क्रियता आलस्य नहीं है, अकर्मण्यता नहीं है। फिर निष्क्रियता क्या है?
निष्क्रियता ऊर्जा का संयम है। ज्ञानी एक भाव-भंगिमा भी व्यर्थ और अकारण नहीं करता। अगर वह हिलता भी है तो कारण से ही हिलता है; चलता भी है तो कारण से ही चलता है। ज्ञानी एक कदम भी व्यर्थ नहीं चलता। न्यूनतम है उसका जीवन।
तुम हजारों कदम व्यर्थ चलते हो। तुम चलते ही व्यर्थ हो। तुम हजार काम व्यर्थ करते हो। तुम करते ही व्यर्थ हो। तुम हजार विचार व्यर्थ सोचते हो। तुमने कभी ख्याल किया कि तुम जितने विचार करते हो, उनमें से कितने काटे जा सकते हैं, जिनकी कोई भी जरूरत नहीं है।
तुम थोड़े ही सजग होओगे तो निन्यानबे प्रतिशत विचार तो तुम व्यर्थ ही पाओगे, जिनको न किया होता तो कुछ न खोते, जिनको करके तुमने बहुत कुछ खोया। क्योंकि हर विचार ऊर्जा को समाप्त कर रहा है। एक-एक विचार के लिए कीमत चुकानी पड़ रही है। तुम ऐसा मत समझना कि मुफ्त सपने देख रहे हो। मुफ्त तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। मुफ्त तो कुछ हो ही नहीं सकता; जो भी है, उसे तुम्हें चुकाना पड़ रहा है। तुम विचार कर रहे हो; तुम्हारी ऊर्जा खो रही है। वह एक छिद्र है। तुम व्यर्थ कुछ बात कर रहे हो; ऊर्जा खो रही है। तुम व्यर्थ सुन रहो हो; ऊर्जा खो रही है। तुम व्यर्थ देख रहे हो; ऊर्जा खो रही है। एक हाथ भी तुमने हिलाया तो मुफ्त तो नहीं हिला सकते; उतनी ऊर्जा गई, उतना जीवन व्यय हुआ।
संयम का यही अर्थ है। संयम का अर्थ हैः जो अपरिहार्य है उसके साथ जीना;
और जो काटा जा सकता है उसे काट देना। संयम ऐसा है जैसे कोई आदमी पोस्ट आफिस जाता है तार करने, तो देखता है, कितने शब्द काटे जा सकते हैं। फिर-फिर काटता है। दस, नौ-दस शब्दों के भीतर में ले आता है। यही आदमी पत्र लिखे तो चार पन्ने लिखता है। और कभी तुमने ख्याल किया, चार पन्ने जो नहीं कह सकते, वह एक तार कहता है।
ज्ञानी कम करता है, लेकिन उससे बहुत होता है। वह टेलीग्रैफिक है। वह बहुत न्यूनतम करता है, लेकिन विराटतम उससे फलित होता है। क्योंकि व्यर्थ उसने काट दिया है; सार्थक को बचा लिया है। तार की भाषा है ज्ञानी। दस शब्दों में, जो जरूरी है, जो एकदम जरूरी है, वही उसके जीवन से प्रकट होता है।
जीवन को टेलीग्रैफिक बनाओ। जितना-जितना व्यर्थ पाओ, हटा दो। तभी तुम्हारी मूर्ति निखरेगी। तभी तुम्हारे भीतर ऊर्जस्वी आत्मा का जन्म होगा। तुम आत्मवान बनोगे। तभी तुम पाओगे कि तुम शक्तिशाली हो। अन्यथा तुम हमेशा निर्बल रहोगे।
निर्बल तुम इसलिए नहीं हो कि निर्बल तुम पैदा किए गए हो; निर्बल इसलिए
हो कि तुम अपनी ऊर्जा को व्यर्थ छिद्रों से खोए डाल रहे हो। और तुम भी भलीभांति जानते हो। बहुत बार तुम्हें समझ में भी आता है। बस पुरानी लत है, पुरानी आदत है; किए चले जाते हो।
बुद्ध के सामने एक आदमी बैठा था और बैठा-बैठा अपना पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध ने पूछा कि मेरे भाई, यह क्या कर रहे हो? बीच वचन तोड़ कर बोल रहे थे, प्रवचन तोड़ कर बीच में कहा कि यह क्या कर रहे हो? यह अंगूठा क्यों हिलता है?
वह आदमी थोड़ा घबड़ा गया। और जैसे ही बुद्ध ने पूछा, अंगूठा रुक गया। क्योंकि वह हिलता था बेहोशी में, होश आ गया। कोई काम तो था नहीं अंगूठा हिलाने का। उस आदमी ने कहा कि आप भी खूब हैं! आप अपना प्रवचन दें, मेरे अंगूठे से क्या लेना-देना? और इतना महत्व क्या अंगूठे का?
बुद्ध ने कहा कि अगर तुम्हें यही पता नहीं कि तुम्हारा अंगूठा हिल रहा है, क्यों हिल रहा है, तो मैं बेकार ही प्रवचन दे रहा हूं। तुम समझोगे क्या खाक! जिसमें इतनी भी बुद्धि नहीं कि बिना कारण अंगूठा न हिलाए, वह क्या

समझेगा? और फिर तुमने रोका क्यों? जब तक तुम साफ-साफ न बताओगे, मैं आगे न बढूंगा। मेरे कहते ही अंगूठा रुका क्यों? उस आदमी ने कहा, आप भी खूब हैं! मुझे पता ही नहीं था कि अंगूठा हिल रहा है; आपने कहा, तभी मुझे पता चला। बुद्ध ने कहा, यह भी खूब रही। तुम्हारा अंगूठा; हम बताएं, तब तुम्हें पता चले!
इतनी मूर्च्छा में जीओगे और फिर रोओगे कि जीवन में कुछ मिल नहीं रहा है। अपने ही हाथों से खोओगे, और तुम्हें पता भी न चलेगा कि तुमने कैसे खो दिया है। और फिर भी आदमी अपने को होश में समझता है, जागा हुआ समझता है।
तुम भी जरा गौर से देखना। हजार अंगूठे हिल रहे हैं तुम्हारे; अकारण हिल रहे हैं। जैसे-जैसे तुम समझोगे वैसे-वैसे अंगूठे हिलने बंद हो जाएंगे। धीरे-धीरे एक शांत ऊर्जा घनीभूत होगी। तुम एक बादल हो जाओगे वर्षा के, जो भरा हुआ है, जो बरसने को तत्पर है।
बड़ी विराट संभावना है। लेकिन संभावना तभी फलित होगी जब तुम द्वार बंद करो, छिद्र रोको। और ये छिद्र और द्वार रुक जाते हैं सिर्फ होश से। थोड़ा जाग कर देखो, तुम क्या कर रहे हो। और जो-जो तुम पाओ व्यर्थ है, थोड़ा सम्हल कर चलो और व्यर्थ को छोड़ते जाओ।
बहुत बड़े प्रसिद्ध मूर्तिकार रोदिन से किसी ने पूछा। रोदिन ने एक बड़ी सुंदर प्रतिमा अभी-अभी बनाई थी। कोई मित्र देखने आया था। उसने पूछा कि तुम गजब कर देते हो! तुम करते क्या हो? तुम्हारा राज क्या है? यह प्रतिमा इतनी जीवंत प्रकट कैसे हो जाती है साधारण अनगढ़ पत्थरों से?
रोदिन ने कहा, हम कुछ करते नहीं, सिर्फ पत्थर में जो-जो व्यर्थ था, उसे
हम अलग कर देते हैं। मूर्ति तो छिपी ही थी। पत्थर जरा नासमझ है तो व्यर्थ को भी जोड़े हुए था। जरा-जरा, जहां-जहां हम पाते हैं, व्यर्थ पत्थर है, वहां हम छैनी चलाते हैं, व्यर्थ को हटा देते हैं। धीरे-धीरे मूर्ति प्रकट होने लगती है।
मूर्तिकार जब जाता है पहाड़ों में पत्थर खोजने, तो वह पत्थरों को देखता
है कि किस पत्थर में मूर्ति छिपी है? कौन सा पत्थर मूर्ति को प्रकट कर सकेगा? तुम जाओगे, तुम्हें सभी पत्थर एक जैसे लगेंगे। मूर्तिकार को दिखाई पड़ जाती है छिपी हुई मूर्ति।
तुम जब मेरे पास आते हो तो मैं देखता हूं कि तुममें कैसी मूर्ति छिपी है; क्या-क्या व्यर्थ तुममें है, जो जरा सा काट दिया जाए कि तुम सार्थकता को उपलब्ध हो जाओगे। विराट ऊर्जा तुममें छिपी है। तुम अनगढ़ पत्थर हो, लेकिन परमात्मा की प्रतिमा को छिपाए बैठे हो।
निष्क्रियता का पहला अर्थ है, जो-जो व्यर्थ है, उसे मत करो। सौ में से नब्बे प्रतिशत कृत्य तुम्हारे अपने आप विदा हो जाएंगे। दस प्रतिशत बचेंगे। वे जीवन की अपरिहार्यताएं हैं, कि प्यास लगेगी तो तुम पानी पीओगे, कि नींद आएगी तो तुम उठ कर बिस्तर पर जाकर सो जाओगे, कि भूख लगेगी तो भोजन करोगे, भोजन को पचाओगे, कि सुबह की प्रभात-वेला में थोड़ा घूम आओगे, कि स्नान कर लोगे। बस, ऐसी जरूरत की बातें बचेंगी। तब तुम्हारे भीतर ऊर्जा का स्तंभ निर्मित होगा। उसी ऊर्जा के स्तंभ से तुम चढ़ोगे परमात्मा तक। तुम नहीं, ऊर्जा चढ़ेगी। बिना ऊर्जा के तुम कैसे जाओगे? ऊर्जा ही तो मार्ग बनेगी। निष्क्रियता का अर्थ है, ऊर्जा का संयम।
अब हम लाओत्से को समझने की कोशिश करें।
"निष्क्रियता को साधो। अकम्पलिश डू-नथिंग। अकर्म पर अवधान दो। अटेंड
टु नो-अफेयर्स। और स्वादहीन का स्वाद लो।"
निष्क्रियता को साधो। कैसे साधोगे? निष्क्रियता को कोई साध सकता है? क्योंकि साधना तो क्रिया है। यहीं भाषा की मजबूरी पता चलती है। इसलिए लाओत्से शुरू में कह देता है कि कह न सकूंगा जो मैं कहना चाहता हूं, और जो मैं कहूंगा वह सत्य न होगा। सत्य कहा नहीं जा सकता। यह है कठिनाई। लाओत्से भलीभांति जानता है। क्योंकि साधना तो क्रिया है। निष्क्रियता को साधो, यह तो विरोधाभासी वक्तव्य है। निष्क्रियता को कैसे साधोगे? निष्क्रियता तो साधी नहीं जा सकती। लेकिन फिर भी यही कहना पड़ेगा। क्योंकि तुम कुछ जानते ही

नहीं। असाधे भी कुछ सधता है, इसका तुम्हें कुछ पता नहीं। तुम कर्म की भाषा ही समझते हो।
इसलिए मुझे भी कहना पड़ता है, ध्यान करो। अब ध्यान कहीं किया जा सकता है? कहना पड़ता है, प्रेम करो। प्रेम कहीं किया जा सकता है? और जो किया जाएगा वह प्रेम न होगा। प्रेम तो होता है; करोगे कैसे? ध्यान कोई क्रिया तो नहीं है, अवस्था है। तुम ध्यान में हो सकते हो; ध्यान कर नहीं सकते। करेगा कौन? कैसे करोगे? तुम प्रेम में हो सकते हो; प्रेम करोगे कैसे? तुम प्रार्थना में हो सकते हो; लेकिन प्रार्थना करोगे कैसे? तुम्हारे शोरगुल मचाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। मंदिर में जाकर सिर हजार दफे झुकाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। हाथ जोड़-जोड़ कर आकाश की तरफ आंखें उठाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। ये तो भाव-भंगिमाएं हैं, ऊपर-ऊपर हैं। प्रार्थना तो बड़ी दूसरी बात है। प्रार्थना तो तुम्हारे होने का ढंग है। तब तुम भाव-भंगिमा न भी करो तो भी प्रार्थना चलती है। प्रार्थना तो एक भाव-दशा है।
इसलिए जो भी प्रार्थना को समझ लेता है वह मंदिर नहीं जाता। मंदिर जाने
की क्या जरूरत? जो भी ध्यान को समझ लेता है फिर वह ध्यान को करता नहीं। क्योंकि करने का कहां सवाल?
लेकिन अभी जहां तुम खड़े हो, तुम्हारी ही भाषा बोलनी पड़ेगी। तुमसे कहना पड़ेगा, ध्यान करो। जानते हुए भलीभांति कि करने से ध्यान का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन तुम समझोगे ही नहीं, अगर पहले से ही कहा जाए ध्यान न करो। क्योंकि तब भी मुझे करने का ही प्रयोग करना पड़ेगा--चाहे न करना कहूं, चाहे करना कहूं।
निष्क्रियता को साधो का अर्थ यह हैः निष्क्रियता को समझो, जीओ; निष्क्रियता को सम्हालो। जीवन जैसा है, उसे समझने की कोशिश से धीरे-धीरे तुम पाओगे कि निष्क्रियता सधती है। क्योंकि जो-जो व्यर्थ है, वह तुम करना बंद कर देते हो। सार्थक को करना थोड़े ही है; सिर्फ व्यर्थ को करना छोड़ देना है। मूर्ति बनानी थोड़े ही है; जो-जो व्यर्थ शिलाखंड जुड़े हैं, उनको काट कर अलग कर देना है।
कर्म की व्यर्थता को पहचानो। भागे चले जा रहे हो। कभी खड़े होकर सोचते
भी नहीं कि किसलिए दौड़ रहे हो; किसलिए भाग रहे हो; कहां जाना चाहते हो। फिर अगर कहीं नहीं पहुंचते तो रोते क्यों हो? रोज सुबह उठे, फिर वही चक्कर शुरू कर देते हो। फिर वही दुकान; फिर वही बाजार; फिर वही कृत्य। लेकिन कभी तुमने पूछा कि इनसे तुम कहां जाना चाहते हो? क्या पा लोगे? दुकान अगर ठीक भी चल गई सत्तर साल तक तो क्या पा लोगे?
कर्म को ठीक से जो देखता है, सजग होकर समझता है, अपने एक-एक कृत्य को पहचानता है, एक-एक कृत्य को चारों तरफ से निरीक्षण करता है; देखता है कि इसे करना जरूरी है? सोचता है, विमर्श करता है; होश का प्रकाश कृत्य पर डालता हैः इसे करूं? इतनी बार किया, करके क्या पाया? फिर करूंगा तो क्या पाऊंगा? और अगर इतनी बार करके कुछ न पाया और फिर भी करता रहा हूं, तो इसके करने के पीछे कोई कारण छिपा होगा, जो मुझे पता नहीं है। क्योंकि मिलने के कारण तो मैं इसे नहीं कर रहा हूं, कुछ मिला तो है नहीं। तो कुछ कारण छिपा होगा अचेतन गर्भ में; कहीं भीतर अंधकार में कोई जड़ें छिपी होंगी, जिनके कारण यह कृत्य हो रहा है।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, सिगरेट पीना छोड़ना है। मैं उनसे कहता हूं, यह फिक्र मत करो; तुम पहले यह तो समझो कि पीते क्यों हो! और जब तुम यह ही नहीं समझ पाए पी-पीकर कि पीते क्यों हो तो तुम छोड़ कैसे सकोगे? छोड़ना क्यों चाहते हो? तो वे कहते हैं, अखबार में पढ़ लिया कि कैंसर इससे होता है। छोड़ना चाहते हो ऊपर के कारणों से कि पत्नी पीछे पड़ी है कि मत पीयो; कि मुंह से बदबू आती है; कि घर में छोटे बच्चे हैं, पीते देखेंगे तो वे भी पीएंगे। पर ये सब कारण तो ऊपर-ऊपर हैं। तुमने पीना शुरू क्यों किया? तुमने इसलिए तो पीना शुरू नहीं किया था कि इससे कैंसर नहीं होता, इसलिए पीएं। तो कैंसर होने से छोड़ोगे कैसे?
अमरीका के पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया कि हर सिगरेट के पैकेट
पर लिखा होना चाहिए कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है। लिख दिया गया। अमरीका

में बिकने वाली हर सिगरेट के पैकेट पर लिखा हुआ है कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है। कोई बिक्री में फर्क नहीं है। क्योंकि लोग इसे स्वास्थ्य के लिए पी ही नहीं रहे थे। बिक्री वैसी की वैसी है। पहले तो बहुत घबड़ाए थे सिगरेट बनाने वाले निर्माता कि इसको पैकेट पर लिखना बड़े-बड़े अक्षरों में कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है, बुरा परिणाम लाएगा। क्योंकि लोग बार-बार पैकेट निकालेंगे, बार-बार पढ़ेंगे कि स्वास्थ्य के लिए घातक है, तो बिक्री पर असर पड़ेगा।
लेकिन जरा भी असर नहीं पड़ा। रत्ती भर असर नहीं पड़ा। बराबर बिक्री वैसी
ही चल रही है। एकाध दफे लोगों ने पढ़ लिया होगा; अब वे पढ़ते भी नहीं होंगे। वह धूमिल हो गया। बार-बार पढ़ने से भूल ही गए।
स्वास्थ्य के लिए तो किसी ने सिगरेट पीनी अगर शुरू की होती, तो स्वास्थ्य के लिए यह घातक है यह जान कर वह बंद कर देता। पत्नी को पसंद पड़ेगी, इसलिए अगर किसी ने सिगरेट पीनी शुरू की होती, तो पत्नी को पसंद नहीं पड़ती तो बंद कर देता। मगर ये तो कारण ही न थे शुरू करने के। तो जिन कारणों से तुम छोड़ना चाहते हो वे तो झूठे हैं और जिस कारण से तुम पीते हो उसको तुमने कभी देखा ही नहीं।
अखबार में जाने की जरूरत नहीं, न पत्नी से पूछने की जरूरत है। अपने भीतर जाओ। अपनी सिगरेट की तलफ को पहचानोः कैसे उठती है? क्यों उठती है? कब उठती है? क्या कारण होता है तुम्हारे भीतर जब तुम अचानक सिगरेट पीना चाहते हो? कब तुम्हारा हाथ खीसे में चला जाता है, पैकेट निकल आता है, माचिस जल जाती है, तुम धुआं को बाहर-भीतर करने लगते हो? उस पूरी मनोदशा को समझो।
और सबकी अलग-अलग मनोदशाएं होंगी। हर आदमी सिगरेट एक ही कारण से नहीं पी रहा है। सबके अलग कारण होंगे। कोई इसलिए पी रहा है कि मां से स्तन जल्दी छूट गया। अभी स्तन से और पीना चाहता था, लेकिन मां ने जल्दी स्तन छुड़वा दिया। आदिवासियों में सात-आठ साल तक, नौ साल तक भी बच्चा मां का स्तन पीता है। वह स्वाभाविक मालूम पड़ता है। कोई सभ्य समाज नौ साल के बच्चे को दूध नहीं पीने देगा। क्योंकि बड़ी बेहूदी बात मालूम पड़ती है। नौ साल का बच्चा तो काफी बड़ा बच्चा है, ढाई साल, तीन साल में, और भी पहले छुड़ाने की कोशिश शुरू हो जाती है। जो बहुत सभ्य समाज हैं, अमरीका, वहां बच्चे को दूध मां देना ही पसंद नहीं करती। वह उसको पहले ही बोतल से पिलाया जाता है।
जिनका बचपन में मां ने स्तन जल्दी छुड़ा लिया है, उनके भीतर एक जरूरत रह
गई है अचेतन में कि कोई गरम, कुनकुनी चीज दूध के जैसी उनके भीतर जाती रहे। अब दिन भर अगर आप दूध पीएं तो नुकसानदायक होगा। सिगरेट सुविधापूर्ण है; जब चाहो तब पी सकते हो। बोतल लिए फिरो दूध की, वह भी अच्छा नहीं लगेगा। और ठीक बोतल से पीयो, तो लोग समझेंगे पागल हो गए, कि दिमाग खराब हो गया। सिगरेट पूरा काम कर देती है। पैकेट की तरह खीसे में ले सकते हो। कोई नहीं समझता कि इसमें पागल हो गए। क्योंकि सभी पागल हैं उस तरह के, सभी पी रहे हैं। और फिर यह कोई भोजन भी नहीं है जो पेट को भर दे; सिर्फ दूध का आभास है। वह जो कुनकुनापन है, दूध की जो गरमी है, उष्णता है, और स्तन का आभास है कि मुंह में सिगरेट डाल ली तो स्तन जैसा मालूम होता है। फिर उसमें से गरम धुआं भीतर जाने लगा तो दूध भीतर जाने लगा। सौ में से पचास प्रतिशत लोग स्तन के सब्स्टीट्यूट की तरह सिगरेट पी रहे हैं।
मनुष्य-जाति पागल मालूम होती है स्त्री के स्तनों के लिए। पशुओं में तुमने कभी किसी पुरुष-पशु को मादा-पशु का स्तन जांचते-परखते देखा? कि कोई तस्वीर लिए घूम रहा है, कि प्ले-बॉय की कापी रखे हुए है, कि जब मौका लगा एकांत में तो ध्यान कर रहा है? लेकिन पुरुष-जाति स्त्री के स्तन से बड़ी आकर्षित है। चित्रकार चित्र बना रहे हैं; फिल्म बनाने वाले फिल्म बना रहे हैं; कवि कविताएं लिख रहे हैं; कहानीकार कहानियां गढ़ रहे हैं; मूर्तिकार मूर्ति बना रहे हैं। जैसे स्त्री के स्तन का एक दीवानापन है। और सब तरफ स्त्री का स्तन उभर कर बैठा हुआ है। चाहे मंदिर में बैठी देवी हो, चाहे वेश्यालय में बैठी हुई वेश्या हो, स्तन उभर कर बैठा है। भक्त की भी नजर उस पर है; प्रेमी की भी नजर उस पर है; राहगीर भी उसी को देख रहा है। आखिर स्तन का ऐसा क्या मैनिया है? यह क्या पागलपन है? अगर कहीं दूसरे चांद-तारे से कोई

आदमी यहां उतरे तो बड़ा हैरान होगा कि इन आदमियों को यह स्तन का मैनिया क्यों पकड़ा हुआ है? आखिर क्यों स्तन के दीवाने हैं?
आदिवासियों में नहीं हैं लोग स्तन के दीवाने। क्योंकि बच्चा नौ साल तक मां का दूध पी लेता है, स्तन से छुटकारा हो जाता है। इसलिए आदिवासियों में कोई फिक्र नहीं करता स्तन की। स्त्रियां स्तन उघाड़े घूम रही हैं; कोई खड़े होकर भीड़ नहीं लगा कर देखता। कोई स्ट्रिप-टीज की जरूरत नहीं पड़ती। किसी का प्रयोजन ही नहीं है। जब पहली दफे जंगली जातियों का अध्ययन शुरू हुआ और वैज्ञानिक अध्ययन करने गये, तो वे बड़े हैरान हुए। स्त्रियों से पूछो कि यह क्या है? तो वे कहती हैं, बच्चों को दूध पिलाने का स्तन है। तुम उनके स्तन पर हाथ रख कर पूछो तो भी उनको कोई अड़चन नहीं है, कोई बेचैनी नहीं है; जैसे शरीर के किसी और अंग पर हाथ रख कर पूछो तो कोई बेचैनी नहीं है। लेकिन सभ्य जातियों के लिए बड़ी बेचैनी है।
पचास प्रतिशत लोग तो स्तन के परिपूरक की तरह सिगरेट पी रहे हैं। अब इनसे तुम सिगरेट छोड़ने को कहो, क्योंकि सिगरेट स्वास्थ्य के लिए हानिकर है; इसका कोई तालमेल ही नहीं है। इनके कारण से इसका कोई संबंध नहीं जुड़ता।
कुछ लोग और कारणों से सिगरेट पी रहे हैं। छोटे बच्चे शुरू करते हैं सिगरेट, क्योंकि सिगरेट बड़े होने का प्रतीक है। बड़े लोग पी रहे हैं सिगरेट, अकड़ कर चल रहे हैं। जब आदमी सिगरेट पीता है तब उसकी अकड़ देखो, जैसे कोई महान कार्य कर रहा है। उसकी भाव-भंगिमा देखो, जिस ढंग से वह निकाल कर सिगरेट को बजाता है अपनी डब्बी पर। फिर उसका चेहरा देखो, कैसी गरिमा आ जाती है। अचानक उसके चारों तरफ एक आभामंडल आ जाता है। फिर वह सिगरेट को मुंह में दबाता है; उसका पूरा क्रियाकांड देखो। फिर वह माचिस या लाइटर निकालता है। फिर किस ढंग से और किस शान से सिगरेट को जलाता है। फिर किस शान से वह धुएं को बाहर-भीतर करता है। अचानक वह कोई दीन नहीं रहा।
छोटे-छोटे बच्चे देख रहे हैं। उनको लगता है कि सिगरेट जो है सिंबालिक है; यह प्रतीकात्मक है बड़े होने का, शक्तिशाली होने का। क्योंकि सिर्फ बड़े ही पीते हैं, छोटों को कोई पीने नहीं देता। लोग कहते हैं, तुम अभी बहुत छोटे हो; बड़े हो जाओ फिर पीना। सब तरफ निषेध है। तो छोटे बच्चे इसलिए पीना शुरू कर देते हैं कि बड़प्पन का इसमें भाव है।
कुछ लोग इसलिए पी रहे हैं कि उनके भीतर हीनता की ग्रंथि छिपी है अभी भी। तो जब भी उनको हीनता लगती है तभी वे सिगरेट पीकर अपनी हीनता को छिपा लेते हैं, बड़े हो जाते हैं। सस्ते में बड़े हो जाते हैं। एक सिगरेट पीने से इतना बड़प्पन मिलता है, क्या हर्ज है?
कुछ लोग इसलिए सिगरेट पी रहे हैं कि उनको खाली रहना बहुत मुश्किल है, कोई व्यस्तता चाहिए; नहीं तो उनको घबड़ाहट होने लगती है। तुम जैसे अकेले रहो दिन भर घर के भीतर तो बेचैन होने लगोगे कि जाओ क्लब, कि मंदिर, कि कहीं सत्संग करो, कि कुछ करो। खाली बैठे हो! मन खाली नहीं रहना चाहता। क्योंकि मन खाली रहा कि मिटा। मन को व्यस्तता चाहिए, आकुपेशन चाहिए। अगर कुछ भी न करने को हो तो कम से कम सिगरेट पी सकते हो हर हालत में। सिगरेट संगी-साथी है, सस्ता संगी-साथी है। खीसे में लेकर चल सकते हो, पोर्टेबल है। अकेले भी बैठे हो कमरे में, कोई कहीं क्लब-घर जाने की जरूरत नहीं; बस सिगरेट निकालो, जलाओ। चैन आ गया; आकुपेशन आ गया; काम शुरू हो गया।
सिगरेट एक तरह की व्यस्तता है कुछ लोगों के लिए। और इस तरह के और-और कारण हैं। हर आदमी को अपना कारण खोजना पड़े। और जब अपना कारण खोज ले कोई आदमी तो मुक्त होना इतना आसान है जितनी और कोई चीज नहीं। लेकिन उधार कारणों से कोई मुक्त नहीं हो सकता; दूसरों के बताने से कोई मुक्त नहीं हो सकता। और छोटी-छोटी चीज भी काफी जटिल है; क्योंकि तुम्हारी पूरी आत्मकथा उसमें छिपी है।
निष्क्रियता को साधने का अर्थ होगा कि तुम कर्म को देखो। तुम जो भी कर रहे हो उसको देखो, पहचानो। उतरो कर्म की गहनता में, क्यों कर रहे हो? और जल्दी से दूसरों के उत्तर मत मान लेना। वही तुम्हारी भूल है। बताने वाले हर जगह तैयार खड़े हैं कि हम बताए देते हैं, क्यों कर रहे हो। लेकिन हर व्यक्ति इतना पृथक और भिन्न है कि कोई भी सामान्य फार्मूला काम नहीं करता। तुम अपने

ही कारण कर रहे हो। तुम्हारी आत्मकथा बस तुम्हारी है। जैसे तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा है, वैसे ही तुम्हारी आत्मकथा तुम्हारी है, किसी दूसरे की नहीं।
और तुम जब अपने कृत्यों में, अपने निजी कृत्यों में अपने निजी होश से उतरोगे, तभी तुम समझ पाओगे उनकी व्यर्थता। और एक बार व्यर्थता दिख जाए तो जिस कृत्य में व्यर्थता दिख जाती है, वह गिर जाता है। उसे ढोने का उपाय ही नहीं है। यही है साधना निष्क्रियता का।
धीरे-धीरे-धीरे-धीरे व्यर्थ कृत्य गिर जाएंगे; सार्थक बचेंगे। सार्थक
से कोई विरोध नहीं है। बिल्कुल जरूरी बचेंगे। बिल्कुल जरूरी जरूरी हैं। उनको तोड़ना भी नहीं है, हटाना भी नहीं है। सिर्फ अकारण समाप्त हो जाए; तुम शुद्ध हो जाओगे, तुम निष्कलुष हो जाओगे; तुम्हारी ऊर्जा संगृहीत होने लगेगी।
यही है निष्क्रियता को साधना। कर्मों को देखना, उनकी व्यर्थता को पहचानना। उनकी व्यर्थता की पहचान से उनका गिरना फलित हो जाता है। धीरे- धीरे काटते-काटते-काटते तुम्हारी मूर्ति निखर आती है। तब तुम बैठे हो; और तुम तब बैठ कर भी आनंदित होते हो, सिगरेट की जरूरत नहीं; क्योंकि तुमने अब खाली होने का रस पहचान लिया। अब तुम्हें व्यस्तता की कोई जरूरत नहीं; तुम अकेले में भी प्रसन्न होते हो। कोई आ जाए तो भी प्रसन्न, कोई न आए तो भी प्रसन्न। अब तुम्हारी प्रसन्नता किसी पर निर्भर नहीं है। कोई आता है तो तुम अपनी प्रसन्नता बांट देते हो; कोई नहीं आता तो तुम अपनी प्रसन्नता में मस्त रहते हो। तुम्हारी मौज अब तुम्हारे भीतर से आती है। अब किसी के द्वारा नहीं है, कि क्लब जाओ, कि मित्रों से मिलो, कि नाच-घर जाओ, यहां भागो, वहां भागो। अब कहीं भागने की कोई जरूरत नहीं। तुमने अपने जीवन का मंदिर खोज लिया; वह तुम्हारे भीतर है। निष्क्रिय जैसे-जैसे तुम होते हो, भीतर का मंदिर उठने लगता है। उसका शिखर ऊपर, और ऊपर, और ऊपर जाने लगता है। मुसलमानों ने मस्जिदों के पास जो मीनारें बनाई हैं, वे उस ऊपर जाते हुए शिखर के प्रतीक हैं। जैसे-जैसे कोई भीतर शांत होने लगता है वैसे-वैसे शिखर आकाश की तरफ उठने लगते हैं। उस ऊपर उठते शिखर के साथ तुम्हारे जीवन की पूरी ऊर्जा नए अर्थ ग्रहण कर लेती है; नए आयाम, नया रंग, रंगों के नए-नए भेद; नया संगीत, संगीत की नई-नई भाव-भंगिमाएं। एक नए ही काव्य का उदय हो जाता है। जिन्होंने निष्क्रियता जानी उन्होंने सब जाना। और जो कर्म के ही जाल में दौड़ते-दौड़ते नष्ट हो गए वे बिना कुछ जाने मर गए।
"अकर्म पर अवधान दो। अटेंड टु नो-अफेयर्स।"
और जब तुम्हारी निष्क्रियता सध जाए--क्योंकि पहले तो निष्क्रियता साधो--जब सध जाए, तो यह जो निष्क्रियता की स्थिति है, इस पर ध्यान दो। पहल कर्म पर ध्यान दो, ताकि व्यर्थ कर्म कट जाए, निष्क्रियता बचे। अब निष्क्रियता पर ध्यान दो। क्योंकि निष्क्रियता पर अगर तुमने ध्यान दिया तो तुम पाओगे... ।
कर्म पर ध्यान देने से कर्ता मिट जाता है। क्योंकि धीरे-धीरे सब कर्म शांत हो जाते हैं; निष्क्रियता का उदय हो जाता है; तुम्हारे कर्ता का भाव चला जाता है कि मैं कर्ता हूं। जब कुछ कर ही नहीं रहे हो तो कर्ता कहां? तुम होते हो, कर्ता नहीं होते; साक्षी बन जाते हो। फिर निष्क्रियता पर ध्यान दो, तो तुम साक्षी भी न रह जाओगे। बस तुम बचोगे। कहने को कुछ भी न रहेगा कि तुम कौन हो--कर्ता कि साक्षी।
तो तीन स्थितियां हैंः कर्ता; अकर्ता, अकर्ता यानी साक्षी; और फिर एक तीसरी स्थिति है दोनों के पार, अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस।
कर्म को देख कर साक्षी बनोगे। फिर अकर्म को देख कर साक्षी के भी पार हो जाओगे। वहां फिर कोई शब्द सार्थक नहीं है। फिर तुम यह न कह सकोगे मैं कौन हूं।
बोधिधर्म से पूछा चीन के सम्राट ने, तुम कौन हो? तो बोधिधर्म ने कहा, मुझे पता नहीं। चीन के सम्राट ने अपने दरबारियों से कहा, हम तो सोचते थे कि धर्म का संबंध आत्मज्ञान से है। तो यह बोधिधर्म किस तरह का ज्ञानी है? क्योंकि यह कहता है मुझे कुछ पता नहीं।

तुम भी सुनोगे तो यही समझोगे। लेकिन बोधिधर्म तुम्हारे आत्मज्ञानियों
से बड़ा ज्ञानी है। वह एक कदम और ऊपर गया है।
अज्ञानी को भी पता नहीं कि मैं कौन हूं। परम ज्ञानी को भी पता नहीं रह जाता कि मैं कौन हूं। अज्ञानी को इसलिए पता नहीं कि उसे होश नहीं है। परम ज्ञानी को इसलिए पता नहीं रहता कि होश ही होश बचता है, रोशनी ही रोशनी बचती है। कुछ दिखाई नहीं पड़ता रोशनी में, कोई आब्जेक्ट नहीं बचता, कोई वस्तु नहीं बचती; सिर्फ प्रकाश रह जाता है। अनंत प्रकाश, और दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता, तो किसको कहें कि मैं कौन हूं?
एक अज्ञान है; अंधकार के कारण दिखाई नहीं पड़ता। और ज्ञानी का भी एक परम अज्ञान है, जब रोशनी ही रोशनी रहती है, और कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
बोधिधर्म ने बड़ी अदभुत बात कही है; शायद ही किसी दूसरे ज्ञानी ने इतने हिम्मत से कही है कि मुझे कुछ भी पता नहीं। सम्राट नहीं समझ पाया, क्योंकि यह तो भाषा के पार की बात हो गई। बोधिधर्म के शिष्यों में भी थोड़े ही समझ पाये। उनको भी लगा कि यह तो बोधिधर्म ने कैसा जवाब दिया! ज्ञानी को तो कहना चाहिए कि हां, मुझे पता है कि मैं कौन हूं। ज्ञानी ने कहा कि मुझे भी पता नहीं कि मैं कौन हूं!
वह इसीलिए कहा कि जब न कर्ता बचा, न साक्षी बचा, तो अब क्या उत्तर देना है।
"अकर्म पर अवधान दो।"
फिर तीसरा सूत्र है, "स्वादहीन का स्वाद लो।"
तभी तुम्हें स्वादहीन का स्वाद मिलेगा। अभी तुमने कर्म का स्वाद लिया है। कर्म का स्वाद दो तरह का हैः सुख और दुख। कर्म सफल हो जाए तो सुख का स्वाद मिलता है। कर्म असफल हो जाए तो दुख का स्वाद मिलता है। अगर तुम निष्क्रियता साध लो तो तुम्हें शांति का स्वाद मिलेगा। वहां न सुख होगा, न दुख; बस परम शांति होगी। परम चैन की बंसी बजेगी; अस्खलित चैन ही चैन मालूम होगा। एक विश्राम, विराम; सब ठहर गया; सब कर्म खो चुका। कर्ता खो चुका, तुम सिर्फ देख रहे हो। वहां कोई सुख-दुख नहीं प्रवेश कर पाता। वहां एक गहन मौन और शांति है। लेकिन लाओत्से उसे भी स्वादहीन स्वाद नहीं कहता। कहता है, अभी अनुभव करने वाला बाकी है, अनुभोक्ता साक्षी बाकी है। थोड़ा सा फासला है, अभी थोड़ी दूरी है। अभी अनुभव घटित हो रहा है।
फिर एक स्वादहीन स्वाद है। जब साक्षी भी खो गया, स्वाद लेने वाला न बचा,
तब एक स्वाद है; उसी को हमने आनंद कहा है।
लाओत्से कहता है, "स्वादहीन का स्वाद लो।"
ये तीन सूत्र बड़े कीमती हैंः "निष्क्रियता को साधो। अकर्म पर अवधान दो। स्वादहीन का स्वाद लो।"
"चाहे वह बड़ी हो या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।" निष्क्रियता को साधना हो तो तुम्हें यह ख्याल रखना पड़े। कोई गाली देता
है तो तुम धन्यवाद हो; कोई घृणा करता है तो तुम पुण्य से प्रतिकार करो। छोटी घृणा, बड़ी घृणा, अपमान, तिरस्कार; तुम बुरे का जवाब बुरे से मत देना। अन्यथा तुम कर्म में खींच लिए जाओगे।
जब एक आदमी गाली देता है, तब तुम्हारा मन कहेगा कि उठाओ पत्थर, फोड़ दो सिर।
यह आदमी तुम्हारा मालिक हो गया। इसने जरा सी गाली दे दी, और तुम्हें कर्म में खींच लिया। और अगर ऐसे तुम कर्म में खिंचते रहे दूसरे लोगों के द्वारा तो तुम कब निष्क्रियता को उपलब्ध होओगे? कैसे उपलब्ध होओगे? तो तुम यह मत समझना कि ज्ञानियों ने इसलिए कहा है कि दूसरे तुम्हें गाली दें तो भी तुम उन्हें आशीर्वाद दो, यह मत समझना कि इसलिए कहा है कि दूसरों पर दया करो। नहीं, इसलिए कहा है कि अपने पर दया करो; मालिक अपने बनो। ऐसा रास्ते पर चलते कोई भी कुछ कह दे, कोई हंस ही दे, तुम्हारे भीतर कर्म का जाल शुरू हो गया। किसी ने कुछ कह दिया, एक शब्द, और तुम्हारी झील में शब्द का पत्थर पड़ा और तरंगें ही तरंगें उठने लगीं और कर्म शुरू हो गया। तो तुम कैसे निष्क्रिय हो पाओगे? असंभव है। कहां भागोगे? कहां जाओगे? जंगल भाग जाओगे, कौए ऊपर बैठ कर

बीट कर देंगे। गुस्सा आ जाएगा, उठा लोगे पत्थर कि यह कौआ मेरा ध्यान खराब कर रहा है।
कहीं भागने का उपाय नहीं। भाग कर नहीं जा सकते। एक ही भागने का सुगम उपाय है, वह यह कि जब कोई तुम्हारे प्रति घृणा फेंके तब तुम प्रेम देना। प्रेम का मतलब यह है कि हम कर्म में उतरने को राजी नहीं, क्योंकि प्रेम कोई कर्म नहीं है। आशीर्वाद देकर तुम अपने रास्ते पर चले जाना। तुम यह कह रहे हो आशीर्वाद देकर कि आपने कोशिश की, धन्यवाद! बाकी हमारी तैयारी नहीं है। हम इस झंझट में पड़ने को उत्सुक नहीं हैं। भगवान तुम्हारा भला करे! भला करे इसलिए क्योंकि मन तुम्हारा बुरा करना चाहेगा, अगर तुमने आशीर्वाद न दिया तो मन में तुम्हारे भीतर कुछ करने की बेचैनी बनी रहेगी। कुछ करना ही है तो आशीर्वाद देकर निपटारा कर लो।
फिर इसे समझना जरूरी है कि जब भी तुम्हें कोई गाली दे, घृणा करे, अपमान करे और तुम्हारा मन भी अपमान करे, घृणा करे, तो एक अनंतशृंखला का जन्म होता है। वही तो कर्मों का जाल है। फिर वह भी गाली का जवाब गाली से देगा, क्योंकि वह कोई ज्ञानी तो है नहीं; वह भी तुम्हारे जैसा अज्ञानी है। अगर ज्ञानी ही होता तो उसने पहले ही क्यों गाली दी होती? फिर यह कहां रुकेगा? तुम गाली दोगे, वह बड़ी गाली देगा। तुम और बड़ी गाली खोजोगे। इसका अंत कहां है? तुम उसका नुकसान करोगे; वह तुम्हारा नुकसान करेगा। फिर एकशृंखला शुरू होती है अंतहीन। यह समाप्ति कहां होगी?
इसमें से किसी को आशीर्वाद देना होगा, तभी यह समाप्त होगा। तो यह मौका तुम दूसरे को क्यों देते हो? तुम ही आशीर्वाद देकर बाहर हो जाओ। तुम ही जब बाहर हो सकते हो, और अभी बाहर हो सकते हो, तो देर तक क्यों रुको? जब भी कोई घृणा करे, अगर तुम उसके लिए भी प्रेम दे सको तो बड़ी क्रांतिकारी घटना घटती है। तुमशृंखला के जाल में नहीं पड़ते; तुम्हारा कर्म-विस्तार नहीं होता; और तुम दूसरे आदमी को भी एक मौका देते हो, एक द्वार खोलते हो--समझ के लिए। उसके लिए भी एक समय मिलता है। क्योंकि जब तुम गाली नहीं देते तो वह भी अपेक्षा कर रहा था गाली लौटेगी और जब गाली नहीं लौटती और अपनी ही प्रतिध्वनि उसे सुनाई पड़ती है और गाली के विपरीत तुम्हारा आशीर्वाद लौटता है तो वह बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। वह सो न सकेगा अब चैन से। अब उसकी गाली उसका ही पीछा करेगी। अब उसकी घृणा उस पर ही लौट आई। अब उसे कुछ करना ही पड़ेगा। अगर तुम घृणा का उत्तर घृणा से देते तो बेचैनी नहीं थी; सीधा-सादा मामला था, गणित का मामला था। हमने गाली दी; दूसरे ने गाली दी। तुमने गाली दी और दूसरे ने फूल बरसाए; अब तुम मुश्किल में पड़े। अब जब तक तुम भी फूल बरसाने की कला न सीख लो तब तक बेचैनी जारी रहेगी।
दुनिया को बदलने का एक ही रास्ता है कि तुम सबसे बड़ी अनहोनी घटना करो। अनहोनी घटना हैः घृणा के उत्तर में प्रेम, गाली के उत्तर में आशीष; कांटा कोई चुभाए, उसे फूल भेंट कर दो। इससे तुम भी बाहर होते हो और उसके लिए भी बाहर होने की सुविधा देते हो।
"चाहे हो बड़ी या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।"
तो ही निष्क्रियता सधेगी।
"कठिन से तभी निबट लो जब वह सरल हो। बड़े से तभी निबट लो जब वह छोटा हो। संसार की कठिन समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे सरल हों। महान समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे छोटी हों।"
इस गणित को समझ लेना जरूरी है। यह तुम्हारे रोज के काम के लिए है। तुम
भी कोशिश करते हो हल करने की, लेकिन जरा देर कर देते हो, समय चूक जाते हो। बीज से लड़ना आसान है, कुछ करना ही नहीं पड़ता। बीज को फेंक दो, क्या अड़चन है? लेकिन बीज को तो तुम बोते हो, पानी सींचते हो, मेहनत करते हो, सम्हालते हो। पौधा बड़ा होता है। अब पौधा ही बड़ा नहीं हो रहा है, तुम्हारा इनवेस्टमेंट भी बड़ा हो रहा है। क्योंकि तुमने इतना समय लगाया; पानी सींचा; इतनी जिंदगी पौधे को दी; इतनी मेहनत की। अब पौधा एक बड़ा वृक्ष हो गया। तुम तीस साल तक प्रतीक्षा किए। अब उसमें फल आए जो कड़वे हैं; अब उन्हें फेंकना बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। कड़वे फल को भी तुम चख-चख कर समझाना चाहते हो अपने को कि मीठा है। क्योंकि तीस साल व्यर्थ गए, अगर यह कड़वा है। तुम तीस साल मूढ़ थे। और अब

इस वृक्ष को तुम फेंकना भी चाहोगे तो बड़ी कठिनाई होगी। इसने बड़ी जड़ें फैला ली हैं; यह विस्तीर्ण हो गया है।
और यह तो वृक्ष बाहर है। भीतर के वृक्षों का क्या कहना? उनकी जड़ें तो तुम्हारी नसों में फैल जाती हैं; तुम्हारे हृदय को जकड़ लेती हैं; तुम्हारे मस्तिष्क में पहुंच जाती हैं। भीतर के वृक्ष तो तुमको भूमि बना लेते हैं, और तुमको सब तरफ से कस लेते हैं।
समझो! क्रोध की कई दशाएं हैं। समय रहते हल हो सकता है। और एक सीमा रेखा है, एक डेड लाइन है; उसके पार जाने पर हल करना मुश्किल हो जाता है। फिर एक सीमा है, जिसके पार जाने पर असंभव, करीब-करीब असंभव हो जाता है।
क्रोध की पहली दशा तो यह है, जो बहुत बुद्धिमान है वह क्रोध का आने के पहले उपचार करेगा। वह पूर्व-निवारण करेगा, लाओत्से कहता है। कल आएगा क्रोध, वह आज निवारण करेगा। अभी तो आया भी नहीं है, अभी किसी ने तुम्हें गाली भी नहीं दी है। लेकिन कोई न कोई तो देगा, कोई न कोई धक्का मारेगा। जिंदगी में संघर्ष है, गहन संघर्ष है; प्रतिस्पर्धा है। कल बिना ही क्रोध के निकल जाएगा, इसका उपाय नहीं है। तो बहुत बुद्धिमान तो अभी बीज भी नहीं है तभी से व्यवस्था करने लगता है। अभी घर में आग नहीं लगी है, कुआं खोदने लगता है। घर में आग लग गई, फिर कुआं खोद कर भी क्या होगा? तुम कुआं खोदोगे, घर जलता रहेगा। तुम्हारा कुआं खुद भी न पाएगा, घर राख हो जाएगा।
पूर्व-निवारण का अर्थ यह है कि कल, जीवन का संघर्ष तो कल भी रहेगा, तुम अपने भीतर शांति को बसाओ। वह पूर्व-निवारण है, वह एंटीडोट है। तुम जितने शांत हो सको, अभी किसी ने गाली नहीं दी, शांत हो जाओ। क्योंकि जब कोई गाली देगा तब तो शांत होना मुश्किल होगा। अभी बिना दिए भी शांत नहीं हो पाते; तो गाली देने पर तो तुम भूल ही जाओगे। तो ध्यान में रमो। शांत रहो। अकारण शांत बने रहो। बैठो तो सब तरफ से द्वार, छिद्र बंद कर लो। भीतर एक गहन शांति को अनुभव करो। उसका रस लो। शिथिल छोड़ दो सारे शरीर को। मन को कह दो कि तुझे जो करना हो कर, मैं शांत बैठा हूं। मन के साथ तादात्म्य मत करो--न पक्ष, न विपक्ष। जाने दो, चलने दो मन को; जैसे किसी और का है। तुम उपेक्षा में लीन रहो। तुम शांति को बसाओ। यह भूमि है। कल जब कोई क्रोध करेगा, अगर शांति तैयार रही, क्रोध का तीर तो आएगा, शांति के जल में गिर कर बुझ जाएगा। तो तुम्हें कठिनाई न होगी। तुमने निवारण कर लिया पहले ही।
तुम उलटा कर रहे हो। तुम बारूद तैयार करते हो। तुम बारूद को सुखा कर रखते हो कि जरा कोई चिनगारी फेंक दे कि हो जाए विस्फोट। इसलिए अक्सर तुमने अनुभव किया होगा, बात तो बड़ी छोटी थी, विस्फोट बड़ा भारी हो गया। बात इतनी बड़ी थी ही नहीं। बाद में तुम भी कहते हो, इतनी छोटी बात के लिए इतना बड़ा विस्फोट! छोटी-छोटी बात पर कभी-कभी हत्या हो जाती है। कभी छोटे से मजाक पर हत्या हो जाती है। कभी तुमने हंस दिया और इस पर ऐसी भयंकर दुश्मनी बन जाती है कि जिसका परिणाम भयानक हो जाता है।
पूरा महाभारत हुआ एक छोटे से मजाक पर--द्रौपदी हंस दी। कौरव धृतराष्ट्र के बेटे थे। अंधा बाप था। पांडवों ने एक महल बनाया था जिसमें उन्होंने बड़ी कारीगरी की थी। दीवारें ऐसे कांच की बनाई थीं कि दरवाजा मालूम पड़े; दरवाजा इस ढंग से बनाया था कि दीवार मालूम पड़े। बड़ी कुशलता इंजीनियरिंग की थी। फिर कौरवों को निमंत्रण दिया था इस महल को देखने के लिए। वे आए। दुर्योधन टकरा गया; समझ कर दरवाजा दीवार से निकल गया। द्रौपदी हंसी और उसने कहा, अंधे के बेटे हैं, अंधे ही हैं! सारा महाभारत इस वचन पर ठहरा हुआ है। फिर द्रौपदी के वस्त्र अकारण ही नहीं खींचे गए; यही मजाक उसके पीछे कारणभूत है। फिर पांडवों को अकारण ही नहीं सताया गया; यही छोटा सा बीज बड़ा होता गया। फिर इसमें हजार-हजार धाराएं मिल गईं। जो झरने की तरह शुरू हुआ था, वह बड़ी गंगा बन गया।
लाओत्से कहता है, या तो पूर्व-निवारण कर लो--सबसे कुशलता तो पूर्व-निवारण की है--अगर यह न हो सके, तो जब कोई गाली दे तभी सजग हो जाओ। क्योंकि बीज पड़ रहा है।
लेकिन तुम गाली पर सोचना शुरू कर देते हो। तुम भीतर गाली के साथ प्रतिशोध करना शुरू कर देते हो, प्रतिकार का विचार करने लगते हो। तुम सोचते

हो कि हम विचार ही कर रहे हैं, कोई उसको मार तो डालने जा नहीं रहे हैं। लेकिन तुमने बीज को सम्हालना शुरू कर दिया, पानी सींचने लगे। अभी फेंक दो!
फिर तुम्हारे भीतर विचार गहन होने लगा। अब तुम्हारे भीतर क्रोध का धुआं उठने लगा। जब क्रोध का धुआं पहली बार उठता है तो बड़ा महीन, बारीक रेखा की तरह होता है। इतना बारीक होता है कि अगर तुम ठीक उसी वक्त उसको देखो तो पहचान ही न पाओगे कि यह क्रोध है या करुणा। सिर्फ ऊर्जा की एक धीमी रेखा उठती हुई मालूम होती है; अचेतन से एक छोटा सा बादल उठ रहा है। अभी रूप साफ नहीं है। अभी यह भी पक्का नहीं है कि यह क्या है। यह प्रेम है, क्रोध है, घृणा है, क्या है? सिर्फ भीतर एक बेचैनी उठ रही है, एक उत्तेजना उठ रही है, एक ऊर्जा उठ रही है।
अभी सम्हल जाओ। अभी बीज में अंकुर आ रहा है; अभी पक्का नहीं है कि किस तरह का वृक्ष बनेगा। अभी तैयार हो जाओ। अभी फेंक दो। हर तरह की उत्तेजना जहरीली है। उत्तेजना को फेंक दो। अभी ही अपने को शांत कर लो। अभी ही शिथिल हो जाओ। अभी ही ध्यान में लीन हो जाओ।
नहीं, तब तुम सहारा दिए जाओगे। तब तुम भीतर रस लोगे। तब धीरे-धीरे क्रोध का बादल अपना रूप स्पष्ट कर लेता है; उसकी प्रतिमा साफ हो जाती है। वह कहता है, मार डालो इस आदमी को! इसने हंसा, अपमान किया। समझता क्या है? अब तुम भीतर हत्या कर रहे हो; भीतर तलवारें उठा रहे हो। भीतर तलवारें उठाना बाहर तलवारें उठाने की पूर्व-तैयारी है। तुम रिहर्सल कर रहे हो। अभी रिहर्सल है; रुक जाओ। अगर रिहर्सल पूरा तैयार हो गया तो फिर नाटक भी करना पड़ेगा। क्योंकि नहीं तो मन कहेगा, इतना रिहर्सल किया, ऐसा समय बेकार गंवाया; अब करके ही दिखा दो।
और जब तुम भीतर रस ले रहे हो तब क्रोध का जहर तुम्हारे रोएं-रोएं में फैल रहा है, तुम्हारे शरीर को लड़ने के लिए तैयार कर रहा है। तुम्हारी भीतर की पूरी ऊर्जा क्रोध की दिशा में रूपांतरित हो रही है। अब तुम लड़ने पहुंच गए। तुमने तलवार निकाल ली। अभी भी वक्त है, निकली तलवार म्यान में वापस जा सकती है। लेकिन वृक्ष काफी बड़ा हो गया है। तलवार बाहर निकाल ली हो तो वापस डालना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि क्या कहेगी दुनिया अब? इतने दूर आ गए और अब तलवार निकाल ली और अब भीतर डाल रहो हो, लोग हंसेंगे! अब अहंकार दांव पर लगा जा रहा है। लेकिन तलवार भी वापस डाली जा सकती है।
लेकिन तुमने तलवार ही उठा ली और दूसरे की गर्दन पर ही पहुंच गई। और मुश्किल हुआ जा रहा है। दूसरे की गर्दन पर से तलवार लौटानी बहुत असंभव हो जाएगी। क्योंकि एक क्षण में हो जाती है घटना। उतना तुम्हें होश कहां? लाओत्से कहता है, कठिन से तभी निबट लो जब वह सरल हो; बड़े से तभी निबट लो
जब वह छोटा हो। संसार की कठिन समस्याएं हल हो सकती हैं... ।
तुम्हारे जीवन की कठिनतम समस्या हल हो सकती है; लेकिन तुम सरल से निबटो। तुम सलाह लेने तब जाते हो जब मामला बिल्कुल बिगड़ जाता है। जब मरीज बिल्कुल मरने के करीब होता है तब तुम डाक्टर को बुलाते हो।
"संसार की महान समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे छोटी हों। इसलिए संत सदा बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं।"
क्या मतलब? संत बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं; क्योंकि वे किसी समस्या को बड़ा होने ही नहीं देते। इसलिए कोई बड़ी समस्या से संत कभी नहीं झगड़ता; वह हमेशा छोटी-छोटी चीजों से झगड़ता है। और जितनी समझ बढ़ती जाती है उतनी झगड़े की जरूरत नहीं रह जाती; क्योंकि वह पूर्ण-निवारण करने में कुशल हो जाता है। वह दुश्मन के आने के पहले ही मैत्री स्थापित कर लेता है। वह गाली आने के पहले ही आशीर्वाद तैयार कर लेता है। तुम्हारी घृणा आए, उसके पहले ही वह द्वार पर सुस्वागतम लिख लेता है। उसकी तैयारी पूर्व से है।
"जो फूहड़पन के साथ वचन देता है, उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा। जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा।"
अगर तुमने छोटी समस्याओं को छोटा समझा तो जल्दी ही वे बड़ी हो जाएंगी। उनको बड़े होने का मौका मत दो। छोटी समस्याओं को बड़ी समझो; जल्दी उनसे निबट

लो। और होश में सोचो। अन्यथा तुम बहुत सी बातें कहते हो करेंगे, लेकिन बेहोशी में कहते हो। वचन देते हो करने का, लेकिन बिना समझे देते हो कि तुम क्या कह रहे हो।
जीसस ने कहा है। एक बाप के दो बेटे थे। खेत में काम था। बाप ने बड़े बेटे
को कहा कि तू खेत पर जा और यह काम जरूरी है। उसने कहा कि मैं न जा सकूंगा; मैं दूसरे कामों में उलझा हूं। क्षमा करें। दूसरे बेटे से कहा कि तो तू जा; खेत पर काम जरूरी है। उसने कहा, मैं अभी जाता हूं, पिताजी। यह गया। एक मेहमान घर में बैठा था। उसने कहा, तुम्हारा बड़ा बेटा अनाज्ञाकारी है; तुम्हारा छोटा बेटा आज्ञाकारी है। उसके बाप ने कहा, सांझ पता चलेगा। सांझ को मेहमान ने पूछा कि समझा नहीं मैं, क्या मामला है? अब बताओ, क्या पता चलेगा?
बड़ा बेटा पहुंचा; छोटा नहीं पहुंचा। छोटा बेटा वचन देने में कुशल है, करने में नहीं। बड़ा बेटा वचन नहीं देता, लेकिन करने में कुशल है। जो वह नहीं कर सकता, उसको तो वह कहता है, नहीं कर सकूंगा; फिर भी कोशिश करता है करने की। छोटा बेटा, जो कर ही नहीं सकता, उसको भी कहता है, हां। अभी, यह गया। मगर वह जाने वाला नहीं है।
जीसस ने कहा है, परमात्मा के सामने तुम्हारी आस्तिकता का मूल्य नहीं
है कि तुमने हां कहा, न तुम्हारी नास्तिकता का मूल्य है कि तुमने न कहा; असली बात तो इससे तय होगी कि तुमने किया या नहीं किया।
तो अपने हां कहने पर भरोसा मत करना; अपने न कहने से भयभीत भी मत होना। न
कह कर भी तुम कर सकते हो, और हां कह कर भी तुम टाल सकते हो। अधिक लोग हां कहते ही इसलिए हैं, ताकि टालने में सुगमता हो जाती है।
तो लाओत्से कहता है, "जो फूहड़पन के साथ वचन देता है--मूर्च्छा में, प्रमाद में--उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा।"
ऐसा वचन मत देना जिसे पूरा करना कठिन हो। जितना कर सको उससे कम का वचन देना। जो न कर सको, स्पष्ट कहना, न कर सकेंगे। क्योंकि ये सारे गुण तुम्हारे भीतर के जीवन को रूपांतरित करने में, निखारने में काम आएंगे। अन्यथा तुम व्यर्थ की चीजों में उलझते चले जाते हो। जो तुम नहीं कर सकते हो, कहते हो, कर देंगे। अब एक उलझन ले ली। अब यह होगी नहीं तो परेशानी है। और यह हो तो सकती नहीं; इसको करने में लगोगे तो परेशानी है।
अगर बहुत ठीक से समझो तो ज्ञानी वचन देता ही नहीं। वह जो कर सकता है, करता है; जो नहीं कर सकता है, नहीं करता है। वचन नहीं देता। इसलिए तुम ज्ञानी को कभी भी वचन भंग करते न पाओगे। क्योंकि वह वचन देता ही नहीं। वचन पूरे करता है; देता कभी नहीं।
और छोटी से छोटी चीज को भी वह छोटा मान कर नहीं चलता, क्योंकि सब छोटी चीजें बड़ी हो जाती हैं। छोटा मान कर चलोगे तो तुम खतरे में रहोगे। तुम सोचते हो, छोटा है, निबट लेंगे। लेकिन जितनी देर तुम स्थगित करते हो, चीजें बड़ी हो रही हैं। समस्याएं भी बढ़ती हैं, फैलती हैं, बड़ी होती हैं।
"जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा। इसलिए संत भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं।"
संत भी! जिनके लिए सभी कुछ सरल है। वे भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं।
"और इसी कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना नहीं करना होता।"
इसे ख्याल रखो। बीज से निबट लो; वृक्ष से निबटना बहुत मुश्किल होगा। हर चीज समय के जाते-जाते बड़ी होती चली जाती है, इसलिए कल पर मत टालो। बुराई से पूर्व-निवारण कर लो। अगर पूर्व-निवारण न हो पाए तो जब बुराई द्वार पर दस्तक दे तभी निवारण कर लो। उसे घर में मेहमान मत बनाओ। उसे अपने भीतर जगह मत दो। क्योंकि सारा संसार तुम्हें कर्म में खींच रहा है। और तुमने अगर निष्क्रिय होना चाहा है तो तुम इस सारे संसार से एक बिल्कुल ही विभिन्न आयाम में प्रवेश कर रहे हो। तुम्हें सारा रंग-ढंग बदलना पड़ेगा।
जीसस ने कहा है, जो तुम्हारा कोट छीने, उसको कमीज भी दे दो; क्योंकि कहीं लौट कर फिर कमीज लेने न आए। जीसस ने कहा है, जो तुम्हें एक मील चलने के लिए बाध्य करे कि मेरा बोझ ले चलो, तुम दो मील तक चले जाओ। क्योंकि हो सकता है, संकोचवश दो मील न कह सका हो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तुम

दूसरा भी कर दो। कहीं एक थप्पड़ उसने बचा रखी हो, फिर लौट कर न आए। अभी निबटारा कर लो। चीजों से बीज में निबट लो। उनको वहीं शांत कर दो।
और कर्म के जाल में पूरा संसार घूम रहा है भंवर की तरह! तुम्हें अगर निष्कर्म में जाना है तो बहुत ही सावधानी चाहिए कि कोई तुम्हें कर्म में न खींच ले। सब तुम्हें कर्म में खींचने को आतुर हैं। सब चाह रहे हैं कि तुम कर्म में लीन हो जाओ। क्योंकि सबकी आकांक्षाएं, वासनाएं कर्मों की हैं। और तुमने अकर्म साधना चाहा, तुम इस जगत से किसी दूसरे जगत में प्रवेश करने को तत्पर हुए हो। इस जगत में इससे बड़ी कठिन कोई बात नहीं है। इसलिए बहुत होश चाहिए कि कोई तुम्हें खींच न ले।
जो तुम्हें गाली दे रहा है, वह खींच रहा है। जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है, वह भी खींच रहा है। तुम जरा सावधान रहना। एक-एक कदम होश से उठाना, फूंक-फूंक कर रखना। तो ही तुम उस अवस्था को उपलब्ध हो पाओगे, जहां निष्क्रियता तुम्हारे जीवन की शैली हो जाती है। तब दूसरा काम करनाः अकर्म पर ध्यान देना। और तब तीसरा काम अपने आप हो जाएगाः स्वादहीन का स्वाद। वही ब्रह्मानंद है। वही महासुख है। वही निर्वाण है। मुक्ति, कैवल्य, जो भी नाम तुम पसंद करो।
पर स्वादहीन का स्वाद बड़ा प्यारा शब्द है। वहां कोई स्वाद लेने वाला
भी नहीं बचता; वहां कोई स्वाद भी नहीं बचता। फिर भी एक अनुभव घटित होता है; बिना अनुभोक्ता के एक घटना घटती है। वही घटना बड़े से बड़ा चमत्कार है! और जिसके जीवन में वह घट गया, फिर कुछ और घटने को नहीं रह जाता। उसके पार कुछ भी नहीं।
उस महान को खोजने में निकले हो तो बड़ी सावधानी चाहिए। तुम्हें दूसरों
की तरह चलने की सुविधा नहीं है। तुम्हें दूसरों की तरह व्यवहार करने की सुविधा नहीं है। तुम्हें अनूठा होना पड़ेगा। अगर यह तुम्हें पूरी करनी है अभीप्सा तो गालियों के बदले तुम्हें धन्यवाद देना होगा और जो तुम्हारे लिए कांटे बोएं उनके लिए तुम्हें फूल बोना होगा। कबीर ने कहा हैः जो तोको कांटा बुवै, बाको बो तू फूल।
तभी! तभी स्वादहीन का स्वाद संभव है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
एक सौ चारवां प्रवचन

जो प्रारंभ है वही अंत है

Chapter 64 : Part 1

Beginning And End

That which lies still is easy to hold;
That which is not yet manifest is easy to forestall;
That which is brittle (like ice) easily melts;
That which is minute easily scatters.
Deal with a thing before it is there;
Check disorder before it is rife.
A tree with a full span's girth begins from a tiny sprout; A nine-storied terrace begins with a clod of earth.
A journey of a thousand li begins at one's feet.

अध्याय 64 : खंड 1

आरंभ और अंत

जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है;
जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है;
जो बर्फ की तरह तुनुक है, वह आसानी से पिघलता है;
जो अत्यंत लघु है, वह आसानी से बिखरता है।
किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो;
परिपक्व होने के पहले ही उपद्रव को रोक दो।
जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है;
नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है;
हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है।

जीवन की सारी समस्या इस एक बात में ही छिपी है कि जब तुम हल कर सकते हो
तब तुम हल नहीं करते। जब बात को रोक देना आसान था तब तुम बढ़ाए चले जाते हो। और जब बात सीमा के बाहर निकल जाती है तब तुम्हें होश आता है। जब कुछ भी नहीं किया जा सकता तब तुम जागते हो। जब कुछ किया जा सकता था तब तुम आलस्य में पड़े विश्राम करते रहे।
तब हजार समस्याएं इकट्ठी होती चली जाती हैं, उन समस्याओं में दबे तुम खंड-खंड, छितर-बितर जाते हो। फिर तुम्हारे जीवन-सूत्र का जो संबंध है, तुम्हारे भीतर की अंतरात्मा से जो तुम्हारी कड़ी है, उसका ओर-छोर खो जाता है। तब तो तुम छोटी सी समस्या भी हल करने में असमर्थ हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा मन एक विभ्रम हो जाता है, एक कनफ्यूजन। वहां इतनी समस्याओं का ढेर लगा पड़ा होता है। उन समस्याओं से दबे तुम सारी सामर्थ्य खो देते हो। तुम्हारा आत्मविश्वास भी तिरोहित हो जाता है। जो कुछ भी हल न कर पाया, वह कुछ हल कर सकेगा, यह भरोसा भी टूट जाता है। तुम समझने लगते हो कि अपने से हल होने वाला है ही नहीं। और एक बार ऐसी दीनता आ गई कि तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन गई। फिर तो तुम उसे भी हल न कर पाओगे जिसे बच्चे हल कर लेते हैं। हल करने का भरोसा और श्रद्धा ही नष्ट हो गई।
इसलिए लाओत्से के इस सूत्र को बहुत गौर से समझना। यह ठीक तुम्हारे लिए है। इसके विपरीत ही तुम करते रहे हो।
पहली दफा मुझे, जब कि लाओत्से का कोई पता भी न था, एक अजीब से आदमी से इस सूत्र की समझ मिली थी। मैं जब विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था तो एक आदमी

था गांव में जिसको लोग बन्नू पागल कहते थे। मैं उसमें आकर्षित हो गया था। क्योंकि मुझे वह पागल जैसा नहीं मालूम पड़ता था। भिन्न था; पागल जरा भी नहीं था। लोगों से उलटा था; पागल जरा भी नहीं था। लोगों को भला मैं पागल कह सकता, उस आदमी को पागल कहना मुश्किल था। क्योंकि उस जैसी प्रसन्नता! उसे कभी मैंने रोते, उदास नहीं देखा। उसकी चाल और उसकी मस्ती, सब खबर देती थीं कि कहीं भीतर वह आदमी गहरे में जड़ें जमा लिया है। धीरे-धीरे, वह साधारणतः किसी से बोलता नहीं था, बाद में जब मेरी उससे निकटता बढ़ गई और उसने मुझसे बोलना भी शुरू कर दिया और वह जब मेरी प्रतीक्षा भी करने लगा और जब हम दोनों सांझ-सुबह घूमने भी जाने लगे, तब मैंने उससे कहा कि लोगों से बोलते क्यों नहीं हो? तो उसने मुझे कहा, न बोलने में सुविधा है; बोले कि फंसे। बोलने में उपद्रव है।
एक दिन सांझ घूमते वक्त वह अचानक रुक कर खड़ा हो गया और उसने एक चांटा अपने गाल पर मार लिया। तो मैंने उससे पूछा कि यह क्या किया? यह क्या हुआ? उसने कहा, जब बात रुक सकती हो तभी रोक देना ठीक है। मुझे किसी के प्रति क्रोध आ रहा था। अब मैंने बांके बिहारीलाल जी को ठीक कर दिया।
वह अपने को सदा सम्मान से ही पुकारता थाः बांके बिहारीलाल जी। लोग उसको बन्नू पागल कहते थे। वह मुस्कुराया और उसने कहा, कहो बांके बिहारीलाल जी, रास्ते पर आ गए? जरा सी रेखा उठी थी क्रोध की भीतर, वहीं उसने चांटा मार कर निबटारा कर लिया। उसने कहा, बजाय इसके कि दूसरे चांटा मारें, खुद ही मार लेना बेहतर है। और इसके पहले कि बात आगे बढ़ जाए, उसे रोक देना उचित है। उसने मुझे कहा था कि आग जब शुरू-शुरू में सुलगती है, जरा से पानी से बुझ जाती है। और हवा का यह नियम है कि छोटे दीए को तो बुझा देता है, बड़ी लपटों को बढ़ाता है। उस पागल ने मुझे यह कहा कि शुरू में मिटा दो तो मिट जाता है, बाद में तो मिटाने से भी लपटें बढ़ती हैं। वह लाओत्से ने भी नहीं कहा है इस सूत्र में। तुमने भी देखा होगा, हवा का झोंका आता है, छोटा दीया बुझ जाता है; और घर में आग लगी हो, उस वक्त अगर हवा चल जाए तो मारे गए, फिर बुझना मुश्किल है। लपटों को हवा भी बढ़ाती है। बढ़े हुए को सब तरफ से बढ़ने की सुविधा मिल जाती है। छोटे में मिटा दो तो हवा भी मिटाती है।
यह जो पागल आदमी था, यह पागल आदमी नहीं था, यह समझ-बूझ कर पागल हो रहा था। इसने पागलपन का एक आवरण अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया था। यह बचाव था। पागल समझ कर लोग न उसकी तरफ ध्यान देते थे, न उसकी चिंता लेते थे। समाज में रहते हुए वह समाज से बिल्कुल दूर हो गया था। उसने अपने चारों तरफ एक छोटी सी गुफा बना ली थी पागलपन की। वह पागलपन बचाव था।
समाज कितना पागल होना चाहिए, जहां कि बचाव के लिए भी आदमी को पागल होना पड़ता हो। बहुत से फकीर दुनिया में पागलपन को आरोपित कर लिए हैं, ताकि लोग उन्हें भूल जाएं, ताकि लोग उन पर ध्यान न दें, ताकि वे क्या कर रहे हैं, लोग उनको अकेला छोड़ दें, ताकि वे अपना जो करना चाहें करते रहें, कोई उनकी चिंता न ले। जब लोग एक दफा मान लेते हैं कि पागल है तो सब क्षमा कर देते हैं।
यह लाओत्से का सूत्र और तुम्हारा ठीक इससे विपरीत होना, इन दोनों को साथ-साथ समझने की कोशिश करो। जब कोई समस्या उठती है तब तुम क्या करते हो? पहले तो तुम उस पर ध्यान ही नहीं देते। तुम ऐसा रुख रखते हो कि अपने आप चली जाएगी, कोई खास बड़ी बात नहीं है। ऐसे ही सर्दी-जुकाम है, मिट जाएगा। क्या चिकित्सक से पूछना है! क्या उपचार करना है! तुम छोटा करके देखते हो। तुम पहले तो उपेक्षा करते हो, टालते हो। तुम पहले पूरी चेष्टा यह करते हो कि अपने आप ही हल हो जाए।
कहीं दुनिया में कोई चीज अपने आप हल हुई है? उलझाओ तुम और अपने आप हल हो जाए, यह होगा कैसे? बनाओ तुम, अपने आप हल हो जाए; यह होगा कैसे? समस्या तुम खड़ी कर रहे हो; अपने आप हल न होगी। लेकिन यह मनुष्य का पहला रवैया है। सोचता है, शायद कोई चमत्कार घट जाएगा, कोई घटना बदल जाएगी, संयोग बदल जाएंगे। चीज अपने आप हो जाएगी; क्यों झंझट में पड़ना! आदमी नजरअंदाज करना चाहता है; कहीं और देखने लगता है। यह पहली प्रक्रिया है, कि तुम अपने मन को कहीं और लगाते हो, ताकि समस्या दिखाई न पड़े। और यहीं खतरा शुरू होता है। क्योंकि जिस समस्या को तुमने देखना बंद किया वह तुम्हारे अचेतन में गिरने लगती है, वह

तुम्हारे अंधकार कुएं में गिरने लगती है, वह तुम्हारी जमीन के भीतर उतर जाती है, वह अंडरग्राउंड हो जाती है।
और एक बार कोई समस्या जमीन के नीचे उतर गई, अंधेरे में उतर गई, तुमने देखा नहीं, नजर न दी, ध्यान न किया, वह बीज की तरह जड़ जमा लेगी। जो समस्या सचेतन में हो, उसे हल करना आसान है। क्योंकि वहां तक तुम मालिक हो। एक बार अचेतन में उतर गई, फिर हल करना मुश्किल है। क्योंकि फिर तुम मालिक रहे ही नहीं। तुम्हारी मालकियत मन के ऊपर की सतह पर ही है। अगर मन को हम दस खंडों में बांटें तो पहले खंड में तुम्हारी मालकियत थोड़ी-बहुत चलती है; नौ खंडों में तुम्हारी मालकियत का कोई... नौ खंडों का तुमसे कोई संबंध ही नहीं रहा है। एक बार कोई समस्या अचेतन में, अनकांशस में चली गई तो बीज जमीन में चला गया। जमीन के ऊपर से झाड़-बुहार देना बड़ा आसान था; जमीन के नीचे बहुत कठिनाई है। और खोदने में डर है। क्योंकि खोदोगे एक, हजार निकल आएंगे। इसलिए कोई अचेतन को खोदता नहीं, छूता नहीं। भय लगता है। क्योंकि एक बीज नहीं दबा है, वहां तुम जन्मों-जन्मों से दबाए हुए पड़े हो। अचेतन तुम्हारा कबाड़खाना है, जिसमें तुमने सब कूड़ा-कर्कट भर दिया है। वहां जाने में भय लगता है कि वहां गए और सब चीजें एकदम से टूट पड़ीं तो क्या होगा?
इसलिए एक बार कोई चीज अचेतन में उतर गई तो तुम जटिलता में पड़ जाओगे।
पर मन पहले टालता है। जब मन टालता हो तब तुम जाग जाना। उस क्षण को खोना उचित नहीं है। हजार काम छोड़ कर पहले इसे निबटा लेना; बड़े काम छोड़ कर इस छोटे को निबटा लेना। क्योंकि जो आज छोटा है, कल बड़ा हो जाएगा। अभी हल हो सकता है, कल हल होना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि अकेली नहीं आती समस्या, अपने साथ हजार समस्याएं लाती है।
तुमने सुनी है कहावत, बीमारी अकेली नहीं आती, एक बीमारी अपने साथ हजार बीमारियां लाती है। सब के संगी-साथी हैं। समस्याओं के भी संगी-साथी हैं। अगर एक समस्या ने जड़ जमा ली तो उसी तरह की हजार समस्याएं भी तुम्हारे द्वार पर दस्तक देने लगेंगी--हमको भी जगह दो! और जब तुमने एक को जगह दी है तो तुम्हारे भीतर छिद्र हो गया। उसी छिद्र से हजार समस्याएं भीतर प्रवेश पा जाएंगी।
अगर तुमने क्रोध को जगह दी तो तुम हिंसा से कितनी देर तक दूर रह सकोगे? अगर तुमने क्रोध को जगह दी तो तुम काम से कितनी देर दूर रह सकोगे? क्योंकि वे सब जुड़े हैं। वे सब एक ही घटना के ताने-बाने हैं।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, अगर एक समस्या भी कोई व्यक्ति हल कर ले, उसकी सारी समस्याएं हल हो जाती हैं। क्योंकि एक समस्या को हल करने में तुम पाओगे, सभी समस्याएं समाविष्ट हैं।
अगर तुम कामवासना से मुक्त हो जाओ तो तुम क्रोध न कर सकोगे। क्योंकि कामवासना ही, जब कोई तुम्हारी कामवासना में बाधा डालता है, तो क्रोध बन जाती है। तुम कुछ पाना चाहते थे, और किसी ने अड़चन डाल दी। तुम कहीं जाना चाहते थे, कोई बीच में आ गया। तुम जाना चाहते थे, और एक पत्थर की दीवार किसी ने खड़ी कर दी। जो भी तुम्हारे मार्ग में अवरोध खड़ा करेगा उस पर क्रोध आता है। लेकिन अगर तुम कहीं जाना ही न चाहते थे, अगर तुम्हारी कोई कामना ही न थी, कोई वासना ही न थी, तुम कुछ पाना ही न चाहते थे, तो कौन तुम्हारे मार्ग में अवरोध खड़ा करेगा? कैसे तुम्हें क्रोध आएगा?
जिसकी कामवासना नहीं है उसको लोभ कैसा? लोभ कामवासना का अनुषंग है। क्योंकि कामी लोभी होगा ही। लोभ का मतलब यह है कि कल की वासना के लिए मैं आज इंतजाम कर रहा हूं, परसों की वासना के लिए आज इंतजाम कर रहा हूं। बुढ़ापे के लिए तिजोरी भर रहा हूं। भविष्य के लिए आज तैयारी करनी पड़ेगी। तो लोभ का मतलब हैः इकट्ठा कर रहा हूं, ताकि कल भोग सकूं। जिसकी कामवासना नहीं है उसका लोभ कैसा?
जिसकी कामवासना नहीं है उसका कल ही न रहा; उसका भविष्य ही समाप्त हो गया। उसका समय रुक गया। उसकी घड़ी बंद हो गई। वह यहीं है, आज है। और आज पर्याप्त है। आज से ज्यादा की कोई मांग नहीं है। जो छोटा सा मिल रहा है, वह काफी है। आज के लिए काफी से ज्यादा है। अगर तुम कल को बीच में न लाओ तो जो तुम्हें मिला है काफी है। तुम समृद्ध हो। अगर तुम कल को बीच में ले आओ तो

बड़े से बड़े सम्राट भी भिखारी हैं। क्योंकि कल को कोई भी नहीं भर सकता। कल दुष्पूर है।
एक वासना को बदलो, तुम पाओगे, और वासनाओं में बदलाहट होने लगी। एक समस्या को हल कर लो, सब समस्याएं हल हो जाती हैं।
पहला तो मन कहता है, टालो; कल देखेंगे, परसों देखेंगे। ऐसा टालते जाते हो। लेकिन जितना तुम टाल रहे हो उतना समय बीज को मिल रहा है--फूटने को, अंकुरित होने को। फिर मन की दूसरी वृत्ति है, जब टालना मुश्किल ही हो जाए, समस्या सामने ही खड़ी हो जाए, तो तुम समस्या से लड़ना शुरू करते हो।
पहले टालते हो, वह भी गलत। फिर लड़ते हो; दीवार खड़ी है, उसके साथ सिर फोड़ते हो। वह भी गलत। क्योंकि समस्या को कोई लड़ कर हल नहीं कर सकता। तुम लड़े कि समस्या को हल करना असंभव ही हो जाएगा। क्योंकि हल करने के लिए तो शांत चित्त चाहिए; लड़ने वाली वृत्ति तो अशांत है। तो पहले तो क्रोध को पनपते देते हो। फिर जब क्रोध मुश्किल में डाल देता है, सब तरफ जीवन को उलझा देता है, सब तरफ कांटे बो देता है, कहीं भी चलने की जगह नहीं रह जाती, जहां देखो वहां दुश्मनी दिखाई पड़ने लगती है, सारा संसार विरोध में मालूम पड़ता है, जैसे सब तरफ तुम्हारे तरफ कोई शड्यंत्र चल रहा है, सभी लोग तुम्हारी दुश्मनी में खड़े हैं; तब तुम जागते हो। तब तुम दूसरी भूल करते हो कि तुम लड़ने की कोशिश करते हो कि दबा दो क्रोध को, मिटा दो क्रोध को। लेकिन कभी कोई किसी समस्या से लड़ कर जीता है?
समझ लो कि तुम धागे साफ कर रहे थे और धागे उलझ गए। इनसे लड़ोगे? लड़ कर धागे सुलझ जाएंगे? लड़ कर तो और उलझ जाएंगे, टूट जाएंगे। एक बार धागे उलझ गए हों तो फिर तो बड़ी ही शांति चाहिए, फिर तो बड़ा मैत्री भाव चाहिए। फिर तो बड़ी सरलता और धीरज से एक-एक धागे को निकालोगे तो ही निकल पाएंगे। अगर जरा भी जोर से खींच दिया तो और उलझाव बढ़ जाएगा।
धैर्य बिल्कुल नहीं है। पहले तुम टालते हो; उसे तुम धैर्य मत समझना। वह धैर्य नहीं है, वह आलस्य है। कहते हो, कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे। अभी जल्दी क्या है? पहले तुम टालते हो; वह धैर्य नहीं है। कई लोग उसे धीरज समझते हैं कि हम धैर्यवान हैं; कभी भी कर लेंगे, जल्दी क्या है? वह आलस्य है। वह प्रमाद है। वह केवल अपने को धोखा देना है। धैर्य की कसौटी तो उस दिन आएगी जिस दिन उलझाव खड़ा हो जाएगा। और तुम अब क्या करते हो? धैर्य से सुलझाते हो या लड़ते हो? तुम लड़ोगे। छोटी चीजों से लड़ोगे, मुश्किल में पड़ जाओगे।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ, जापान में एक बहुत बड़ा योद्धा था। और योद्धा प्रासंगिक है यहां। उसकी तलवार चलाने की कला का कोई मुकाबला न था। जापान में उसकी धाक थी। उसके नाम से लोग कांपते थे। बड़े-बड़े तलवार चलाने वाले उसके सामने क्षणों में धूल-धूसरित हो गए थे। उसके जीवन की एक कहानी है। वह कहानी झेन फकीर बड़ा उपयोग करते हैं, क्योंकि वह बड़ी विचारपूर्ण है, और तुम्हारे जीवन से जुड़ी है।
एक रात ऐसा हुआ कि योद्धा घर लौटा, अपनी तलवार उसने टांगी खूंटी पर, तभी उसने देखा कि एक चूहा उसके बिस्तर पर बैठा है। वह बहुत नाराज हो गया। योद्धा आदमी! उसने गुस्से में तलवार निकाल ली, क्योंकि गुस्से में वह और कुछ करना जानता ही न था। न केवल चूहा बैठा रहा तलवार को देखता, बल्कि चूहे ने इस ढंग से देखा कि योद्धा अपने आपे के बाहर हो गया। चूहा और यह हिम्मत? और चूहे ने ऐसे देखा कि जा जा, तलवार निकालने से क्या होता है? मैं कोई आदमी थोड़े ही हूं जो डर जाऊं? उसने क्रोध में उठा कर तलवार चला दी। चूहा छलांग लगा कर बच गया। बिस्तर कट गया। अब तो क्रोध की कोई सीमा न रही। अब तो अंधाधुंध चलाने लगा तलवार वह जहां चूहा दिखाई पड़े। और चूहा भी गजब का था। वह उचके और बचे। पसीना-पसीना हो गया योद्धा और तलवार टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गई। और चूहा फिर भी बैठा था। वह तो घबड़ा गया; समझ गया कि यह कोई चूहा साधारण नहीं है, कोई प्रेत, कोई भूत। क्योंकि मुझसे बड़े-बड़े योद्धा हार चुके हैं और एक चूहा नहीं हार रहा!
अब योद्धा एक बात है और चूहा बिल्कुल दूसरी बात है। वह घबड़ा कर बाहर आ गया। उसने जाकर अपने मित्रों को पूछा कि क्या करूं? उन्होंने कहा, तुम भी पागल हो! चूहे से कोई तलवार से लड़ता है? अरे, एक बिल्ली ले जाओ, निबटा देगी।

हर चीज की औषधि है। और जहां सूई से काम चलता हो वहां तलवार चलाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। बिल्ली ले जाओ।
लेकिन योद्धा की परेशानी और चूहे की तेजस्विता की कथा गांव भर में फैल चुकी। बिल्लियों को भी पता चल गई। बिल्लियां भी डरीं। क्योंकि उनका भी आत्मविश्वास खो गया। इतना बड़ा योद्धा हार गया जिस चूहे से! पकड़-पकड़ कर बिल्लियों को लाया जाए। बिल्लियां बड़ा मुश्किल से; दरवाजे के बाहर ही अपने को खींचने लगें; बामुश्किल उनको भीतर करें कि वे भीतर चूहे को देख कर बाहर आ जाएं। एक-दो बिल्लियों ने झपटने की भी कोशिश की, लेकिन उन्होंने पाया कि चूहा झपट्टा उन पर मारता है। यह चूहा अजीब था, क्योंकि चूहा कभी बिल्ली पर झपट्टा नहीं मारता जब तक कि उसको एल एस डी न पिला दिया गया हो, या कोई शराब न पिला दी गई हो, जब तक वह होश के बाहर न हो जाए। और चूहा अगर बिल्ली पर झपटे तो बिल्ली का आत्मविश्वास खो जाता है।
तो सारी बिल्लियां इकट्ठी हो गईं। उन्होंने कहा, हमारी इज्जत का भी सवाल है। योद्धा तो एक तरफ रहा, हारे न हारे, हमें कुछ लेना-देना नहीं; ऐसे भी हमारा कोई मित्र न था; चूहे ने ठीक ही किया। मगर अब हमारी इज्जत दांव पर लगी है; अब हम क्या करें? अगर हम हार गए एक दफा और गांव के दूसरे चूहों को पता चल गया, तो यह सब प्रतिष्ठा तो प्रतिष्ठा की ही बात होती है। एक दफा पोल खुल जाए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। अगर दूसरे चूहे भी हमला करने लगे तो हम तो गए, कहीं के न रहे। इस योद्धा ने तो डुबा दिया।
तो उन सब ने राजा के महल में एक मास्टर कैट थी--एक बिल्लियों की गुरु-- उससे प्रार्थना की कि अब तुम्हीं कुछ करो। उसने कहा, तुम भी पागल हो। इसमें करने जैसा क्या है? मैं अभी आई। वह बिल्ली आई; वह भीतर गई; उसने चूहे को पकड़ा और बाहर ले आई। बिल्लियों ने पूछा कि तुमने किया क्या? उसने कहा, कुछ करने की जरूरत है? मैं बिल्ली हूं, वह चूहा है; बात खतम। इसमें तुमने करने का सोचा कि तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि करने का मतलब हुआ कि डर समा गया। उसका स्वभाव चूहे का है और मेरा स्वभाव बिल्ली का है; बात खतम। हमारा काम पकड़ना है और उसका काम पकड़ा जाना है। यह तो स्वाभाविक है। इसमें कुछ लेना- देना नहीं है। इसमें कुछ करना नहीं है। न इसमें हम जीत रहे हैं, न इसमें वह हार रहा है। इसमें हार-जीत कहां? यह उसका स्वभाव है; यह हमारा स्वभाव है। दोनों का स्वभाव मेल खाता है; चूहा पकड़ा जाता है। तुमने स्वभाव के अतिरिक्त कुछ करने की कोशिश की। और चूहे से कहीं कोई लड़ कर जीता है? और बिल्ली जिस दिन लड़े, समझना कि हार गई। लड़ने की शुरुआत ही हार की शुरुआत है।
समस्याओं से लड़ना मत। झेन फकीर कहते हैं, समस्याओं के साथ वही व्यवहार करना जो बिल्ली ने चूहे के साथ किया। चेतना का स्वभाव पर्याप्त है, होश काफी है। होश के मुंह में समस्या वैसे ही चली आती है जैसे बिल्ली के मुंह में चूहा चला आता है; इसमें कुछ करना नहीं पड़ता।

लेकिन तुम योद्धा बन कर तलवार लेकर खड़े हो जाते हो। दो कौड़ी की समस्या है; सूई की भी जरूरत न थी, तुम तलवार से लड़ने लगते हो। हारोगे। ध्यान रखना, मरीज हो सर्दी-जुकाम का और कैंसर का इलाज करोगे तो मारोगे। सर्दी-जुकाम तो एक तरफ रहेगा, मरीज मरेगा।
सम्यक विधि का इतना ही अर्थ हैः क्या मौजू है, क्या स्वाभाविक है। लड़ने
का सवाल क्या है? किससे लड़ रहे हो तुम? तुम्हारे भीतर जब कोई समस्या है, उससे लड़ने का मतलब ही यह है कि तुमने आत्मविश्वास खो दिया। अन्यथा तुम्हारा होश, जागृति, तुम्हारा ध्यान काफी है। तुम्हारे ध्यान की रोशनी पड़ेगी, समस्या विसर्जित हो जाएगी।
तो पहली तो भूल करते हो कि टालते हो। फिर दूसरी भूल करते हो कि अधैर्यपूर्वक लड़ते हो।
अब तुम्हें हंसी आएगी; तुम कहोगे, योद्धा पागल था। लेकिन तुम अपनी तरफ सोचो। कहानी को अपने जीवन में जरा खोजने की कोशिश करो।
मेरे पास कोई आता है, वह कहता है कि पान खाना नहीं छूटता। बीस साल से लड़ रहे हैं। अब यह चूहा से कोई बड़ी बात हुई पान खाना? चूहा फिर भी बड़ा है। कोई कहता है, सिगरेट नहीं छूटती। तुम बात क्या कर रहे हो? तुम्हारे भीतर आत्मा

है या नहीं? तुम किस भांति की बिल्ली हो कि चूहे को देख कर भाग रहे हो और विचार कर रहे हो कि क्या करें क्या न करें? सिगरेट पीने जैसी बात, और बीस साल हो गए और तुमसे छूटती नहीं! और तुम कई बार छोड़ चुके, और फिर-फिर हार गए और फिर-फिर शुरू कर दी! तुम हो कौन? कुछ भी नहीं हो मालूम होता है। तुम्हारे पास ध्यान की कोई भी ऊर्जा नहीं है। तुम्हारे पास आत्मविश्वास नहीं है। अन्यथा सिगरेट पीने से लड़ना पड़े?
ऐसा हुआ कि आज से कोई चालीस साल पहले उत्तरी ध्रुव पर मनुष्य पहली दफा पहुंचा था। और जो यात्री उत्तरी ध्रुव पर होकर लौट कर आए थे उन्होंने जब अपनी कहानी कही तो अखबारों में--सारे जगत के अखबारों में--बड़ी सुर्खियों से छपी। और उनकी कहानी बड़ी करुणा की भी थी। क्योंकि उनका भोजन चुक गया और उन्हें मछलियां मार कर या भालू मार कर किसी तरह अपना जीवन चलाना पड़ा। पर सबसे बड़ी हैरानी की बात यह थी कि जो यात्री-दल का प्रधान था उसने कहा, हमें भोजन के चुकने से उतनी तकलीफ न हुई; लोग भूखे रहने को राजी थे, लोग पानी पीकर रह लेते थे; लेकिन सिगरेट चुक गई तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। लोग जहाज की रस्सियां काट-काट कर पीने लगे। और उनको लाख समझाया कि ये रस्सियां अगर कट गईं तो हम पहुंचेंगे कैसे वापस! इन्हीं रस्सियों पर सारा पाल टिका है! लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं। पहुंचने की उतनी फिक्र नहीं; मर जाएं यहीं, इसकी भी चिंता नहीं; लेकिन लोग कहते कि जब तलफ लगती है, तो फिर हम रुक नहीं सकते। और उन पर पहरा देना मुश्किल था। क्योंकि करीब-करीब नब्बे प्रतिशत साथी उस दल के सिगरेट पीने वाले थे। उन पर पहरा कौन दे? रात को रस्सियां कट जाएं। कप्तान इसलिए परेशान था कि अगर यह चला और लोग रस्सियां ही पी गए तो हमारे पहुंचने का कोई उपाय नहीं।
एक वैज्ञानिक इसको अखबार में पढ़ रहा था। वह भी सिगरेट का चेन स्मोकर था। उसके हाथ में उस वक्त भी सिगरेट थी जब वह पढ़ रहा था। उसे ख्याल आया कि यह तो बड़ी बेहूदी बात है। अगर मैं भी उस यात्री-दल का हिस्सा होता तो मैंने भी क्या रस्सियां पी होतीं--गंदी रस्सियां? उनको मैं धुएं की तरह पी गया होता? हाथ में सिगरेट थी, उसने सिगरेट की तरफ देखा, अपनी तरफ देखा, सिगरेट उसने ऐश-ट्रे में रख दी, वैसी की वैसी अधजली, और उसने कहा, अब मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा जब मुझे इसे फिर उठाना पड़े। उस दिन मैं समझूंगा कि मुझमें कोई आत्मा नहीं है। सिगरेट बड़ी है, आत्मा छोटी है। बीड़ी बड़ी है, ब्रह्म छोटा।
फिर तीस साल गुजर गए और वह सिगरेट को हमेशा अपनी ऐश-ट्रे पर वैसी ही आधी
की आधी रखे रहा--उस क्षण की प्रतीक्षा में जब उसे फिर सिगरेट उठानी पड़े। वह क्षण नहीं आया।
बस इतना ही चाहिए। आत्मभाव चाहिए। जरा सा होश। जिन समस्याओं से तुम लड़ रहे हो वे तुम्हारी छायाएं हैं। उनसे लड़ोगे तो हारोगे। क्योंकि लड़ने में तुमने नासमझी दिखला दी। तुम लड़े, इसका मतलब ही यह है कि तुम्हें यह पता ही नहीं है कि तुम अपनी छाया से लड़ रहे हो। आदत तुम्हारी है। समस्या तुम्हारी है। तुम इतने नीचे उतर रहे हो कि उससे लड़ने जाओगे! समस्याएं बोध से मिटती हैं, संघर्ष से नहीं, कसम खाने से नहीं, व्रत लेने से नहीं।
व्रत तो कमजोर लेते हैं। कसमें कमजोर खाते हैं। क्योंकि कसम का मतलब
ही यह है कि तुम अपने को बांध रहे हो, ताकि भविष्य में--तुम्हें भरोसा नहीं है अपना। तो तुम कह रहे हो कि मैं ब्रह्मचर्य की कसम लेता हूं। तुम्हें भरोसा नहीं है भविष्य का। कसम लेते हो समाज के सामने, ताकि लोग भी ध्यान रखें। कसम लेते हो दूसरों के सामने, ताकि दूसरे के सामने प्रतिबद्ध हो जाने के कारण अहंकार का सवाल अड़ जाए। फिर तुम्हारा अहंकार ही रोकेगा कि इतने लोगों के सामने कसम ली, अब तोड़ें कैसे?
तुम अहंकार के माध्यम से अपनी आदतों को बदलना चाहते हो! और अहंकार तो सबसे बुरी और बड़ी से बड़ी खतरनाक आदत है। सिगरेट पीते हुए शायद तुम मोक्ष में चले भी जाओ, क्योंकि मैंने कभी नहीं सुना कि कोई सिगरेट पीने पर मोक्ष के द्वार पर कोई बाधा हो, कि धूम्रपान वर्जित है ऐसा लिखा हो। लेकिन अहंकार लेकर तुम मोक्ष में कभी भी न जा सकोगे। जब तुम अहंकार को लड़ाते हो आदत के खिलाफ तभी तुम भूल कर रहे हो। तब तुम योद्धा की भूल कर रहे हो। अहंकार तो और

भी खतरनाक आदत है। तब तो तुम बीमारी का इलाज जो कर रहे हो, वह बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक है। उससे तो बीमारी बेहतर थी; इतनी बुरी न थी। बीमारी से बच भी जाते, औषधि से न बच सकोगे।
आत्मा को जगाओ। अहंकार को खड़ा मत करो। समस्याओं को हल करना हो तो कसमें खाकर नहीं, बोध को जगा कर। कसमें खाना भी लड़ने की ही तरकीब है। लड़ कर कभी कोई नहीं जीता। जान कर लोग जीते हैं। और जो ज्ञान से ही हो जाता हो उसके लिए लड़ने की, जद्दोजहद की, व्यर्थ के संघर्ष की क्यों आयोजना करते हो?
तो पहली तो भूल होती है टालने की। फिर दूसरी भूल होती है लड़ने की। लड़ने
का परिणाम इतना ही हो सकता है कि अगर तुम बहुत जिद्दी हो तो जो आदत तुम्हारे ऊपर थी उसे तुम अचेतन में दबा दो; जो क्रोध बाहर निकलता था उसे तुम भीतर पी जाओ।
क्रोध बाहर निकल जाता तो तुम्हारा संयंत्र मुक्त हो जाता उससे, हलके
हो जाते। भीतर ले जाकर तो जहर इकट्ठा होता जाएगा। तुम मवाद इकट्ठी कर रहे हो। तुम फोड़े को मिटा नहीं रहे हो, ऊपर से पट्टियां बांध कर फूल लगा रहे हो। तुम भीतर विस्फोटक होते जाओगे। तुम एक ज्वालामुखी हो जाओगे, जो कभी भी फूट सकता है। और तुम्हारे हर कृत्य में, तुमने जो-जो दबाया है, उसकी छाप पड़ने लगेगी। तुम उठोगे तो क्रोध से, बैठोगे क्रोध से, चलोगे क्रोध से, बोलोगे क्रोध से। अकारण ही तुम क्रोधित होने लगोगे।
यही तो पागलपन हैः कोई ऐसा काम करना जो अकारण था, जिसकी कोई जरूरत ही न थी, जिसके लिए बाहर कोई भी कारण मौजूद न थे। ऐसा कोई काम करना ही तो पागलपन है। होश और पागलपन में फर्क क्या है? होश और पागलपन में फर्क यह है कि तुम्हें किसी ने पुकारा तो तुम बोले, अगर पुकारने वाला है तब तो होश, और पुकारने वाला है ही नहीं, पुकार तुमने ही सुनी, तो पागलपन। तब तुम बिना कारण बाहर के खोजे अपने भीतर के ही कारणों से जीने लगते हो। बाहर किसी ने गाली दी तब तो ठीक कि तुम क्रोधित हो जाओ। लेकिन कोई गाली दिया ही नहीं है और तुम क्रोधित हो जाते हो, जैसे तुम प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई गाली दे, तो तुम व्याख्या कर लेते हो कि जरूर गाली दी गई है। गाली न भी दी गई हो तो तुम समझ लेते हो कि भाव-भंगिमा से पता चलती थी कि गाली वह आदमी देना चाहता था, कि वह छिपा रहा था, कि वह धोखा दे रहा था, लेकिन गाली वह देना चाहता था, कि उसके ओंठों में लिखी थी, कि उसकी आंख कह रही थी, कि वह आदमी ही ऐसा है, हम उसे जानते हैं, उसके देने की जरूरत ही नहीं है, बिना दिए हम पहचानते हैं कि वह गाली देने ही आया था। तुम व्याख्या करने लगोगे। भीतर के क्रोध को निकालने के लिए कोई न कोई उपाय खोजने पड़ेंगे।
और जितना तुम दबाओगे उतने तुम रुग्ण होते जाओगे। जितने तुम रुग्ण होओगे उतने ही जीवन के इस महा उत्सव में तुम्हारा सम्मिलित होना असंभव हो जाएगा। और तुम्हारे अधिक साधु यही कर रहे हैं। वे दबा रहे हैं, और दबा कर सोचते हैं परमात्मा से मिल सकेंगे। और जिसने जितने रोग दबा लिए उतना ही परमात्मा से दूर हो जाता है।
परमात्मा के निकट तो वही होता है जिसका दमित कुछ भी नहीं है, जो भीतर बिल्कुल खाली है, जिसके अचेतन में कोई रोग नहीं पड़े हैं। वही इस महाविराट उत्सव में सम्मिलित हो पाता है। वही नाच सकता है। उसके ही घूंघर बज सकते हैं। उसके ही ओंठों पर बांसुरी आ जाती है अस्तित्व की। उसके ही जीवन में गीत प्रकट होता है।
तुम तो डरोगे बांसुरी रखते अपने ओंठों पर, क्योंकि तुम जानते हो, भीतर जहर भरा है, वही निकलेगा; तुम गा न सकोगे। तुम गाली ही दे सकते हो। गीत तुमसे निकलेगा कैसे? गीत की स्थिति नहीं है भीतर निकलने की। तुम प्रेम कैसे करोगे? तुम सिर्फ घृणा ही कर सकते हो। तुम वही कर सकते हो जो तुम्हारे भीतर दबा है।
तो तुम्हारा साधु परमात्मा से दूर होता जाता है। जितना दूर होता है उतना वह सोचता है, और जोर से दमन करना है। तब वह अपने भीतर एक नरक को बना लेता है।
मैं साधुओं को जानता हूं। उन्हें निकट से जान कर ही मुझे यह ख्याल आया
कि दुनिया को नए संन्यासी की जरूरत है। पुराना संन्यास सड़ चुका है। उसको

महा रोग लग गया है दमन का। और पुराना संन्यासी आनंदमग्न नहीं है। भला वह मुस्कुराता भी हो तो भी उसकी मुस्कुराहट झूठी है। क्योंकि एकांत में जब वह मुझे मिला है तो उसने अपना दुख रोया है। सभा में जब उसे मैंने देखा है तो वह मुस्कुराता बैठा है। एकांत में वह दुखी है। और एकांत में वह अस्तव्यस्त है, अराजक है। और एकांत में वह समझ नहीं पाता कि क्या हो रहा है। और एकांत में उसकी वही पीड़ाएं हैं जो तुम्हारी हैं। और तुमसे हजार गुनी हैं; क्योंकि तुमने दबाया नहीं है, उसने दबाया है। वह तुमसे बड़ा गृहस्थ है। तुमसे ज्यादा स्त्रियों की आकांक्षा है। तुमसे ज्यादा धन की लोलुपता है। तुमसे ज्यादा उसकी पकड़ है भोग पर। लेकिन उसने दबाया है; वह उसे प्रकट नहीं होने देता। तुमने प्रकट किया है। तुम थोड़े हलके हो। तुम उतने भारी नहीं। तुम शायद परमात्मा के पास पहुंच भी जाओ; तुम्हारा स्वामी, तुम्हारा गुरु, मुश्किल है।
इसलिए मुझे लगा कि एक बिल्कुल नए संन्यासी के अवतरण की जरूरत है, जो जीवन को दमन के मार्ग से नहीं, वरन होश के मार्ग से रूपांतरित करे।
ये जो सूत्र हैं, अब तुम समझने की कोशिश करो। ये होश के सूत्र हैं। क्योंकि बड़ा होश चाहिए, तभी तुम जीवन की समस्याओं के पैदा होने के पहले उनका निवारण कर पाओगे।
"जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है। जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है।"
निवारण तुम कर ही तब पाओगे जब तुम उसको देखने लगो जो होने वाला है, अभी हुआ भी नहीं है; नहीं तो निवारण न कर पाओगे। जो होने वाला है, जो अभी अस्तित्व में आया नहीं है।
भीतर को तुम समझने की कोशिश करो। तुम अगर भीतर का थोड़ा अध्ययन करो तो चीजें बड़ी साफ होने लगें। थोड़ा स्वाध्याय जरूरी है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं वह कोई सिद्धांत नहीं है, वह तुम्हारे स्वाध्याय के लिए सूचनाएं हैं। तुम भीतर देखने की कोशिश करो, किस तरह घटना घटती है, एक विचार कैसे निर्मित होता है। खाली बैठ जाओ, देखो कि विचार कैसे निर्मित होता है, कहां से आता है।
तो पहले तुम पाओगे कि विचार नहीं होता, भाव होता है। सिर्फ भाव। भाव बड़ा धूमिल होता है; साफ नहीं। कोई चीज जैसे होने वाली है; कोई अंकुर फूटने वाला है; लेकिन साफ नहीं--कहां है, कहां से फूट रहा है, क्या हो रहा है। अभी हृदय में है। अभी फीलिंग, भाव के तल पर है। थोड़ी ही देर में भाव के तल से उठेगा और विचार के तल पर आएगा। तब तुम ज्यादा आसानी से पहचान पाओगे कि क्या है, क्या हो रहा है भीतर। फिर जैसे ही विचार के तल पर आ गया, तब वह जिद्द करेगा कृत्य के तल पर जाने की। ये तीन तल हैंः भाव, विचार, कृत्य।
क्रोध पहले भाव में रहेगा; तुम्हें भी साफ नहीं है कि क्या है। फिर विचार बनेगा; तब तुम्हें धीरे-धीरे साफ होगा कि क्या है। अभी दूसरे को बिल्कुल साफ नहीं है। फिर वह कृत्य बनेगा। तब दूसरे को पता चलेगा कि क्या है।
अगर तुम भाव के पहले पकड़ लो तो निवारण कर पाओगे--पूर्व-निवारण।
तब तो बड़ा मुश्किल है। अभी तुम्हारा होश तो विचार पर भी नहीं है। अभी
तो विचार भी बेहोशी में चल रहे हैं। तुमसे कोई अचानक पूछ ले, क्या सोच रहे हो? तो तुम एकदम से जवाब नहीं दे पाते। लोग कहते हैं, कुछ नहीं। उसका कारण क्या है? अगर कोई बैठा है, उससे पूछो, क्या सोच रहे हो? वह पहले ही उसका उत्तर होता है, कुछ भी नहीं सोच रहे, ऐसे ही बैठे हैं।
ऐसे ही कोई बैठ सकता है? सिर्फ बुद्ध बैठते हैं। इतने बुद्ध नहीं हो सकते दुनिया में जितने कुछ नहीं जवाब देने वाले हैं।
नहीं, वह सोच रहा है। उसे पता नहीं है। विचार चल रहे हैं, लेकिन उसे कुछ पता नहीं है। सब अंधेरे में हो रहा है। उससे कहो कि नहीं, जरा आंख बंद करके ठीक से कहो, कुछ तो सोच ही रहे होओगे! तब वह शायद थोड़ी कोशिश करे तो हैरान हो, कुछ नहीं, काफी सोच रहा है। विचार ही विचार चल रहे हैं--अनर्गल, असंगत, बेतुके, किसीशृंखला में नहीं; कुछ कारण नहीं दिखाई पड़ता कि क्यों चल रहे हैं। जैसे आस-पास मक्खियां भिनभिना रही हों, ऐसे तुम्हारे चारों तरफ विचार

भिनभिना रहे हैं। उनकी भिनभिनाहट इतनी ज्यादा है कि तुम धीरे-धीरे उसके आदी हो गए हो, वैसे ही जैसे बाजार में बैठा हुआ आदमी बाजार की भिनभिनाहट का आदी हो जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि चारों तरफ कुछ हो रहा है। पता तो तब चले जब अचानक पूरा बाजार एक सेकेंड के लिए चुप हो जाए। तब उसको एकदम से चौकन्नापन मालूम पड़े कि क्या हो गया!
अगर तुम कार चलाते हो तो इंजन की आवाज तुम्हें पता नहीं चलती, जब तक कि कुछ अंतर न पड़ जाए। अगर आवाज एकदम बंद हो जाए तो तुम्हें पता चलती है, या कोई नई आवाज सम्मिलित हो जाए तो तुम्हें पता चलता है। अन्यथा तुम्हें कुछ पता नहीं चलता। आदी हो जाते हो। विचार के तुम आदी हो। इसलिए कोई अचानक पूछ ले, तुम कहते हो, कुछ नहीं। वह उत्तर ठीक नहीं है। भीतर थोड़ा देखना शुरू करो। पहले विचार के साक्षी बनो। पहचानना शुरू करो कि जो भी चलता है वह जानकारी में चले। बहुत बार चूकोगे। क्योंकि होश को रखना एक सेकेंड से ज्यादा मुश्किल होगा। होश बड़ी कीमती चीज है; इतनी आसानी से नहीं मिलता। आंख खुले होने का नाम होश नहीं है। भीतर क्या चल रहा है, वह दिखाई पड़े, तब होश है। बाहर क्या दिखाई पड़ रहा है, वह होश नहीं है। तो आंख बंद करके अपने विचारों को देखना शुरू करो।
बड़ा अदभुत है विचार का खेल भी, और अगर तुम देख पाओ तो बड़ा मनोरंजक है। भीतर तुम एक बड़ा ड्रामा चला रहे हो; और जिसको तुम्हीं देख सकते हो, कोई दूसरा नहीं देख सकता। बड़ी प्रतिमाएं उठती हैं; बड़ी कहानियां खेली जाती हैं, बड़े नाटक चलते हैं। तुम जरा देखने का अभ्यास बनाओ।
और लड़ो मत। नहीं तो देख न पाओगे। तुम ऐसे ही देखो जैसे फिल्म देखते हो फिल्मगृह में बैठ कर। बस देखो। रस लो एक बात में कि कोई भी चीज बिन देखी न निकल जाए, अनदेखी न निकल जाए, चूक न जाए। जैसे कभी कोई बहुत सेंसेशनल फिल्म तुम देखने जाते हो तब तुम बिल्कुल सीधे बैठते हो, कुर्सी पर टिक कर भी नहीं बैठते, कि टिक कर बैठे कहीं कोई चीज चूक न जाए। तब तुम बिल्कुल आगे झुके रहते हो, तत्पर, कि हर चीज पकड़ में आ जाए; एक शब्द न छूट जाए। या जब तुम कोई ऐसी बात सुनते हो जो बहुत रसपूर्ण है तो तुम ऐसे तत्पर होकर सुनते हो कि एक शब्द भी चूक गया तोशृंखला पकड़ना मुश्किल हो जाएगी, हाथ से धागा निकल जाएगा। ऐसी ही तत्परता से भीतर के विचारों को देखो।
और यह बड़ा ही उपादेय है। इससे बड़े लाभ की कोई घटना जगत में नहीं है। कुछ
और देख कर तुम इतनी कीमती चीज न पा सकोगे जो विचार देख कर पा सकोगे। क्योंकि विचार देखने से तुम्हारा होश प्रगाढ़ होगा, तुम्हारा साक्षी-भाव सघन होगा, तुम्हारा ध्यान ठहरेगा। तुम एक प्रज्ञा की ज्योति भीतर बन जाओगे, जिसमें सब दिखाई पड़ेगा। रोशनी धीरे-धीरे बढ़ेगी और एक-एक विचार पारदर्शी हो जाएगा। जब विचार पारदर्शी होने लगे और तुम हर विचार को देखने लगो, तब तुम्हें धीरे-धीरे विचार के नीचे छिपे हुए भावों की झलक मिलनी शुरू होगी। हर विचार के नीचे भाव छिपा है, जैसे हर वृक्ष के नीचे जड़ें छिपी हैं। वे भूमि के नीचे हैं। जब तुम विचार को ठीक पहचान लोगे तो तुमको भाव मालूम पड़ेगा कि वह पीछे भाव छिपा है।
और जब भाव दिखाई पड़ने लगेगा तब तुम बड़े गहरे लोक में प्रविष्ट हुए। अब तुम्हारी प्रज्ञा निश्चित ही अकंप होने लगी, उसका कंपन मिटने लगा, थिर होने लगी। जिस दिन तुम विचार को भी देखने के बाद भाव को भी देख लोगे... । भाव का अर्थ हैः सिर्फ फीलिंग की दशा; कोई विचार नहीं बना है, सिर्फ एहसास हो रहा है। अभी क्रोध नहीं आया है, सिर्फ एक बेचैनी है, जो प्रकट नहीं है, जो तुम्हें कुछ करने के लिए उकसा रही है। लेकिन अभी साफ नहीं है, कहां जाना है। अभी काम का विचार नहीं उठा है, लेकिन कामवासना शरीर में बह रही है, शरीर को धक्के दे रही है कि विचार को बनाओ। वह विचार के तल पर आना चाहती है।
ऐसे ही जैसे पानी में बबूला उठता है। तो देखो तुम, बबूला नीचे से उठता है। छिपा था, पानी के नीचे पड़ी मिट्टी में पड़ा था। वहां से उठता है। धीरे- धीरे, धीरे-धीरे जैसे-जैसे ऊपर आता है, बड़ा होने लगता है, क्योंकि पानी का दबाव कम होने लगता है। दबाव कम होता है, बबूला बड़ा होता है। फिर आ जाता है बिल्कुल सतह पर। जब बिल्कुल सतह पर आने लगता है तब तुम्हें दिखाई पड़ता है।

और जब बिल्कुल सतह पर आकर बबूला बैठ जाता है तब तुम्हें ठीक से दिखाई पड़ता है।
यह जो बिल्कुल सतह पर आ जाना है यह कृत्य है, एक्ट। मध्य में होना विचार है। वहां पानी में जमीन की पर्त के नीचे छिपा होना भाव है। और जिस दिन तुम भाव को देख लोगे उस दिन एक अनूठी घटना घटती है--तुम अपने संबंध में भविष्यद्रष्टा हो जाओगे। क्योंकि भाव के आने के पहले तुम्हारे भीतर बीज आता है। वह बीज सदा बाहर से आता है। क्योंकि पानी के नीचे बबूला छिपा था; उसके पहले हवा आनी चाहिए जमीन में, अन्यथा कहां से बबूला छिपेगा? तो भाव को जागने के बाद तुम फिर देख सकते हो कि कौन सा भाव आने वाला है। वह सबसे सूक्ष्म दशा है मन की, अति सूक्ष्म, जहां तुम भविष्यद्रष्टा हो जाते हो, जहां तुम अपने बाबत भविष्यवाणी कर सकते हो कि अब यह होने वाला है, कि आज सांझ मैं क्रोध करूंगा, कि क्रोध का भाव दोपहर होते-होते घना होगा, बीज पड़ गया है।
और जिस दिन तुम इतने सूक्ष्मदर्शी हो जाते हो कि तुम भविष्य को देख लो
कि कल क्या होने वाला है, उसी दिन लाओत्से का सूत्र तुम्हारे काम का होगा। निवारण हो सकता है भाव बनने के पहले। क्योंकि भाव है जड़। और भाव के जो पूर्व है, जिसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं; क्योंकि कोई उतना सूक्ष्म दर्शन नहीं करता; या जो करते हैं वे कभी इतने अकेले होते हैं करने वाले कि किसी को बताने का उपाय नहीं, दूसरा उनको समझता भी नहीं। जो प्रि-फीलिंग स्टेट है, भाव-पूर्व दशा है, वह बीज है। और वह बीज सदा बाहर से आता है। विचार बाहर से आते हैं; भाव बाहर से आते हैं; बीज बाहर से आता है। सब बाहर से आता है। और उस बाहर से आए में तुम ग्रसित हो जाते हो। जिस दिन तुम यह सब देख लोगे और तुम्हारा द्रष्टा परिपूर्ण हो जाएगा, उस दिन निवारण। उस दिन तुम आने के पहले ही द्वार बंद कर दोगे। उस दिन तुम्हारे जीवन में कोई उत्पात न रह जाएगा।
"जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है। जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है। दैट व्हिच लाइज स्टिल, इ.ज इजी टु होल्ड। दैट व्हिच इ.ज नाट यट मैनीफेस्ट, इ.ज इजी टु फोरस्टाल।"
यट नाट मेनीफेस्ट, जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ, उसे बदल देना बिल्कुल हाथ
की बात है। इस संबंध में तुम्हें मैं कुछ कहूं, कोई समानांतर दृष्टांत, जिससे तुम्हें समझ में आ जाए।
रूस में किर्लियान ने एक नए किस्म की फोटोग्राफी विकसित की है। और वह
है बीमारी को अप्रकट अवस्था में पकड़ने के लिए। एक आदमी आज से छह महीने बाद कैंसर का मरीज होगा, तो कोई भी चिकित्सक अभी नहीं पकड़ सकता। क्योंकि शरीर में अभी कहीं भी कोई छाप नहीं पड़ी है। मनोवैज्ञानिक भी नहीं पकड़ सकता, क्योंकि अभी मन में भी कोई छाप नहीं पड़ी है। किर्लियान पकड़ लेता है।
उसने इतनी सूक्ष्म फोटोग्राफिक प्लेटें तैयार की हैं, इतनी संवेदनशील,
कि वह शरीर और मन से भी जो गहरा है, जिसको आध्यात्मिक लोग ऑरा कहते रहे हैं, शरीर का आभामंडल, शरीर का इलेक्ट्रिक फील्ड, उसमें पकड़ता है वह। जैसे अगर यह मेरे हाथ की अंगुली छह महीने बाद बीमार होने वाली है तो इस अंगुली के आस-पास विद्युत का एक क्षेत्र है जो अभी बीमार हो गया है। पहले विद्युत के क्षेत्र में बीमारी प्रवेश करती है; फिर उस क्षेत्र के माध्यम से वह मन में आती है। फिर मन के माध्यम से वह शरीर तक आती है। भाव, विचार, कृत्य; विद्युत-क्षेत्र, मन, शरीर। छह महीने पूर्व किर्लियान पकड़ लेता है। और वह कहता है, अभी इलाज कर लिया जाए तो यह बीमारी कभी न आएगी। और अभी इलाज बिल्कुल आसान है, क्योंकि अभी कुछ नहीं करना है। अभी इस व्यक्ति के विद्युत-क्षेत्र को ठीक करना है, जो कि कई साधनों से किया जाता रहा है। चीन में एक्युपंचर के द्वारा किया जाता रहा है।
किर्लियान की फोटोग्राफी ने पांच हजार साल पुराने एक्युपंचर को बड़ी महिमा दे दी। लोग समझते थे, यह तो सिर्फ पूर्वीय लोगों की कल्पना है। एक्युपंचर बड़ा वैज्ञानिक सिद्ध हुआ। और पांच हजार साल पुराना है। और एक्युपंचर का जन्म तभी हुआ जब ताओ की विचारधारा गहन हो रही थी। वह ताओ का ही अंग है। एक्युपंचर ताओ का अंग है, जैसे भारत में आयुर्वेद योग का अंग है।

ताओ की जो साधना-पद्धति है उसी साधना-पद्धति का हिस्सा है एक्युपंचर। लाओत्से के ये वचन ही उसका आधार हैं कि पूर्व-निवारण कर लो। इस विचार का ही नियोजन शरीर की बीमारी के लिए है--कि बीमारी जब आ जाए तब लड़ना बहुत मुश्किल, और जब शरीर तक आ जाए तो हटाना बहुत कठिन और असाध्य, लेकिन अगर प्राथमिक चरण में ही मुक्त कर ली जाए बीमारी... ।
तो एक्युपंचर क्या करता है? एक्युपंचर सिर्फ शरीर का जो विद्युत-क्षेत्र है, जो इलेक्ट्रिक फील्ड है, उसको बदलता है। एक्युपंचर ने सात सौ बिंदु खोजे हैं शरीर में जहां से बदलाहट की जा सकती है। और उन बिंदुओं पर एक्युपंचर सिर्फ सूई को चुभा देता है, जरा सी गर्म की हुई सूई चुभा दी जाती है। उस गर्म सूई के कारण उस स्थान पर जहां कि छेद पड़ रहा था विद्युत के फील्ड में, विद्युत के क्षेत्र में, उस सूई के कारण विद्युत की धारा बदल जाती है। उस धारा के परिवर्तन से, जो बीमारी होने वाली थी, वह ठीक हो जाती है।
अब यह बात काल्पनिक रहेगी। काल्पनिक इसलिए रहेगी, क्योंकि यह बीमारी अप्रकट थी। अभी तो बीमार को भी पता नहीं था; अभी तो चिकित्सक भी मानने को राजी नहीं था कि इसको कोई बीमारी है। सिर्फ एक्युपंचरिस्ट, जिनकी कि सारी की सारी दीक्षा बड़ी सूक्ष्म आंखों को जन्माने की है, जो कि शरीर के पास विद्युत को देखने की कोशिश करते हैं। इसलिए एक्युपंचर की ट्रेनिंग बड़ी दुस्साध्य है। दस-बीस साल, पच्चीस साल, फिर भी पक्का नहीं। क्योंकि आपकी आंखों और ध्यान की गति पर निर्भर करेगी कि आप शरीर के आस-पास विद्युत को देखना शुरू कर दें। यह जो किर्लियान है, इसने काम आसान कर दिया। कैमरा पकड़ कर बता देता है। कैमरे में फोटो आ जाता है पूरे शरीर का; शरीर के आस-पास विद्युत की रेखाएं आ जाती हैं। और जहां-जहां रेखाएं छिन्न-भिन्न हैं, टूटी- फूटी हैं, वहीं कोई बीमारी प्रकट होने वाली है। उस विद्युत-क्षेत्र को ठीक कर दिया जाए, बीमारी कभी प्रकट न होगी।
अब इसमें एक अड़चन है। अगर बीमारी प्रकट न हो तो क्या पक्का कि होने वाली थी या नहीं? अगर प्रकट हो तो साफ है कि एक्युपंचर वाले लोग गलत बातें कह रहे थे। अगर वे सफल हो जाएं तो साफ है कि बकवास है, क्योंकि बीमारी हुई नहीं। होने वाली थी, इसका क्या पक्का?
लेकिन किर्लियान की फोटोग्राफी से बड़ी चीजें साफ हो गईं। अब तो प्लेट
को वैसे ही देखा जा सकता है जैसे कि एक्स-रे की प्लेट को चिकित्सक देखता है। जैसे एक्स-रे की प्लेट हर बड़े अस्पताल में जरूरी हो गई, आने वाले दस वर्षों में किर्लियान के यंत्र हर अस्पताल में जरूरी हो जाएंगे। तब उचित यह होगा कि बजाय बीमार पड़ने के, पहले ही आप चले जाएं, हर महीने चेक-अप करवा लें कि कहीं कोई गड़बड़ की शुरुआत तो नहीं है।
और उसको वहीं ठीक किया जा सकता है बड़ी आसानी से। क्योंकि मूल में चीजें बड़ी छोटी होती हैं। गंगोत्री बड़ी छोटी है, गौमुख से गिरती है, जरा सा झरना है। बूंद-बूंद पानी रिसता है। वहां कोई भी बदलाहट करनी हो, आसान है। हरिद्वार में कठिनाई होगी। प्रयाग में बहुत मुश्किल। बनारस तो असंभव। बनारस में तो असाध्य हो गया रोग आकर। अब कुछ नहीं किया जा सकता। अब करने का कोई उपाय न रहा। तुम क्यों बनारस के लिए रुके हो जब कि गंगोत्री में ही चिकित्सा हो सकती है?
जैसा शरीर के संबंध में सत्य है वैसा ही आत्मा के संबंध में भी सत्य है। तुम अपने भीतर अंतस-जीवन को उसी समय हल कर लेना जब कि चीजें होने वाली थीं, हुई नहीं थीं; आने वाली थीं, आई नहीं थीं। तुम भविष्य का निवारण आज ही कर लेना। पर इस निवारण के लिए तुम्हारा बहुत प्रगाढ़ होशपूर्ण, जागरूक होना जरूरी है।
"जो बर्फ की तरह तुनुक है, वह आसानी से पिघलता है। जो अत्यंत लघु है, वह आसानी से बिखरता है।"
किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो। परिपक्व होने के पहले ही उपद्रव को रोक दो।

"जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है। नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है। हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है।"
बहुत चल लेने के बाद बदलना मुश्किल हो जाता है। चलने के पहले बहुत सोच
कर चलना, ताकि पहले कदम पर ही चीजें ठीक रखी जा सकें। मकान बनाने के पहले ही ठीक से सोच लेना, ताकि नींव ठीक से भरी जा सके। वहां रह गई भूल सदा पीछा करेगी। लौट कर सुधारना बहुत कठिन हो जाता है। कुछ चीजें तो लौट कर सुधारी ही नहीं जा सकतीं। और तुम्हारे जीवन की यही विपदा है कि तुम हजार-हजार यात्राएं चल लिए हो। पहले कदम पर बेहोशी में चले, अब सुधारने की इच्छा होती है। डरते हो तुम खुद ही, कैसे सुधरेगा?
सुधर सकता है। कितना ही कठिन हो, असंभव नहीं है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी भी ज्यादा देर नहीं हो गई है। समय हाथ में है। और अभी भी अगर जाग जाओ तो कुछ भी खोया नहीं है। जब जाग गए तभी भोर, जब जाग गए तभी सुबह।
लेकिन अब एक-एक सूत्र को ठीक-ठीक से समझ कर कदम रखना है। आज से एक बात का ख्याल रखोः टालो मत। जो समस्या आए उसे निबटाने की कोशिश करो। मत कहो, कल निबटा लेंगे। अगर पत्नी पर क्रोध आया है तो बैठ कर उससे अभी बात कर लो। अभी गंगोत्री में है। अभी चीजें बड़ी सरल हैं। अभी क्रोध में दंश नहीं है, जहर नहीं है। अभी क्रोध सिर्फ एक भाव-दशा है। उससे कह दो कि मैं क्रोधित अनुभव कर रहा हूं। कारण बता दो। बीच बातचीत कर लो। अभी तुम इतने क्रोधित नहीं हो; बातचीत हो सकती है। क्रोध में कहीं बातचीत होती है? फिर तो झगड़ा ही होता है। फिर तो विवाद हो सकता है; चर्चा तो नहीं हो सकती। अभी क्रोध की पहली झलक आई है, पहला धुआं उठा है। अभी बैठ जाओ। हजार जरूरी काम हों, छोड़ दो। इससे ज्यादा जरूरी कुछ भी नहीं है। बैठ कर बात कर लो। मत कहो कि सांझ को कर लेंगे, कि कल कर लेंगे, और कौन जानता है, आई हवा है, चली जाए, बिना ही किए निकल जाए। बिना किए कुछ भी नहीं निकलता। सब अटका रह जाता है।
अगर तुम गंगोत्री में पकड़ने में कुशल हो जाओ, तुम पाओगे, चीजें इतनी सरल हो गईं, इतनी हलकी हो गईं कि समस्या बनती नहीं। अगर मन में लोभ जगा है तो उसे पड़ा मत रहने दो, आंख बंद करके बैठ जाओ, अपने लोभ को पूरा उठा कर देख लो। जो धीरे-धीरे अपने आप उठेगा उसे तुम खुद ही खींच कर निकाल लो बाहर, अप्रकट से प्रकट में ले आओ। जो वृक्ष वर्षों में बड़ा होगा, तुम जादू का काम कर सकते हो।
तुमने जादूगर देखे? आम की गुठली को छिपा देते हैं टोकरी के नीचे; जंतर-मंतर पढ़ते हैं; टोकरी उठाते हैं--पौधा हो गया। फिर टोकरी रख दी; फिर जंतर-मंतर पढ़ा; फिर थोड़ा डमरू बजाया, फिर टोकरी उठाई--झाड़ बड़ा हो रहा है। फिर टोकरी ढांकी; फिर जंतर-मंतर पढ़ा; फिर डमरू बजाया; फिर उठाया--झाड़ में फल लग गए हैं। फिर टोकरी रखी; फिर जादू किया; टोकरी उठाई--फल पक गए हैं। फल तोड़ कर वे तुम्हें दे देते हैं। यह तो सब हाथ की सफाई है। लेकिन तुम अपने भीतर यह बिल्कुल कर सकते हो। यह जंतर-मंतर करो।
लोभ उठता हो, टालो मत। बैठे जाओ; अंधेरा कर लो कमरा; दरवाजे-द्वार बंद
कर दो; टोकरी में ढंक जाओ; फेंको जंतर-मंतर, कहो कि बड़ा हो! और भीतर कोई दिक्कत नहीं है; कहो कि बड़ा हो, बड़ा हो जाता है। कहो कि क्रोध बड़ा हो, लोभ बड़ा हो, तुझे मैं पूरा देख लेना चाहता हूं। कल तू अपने आप बढ़ेगा, अभी बढ़ जा! क्या-क्या चाहता है? महल चाहता है? साम्राज्य चाहता है? क्या चाहता है? अभी बोल दे सब! अभी खोल दे सब! कल के लिए क्या रुकना? क्रोध को पूरा उठा लो। क्रोध बड़ी प्रसन्नता से बढ़ेगा; झाड़ बड़ा होगा; जल्दी फल लग जाएंगे; पक जाएंगे। तुम सिकंदर हो गए। सारी दुनिया का राज्य तुम्हारा है। इसको देख लो। इसको पूरा उठा लो। इसको पूरा पहचान लो। और पूरे वक्त होश रखो कि कैसा खेल मन खेल रहा है!
जो असफलता सिकंदर को जीवन के बाद में दिखाई पड़ी वह तुम्हें घड़ी भर में दिखाई पड़ जाएगी कि पा भी लिया दुनिया का राज्य तो क्या होगा? मिल गई सारी संपदा, क्या होगा? क्या करोगे? खाओगे संपदा को? पीओगे संपदा को? और इसे पाने में पूरा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकंदर को मरते वक्त लगा कि मेरे हाथ खाली हैं। तुम घड़ी भर ध्यान करके लोभ को पूरा बढ़ा लो, फल तक पहुंचा दो;

सिकंदर हो जाओ; जीत लो सारी दुनिया। न कोई हत्या करनी पड़ती, न कोई हिंसा करनी पड़ती, न कहीं जाना पड़ता। सिर्फ जादू का एक खेल करना है। जो सिकंदर को आखिरी वक्त जीवन गंवा कर लगा कि मेरे हाथ खाली हैं, वह तुम्हें इस छोटे से खेल में ही लग जाएगा कि हाथ खाली हैं। हाथ खाली हैं; यह दौड़ व्यर्थ है। और यह दौड़ व्यर्थ हो जाए तो तुमने आने वाले को रोक दिया, तुमने होने वाले को बदल दिया।
कुछ भी हो भीतर की समस्या, देर मत करो। बीज मत बनाओ। समय मत दो। बढ़ने का मौका मत दो। अभी बढ़ा लो, देख लो। इसी को आत्म-निरीक्षण कहते हैं। और आत्म-निरीक्षण करने में तुम्हारी दोहरी क्षमता बढ़ेगी। एक तरफ लोभ की व्यर्थता सिद्ध हो जाएगी, निरीक्षण करते-करते तुम्हारा होश भी सिद्ध होगा। ये दोहरे फायदे होंगे। हर समस्या को तुम सीढ़ी बना सकते हो। अगर देर न करो, तो हर समस्या तुम्हें जीवन में परिपक्वता लाने का साधन बन सकती है। समस्या है ही इसीलिए कि तुम उसे सुलझाओ। क्योंकि सुलझाने से तुम बढ़ोगे, प्रौढ़ होओगे। सुलझाने से तुम मजबूत होओगे। समस्या को टालो मत। पलायन मत करो। एक बात। पिछली समस्याओं को, जिनको टाल दिया है, पलायन करते रहे हो, उनसे लड़ो मत। उनको भी मन में फैलने का मौका दो। तुम बैठ जाओ नदी के किनारे और बहने दो तुम्हारी समस्याओं की धार को। तुम साक्षी, उपेक्षा से भरे, उदासीन, देखते रहो। न इस तरफ, न उस तरफ; न पक्ष में, न विपक्ष में। कामवासना की धारा बहती है, बहने दो। तुम किनारे पर बैठे हो; कुछ लेना-देना नहीं है। न तुम पक्ष में हो, न तुम विपक्ष में हो। न तुम संसारी हो और न तुम साधु हो। यही मेरे संन्यास का अर्थ है कि न तुम संसारी हो और न तुम साधु हो। न तुम भोगी हो, न तुम त्यागी हो। तुम दोनों पक्ष में नहीं हो।
कबीर कहते हैं, पखापखी के पेखने सब जगत भुलाना। पक्ष-विपक्ष के उपद्रव में सारा जगत भूला है।
तुम न पक्ष में, न विपक्ष में। तुम बैठ गए। तुम देख रहे हो। तुम कहो कि आओ, जो जो है। बनने दो रूप। घबड़ाओ मत। मन अगर सुंदर स्त्रियों को भोगने लगे, भोगने दो। तुम इतना ही ख्याल रखो कि तुम पार बैठे देख रहे हो। तुम कुछ भी मत करो। कृत्य किया कि भूल हुई, कि तुमने तलवार उठा ली, कि तुमने कहा मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लिए बैठा हूं, यह क्या हो रहा है। कृत्य किया कि भूल हुई। लड़े कि चूके। लड़े कि हार की बुनियाद रखी। तुम तलवार मत उठाना। तुम बस दोनों हाथ बांध कर बैठ जाना। इसीलिए तो बुद्ध, महावीर, सब दोनों हाथ बांधे बैठे हैं। नहीं तो भूल से हाथ उठ जाए। तुम दोनों हाथ बांध कर बैठ जाना। शरीर को हिलाना-डुलाना नहीं। भीतर कृत्य को हिलाना-डुलाना नहीं। और जो भी मन चाहता हो वह उसे करने देना। भोगने देना स्वर्ग की अप्सराओं को; कुछ हर्जा नहीं है, भोग लेने दो। कुछ बिगड़ भी नहीं रहा; नाटक है, हो लेने दो। तुम्हारा क्या लेना-देना है?
शरीर में छिपे वासना के कण हैं; मन में छिपी वासना की आकांक्षा है; शरीर
और मन का खेल है। शरीर की मंच है; मन के अभिनेता हैं। तुम तो केवल साक्षी हो, तुम तो केवल दर्शक हो। तुम्हें उठ कर मंच पर जाने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सम्मिलित होने की कोई जरूरत नहीं है। तुम तो बैठे रहो। थोड़ी देर में खेल बंद होगा, तुम अपने घर चले जाओगे। यह तुम्हारा घर नहीं है। न तुम अभिनेता हो और न तुम मंच हो। शरीर मंच है। शरीर में छिपी हुई बायोलाजी की भूख है, जो काम बनती है, क्रोध बनती है, लोभ बनती है। फिर मन इस सारी शरीर में छिपी हुई भूख को रूप देता है, विचार देता है, रंग देता है, ढंग देता है, कहानी को लिखता है। स्क्रिप्ट मन की है; मन अभिनेता देता है। तुम नाहक ही बीच में आ जाते हो।
तुम बीच में मत आओ। तुम दूरी कायम रखो और देखते रहो। और तब तुम बड़े प्रसन्न होओगे। मन में जैसा नाटक चलता है ऐसा नाटक कहीं भी नहीं चलता। मनोरम है, मनोरंजक है। और मुफ्त है। कहीं जाना नहीं। किसी टिकट-घर के सामने कतार लगा कर खड़े होना नहीं। जब आंख बंद की तब खेल चल ही रहा है। और तुम जितने शांत होकर बैठोगे, खेल उतना रंगीन हो जाएगा। पहले हो सकता है, शुरू-शुरू में नाटक ब्लैक एंड व्हाइट में हो, पुराने किस्म की फिल्म चले। जल्दी ही मल्टीकलर, अनेक रंग, बहुविध रंग प्रकट होंगे--अगर तुम बैठे रहो। पहले

सांसारिक खेल चलेगा। अगर तुम बैठे रहे, जल्दी ही सांसारिक खेल गिर जाएंगे और जिनको आध्यात्मिक खेल कहते हैं, वे चलने शुरू होंगे। कुंडलिनी जग रही है; प्रकाश दिखाई पड़ रहा है; राम खड़े हैं धनुष लिए; कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं; जीसस सूली पर लटके हैं--ये आध्यात्मिक नाटक हैं। ये भी नाटक ही हैं। इनका भी सारा का सारा खेल मन का ही है। और इनकी मंच भी शरीर है। तुम इनको भी देखते रहो। जैसे संसार बीत गया, ऐसे यह खेल भी बीत जाएगा। तुम देखते ही रहो। तुम दर्शक से ज्यादा इंच भर कुछ और मत बनना।
बड़ा कठिन है। कई बार एकदम दिल हो जाएगा, अरे कूद पड़ो बीच में। कई बार तुम पाओगे कि भूल ही गए और कूद पड़े। जैसे ही पाओ कि कूद पड़े, फिर वापस अपनी कुर्सी पर लौट आना और बैठ जाना। कई बार यह भूल होगी। पुरानी आदत है। इसमें भी कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं। जब भूल गए, भूल गए; अब क्या करना। जब याद आ गई, वापस लौट कर फिर बैठ कर देखने लगे। पहले संसार गुजरेगा, फिर अध्यात्म गुजरेगा।
संसार से तो बच जाना बहुत आसान है, अध्यात्म से बचना बहुत कठिन है। क्योंकि वह और भी मनोरंजक है। बहुरंग है; उसके रंग संसार में दिखाई ही नहीं पड़ते। तुमने नीला रंग देखा है, लेकिन वह कुछ भी नहीं है। जिस दिन तुम्हारे भीतर नील तारा दिखाई पड़ेगा, जब तुम अपने ही तीसरे नेत्र में देखोगे कि नील तारा प्रकट हो रहा है, वह नीलिमा अलौकिक है। उसमें तुम तरोबोर हो जाओगे, उसमें तुम डूब जाओगे, उसमें तुम भूल जाओगे कि तुम दर्शक हो, अपनी कुर्सी पर बैठे रहो। तुम भोगी बन जाओगे। क्योंकि कुछ भी नहीं है अप्सराओं में, और कुछ भी नहीं है धन-तिजोरी में, जब भीतर के सूक्ष्म रंग प्रकट होते हैं। और वे उसी के सामने प्रकट होते हैं जो संसार को बिता दे। संसार में जो उलझ गया उसके सामने वे प्रकट होने का मौका ही नहीं आता। जिसने सांसारिक चित्रों को बीत जाने दिया उसके सामने आध्यात्मिक चित्र आने शुरू होते हैं।
वह अच्छा लक्षण है। वह बताता है कि तुम थोड़े शांत हुए हो, तुम थोड़ी देर कुर्सी में बैठे रहे हो, तुम थोड़ी देर उछल-उछल कर मंच पर नहीं पहुंचे हो। इसलिए अब ये रंग आने शुरू हुए। और जब तुम पाओगे भीतर के रंग--बड़े अनूठे। हर चीज अलौकिक हो जाती है। ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं, जो कि बड़े-बड़े संगीतज्ञ पैदा नहीं कर सकते। बड़े से बड़ा संगीतज्ञ जो कर सकता है वह भी उन ध्वनियों की प्रतिध्वनि मालूम होगी। चांद-तारे हजार-हजार, सूरज करोड़ों! बड़ा अनूठा लोक प्रकट होता है।
तुम जैसे-जैसे शांत होते हो, वैसे-वैसे बड़े अनूठे रूप-रंग की दुनिया प्रकट होती है। और वह इतनी वास्तविक मालूम होती है कि यह संसार माया मालूम पड़ेगा। जिसने भीतर का नील तारा देख लिया उसे सब जगत के नीले रंग बस जस्ट फीके-फीके मालूम पड़ेंगे, उसकी ही कुछ छाप, वह भी धुंधली-धुंधली, कार्बन कापी। जिसने भीतर की सुंदर अप्सरा देख ली, उसे बाहर की सब स्त्रियां फीकी- फीकी मालूम पड़ेंगी, उजड़ी-उजड़ी, खंडहर। जिसने भीतर के धन की झलक पा ली, सब तिजोरियां खाली मालूम पड़ेंगी।
लेकिन ध्यान रखना कि वह भी अभी बाहर है; सब दृश्य बाहर हैं। भीतर तो केवल द्रष्टा है। तो इनको भी गुजर जाने देना। बहुत से संसार में उलझे हैं; बहुत से अध्यात्म में उलझ जाते हैं। मेरे पास वे अध्यात्म में उलझे वाले लोग आते हैं। वे मुझसे चाहते हैं, मैं उनकी गवाही दूं।
अब मेरी बड़ी मुश्किल है। अगर मैं उनको कहूं कि हां, बड़ा गजब का काम हो रहा है, तो उसमें उलझते हैं और। अगर उनको कहूं कि इसकी फिक्र न करो, तो वे उदास होते हैं। वे कहते हैं कि मैं सहायता नहीं दे रहा, उलटा उनको उदास कर रहा हूं। हम बड़ी आशा से आए थे। अगर मैं उनको कहूं कि ये नील तारे, ये सूरज हजार-हजार, ये सब भी कल्पनाएं हैं; यह तुम्हारे कृष्ण बंसी बजाते हुए, यह भी तुम्हारे मन का खेल है; ये तुम्हारे बुद्ध, महावीर, ये तुम्हीं बना रहे हो, यह आखिरी मन का भुलावा है; तो उनको पीड़ा होती है कि उनके कृष्ण को मैं कह रहा हूं कि यह मन की कल्पना है। और वे बड़ी मुश्किल से पा सके हैं इसको, और मैं उनसे यह भी छीने ले रहा हूं।
तो या तो वे भाग ही खड़े होते हैं; फिर दोबारा लौट कर नहीं आते; कि ऐसे आदमी के पास क्या जाना! वे तो उन आदमियों की तलाश करते हैं जो कहते हैं, गजब

हो गया! तुम तो सिद्ध पुरुष हो गए; तुमने तो पा लिया। यही तो असली रहस्य है। यही तो अध्यात्म है।
नहीं, न तो यह असली रहस्य है और न असली अध्यात्म है। यह भी मन का ही खेल है। मन जब देखता है कि तुम संसार में नहीं उलझाए जा रहे जो मन नई लालच फेंकता है। मन कहता, पुराना लोभ गया, कोई फिक्र नहीं। तुमने मदारी की ट्रिक पकड़ ली, मदारी कहता है, रुको, हम दूसरी दिखाते हैं; इससे भी बढ़िया। यह तो कुछ भी नहीं, यह तो हमने ऐसे ही दिखा दी थी। मन मदारी है। और मन आखिरी तक दिखाएगा। और होश को तुम्हें सम्हाले जाना है।
एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम नहीं थकते होश से और मन दिखाने से थक जाता है।
बस उसी घड़ी क्रांति घटित होती है। फिर मन का मदारी अपनी टोकरी, अपना सामान और अपने जमूरे को लेकर कहता है, चल बेटा! वह चल पड़ा। वह तुम्हें छोड़ गया।
नाटक बंद हुआ। मंच खो गई। तुम अकेले रह गए अपनी कुर्सी पर।
उसी को महावीर ने सिद्धशिला कहा है; कुछ भी न बचा, अकेले बैठे रह गए।
वही बैठक सिद्धि है। अब कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अब बस देखने वाला है। अब कोई आब्जेक्ट न रहा, सिर्फ सब्जेक्टिविटी है। अब सिर्फ आत्मा बची, अनुभव न बचा।
इसलिए तो कबीर कहते हैंः शून्य मरे, अजपा मरे, अनहद हू मरि जाए।
शून्य भी मर जाता है। क्योंकि शून्य भी अनुभव है। अगर तुम कहते हो कि मुझे शून्य का अनुभव हो रहा है, यह भी मन का ही नाटक है। अनुभव मात्र मन का है। एक्सपीरिएंस ऐज सच इ.ज ऑफ दि माइंड। जब सब अनुभव चला जाता है। शून्य मरे, अजपा मरे, अनहद हू मरि जाए।
कुछ भी नहीं बचता, वही वास्तविक शून्य है। जहां कोई अनुभव नहीं बचता, वही वास्तविक शून्य है। जहां तुम यह भी नहीं कह सकते कि मुझे शून्य का अनुभव हो रहा है। कुछ बचा ही नहीं; अनुभव किसका? सिर्फ अनुभोक्ता रह गया-- अपनी परम महिमा में, अपनी परम ऊर्जा में प्रतिष्ठित। सब खो गया। नाटक बंद हुआ। तुम अपने घर आ गए। यह घर लौट आना मोक्ष है।
इसलिए लाओत्से कहता है, "किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो।"
यही निपटना है। मन में सब सूक्ष्म बीज छिपे हैं। तुम उनसे निपट लो। उनको प्रकट हो जाने दो मन में; कृत्य मत बनाओ उन्हें। कृत्य बनते ही कर्म का जाल शुरू होता है। मन में प्रकट होने दो। तुम उन्हें देखो और साक्षी बन जाओ।
"परिपक्व होने के पहले उपद्रव को रोक दो। जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है।"
मिटाना हो तो नन्हे अंकुर को मिटा दो। बड़े वृक्ष को मिटाना मुश्किल हो जाएगा। फिर जिसे मिटाना ही है उसे बड़ा क्यों करना? फिर जिससे पार ही होना है उसे सींचना क्यों? फिर जिससे दूर ही जाना है उससे लगाव क्यों बनाना? फिर जिससे मुक्त ही होना है उससे किसी तरह का मोह क्यों बसाना? जब इस जगह से हट ही जाना है, तो इसे धर्मशाला ही समझो, घर क्या बना लेना? पड़ाव को मंजिल मत बनाओ। इसके पहले कि पड़ाव मंजिल बने, हट जाओ। इसके पहले कि कोई चीज तुम्हें पकड़ ले, इसके पहले कि तुम जकड़ जाओ, तभी सावधान हो जाओ।
"नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है। हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है। ए जर्नी ऑफ ए थाउजैंड ली बिगिन्स एट वंस फीट।"
लाओत्से के प्रसिद्धतम वचनों में से एक यह है।
कथा है--पुरानी चीनी कथा है--कि एक आदमी बहुत वर्षों से सोचता था कि पास
के पहाड़ पर एक तीर्थ स्थान था, उसकी यात्रा को जाना है। लेकिन दूरी थी। कोई बीस मील दूर था। तो सुबह लोग बड़ी जल्दी जाते थे; दो बजे रात निकल जाते थे, ताकि ठंडे-ठंडे पहुंच जाएं। पैदल जाना ही एकमात्र उपाय था उस पहाड़ पर। वह टालता रहा था बहुत दिन तक। दूर-दूर से यात्री उसके गांव से गुजरते थे। आखिर उससे न रहा गया। एक दिन उसने तय ही कर लिया। उसने पुराने यात्रियों से पूछा कि साज-सामान क्या ले जाना पड़ेगा? उन्होंने और सब सामान भी बताया और कहा कि एक लालटेन भी ले जाना। क्योंकि रात दो बजे अंधेरा होता है। रास्ता बीहड़ है। रोशनी के बिना चलना खतरनाक है। अनेक लोग गिर गए हैं और मर गए हैं।

तो वह आदमी रात दो बजे उठा। उसने लालटेन जलाई। वह गांव के बाहर आया। वह बड़ा गणितज्ञ रहा होगा। बड़े हिसाब-किताब का आदमी था। उसने गांव के बाहर आकर देखा लालटेन को, कितनी दूर तक रोशनी पड़ती है? मुश्किल से कोई दस कदम रोशनी पड़ती थी। उसने कहा, दस कदम रोशनी पड़ती है और बीस मील का रास्ता है। मारे गए। अंधेरा बहुत, रोशनी कम। गणित साफ है। दस कदम रोशनी पड़ती है; बीस मील का रास्ता है। कैसे पार होगा? वह वहीं बैठ गया, कि क्या करना? लौटना भी शोभा नहीं देता, बामुश्किल तो निकले घर से। कई वर्षों से सोचा, चर्चा की, आखिर घर के लोग भी ऊब गए थे उससे कि जाना हो तो जाओ भी, बातचीत क्या लगा रखी है! तो वह बैठ गया।
एक फकीर और यात्रा पर आ रहा था। उसके पास और भी छोटी लालटेन थी। उसने उस फकीर को रोका कि रुको, झंझट में पड़ोगे। हम पर बड़ी लालटेन है; दस कदम तक रोशनी पड़ती है। तुम ऐसी लालटेन लिए हो कि मुश्किल से चार कदम दिखाई पड़ रहा है। कैसे पहुंचोगे? बीस मील की यात्रा है!
वह फकीर खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, पागल, अगर एक कदम रोशनी पड़ जाए तो काफी है। क्योंकि एक कदम से ज्यादा कोई चलता कहां है! और एक कदम रोशनी से तो लोग हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेते हैं। बस उतनी रोशनी काफी है, एक कदम दिख जाए। तुम एक कदम चल लिए, फिर एक कदम और दिखने लगा, तुम एक कदम और चल लिए। दो कदम तो कोई भी एक साथ चल नहीं सकता।
उस गणितज्ञ ने कहा, तुम मुझे समझाने की कोशिश मत करो। गणित में मैं निष्णात हूं। साफ बात है कि दस मील में दस कदम का भाग दो। इस तरह तुम मुझे धोखा न दे सकोगे। और मैं कोई श्रद्धालु आदमी नहीं हूं, तर्कनिष्ठ आदमी हूं। लाओत्से कहता है कि वह आदमी कभी भी यात्रा पर न जा पाएगा। एक कदम से हजार मील की यात्रा शुरू होती है; एक कदम से ही पूरी भी हो जाती है। इसलिए तो लाओत्से इसको कहता है, आरंभ और अंत। बिगनिंग एंड एंड। पहले कदम पर ही यात्रा की शुरुआत है और पहले कदम पर ही यात्रा का अंत है।
पहला कदम क्या है? कि तुम समस्याओं को उनके आने के पहले निवारण कर लो; यही प्रथम, यही अंतिम है। इतना तुमने कर लिया, सब हो गया। इतना तुमने साध लिया, सब सध गया। एक कदम तुम साध लो--गंगोत्री का, प्रथम चरण का--फिर कुछ उलझता नहीं। चीजें सुलझती चली जाती हैं। और एक कदम सुलझाना तुम जानते हो। एक कदम से ज्यादा कोई कभी उठाता ही नहीं। जब भी एक कदम उठाओगे, सुलझा लोगे। आज सुलझा लिया, कल भी सुलझा लोगे, परसों भी सुलझा लोगे। एक कदम उठता रहेगा, सुलझता रहेगा; एक कदम रोशनी पड़ती रहेगी। फिर तीर्थ कितने ही दूर हो, किसको चिंता है? पहला कदम जिसका उठ गया ठीक, सुलझा हुआ, उसकी मंजिल आ गई करीब। इसलिए लाओत्से कहता है, यही अंत, यही प्रारंभ। और जो प्रारंभ में ही भटक जाए वह कभी अंत तक नहीं पहुंचता। वह एक ऐसी नदी की तरह है जो मरुस्थल में खो जाती है, जो सागर तक नहीं पहुंच पाती। तुम्हें अगर सागर तक पहुंचना हो तो नजर सागर पर मत रखो, नजर एक कदम पर रखो। एक कदम काफी है। उसको सुलझाया हुआ उठा लो बस। इस क्षण सुलझे रहो। सभी क्षण इसी क्षण से निकलेंगे। सभी कदम इसी कदम से निकलेंगे। एक सुलझ गया, दूसरा उस सुलझाव से ही तो निकलेगा। इसलिए उसकी चिंता मत करो। कल की फिक्र मत करो। भविष्य का विचार मत करो।
मंजिल मिलेगी या न मिलेगी, इस चिंता में मत पड़ो। तुम एक कदम को सुलझा लो।
जिन्होंने एक सुलझा लिया, उन्होंने सदा ही मंजिल पा ली है। क्योंकि वही प्रारंभ है और वही अंत है।
आज इतना ही।

एक सौ पांचवां प्रवचन

वे वही सीखते हैं जो अनसीखा है

Chapter 64 : Part 2

Beginning And End

He who acts, spoils;
He who grasps, lets slip.
Because the Sage does not act, he does not spoil,
Because he does not grasp, he does not let slip.
The affairs of men are often spoiled within an ace of completion,
By being careful at the end as at the beginning Failure is averted.
Therefore the Sage desires to have no desire,
And values not objects difficult to obtain.
Learns that which is unlearned,
And restores what the multitude have lost.
That he may assist in the course of Nature,
And not presume to interfere.

अध्याय 64 : खंड 2

आरंभ और अंत

जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है;
जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।
क्योंकि संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं;
क्योंकि वे पकड़ते नहीं हैं, इसलिए वे छूटने भी नहीं देते।
मनुष्य के कारबार अक्सर पूरे होने के करीब आकर बिगड़ते हैं।
आरंभ की तरह ही अंत में भी सचेत रहने से, असफलता से बचा जाता है।
इसलिए संत कामनारहित होने की कामना करते हैं।
और कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य नहीं देते।
वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो,
और उसे वे पुनः स्थापित करते हैं, जिसे समुदाय ने खो दिया है।
यह कि प्रकृति के क्रम में वे सहायक तो होते हैं,
लेकिन उसमें हस्तक्षेप करने की धृष्टता नहीं करते।

अनंत की यात्रा में जैसे प्रारंभ में अंत छिपा है, वैसे ही अंत में प्रारंभ भी छिपा है। अगर कोई सम्हल कर कदम उठाए तो पहले ही कदम में मंजिल पास आ जाती है। और अगर कोई जरा सी चूक कर दे, बेहोश हो जाए, तो आखिरी कदम में भी मंजिल चूक जाती है। सवाल होश का है।

होश से उठाया पहला कदम आखिरी कदम सिद्ध होता है। लेकिन जरा सी बेहोशी की छाया, और तुम फिर वहीं के वहीं आ जाते हो जहां से यात्रा शुरू हुई थी। बच्चों का छोटा सा खेल तुमने देखा होगाः सांप और सीढ़ी। हर कदम पर सांप है, हर कदम पर सीढ़ी है। सीढ़ी पर पड़ गया पैर तो ऊपर चढ़ जाते हो। सांप पर पड़ गया पैर तो नीचे उतर आते हो।

सांप और सीढ़ी का खेल पूरे जीवन का खेल है। आखिरी मंजिल से भी गिर सकते हो। आखिरी कदम से भी वापस वहीं आ सकते हो जहां से शुरू किया था। और पहले कदम से भी पहुंच सकते हो।

इसलिए जितनी सावधानी पहले कदम पर जरूरी है उससे भी ज्यादा सावधानी आखिरी कदम पर जरूरी है। क्योंकि पहले कदम पर तो कुछ भी खोने को नहीं है,

इसलिए थोड़ी सावधानी से भी चल जाएगा। पहले कदम पर तो पाने ही पाने को है, खोने को कुछ भी नहीं है। अगर बेहोश भी रहे तो कुछ खोओगे न, क्योंकि तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं। कदम पहला है। अभी मंजिल शुरू ही नहीं हुई है। अभी यात्रा का प्रारंभ भी नहीं हुआ। तुम हारे ही हुए हो। लेकिन आखिरी कदम पर तो बहुत होश चाहिए, प्रगाढ़ होश चाहिए। क्योंकि जरा सी चूक, और सब खो जाएगा। जो बिल्कुल मिला ही मिला हुआ था, पहुंचने के ही करीब थे, जो हाथ के पास ही आ गया था, जिस पर मुट्ठी बंध ही जाती क्षण भर में, वह चूक जा सकता है।
जैसे खतरे पहले कदम के हैं वैसे ही खतरे--और उससे भी बड़े खतरे--आखिरी कदम के हैं।
कल मैंने तुमसे पहले कदम के खतरों की बात कही। पहला खतरा तो यह है कि तुम टालते होः कल उठाएंगे, परसों उठाएंगे। स्थगित करते हो। पोस्टपोनमेंट पहले कदम का बड़े से बड़ा खतरा है। आशा भर करते हो, उठाएंगे। धीरे-धीरे आशा करना भी एक आदत हो जाती है। फिर तुम रोज ही टालते जाते हो। टालना तुम्हारा ढंग हो जाता है। फिर पहला कदम कभी नहीं उठता। और जिसका पहला ही नहीं उठा उसके अंतिम उठने का तो सवाल नहीं है।
दूसरा खतरा है पहले कदम का कि जब तुम उठाते भी हो कदम तब तुम संघर्ष में उतर जाते हो। तुम यात्रा में बहते नहीं, तैरने लगते हो। तुम एक तरह की लड़ाई शुरू कर देते हो। जैसे कोई दुश्मनी है, जैसे प्रकृति मित्र नहीं, शत्रु है। तब तुम एक-एक चीज से लड़ने लगते हो। पहले स्थगित करके रुके थे, अब लड़ाई के कारण रुक जाते हो।
लड़ाई से कोई कभी पहुंचा नहीं। कोई है ही नहीं जिससे लड़ो। अपना ही आपा है, अपना ही विस्तार है। लड़ना किससे है? लड़ने योग्य कोई दूसरा मौजूद होता तो ठीक था। तो जब भी तुम लड़ोगे, एकांत में अपनी ही छाया से, परछाईं से लड़ोगे। तुम अपनी शक्ति व्यय करोगे। इस तरह जीतोगे किसे? वहां छाया है; जीत भी गए तो हाथ कुछ न लगेगा। और हार गए तो बुरी होगी हार; आत्मविश्वास खो जाएगा।
दो खतरे हैंः स्थगन और संघर्ष। दोनों से खतरे से बचने का उपाय हैः जो करना हो उसे एक क्षण भी टालना मत। यही क्षण है वह जब उसे कर लेना। कल कभी आता नहीं। बस वर्तमान अकेला अस्तित्व है। और इस क्षण से तुम क्षण भर को भी हटे, कहीं तुमने और आशा बांधी कि तुम भटके। और जब कदम उठाओ तो तुम्हारा कदम अस्तित्व के साथ सहयोग का कदम हो, समर्पण का। विरोध का नहीं, संघर्ष का नहीं। क्योंकि जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने बह कर जाना है नदी की धार के साथ। तैर कर, धार के विपरीत तैर कर किसी ने कभी नहीं जाना। वह जो धार के विपरीत तैरना चाहता है अहंकार, वही तो बाधा है। जब तुम बहते हो तब कोई अहंकार निर्मित नहीं होता; क्योंकि तुम कुछ कर ही नहीं रहे हो।
इसलिए लाओत्से का बड़ा जोर निष्क्रियता पर है, क्योंकि निष्क्रियता में अहंकार के बनने की कोई संभावना नहीं रह जाती। जरा सा कर्म, और अहंकार बनता है। मैंने किया, मैंने जीता, मैंने पाया; मेरा चरित्र, मेरा ज्ञान, मेरा त्याग, मेरा धन; सब से मैं निर्मित होता है। कुछ किया ही नहीं; न चरित्र करके पाया, न ज्ञान करके पाया। निष्क्रियता में हुआ उदभूत चरित्र; निष्क्रियता में फला ज्ञान, निष्क्रियता में फैला प्रकाश; तुम्हारा किया कुछ न हुआ; अनकिए सब हुआ। फिर कैसा अहंकार? समर्पण निष्क्रियता है; संघर्ष कर्म है। ये दो खतरे हैं प्रथम चरण के। अंतिम चरण के भी दो खतरे हैं। उन्हें भी
हम समझ लें; फिर सूत्र में प्रवेश आसान हो जाए।
अंतिम चरण का पहला खतरा तो यह है, जो कि वे सभी लोग जानते हैं जिन्होंने कभी भी पैदल कोई यात्रा की हो; और यह यात्रा पैदल यात्रा है, कोई यान नहीं है परमात्मा तक जाने के लिए, तुम्हें अपने दो छोटे पैरों पर ही सारा भरोसा रखना है। अगर तुमने कभी भी कोई पैदल यात्रा की है--तुम बद्री-केदार गए हो, तुम कोई तीर्थ पर गए हो, हज गए हो, या ऐसे ही कभी तुम किसी पहाड़ पर सूर्योदय का दर्शन करने गए हो--तो तुम्हें पता होगा, जब मंजिल करीब आ जाती है तभी थकान सबसे ज्यादा मालूम होती है। जब तक दूर होती है तब तक तो तुम आशा के बंधे चलते रहते हो; अपने को किसी तरह खींचते रहते हो कि बस थोड़ी दूर और, बस थोड़ी दूर और। समझाए रखते हो कि चार कदम और चल लो, पहुंच जाओगे। लेकिन जब मंजिल

बिल्कुल सामने आ जाती है, तुम मंदिर के द्वार पर पहुंच जाते हो, तब तुम सुस्ताने बैठ जाते हो कि अब तो कोई भय न रहा, मंजिल आ ही गई।
साधारण यात्रा में तो कोई खतरा नहीं है, क्योंकि तुम सुस्ताओ मंदिर की सीढ़ी पर बैठ कर तो मंदिर दूर नहीं हो जाएगा। लेकिन उस परम यात्रा में खतरा है; क्योंकि वह कोई थिर मंदिर नहीं है। वह जो मंदिर है परम सत्य का वह कोई जड़ वस्तु नहीं है कि कहीं रखी है। वह तो तुम्हारी भावदशाओं पर निर्भर है उसकी दूरी और फासला। जब तक तुम चलते रहते हो, वह पास है। जैसे ही तुम ठहरते हो, वह दूर हो गया। जब तक तुम बहते रहते हो, वह पास है। जैसे ही तुम सुस्ताते हो, वह दूर हो गया।
तो अगर परम मंजिल के पास पहुंच कर--जब तुम्हें दिखाई पड़ने लगा सब, तब तुम्हारा पूरा मन कहेगा कि अब तो सुस्ता लो, अब कोई जल्दी नहीं है, अब तो सामने ही द्वार है, थकान मिट जाएगी, उठेंगे, द्वार खोल लेंगे--अगर तुमने तब नींद लगा ली, सुस्ताने लगे, आलस्य ने पकड़ लिया, तो जब तुम आंख खोलोगे तुम अपने को वहीं पाओगे जहां से यात्रा शुरू की थी। मंदिर तुम्हें दिखाई न पड़ेगा। तुम पाओगे, अपने घर के द्वार पर बैठे हो। क्योंकि उससे दूर होने का एक ही रास्ता है, वह है आलस्य। उससे दूर होने की एक ही व्यवस्था है, वह है प्रमाद। यह ख्याल ही, कि पहुंच गए, खतरा है। जैसे ही यह ख्याल आया कि पहुंच गए, पैर ढीले पड़ने लगते हैं, सुस्ताने का मन होने लगता है। और जब पहुंच ही गए तो अब जल्दी क्या है? और जिसने भी यह भूल की, उसकी सारी की सारी चेष्टा व्यर्थ हो जाती है, पानी फिर जाता है। और तुममें से बहुतों को मैंने बहुत बार उस मंजिल के करीब पहुंचते देखा है। और फिर यह भी देखा है कि तुम सुस्ताने लगे। और फिर यह भी देखा है कि तुम वापस अपने घर के द्वार पर खड़े हो।
आखिरी कदम किसी भी क्षण पहला कदम बन सकता है, जैसे कि पहला कदम आखिरी बन सकता है। जरा तुम थके, जरा तुम्हें आलस्य पकड़ा, जरा तुमने कहा कि दो क्षण आंख बंद कर लें और विश्राम कर लें। विश्राम किस बात से? विश्राम का अर्थ इस यात्रा में है, थोड़ी देर मूर्च्छित हो जाएं। होश तो यात्रा के कदम हैं; बेहोशी सुस्ताना है। थोड़ा बेहोश हो लें, अब क्या डर है? जरा सी बेहोशी, और मंजिल उतनी ही दूर हो जाती है जितनी कभी थी।
दूसरा खतरा है--जो और भी सूक्ष्म और बारीक है--और वह खतरा यह है कि जैसे
ही मंजिल सामने आती है, बड़े आनंद से, बड़े पुलक से तन-प्राण भर जाता है। सब तरफ अनाहत का नाद गूंजने लगता है। ऐसा आनंद तुमने कभी जाना न था। बिन घन परत फुहार। तुम भीग-भीग जाते हो। तुम्हारा रोआं-रोआं सरोबोर हो जाता है। तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन में एक नया संगीत आ जाता है। आंख खोलते हो तो रहस्य; आंख बंद करते हो तो रहस्य; जहां देखते हो वहां रहस्य। आश्चर्यचकित, आत्मविभोर, अवाक तुम खड़े रह जाते हो। इस घड़ी में दो संभावनाएं हैं।
एक संभावना तो है कि यह आनंद इसलिए हो रहा है कि तुम निकट पहुंच गए स्वभाव के। यह स्वाभाविक है। और अगर यह आनंद स्वभाव के निकट पहुंचने से फलित हो रहा है तो यह जो उत्सव का वाद्य बजने लगा तुम्हारे भीतर और ये जो फूल खिलने लगे, और ये जो हजार-हजार राग-रागिनियां प्रकट हो गईं, और यह जो धीमा, शीतल प्रकाश तुम्हारे चारों तरफ बरसने लगा, और ये जो करोड़-करोड़ दीए जल गए, यह सब शुभ है और इनके जलने से तुम और करीब आओगे, यह द्वार पर तुम्हारा स्वागत है। बहुत दिन का भटका हुआ कोई वापस लौट आया है घर; सारा अस्तित्व उसके स्वागत में वंदनवार सजाता है। अगर यह उत्सव स्वभाव के निकट आने का है तो तुम्हारी जो आखिरी अस्मिता बची रह गई होगी वह भी यहां आकर पिघल जाएगी--इस उत्सव की ऊष्मा में। इस उत्सव की गर्मी में तुम्हारी आखिरी लकीर जो थोड़ी- बहुत मैं-भाव की बची रही होगी, आत्मबोध जो थोड़ा-बहुत बचा रहा होगा कि मैं हूं--कितना ही शुद्ध, लेकिन मैं हूं तो अशुद्ध ही है--वह लकीर भी पिघल जाएगी इस उत्सव में। इस उत्सव में तुम हिस्से हो जाओगे। तरंग खो जाएगी, सागर बचेगा। यह तो ठीक है।
लेकिन खतरा भी यहीं है। अगर कहीं तुमने ऐसा समझा कि मैं पहुंच गया, मैंने पा लिया, कि तुम पहले कदम पर वापस फेंक दिए जाओगे। शायद पहले कदम से भी पीछे वापस फेंक दिए जाओगे।

फर्क कहां है? फर्क बहुत बारीक है। ज्ञानी तो समझेगा इस क्षण में कि परमात्मा ने मुझे पा लिया, और अज्ञानी समझेगा कि मैंने परमात्मा को पा लिया। बस इतना ही फर्क है। ज्ञानी तो कहेगा कि आ गया घर, लीन होता हूं अब, डूबता हूं अब; अज्ञानी समझेगा, पा लिया आखिरी भी, अब पाने को कुछ न बचा; अब मेरा अहंकार अंतिम शिखर पर है। ज्ञानी तो पिघल जाएगा; क्योंकि परमात्मा ने मुझे पा लिया; उसकी अनुकंपा, उसका प्रसाद। जैसे छोटा बच्चा मां की गोद में सिर रख कर खो जाएगा, ऐसे ज्ञानी खो जाएगा। अज्ञानी अकड़ कर खड़ा हो जाएगा, और कहेगा कि मैंने परमात्मा को भी पा लिया! जो बड़े-बड़े खोजी न पा सके, जहां बड़े- बड़े भटक गए, वहां भी मैं जीत गया! अहंकार अपनी आखिरी भभक से उठेगा। और एक क्षण में तुम आखिरी शिखर से उतर आओगे आखिरी गर्त में।
और दोनों एक जैसे लगते हैं। एंफेसिस, जोर का फर्क है। ज्ञानी कहता है, परमात्मा ने पा लिया मुझे; जोर परमात्मा पर है। अज्ञानी कहता है, मैंने पा लिया परमात्मा को; जोर मैं पर है। ज्ञानी इस महोत्सव में लीन हो जाता है; अज्ञानी इस महोत्सव को भी मुट्ठी में बांधने की कोशिश करता है। ज्ञानी अपने को छोड़ देता है; अज्ञानी इस विराट को पकड़ने की कोशिश करता है। एक क्षण में सब व्यर्थ हो जाता है, जन्मों-जन्मों की चेष्टा पर पानी फिर जाता है। ये दो खतरे हैं अंत के। प्रथम कदम से लेकर अंतिम कदम तक होश को सम्हाले रखना है। और जैसे-जैसे करीब पहुंचते हो वैसे-वैसे खोने की संभावना बढ़ती है। क्योंकि जिसके पास है वही खो सकता है। अज्ञानी के पास है ही क्या? खोएगा भी क्या? लेकिन जैसे-जैसे तुम परमात्मा के, परम निधि के पास पहुंचते हो, कुछ तुम्हारे पास होना शुरू हो गया। खजाना बरस रहा है। अब और भी होश चाहिए। अब और भी होश चाहिए। आखिरी द्वार पर खड़े, इसके पहले कि मंदिर तुम्हें अपने भीतर समा ले, कि मंदिर का द्वार खुले और तुम मंदिर के गर्भ में लीन हो जाओ, सबसे बड़ा खतरा वहीं आखिरी क्षण में है। और सबसे ज्यादा होश की वहीं जरूरत है।
तुममें से बहुतों को अनेक बार मैं अनुभव करता हूं कि जरा सी झलक मिलती
है, और तुम वहीं से फेंक दिए जाते हो। तुम्हारी झलक ही तुम्हारा पतन होती है। जैसे ही झलक मिलती है वैसे ही अहंकार अकड़ जाता है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम समझने लगते हो, तुमने कुछ पा लिया, तुम कुछ हो गए, तुम विशिष्ट हो, अब तुम कोई साधारण नहीं।
एक बूढ़े संन्यासी कुछ दिन पहले मेरे पास आए। कुछ भी पाने को नहीं है अभी। ऐसी छोटी-छोटी मन की सूक्ष्मताओं की झलकें मिली हैं, कि कभी शांत बैठे हैं तो प्रकाश दिखाई पड़ गया है, कि कभी शांत बैठे हैं तो भीतर ऊर्जा का उठता हुआ स्तंभ दिखाई पड़ गया है, ऐसी छोटी-छोटी बातें हैं जिनका कोई बड़ा मूल्य नहीं है, जो कि मन के ही खेल हैं; जिनके कि पार जाना है; जिनमें उलझे तो कभी भी परमात्मा तक पहुंचा नहीं जा सकता। बड़े परेशान भी थे, क्योंकि अब आगे कैसे बढ़ें? मैंने उनसे कहा कि साफ सी बात है। आगे कैसे बढ़ें, यह बड़ा सवाल नहीं है; जो आपको अभी तक हुआ है, उसको आप पकड़े हैं तो आगे कैसे बढ़ेंगे? जैसे कोई आदमी रास्ते के किनारे लगे एक वृक्ष को पकड़ ले, फिर पूछे कि अब आगे कैसे बढ़ें?
इसमें क्या मामला है? इस वृक्ष को छोड़ो! इसको पकड़े हो तो आगे कैसे जाओगे? छोड़ कर ही कोई आगे जाता है। एक सीढ़ी छोड़ो तो दूसरी सीढ़ी पर पैर पड़ता है। सीढ़ी पकड़ लो तो आगे पैर पड़ना बंद हो जाता है।
अब वे अकड़े हुए हैं। वे कहते हैं कि उनकी कुंडलिनी जग गई। वह अकड़ बता रही है कि वे जो छोटे-छोटे अनुभव हुए, पकड़ लिए गए। कहते हैं, उन्हें नील-ज्योति दिखाई पड़ रही है। और मुझसे पूछने आए थे कि मैं अब कौन सी अवस्था में हूं?
मैंने उनसे कहा कि यह पूछो ही मत, क्योंकि दो ही अवस्थाएं हैंः ज्ञानी
की और अज्ञानी की। तीसरी कोई अवस्था नहीं है। और तीसरी अगर बनाई तो वह अज्ञानी का ही उपद्रव होगा। दो ही अवस्थाएं हैंः या तो उसकी जो पहुंच गया है, या उसकी जो अभी नहीं पहुंचा है। और जो नहीं पहुंचा है उसने अगर कोई अवस्था बना ली मध्य की तो उसी अवस्था को पकड़ लेगा। पकड़ने के कारण पहुंचना

मुश्किल हो जाएगा। अवस्था बनाओ मत। अब इन दो में से तय कर लो। तुम्हीं कहो कि इन दो में से तुम्हारी कौन सी अवस्था है?
अज्ञानी की कहने में उनको बड़ी कठिनाई हुई। अगर वे कह सकते कि अज्ञानी की, आखिरी मंजिल का खतरा अलग हो जाता; यात्रा शुरू हो जाती। उन्होंने कहा, कुछ-कुछ ज्ञानी की; पूरा ज्ञानी तो मैं नहीं हूं।
मैंने कहा, कभी सुना है अधूरा ज्ञान? कभी सुना है कि ज्ञान की कोई डिग्री होती है? कि अभी पचास परसेंट हो गया, अब साठ परसेंट हो गया, अब सत्तर परसेंट हो गया? कभी सुना है कि यह बुद्ध दस परसेंट, यह बुद्ध बीस परसेंट, यह बुद्ध सत्तर परसेंट और यह बिल्कुल खालिस, चौबीस कैरेट? बुद्धत्व की कोई अवस्थाएं नहीं हैं। बुद्धत्व या अबुद्धत्व।
लेकिन मन अबुद्धत्व पर तो राजी नहीं होता। और मन यह भी जानता है कि बुद्धत्व का तो दावा कैसे करें। क्योंकि अगर बुद्धत्व का ही दावा करना है तो मेरे पास पूछने क्या आए? बात खतम हो गई। दूसरे तुम्हारे पास पूछने आएंगे। तुम क्यों मेरे पास पूछने आए हो? यह भी नहीं कह सकते कि मैं बुद्ध हो गया हूं। वह तो हुए भी नहीं हैं, अन्यथा कोई जरूरत ही न थी कहीं जाने की। और यह कहने में मन सकुचाता है कि मैं अज्ञानी हूं।
यही खतरा है। जब तक परम ज्ञान न हो जाए तब तक तुम अज्ञान को ही अपनी अवस्था समझना। और इंच भर भी तरकीबें मत निकालना कि हां, कई तरह के अज्ञानी हैं; कुछ मुझसे नीचे हैं।
कोई अज्ञानी तुमसे नीचे नहीं है। और तुम किसी अज्ञानी से ऊंचे नहीं हो। अज्ञानी यानी अज्ञानी। कुछ अज्ञानी धन में खोए होंगे; कुछ अज्ञानी धर्म में खोए हैं। किन्हीं ने तिजोरियां भर ली हैं, किन्हीं ने त्याग कर लिया है। किन्हीं के पास सिक्के चांदी के हैं; किन्हीं के पास सिक्के त्याग के हैं। किन्हीं ने उपवास से खाते-बहियों को भर रखे हैं, त्याग-व्रत से, और किन्हीं ने कुछ और कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लिया है। कोई बाहर की रोशनी के लिए दीवाने हैं; किन्हीं ने भीतर की रोशनी को पकड़ रखा है। लेकिन सब अज्ञानी हैं; बाहर और भीतर से कोई फर्क नहीं पड़ता।
ज्ञान की घड़ी के पहले तक--आखिरी क्षण तक--तुम अपने को अज्ञानी ही समझना। अगर आखिरी क्षण को आने देना हो, जब तक कि तुम मंदिर में बुला ही न लिए जाओ भीतर, तब तक तुम अज्ञानी ही बने रहना, तब तक तुम याचक ही रहना; तब तक तुम भिक्षा-पात्र को फेंक मत देना; तब तक तुम अपने को विनम्र ही रखना; तब तक जरा भी अहंकार को निर्मित मत होने देना। अगर इस अहंकार को तुम रास्ते पर निर्मित होने दिए तो आखिरी क्षण में यही अहंकार तुम्हें डुबाएगा; यही सांप है जो तुम्हें आखिरी क्षण से लील जाएगा और वापस पहुंचा देगा जहां उसकी पूंछ है।
इसे तुम पहले ही क्षण से स्मरण रखना। धर्म को संपदा मत बनाना और अनुभवों को इकट्ठा मत करना। कहना कि सब राह के किनारे की बातें हैं; घटती हैं, सामान्य हैं। उन पर ज्यादा ध्यान मत देना। उनका विचार भी मत करना। उनके साथ अकड़ को मत जोड़ना। अगर तुम पहले से ही होशपूर्वक चले और अंतिम क्षण तक अपने को अज्ञानी ही जाना, तो तुम्हें आखिरी मंजिल के कदम से कोई भी वापस न भेज सकेगा।
अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है। और जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"
ये बड़ी गहन बातें हैं। और ऐसे ही अगर ऊपर-ऊपर से सुनीं तो तुम्हारी समझ में न आएंगी। तब ये पहेली जैसी लगेंगी। ये बिल्कुल सीधी-साफ हैं; पहेली कुछ भी नहीं है। अगर तुम समझने को बुद्धि से मत जोड़ो तो ये बिल्कुल आसान हैं। ये सीधे-सीधे सूत्र हैं। अगर बुद्धि से जोड़ो तो कठिनाई बढ़ जाती है। कोई भी चीज को बुद्धि से जोड़ो, वह पहेली हो जाती है।
उसका कारण है। क्योंकि बुद्धि एक-आयामी है। वह एक दिशा में देखती है। अगर वह दक्षिण में देखती है तो दक्षिण की तरफ देखती है। तुमने सुना होगा शिकारियों से कि जंगल में एक खतरनाक जानवर होता है, गेंडा। वह अगर किसी पर हमला करे तो उससे डरने की कोई जरूरत नहीं। जरा सा, जिस तरफ वह आ रहा है, उससे

हट कर खड़े हो जाना जरूरी है। क्योंकि वह एक-आयामी है। वह सीधा ही चला जाता है। अगर तुम उसके रास्ते पर न पड़े तो वह देख ही नहीं सकता। उसकी गर्दन नहीं मुड़ती, उसकी गर्दन बड़ी मोटी है।
बुद्धि की गर्दन भी गेंडे जैसी है; एक-आयामी है। तुम जरा ही बच कर खड़े
हो गए तो गेंडा देख ही नहीं सकता। उसके लिए बस एक ही दिशा है, जिस तरफ वह जा रहा है। उसकी दिशा पर जो पड़ जाए बस वही है; बाकी जो उसकी दिशा पर न पड़े वह नहीं है।
बुद्धि एक-आयामी है; वह एक तरफ जाती है। जैसे, बुद्धि कहती है, अगर किसी चीज को पकड़ना है तो जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। बात साफ है कि अगर किसी चीज को पकड़ना है तो जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। यह एक आयाम हुआ। इसमें एक विपरीत आयाम भी है, वह बुद्धि को पता नहीं, कि अगर बहुत जोर से पकड़ोगे तो हाथ थक जाएगा। जितने जोर से पकड़ोगे उतने जल्दी थक जाएगा। और जब हाथ थक जाएगा तब छोड़े बिना कोई रास्ता न रह जाएगा। तब तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा।
तो लाओत्से बुद्धि से बिल्कुल भिन्न आयाम की बात कर रहा है। वह कह रहा है, अगर बहुत जोर से पकड़ा तो छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि पकड़ की एक सीमा है।
तुम कभी गौर करो। मुट्ठी बांधो जोर से, और बांधते चले जाओ, बांधते चले जाओ। जितनी तुममें ताकत हो, पूरी लगा दो। तब तुम एक अनूठा अनुभव करोगे; जब सब ताकत चुक जाएगी, तुम पाओगे तुम्हारे बिना कुछ किए मुट्ठी खुल रही है। तुम खोल नहीं रहे, क्योंकि अब तो खोलने की भी ताकत नहीं है। वह भी तुमने बांधने में ही लगा दी थी। कभी करके प्रयोग देखो, कि बांधते जाओ मुट्ठी को, बांधते जाओ; सारी ताकत लगा दो मुट्ठी पर, और जरा भी खुलने का उपाय मत दो। थोड़े ही क्षणों में तुम थक जाओगे, और तुम पाओगे शिथिल होती जा रही है मुट्ठी, अंगुलियां अपने आप खुल गई हैं। अब तुम्हारा कोई वश नहीं।
लाओत्से कहता है, "जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"
यही तुम्हारी जिंदगी में चौबीस घंटे हो रहा है। लेकिन वह बुद्धि का गेंडा तुम्हें सुनने नहीं देता। क्योंकि उसके मार्ग पर ये चीजें पड़ती नहीं। उसका तर्क सीधा-साफ है कि जो पकड़ना है, जोर से पकड़ो, नहीं छूट जाएगा। अगर कोई चीज छूट जाती है तो बुद्धि कहती है, देखो, पहले ही कहा था, जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। अगर कोई चीज बिगड़ जाती है तो बुद्धि कहती है, पहले ही कहा था, ठीक से करते, कभी न बिगड़ती।
और लाओत्से कहता है कि तुम्हें ख्याल ही नहीं है कि चीजें अपने आप हो रही हैं। तुम्हारे करने से क्या हो रहा है? तुम करने से बिगाड़ ही सकते हो। और तुमने अगर ज्यादा करने की कोशिश की तो ज्यादा बिगाड़ दोगे।
इसलिए कर्मठ लोगों से ज्यादा उपद्रवी लोग कहीं भी नहीं होते। उनसे तो आलसी भी बेहतर; कम से कम किसी का कुछ बिगाड़ते तो नहीं। कर्मठ आदमी तो सुबह से झंडा लेकर निकलता है, उसको सुधार करना है, संसार बदलना है। किसने तुम्हें कहा कि तुम संसार बदलो? किसने तुम्हें यह अधिकार दिया? तुम स्वयं अपनी नियुक्ति कर लिए हो संसार बदलने के लिए, कि क्रांति करनी है, कि दुनिया भ्रष्ट हो रही है, भ्रष्टाचार मिटाना है। हजारों-हजारों साल करके भी आदमी क्या कर पाया? कौन सी चीज कर पाया है?
चीजें अपने स्वभाव से चल रही हैं। तुम्हारे किए कुछ होता है? हां, तुम नाहक परेशान हो लेते हो, बड़ा उछलकूद मचाते हो, पसीना-पसीना हो जाते हो। तुम मुफ्त ही शहीद हो जाते हो। और तुम्हारे उपद्रव के कारण बहुत से लोग जीवन में अड़चन अनुभव करते हैं। वे अपने सीधे मार्ग से जा रहे थे; वे जयप्रकाश के पीछे चलने लगते हैं, भ्रष्टाचार मिटाना है। वे बेचारे अपनी दुकान करने जा रहे थे, कि अपनी पत्नी के लिए दवा लेने जा रहे थे; अब उनको ख्याल हो गया कि भ्रष्टाचार मिटाना है।
अगर दुनिया से क्रांतिकारी विदा हो जाएं, दुनिया में बड़ी शांति हो जाए। और दुनिया से अगर समाज-सुधारक उठ जाएं तो समाज अपने आप सुधर जाए। मगर बुद्धि कहेगी, यह कैसे हो सकता है? इतना सुधार करके सुधार नहीं हो रहा है, और आप उलटी बात समझा रहे हो! जब इतना सुधार करके सुधार नहीं हो रहा, तो बिना किए कैसे होगा?

तुम्हारी हालत वैसी है जैसे छोटा बच्चा एक पौधा लगा देता है; बार-बार निकाल कर देखता है बीज को कि अभी तक अंकुर आया कि नहीं! फिर घड़ी भर बाद पहुंच जाता है। अगर किसी तरह अंकुर निकल भी आया, जो कि पहले तो मुश्किल ही है; क्योंकि जब बार-बार तुम बीज निकाल कर देखोगे, अंकुर निकलेगा कैसे? कुछ तो मौका दो उसको अपने आप होने का! वह तुम मौका ही नहीं दे रहे। और बच्चा तो जल्दबाजी में होता है। सभी जल्दबाजी में जो हैं, बच्चे हैं, बचकाने हैं। अगर किसी तरह अंकुर निकल आया, बच्चा भूल-चूक गया, कहीं छुट्टी पर चला गया, कुछ हो गया और किसी तरह अंकुर निकल आया, बच्चे के बावजूद, बच्चा रहता तब तो निकलना मुश्किल ही था, तो अब बच्चा जल्दी में है, उसको वह खींच कर बड़ा करना चाहता है कि जल्दी से खींच कर बड़ा कर दे, जैसे कोई पौधे में स्प्रिंग लगा हो कि तुम उसे खींच लो, वह बड़ा हो जाए। या जैसे कि पौधा कोई इलास्टिक का धागा हो कि तुम खींच लो और बड़ा हो जाए। बच्चा खींचतान में उसको तोड़ डालेगा; रोएगा, चिल्लाएगा, कि मैं कुछ बुरा तो कर नहीं रहा था इसको, सिर्फ बड़ा करने की कोशिश कर रहा था कि जल्दी हो जाए, फूल लग जाएं।
पौधा अपने से बढ़ता है; नदियां अपने से बहती हैं, तुम्हें कोई धक्का देने की जरूरत थोड़े ही है। बच्चे अपने से बड़े होते हैं, तुम्हें बड़े करने की जरूरत थोड़े ही है। जीवन अपने से चलता है। तुम नहीं थे, तब भी चल रहा था; तुम नहीं रहोगे, तब भी चलता रहेगा। क्रांतिकारी मुफ्त ही बीच में शोरगुल मचा कर यह एहसास कर लेता है अपने भीतर कि मेरे बिना सारी दुनिया नरक में चली जाएगी। कोई कहीं नहीं जा रहा है। क्रांतिकारी आते हैं और चले जाते हैं, संसार अपने ढंग से चलता रहता है। बुराई को कोई कभी मिटा नहीं पाया; क्योंकि बुराई भलाई का अनुषांगिक अंग है। रावण को कोई कभी मिटा नहीं पाया; क्योंकि रामलीला ही मिट जाए। वह रावण के साथ चलती है।
ज्ञानी देखता है इस सत्य को कि चीजें अपने से होती हैं। कबीर ने कहा, अनकिए सब होय। तुम करने की व्यर्थ झंझावात में मत पड़ जाना।
और जो सत्य है बाहर के संबंध में वही सत्य भीतर के संबंध में भी है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कामवासना को कैसे विजय करें? क्या करें? ब्रह्मचर्य को कैसे लाएं? मैं उनसे पूछता हूं, कामवासना को तुम लाए थे? हम तो नहीं लाए। जिसको तुम नहीं लाए उसको तुम मिटा कैसे सकोगे? जिसने आते वक्त तुम्हारी आज्ञा नहीं मांगी, जिसका प्रारंभ तुम्हारे हाथ में नहीं है, उसका अंत तुम्हारे हाथ में कैसे हो सकेगा? कहां से कामवासना आई है? वे कहते हैं, हमें कुछ पता नहीं। किसने तुम्हें दी है? वे कहते हैं, आप भी कैसी बातें पूछते हैं? है। प्रकृति से आई है। प्रकृति ही वापस लेगी। जहां से चीजें आती हैं, वहीं वापस जाती हैं। जिसके किए आती हैं, उसके किए वापस लौट जाती हैं। तुम क्यों बीच में व्यर्थ ही अपने को खड़ा कर लेते हो?
क्रोध मिटाना है, लोग पूछते हैं। तुम लाए थे? कब खरीद लाए? खरीदा होता, वापस भी कर देते; बनाया होता, मिटा देते; तुम्हारे हाथ से हुआ होता, तुम्हारे हाथ से अनहुआ हो जाता। तुम सीधी सी बात क्यों नहीं देखते? तुम क्यों व्यर्थ ही दाल-भात में मूसलचंद... ? चीजें सीधी चल रही हैं; तुम उसमें बीच में क्यों आते हो?
क्रोध है। किसी के हटाए कभी नहीं हटा। और जब मैं यह तुमसे कहता हूं तो तुम निराश मत हो जाना। कोई कभी क्रोध को नहीं हटा पाया; कोई कभी कामवासना को नहीं हटा पाया। लेकिन जिस दिन तुम यह स्वीकार कर लेते हो और मूसलचंद होना बंद कर देते हो, अचानक तुम पाते हो कि बहुत सी चीजें हटनी शुरू हो गईं। प्रकृति सब अपने से ही करती रहती है। जिस दिन तुम इतने शांत हो जाते हो
और यह समझ लेते हो कि मेरा होना, मेरा करना किसी भी मूल्य का नहीं है, उसी दिन तुम्हारा अहंकार मिट जाता है। उसी दिन तुम कहां रहे जिस दिन तुमने इस सत्य को समझ लिया कि सब हो रहा है, मेरा कुछ करने का सवाल ही नहीं है; मैं खुद भी अपने को नहीं बनाया हूं। अचानक तुमने पाया है कि तुम हो। जन्म हुआ। अचानक एक दिन पाओगे कि विदा हो गए। अचानक एक दिन पाओगे कि सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा। न तो आते वक्त तुमसे कोई पूछता, न जाते वक्त तुमसे कोई पूछता।

तो तुम इतनी छोटी सी बात क्यों नहीं समझ लेते हो कि कर्तापन मेरे हाथ में नहीं है। और यही परम धर्म हैः जिसको समझ में आ गया कि कर्तापन मेरे हाथ में नहीं है। इसी परम धर्म को लाने के लिए कई प्रयोग किए गए हैं। भाग्य का सिद्धांत सिर्फ एक प्रयोग है इसी को लाने के लिए कि सब भाग्य से हो रहा है। कृष्ण ने अर्जुन से यही गीता में कहा कि तू सब कर्म परमात्मा पर छोड़ दे,
वह जो करवाए तू कर, तू अपने को बीच में मत ला। कृष्ण की पूरी शिक्षा यही है कि तू मूसलचंद मत बन। उसने मार रखा है इन लोगों को पहले से ही जो आज इस युद्ध में आकर खड़े हुए हैं। इनकी मरने की घड़ी आ गई। उसका खेल, तू बीच में मत आ। तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त है। वह तेरे कंधे पर रख कर धनुष को चला रहा है; उसको चलाने दे। कंधा भी तेरा कहां है? वह भी उसी का बनाया हुआ है। और तू भी तेरा कहां है? वह भी उसी का है। इस तरफ जो खड़े हैं युद्ध के मैदान में, वे भी उसी के हैं; उस तरफ जो खड़े हैं वे भी उसी के हैं। कथा भी उसी की लिखी है; खेल भी उसी का है; मंच भी उसी का है; नाटक, नाटक के पात्र सब उसी के हैं। और उसने ही इस तरफ एक तरह की शक्लें बना रखी हैं, और उस तरफ दूसरी तरह की शक्लें बना रखी हैं। तू बीच में मत आ।
सारे जगत के धर्म का सार यह है कि तुम्हें एक बात समझ में आ जाए कि तुम्हारे किए कुछ नहीं होता। और फिर सब होना शुरू हो जाता है। और फिर जो कुछ भी होता है वही तृप्ति देता है। क्योंकि जब मेरे करने का कोई सवाल नहीं तो कैसा विषाद, कैसी हार, कैसी सफलता, कैसी असफलता? जब वही कर रहा है तो वही हारे, वही सफल हो, वही असफल हो। वह जाने, हिसाब-किताब वह रखे। अगर सभी धागे उसी के हैं और हम उसके धागों में लटकी कठपुतलियों की भांति हैं, तो फिर क्या प्रयोजन है? भूल-चूक उसकी, प्रशंसा-निंदा उसकी। हम अपने को बिल्कुल अलग ही कर लेते हैं। और जैसे-जैसे यह समझ गहन होती है वैसे-वैसे अहंकार छोटा होता जाता है। जिस दिन यह बात पूरी दिखाई पड़ जाती है कि अपना कुछ भी नहीं, हम भी अपने नहीं हैं, उसी दिन अहंकार विसर्जित हो जाता है।
और बिना अहंकार के न काम हो सकता है, न क्रोध हो सकता है। बिना अहंकार
के न लोभ हो सकता है, न मोह हो सकता है। बिना अहंकार के न गृहस्थी है, न साधुता है। बिना अहंकार के न बुरा है, न भला है। विभाजन का मूल आधार ही टूट गया। और तब, तब तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं बचा। तब तुम साक्षी ही रह गए। और यह साक्षी होना ही परम मंजिल है। कर्ता होना भ्रांति है; साक्षी होना ज्ञान है। बाहर या भीतर, समाज में या व्यक्ति में, दूसरे में या अपने में, तुम ज्यादा से ज्यादा साक्षी हो।
तुम्हारी पत्नी क्रोध करती है; क्या कर सकते हो? कुछ मत करो। किया कि उपद्रव बढ़ेगा। करने से और आग में घी पड़ेगा। तुम कुछ मत करो। तुम कर ही क्या सकते हो? इस पत्नी को तुमने बनाया नहीं। जिसने बनाया है वह जाने। यह पत्नी तुम्हारे हाथ में कोई वस्तु तो नहीं है कि तुम उसे रंग-रोगन दे दो, बदल दो। इसकी अपनी जीवन-यात्रा है। और क्षण भर का खेल है कि रास्ते पर तुम दोनों मिल गए हो, कि किसी पुरोहित ने एक नाटक रचा दिया और सात चक्कर लगवा दिए हैं। राह पर मिल गए थे; राह पर थोड़ी देर साथ हो; अलग हो जाओगे। दोस्ती क्षण भर की है। साथ चलना क्षण भर का है। उसकी अपनी यात्रा है; तुम्हारी अपनी यात्रा है। अगर वह क्रोधित होती है तो वह जाने। तुम क्या कर सकते हो? तुम सिर्फ साक्षी हो सकते हो।
तुम चेष्टा मत करना उसको सुधारने की। क्योंकि मैं देखता हूं, हजारों गृहस्थियां इसलिए बरबाद हो गई हैं--हो रही हैं--कि या तो पत्नी पति को सुधार रही है या पति पत्नी को सुधार रहा है। और इस सुधारने के धंधे में पत्नियां बहुत ही कुशल हैं; पतियों को सुधारने में लगी हैं। तुम न तो दूसरे को सुधारने की चेष्टा करना। क्योंकि कौन किसको सुधार पाया है? बाप भी बेटे को नहीं सुधार सकता। छोटा सा बेटा, अभी कोई भी ताकत नहीं है; लेकिन उसको भी कोई सुधार नहीं सकता। सुधारा कि तुम बिगाड़ोगे।
लाओत्से कहता है, "जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है।"
जिस बाप ने सोचा कि बेटे को सुधारना है, उसने बिगाड़ा। अच्छे बाप अनिवार्य रूप से बुरे बेटे के जन्मदाता हो जाते हैं। जिस पत्नी ने सोचा कि सुधारना है, कि संबंध नष्ट हुआ, कलह शुरू हुई। जिस समाज ने सोचा कि सुधारना

है; यह करना है, वह करना है; जिस समाज में भी सुधारक और क्रांतिकारी पैदा हो गए वही समाज बरबाद हो गया।
दुनिया अपने से चलती है। यह नदी अपने से बहती है। तुम किनारे बैठ रहो। तुम जितना मौज ले सको, ले लो। और अगर कर्ता का भाव चला जाए, तो पत्नी जब क्रुद्ध होगी तब भी नाटक देखने में तुम मजा ले सकते हो। क्योंकि जब अपने हाथ में ही कुछ नहीं तो यह भाव-भंगिमा भी प्यारी है। परमात्मा करवा रहा है, देखो कि भली-चंगी स्त्री, बुद्धिमान, बर्तन तोड़ रही है। यह खेल देखो, कि गीता-रामायण का अर्थ करके बता देती है, ज्ञान में कमी नहीं है, विश्वविद्यालय की उपाधि लिए बैठी है, और कैसा कृत्य कर रही है! जब ऐसा हो, ऊपर देख कर उसको धन्यवाद देना कि खूब मदारी है तू भी! भले-चंगे लोगों से क्या-क्या करवा लेता है! जब पति शराब पीकर घर आ जाए, ऊधम करने लगे, तब पत्नी को कहना चाहिए कि ऐसा बुद्धिमान आदमी है, जिसको कोई नहीं चला सकता, जिसको कोई धोखा नहीं दे सकता, वह खुद को अपने को धोखा देता है। ऊपर देख कर परमात्मा को धन्यवाद देना कि खूब खेल दिखाया! जरूर तेरा कोई राज होगा। और हम क्या कर सकते हैं? तूने ही पिलाई है, अन्यथा यह घटता ही क्यों? जैसे-जैसे समझ बढ़ती है वैसे-वैसे लगता है, वही एक कर्ता है। और तब सब अहंकार लीन हो जाते हैं। और इस अहंकार-लीनता का ही यह सारा उपाय है अलग-अलग दिशाओं से। ज्ञानी बस एक ही चेष्टा कर रहे हैं कि तुम्हारा अहंकार कैसे गल जाए, तुम कैसे मिट जाओ। तब फिर सब स्वीकार है--बाहर भी, भीतर भी।
ऐसा भी नहीं कि तुम बाहर ही स्वीकार करोगे। यहीं तो लाओत्से की कीमिया बड़ी अदभुत है। लाओत्से कोई साधारण साधु नहीं है। लाओत्से कोई साधारण चरित्रवान नैतिक पुरुष नहीं है; कोई पंडित-पुरोहित नहीं है कि लोगों को चरित्र सिखा रहा है। लाओत्से तो लोगों को जीवन की परम दिशा दे रहा है, जहां चरित्र-दुश्चरित्र किसी चीज का कोई मूल्य नहीं है। लाओत्से कहता है, न तो दूसरे के साथ छेड़खान करना; दूसरे को छोड़ दो उस पर, बीच में बाधा मत डालो। और यही लाओत्से अपने लिए भी कहता है कि अपने साथ भी बहुत छेड़खान मत करो। क्रोध है; इसको हटाना है। कौन हो तुम हटाने वाले? कि कामवासना है, इसे मिटाना है। कौन हो तुम मिटाने वाले? कामवासना से ही पैदा हुए हो; रोएं-रोएं में कामवासना भरी है। कौन हो तुम मिटाने वाले? कैसे तुम ब्रह्मचर्य को लाओगे? क्या करोगे?
नहीं, अड़चन में पड़ जाओगे। व्यर्थ ही अपने साथ लड़ने लगोगे। और जीवन के
जो क्षण उत्सव के हो सकते थे वे अपने ही साथ कलह में बीत जाएंगे। स्वीकार कर लो। और यह स्वीकार आत्यंतिक और परम है। न निंदा करो, न प्रशंसा करो। जैसे हो राजी रहो। और दूसरे के लिए भी। जैसा हो होने का मौका दो दूसरे को। उसे कहो, तू तेरी यात्रा पर है; जो तुझे ठीक लगे, तू कर। जो मुझे ठीक लग रहा है, वह मुझसे हो रहा है। और ठीक और गैर-ठीक लगने का भी क्या सवाल है? जो हो रहा है, वह हो रहा है। जो नहीं हो रहा, वह नहीं हो रहा। तब कैसी अशांति होगी? जब जो हो रहा है, वह हो रहा है, ऐसा भाव बैठ गया, तथाता आ गई, तब फिर कैसी अशांति? कैसी बेचैनी?
और यह भी सब अहंकार का खेल है। अहंकार कहता है कि अच्छे कपड़े पहन कर जाओ, अच्छा चरित्र पहन कर रहो। अहंकार कहता है, तुम इतने बड़े कुल में पैदा हुए, और शराब पीते हो? अहंकार कहता है, तुम्हें यह शोभा नहीं देता, तुम तो मंदिर में ही जंचते हो। कि तुम ऐसे बड़े घर में पैदा हुए, और कामवासना से लिप्त हो? तुम्हें तो ब्रह्मचर्य शोभा देता है। ये सब अहंकार की ही बातें हैं। इन सबको हटाओ। हटाने का मतलब? कुछ हटाने के लिए करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि ये सब भ्रांतियां हैं। इनको हटाने के लिए धक्का देने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ समझने की कोशिश करो।
जीवन की धारा अपने आप बह रही है। वृक्ष बड़े हो रहे हैं। फूल लग रहे हैं। आदमी में वासनाएं लग रही हैं। आकाश में तारे चल रहे हैं। सब अपने से हो रहा है। तुम नियंता नहीं हो, निमित्त हो। विराट तुमसे कुछ करा रहा है, तुम करो।
क्रोध करा रहा है, क्रोध करो। वासना में डाल रहा है, वासना में गिरो। जिस दिन उठाएगा, उठ आना। न गिरना तुम्हारा है, न उठना तुम्हारा है। न तो गिरने में दीन बनो, और न उठने में अकड़ लेना।

इसे समझ लेना। क्योंकि अगर तुमने समझा कि गिरने में दीनता है तो फिर जब तुम उठोगे तो अकड़ से भर जाओगे। तो जो-जो वासना में दीनता समझेगा, ब्रह्मचर्य होकर अकड़ से भर जाएगा। फिर उसकी चाल ही और हो जाएगी। उसके दंभ का कोई ठिकाना नहीं। सभी कुछ उसका है। बुरा-भला सभी उसी को दे दो।
"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है।"
तुम बैठ रहो अपने भीतर की अंतरगुहा में, तुम सिर्फ साक्षी रहो।
"जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"
इसलिए निरंतर यह होता है--लेकिन तुम देखते नहीं, ख्याल में नहीं लेते--
कि जो कामवासना से लड़ता है वह अक्सर कामवासना में फिसल जाता है। जो क्रोध से भरता है और क्रोध से लड़ता है और क्रोध को दबाता है वह महाक्रोधी हो जाता है। नहीं तो दुर्वासा ऋषि कैसे पैदा हों? जो चरित्र की बहुत पकड़ रखता है, कभी उसके हाथ शिथिल हो जाते हैं। आखिर पकड़-पकड़ कर कोई चीज कितनी देर पकड़े रखोगे? कभी तो हाथ को विश्राम देना पड़ेगा। तो संत को भी छुट्टी लेनी पड़ती है संतत्व से। कभी तो उसको भी विश्राम करना पड़ेगा। कब तक लड़ते रहोगे? चौबीस घंटे तो कोई भी नहीं लड़ सकता। बड़े से बड़ा योद्धा भी थकेगा; थकेगा तो विश्राम में जाएगा। तो संत ब्रह्मचर्य से लड़ेगा बारह घंटे, और बारह घंटे कामवासना में चित्त घूमता रहेगा। बारह घंटे भोजन न करेगा, उपवास करेगा, तो बारह घंटे भोजन का चिंतन करेगा, सपने देखेगा।
"जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"
लाओत्से कहता है, हम तुम्हें ऐसी कला सिखाते हैं कि तुम्हारी पकड़ से कोई चीज फिसल ही न पाए। और वह कला यह है कि तुम पकड़ना ही मत। फिर कोई चीज फिसलेगी कैसे? तुम परिग्रह मत करना। तो कोई तुमसे छीन कैसे सकेगा? किसी को तुम जबरदस्ती अपने पास रखने की कोशिश मत करना। नहीं तो जिसको तुम जबरदस्ती पास रखना चाहोगे वह दूर चला जाएगा। तुम पकड़ना ही मत अपने पास रखने के लिए। फिर तुमसे कोई दूर न जा सकेगा।
संत का जीवन बड़ा अतर्क्य है। वह बुद्धि के गेंडे की चाल नहीं है। संत बहुआयामी है। वह जीवन के गहनतम को देखता है। और देखता है कि बड़ी अजीब घटनाएं घटती हैं।
अगर तुमने अपने प्रेम को पकड़ बनाया, तुम्हारा प्रेम नष्ट हो जाएगा। तुमने जिसे प्रेम दिया, उसे अगर तुमने स्वतंत्रता भी दी, दूर जाने की सुविधा भी दी, वह तुमसे कभी दूर न जा सकेगा। उससे हम दूर जाना ही नहीं चाहते जो हमें दूर जाने की सुविधा देता है। दूर तो हम उससे ही जाना चाहते हैं जो हमें पकड़ कर पास रख लेना चाहता है, खूंटे में बांध देना चाहता है। क्योंकि हमारी चेतना स्वतंत्रता चाहती है। जो बांधता है उससे हम मुक्त होना चाहते हैं। जो हमें मुक्त ही रखता है उससे मुक्त होने का क्या उपाय है? उसने हमें किसी ऐसी जंजीर से बांध लिया है, ऐसी सूक्ष्म और अदृश्य जंजीर से, जिससे छूटने का कोई उपाय नहीं। उसने हमें स्वतंत्रता से बांध लिया।
इसलिए अगर तुम सच में ही प्रेम करते हो तो स्वतंत्रता देना। नहीं तो जिसको तुम प्रेम करोगे वही तुमसे दूर जाएगा। तुम्हारे पास अगर सच में ही कोई चीज हो तो तुम उसे दे देना, ताकि कोई तुमसे उसे छीन न सके। तब तुम पहली दफा उसके धनी, मालिक हो जाओगे। लाओत्से कहता था कि जब तक तुम कुछ देते नहीं तब तक तुम उसके मालिक नहीं हो। तुम्हारी पकड़ ही बताती है कि तुम चोर हो। नहीं तो पकड़ोगे क्यों? जो अपनी ही है उसको पकड़ने की क्या जरूरत? देकर ही पहली दफे तुम्हारी मालकियत पता चलती है।
ये बड़ी उलटी बातें लगती हैं बुद्धि को, लेकिन तुम्हारा हृदय समझ सकता है। और तुम्हारे जीवन के अनुभव में भी इसकी छाप जगह-जगह है। अगर तुम थोड़ा विमर्श करो, विचार करो, निरीक्षण करो, तुम जीवन में भी पाओगेः जिसको भी तुमने पकड़ रखना चाहा वह तुमसे दूर जा चुका है। बुद्धि कहती है कि जरा जोर से पकड़ना था; इसलिए दूर चला गया। अगर ठीक से कारागृह बनाया होता और कोई भी रंध्र-द्वार न छोड़ा होता बाहर निकलने का, तो कैसे जाता? और अगर तुमने और जोर से पकड़ा होता तो वह और जल्दी चला गया होता। क्योंकि कारागृह में कौन रहना चाहता है?

जिब्रान ने कहा है, अपने बच्चों को प्रेम देना, लेकिन अपने सिद्धांत नहीं; प्रेम देना, लेकिन अपना अनुभव नहीं; प्रेम देना, लेकिन बांधना नहीं, मुक्त करना। बच्चे तुमसे आते हैं, लेकिन तुम्हारे नहीं हैं। हैं तो वे भी विराट के। इसलिए तुम कौन हो कि उनके ऊपर आचरण का, चरित्र का ढांचा बिठाओ? तुम कौन हो उन्हें कारागृह में डालने वाले? और जितना बड़ा तुम कारागृह बनाओगे, उतने ही जल्दी वे छूट कर बाहर हो जाएंगे। और उचित है कि वे बाहर हो जाएं; नहीं तो वे मर जाएंगे। यह उनकी जीवन-रक्षा के लिए जरूरी है कि वे हट जाएं।
तुमने कभी गौर किया? जीवन में तुमने जो-जो चीज साधनी चाही वही टूट गई। फिर भी तुम जागते नहीं। क्योंकि बुद्धि का गेंडा एक ही बात कहे चला जाता है, वह कहता है, और ठीक से साधनी थी। जो-जो चीज तुमने बचानी चाही वही-वही छूट गई।
जिस-जिस को तुमने सदा के लिए सम्हालना चाहा था, वह सदा के लिए खो गई। फिर भी तुम जागते नहीं।
और अगर तुम बुद्धि की सुनते जाओगे तो वह तुम्हें जागने न देगी।
क्योंकि उसके पास एक निश्चित तर्क है। उससे विपरीत उसे समझ में नहीं आता।
और जीवन एकांगी नहीं है। जीवन अनेकांत है। जीवन बहुआयामी है।
लाओत्से वही बहुआयाम प्रकट कर रहा है। वह कह रहा है कि विरोध नहीं है यहां। यहां जीवन का सीधा सूत्र समझ लो।
"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है। जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है। क्योंकि संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं। क्योंकि वे पकड़ते नहीं हैं, इसलिए वे छूटने भी नहीं देते।"
संत की पकड़ से तुम न छूट पाओगे। तुम लाख उपाय करो, वहां छूटने का उपाय
ही नहीं है। क्योंकि पहले स्थान में वहां पकड़ ही नहीं है। तुम भागोगे कहां? तुम जाओगे कहां? संत वही है जिसके विपरीत जाने का तुम्हारे पास उपाय ही न हो। क्योंकि वह कोई सीमा ही नहीं बनाता। वह कहता ही नहीं कि इस सीमा के बाहर मत जाना। वह तुम्हारे आस-पास कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं खींचता कि इसके बाहर मत निकलना। और जो भी लक्ष्मण-रेखा खींचता हो, समझ लेना, मित्र नहीं है, शत्रु है। क्योंकि अंततः संत तुम्हें स्वतंत्र करना चाहेगा। तुम्हारी स्वतंत्रता ही परम लक्ष्य है। तो वह तुम्हें इस तरह का प्रेम देगा जिसमें पकड़ न हो। तुम दूर जाना चाहोगे तो तुम्हें साथ देगा कि जाओ। तुम्हें पूरा सहयोग देगा दूर जाने में भी।
और तब तुम उससे दूर न जा सकोगे। कैसे जाओगे दूर? कहां जाओगे? ऐसी कोई भी दूरी नहीं है, जहां तुम उसे साथ न पाओगे। क्योंकि वह दूर जाने में तुम्हें साथ देगा।
अगर मां और बाप इस राज को समझ लें कि बेटे को दूर जाने देने में साथ दें
तो सदा बेटा पास रहेगा। क्योंकि जहां भी रहेगा पास रहेगा। लेकिन मां-बाप बुद्धि को सुनते हैं, लक्ष्मण-रेखा खींचते हैं, हर जगह निषेध खड़ा करते हैं, बागुड़ लगाते हैं कि कहीं बाहर मत चले जाना। और तब एक दिन वे अचानक पाते हैं कि घोंसला खाली पड़ा है; पक्षी उड़ चुके हैं। तब वे रोते हैं।
मैं अनेक लोगों को उनकी वृद्धावस्था में एक ही रोग से पीड़ित देखता हूं;
वह रोग है कि उनके बच्चों ने उन्हें छोड़ दिया।
तुमने पकड़ा क्यों? नहीं तो वे तुम्हें छोड़ते कैसे? तुमने पकड़ा, इसलिए
ही छोड़ दिया।
लेकिन बुद्धि कहती है, पकड़ में कमी रह गई। और ठीक से पकड़ना था। पहले ही कहा था कि अच्छी तरह पकड़ो, नहीं तो छूट जाएंगे। तब तुम पछताते हो और रोते हो। और यह बुद्धि का जाल जन्मों-जन्मों से चल रहा है। और इसके दुष्ट-चक्र के तुम बाहर नहीं आ पाते।
"संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं।"
संत बिगाड़ ही नहीं सकता, क्योंकि संत सुधारता नहीं। तुम्हारी सभी धारणाएं लाओत्से के संत को समझने में बाधा बनेंगी। क्योंकि तुम सोचते हो, संत वही है जो सुधारता है; संत वही है जो सारे संसार के उद्धार के लिए पैदा हुआ है। इससे ज्यादा झूठी कोई बात नहीं है। संत किसी का उद्धार नहीं करना

चाहता। उद्धार करने वाले ही तो उपद्रव खड़ा कर देते हैं। संत तो तुम जो भी होना चाहते हो उसमें तुम्हें साथ देता है।
ऐसा हुआ। कोई दो सप्ताह पहले एक वृद्ध सांझ को मुझे मिलने आए थे। और एक युवक ने पूछा कि मैं शादी करना चाहता हूं, आप क्या कहते हैं? मैंने कहा, जरूर करो। और मैंने उसे कैसे वह लड़की चुने, क्या करे, सब बताया। वे वृद्ध तो बड़े बेचैन हो गए। उन्होंने कहा कि मेरी समझ के बाहर है। संत तो मनुष्यों को वासना से उठाने के लिए है। और इस युवक को आप क्यों भटका रहे हैं? इसको सचेत करें कि शादी करना ठीक नहीं। और जब वह पूछने आपसे आया है और निर्णय आप पर छोड़ रहा है तो आप उसे ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?
मैंने कहा, वह मुझसे पूछने ही इसलिए आया है, क्योंकि अगर वह शादी न करना चाहता तो मुझसे पूछने का कोई सवाल ही न था। वह पूछने ही इसलिए आया है। और अगर मैं कहूं मत कर, तो मैं उसे करने के लिए और भी आकर्षित करूंगा। और अगर वह मेरी मान ले और न करे तो जीवन भर पीड़ित और परेशान रहेगा। क्योंकि विवाह एक अनुभव है जिससे गुजरना जरूरी है। आग से भरा है, फफोले पड़ते हैं; लेकिन उनके बिना कोई प्रौढ़ता भी नहीं आती। दूसरे से गुजरना जरूरी है, ताकि तुम अपने पर आ सको। बहुत से दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं, तभी अपना घर मिलता है। और यह अभी बूढ़ा नहीं है; आप बूढ़े हैं। आप उस अनुभव से गुजर चुके हैं। आपको उसकी जलन याद है। आप दूध के जले हैं; अब छाछ भी फूंक-फूंक कर पी रहे हैं। इसको भी जलने दें। तो मेरा कुल काम इतना है कि मैं इसको वह सब कहूं जिससे इतना न जल जाए कि लौटने का उपाय न रहे। जले, अनुभव से गुजरे; लेकिन जीता हुआ वापस लौट आए; नष्ट न हो जाए उस अनुभव में। बस इतना ही मेरा काम है। यह जो भी करना चाहता है, उसमें मैं इसे सहयोग दूं।
अगर चोर भी मुझसे पूछने आए कि मैं कैसे चोरी करूं? तो मैं उसे सम्यक चोरी का रास्ता बताऊंगा। ऐसी चोरी का रास्ता कि वह करे भी और खो भी न जाए; और एक दिन चोरी कर-कर के ही अचोर हो जाए; और एक दिन चोरी के अनुभव से ही ऊपर उठे। कमल कीचड़ से ऊपर उठता है। अचौर्य चोरी से ऊपर उठता है। ब्रह्मचर्य का फूल कामवासना के कीचड़ में ही खिलता है। और जो कीचड़ से ही वंचित हो गया, उसमें फिर फूल कभी न खिल सकेगा। और मैं कौन हूं इसको रोकने वाला? जो जहां जाना चाहता है, मैं तो उसे दीया दे दूंगा बेशर्त कि जहां भी जाए दीए की रोशनी पड़ती रहे। चोरी करने जाए तो दीया दे दूंगा कि चोरी पर रोशनी पड़े, रास्ता अंधेरा न हो; कामवासना में जाए तो दीया दे दूंगा, रोशनी रहे रास्ते पर। क्योंकि असली सवाल यही है कि तुम जो भी करो अगर होश और रोशनी से करो तो तुम्हें कुछ भी बांध न सकेगा। एक न एक दिन रोशनी तुम्हें सब नरकों के बाहर ले आएगी। इसलिए सवाल यह नहीं है कि तुम क्या मत करो, सवाल यह है कि बस होशपूर्वक करो।
संत सुधारते नहीं, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं। और जो सुधारने की कोशिश में लगे हैं, वे बिगाड़ने के मूल आधार हैं। और जितना ही तुम्हारे तथाकथित साधु, जो संत नहीं हैं, जो खुद भी किसी दूसरे के द्वारा सुधारे गए हैं, यानी गहरे में बिगाड़े गए हैं, जो खुद अपने अनुभव से तिरे नहीं हैं और फूल नहीं बने हैं, जो उधार हैं, जो किसी सुधारक के चक्कर में पड़ गए हैं और किसी ने जिन्हें सुधार कर रख दिया है, बस ऊपर-ऊपर उनका सुधारापन है, भीतर-भीतर सब कचरा इकट्ठा है; ये लोग दूसरों को सुधारने में लगे हैं।
एक बात ध्यान रखना, जिस बीमारी से तुम परेशान होते हो तुम उसे फैलाने में लगते हो। संक्रामक हो जाती है। इन्होंने कामवासना को दबा लिया, इन्होंने ब्रह्मचर्य की कसम ले ली, ये पूंछ कटा बैठे हैं, अब यह तुम्हारी पूंछ पर इनकी नजर है। और जब तक तुम्हारी न काट दें तब तक इनको चैन नहीं है। क्योंकि तुम्हारी भी पूंछ कट जाए तो तुम भी इन्हीं के पूंछ-कटे समाज के हिस्से हो जाते हो। फिर तुम भी दूसरों की काटने में लग जाओगे।
तुमने उस लोमड़ी की कहानी पढ़ी न जो पूंछ कटा बैठी थी। किसी गुरु के चक्कर में पड़ गई। गुरु तो सभी जगह हैं। मनुष्यों में भी हैं, लोमड़ियों में भी हैं। वह किसी और गुरु से कटा चुके थे। तो उसने कहा कि जब तक पूंछ न कटाओ तब तक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। और कष्ट से तो गुजरना ही पड़ता है, तपश्चर्या करनी ही पड़ती है। बिना त्याग किए कहीं कुछ मिला है? और पूंछ को छोड़ो। और

पूंछ में है भी क्या! व्यर्थ ही लटकी है; किसी काम की भी नहीं है। और हम देखो इसी को कटा कर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। हमारे गुरु भी इसी को कटा कर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे। और ऐसा सदा से चला आया है।
बातों में पड़ गई लोमड़ी, पूंछ कटा बैठी। कटते ही उसे समझ में आया मिला तो कुछ नहीं, पूंछ भर कट गई। अब दो ही उपाय रहेः या तो वह साफ-साफ कह दे और लोमड़ियों को कि मत कटाना! लेकिन तब अपने अहंकार को बचाने का कोई उपाय न रहा। लोग हंसेंगे, लोमड़ियां हंसेंगी, और कहेंगी, यह पूंछ कटा बैठी। गुरु से उसने कहा, मिला तो कुछ नहीं।
गुरु ने कहा, हमको क्या कुछ मिला है? मगर अब किसी से कहने में कोई सार नहीं। अब तुम भी लोगों को समझाओ कि कटाओ पूंछ। मिला किसको है? मिला किसी को भी नहीं है। यह सदा से ऐसे ही चला आया है। लेकिन जब हम फंस गए तो एक ही रास्ता है अपनी प्रतिष्ठा बचाने का कि अब तुम इसको छिपा लो, अपने दर्द को भीतर रखो, मुस्कुराओ, लोमड़ियों को समझाओ कि कटाओ पूंछ। जब तक हर लोमड़ी की पूंछ न कट जाए तब तक अपनी कोई सुरक्षा नहीं, प्रतिष्ठा नहीं। हम मारे गए। सब जगह यही चल रहा है। तुम जाते हो एक साधु के पास; उसने संसार छोड़ दिया है। वह देख कर ही तुम्हें कहता है, छोड़ो संसार। पत्नी, घर, बच्चे, यही तो जंजाल है। बात भी जंचती है। क्योंकि तुम भी तो मुसीबत झेल रहे हो, जंजाल तो है। और यह आदमी शांत बैठा है। अब तुम्हें पता नहीं कि इनकी पूंछ कट गई है। और यह आदमी भीतर बड़ा परेशान है। इसके मन में गृहस्थी के ही विचार उठते हैं। यह बार-बार स्त्री के संबंध में सोचता है। बार-बार अपने को समझाता है कि अब ठीक नहीं, प्रतिष्ठा के विपरीत है पीछे लौटना। लोग हंसेंगे; जगहंसाई होगी। लोग कहेंगे, भ्रष्ट हो गया। तुम मौका भी नहीं देते कि कोई आदमी की पूंछ कट जाए और वह वापस आए तो तुम उसे स्वीकार भी न करोगे।
एक जैन साधु मुझसे पूछने आए थे। तो मैंने उनसे यही कहा कि जो सत्य है उसको छिपाने की कोई जरूरत नहीं। अगर तुम्हें कुछ भी नहीं मिला इस सब उपवास, त्याग, ढोंग, उपद्रव से, छोड़ दो। उन्होंने कहा, छोड़ तो दें, लेकिन अभी जो लोग मेरे पैर छूते हैं वे ही मुझे जूते मारेंगे। वे कहेंगे, यह भ्रष्ट हो गया। बड़ी मजेदार दुनिया है। यानी इस ईमानदार आदमी को, अगर यह कह दे कि मुझे कुछ नहीं मिला, तो लोग कहेंगे, तुम्हें नहीं मिला, क्योंकि तुम पापी हो, तुमने ठीक से प्रयास नहीं किया। कहीं ऐसा हो सकता है कि इतने दिन से, और इतने पूंछ कटे लोग, और किसी को न मिला हो? सदा से जो चली आ रही है, सनातन जो धर्म है, उसमें तुम्हीं एक ज्ञानी पैदा हुए! तुम्हारे पाप कर्मों की बाधा पड़ रही है। तुम्हीं गड़बड़ हो। लोग यह कहेंगे।
तो मैंने कहा, तुम करते क्या हो? उन्होंने कहा, मैं भी वही समझा रहा हूं लोगों को जिसमें मुझे कुछ नहीं मिला। रोज दिन भर समझाता हूं, रात भर सिर ठोकता हूं कि यह क्या मामला हो गया! और यह भी मैं जानता हूं कि इनको समझा कर मैं ज्यादा से ज्यादा यही करवा सकता हूं जो मैंने किया है। भीतर डर भी लगता है कि यह पाप भी है। लेकिन मैं पढ़ा-लिखा भी नहीं हूं। अगर मैं छोड़ भी दूं-- अभी मैं सब तरह की प्रतिष्ठा का पात्र हूं--अगर मैं छोड़ दूं तो मुझे कोई पचास रुपए की नौकरी यही भक्त नहीं दे सकेंगे जो अभी मेरे पैर छूते हैं और लाखों रुपए लाकर रखते हैं। फिर भी मैंने कहा कि तुम आदमी ईमानदार अगर हो तो यह कष्ट से भी गुजर जाओ; छोड़ दो। देखें, क्या होता है?
सच में ही उसने छोड़ दिया। और वही हुआ जो उसने कहा था। सारे जैनी उसके पीछे पड़ गए कि वह भ्रष्ट हो गया; पापी है; संसार में वापस लौट आया।
एक सभा में हैदराबाद में मैं बोल रहा था तो वह भ्रष्ट--जैनियों की नजरों में, पूंछ कटा आदमी--वह भी मौजूद था। वह मेरे साथ ही सभा-मंडप तक आया और मेरे साथ ही मंच पर जाकर बैठ गया। वह जैनियों का मंदिर था। वहां उपद्रव मच गया। वे मेरी वजह से कुछ कह भी न सके, लेकिन खुसर-पुसर शुरू हो गई कि यह आदमी मंच पर नहीं होना चाहिए। आखिर मेरे पास एक चिट्ठी आई कि और सब ठीक है, इस आदमी को यहां से हटाइए; यह आदमी भ्रष्ट है।
मैंने उनको बहुत समझाया कि यह आदमी भ्रष्ट नहीं है, बहुत ईमानदार है।
और असली त्याग इसने अब किया है कि यह हिम्मत इसने जुटाई। क्योंकि मैं तुम्हारे दूसरे साधुओं को भी जानता हूं। उनसे भी मेरी अंतरंग बातें हुई

हैं। और उनको भी मैंने इसी हालत में पाया है। लेकिन यह आदमी ईमानदार है। उन्होंने कहा, यह आप भ्रष्टाचार फैलवा रहे हैं; इसको नीचे उतारो। आखिर उन्होंने इतना उपद्रव मचाया कि वे चढ़ बैठे मंच पर और उस आदमी को खींच लिया नीचे; उसकी मार-पीट कर दी। और वह आदमी सच में ईमानदार है। जब नहीं मिला कुछ तो वह कह रहा है कि भई मुझे नहीं मिला। लेकिन ईमानदारी की थोड़े ही पूजा है! बेईमान पूजे जाते हैं।
यह कटी-पूंछ वाली लोमड़ी अगर लोगों से जाकर कहेगी कि हम फिजूल कट गए, तुम
मत कटवाना, तो लोमड़ियां ही इस पर हंसेंगी कि ऐसा कहीं होता है? सनातन से पूंछ कटे हुए लोग ज्ञान को उपलब्ध होते रहे हैं।
बड़ा दुष्ट जाल है। तुम भी जानते हो कि तुमने भी बहुत उपाय करके देख लिए हैं, वे व्यर्थ जाते हैं, फिर भी तुम किसी को कहते नहीं कि वे व्यर्थ जाते हैं। तुम भी अपने मन को समझा लेते हो कि चुप ही रहो। क्योंकि लोग यही कहेंगे कि उपाय तो गलत हो ही नहीं सकते, तुम ही गलत होओगे। अपने को ढांके हुए हो। लाओत्से उसी को संत कहता है जो न तो किसी को सुधारने में उत्सुक है और इसलिए किसी को बिगाड़ने का कारण नहीं बनता। संत की तो भाव-दशा यह है कि जो हो रहा है उसे वह और सुगमता से होने के लिए तुम्हें मार्ग दे। और तुम्हें सहयोग दे कि ठीक है, तुम पश्चिम जा रहे हो, जाओ; मेरे आशीर्वाद। और पश्चिम में मैं भी गया हूं; उस रास्ते पर ये-ये कठिनाइयां हैं, बच सको तो ठीक। और उससे लौटने के उपाय हैं, ख्याल में रखना। कभी जरूरत पड़े तो लौट आना। लेकिन जहां जा रहे हो, जाओ। क्योंकि दूसरे की नियति में जरा भी अड़चन डालनी पाप है। दूसरे के अपने यात्रा-पथ में जबरदस्ती करनी उपद्रव है। और जो भी जबरदस्ती करते हैं वे इसीलिए करते हैं कि वे खुद अपने साथ जबरदस्ती कर रहे हैं, और वही वे दूसरों के साथ करना चाहेंगे।
इसे तुम नियम समझ लो कि जिस आदमी ने अपने साथ जबरदस्ती की है वह दूसरों
के साथ जबरदस्ती करेगा। क्योंकि हम जो अपने साथ करते हैं वही हम दूसरों के साथ करते हैं। और जिस आदमी ने अपने साथ कोई जबरदस्ती नहीं की, जिसने स्वाभाविक रूप से, सरलता से सत्य की प्रतीति की है, जो सहज समाधि को उपलब्ध हुआ है, वह किसी के साथ जबरदस्ती नहीं करता। और असहज कहीं कोई समाधि होती है? सहज ही समाधि है।
संत तुम्हारे साथ कोई जबरदस्ती नहीं करता। यह बड़ा कठिन है हमें समझना। क्योंकि संत की हमारी धारणा यही है कि वह हमें सुधारता है। उसके पास जाओ तो वह सुधारेगा। जब सुधरना हो तो उसके पास जाओ। वह जैसे कोई चिकित्सक है, जब तुम बीमार हुए तब जाओ; वह तुम्हारा इलाज करेगा।
नहीं, संत का होना सिर्फ एक ही अर्थ रखता है और वह अर्थ यह है कि जैसा सरल वह हो गया है वैसा ही सरल होने की तुम्हें भी वह सुविधा जुटा दे। सरलता का अर्थ हैः कर्म नहीं, साक्षी; कर्ता नहीं, द्रष्टा।
"मनुष्य के कारबार अक्सर पूरे होने के करीब आकर बिगड़ते हैं। आरंभ की तरह ही अंत में भी सचेत रहने से असफलता से बचा जा सकता है।"
इसलिए संत सिर्फ एक ही सूत्र देते हैं, एक दीया देते हैं, कि तुम सचेत रहो; तुम जहां भी जाओ, तुम जो भी करो, सचेत रहो। बुरा करने का मन है, करो। क्योंकि तुम कर क्या सकते हो अब? इस मन को दबाओगे तो बुराई इकट्ठी होगी; आज नहीं कल फूटेगी। तुम करो। लेकिन सचेत होकर करो। और बड़ी अदभुत कीमिया है सचेत होने की। क्योंकि जैसे ही तुम सचेत होते हो, बुराई अपने आप कम होती जाती है। सचेत रह कर कभी कोई बुरा कर सका है? सब बुराई बेहोशी में होती है। सब बुराई एक तरह का पागलपन है। सब बुराई तुम जब होश खो देते हो तभी संभव है। इसलिए एक ही सदगुण संत देते हैं कि तुम जागे रहो; तुम होशपूर्वक करो, तुम जो भी करो। कामवासना में जाओ तो होशपूर्वक जाओ; उसे भी ध्यान बनाओ। जल्दी ही तुम उसके पार हो जाओगे। और वह पार होना अलग होगा। वह दमन न होगा, वह अनुभव से पार होना होगा। वह अतिक्रमण अदभुत है। उस अतिक्रमण में कोई दंश न होगा। वह अतिक्रमण ऐसा ही सहज है जैसे फूल लगते हैं। कोई लगाता थोड़े ही है! जैसे घास बढ़ती है अपने आप। झेन फकीर कहते हैं, दि ग्रास ग्रोज बाई इटसेल्फ। कुछ करना थोड़े ही होता है, घास अपने से बढ़ती है। ऐसे ही ब्रह्मचर्य अपने से बढ़ता है, होश हो तो करुणा अपने से बढ़ती है, होश हो तो अहिंसा अपने आप आती है।

कोई व्रत-नियम थोड़े ही लेने पड़ते हैं, कोई ठोंक-पीट कर थोड़े ही अहिंसक हो सकता है। कोई जबरदस्ती अपने को दबा-दबा कर कभी प्रेम से भरा है! घृणा से भला भर जाए, प्रेम से भरने का यह रास्ता नहीं।
संत तो एक ही बात कहते हैं, "कामनारहित होने की कामना करते हैं।"
ये भी सब कामनाएं हैं कि मैं क्रोध से मुक्त हो जाऊं, कि मैं मोक्ष पा लूं, कि ब्रह्मचर्य मेरे जीवन में फलित हो जाए। ये भी सब कामनाएं हैं; ये भी सब वासनाएं हैं; ये भी सब इच्छाएं हैं। संत तो एक ही कामना करते हैं-- कामनारहित होने की। और कामनारहित होना होश की छाया से फलित होता है। क्योंकि जितना-जितना तुम होशपूर्वक कामना में उतरते हो उतना ही उतना तुम पाते हो, कैसा पागलपन! यह तुम क्या कर रहे हो! करने योग्य ही नहीं मालूम होता। भीतर से रस ही खो जाता है। भीतर से दौड़ नहीं उठती; वासना के बीज दग्ध हो जाते हैं। होश की अग्नि में वासना के बीज दग्ध हो जाते हैं।
और जिस दिन तुम कामनारहित हो उस दिन कोई ईश्वर की कामना थोड़े ही करनी पड़ती है! कि मोक्ष की कामना करनी पड़ती है! कामनारहित होना मुक्ति है, कामनारहित हो जाना मोक्ष है। कामनारहित हो जाना ईश्वर हो जाना है। इसलिए ईश्वर की कामना शब्द गलत है, मोक्ष की कामना शब्द गलत है।
अब तुम फर्क समझ लोगे। तुम्हारा साधु मोक्ष की कामना कर रहा है। पहले संसार की कामना कर रहा था, अब किसी ने उसकी पूंछ काट दी, अब वह मोक्ष की कामना कर रहा है। लेकिन कामना नहीं कटी, कामना बदल गई। आब्जेक्ट बदल गया, कामना का विषय बदल गया। कल धन चाहते थे, अब आत्मा चाहते हैं। कल यश चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हैं। कल साम्राज्य चाहते थे, अब मोक्ष चाहते हैं। लेकिन चाह जारी है। यही असली साधु और नकली साधु का फर्क है।
चाह जारी है। धार्मिक रंग हो गया चाह पर, लेकिन चाह जारी है। यह झूठा साधु है। यह जीवन से साधुता को उपलब्ध नहीं हुआ, यह किसी का उपदेश सुन कर साधु हो गया है। किसी ने इसका सिर मूंड़ दिया। यह अपने अनुभव से नहीं आया है। यह किसी की बात में पड़ गया, यह किसी सेल्समैन के चक्कर में आ गया। किसी ने पाठ पढ़ा दिया इसको। और सब तरफ जैसे बाजार में सेल्समैन हैं जो चीजें बेचने की कला जानते हैं, वैसे ही मंदिरों, मस्जिदों और चर्चों में भी सेल्समैन बैठे हैं। उनका नाम पुरोहित, पंडित, पुजारी; तुम जो चाहो कहो। वे भी वहां धर्म बेच रहे हैं। दुकानें हैं जहां संसार बिकता है; दुकानें हैं जहां धर्म बिकता है। और तुम संसार की दुकानों में भी लूटे जाते हो और धर्म की दुकानों में भी लूटे जाते हो।
मैंने सुना है कि दो सेल्समैन आपस में बात कर रहे थे। एक ने कहा, आज मैंने गजब कर दिया। एक आदमी को जमीन बेची थी, और जमीन कोई आठ फीट गड्ढे में थी। मगर मैंने वह बातें कीं उसको कि जंचा दी; पढ़ा दिया पाठ। जमीन तो उसने खरीद ली। लेकिन दो दिन बाद, संयोग की बात, वर्षा हो गई; और वह पूरा गड्ढा पानी से भर गया। वह मेरे पास चिल्लाता-चीखता आया कि इस जमीन का क्या करेंगे? इसमें तो आठ फीट पानी भर आया, यह तो झील हो गई। इसमें कोई मकान बन सकता है? कि खेतीबाड़ी हो सकती है? कि कुछ भी हो सकता है? तो मैंने उसे एक मोटर बोट भी बेच दी।
दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं। इससे भी बड़ी घटना आज मेरे जीवन में घटी है। एक औरत आई, उसका पति मर गया है। तो मरते वक्त ड्रेस पहनानी पड़ती है एक खास तरह की। मैंने उसको दो जोड़ी ड्रेस बेच दीं कि कभी-कभी बदलाहट के लिए भी ठीक रहेगा। वह आदमी मर चुका है। उसको मरघट पहुंचाने के लिए एक पोशाक की जरूरत है। मैंने दो बेच दीं। और उसको जंच गई बात कि यह तो बात ठीक ही है कि एक ही ड्रेस सदा पहने रहना। तो दूसरी ड्रेस भी ताबूत में साथ रख दी।
बाजार में लूट है; वहां दुकानदार तुम्हें चीजें बेच रहे हैं। मंदिरों में लूट है; वहां भी दुकानदार तुम्हें परलोक की चीजें बेच रहे हैं।
संत तुम्हारी वासना को एक दिशा से दूसरी दिशा में नहीं लगाता। संत तो कहता है कि सभी वासनाएं एक सी हैं, वासना का स्वभाव एक सा है। चाहे तुम धन चाहो, चाहे पुण्य चाहो, वासना की प्रकृति में कोई फर्क नहीं पड़ता। कामना का एक सा ही जाल है। कामना का अर्थ है कि तुम जो हो उससे तृप्त नहीं, कुछ और चाहते हो। संत तो तुम्हें तुम जो हो उससे तृप्त होना सिखाते हैं। वह

परितोष, वह कंटेंटमेंट कि तुम जो हो ठीक हो; तुम अपने होने से राजी हो। ऐसा ही क्षण कामनारहित क्षण है। और उसी कामनारहितता में मोक्ष का फूल खिलता है। उसी कामनारहितता में तुम अपने ईश्वरत्व को अनुभव करते हो। उसी कामनारहितता में जीवन की आखिरी घटना घट जाती है। जो न घटे तो तुम रोते रहोगे। दुकानें बदलोगे, मंदिर बदलोगे, इस चर्च से उस चर्च में जाओगे, यह सब फैलाव व्यापार का है।
"संत कामनारहित होने की कामना करते हैं। और कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य नहीं देते।"
लेकिन तुम जिन साधुओं को जानते हो वे सब कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य देते हैं। वे कहते हैं, तप करो, तपश्चर्या करो, यह बड़ी कठिन है; उपवास करो, भूखे मरो, यह बड़ी कठिन है। क्योंकि कोई मोक्ष सस्ता थोड़े ही है? बहुत मंहगी चीज है; अपना सब कुछ नष्ट करो तब मिलेगा।
संत कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य ही नहीं देते, क्योंकि वे कहते हैं, कठिनता से जो भी चीज प्राप्त होती है वह अहंकार का आभूषण है। अहंकार कठिन से आकर्षित होता है। जितना कठिन हो उतनी आकांक्षा पैदा होती है पाने की।
कोहिनूर की कीमत है, क्योंकि वह अकेला है। उसको पाना कठिन है। कोहिनूर अगर सब तरफ पड़े हों कंकड़-पत्थरों की तरह गांव-गांव, राह-राह, कौन फिक्र करेगा? सरल को कोई फिक्र ही नहीं करता, कठिन की लोग फिक्र करते हैं। कोहिनूर की कीमत यही है कि वह न्यून है, न के बराबर है।
संन्यास सरल होना चाहिए, कठिन नहीं। नहीं तो वह कोहिनूर बन जाएगा। इसलिए तो मैं संन्यास ऐसे बांटता हूं। उसमें कठिनता रखने की जरूरत ही नहीं। क्या उत्सव मनाना?
कोई संन्यास लेता है तो बड़ा उत्सव मनाया जाता है, बैंड-बाजे बजाए जाते हैं, जुलूस, शोभा-यात्रा निकलती है; जैसे कोई खास बात हो रही है। तुम संन्यास को भी बाजार में ला देते हो। और ध्यान रखना, जो बैंड-बाजे बजा कर तुम्हें संन्यास दिलवा रहे हैं, अगर तुम संन्यास से हटे तो जूते भी मारेंगे। क्योंकि इनके बैंड-बाजे तुमने बेकार कर दिए। फिर तुमको मंच पर न बैठने देंगे। फिर कहेंगे, यह आदमी पापी है। क्योंकि यह तो ठीक है, यह तो सीधा-साफ सौदा है। गणित में कोई अड़चन नहीं है। इनसे सावधान रहना जो बैंड-बाजे बजाएं, ये बड़े खतरनाक हैं। ये पूंछ भी काटे ले रहे हैं और पीछे लौटने का रास्ता भी बंद किए दे रहे हैं।
संन्यास तो सरल बात है; भाव-दशा है। इसमें कोई बैंड-बाजे की जरूरत है? लोग मुझसे पूछते हैं, आप ऐसे ही दीक्षा दे देते हैं? कोई समारोह नहीं! समारोह में जो दीक्षा मिलती है वह अहंकार की है। यह तो चुपचाप का नाता है, इसमें क्या समारोह? किसको बताना है? यह तुम्हारी बात है। इसका कोई बाजार से लेना-देना नहीं है। चुपचाप।
सरल का मूल्य है संत के सामने; साधुओं के सामने कठिन का मूल्य है। साधु
को तुम ऊपर क्यों बिठाते हो? तुम पैर क्यों छूते हो? क्योंकि साधु ने कुछ ऐसी कठिन चीजें कर दिखाई हैं जो तुम नहीं कर सकते। बस और तो कोई कारण नहीं है। साधु कांटे पर लेटा है। चाहे जड़बुद्धि हो, लेकिन कांटे पर लेटा है। तुम नहीं लेट सकते। और ध्यान रखना, जड़बुद्धि आसानी से लेट सकते हैं, क्योंकि उनकी संवेदनशीलता कम होती है। उनमें बुद्धि ही नहीं जिसको पता चले कि कांटा चुभ रहा है। मोटी चमड़ी के लोग हैं। तुम दर्शन करके कृतकृत्य हो जाते हो कि धन्यभाग, जो हम नहीं कर सकते।
लेकिन बड़े आश्चर्य की बात यह है कि सिर्फ कठिन होने से कोई चीज मूल्यवान हो जाती है? माना कि यह कठिन है कांटों पर लेटना, लेकिन कठिन होने से मूल्य क्या है? सिर के बल खड़े होना कठिन है। तो जो आदमी सिर के बल खड़ा है मान लो तीन घंटे, चार घंटे, तुम चमत्कृत हो जाते हो, चरण छूने पहुंच जाते हो कि तुमने गजब कर दिया। क्योंकि तुम पांच मिनट भी नहीं खड़े रह सकते। उलटा- सीधा करना कठिन तो है, लेकिन उससे स्वभाव का क्या लेना-देना है? एक आदमी तीस दिन का उपवास कर लेता है; बस बड़ी महत्व की बात हो गई। माना कि भूखा मरना कठिन है, लेकिन कठिन होने का मूल्य क्या है?

ईसाई फकीर हुए हैं जो कि पैर में कांटे, जूतों में खीलें ठोंके रहते थे अंदर। जरा सा जूता काटता हो तो कितनी तकलीफ होती है! वे दस-पंद्रह खीलें अंदर लगाए रखते थे। उनके पैरों में घाव हो जाते थे, और उन्हीं जूतों पर वे चलते थे। लोग उनके चरणों पर गिरते थे कि बड़ा कठिन कार्य कर रहे हैं। मगर जूतों पर खीलें ठोंकने से कोई मोक्ष का लेना-देना है? कभी तो थोड़ा सोचो कि इससे लेना-देना क्या है? तुम सिर्फ बुद्धिहीन हो, यह तो पता चलता है। तुम जड़ हो, यह भी पता चलता है। तुम्हारी संवेदनशीलता को तुम मार रहे हो, यह भी पता चलता है। लेकिन इससे तुम मोक्ष जा रहे हो, यह तो पता नहीं चलता।
बहुत से फकीर हुए हैं दुनिया में जो कोड़े मारते हैं अपने को। आज भी उनके संप्रदाय हैं। तो जो फकीर जितने ज्यादा कोड़े मारता है उतना ही बड़ा फकीर समझा जाता है। लोग गिनती रखते हैं, कौन सौ मारता है सुबह, कौन डेढ़ सौ मारता है। चमड़ी उधड़ जाती है। और लोग देखने पहुंचते हैं। ये लोग भी हद्द नालायक हैं! ये लोग तो मूढ़ हैं ही जो मार रहे हैं; लेकिन जो देखने पहुंचते हैं ये भी बड़ी दुष्ट प्रकृति के लोग हैं।
मेरा अपना अनुभव यह है कि जहां-जहां कोई अपने को सता रहा है, किसी भी रूप में--उपवास से, कोड़े मार कर, खीलों पर सोकर, कांटों पर लेट कर--जहां-जहां कोई अपने को सता रहा है, और जो लोग उनको पूज रहे हैं, ये पूजने वाले लोग दुष्ट हैं, ये भयंकर हिंसात्मक लोग हैं, इन्होंने बड़ी तरकीब निकाल ली हैः ये पूजा देकर इन नासमझों को आत्महिंसा करने के लिए उकसा रहे हैं।
दो तरह के लोग हैं दुनिया में। तीसरे तरह के लोग नहीं पाए जाते, क्योंकि वे संत हैं। एक तरह के लोग हैं जिनको मनोवैज्ञानिक मैसोचिस्ट कहते हैं, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं। यह भयंकर हिंसात्मक... यह रोग है। और दूसरे तरह के लोग हैं, जिनको मनोवैज्ञानिक सैडिस्ट कहते हैं; ये दूसरों को सताने में मजा लेते हैं। यह भी रोग है। और तीसरे तरह का आदमी संत है--न तो खुद को सताता, न किसी दूसरे को सताता। सताने में उसका कोई रस ही नहीं है। सताना भी कोई बात है? जो सीधा-सरल है।
जैन मुनियों को मैं देखता हूं तो पाता हूं, ये मैसोचिस्ट हैं। अगर ये पश्चिम में हों तो इनका इलाज हो। पूरब में इनको पूजा मिल रही है। ये दुष्ट हैं, ये अपने को सता रहे हैं। और इनके आस-पास जो लोग, कतार देखता हूं मैं बैंड-बाजे बजाने वालों की, ये भी दुष्ट हैं। ये इनके सताए जाने में मजा ले रहे हैं। ये रस ले रहे हैं कि धन्यभाग कि आपने तीस दिन का उपवास किया! इसमें धन्यभाग क्या है? इस आदमी ने अपने को सताया। इस आदमी ने शरीर के साथ दुष्टता की। इसने शरीर के रोएं-रोएं को तड़फाया। और यह तड़फाना आसान हो जाता है अगर पूजा मिल रही हो। आदमी का अहंकार ऐसा है कि तुम उससे कोई भी मूढ़ता करवा सकते हो अगर पूजा मिले। अगर तुम पूजने लगो उस आदमी को जो नाक कटाएगा, तुम पाओगे कई नाक कटाने वाले तैयार हो गए। क्योंकि पूजा मिलती हो नाक कटाने से... ।
तुम पूजा देने को राजी हो जाओ, और कोई न कोई तत्क्षण वही काम करने को राजी हो जाएगा जिसको तुम पूजा देते हो। क्योंकि इतनी सस्ती पूजा मिलती हो, सिर्फ नाक कटाने से, तो कटा लो; एक दफा कटाई, सदा के लिए पूजा मिल गई।
संत न तो सताता है अपने को, न दूसरे को। संत कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य ही नहीं देता। क्योंकि कठिनता का सारा मूल्य अहंकार में है।
एवरेस्ट पर चढ़ने का मजा यही है कि कोई दूसरा नहीं चढ़ पाया और मैं चढ़ कर बता दिया। हिलेरी को कौन सा मजा मिला? यही मजा मिला कि मनुष्य-जाति में मैं पहला हूं जो एवरेस्ट पर चढ़ गया। एक अहंकार की तृप्ति हुई। किसी ने हिलेरी से पूछा कि आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने का इतना आकर्षण क्या है? फायदा क्या है? वहां पहुंच कर होगा क्या? हिलेरी भी कुछ किया नहीं, पहुंच कर वापस लौट आया। करने को वहां कुछ है भी नहीं। हिलेरी ने कहा, यह सवाल ही नहीं है। जब तक एवरेस्ट है, तब तक मनुष्य को चुनौती थी; उसे पार करना ही होगा।
पार करना ही होगा! क्यों? चांद पर पहुंचना ही होगा! क्यों? मंगल पर पहुंचना ही होगा! क्यों? क्योंकि मंगल है, और चुनौती है। यह तर्क उतना ही बचकाना है कि एक छोटे बच्चे की मां उससे पूछ रही थी कि तूने स्कूल में उस

लड़की के मुंह में मिट्टी क्यों फेंकी? तुझसे ऐसी आशा नहीं है। उसने कहा, मैं क्या करूं, उसका मुंह खुला था।
तुम्हारे एवरेस्ट और चांद पर पहुंचने वाले लोग बस इतनी ही बुद्धि के हैं। चांद है, इसलिए पहुंचना पड़ेगा। अब इसमें कोई वश ही नहीं है। एक अदम्य आकर्षण है--जो किसी ने नहीं किया वह मैं करके दिखा दूं। कठिन में अहंकार को तृप्ति है। सरल में अहंकार कभी उत्सुक नहीं होता।
झेन फकीर बोकोजू ने कहा है। कोई ने पूछा कि क्या हुआ तुम्हारे निर्वाण से? तो उसने कहा, क्या हुआ? लकड़ी काटता हूं, आश्रम में लाता हूं; पानी भरता हूं कुएं से, रोटी बनाता हूं। और तो कुछ भी नहीं हुआ।
इसमें क्या तुम्हें आकर्षण होगा! लकड़ी काटना, पानी भरना, ऐसी सरल बात निर्वाण में? बस यही हुआ?
लेकिन तुम चूक जाओगे। यह बोकोजू संत है जिसकी चर्चा लाओत्से कर रहा है। यह कह रहा है, जीवन सरल हो गया। भूख लगती है, रोटी बनाते हैं; ठंड लगती है, जंगल से लकड़ी काट लाते हैं; प्यास लगती है, कुएं से पानी भरते हैं। ऐसा सरल हो गया। अब कोई जटिलता न रही।
लेकिन कुएं से पानी भरने में कौन पूजा देगा? सभी लोग भर रहे हैं। तुम कहोगे, इसमें क्या सार है! लकड़ी सभी काट रहे हैं। इसमें क्या सार है! फिर संसारी और इस बोकोजू में फर्क क्या है?
फर्क बड़ा गहरा है। संसार के लोग इन साधारण चीजों को बेमन से कर रहे हैं, क्योंकि उनका रस तो असाधारण को करने में है। तुम बाजार जाते हो; दुकान पर बैठ कर अच्छा नहीं लगता। तुम यह मत सोचना कि तुम दुकान से मुक्त हो गए हो। तुम कोई बड़ी दुकान चाहते हो। ये छोटे-मोटे काम तुम जैसे बड़े आदमी को शोभा नहीं देते। बैठे हैं, कपड़ा सी रहे हैं, या कपड़ा बुन रहे हैं। तुम जैसा बड़ा आदमी और ऐसे छोटे-छोटे काम में लगा है; लकड़ी काटे, पानी भरे, तुम्हें शोभा नहीं देते। तुम्हें तो शोभा देता है, बनारस में कांटों की सेज पर लेटे हैं। तुम्हें कुछ विशिष्ट होना तुम्हारा आकर्षण है।
एक दूसरे झेन फकीर दोजो से किसी ने पूछा कि तुम करते क्या हो अब जब कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए? उसने कहा, जब नींद आती है, सो जाते हैं; जब प्यास लगती है, पानी पी लेते हैं। और तो कुछ करने को है नहीं।
इन संतों को तुम न समझ पाओगे। क्योंकि ये तुम्हारे करने के जगत में, जहां असंभव को आकर्षण माना जाता है, जहां कठिन की पूजा होती है, उसके बिल्कुल बाहर हैं। ये किसी दूसरे ही मूल्य के इंद्रधनुष पर जीते हैं। तुम्हारे मूल्य के इंद्रधनुष से इनका कोई संबंध नहीं। तुम्हारे मूल्य की पटरी से इनका कोई लेना-देना नहीं। तुम इनको पहचान ही न पाओगे। सच्चा संत तुम्हें रास्ते पर मिले तो पहले तो तुम्हें दिखाई ही न पड़ेगा। दिखाई भी पड़ जाए तो तुम पहचान न सकोगे। कोई तुम्हें कह भी दे तो तुम भरोसा न ला सकोगे। क्योंकि इसमें कुछ खास तो दिखाई नहीं पड़ता। खास का संतत्व से कुछ संबंध नहीं है। अति साधारण हो रहने में ही संतत्व की असाधारणता है।
"कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को संत मूल्य नहीं देते। वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो।"
तुम्हारे भीतर अनसीखा क्या है? वही सीखने योग्य है। तुम्हारे भीतर अनसीखा वही है जो तुम लेकर आएः स्वभाव। शेष सब तो तुम्हें सिखाया है समाज ने, परिवार ने, माता-पिता ने, गुरुजनों ने। तुम, जो-जो तुम्हें सिखाया गया है, उसे हटाओ। और जो-जो तुम्हारे भीतर अनसीखा है, जो तुम लाए थे जन्म के साथ, उसे उघाड़ो। वह अनसीखा ही सीखने योग्य है। क्योंकि वही तुम्हारी आत्मा है, वही तुम्हारा स्वभाव है।
"वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो।"
वे स्वभाव को सीखते हैं। संस्कृति से उनका कोई लेना-देना नहीं। संस्कृति दूसरों की सिखाई हुई है। नैतिकता से उनका कोई लेना-देना नहीं; दूसरों की सिखाई हुई है। अच्छे-बुरे से उनका कोई लेना-देना नहीं; दूसरों के सिखाए हुए हैं। वे तो उसी को सीखने की कोशिश करते हैं जिसे वे लेकर आए थे, जो परमात्मा का दिया हुआ है, जो प्रकृति का दान है, जो उनका होना है, बीइंग है। वह सब हटा देते हैं जो-जो सिखाया गया है। वह सब कचरा है। वह सब कंडीशनिंग है,

वह संस्कार है। उन संस्कार से संस्कृति पैदा होती है। वह बासा है, उधार है; दूसरों की आज्ञाओं का पालन है। वह दूसरों के द्वारा चलाए जाना है।
नहीं, वे अपने स्वभाव में जीना चाहते हैं; स्वभाव को पहचानते हैं और उसी में डूब रहते हैं। उसी स्वभाव में वे उठते हैं, बैठते हैं। उसी स्वभाव में वे चलते हैं, उसी स्वभाव में बोलते हैं, मौन होते हैं। लेकिन एक चीज से वे जुड़े रहते हैं--जो उनके भीतर अनसीखा है, अनलर्न्ड, जिसको किसी ने उन्हें सिखाया नहीं।
सिखाए से बचना। वही तुम्हारा ज्ञान बन गया है। असली ज्ञान अनसिखाए में छिपा है। और जिस दिन उस अनसिखाए का उदभव होता है उस दिन तुम सरलतम हो जाते हो। तुम फिर से पुनः एक बालक की भांति हो जाते हो।
"और वे उसे ही पुनः स्थापित करते हैं जिसे समुदाय ने खो दिया है।"
समाज के हिस्से होकर ही तो तुम भटक गए हो। भीड़ के साथ तुम एक हो गए हो। लोग जो कहते हैं वह तुम करते हो। लोग जो बताते हैं वह तुम मानते हो। लोग जो समझाते हैं वही तुम्हारी समझ है। तुमने अपना चेहरा खो दिया है। तुमने अपना स्वभाव, स्वरूप खो दिया है। तुम समाज की भीड़ में दब गए हो।
जो समुदाय ने खो दिया है उसे पाने की चेष्टा ही धर्म है। इसलिए धर्म कोई सामाजिक घटना नहीं है।
लोग धर्म को भी सामाजिक घटना बना लिए हैं। लोग चर्च जाते हैं रविवार
को, क्योंकि सामाजिक बात है। न जाएं तो समाज में चर्चा होती है। एक औपचारिकता है, निभाना है; चले जाते हैं। लोग मंदिर चले जाते हैं, पूजा कर लेते हैं; क्योंकि समाज को ध्यान में रखना है। धर्म भी समाज से जोड़ कर रखा है तुमने? तो तुम्हारा धर्म भी झूठा है। इसलिए तुम्हारा धर्म जैन है, हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, बौद्ध है। यह सब झूठ है। वास्तविक धर्म का कोई नाम नहीं है। और वास्तविक धर्म एक ही है, वह है अपने स्वभाव में जीना। धर्म का अर्थ ही स्वभाव है। इसलिए धर्म संस्कृति का अतिक्रमण कर जाता है। वह पार है।
"वे उसे ही पुनः स्थापित करते हैं जिसे समुदाय ने खो दिया है।"
वे अपने बालपन को पुनः पाने की कोशिश करते हैं जिसे समाज ने छिपा दिया है, ढांक दिया है। वे फिर से निर्दोष बच्चे की भांति होने के प्रयास में संलग्न हो जाते हैं।
एक बच्चे को देखो। अभी उसके लिए कोई आदर्श नहीं है। अभी वह हंसता है तो हंसता है, रोता है तो रोता है। न रोने में उसे कोई बुराई दिखती है, न हंसने में कोई भलाई दिखती है। प्रेमपूर्ण हो तो बड़ा सदय हो जाता है, क्रोध से भरा हो तो बड़ा निर्दय हो जाता है। अभी उसे कोई नीति नहीं, अभी कोई नियम नहीं। अभी समाज प्रविष्ट नहीं हुआ। अभी वह स्वभाव में है। इसलिए तो सारे बच्चे प्यारे और सुंदर होते हैं। स्वभाव का सौंदर्य अनुपम है।
लेकिन बच्चे भी फीके हैं एक संत के सामने। क्योंकि बच्चों का स्वभाव टूटेगा। संस्कृति आएगी, समाज हावी होगा। बच्चे अज्ञान में निर्दोष हैं। उनका अज्ञान ज्यादा देर न टिकेगा। ज्ञान चारों तरफ से भेजा जा रहा है। और उसकी भी जरूरत है। नहीं तो बच्चा कभी समाज का अंग न हो सकेगा। बच्चा फिर कुछ सीख ही न सकेगा। फिर समाज के अनुभव से वंचित रह जाएगा, जो कि जरूरी है। अपने को खोना जरूरी है, ताकि तुम जब पुनः अपने को पाओ तब तुम समझ पाओ कि अपने होने में क्या राज है। खोए बिना पता नहीं चलता। अगर तुम सदा ही स्वस्थ रहो, बीमार न हो, तुम्हें स्वास्थ्य का पता ही न चलेगा कि स्वास्थ्य क्या है। बीमार हो जाओ तब पहली दफा पता चलता है स्वास्थ्य की गरिमा, अहोभाव। खोना जरूरी है पाने के लिए। वह पाने की प्रक्रिया है।
लेकिन बहुत से लोग खोकर ही मर जाते हैं--बिना पुनः पाए। बच्चे की तरह पैदा होओ, संत की तरह मरो। तुम्हारा जीवन-वर्तुल पूरा हो गया। बच्चे की तरह पैदा होओ, संत की तरह मरो। इसका अर्थ हुआ कि बच्चे में जो निर्दोषता थी अज्ञान में, उसे तुम ज्ञानपूर्वक, अनुभवपूर्वक, जीवन की सारी स्थितियों से गुजर कर, प्रौढ़ता को पाकर पुनः उपलब्ध कर लो, फिर से तुम बच्चे हो जाओ।
और जब कभी कोई बूढ़ा पुनः बच्चे की तरह निर्दोष हो जाता है तब उसके सौंदर्य का क्या कहना? तब उससे परमात्मा इस जगत में उतरता हुआ मालूम होता

है। तब उसकी हवा में भनक आ जाती है परलोक की। तब उसके चारों तरफ एक वातावरण निर्मित हो जाता है अलौकिक। वह अपने साथ तरंगों का एक जाल लेकर चलने लगता है। वे किसी दूसरे ही लोक की खबर देते हैं, वे होने के किसी नए ढंग की खबर देते हैं। वह ढंग अनसीखा, वह ढंग स्वभाव का।
"यह कि प्रकृति के क्रम में वे सहायक तो होते हैं, लेकिन उसमें हस्तक्षेप करने की धृष्टता नहीं करते।"
संत सहायक होते हैं प्रकृति के क्रम में। तुम जो होना चाहते हो, तुम जहां जाना चाहते हो, तुम्हारी नियति तुम्हें जहां खींचे लिए जाती है, संत उसमें साथ देते हैं, सहारा देते हैं, सहयोग देते हैं। वे तुम्हारे होने में सहयोग देते हैं। वे अपनी कोई आकांक्षा तुम पर आरोपित नहीं करते कि तुम ऐसे हो जाओ।
यहीं फर्क समझ लेना। साधु वही है जो चेष्टा करेगा कि तुम मेरी प्रतिकृति हो जाओ, तुम मेरी कार्बन कापी बन जाओ। जैसा मैं हूं वही तुम्हारे जीवन का आदर्श हो। जो मैं खाऊं वही तुम खाओ; जब मैं उठूं तभी तुम उठो; जब मैं सोऊं तभी तुम सोओ। मेरा जीवन ही तुम्हारा ब्लू-प्रिंट हो। अब तुमको इसी के अनुसार अपने को ढाल लेना है।
इससे बड़ी कोई हिंसा इस संसार में नहीं है। दूसरे व्यक्ति को अपने अनुसार ढालने की कोशिश सबसे बड़ी हिंसा है। तुम कौन हो? दूसरा स्वयं होने को पैदा हुआ है। उसकी अपनी नियति है। उसकी अपनी यात्रा का पथ है। जन्मों- जन्मों से वह अपने को ही खोज रहा है। तुम कौन हो बीच में अपने आपको उसके ऊपर थोप देने को आतुर?
यह आतुरता आती है, क्योंकि बड़ा रस आता है अहंकार को जब वह देखता है कि मेरे ही जैसे कई लोग पूंछ कटाए खड़े हैं, ठीक मेरी प्रतिकृतियां। इसलिए गुरु जीता है अनुयायियों की भीड़ पर। जितने ज्यादा अनुयायी उतना गुरु को लगता है वह महत्वपूर्ण है। जरूर उसमें कुछ होना चाहिए, तभी तो इतने लोग उस जैसे होने की कोशिश कर रहे हैं। वह जो करता है, वह जो कहता है, वही शाश्वत नियम है।
नहीं, यह संतत्व का लक्षण नहीं। संतत्व का लक्षण हैः तुम ही तुम्हारे शाश्वत नियम हो। वह तुम्हें सहयोग दे सकता है, लेकिन तुम्हें ढांचा न देगा। वह तुम्हें आदर्श न देगा; वह तुम्हें प्रेम देगा, मैत्री देगा। वह तुम्हें अनुशासन न देगा; वह तुम्हें बांधेगा नहीं किसी डिसिप्लिन में, किसी अनुशासन में। वह तुम्हें मुक्त करेगा।
सहारा एक बात है। एक हम वृक्ष लगाते हैं नीम का, एक वृक्ष हम लगाते हैं
आम का। सहारा हम देंगे। नीम कड़वी होगी; वह उसके होने की नियति है। उसके कड़वेपन का अपना राज है। उसके कड़वेपन की अपनी खूबी है। वह हवा को शुद्ध करेगी। नीम से ज्यादा शुद्ध कोई वनस्पति नहीं है। उसकी मौजूदगी शुद्ध करती है। उसकी कड़वाहट में भी बड़ी गहरी मिठास है। लेकिन संत नीम को आम बनाने की कोशिश नहीं करेगा। वह साधु की कोशिश है। आम अपने आम होने में रसपूर्ण है। उसका अपना माधुर्य है। नीम का अपना व्यक्तित्व है।
संत दोनों को, वे जो होना चाहते हैं, जो हो सकते हैं, जो उनके भीतर छिपा है, उसे प्रकट करेगा, सहयोग देगा, ताकि उनका बीज टूटे, अंकुरित हो, वृक्ष बने। लेकिन जो भी फूल उनके हों वही आएं, अंततः वे अपनी मंजिल पर पहुंच जाएं, उनके व्यक्तित्व में कोई बाधा न पड़े। वह व्यर्थ को हटा देगा, सार्थक को सहयोग देगा; लेकिन अपने ढांचे में किसी को भी ढालेगा नहीं।
और जब भी कोई किसी व्यक्ति को ढांचे में ढालता है, मार डालता है। उसकी आत्मा मर जाती है। आत्मा जीती है स्वातंष्य में। उसे खुला आकाश चाहिए। संत तुम्हें सहयोग देगा और सहयोग का खुला आकाश देगा; गंतव्य नहीं देगा। पंख तुम्हारे शक्तिशाली कर देगा। उड़ो तुम। यात्रा तुम्हारी है; मंजिल तुम्हारी है; दिशा तुम्हारी है। शक्ति तुम्हें देगा कि तुम उड़ सको। खुला आकाश तुम्हें देगा, ताकि तुम मुक्ति से उड़ सको।
संत और साधु में बड़ा बारीक, नाजुक भेद है। उसको अगर तुम न समझे तो साधु
के चक्कर में पड़ जाना सदा आसान है। और संत को पहचानना सदा कठिन है। क्योंकि वह इतना सरल है। तुम असाधारण को देखते हो। साधारण कहीं दिखाई पड़ता है?

विशिष्ट दिखाई पड़ता है। सामान्य कहीं दिखाई पड़ता है? वह तुम्हारी आंख में आता ही नहीं, पकड़ में ही नहीं आता। इसलिए साधु और संत की ठीक-ठीक प्रकृति तुम्हें समझ में आ जाए तो तुम्हारे जीवन में बड़ा सहयोग मिल सकता है। न समझ में आए तो तुम्हें बहुत से सुधारने वाले मिलेंगे जो तुम्हें बिगाड़ कर छोड़ जाएंगे।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग पांच
एक सौ छटवां प्रवचन

धर्म की राह ही उसकी मंजिल है

पहला प्रश्नः महावीर, बुद्ध, लाओत्से, आप, आप सबके मध्य अलग-अलग प्रतीत होते हैं। क्या हम सामान्य जनों के भी मध्य अलग-अलग होंगे? मज्झिम निकाय की इस बात को हमें समझा दें।

एक-एक व्यक्ति अनूठा है, बेजोड़ है; उस जैसा न कभी कोई हुआ, न कभी कोई फिर
और होगा।
इस बात को जितनी गहराई से समझ लें उतना साधना में सहायता मिलेगी। तब नकल का तो कोई उपाय नहीं है। तब दूसरे का अनुसरण करना संभव नहीं है; अनुयायी बनने की सुविधा ही नहीं है। तुम बस तुम जैसे हो, और तुम्हें अपना रास्ता खुद ही खोजना होगा। सहारे मिल सकते हैं, सुझाव मिल सकते हैं, आदेश नहीं। दूसरे की समझ के प्रकाश से तुम अपनी समझ को जगा सकते हो, लेकिन दूसरे के जीवन को ढांचा मान कर अपने को ढाला कि मुक्ति तो दूर, जीवित भी तुम न रह जाओगे। तब तुम एक मुर्दे की भांति होओगे; एक अनुकृति, जिसकी आत्मा खो गई है।
आत्मा का अर्थ है व्यक्तित्व; आत्मा का अर्थ है तुम्हारा अनूठापन; आत्मा का अर्थ है तुम्हारी अद्वितीयता। इसमें कुछ अहंकार मत समझना। क्योंकि जैसे तुम अद्वितीय हो वैसे ही सभी अद्वितीय हैं। अद्वितीयता सामान्य घटना है। यह कोई विशेष बात नहीं। यह समझना मत अपने मन में कि मैं बेजोड़ हूं। तुम ही बेजोड़ नहीं हो, सभी बेजोड़ हैं। राह के किनारे पड़ा एक छोटा सा कंकड़ भी बेजोड़ है। वृक्षों में लगे करोड़ों पत्ते हैं; एक-एक पत्ता बेजोड़ है। तुम उस जैसा पत्ता दूसरा न खोज सकोगे।
बेजोड़ता अस्तित्व का ढंग है। यहां सभी कुछ अनूठा है। होना ही चाहिए। क्योंकि यहां पत्ते-पत्ते पर परमात्मा का हस्ताक्षर है। उसका बनाया हुआ बेजोड़ होगा ही। तुम्हें भी वही बनाता। बुद्ध, कृष्ण, लाओत्से को भी वही बनाता। कंकड़-पत्थरों को भी वही बनाता। सभी पर उसी के निशान हैं। और जो उसके हाथ में पड़ गया वह नकल थोड़े ही हो सकता है। जो उस मूल स्रोत से आता है वह उस मूल स्रोत की अद्वितीयता को अपने साथ लाता है। तुम अद्वितीय हो, क्योंकि परमात्मा अद्वितीय है। तुम उससे ही आते हो। तुम उससे भिन्न नहीं हो सकते। और तुम्हें अगर कुछ होना है तो बस अपने ही जैसा होना है। कोई दूसरा न तो आदर्श है, न कोई दूसरा तुम्हारे लिए नियम है, न तो कोई दूसरा तुम्हारा अनुशासन है। तुम्हारा बोध, तुम्हारी समझ, तुम्हारे अपने जीवन की भीतर की ज्योति को ही बढ़ाना है। सहारा लो, साथ लो; जो पहुंच गए हैं उनसे स्वाद लो; जो पहुंच गए हैं उनको गौर से देखो, पहचानो; पर नकल मत करो, अनुसरण मत करो। अनुयायी भूल कर मत बनना। अनुयायियों से ही तो संप्रदाय निर्मित हो गए हैं। अगर तुम अनुयायी न बने तो ही तुम धार्मिक हो सकोगे। अनुयायी बनने का अर्थ यह है कि तुमने समझ को तो ताक पर रख दिया, अब तुम अंधे की तरह पीछे चल पड़े। अब तुमने किसी और के जीवन को अपने ऊपर ओढ़ लिया। अब तुमने अपनी आत्मा को तो दबाया, और किसी और के होने के ढंग को अपने ऊपर बिठा लिया जबरदस्ती। जबरदस्ती जरूरी है, क्योंकि दूसरे का ढंग दूसरे का ढंग है। तुम्हें पता है, अगर दूसरे का खून भी तुम्हें दिया जाए तो वह भी तुम्हारे टाइप का ही होना चाहिए। नहीं तो शरीर उसे भी फेंक देता है। तुम्हें पता है कि अगर तुम्हारे पैर पर घाव हो जाए और चमड़ी लगानी हो तो तुम्हारे ही हाथ की या शरीर की चमड़ी निकालनी पड़ती है। किसी दूसरे की चमड़ी तुम लगा दो, वह लगेगी नहीं। शरीर उसे इनकार कर देगा। जब शरीर तक इतना चुनाव करता है तो आत्मा का तो कहना ही क्या! जब शरीर तक पहचान रखता है कि जो अपने जैसा है, जो मेरा ही है, उसी को स्वीकार करूंगा, अंगीकार करूंगा, तो आत्मा की तो अपेक्षा बहुत बड़ी है, आत्यंतिक है।
तुम समझना, सीखना, देखना, स्वाद लेना। उसी स्वाद, समझ और सीखने से तुम्हारी अपनी अंतर्ज्योति जगने लगेगी। उस अंतर्ज्योति के प्रकाश में ही तुम पहुंच सकोगे। दूसरे का प्रकाश न कभी किसी को ले गया है, न ले जा सकता है।

वह दूसरे का है। वह कितना ही प्रकाशित मालूम पड़े, उससे अंधकार नहीं मिटेगा। यह बात समझ में आ जाए तो फिर मैं जो बहुत सी बातें कह रहा हूं वे तुम्हारे सामने साफ हो जाएंगी।
हालांकि तुमने बहुत चाहा होगा कि कोई सुगमता से सूत्र दे दे, बता दे कि
यह करो। तुम इतने काहिल, सुस्त, आलसी हो कि तुम जीने के संबंध में भी किसी दूसरे की लीक पर चलना पसंद करोगे। कौन झंझट में पड़े सोचने के? विचार का उपद्रव कौन ले? इतना भी बुद्धि को कौन लगाए? कोई बता दे मार्ग, हम चल पड़ें। तुम यह मत समझना कि यह तुम्हारी श्रद्धा से हो रहा है। नहीं, यह तुम्हारे प्रमाद और आलस्य से हो रहा है। तुम चाहते हो, कोई हमें झंझट से बचा दे--सोचने की, विचारने की, साधना की, ध्यान की। कोई कह दे सीधा-साधा, यह करो, और हम कर लें। जिम्मेवारी छूट जाए।
तुम अंधे होने को उत्सुक हो; क्योंकि आंखें खोलने में पीड़ा होती है, और समझ को बढ़ाने में श्रम लगता है। समझ मुफ्त नहीं मिलती। और सत्य की खोज पूरे जीवन को एक क्रांति से गुजारना है, एक अग्नि से गुजारना है।
तुम चाहोगे दूसरे की बुझी राख में लोटना। तुमने देखे हैं, अनेक भभूत लगाए बैठे हुए हैं सारे मुल्क में। वे सब दूसरों की राख में लोट कर भभूत लगा रहे हैं। दूसरे के द्वारा लिया गया आदर्श बुझी हुई अंगार जैसा है, राख है। कभी वहां अंगार रही होगी; वह जा चुकी है। और जिसके लिए थी उसके लिए थी; तुम्हारे लिए वह अंगार राख है। तुम्हें अपने ही अंगार जलाने होंगे; अपनी ही सजानी पड़ेगी यज्ञशाला; अपने ही जीवन का घृत डालना होगा।
वह मंहगा सौदा लगता है; तुम सस्ते में निबटना चाहते हो। तुम चाहते हो, हमें झंझट न करनी पड़े; कोई सीधा बता दे कि ऐसा करो, ऐसा उठो, ऐसे खाओ, ऐसे पीओ, ऐसे चलो। निबटारा हो जाए; जिम्मेवारी दूसरे की हो जाए।
जिम्मेवारी दूसरे पर मत टालना, क्योंकि अंततः तुम्हीं पूछे जाओगे। तुमसे ही पूछा जाएगा; और कोई उत्तरदायी नहीं है। परमात्मा अगर पूछेगा तो तुमसे पूछेगा कि कहां गंवाए जीवन? कहां खोया सारा अवसर? तब तुम यह न कह सकोगे कि हम दूसरे जैसे बनने की कोशिश में लगते रहे।
एक यहूदी फकीर मर रहा था, हिलेल। बहुत अदभुत आदमी हुआ। मरते वक्त, मरने
के ठीक एक क्षण पहले उसके शिष्यों ने देखा कि वह मुस्कुरा रहा है। एक शिष्य ने पूछा कि क्यों मुस्कुरा रहे हो? उसने कहा, इसलिए मुस्कुरा रहा हूं कि आज मुझे समझ में आई बात, अब जब मरने के करीब हूं, सारे जीवन का लेखा-जोखा कर रहा हूं, क्योंकि जल्दी ही जवाब देना होगा, तो अब मुझे समझ में आई बात कि परमात्मा मुझसे यह न पूछेगा कि तुम मूसा जैसे क्यों नहीं हो? क्योंकि मूसा यहूदियों का परम पुरुष, जैसे महावीर, बुद्ध, कृष्ण, लाओत्से। हिलेल ने कहा, परमात्मा मुझसे यह पूछेगा ही नहीं कि तुम मूसा जैसे क्यों नहीं हो, क्योंकि यह तो वह खुद ही जानता है कि उसने मुझे मूसा जैसा नहीं बनाया। इसलिए मूसा जैसा होने का सवाल ही नहीं है। वह मुझसे पूछेगा, कहां गंवाए दिन? कहां गंवाईं रातें? हिलेल जैसे क्यों नहीं हुए? हिलेल उसका खुद का नाम था। इसलिए मैं मुस्कुरा रहा हूं कि यह तो बड़ा मजा रहा। हम जिंदगी भर मूसा होने की कोशिश करते रहे; आखिर में परीक्षा हिलेल की होगी।
वह अपने शिष्यों को सूचन दे रहा था। उसने कहा, याद रखना, तुमसे भी परमात्मा यह न पूछेगा कि तुम हिलेल जैसे क्यों नहीं हो, जब मुझसे ही नहीं पूछेगा कि मूसा जैसे नहीं। तुमसे भी पूछेगा कि तुम जैसे तुम क्यों नहीं हो। उत्तरदायित्व तुम्हारा है, आत्यंतिक रूप से तुम्हारा है।
तब जटिल हो जाती है बात थोड़ी। जटिल इसलिए हो जाती है कि तुम कदम भी नहीं उठाना चाहते, और मंजिल घर आ जाए ऐसा चाहते हो। अगर तुम कदम उठाने को तैयार हो तो जरा भी जटिल नहीं, बिल्कुल सरल है।
तुम्हें अपना ही मध्य खोजना होगा। मेरा मध्य मेरा मध्य है; बुद्ध का मध्य बुद्ध का मध्य है। ऐसा समझो कि रस्सी लगी है, दो खाइयों के बीच रस्सी बंधी है, और रस्सी पर से तुम्हें गुजरना पड़ता है। हर आदमी का मध्य अलग-अलग होगा। क्योंकि हर आदमी का वजन अलग-अलग है। अगर एक मोटा आदमी चलेगा उस रस्सी पर तो उसे अपने मध्य को साधना होगा--अपने वजन के अनुसार। एक दुबला आदमी चलेगा तो उसे अपना मध्य साधना होगा--अपने वजन के अनुसार। तुम दूसरे को देख

कर मध्य मत साधना, अन्यथा गिरोगे। क्योंकि तुम्हें अपने वजन का ध्यान रखना है। अपने को पहचानो। अपनी अतियों को देखो। क्योंकि जो दूसरे के लिए अति है, वह हो सकता है तुम्हारे लिए अति हो ही नहीं। जो दूसरे के लिए समस्या है, हो सकता है वह तुम्हारे लिए समस्या हो ही नहीं।
गुरजिएफ के पास जब भी कोई शिष्य जाता था तो गुरजिएफ कहता था, तू अपनी सबसे बड़ी कमजोरी खोज कर मुझे बता, क्योंकि उसी पर सब निर्भर होगा।
जैसे समझो, एक आदमी कामी है, कामवासना से भरा हुआ है; और एक आदमी लोभी है। अब यह समझने जैसी बात है कि लोभी अक्सर कामवासना पर आसानी से विजय पा लेता है, बहुत आसानी से। लोभी के लिए कामवासना बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है, क्योंकि उसकी सारी ऊर्जा लोभ में लग जाती है।
इसलिए लोभी को न पत्नी की फिक्र है, न बच्चों की फिक्र है; लोभी को तो सिर्फ तिजोरी की फिक्र है। पत्नी चली जाए तो चिंता नहीं है, बच्चे न बचें तो चिंता नहीं है, घर-द्वार रहे न रहे, लेकिन तिजोरी बचे। चौबीस घंटे लोभी अपने लोभ में लगा रहता है। इसलिए अक्सर तुम पाओगे कि लोभी समाजों में कामवासना इतनी क्षीण हो जाती है कि बच्चे गोद लेना पड़ते हैं। मारवाड़ी अक्सर बच्चों को गोद लेंगे। लोभ खास गहराई है। तो कामवासना क्षीण हो जाती है। क्योंकि ऊर्जा तो उतनी ही है; उस ऊर्जा को चाहे लोभ की तरफ लगा दो, चाहे काम की तरफ लगा दो।
अब अगर कोई लोभी ब्रह्मचर्य की बात सुने तो उसे बिल्कुल सरल है, उसे कोई कठिनाई ही नहीं है। वह कहेगा, हम पहले से हैं ही। और ध्यान रखना, कृपण को ब्रह्मचर्य जंचता भी है, क्योंकि ब्रह्मचर्य भी अपनी ऊर्जा को रोकने की कृपणता है। कृपण वैसे ही जानता है कैसे चीजों को रोकना, धन को कैसे रोकना। उसे वीर्य की ऊर्जा भी धन जैसी ही लगती है। कहीं खतम न हो जाए, कहीं चुक न जाए, कहीं नष्ट न हो जाए; रोक लो, बचा लो।
चिकित्सक जानते हैं कि कृपण आदमी हर चीज को रोकता है। कृपण कब्जियत से
भर जाता है; वह मल-मूत्र तक को भी छोड़ता नहीं। यह बड़ी हैरानी का अनुसंधान है कि मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जो आदमी भी कब्जियत का परेशान हो, उसमें नब्बे मौकों पर वह लोभ से पीड़ित आदमी होगा। लोभी की वृत्ति पकड़ने की हो जाती है। यह सवाल ही नहीं कि क्या पकड़ना है। छोड़ नहीं सकता; मल को भी नहीं छोड़ सकता। शरीर उसको भी भीतर जकड़े रहता है। उसके पूरे शरीर की संरचना पकड़ने की हो जाती है। वह वीर्य को भी पकड़ लेता है। वह ब्रह्मचर्य को आसानी से उपलब्ध हो सकता है।
इसलिए तुम अपने मंदिर-मस्जिदों में ऐसे अनेक लोगों को बैठे पाओगे, जो ब्रह्मचर्य जिनके लिए आसान है। और उसका कुल कारण इतना है कि वे परम लोभी हैं।
लेकिन लोभ उनका सवाल है। उन्हें जो मध्य साधना है वह लोभ में साधना है, काम में नहीं साधना है।
कामवासना से भरा हुआ आदमी अक्सर लोभी नहीं होता। अक्सर कामवासना से भरे आदमी के लिए कृपणता नहीं पकड़ती। इसलिए अगर तुम उससे कहो लोभ छोड़ने को, वह बिल्कुल तैयार है। वह छोड़े ही बैठा है; छोड़ने को कुछ है ही नहीं। वह वैसे ही फेंक रहा है अपने जीवन में जो भी है उसके पास। व्यर्थ फेंकने में वह कुशल है। तुम उसे इधर दो, उधर वह फेंक देगा। इधर पैसे आए, उधर गए। इधर शक्ति आई उधर गई। उसका हाथ खुला हुआ है। उससे अगर तुम कहो, ब्रह्मचर्य साधो, तो बहुत कठिन। अगर तुम कहो, अलोभ साधो, अपरिग्रह साधो, बिल्कुल सरल।
जो आदमी क्रोधी है उससे तुम दया साधने को कहो तो बहुत कठिन; उससे तुम कहो करुणा करो तो बहुत कठिन। लेकिन जो आदमी डरपोक है, भयभीत है, भयातुर है, वह जल्दी ही दया साधने को राजी हो जाएगा।
इसलिए तुम जान कर हैरान होओगे कि महावीर ने अहिंसा का उपदेश दिया, दया का, करुणा का, और सिर्फ बनियों ने उसे पकड़ा। क्या कारण होगा? क्योंकि बनिया डरपोक है। उसे यह बात जंची। उसे यह बात जंची कि न हम किसी से झगड़ा करेंगे, न कोई हमसे झगड़ा करेगा। उसको दया की बात जंची कि तुम दूसरे पर दया करो, दूसरा तुम पर दया करेगा, झंझट पैदा न होगी। बनिया झगड़ने से डरता है। लड़ाई-झगड़ा खड़ा

न हो, इसलिए बनिया क्रोध को साध लेता है। भय को नहीं साध पाता; जरा सी चीज उसे भयभीत करती है।
अब सवाल यह है कि तुम्हें अपना व्यक्तित्व खोजना पड़ेगा कि तुम्हारा व्यक्तित्व कैसा है। और तुम्हारे व्यक्तित्व को खोज कर ही तुम्हें मध्य खोजना पड़ेगा कि तुम्हारे व्यक्तित्व की क्या अतियां हैं, उनके बीच में मज्झिम निकाय क्या है। अगर तुमने अपने व्यक्तित्व को न खोजा और तुम किसी के अनुयायी बन गए... ।
समझो कि तुम्हारा मन तो लोभ का है और तुमने पतंजलि का शास्त्र पढ़ लिया
कि ब्रह्मचर्य साधो, तुम्हें बिल्कुल जंचेगा। तुम साध भी लोगे। लेकिन तुम कहीं न पहुंचोगे; क्योंकि वह तुम्हारी बीमारी न थी। यह तो ऐसे हुआ कि बीमारी कुछ और थी, दवा कुछ और ले ली। माना कि दवा स्वादिष्ट लगी, इससे भी क्या होता है? माना कि दवा तुम्हें रास आई, इससे भी क्या होता है? असली सवाल यह है कि बीमारी क्या है।
ठीक-ठीक निदान व्यक्ति को अपनी बीमारी का कर लेना जरूरी है--बीमारी क्या है? और बीमारी का निदान करके तुम्हें अपनी अतियां देखनी हैं कि तुम किन अतियों के बीच में भटकते हो। समझो, एक आदमी है; वह या तो ज्यादा खाना खाता है; दो, तीन, चार महीने खूब खाएगा। ऐसे मित्रों को मैं जानता हूं जो तीन-चार महीने बिल्कुल खाएंगे कुछ भी; सब भूल जाएंगे नियम-व्यवस्था। फिर उनका वजन बढ़ जाएगा। फिर भारी देह हो जाएगी। फिर हृदय पर धड़कन बढ़ने लगेगी। फिर कमर में दर्द होगा। फिर वे उठ न सकेंगे। फिर ये तकलीफें आएंगी। तब तत्क्षण वे दूसरी अति पर चले जाएंगेः तब वे उपवास करने लगेंगे। या तो तुम उन्हें ओबेराय होटल में पाओगे और या उरली कांचन में। पूना में वे कभी न रुकेंगे। इसलिए तो मैंने पूना बीच में चुना। मध्य! तुम उन्हें यहां न पाओगे। वे उनकी अतियां हैं।
और इस व्यक्ति को मध्य खोजना है तो इसे मध्य अपना समझना पड़ेगा--सम्यक आहार! न तो ज्यादा खाना उचित है और न कम खाना उचित है। ज्यादा खाना उतनी ही बड़ी बीमारी है जितना कम खाना। क्योंकि दोनों ही हालत में तुम शरीर को नुकसान पहुंचाते हो। सम्यक आहार! जितना जरूरी है बस उतना। न कम, न ज्यादा; ठीक बीच में रुक जाना।
अब यह कौन तुम्हें बताएगा? क्योंकि आहार भी लोगों के भिन्न-भिन्न हैं।
एक आदमी श्रम करता है दिन भर, उसका आहार स्वभावतः ज्यादा होगा। तुम दिन भर श्रम नहीं करते, तुम अपनी कुर्सी पर बैठ कर काम करते हो, तुम्हारा आहार कम होगा।
इसलिए कोई बंधे नियम नहीं हो सकते। तुम्हें ही चल कर, सम्हल कर, दोनों अतियों को जांच-परख करके, क्या तुम्हें रास आता है, उस मध्य बिंदु को खोज लेना पड़ेगा। कौन सी जगह है जहां तुम्हारा पेट न तो ज्यादा भरा होता और न कम भरा होता, यह कौन तुम्हें बताएगा? क्योंकि पेट-पेट अलग हैं; पेटों की जरूरतें अलग हैं।
फिर ये भी जरूरतें सदा के लिए एक सी नहीं हैं। ये भी रोज बदलती जाती हैं। इसलिए तुम यह भी मत सोचना कि आज तुम्हारा जो मध्य था वह कल भी मध्य होगा। जिंदगी सतत जागरूकता मांगती है। एक दफा नियम बना लिया और फिर जरूरत न रही, ऐसा मत सोचना। क्योंकि बच्चे की जरूरत अलग है, जवान की जरूरत अलग है, बूढ़े की जरूरत अलग है। तुम्हारे ही बचपन में तुम्हें ज्यादा भोजन की जरूरत थी। फिर तुम्हारी जवानी आई। फिर तुम्हारा बुढ़ापा आएगा। रोज जरूरत बदलेगी। इसलिए एक बड़ी समझने की बात है, लोगों की मोटाई और शरीर का वजन बढ़ना शुरू होता है कोई पैंतीस साल की उम्र के करीब। कारण क्या है? कारण सीधा है। पैंतीस साल के पहले तक आदमी शिखर की तरफ जा रहा था जवानी के। उसे ज्यादा से ज्यादा भोजन की जरूरत थी। पैंतीस साल तक उसने जिस तरह भोजन किया वह उसकी आदत बन गई। अब पैंतीस साल के बाद जीवन की गाड़ी तो उतरने लगी पहाड़ से नीचे, उतार शुरू हो गया। मौत करीब आने लगी, बुढ़ापा शुरू हो गया। और आदत खाने की उसने पुरानी जारी रखी। अब उतना खाना पचता नहीं। अब उतने खाने की शरीर को जरूरत ही नहीं, क्योंकि शरीर अब मरने की तैयारी कर रहा है। जब शरीर जीने की तैयारी कर रहा था तब ज्यादा भोजन की जरूरत थी। अब तो मरने की तैयारी कर रहा

है। अब तो शरीर को धीरे-धीरे-धीरे भोजन को छोड़ने की तैयारी करनी है। भोजन रोज कम होता जाएगा।
इसलिए पैंतीस और चालीस साल के बीच लोगों के जीवन में असुविधा आती है। खाने की आदत पुरानी है; वे आदत को जारी रखते हैं। जितना खाते थे उतना ही खाते हैं। वे कहते हैं, इतना हम सदा से खाते रहे हैं, और कभी गड़बड़ न हुई; आज क्यों गड़बड़ हो रही है? आज तुम बदल गए हो। तुम जो सदा से थे वह अब तुम नहीं हो। अब जीवन उतर रहा है। अब घाट से नीचे जा रहे हो। अब जरूरत नहीं है इतनी। इसलिए हार्ट अटैक कोई चालीस साल के करीब घटता है। हृदय पर दौरे पड़ने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि तुम इतना बोझ चरबी का बढ़ा रहे हो हृदय पर जितना वह नहीं झेल सकता। पैंतीस साल के साथ, तुम्हें अगर थोड़ी भी सम्यक जागरूकता हो, तो तुम खुद ही अपने भोजन को कम करते जाओगे।
बच्चा पैदा होता है; बीस घंटे सोता है। मां के पेट में चौबीस घंटे सोता है। उसकी जरूरत उतनी है। क्योंकि जब शरीर निर्मित हो रहा है तो जागने से नुकसान होगा। नींद में शरीर को निर्मित होने में सुविधा होती है। तुम्हारे होश के कारण बाधा पड़ती है।
इसलिए तो चिकित्सक कहता है जब कोई बीमारी हो तो नींद बहुत जरूरी है। जब
तक तुम जागे रहोगे, बीमारी दूर न हो सकेगी। क्योंकि तुम्हारे जागने के कारण तुम शरीर को मौका नहीं देते कि वह शांत होकर अपने को सुधारने का काम कर ले। इसलिए चिकित्सक कहता है पहली चीज कि तुम सो जाओ। क्योंकि नींद में ही शरीर सुधरता है। क्यों? क्योंकि जागे में तुम कुछ न कुछ खटर-पटर करोगे ही। वही तो लाओत्से कहता है कि करने वाले बिगाड़ देते हैं, न करने से सब सुधर जाता है। नींद में सब ठीक हो जाता है। सुबह तुम ताजे उठते हो। क्या है नींद का मतलब? कि तुम मौजूद न थे, खटर-पटर न कर सके, कुछ सुधार की कोशिश न कर सके, कोई चिंता न कर सके। तुम थे ही नहीं। शरीर ने अपने को ठीक जमा लिया। शरीर तुमसे छुट्टी चाहता है थोड़ी देर को, इसलिए नींद की जरूरत है।
बच्चा चौबीस घंटे सोएगा मां के पेट में; पूरा शरीर बन रहा है। जवान सात-
आठ घंटे पर आ जाएगा। बूढ़ा तीन-चार घंटे पर रुक जाएगा, दो घंटे पर रुक जाएगा। मेरे पास बूढ़े आते हैं। कुछ दिन पहले कोई अस्सी साल के एक आदमी ने आकर कहा कि और कुछ भी हो, मुझे नींद नहीं आती; नींद की वजह से मैं परेशान हूं। पूछा, कितनी देर सोते हो? उन्होंने कहा, मुश्किल से दो-तीन घंटे ही सो पाता हूं। अब तुम बूढ़े हुए, अस्सी साल तुम्हारी उमर होने को आ रही है; अब दो-तीन घंटे जरूरत से ज्यादा नींद है। अब तुम अगर बच्चे की तरह बीस घंटे सोना चाहो, संभव नहीं है। तुम बच्चे नहीं हो। अब तुम जवान की तरह सात-आठ घंटे सोना चाहो, संभव नहीं।
लेकिन बूढ़े की तकलीफ क्या है? यह अभी भी सोच रहा है कि सात-आठ घंटे जीवन
भर सोता था, अब केवल तीन घंटे सोता हूं; पांच घंटे कम हो गए, मुश्किल बात है! यह यह देख ही नहीं रहा है कि तुम उतार पर आ गए; अब जाने का वक्त आ रहा है। अब इतनी नींद की कोई जरूरत न रही। अब तुम्हारे शरीर में चीजें टूटती हैं, बनती नहीं हैं। अब तुम्हारे शरीर के सेल बाहर जा रहे हैं, निर्मित नहीं होते। अब जो भी तुम्हारे भीतर टूट जाता है वह फिर से नहीं बनता। जब बनने का काम ही बंद हो गया तो नींद की जरूरत न रही। अब तो टूटने का काम शुरू है। तुम जागे रहो रात भर तो भी कोई हर्जा नहीं है। आदत लेकिन पुरानी है कि मैं पांच-सात घंटे, आठ घंटे सोता था! और अब दो घंटे सोता हूं; बड़ा बुरा हो रहा है।
न केवल तुम दूसरे का अनुसरण नहीं कर सकते हो, तुम अपने भी बनाए नियम को सदा के लिए नहीं बना सकते। जीवन रोज-रोज तौलना पड़ता है। रोज स्थिति बदल जाती है। कभी तुम स्वस्थ हो, तब तुम ज्यादा श्रम करते हो। कभी तुम बीमार हो, तब तुम ज्यादा विश्राम करते हो। तुम्हें चौबीस घंटे अपनी नब्ज पर हाथ रखे रहना पड़ेगा। तभी तुम सम्यक हो पाओगे। नब्ज पर हाथ रखे रहने की इस कला का नाम ही जागरूकता है। जैसी स्थिति हो उस स्थिति के अनुकूल तुम्हारी प्रतिसंवेदना हो, रिस्पांस हो। कोई बंधी हुई लकीर पर चलने से कभी लाभ नहीं होता; क्योंकि लकीर तो बंधी हो सकती है, लेकिन तुम रोज बदल रहे हो।
यह तो ऐसे हुआ कि एक छोटे बच्चे के लिए कपड़े बनाए थे और जिंदगी भर पहनाए। अब वह छोटा सा पैंट पहने फिर रहा है; बेहूदा लग रहा है। चल भी नहीं

सकता, क्योंकि पैंट छोटा है, शरीर बड़ा है। तुम रोज कपड़े बनाओगे, रोज बदलने पड़ेंगे। बंधी लकीरों से नहीं। लकीर के फकीर मत बनना। बोध ही तुम्हारा नियंता हो। इसलिए दूसरा तो तुम्हारे लिए तय कर ही नहीं सकता, तुम खुद भी अपने लिए सदा-सदा के लिए तय नहीं कर सकते।
तो मैं तुम्हें एक ही अनुशासन देता हूं; वह अनुशासन होश का है। मैं तुम्हें एक ही नियम देता हूं कि तुम जाग कर जीना। बस काफी है। जब जैसी जरूरत हो तब तुम वैसे हो जाना, ढल जाना। तुम लड़ना मत परिस्थिति से; तुम परिस्थिति के अनुसार बह जाना। बुढ़ापे में जवान होने की कोशिश मत करना; जवानी में बूढ़े होने की कोशिश मत करना। बचपन में बच्चे रहना; स्वास्थ्य जब हो तब स्वास्थ्य के अनुसार चलना।
सिर्फ आदमी को छोड़ कर सभी पशु प्रतिपल अपनी संवेदना को सम्हालते हैं। अगर तुम्हारा कुत्ता भी बीमार है, खाने से इनकार कर देगा। लेकिन बीमारी में भी तुम खाए चले जाते हो। तुम्हें इतना भी बोध नहीं है जितना तुम्हारे कुत्ते को है। अगर कुत्ता बीमार अनुभव कर रहा है, फौरन जाकर घास खाकर वमन कर देगा, उलटी कर देगा। क्यों? क्योंकि जब शरीर रुग्ण है तब जरा सा भी भोजन शरीर में घातक है। जब शरीर रुग्ण है तो सारी शरीर की ऊर्जा शरीर को ठीक करने में लगनी चाहिए, भोजन के पचाने में नहीं। क्योंकि यह इमरजेंसी है, यह घटना संकटकालीन है। भोजन अभी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि भोजन को पचाने में बड़ी शक्ति लगती है।
इसीलिए तो जब तुम भोजन करते हो तो तत्क्षण नींद आने लगती है भोजन के बाद। क्योंकि मस्तिष्क जिस शक्ति से काम करता था वह शक्ति भी पेट ने वापस बुला ली। पेट ने कहा कि अभी पचाना जरूरी है। सब चीजें गैर-जरूरी हो जाती हैं, क्योंकि भोजन इतनी बड़ी जरूरत है, उससे जीवन चलता है। पेट सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब पेट को जरूरत न हो तब वह शक्ति देता है, कहीं भी उसका उपयोग कर लो। लेकिन जब पेट को जरूरत है तब सब तरफ से शक्ति को खींच लेता है। इसीलिए तो भोजन करने के बाद मन होता है कि थोड़ा लेट जाएं। क्यों ऐसा मन होता है? क्योंकि पेट ने सब शक्ति खींच ली; हाथ-पैर ढीले हो गए। खाने के बाद तुम ठीक से सोच नहीं सकते; नींद आती है। विद्यार्थी जानते हैं परीक्षा के दिनों में कि अगर पढ़ना हो तो खाना मत खाओ। चाय पी लो, कुछ भी और कर लो, लेकिन भोजन मत डालो शरीर में ज्यादा। तो ही पढ़ पाओगे। क्योंकि मस्तिष्क को तभी शक्ति मिलती है जब शरीर का पचाने का काम बंद रहता है।
बीमारी में कोई जानवर खाना नहीं खाता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। बीमारी में सभी जानवर उपवास करते हैं, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। और स्वस्थ दशा में कोई जानवर कभी उपवास नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। तुम आदमी से ज्यादा पागल जानवर न खोज सकोगे। स्वस्थ हालत में उपवास उतना ही गलत है जितना अस्वस्थ हालत में भोजन। जब तुम स्वस्थ हो तब तो भोजन की जरूरत है; तब अगर तुम शरीर को तड़पाओगे तो नुकसान कर रहे हो। जब तुम अस्वस्थ हो तब भोजन की जरूरत नहीं है। लेकिन लोग नियम से चलते हैं। जैन हैं; उनका पर्यूषण आ गया। अब ये पर्यूषण तो बंधे हुए दिन हैं; हर वर्ष भादों में आ जाते हैं। अब दस दिन का उपवास चलेगा। हो सकता है, लाख आदमी उपवास करें तो दो-चार को शायद ये दिन ठीक पड़ें, संयोगवशात इन दिनों में ही उनकी हालत उपवास के योग्य हो। लेकिन बाकी जो लाख करेंगे, वे तो कष्ट में पड़ेंगे।
अपना पर्यूषण तुम्हें खोजना पड़ेगा। साल में कभी जब तुम्हारी स्थिति उपवास के योग्य हो तब तुम्हारा पर्यूषण है। कोई दिन बांधे नहीं हो सकते। और हर आदमी के लिए एक ही नियम नहीं हो सकता।
छोटे-छोटे बच्चे तक जोश में आ जाते हैं, पर्यूषण के दिन में उपवास कर लेते हैं। क्योंकि उनको बड़ी प्रशंसा मिलती है। सब कहते हैं, कितना गजब का बच्चा है, अभी इतनी उम्र और उपवास कर रहा है! बड़े-बड़े नहीं कर पा रहे, और यह कर रहा है! इसी बकवास में बच्चा बुद्धू बन जाता है; अकड़ में कर जाता है।
अब बच्चे को उपवास की बिल्कुल जरूरत नहीं है; बूढ़ों को जरूरत हो सकती है। बच्चे को उपवास तो घातक हो सकता है। दस दिन भोजन न देने का मतलब बच्चे के मस्तिष्क में कुछ तंतु सदा के लिए टूट सकते हैं, जिनको वह फिर कभी पूरा नहीं कर पाएगा। लेकिन उनका हिसाब कौन रखे? और कौन समझाए नासमझों को कि तुम

क्या कर रहे हो? बच्चे को तो बिल्कुल उपवास की जरूरत नहीं है। बूढ़े कर लें, चलेगा।
जीवन को प्रतिपल जीना है। तुम मुझसे अगर कुछ सीखो तो इतना ही सीखना कि जीवन को प्रतिपल जीना है और प्रतिपल देखना है। और उसी पल से तुम्हारे जीवन का अनुशासन निकले। और वह अनुशासन उसी पल के लिए हो; अगले पल के लिए तुम कसम मत खाना। क्योंकि कौन जानता है कल क्या होगा? कल के लिए उपवास आज मत लेना। कल परिस्थिति हो, तब देखेंगे। कसम खाकर बंधना मत। अगर आज सुबह तुम्हें ऐसा लगता हो कि भोजन नहीं करना है, तो मत करना। लेकिन सांझ तक लगने लगे कि करना है, तो करना। आधी रात तक लगने लगे कि करना है, तो करना। नियम का कोई सवाल नहीं है।
शरीर की स्थिति, मन की स्थिति, जीवन की स्थिति, इनको देखते-देखते-देखते तुम एक चीज पा लोगे, वह कसौटी है जिस पर सब सोना कसा जाता है। वह कसौटी होश की है।
तो मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि तुम्हारा मध्य क्या है। मैं तुम्हें बता सकता हूं कि मध्य को कैसे खोजो। मैं तुम्हें बता सकता हूं कि यह कसौटी है, इस पर कस लेना। मध्य की अवस्था बड़ी शांत, आनंद, प्रफुल्लता की अवस्था है। वहां कोई तनाव नहीं होता। शरीर को जितनी जरूरत होती है उतना तुम दे देते हो; शरीर तृप्त हो जाता है। ज्यादा भर देते हो, अशांति हो जाती है। कम देते हो, पीड़ा बनी रहती है। भोजन करते वक्त वह बिंदु देखना जहां--वह बिंदु बारीक है; अगर बहुत होश रखोगे तो तुम्हें मिल जाएगा--जहां तुम पाओगे, शरीर न तो भर गया ज्यादा और न खाली है, जहां तुम पाओगे कि तृप्ति का बिंदु आ गया, वहीं रुक जाना। रोज-रोज यह बिंदु अलग-अलग होगा, क्योंकि रोज स्थिति अलग होगी।
तो मैं तुम्हें बताता हूं कि बिंदु की परिभाषा क्या है। और यही मैं तुमसे पूरे जीवन के लिए कहता हूं। आज हो सकता है ध्यान की घंटे भर जरूरत हो, कल दो घंटा जरूरत हो। आज हो सकता है ध्यान की सुबह जरूरत हो, कल सांझ जरूरत हो। तुम जरूरत से जीना। बंधी लकीरों की क्या जरूरत है? क्योंकि लोगों ने तय कर लिया है कि रोज सुबह ध्यान करना है एक घंटा।
अब यह भी हो सकता है कि सुबह जब तुम उठे तब चित्त इतना प्रसन्न है, इतना आनंदित है कि ध्यान करने की प्रक्रिया में ही यह आनंद और चित्त की प्रसन्नता खो जाएगी। जब चित्त आनंदित ही है तो ध्यान क्यों करना? ध्यान तो हो ही रहा है। इस क्षण उत्सव कर लो। इस क्षण नाच लो बाहर जाकर सूरज की खुली रोशनी में। पक्षियों के साथ गीत गा लो, गुनगुना लो। वृक्षों से थोड़ा तालमेल कर लो। मन इतना आनंदित है, अब यह ध्यान करने किसलिए बैठे हो? ध्यान तो इलाज है; जब मन अशांत हो तब बैठना। जब मन रुग्ण हो तब औषधि को खोजना। लेकिन तुमने कसम खा ली कि ध्यान रोज करेंगे। और गुरु हैं पूरे मुल्क में बैठे जगह-जगह जो कहते हैं, नियम से एक ही समय रोज ध्यान करना।
ध्यान कोई नियम है? ध्यान तो संतुलन जमाने की प्रक्रिया है। जब चित्त असंतुलित हो, तब जमाना; जब चित्त क्रोधित हो, अशांत हो, तनाव से भरा हो, तब हजार काम छोड़ कर द्वार बंद करके ध्यान करना। क्योंकि इस समय इलाज की जरूरत है। ध्यान औषधि है। प्यास जब लगे तब पानी पीना। नियम से क्यों पानी पी रहे हो? प्यास लगी नहीं है, लेकिन नियम है कि पानी पीना है तो पी रहे हैं। ध्यान भी जब तुम्हें प्यास लगे--जब चित्त अशांत है तो प्यास की खबर आ रही है--तब तुम ध्यान करना।
और कभी यह होगा कि घड़ी भर में ध्यान हो जाएगा, कभी दो घड़ी में होगा, कभी तीन घड़ी लग जाएंगी। निर्भर होगा कि बीमारी कितनी गहरी है, उतनी देर तक औषधि का उपयोग करना पड़ेगा। कभी संतुलन क्षण में सम्हल जाता है; कभी तुम बैठते नहीं हो ध्यान में और क्षण में ज्योति जग जाती है; कभी घड़ी लग जाती है। लेकिन अगर तुमने नियम बना लिया कि बस इतनी देर करना है तो तुम व्यर्थ ही चूकोगे। कभी संयोग से ठीक पड़ेगा, अन्यथा अधिकतर तुम खोओगे। निन्यानबे दिन बेकार जाएंगे; कभी एक दिन संयोगवशात ठीक होगा।
तो मैं तुम्हें कोई बंधी लकीर नहीं देता; मैं तुम्हें सिर्फ बोध देता हूं कि तुम देखना कब जरूरत है। जब जरूरत हो तब हजार काम छोड़ देना। ध्यान

सबसे बड़ी चीज है, सबसे बड़ा भोजन है। एक बार शरीर भूखा रह जाए, कोई हर्ज नहीं; आत्मा को भूखा मत रखना। ध्यान आत्मा का भोजन है। लेकिन जब भूख लगी हो, तभी भोजन का मजा है।
अब यही तकलीफ है। जिन्होंने ध्यान किया है सच में, वे कहते हैं, बड़ा आनंद आता है। जिन्होंने भूख लगने पर खाना खाया है, उनके स्वाद का मजा और। अब तुम ऐसे ही भरे जाते हो। तुमने शरीर को थैली समझा है कि उसमें डालते जाओ। तुम्हें स्वाद नहीं आता। जब तुम सुनते हो किसी की बात कि भोजन में अदभुत स्वाद है, तुम्हें भरोसा नहीं आता। जब कोई ऋषि कहता है, अन्न ब्रह्म है, तुम्हें क्या खाक भरोसा आएगा? क्योंकि तुमने कभी भूख ही नहीं जानी। जिसने भूख नहीं जानी उसने स्वाद के ब्रह्म को नहीं जाना। क्योंकि भूख से ही स्वाद आता है। मरुस्थल में मजा है पानी पीने का। तब कंठ पर पड़ती एक-एक ठंडी बूंद ऐसी तृप्ति दे जाती है कि तुम सोच ही नहीं सकते थे कि पानी से और ऐसी तृप्ति मिल सकती है।
ठीक संयोग की बात है। जब प्यास गहन हो तब पीना पानी; जब भूख गहन हो तब लेना स्वाद; और जब मन अशांत हो, अतृप्त हो, बेचैन हो, तब उतरना ध्यान में। देर लगेगी उतरने में, क्योंकि अशांति बाधा डालेगी। लेकिन उसी वक्त उतरने का मजा है; उसी वक्त उतरने की जरूरत है।
और जब चित्त आनंदित ही हो तब ध्यान की झंझट में मत पड़ना। नहीं तो वह आनंद जो आया वह खो जाएगा। चित्त तो नाचना चाहता था, तुम पालथी लगा कर सिद्धासन में बैठ गए। चित्त तो बांसुरी बजाना चाहता था, तुम आंखें बंद करके राम-राम राम-राम जपने लगे। चित्त तो चाहता था कि निकल जाए प्रकृति में, खुले आकाश के साथ हो, थोड़ा वृक्षों से बतियाए, थोड़ा पक्षियों से गुनगुनाए, थोड़ा घास पर लेटे, कि नदी में तैरे, चित्त तो अभी किसी उत्सव में जाना चाहता था; तुम जबरदस्ती उसे बिठा रहे हो सिद्धासन में। नहीं, सहज होना। सहजता ही एकमात्र साधना है। और सहज का मतलब यह हैः जो होना चाहता हो तुम्हारे अस्तित्व में उसे होने देना, विपरीत खींचने की कोशिश मत करना।
निश्चित ही, मेरे साथ काम करना कठिन मालूम पड़ता है। मैं तुम्हारी जिम्मेवारी बढ़ाता हूं, क्योंकि पल-पल तुम्हें जागना होगा। मैं तुम्हें बंधी लकीर दे देता, तुम्हें आसानी होती। लेकिन वह तुम मुझसे न पा सकोगे। बहुत से लोग मेरे पास आकर इसीलिए दूर चले जाते हैं, क्योंकि वे आए थे कुछ अंधी लकीरें पाने; मैं जो उन्हें देना चाहता था, वह उनके सामर्थ्य के बाहर था लेना। वे आए थे अनुयायी बनने, मैं चाहता था कि वे प्रबुद्ध बनें। वे छोटे-मोटे से राजी होने को आए थे, कूड़ा-कर्कट बटोरने आए थे; मैं उन्हें जगत की सारी संपदा देना चाहता था। उनको न जंची। उनको दिखाई ही न पड़ी। उनकी आंखों ने वैसी संपदा देखी ही नहीं थी। उन्होंने सोचा, यहां तो कुछ भी नहीं है। क्योंकि उनको जो कचरा चाहिए था वह नहीं मिला।
सब आदेश कचरा हैं; इसलिए मैं तुम्हें कोई आदेश नहीं देता। उपदेश और आदेश का यही तो फर्क है। आदेश का मतलब है यह कहना कि ऐसा-ऐसा करो, सीधा-सीधा, साफ। उपदेश का अर्थ है परोक्ष; सिर्फ हवा हम पैदा करते हैं; उस हवा में तुम खोज लेना कि क्या करने योग्य है। हम तुम्हें सिर्फ झलक देते हैं; रास्ता तुम बना लेना। हम सिर्फ दिखा देते हैं; जैसे बिजली कौंध जाती है, सब साफ हो जाता है; अब तुम अपना रास्ता बना लेना।
मैं तुम्हें आंखें देना चाहता हूं, अंधे की लकड़ी नहीं कि जिससे तुम टटोल कर और रास्ता खोज लो। मैं तुम्हें कोई नक्शा नहीं देना चाहता, क्योंकि सभी नक्शे परतंत्रताएं हैं। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम ऐसे ही चलो तो ही अच्छे रहोगे। न, मैं तो तुम्हारे अस्तित्व का एक गुण जगाना चाहता हूं कि तुम होश से चलना, कहीं भी चलना, किसी रास्ते पर चलना। कोई नक्शा तुम्हारे पास हो--हिंदू का हो, मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का--नक्शों से तुम सुलझो। मैं तो तुम्हें सिर्फ होश देना चाहता हूं। और अगर तुम्हारे पास होश है तो हर नक्शा तुम्हें मोक्ष तक पहुंचा देगा। और अगर तुम्हारे पास होश नहीं है तो सभी शास्त्र तुम्हारी गर्दनों में बंधे हुए पत्थर हैं, डुबाएंगे और तुम्हें नष्ट कर देंगे।

दूसरा प्रश्नः यह तो घबड़ाने वाली बात हुई कि कोई साधक ठीक मंजिल के पास पहुंच कर भी जरा सी चूक के कारण इतना पीछे फेंक दिया जा सकता है कि उसे फिर आरंभ से ही आरंभ करना पड़े। तो क्या इतना सारा श्रम रत्ती भर चूक के लिए व्यर्थ हो गया?

पहली बात, चूक जरा सी चूक नहीं है; चूक बड़ी से बड़ी चूक है। क्योंकि पूरे रास्ते पर जिस होश को साधा उसको अंत में खो दिया! साधा ही न होगा ठीक से; रास्ता ऐसे ही गुजर गया। तुम धक्के-मुक्के में आ गए होओगे। किन्हीं और कारणों से आ गए होओगे; होश के कारण नहीं आए हो मंजिल के करीब।
बहुत बार ऐसा होता है। अगर तुम किसी गुरु की श्रद्धा में पड़ जाओ तो उसके झोंके में ही पहुंच जाते हो मंजिल के करीब, लेकिन मंजिल के भीतर नहीं घुस सकते। उसकी लहर में तुम चले जाते हो; तुम सोचते हो कि तुम जा रहे हो। उसका पक्का पता तो मंजिल पर चलेगा। क्योंकि गुरु भी द्वार तक ले जा सकता है; गुरु को भी आखिरी मंजिल के द्वार पर विदा दे देनी पड़ती है। क्योंकि उसके भीतर तो अकेले का ही प्रवेश है। वहां दुई को जगह नहीं। ता में दो न समाय, प्रेम गली अति सांकरी। बड़ी संकरी गली है, वहां गुरु भी साथ नहीं हो सकता। द्वार पर उससे भी विदा ले लेनी होती है। तभी तो पता चलता है कि अब तुम भीतर जा सकते कि नहीं। अगर तुम अपने ही होश से आए हो द्वार तक तो ही जा सकोगे, अन्यथा गहरी नींद पकड़ लेगी। गुरु विदा हो गया; तुम्हारा होश भी विदा हो गया।
गुरु के पास रहते बहुत बार तुम्हें ऐसा लगने लगेगा कि तुम भी जाग गए हो। क्योंकि जागे आदमी के पास की हवा का कण-कण जागने के लिए आभास देता है। गुरु के दर्पण में अपने चेहरे को देख कर तुम समझोगे कि तुम आत्मवान हो गए हो। लेकिन वह खूबी दर्पण की हो सकती है। असली पता तो आखिरी वक्त ही पता चलेगा जब कि गुरु का दर्पण भी छूट जाएगा। तब तुम्हें अपना चेहरा दिखाई पड़ता है या नहीं? तब महिमा, जो तुमने आज तक जानी थी, वह तुम्हारे साथ रही कि नहीं? ऐसा निरंतर हुआ है कि गुरु की लहर में बहुत से लोग आखिरी किनारे तक पहुंच गए। बस किनारे लगते-लगते चूक गए।
छोटी सी चूक नहीं है। वह तो परीक्षा है आखिरी। वह तो ऐसे है जैसे कि रात
भर तुमने रामकथा देखी और सुबह पूछने लगे कि सीता राम की कौन? वह कोई छोटी चूक है? रात भर राम की कथा देखी; सारी कथा सीता राम की कौन, इसी के आस-पास चल रही थी, और सुबह पूछने लगे कि सीता राम की कौन? तुम्हारा प्रश्न छोटी सी चूक नहीं है। परीक्षा हो गई। तुम सोए रहे। रामलीला तुम देखे ही नहीं; झपकी खाते रहे। मूल ही चूक गया। और तुम कहते हो, छोटी सी चूक। यह छोटा ही सा तो सवाल पूछ रहे हैं।
अगर मंजिल पर पहुंच कर होश न रहा, झपकी लग गई, छोटी चूक नहीं; बड़ी से बड़ी चूक है। परीक्षा में असफल हो गए। जो व्यक्ति होश को साध कर आया है, मंजिल को पास देख कर तो दौड़ने लगेगा, चलेगा नहीं। बैठना तो असंभव। जन्मों-जन्मों से जिसकी प्रतीक्षा थी वह घर आ गया। लाखों-लाखों स्वप्नों में जिसे संजोया था; कितने-कितने रूपों में जिसे चाहा था; कहां-कहां मृग-मरीचिकाओं में भी उसे ही खोजा था; भटके भी थे तो उसी के लिए भटके थे; जहां-जहां भटके थे वह भी इसी के कोई आभास के रंग को देख कर भटक गए थे; इतने-इतने यात्रा-पथों के बाद आज घर करीब आया--तुम थके हुए अनुभव करोगे? तुम सोचोगे कि थोड़ा विश्राम कर लें? तुम्हें याद भी रहेगी विश्राम की? प्रेमी सामने खड़ा हो, तुम दौड़ कर गले लग जाना चाहोगे, मिट जाना चाहोगे, डूब जाना चाहोगे या थोड़ा विश्राम करना चाहोगे? अब तक तुम चलते रहे; अब तुम दौड़ोगे। अब तक तुम थे; अब तो तुम रहोगे ही न, सिर्फ एक चाह मिलन की रह जाएगी। तुम तो मिट जाओगे। तुम तो एक आंधी- तूफान की तरह इस भवन में प्रवेश करोगे। एक क्षण भी अब और देर नहीं हो सकती। बहुत देर वैसे ही हो गई। बहुत भटकाव हो गया।
नहीं, असंभव है कि तुम द्वार पर बैठ कर विश्राम करो। संभव हो सकता है तभी जब कि तुम किसी और के धक्के में आ गए होओ। इसीलिए तो बड़े गुरुओं ने कहा है, गुरुओं से सावधान रहना। छोटे गुरु भर कहते हैं कि गुरु को कभी मत छोड़ना।
छोटे गुरु यानि जो गुरु हैं ही नहीं। क्योंकि गुरु और छोटा कैसे हो सकता

है? गुरु का मतलब ही होता है गुरु, बड़ा, गुरुत्व, भारी। सभी बड़े गुरुओं ने यही कहा है।
जरथुस्त्र जब विदा होने लगा अपने शिष्यों से तो उसने कहाः अब आखिरी संदेश, बीवेयर ऑफ जरथुस्त्र! अब आखिरी बात सुन लो, जरथुस्त्र से सावधान! शिष्यों ने कहा, यह भी कोई बात हुई? तुमसे और सावधान? जिसके लिए हमारी सारी श्रद्धा और प्रेम है उससे क्या सावधान? जरथुस्त्र ने कहा, इसीलिए कहता हूं, इसे याद रखना; नहीं तो यही तुम्हें चुकाएगा।
गुरु के पास होना, गुरु के निकटतम होना, गुरु को जितनी श्रद्धा दे सको देना, जितना प्रेम दे सको देना, लेकिन फिर भी सावधान। क्योंकि आखिरी क्षण में गुरु भी छूट जाना है। कहीं यह मोह भारी न हो जाए, कहीं श्रद्धा मोह न बन जाए, कहीं निकटता राग न बन जाए, कहीं यह स्वाद परतंत्रता की बेड़ियां न बन जाए! क्योंकि आखिरी क्षण इसे भी छोड़ देना है। द्वार पर विदा हो जाएगा गुरु भी। यहीं तक उसकी जरूरत थी।
अगर तुम गुरु के धक्के में आ गए हो तो तुम्हें लगेगा, छोटी सी चूक। अन्यथा छोटी सी चूक नहीं है, बड़ी से बड़ी चूक है।
दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जितने ही तुम बढ़ते हो उतना ही तुम्हारा दायित्व बढ़ता है; जितने ही तुम विकसित होते हो उतनी ही तुम्हारी जिम्मेवारी बढ़ती है और अस्तित्व तुमसे ज्यादा से ज्यादा मांगता है। तुम्हें एक छोटी कहानी कहूं। वास्तविक घटना है।
बंगाल में एक बहुत बड़े कलाकार हुए अवनींद्रनाथ ठाकुर। रवींद्रनाथ के चाचा थे। उन जैसा चित्रकार भारत में इधर पीछे सौ वर्षों में नहीं हुआ। और उनका शिष्य, उनका बड़े से बड़ा शिष्य था नंदलाल। उस जैसा भी चित्रकार फिर खोजना मुश्किल है। एक दिन ऐसा हुआ कि रवींद्रनाथ बैठे हैं और अवनींद्रनाथ बैठे हैं, और नंदलाल कृष्ण की एक छबि बना कर लाया, एक चित्र बना कर लाया। रवींद्रनाथ ने अपने संस्मरणों में लिखा है, मैंने इससे प्यारा कृष्ण का चित्र कभी देखा ही नहीं; अनूठा था। और मुझे शक है कि अवनींद्रनाथ भी उसे बना सकते थे या नहीं। लेकिन मेरा तो कोई सवाल नहीं था, रवींद्रनाथ ने लिखा है, बीच में बोलने का। अवनींद्रनाथ ने चित्र देखा और बाहर फेंक दिया सड़क पर, और नंदलाल से कहा, तुझसे अच्छा तो बंगाल के पटिए बना लेते हैं।
बंगाल में पटिए होते हैं, गरीब चित्रकार, जो कृष्णाष्टमी के समय कृष्ण
के चित्र बना कर बेचते हैं दो-दो पैसे में। वह आखिरी दर्जे का चित्रकार है। अब उससे और नीचे क्या होता है! दो-दो पैसे में कृष्ण के चित्र बना कर बेचता है।
अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुझसे अच्छा तो बंगाल के पटिए बना लेते हैं। जा, उनसे सीख!
रवींद्रनाथ को लगा, मुझे बहुत चोट पहुंची। यह तो बहुत हद हो गई। चित्र ऐसा अदभुत था कि मैंने अवनींद्रनाथ के भी चित्र देखे हैं कृष्ण के, लेकिन इतने अदभुत नहीं। और इतना दुर्व्यवहार?
नंदलाल ने पैर छुए, विदा हो गया। और तीन साल तक उसका कोई पता न चला। उसके द्वार पर छात्रावास में ताला पड़ा रहा। तीन साल बाद वह लौटा; उसे पहचानना ही मुश्किल था। वह बिल्कुल पटिया ही हो गया था। क्योंकि एक पैसा पास नहीं था; गांव-गांव पटियों को खोजता रहा। क्योंकि गुरु ने कहा, जा पटियों से सीख! गांव-गांव सीखता रहा। तीन साल बाद लौटा, अवनींद्रनाथ के चरणों पर सिर रखा। उसने कहा, आपने ठीक कहा था।
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने पूछा, यह क्या पागलपन है? अवनींद्रनाथ
से कहा कि यह तो हद ज्यादती है। लेकिन अवनींद्रनाथ ने कहा कि यह मेरा श्रेष्ठतम शिष्य है, और यह मैं भी जानता हूं कि मैं भी शायद उस चित्र को नहीं बना सकता था। इससे मुझे बड़ी अपेक्षाएं हैं। इसलिए इसे सस्ते में नहीं छोड़ा जा सकता। यह कोई साधारण चित्रकार होता तो मैं प्रशंसा करके इसे विदा कर देता। लेकिन मेरी प्रशंसा का तो अर्थ होगा अंत, बात खतम हो गई। इसे अभी और खींचा जा सकता है; अभी इसे और उठाया जा सकता है। अभी इसकी संभावनाएं और शेष थीं। इसे मैं जल्दी नहीं छोड़ सकता। इससे मेरी बड़ी आशा है। छोटा

चित्रकार होता तो कह देता कि ठीक, बहुत। लेकिन इसकी संभावना इसके कृत्य से बड़ी है।
इसे समझ लो ठीक से। जितनी बड़ी तुम्हारी संभावना होगी उतने ही तुम कसे जाओगे। जितनी छोटी संभावना होगी उतने जल्दी छूट जाओगे। जैसे-जैसे घड़ी करीब आती है परमात्मा के पहुंचने के पास, उतनी ही कसान बढ़ती है, उतने ही तुम ज्यादा कसे जाते हो। क्योंकि अब तुम अपनी अंतिम संभावना के निकट पहुंच रहे हो। अब सब परीक्षाएं हो जानी जरूरी हैं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जिसके आगे फिर और कोई जाना नहीं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जिसके आगे फिर और कोई विकास नहीं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जो चरम उत्कर्ष है, जो कैलाश का शिखर है। अब तुम्हारी सब परीक्षा हो जानी जरूरी है। अब तुम्हारा रोआं-रोआं कस लिया जाना जरूरी है। अब तुम खालिस सोना बचो। तुममें कुछ भी तंद्रा न रह जाए; तुम शुद्ध-बुद्ध बचो। तुममें कुछ भी कूड़ा-कर्कट न रह जाए। अब तुम्हें आखिरी आग में फेंक देना जरूरी है।
इसलिए आखिरी मंजिल से अगर तुम जरा भी चूके तो ठीक पहले कदम पर फेंक दिए जाते हो। क्योंकि तुम बड़े संभावना के व्यक्ति हो; आखिरी तक आ गए थे। तुम्हारा होना है तो बहुमूल्य कि तुम द्वार तक किसी तरह पहुंच गए थे, जो कि कभी करोड़ों में एक को संभव हो पाता है और करोड़ों जन्मों दौड़ कर कभी संभव हो पाता है। तुम्हें वापस पहले कदम पर फेंक दिया जाए, यही उचित है। यही उचित है, इसे तुम अन्याय मत समझना। क्योंकि तुम्हारी जितनी बड़ी संभावना है उतनी ही बड़ी तुमसे अपेक्षा है।
तुम थोड़े ही उन कठिनाइयों में से गुजर रहे हो जिनमें से कोई बुद्ध और लाओत्से गुजरता है। जिस दिन गुजरो उस दिन सौभाग्य समझना। तुम्हें पता ही नहीं--क्योंकि उस कथा को कोई कहेगा भी नहीं, कहने का कोई उपाय भी नहीं है--कि आखिरी क्षणों में बुद्ध किस कसौटी से गुजरते हैं; कितनी बार फेंके जाते हैं; कितनी बार अपने को पहले कदम पर पाते हैं। पुनः-पुनः। यह जरूरी है। क्योंकि एक बार तुम इस आखिरी मंदिर में प्रविष्ट हो गए कुछ कचरा लेकर, तो फिर वह तुमसे कभी न छूट सकेगा। फिर कोई उपाय न रहा। इसलिए इस मंदिर का द्वार खुलता ही तब है जब तुम बिल्कुल खालिस होकर पहुंचते हो।
तुम्हें पता हो, जितना कीमती हीरा हो उतना ही जरा सी भी लकीर उसकी कीमत
को करोड़ गुना नीचे गिरा देती है। जरा सी लकीर! वही लकीर साधारण हीरे में कोई देखता भी नहीं। लेकिन कोहिनूर में छोटी सी लकीर की भी कीमत है करोड़ों रुपया। उस लकीर के होने पर दाम कुछ हो जाएगा, न होने पर दाम कुछ का कुछ हो जाएगा। जरा सी लकीर। तुम कहोगे, जरा सी लकीर! लेकिन कोहिनूर से बड़ी अपेक्षा है।
और जब तुम परमात्मा के द्वार पर हो तो जिस आत्मा को तुमने अब तक कंकड़-पत्थर समझा था वह कोहिनूर की स्थिति में पहुंच रही है। अब उसे आखिरी नूर उपलब्ध हो रहा है, आखिरी प्रकाश उपलब्ध हो रहा है। इस परम प्रकाश में छोटी सी भी कमी और खामी दिखाई पड़ेगी। आखिरी जौहरी के सामने जा रहा है अब तुम्हारा हीरा। यहां बचने का, धोखे का कोई भी उपाय नहीं है। और जितना बड़ा हीरा है उतने ही दूर फेंक दिया जाएगा; क्योंकि उतने ही शुद्ध होने की जरूरत और अपेक्षा है।
तो पहली तो बात, इसे जरा सी चूक मत कहना। क्योंकि अगर तुमने अपने मन में अभी से यह समझ लिया कि यह जरा सी चूक है तो तुम्हारे करने की संभावना बढ़ जाती है। तुम इस चूक को कर गुजरोगे। जिस चीज को भी हम जरा सा कहते हैं उसका खतरा है।
इसीलिए तो लाओत्से कहता है कि संत किसी भी चीज को छोटा नहीं मानते, छोटी से छोटी चीज को बड़ा मानते हैं। इसलिए उनको किसी बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।
तुम इसे छोटा मत कहना। और यह भी मत सोचना कि क्या इतना सारा श्रम रत्ती
भर चूक के लिए व्यर्थ हो गया! इसे भी थोड़ा समझ लो। क्योंकि साधना को अगर तुमने श्रम समझा तो तुम कभी उस मंदिर में न पहुंच पाओगे। उस मंदिर में तो वे ही पहुंचते हैं जिन्होंने साधना को प्रेम समझा।

प्रेम और श्रम में बड़ा फर्क है। श्रम तो वह है जो तुम बेमन से करते हो। श्रम तो वह है जो तुम करते हो, क्योंकि करना पड़ रहा है। श्रम तो वह है जिससे तुम बच सकते तो बच जाते। श्रम तो मजबूरी है, परवशता है। प्रेम? प्रेम वह है जो तुम करना चाहते हो। प्रेम वह है कि तुम बचना भी संभव होता तो बचना न चाहते। प्रेम वह है जो तुम्हारी परवशता नहीं है, तुम्हारी स्वतंत्रता है। प्रेम वह है जो तुम बार-बार करना चाहोगे और थकोगे न। तुमसे हजार बार करने को कहा जाए तो तुम एक हजार एक बार करोगे।
मुझे बचपन में व्यायाम से बड़ा प्रेम था। और जब मैं पहली दफा स्कूल में भरती हुआ तो जो मुझे शिक्षक मिले, वे दिखता है व्यायाम के बड़े दुश्मन थे। वे सजा ही देते थे दंड-बैठक लगाने की। अगर कुछ भूल-चूक हो जाए, देर से आऊं या कुछ हो, तो वे कहते, लगाओ पच्चीस बैठक। तो मैं पच्चीस की जगह पचास लगाता। तो वे कहते, तेरा दिमाग खराब है? हम दंड दे रहे हैं!
मैं उनको कहता कि मुझे लगाव है; आप दंड दे रहे हैं; हम व्यायाम कर रहे हैं। और जब आप मुझे दें तो मुक्तहस्त दिया करें, इसमें आप संकोच न करें कि पच्चीस।
वे अपना सिर ठोंक लेते कि अब इसको क्या दंड देना।
श्रम का अर्थ है, जो तुम मजबूरी से कर रहे हो; प्रेम का अर्थ है, जो तुम अपने आनंद और अहोभाव से कर रहे हो। तब दंड भी दंड नहीं रह जाएगा। और अगर तुमने श्रम की भांति किया साधना को तो जो पुरस्कार था वह पुरस्कार की भांति न रह जाएगा। पुरस्कार दंड में परिवर्तित हो सकता है; दंड पुरस्कार बन सकता है।
एक अफ्रीकी संन्यासी--हिंदू संन्यासी--यात्रा पर भारत आया। वह हिमालय यात्रा पर गया। पहाड़ चढ़ रहा था, भरी दुपहरी, पसीना चू रहा था। पोटली अपने कंधे पर बांध रखी है। वजन भारी लगता है। जैसे-जैसे पहाड़ चढ़ता, उतना वजनी मालूम पड़ता है। और उसके सामने ही एक लड़की अपने भाई को कंधे पर बिठा कर चढ़ रही है। दयावश, प्रेमवश उसने उस लड़की से कहा, बेटी, बड़ा वजन लग रहा होगा। वह बेटी बड़ी क्रुद्ध हो गई। उसने कहा, वजन आप लिए हैं स्वामी जी, यह मेरा छोटा भाई है!
छोटे भाई में भी वजन होता है, तराजू पर तौलोगे तो वजन बताएगा; लेकिन हृदय पर तौलोगे तो वजन खो जाता है। उस लड़की ने ठीक ही कहा। और उस संन्यासी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे उस दिन पहली बार पता चला कि वजन भी प्रेम में तिरोहित हो जाता है, निर्भार हो जाता है।
श्रम मत समझना साधना को। साधना प्रेम है। तुम इसे आनंद-भाव से करना। तुम ऐसे मत चलना कि चलना पड़ रहा है मजबूरी में, और किसी तरह चल रहे हैं; क्योंकि क्या करें, बिना चले नहीं पहुंच सकेंगे। अगर कोई शार्टकट होता तो उससे गुजर जाते, अगर कोई रिश्वत चलती होती तो रिश्वत देकर मंदिर में प्रवेश कर जाते परमात्मा के, कोई चोर-दरवाजा होता तो हम वहीं से घुस जाते। लेकिन यह इतनी यात्रा करनी पड़ रही है।
इसे अगर तुमने श्रम की तरह लिया तो याद रखो, जिसको तुम चूक कह रहे हो जरा सी, वह होकर रहेगी। क्योंकि श्रम करने वाला जब मंजिल के करीब जाता है तो थक जाता है, वह विश्राम करने लगता है। वह आंख बंद करके सोचता है, अब तो आ गई मंजिल, अब तो कोई जाने की जल्दी भी नहीं है। अब तो थोड़ा आराम कर लो।
इसलिए लाओत्से कहता है, बहुत से लोग करीब पहुंच कर भटक जाते हैं; आखिरी क्षण में, जब कि द्वार खुलने को ही था, तभी चूक जाते हैं।
तुम प्रेम की तरह करना यात्रा। यह प्रेम-यात्रा है, श्रम-यात्रा नहीं। तुम एक-एक कदम इतने प्रेम से चलना कि जैसे एक-एक कदम मंजिल हो। तुम मंजिल की फिक्र ही छोड़ देना। तुम चलने में इतने आनंदित होना कि चलना ही जैसे मंजिल बन जाए। साधन अगर साध्य जैसा हो जाए तो तुम आखिरी क्षण में कभी भी चूक न कर पाओगे। क्योंकि तुमने प्रत्येक चरण को मंजिल समझा था, मंजिल को सामने देख कर थकने का क्या सवाल है? तुम तो हर कदम पर ही मंजिल से गुजर रहे थे। तुम प्रेम बनाना अपनी साधना को।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि हमारे पास योग-भ्रष्ट जैसा शब्द तो है, लेकिन भक्ति-भ्रष्ट जैसा शब्द नहीं है। क्योंकि योगी आखिरी मंजिल से भी

भटक सकता है। क्योंकि योगी श्रम जैसा कर रहा है, बड़ी मेहनत उठा रहा है; जैसे परमात्मा पर कोई एहसान कर रहा है। क्योंकि तुम शीर्षासन लगा रहे, जैसे कि तुम अस्तित्व पर कोई एहसान कर रहे हो, जैसे तुम अस्तित्व को कर्जदार बना रहे हो कि देखो, मैंने कितना किया! योगी इसी भाव से खड़ा है कि देखो, मैंने कितना किया, और अभी तक नहीं मिला! एक शिकायत है।
प्रेमी की कोई शिकायत नहीं है। इसलिए भक्ति से कभी कोई भ्रष्ट नहीं होता। हो ही नहीं सकता; क्योंकि प्रेम से कभी कोई कैसे भ्रष्ट हो सकता है? प्रेम की कोई शिकायत ही नहीं है। प्रेम का तो सिर्फ धन्यवाद है। प्रेम तो कहता है कि मुझ जैसा आदमी और इतने जल्दी मंजिल के करीब आ गया! कुछ भी न करना पड़ा और मंजिल आ गई! तेरी अपरंपार कृपा है। चले भी नहीं और तेरा द्वार सामने आ गया! चलना भी कोई चलना था? चार कदम चले, वह कोई चलना था? वह कोई बात कहने की है?
प्रेमी सदा परमात्मा के द्वार पर कहता है कि मैंने कुछ भी न किया और तेरे प्रसाद की वर्षा हो गई। तेरी अनुकंपा अपार है। योगी ऐसे जाता है जैसे कि दावेदार है। प्रेमी ऐसे जाता है कि हमारा दावा क्या? अगर जन्मों-जन्मों तक न मिलता तो भी शिकायत क्या थी? शिकायत उठती है अहंकार से; शिकायत उठती है श्रम से; शिकायत उठती है तप से। प्रेम की कोई शिकायत नहीं।
और ध्यान रखना, अगर परमात्मा से ही मिलना है तो प्रेम के अतिरिक्त सभी कुछ साधारण है। तुम प्रेम से ही जाना। तुम साधन को साध्य की तरह समझ लेना, एक-एक कदम उसी की मंजिल पर पहुंच रहा है। और तुम अनुग्रह-भाव से जाना। तुम किसी को कर्जदार नहीं बना रहे हो।
और जिस दिन तुम पाओगे, याद रखना, जिन्होंने भी पाया है उन सभी ने यह कहा
है कि प्रसाद है, ग्रेस है। क्यों? क्योंकि हमने जो किया वह कुछ भी नहीं सिद्ध होता है आखिर में; वह कुछ भी नहीं था। क्या कर रहे हो तुम? क्या कर सकते हो? उपवास कर लिया, कि सिर के बल खड़े हो गए, कि नंगे खड़े हो गए, कि धूप में खड़े हो गए। इससे क्या लेना-देना है उसके मिलने का? यह तुम क्या कर रहे हो? जिस दिन वह मिलेगा और जिस दिन वर्षा होगी तुम्हारे ऊपर उसके अमृत की, उस दिन क्या तुम सोचोगे जो हमने किया उससे मूल्य चुका दिया, हम पाने के अधिकारी होकर आए? उस दिन पहली दफे तुम पाओगे कि तुम्हारा तो कोई अधिकार ही नहीं बना था। यह मिला है उसके प्रसाद से, यह उसकी अनुकंपा से।
तुम अधिकारी की तरह कभी उस मंदिर में प्रवेश न कर पाओगे। तुम जब भी प्रवेश करोगे तब एक विनम्र याचक की भांति, एक विनम्र प्रेमी की भांति। अहोभाव से तुम प्रवेश कर पाओगे।
इसलिए तो मैं कहता हूं, यह यात्रा तुम नाच कर पूरी करना। इस यात्रा पर तुम्हारे पसीने के चिह्न न छूटें, तुम्हारे गीतों की छाप छूटे। तुम्हारे हर पद-चिह्न पर तुम्हारा अहोभाव छूटे। तुम्हारे अधिकारी का भाव न बढ़े, तुम्हारी विनम्रता गहन होती जाए, तुम निरहंकार होते जाओ। मंजिल आते-आते वह घड़ी आ जाए कि तुम मिट ही चुके हो--एक धुएं की रेखा, जो खो चुकी।
अगर नाच कर पूरी हो सकती हो यात्रा तो ही पूरी होगी। जो भी मिले हैं उस आखिरी सत्य को वे नाच कर ही मिले हैं। हंसते हुए जाना, नाचते हुए जाना, गीत गाते जाना, मस्ती में जाना। श्रम की बात ही मत उठाओ। श्रम की बात ही बेतुकी है। प्रेम की चर्चा करो। प्रेम को गुनगुनाओ। और तब तुम पाओगे कि हर कदम मंजिल है। और अगर इस प्रेम में तुम डूब भी गए मझधार में तो तुम पाओगे, मझधार ही किनारा है।

आखिरी सवालः लाओत्से ने कहा कि संत किसी में कोई सुधार नहीं करता। लेकिन कृष्ण के वचन हैं कि वे जन्म ही बुराई को कम करने और भलाई को बढ़ाने के लिए लेते हैं। और हमारा अनुभव भी है कि जो भी आपके निकट आया है उसमें आमूल परिवर्तन शुरू हुआ। लगता है, आपकी करुणा इसलिए बरसती है कि हरेक के जीवन में संपूर्ण परिवर्तन हो। तो लगता है, संत ही पूरा सुधार करता है।

दोनों ही बातें एक हैं। संत ही सुधार करता है, लाओत्से को इससे कोई विरोध नहीं। लेकिन संत सुधार करना नहीं चाहता। जो नहीं करना चाहता उसी से सुधार फलित होता है। जो करना चाहता है वही नहीं कर पाता।
लाओत्से इतना ही कह रहा है कि अगर तुमने किसी का सुधार करना चाहा तो इसका क्या अर्थ होता है? इसका पहला तो अर्थ होता है कि तुमने अपने को ऊपर रख लिया। मैं सुधार करने वाला! अकड़ छा गई। संत में कहीं कोई अकड़ नहीं। संत अपने को ऊपर रख ही नहीं सकता। संत है ही नहीं, रखेगा कहां? और जब तुमने कहा, मैं सुधार करना चाहता हूं, तब तुमने दूसरे को नीचे रख दिया--निंदित, पापी, गलत, बुरा। संत कहीं किसी की निंदा कर सकता है? संत के मन में कभी किसी को नीचे रखने का सवाल उठ सकता है?
और जहां निंदा है वहां संतत्व के होने का कोई उपाय नहीं। और जिस क्षण तुमने दूसरे को नीचे रखा और दूसरे की निंदा की, उसी क्षण तुमने दूसरे को बदलने के सब द्वार बंद कर दिए। अब तो संभावना यह है कि तुमने जितना नीचे उस आदमी को रखा है वह उससे और भी नीचे गिर जाए, और तुमने जितनी उसकी निंदा की है वह उससे भी ज्यादा निंदित होने के योग्य हो जाए। क्यों? क्योंकि हम जो भाव किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ बनाते हैं वह भाव उसे चारों तरफ से घेरने लगता है।
अगर एक व्यक्ति को सारे लोग बुरा मानते हों तो वे उसके बुरे होने में सहयोगी हो रहे हैं। क्योंकि वे उसके चारों तरफ बुरी तरंगों को निर्मित कर रहे हैं। वे उस व्यक्ति को निकलने न देंगे उन तरंगों के बाहर। अगर वह व्यक्ति कुछ अच्छा भी करेगा तो भी वे कहेंगे कि अभी पूरी बात पता चल जाने दो, यह अच्छा कर ही नहीं सकता। इसका मतलब जरूर कुछ बुरा रहा होगा। या यह भी हो सकता है कि यह करना तो बुरा चाहता रहा हो, अच्छा हो गया हो। यह दुर्घटना मालूम होती है। तुम जिस आदमी को बुरा मानते हो उसमें से तुम अच्छा देख ही नहीं सकते।
अगर तुम किसी बुरे आदमी को बुरा न मानो, तभी सुधार का रास्ता खुलता है। इसलिए संत बुराई को तो मिटाता है, लेकिन बिना बुरे को बुरा माने। इसलिए मिटाना कोई कृत्य नहीं है उसका। वह बुरे को भी स्वीकार करता है, अंगीकार करता है। उसके अंगीकार करने में ही बुरे को पहली दफा अपने आत्मभाव का स्मरण होता है।
एक चोर संत के पास आता है; संत उसे अंगीकार कर लेता है। चोर को पहली दफा
यह बोध आता है कि मैं भी इस योग्य हो सकता हूं क्या? क्या मेरी यह भी पात्रता है? और चोर को यह भी बोध आता है कि जब संत ने इतने सरल भाव से स्वीकार कर लिया है तो अब चोरी करनी बहुत मुश्किल है। अब यह जो आस्था संत ने दी है उसे, यह आस्था ही उसके लिए चोरी से विपरीत जाने के लिए सब से बड़ा सबल आधार हो जाएगा। यह जो सहज स्वीकार किया है संत ने, इस स्वीकार में ही रूपांतरण है।
संत निंदा नहीं करता और बदलता है। संत बुरा नहीं कहता और बदलता है। संत बदलता नहीं और बदलता है। संत के होने में कीमिया है; उसकी सारी अल्केमी उसके अस्तित्व में है। वह आश्वस्त करता है कि तुम बुरे नहीं हो। कौन कहता है कि तुम बुरे हो? किसने कहा कि तुम बुरे हो?
उसका यह आश्वासन तुम्हें उठाता है तुम्हारे गर्त से ऊपर। तुम्हें पहली दफा तुम्हारी प्रतिष्ठा मिलती है। पहली बार तुम्हें अपनी आत्मा का भाव-बोध उठता है कि मैं बुरा नहीं हूं। और एक ऐसे सरल व्यक्ति ने स्वीकार कर लिया है कि मैं बुरा नहीं हूं, अब बुरा होना बहुत मुश्किल हो गया। तुमने कितनी दफे जीवन में चाहा था कि लोग तुम्हें बुरा न समझें, लेकिन लोग तुम्हें बुरा समझते रहे। आज पहली दफे एक आदमी मिला है जिसने तुम्हें बुरा नहीं समझा। तुम्हें पहली दफे तुम्हारी गरिमा मिली है, गौरव मिला है। और जब संत से गरिमा मिलती है तो उसका मुकाबला नहीं। सारी दुनिया एक तरफ, सारी दुनिया की प्रशंसा-निंदा एक तरफ, संत की एक नजर, उसके स्वीकार की एक भाव-भंगिमा अकेली काफी है। तुम पहली दफे खींच लिए जाते हो तुम्हारे कुएं से, तुम्हारे गर्त से, तुम्हारे अंधकार से। संत तुम्हें छाती से लगा लेता है। उसी क्षण तुम बदलने शुरू हो गए।

एक मित्र ने पूछा है कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं?
उनके हर किसी शब्द में ही निंदा छिपी है। वे यह कह रहे हैं, हर किसी को! कौन है हर किसी? उनका मतलब है, ऐरे गैरे नत्थू-खैरे, कोई भी! लेकिन इस अस्तित्व में कोई भी ऐरा गैरा नत्थू-खैरा है? तुमने ऐसा आदमी जाना जो ऐरा गैरा नत्थू-खैरा है? तुमने यहां कहीं क्षुद्र को देखा? और अगर तुमने क्षुद्र को देखा तो वह तुम्हारी क्षुद्रता की दृष्टि में है, वह तुम्हारी आंख पर पड़ा हुआ पर्दा है। यहां तो सभी परमात्मा हैं। यहां हर किसी शब्द का तो उपयोग ही मत करना। यहां तो तुम तुम्हारी आखिरी गरिमा में स्वीकार हो। तुम्हारे इतिहास से मुझे क्या लेना-देना? तुमने क्या किया है, उससे क्या प्रयोजन? तुम्हारी क्या अंतिम संभावना है, उस पर ही मेरी आंख है। तुम जो हो सकते हो, उसी पर मेरी आंख है। तुम जो हो, उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। तुम जो रहे हो, उससे मुझे क्या हिसाब-किताब रखना है? तुम जो हो जाओगे, अंततः तुम जो हो जाओगे, एक दिन, किसी पल, किसी घड़ी जो सूर्य तुम्हारे भीतर प्रकट होगा, वह तुम्हें पता न हो, मुझे तो अभी दिखाई पड़ रहा है।
तो जब संत किसी व्यक्ति में उसे देख लेता है जो उसकी आखिरी चरमता है।
तो संत के माध्यम से वह व्यक्ति भी उस आखिरी चरमता के प्रति पहली दफा सजग होता है। और यही सजगता रूपांतरण है।
कृष्ण गलत नहीं कहते, वे ठीक कहते हैं कि मैं आऊंगा। वे ठीक कहते हैं कि मैं बुराई को बदलूंगा, मैं भलाई को प्रकट करूंगा। लेकिन वह ढंग भी वही है, करने का उपाय तो वही है जो लाओत्से कहता है।
संत बदलता है, लेकिन बदलने में वह कर्ता नहीं है। संत तुम्हें बदलता है
एक बड़े अनूठे उपाय से। वह उपाय है तुम्हारा स्वीकार, वह उपाय है तुम्हारे होने की आखिरी चरम शिखर की प्रतीति तुम्हें दिला देना।
बुद्ध ने कहा है कि मैं अपने पिछले जन्म में एक बुद्ध पुरुष के पास गया था। तब मैं अज्ञानी था। उस बुद्ध पुरुष का नाम था विरोचन। मैं बिल्कुल अज्ञानी था। और जब मैंने जाकर विरोचन के पैर छुए, मैं उठ भी न पाया, और मैं चकित रह गया और मैं रोक भी न पाया, मैं अवाक रह गया, मैं हतप्रभ हो गया, क्योंकि मैंने देखा, विरोचन मेरे चरण छू रहे हैं! मैंने उनसे कहा, यह आप क्या करते हैं? मेरे चरण छूकर आप मुझे और पाप में डालते हैं। मैं बहुत गया- बीता हूं; मुझसे बुरा आदमी नहीं है। मैं बिल्कुल अंधेरे में हूं। मैं आपके चरण छुऊं, यह समझ में आता है। आप मेरे चरण किसलिए छूते हैं?
विरोचन ने कहा, मुझे पता नहीं कि तुम कौन हो, मुझे तो सिर्फ उसी का पता
है जो तुम हो सकते हो। एक दिन तुम बुद्ध पुरुष हो जाओगे। मैं उसके लिए ही तुम्हारे चरण छूता हूं।
और बुद्ध ने कहा है, उसी दिन मेरे भीतर क्रांति घट गई। उसी दिन मेरा संबंध उससे टूट गया जो मैं था, और मेरा संबंध उससे हो गया जो मैं हो सकता हूं। विरोचन ने पैर छुए हैं! अब विरोचन ने जो इतनी आस्था दी है इसको तोड़ा भी तो नहीं जा सकता। और विरोचन ने जो इतना भरोसा किया है इस भरोसे को पूरा करना ही पड़ेगा। बुद्ध ने कहा है, मेरे भीतर विरोचन ने एक दीया जला दिया। अब कुछ भी हो, विरोचन के वचन को सिद्ध करना ही होगा। विरोचन ने पैर छू लिए हैं। दीया झुका है, अंधेरे के पैर छू लिए हैं। अब अंधेरा कितनी देर अंधेरा रह सकता है?
संत बदलता है। उसके बदलने के ढंग बड़े अनूठे हैं। विरोचन ने जन्म दे दिया बुद्ध को उसी दिन। पैर छूकर विरोचन ने सोए आदमी को जगा दिया। बुद्ध की पूरी जीवन-यात्रा में इससे बड़ी कोई घटना नहीं है। सब बाकी साधारण है। यह विरोचन है क्रांति का सूत्र। इस विरोचन ने बुद्ध को तत्काल क्षण भर में कुछ का कुछ कर दिया--सिर्फ पैर छूकर। जरा सा स्पर्श, मिट्टी सोना हो गई।
संत स्पर्श से ही मिट्टी को सोना बना देते हैं। और जब सूई से काम चल जाए
तो तलवार नासमझ उठाते हैं। जब बिना किए ही हो जाता हो तो करने की बात ही पागलपन है।
आज इतना ही।